अब्दुल्लाह हुसैन

उदास नस्लें

उदास नस्लें

भारत के विभाजन और विस्थापन का गहरा चित्रण सबसे ज़्यादा उर्दू, उसमें भी ख़ासकर पाकिस्तान के कथा-साहित्य में हुआ है। इसका सबसे बड़ा कारण शायद यह है कि मुख्य भूमि को छोड़कर वहाँ गए लेखक अब भी किसी न किसी स्तर पर विस्थापन के दर्द को महसूस करते हैं। हालाँकि, उनका लेखन एक महान सामाजिक संस्कृति और विरासत से कट जाने के दर्द तक ही सीमित नहीं है, बल्कि उसमें अपनी अस्मिता को नए ढंग से परिभाषित करने का उपक्रम भी है।

पाकिस्तान के सुविख्यात लेखक अब्दुल्लाह हुसैन के इस उपन्यास की विशेषता यह है कि इसका कथानक विभाजन और विस्थापन तक सीमित नहीं है, बल्कि अन्य कई प्रकार की अस्मिताओं की टकराहट इसमें देखी जा सकती है। भारतीय उपमहाद्वीप के परम्परागत समाज के आधुनिक समाज में तब्दील होने की ज़द्दोज़हद इसके केन्द्र में है।

अब्दुल्लाह हुसैन इन दिनों लाहौर (पाकिस्तान) में रहते हैं। उनका यह बहुचर्चित उपन्यास पहली बार पाकिस्तान में 1963 में छपा था। 1964 में इसे आदम जी पुरस्कार प्राप्त हुआ।

लेखक की अन्य रचनाएँ : फ़रेब, नशेब, बाग, नादार लोग, क़ैद, रात आदि।

आवरण : चंचल

जन्म : 2 जनवरी, 1951 साकीना, गाँव पूरालाल, थाना बदलापुर, जिला जौनपुर (उत्तर प्रदेश)। ठेठ गँवई मानसिकता वाले कलाकार। लेखन, पेंटिंग, कार्टून के साथ मूर्तिशिल्प से विशेष लगाव।

काशी विश्वविद्यालय, वाराणसी के ललित कला संकाय से बी.एफ. और फिर वहीं से पत्रकारिता में डिप्लोमा। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं से अल्पकालिक जुड़ाव। पाकिस्तान, क्यूबा, मोरक्को और रूस की यात्रा। कई देशों के विभिन्न संस्थानों एवं निजी संग्रहों के लिए पेंटिंग और रेखाचित्रों में चयन-सहयोग। पत्रकारिता, लेखन, कार्टून, पेंटिंग्स, मूर्तिशिल्प, यहाँ तक कि राजनीति को भी परस्पर पूरक मानते हैं।

पेंटिंग के लिए मूर्त गाँव और गँवई चरित्र प्रिय विषय रहे हैं। इनमें चटख रंगों का प्रयोग अक्सर देखने योग्य होता है। इनकी कृतियों में देशी जमीन के विभिन्न तत्त्वों और लोक-जीवन की विभिन्न छवियों का सुन्दर संयोजन हुआ है।

अब्दुल्लाह हुसैन

उदास नस्लें

लिप्यंतरण
सुरजीत

सम्पादन
अब्दुल मुग़नी

राजकमल पेपरबैक्स

पहला पुस्तकालय संस्करण
राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड द्वारा
2006 में प्रकाशित

© अब्दुल्लाह हुसैन
© हिन्दी अनुवाद : राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.

राजकमल पेपरबैक्स में
पहला संस्करण : 2013

© अब्दुल्लाह हुसैन
© हिन्दी अनुवाद : राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.

राजकमल पेपरबैक्स : उत्कृष्ट साहित्य के जनसुलभ संस्करण

राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.
1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग
नई दिल्ली-110 002
द्वारा प्रकाशित

शाखाएँ : अशोक राजपथ, साइंस कॉलेज के सामने, पटना-800 006
पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-211 001

वेबसाइट : www.rajkamalprakashan.com
ई-मेल : info@rajkamalprakashan.com

बी.के. ऑफसेट
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110 032
द्वारा मुद्रित

मूल्य : ₹ 295

आवरण : चंचल

UDAS NASLAIN
Novel by Abdullah Husain
Translated by Surjit

ISBN : 978-81-267-2126-9

अब्बा जान (मर्हूम)

के

नाम

उदास नस्लें

ब्रिटिश इंडिया

And (the people) shall look into the earth; and behold trouble and darkness, dimness of anguish; and they shall be driven to darkness..

ISAIAH

1

सारे गाँव में मुश्किल से सौ घर थे। इस गाँव का नाम रौशनपुर था। यह रास्ते से हटकर बसा हुआ था और कोई कच्ची या पक्की सड़क भी यहाँ न आती थी। उस तरफ़ के देहात में आने-जाने का सिलसिला इक्कों, ताँगों पर या पैदल चलके तय होता था। टूटी-फूटी, टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडियाँ थीं, जो ज़्यादातर एक दूसरी को काटती थीं। अक्सर ऐसा होता था, कि कच्ची याददाश्तवाले मुसाफ़िर और इक्कावान ग़लत रास्ते पर पड़ जाते थे और किसी अजनबी गाँव में पहुँचकर परेशानी उठाते थे, मगर यह रोज़ की बात थी और गाँववालों को ऐसे मुसाफ़िरों के साथ अच्छा बरताव करने की आदत-सी पड़ गई थी और इन लोगों को पहर-दो पहर सुस्ताने के लिए खाट और प्यास बुझाने के लिए लस्सी-पानी भी मिल जाता था।

पगडंडियों पर सारा दिन सूरज चमका करता। धूप की मारी हुई वे बड़ी भोली-भाली और साफ़-सुथरी लेटी रहतीं, मगर उनकी कमीनगी उस वक़्त ज़ाहिर होती, जब कोई सवारी उनके ऊपर से गुज़रती। तब वे पगडंडियाँ धूल का एक तूफ़ान उठातीं, जो फ़ज़ा में देर तक मँडलाता रहता और दूर-पास, जो भी इनसान, जानवर या पेड़ उनके निशाने पर आता, यकसाँ सबकी दिल-आज़ारी[1] का सबब बनता। किसान मुसाफ़िरों को ग़लत रास्ते पर डाल देना और धूल उड़ा-उड़ाकर आस-पास के जानदारों को तंग करना इन पगडंडियों के पास अपनी बदहाली पर ख़ामोश एहतिजाज[2] करने के दो मुअस्सिर[3] तरीक़े थे। रौशनपुर जाने के लिए आपको रानीकोट के छोटे-से क़स्बाती स्टेशन पर उतरकर ऐसे ही रास्तों पर पच्छिम की तरफ़ दूर तक चलना पड़ता था। रास्ते में आपको कुत्ते मिलते। ये ऐसे ही मामूली, आवारा कुत्ते थे, जो हर गाँव में होते हैं और गाँववालों की राय या ख़्वाहिश के बग़ैर ही अपने ऊपर सारे गाँव की हिफ़ाज़त और देखभाल का ज़िम्मा ले लेते हैं। ये कुत्ते अक्सर क़रीब से गुज़रनेवाले मुसाफ़िर को बैरूनी[4] हमलावर और गाँव की सलामती के लिए सख़्त ख़तरे का बाइस[5] समझते। अपने ख़दशात[6] का एलान ऊँची आवाज़ में भौंक-भौंक कर करते, और इस तरह मुख़ालफ़त[7] ज़ाहिर करते हुए अगले गाँव तक पीछा करते रहते, जहाँ वे आपको अपने जैसे ही मामूली और शक्की मिज़ाज कुत्तों के हवाले करके इत्मीनान से वापस लौटते। कमज़ोर दिलो-दिमाग़ रखनेवाले मुसाफ़िर अक्सर तैश में आकर रुक जाते, उन्हें कोसते, पत्थर उठा-उठाकर मारते, पीछे भागते और तरह-तरह की हरकतों से सख़्त नाराज़गी का इज़हार करते। लेकिन तब्‌ए-सलीम[8] के मालिक लोग कुत्तों की निस्बत अपने वक़ार[9] और बरतर हैसियत को ज़्यादा अहमियत देते और दरगुज़र करके निकल जाते। इस तरह चौदह कोस के लम्बे सफ़र के बाद गर्द

1. दिल दुखाना, 2. प्रतिरोध, 3. प्रभावशाली, 4. बाहरी, 5. मूल कारण, 6. आशंकाओं, 7. विरोध, 8. गम्भीर स्वभाव, 9. प्रतिष्ठा।

में अटे और उकताए हुए, थके-हारे आप रौशनपुर पहुँचते। यह गाँव नहर के किनारे आबाद था। नहर का पानी यहाँ की ज़मीनों को सैराब करता था।

इलाक़ाई तौर पर इस गाँव की हैसियत, कम-से-कम राय-आम्मा[1] के लिहाज़ से ग़ैर-मुसल्लम[2] थी। एक गिरोह, जिसका सरबराह[3] गाँव का सबसे ज़्यादा उम्र का किसान अहमद दीन था, मुद्दई[4] था कि गाँव सूबा दिल्ली में, और दूसरा गिरोह, जो सिख किसान हरनाम सिंह की सरबराही में था, दावा करता था कि गाँव सूबा पंजाब में है। इस बात पर अक्सर चौपाल में बहस होती थी। बहरहाल, यह बात मुसल्लम[5] थी कि गाँव दोनों सूबों की सरहद पर किसी जगह था। इस गाँव का रहन-सहन भी इसी दूई का नमूना था। जो सिख क़ौम के लोग यहाँ आबाद थे, वे पंजाब के सिख किसानों की तरह पहनते-खाते और पंजाबी ज़बान में गुफ़्तगू करते थे। हिन्दू और मुसलमान तबक़ा यू.पी. के किसानों की मुआशरत[6] का रवादार[7] था। इसके बावजूद गाँव के दो-ढाई सौ लोग बड़े अमन और सुलहजोई के साथ अपने-अपने तौर पर अपनी-अपनी ज़िन्दगियाँ बसर कर रहे थे।

रौशनपुर की तारीख़[8] मुख़्तसर और रोमानी थी। इसे आबाद हुए आधी सदी से चन्द साल ऊपर का अरसा हुआ था। इस लिहाज़ से वह इस इलाक़े का सबसे कम-उम्र गाँव था। यहाँ अभी उस नस्ल के भी कई लोग बक़ैदे-हयात[9] थे, जिसने पहले-पहल आकर यह गाँव आबाद किया था। जिस वक़्त का हम ज़िक्र कर रहे हैं, उस वक़्त दूसरी और तीसरी नस्ल इसकी ज़मीनों की काश्त कर रही थी। तारीख़ का सबसे मुस्तनद ज़रीआ[10] बहरहाल बूढ़ा किसान अहमद दीन था, जो ऐन जवानी में यहाँ आकर बसा था, और उन चन्द कुनबों में से था, जिन्होंने ग़ैर-आबाद ज़मीन में से रौशनपुर का गाँव आबाद किया था। यह तारीख़ी कहानी वह इस तरह बयान करता था : जब सन् सत्तावन का ग़दर मचा, तो नवाब रौशन अली ख़ाँ ज़िला रोहतक के कलेक्टर के दफ़्तर में मामूली अहलकार थे (ज़ाहिर है कि उस वक़्त वह नवाब नहीं रहे होंगे) मिडिल तक तालीमयाफ़्ता थे और अपनी शराफ़त की वजह से दोस्त-अहबाब और गली-कूचे में इज़्ज़त की निगाहों से देखे जाते थे। उस ज़माने में वह अपनी माँ और नई ब्याहता बीवी के साथ शहर के एक पुराने हिस्से में रहते थे। जिस रोज़ शहर में बग़ावत की आग भड़की, और हिन्दुस्तानी सिपाही अंग्रेज़ अफ़सरों के ख़िलाफ़ हथियार लेकर उठ खड़े हुए, उस रोज़ शहर के लोगों में भी ख़ौफ़ो-हिरास के साथ-साथ ग़मो-गुस्से की लहर दौड़ गई। कई जगह लोग गली-मुहल्लों में इकट्ठे होकर छावनी में आनेवाली ख़बरों पर कान लगाए बैठे थे, गो[11] यह समझना ग़लती होगी कि वे सबके सब अंग्रेज़ों के जानी दुश्मन थे। रात पड़ी तो सब शहरी अपने-अपने मकानों में बन्द होकर बैठ गए।

शाम के क़रीब रौशन अली ख़ाँ ने अपने एक बीमार दोस्त से, जिसकी मिज़ाजपुरसी[12] की ख़ातिर वह उसके यहाँ तशरीफ़ ले गए थे, इजाज़त हासिल की और घर लौटे। अपनी गली से पिछली गली के अन्दर दाख़िल हुए थे कि चन्द क़दम आगे एक भागते हुए शख़्स पर नज़र पड़ी। देखते-देखते वह साया लड़खड़ाकर गिरा और साकिन[13] हो गया। उन्हें तश्वीश[14] हुई। तेज़ी से बढ़कर उस पर झुके, लेकिन अँधेरे की वजह से कुछ पहचान न पाए। फिर आवाज़ें दीं। टटोला। नाक के आगे हाथ रखकर साँस की रवानी को महसूस किया और सिर्फ़ इतना जान पाए कि कोई मुसीबत का मारा ग़श खा गया है। बग़ैर सोचे-समझे उठाकर कन्धे पर लादा और चल पड़े। मज़बूत आदमी थे। एक गली आसानी से चलकर पार कर ली, पर बेहोश आदमी वज़नदार होता है। एक जगह जो कन्धा बदलने को रुके, तो कोई सख़्त-सी चीज़ महसूस हुई। टटोलकर देखा, तो उस शख़्स की कमर के साथ बँधा हुआ तमंचा था। साथ ही उनका हाथ ख़ून से लुथड़ गया। वह ज़ख़्मी भी था। उनका माथा ठनका, लेकिन उसे उठाए हुए चलते रहे।

1. जनमत, 2. विवादास्पद, 3. नेता, 4. वादी, 5. निर्विवाद, 6. समाजिकता, 7. पक्षपाती, 8. इतिहास, 9. जीवित, 10. प्रमाणित साधन, 11. यद्यपि, 12. किसी रोगी को देखने और दिलासा देने के लिए जाना, 13. निश्चल, 14. चिन्ता।

घर पहुँचकर जो चिराग़ की रौशनी में देखा, तो एकदम सर्द पड़ गए। उनके सामने सुनहरी बालोंवाला एक अंग्रेज़ पड़ा था, जो हिन्दुस्तानी दुकानदारों के लिबास में था। उसका चेहरा बेहद ज़र्द और साँस मद्धिम था। उन्होंने दौड़कर दरवाज़ा बन्द किया और उसे होश में लाने की जतन करने लगे। सबसे पहले घर की औरतों को परदे में करके उसका लिबास तब्दील किया और टाँग के ज़ख़्म पर, जो तेज़ धार आले से लगाया गया था, पट्टी बाँधी। फिर अपनी माँ को बुलाया। पहले तो उस नेक बीवी ने मरीज़ के फ़िरंगी होने की रू से उसके नज़दीक आने से इनकार कर दिया, मगर फिर रौशन अली ख़ाँ के, और उसकी बीवी के, जो उस ख़ूबसूरत जवान को बेबसी की हालत में देखकर काफ़ी दुखी थी, मिन्नत-समाजत करने से उसकी देखभाल करने पर रज़ामन्द हो गई। उस नेक बीवी का मरहूम[1] शौहर, यानी रौशन अली ख़ाँ का वालिद छोटा-मोटा हकीम था और हालाँकि उसकी वफ़ात से ख़ानदान में यह पेशा ख़त्म हो चुका था, पर इस वास्ते से मरहूम की बीवी को, जिन्होंने मरहूम से ज़्यादा लम्बी उम्र पाई, किसी हद तक हिकमत में दख़ल था। बहरहाल, उस अंग्रेज़ मरीज़ के सिलसिले में उन लोगों से जो कुछ हो सका, उन्होंने किया।

यकायक गली में शोर उठा और चन्द लम्हों के अन्दर शोरे-क़ियामत मालूम होने लगा। फिर रौशन अली ख़ाँ के घर का दरवाज़ा धड़ाधड़ कूटा जाने लगा। घर के मालिक ने खिड़की से झाँककर देखा, तो हिन्दोस्तानी सिपाहियों की नंगी तलवारों और बरछियों के फल मशअलों की रौशनी में चमकते नज़र आए। गली में हर तरफ़ हाहाकार मची थी और सिर ही सिर नज़र आते थे। थोड़ी देर तक अन्दर से कोई जवाब न मिला, तो बाग़ियों ने दरवाज़ा तोड़ने का फ़ैसला किया।

अव्वल-अव्वल तो मुहल्ले के लोग घरों में दुबके बैठे रहे कि जाने किसकी मौत आई है। फिर जब बात खुल गई कि उस ग़ैज़ो-ग़ज़ब[2] का रुख़ महज़ रौशन अली ख़ाँ के घर की जानिब है, तो चन्द सरबराह दुबके-दुबकाए निकले और किसी-न-किसी तौर उस दरवाज़े तक पहुँचे, जिसके तोड़े जाने की तजवीज़ें हो रही थीं। वहाँ पर उन्हें जो बताया गया, वह यूँ था : ''कर्नल जानसन, छावनी के कमांडिंग अफ़सर, भेस बदलकर घेरे में से बच निकले हैं और दिल्ली पहुँचना चाहते हैं। रस्ते में चन्द सिपाहियों से उनकी मुठभेड़ भी हुई, लेकिन वह उनमें से तीन को मौत की नींद सुलाकर ख़ुद तलवार का ज़ख़्म खाकर निकल आए हैं। अब उनके ख़ून की लकीर इस दरवाज़े में दाख़िल होती है उन्हें हमारे हवाले किया जाए, वरना दरवाज़ा तोड़कर घरवालों को मौत के घाट उतार दिया जाएगा।'' मुहल्ले के सरबराहों ने, जो कि ख़ुद डरे हुए थे, हर क़िस्म की मदद करने का वादा किया और बाग़ियों के ग़ुस्से को उसी वक़्त ठंडा करके किसी-न-किसी रास्ते से मकान में दाख़िल हुए। अब हर एक सरबराह अपनी-अपनी पगड़ी उतारकर रौशन अली ख़ाँ के पैरों पे रख रहा है, मिन्नतें कर रहा है, धमकियाँ और घुरकियाँ दे रहा है, पर हिम्मत का धनी रौशन अली ख़ाँ अपने अटल फ़ैसले पर क़ायम है कि जान जाती है, तो चली जाए, पर ज़ख़्मी मेहमान को दुश्मनों के हवाले न करूँगा।

इसके बाद वाक़िआत[3] के सिलसिले में दास्तानगो[4] के बयान में बड़ी गड़बड़ थी। कभी वह कहता, कि जब दरवाज़ा तोड़ा गया, तो बहादुर नौजवान ने एक कन्धे पर ज़ख़्मी मेहमान को, दूसरे पर अपनी बीवी को बिठाया और लड़ता-भिड़ता हुआ सही-सलामत निकाल लें गया। कुछ मौक़ों पर उसने यह भी बयान दिया था कि चन्द मसलहतों की बिना पर बाग़ी दरवाज़ा तोड़ने से बाज़ रहे, मगर सारे इलाक़े को घेरे में ले लिया और रसदो-रसाइल[5] के तमाम वसाइल[6] बन्द कर दिए गए। यह सिलसिला कई हफ़्तों तक जारी रहा। यहाँ तक कि अहालियाने-शहर[7] पर फ़ाक़ों की नौबत आ गई। फिर ख़ुदा का करना ऐसा हुआ कि फ़िरंगियों को फ़तह नसीब हुई और

1. स्वर्गीय, 2. क्रोध व रोष, 3. घटनाएँ, 4. कथावाचक, 5. खाने-पीने का सामान, 6. साधन, 7. नगरवासियों।

मुहासिरीन[1] को नजात[2] मिली। एक हिकायत यह भी थी कि रौशन अली ख़ाँ को जब भागने का कोई रास्ता दिखाई न दिया, तो घर के फ़र्श में सुरंग लगानी शुरू की, जो छावनी में जा निकली। उस रास्ते से वह कर्नल जानसन और अपनी बीवी को निकालकर ले गया और आख़िरकार मुहल्ले के सरबराहों की राय से जब घर का दरवाज़ा एक दिन तोड़ा गया, तो घर में सिर्फ़ एक बुड्ढ़ी औरत की लाश मिली। वह घर के मालिक की माँ थी, जो पहले रोज़ ही सदमे की वजह से राही-ए-मुल्के-अदम[3] हो गई थी। क़िस्सा मुख़्तसर यह, कि सरबराहों और बाग़ियों को बहुत पछतावा हुआ। इन हिकायात[4] की सेहत[5] की तरफ़ तवज्जुह देने की किसी को ज़रूरत यूँ महसूस न हुई, कि उसके बाद दास्तानगो के ख़यालात की लड़ी फिर सुलझ जाती और वह कमाले-यकसूई से यूँ गोया होता[6] : जब ग़दर का ख़ातिमा हुआ और बाग़ियों को करनी की सज़ा मिली, तो कर्नल जानसन ने, जो शाहे-इंगलिस्तान के क़रीबी अज़ीज़ों में से था, रौशन अली ख़ाँ को दिल्ली दरबार में बुला भेजा और अपने दस्ते-ख़ास[7] से ख़िलअत[8] अता की, और कहा, कि जाओ, और जाकर जितनी ज़मीन, जहाँ से चाहो, घेर लो तुम्हें इनायत की जाएगी। इसके बाद उस फ़ैयाज़[9] अंग्रेज़ हाकिम ने, जिसे उर्दू ज़बान पर ग़ैर-मामूली क़ुदरत हासिल थी, एक अजीबो-ग़रीब तक़रीब के दौरान (जिसका तफ़्सीली ज़िक्र आगे चलकर आएगा) नवाब रौशन अली ख़ाँ को आग़ा का लक़ब[10] अता किया।

ज़मीन घेरने के मुतअल्लिक़ दो रिवायतें[11] थीं। एक के मुताबिक़ नवाब साहिब ने घोड़े पर सवार होकर चक्कर लगाया और घोड़े की पूँछ के साथ एक शहद भरा टीन बाँध दिया, जिसके पेन्दे में सूराख़ था। शहद टपकता रहा और कीड़े-मकोड़े आकर उस पर जमा होते गए। इस तरह क़ुदरती हदबन्दी ज़मीन की हो गई। दूसरी के मुताबिक़ उन्होंने पैदल भागना शुरू किया और बाँस की खपच्चियाँ रास्ते में गाड़ते गए। सूरज डूबने के वक़्त जब वापस पहुँचे, तो साँस उखड़ गई। पलटकर गिरे और मरते-मरते बचे। इस सवाल के जवाब में भी कि रहने के लिए ख़ासतौर पर इलाक़े का इन्तिख़ाब[12] कैसे और क्यों अमल में आया, कई रिवायतें मशहूर थीं, जिनका बयान इस किताब के एहाते से बाहर है।

इस सारी हिकायत के हर्फ़-ब-हर्फ़[13] सही होने को यूँ भी अक़्ले-सलीम[14] नहीं मानती। फिर भी मुनासिब काट-छाँट के बाद इसे हक़ीक़त से क़रीबतर लाया जा सकता है। यह तो बहरहाल सबके देखे की बात थी कि जब तक कर्नल जानसन हिन्दुस्तान में रहे, हमेशा शिकार के लिए रौशनपुर आते रहे और जब रौशन आग़ा यूरोप गए, तो उन्हीं के पास ठहरे और फ़ैज़[15] पाया।

इस तरह रौशनपुर की जागीर, जो पाँच सौ मुरब्बों पर मुहीत[16] थी, क़ियाम[17] में आई। वाहिद मालिक रौशन आग़ा थे।

रौशन आग़ा ने अपने मामूली पसमंज़र[18] के बावजूद इस अज़ीम ज़िम्मेदारी को पूरी तरह निभाया, जो इस बेश-बहा ख़िलअत और जागीर की नवाज़िश[19] से उन पर आ पड़ी थी। आख़िरी उम्र में उन्होंने यूरोप का सफ़र किया और अपने बेटे को तालीम के लिए विलायत भेजा, गो वापस लौटकर उसने एक ऐसी हरकत की, जिससे उन्हें सख़्त सदमा पहुँचा, यानी उसने दिल के हाथों मजबूर होकर एक ऐसे घराने की लड़की से शादी कर ली, जिसके आबाई पेशे[20] को शुरफ़ा[21] में अच्छी नज़रों से नहीं देखा जाता। उसके बाद से उनका लड़का हमेशा दिल्ली के रौशन महल में रहा। रौशन महल वह आलीशान मकान था, जो रौशन आग़ा ने रिहाइश की ख़ातिर दारूसुसल्तनत[22] में तामीर[23] कराया था।

---

1. घेरा डालनेवाले, 2. मुक्ति, 3. यमलोक की राही, 4. कहानियाँ, 5. सत्यता, 6. निश्चिंतता से यूँ कहता, 7. विशेष करकमलों, 8. सम्मानार्थ दिए जानेवाले वस्त्र, 9. दानशील, 10. उपाधि, 11. किसी से सुनी हुई बातें, 12. चुनाव, 13. अक्षरशः, 14. सद्बुद्धि, 15. लाभ, 16. फैली हुई, 17. अस्तित्व, 18. पृष्ठभूमि, 19. कृपा, 20. पूर्वजों का व्यवसाय, 21. कुलीन लोग, 22. राजधानी, 23. निर्मित।

गाँव के बीच में बड़ी-सी पक्की हवेली थी, जिसमें रौशन आग़ा कई बरस तक रहे थे। उसके गिर्दा-गिर्द पचास-पचास गज़ तक जगह ख़ाली पड़ी थी, जहाँ किसी वक्त में बड़ा ख़ूबसूरत बाग़ीचा होगा, लेकिन अब महज़ ख़ुश्क पौदे और टुंड-मुंड दरख़्त खड़े थे कि हवेली मुद्दत से ख़ाली पड़ी थी। ज़िन्दगी के आख़िरी बरसों में रौशन आग़ा ने अपने बेटे को मुआफ़ कर दिया था और जाकर रौशन महल में रहने लगे थे, जिससे कि उनके बेटे नवाब ग़ुलाम मुहीउद्दीन ख़ाँ को दिली सुकून और ख़ुशी हुई थी। इस हवेली के अलावा गाँव का दूसरा वाहिद पक्का मकान गाँव के आख़िर में था। यह मुग़लों का घर था। मुग़लों के घरानों की कहानी इस तरह बयान की जाती थी : मिर्ज़ा मुहम्मद बेग और नवाब रौशन अली ख़ाँ का गुमनामी के ज़माने से गहरा याराना चला आता था। कहा जाता था कि मुलाज़मत के दौरान दोनों एक जगह काम करते और रहते-सहते। जब अल्लाह ने अपनी बेनियाज़ी में रौशन अली ख़ाँ को नेकनामी और दुनयवी जाहो-हिश्मत[1] से नवाज़ा, तो वह अपने दोस्त को न भूले और मुलाज़मत छुड़वाकर उसे अपने हमराह लेते आए। मुहम्मद बेग का ख़ालिस मुग़लों का ख़ानदान था और क़ुदरत ने इस घराने को वह ख़ूबसूरती अता की थी जो ख़ालिस नस्लों में पाई जाती है और बदक़िस्मती से रोज़-ब-रोज़ कम होती जा रही है। बल्कि बाज़ लोगों का कहना था कि रौशन अली ख़ाँ मुहम्मद बेग की बीवी के बेमिसाल हुस्नो-जमाल के हद से ज़्यादा मद्दाह[2] थे और यही अक़ीदत[3] थी जिसने उन्हें मजबूर किया कि वह अपनी मिल्कीयत में से पचास मुरब्बे ज़मीन को अलग करके अपने अज़ीज़ दोस्त को तुह्फ़तन[4] दे दें और अपनी जेब से गाँव में पक्का मकान बनवाकर दें। अफ़वाह थी कि मुहम्मद बेग का बड़ा बेटा नियाज़ बेग भी रौशन अली ख़ाँ के वास्ते से था, लेकिन अफ़वाहों का क्या है ! कहनेवाले तो यहाँ तक कहते थे कि ख़ुद नवाब रौशन अली ख़ाँ की इकलौती औलाद उस फ़ैयाज़ और आली नसब[5] अंग्रेज़ कर्नल की बदौलत थी, जो ज़ख़्मी होकर चन्द दिन उनके यहाँ मेहमान रहा था और जिसकी वजह से रौशन अली ख़ाँ पर जान की मुसीबत आई थी, हालाँकि उस ग़ैर-मुल्की की आली-नसबी और शराफ़त को नज़र में रखा जाए, तो अक़्ले-सलीम आसानी से इस बात को नहीं मानती। हम यही सोचकर भी इन अफ़वाहों की पुरज़ोर ताईद[6] करने से बाज़ रहने पर मजबूर हैं कि उस ज़माने के बुज़ुर्ग क़तई तौर पर मुख़्लिस[7], वज़्अदार[8] और शफ़ीक़[9] हुआ करते थे।

जितना अरसा मिर्ज़ा मुहम्मद बेग ज़िन्दा रहे, बड़ी ख़ुशहाली की ज़िन्दगी बसर करते रहे, और दोनों कुनबों की आपस में मुहब्बत रोज़-ब-रोज़ तरक़्क़ी करती गई। मुहम्मद बेग मेहनती आदमी थे और सनअतो-हिर्फ़त[10] में बहुत दिलचस्पी रखते थे, चुनाँचे ज़मींदारे के साथ-साथ उन्होंने घर में लोहे के काम की दुकान खोल ली कि उन वक़्तों में ऐसे पेशे इख़्तियार करने को बुरा नहीं समझा जाता था, गो मिर्ज़ा मुहम्मद बेग के लिए यह काम पेशा कम और हुनरमन्दी के शौक़वाली बात ज़्यादा थी। इसी तरह सुलूक और मुहब्बत के साथ वक़्त गुज़रता जा रहा था कि अचानक मुहम्मद बेग को ऐन जवानी के आलम में, जबकि वह अभी पूरे पैंतीस बरस के भी न हुए थे, मौत ने आ दबोचा और उन्होंने एक बड़ी पुर-सुकून और ख़ुशनुमा ज़िन्दगी गुज़ारने के बाद जान जाने-आफ़्रीं[11] के सिपुर्द की। उनकी पुर-असरार[12] बीमारी और मौत के मुतअल्लिक़ भी कई अफ़वाहें हैं, लेकिन चूँकि इनका हमारी कहानी के साथ कोई बराहे-रास्त तअल्लुक़ नहीं, हम इस तरफ़ ज़्यादा तवज्जुह न देंगे।

मिर्ज़ा मुहम्मद बेग की वफ़ात के बाद उनकी बीवी और बच्चे नवाब साहिब की ख़ास शफ़क़त[13] और निगरानी में परवरिश पाते रहे। बड़ा लड़का नियाज़ बेग पूरे क़द का, बड़ा गभरू, ख़ूबसूरत जवान निकला और बाप के ज़मींदारे और हुनरमन्दी के शौक़ विरसे में पाए। वह उम्र भर गाँव में रहा और

1. सांसारिक प्रतिष्ठा और प्रताप, 2. प्रशंसक, 3. श्रद्धा, 4. उपहार में, 5. उच्च-कुल, 6. अनुमोदन, 7. निश्छल, 8. जो अपनी रीति-नीति का त्याग न करे, 9. दयालु, 10. शिल्प व दस्तकारी, 11. ईश्वर, 12. रहस्यपूर्ण, 13. स्नेह।

यही काम करता रहा। उसकी माँ ने उसकी शादी अपने जैसे एक ख़ालिस मुग़ल घराने में की और बड़ी ख़ूबसूरत और ख़ूब-सीरत[1] बहू ब्याह कर लाई। शादी के पन्द्रह साल बाद ख़ुदा ने उसे बेटा अता किया। लोगों का कहना था कि नियाज़ बेग की माँ ने पोते की पैदाइश का इतनी शिद्दत और इतने शौक़ से इन्तिज़ार किया था कि इतने लम्बे अरसे के बाद उसे अचानक ख़ुशी से जो सदमा पहुँचा, उससे वह जांबर[2] न हो सकी। माँ के मरने के बाद नियाज़ बेग ने एक और औरत को घर में डाल लिया। यह दूसरी औरत किसी नीच ज़ात से थी।

छोटा बेटा अयाज़ बेग पाँच साल तक स्कूल में पढ़ने की ख़ातिर जाता रहा कि उसे पढ़ाई करने का शौक़ था। फिर अचानक उसका इस काम से जी उठ गया और वह घर से भागकर रेलवे के महकमे में मुलाज़िम हो गया। इसके कई साल बाद वह गाँव लौटा।

फिर एक ऐसा वाक़िआ हुआ, जिसकी वजह से इस घराने के ख़ुशगवार दिन बिलकुल ग़ाइब हो गए। नियाज़ बेग को हुकूमत के ख़िलाफ़ किसी जुर्म के इल्ज़ाम में पकड़ लिया गया और चन्द रोज़ा अदालती कार्रवाई के बाद बारह बरस क़ैदे-बामशक़्क़त[3] की सज़ा हुई। वे चन्द दिन, जब मुग़लों के इस बाइज़्ज़त कुनबे पर बदक़िस्मती आई थी, अभी तक गाँववालों को याद थे, और उसका ज़िक्र करते हुए अब भी लोग आवाज़ नीची कर लेते थे और रंज से सिर हिलाने लगते थे। हुकूमत ने इसी पर इक्तिफ़ा[4] न की, बल्कि उन दोनों भाइयों की ज़्यादातर ज़मीन ज़ब्त कर ली और थोड़ी-सी जायदाद, जिस पर नियाज़ बेग की दोनों बीवियों का बमुश्किल गुज़ारा चल सकता था, छोड़ दी। अब अकेली रहती हुई वे दोनों औरतें बड़ी उसरत[5] और तंगी में बुढ़ापे का इन्तिज़ार करने लगीं। इस तरह गाँव के इस इकलौते आज़ाद घराने पर क़ुदरत की तरफ़ से बदक़िस्मती और ज़िल्लत नाज़िल[6] हुई।

छोटे भाई अयाज़ बेग ने इस वाक़िए से बद-दिल होकर गाँव छोड़ दिया, लेकिन जाते हुए वह नियाज़ बेग के लड़के नईम को, जो अपने बाप के जेल जाने के वक़्त तीन साल का था, अपने साथ लेता गया। उसे अपने भतीजे से बड़ी मुहब्बत थी। अयाज़ बेग मामूली तालीमो-तर्बियत[7] के बावजूद उस ख़ुदा-दाद ज़हानत[8] और सलाहियत[9] का मालिक था, जिसके बल पर बहुत-से मामूली आदमियों ने दुनिया में नामवरी[10] पाई है। इसका उसने पूरा फ़ायदा उठाया और इमारती तामीर[11] के काम में कमाले-फ़न[12] हासिल किया। होते-होते वह कलकत्ते की एक मशहूर तामीरी फ़र्म में इंजीनियर के उहदे तक जा पहुँचा। उसने तमाम उम्र शादी न की। तनहाई-पसन्द और सुथरे-मज़ाक़[13] का आदमी था। बहुत रुपया कमाया, लेकिन कभी गाँव न लौटा। नईम को उसने बेहतरीन अंग्रेज़ी स्कूलों में तालीम दिलाई और सारी उम्मीदें उसके साथ वाबस्ता कर दीं।

रौशनपुर का हमारी कहानी के साथ गहरा तअल्लुक़ है, लेकिन इब्तिदाई[14] चन्द दिन आपको दारूस्सल्तनत दिल्ली में बसर करने होंगे, कि उस ज़माने में, जिस ज़माने से हमने कहानी शुरू करने का फ़ैसला किया है, सारे अहम लोग वहाँ पर जमा थे।

और यह वह ज़माना था, जब नवाब रौशन अली ख़ाँ ऑफ़ रौशनपुर अस्सी बरस की उम्र पाकर हाल ही में फ़ौत[15] हुए थे, और हिन्दोस्तान की आज़ादी की जंग शुरू हो चुकी थी।

2

क्वींज़ रोड के अन्त में रौशन महल था। यह एक क़दीम वज़ुअ[16] की वसीअ[17], दो-मंज़िला कोठी थी। आगे कर्ज़न रोड शुरू होती थी।

1. अच्छे स्वभाववाली, 2. जीवित, 3. कठोर कारावास, 4. सन्तोष, 5. दरिद्रता, 6. अपमान प्रकट हुआ, 7. शिक्षा-दीक्षा, 8. ईश्वरप्रदत्त बुद्धिमानी, 9. योग्यता, 10. ख्याति, 11. भवन-निर्माण, 12. प्रवीणता, 13. सुरुचि, 14. आरम्भिक, 15. मरे थे, 16. प्राचीन ढंग, 17. विशाल।

उनको दूर ही से आज के दिन की चहल-पहल दिखाई दे गई। फाटक पर काग़ज़ी झंडियाँ और रंग-बिरंग बिजली के क़ुमक़ुमे लटक रहे थे। बहली से उतरे, तो उन्होंने देखा कि लम्बी ड्राइव पर, जो सामने बरामदे तक जाती थी, ताज़ा सुर्ख़ बजरी बिछाई गई थी, और दोनों अतराफ़ चूने की मुतवाज़ी लकीरें[1] लगी थीं। बरामदे में दो मेज़ें पड़ी थीं। एक पर मेज़पोश तह किए रखे थे। दूसरी के गिर्द बहुत सारे लड़के-लड़कियाँ खड़े नेपकिन बना रहे थे। बरामदे के सामने वसीअ लॉन में मेज़ें और कुर्सियाँ लगाई जा रही थीं। दिन की रौशनी अभी बाक़ी थी, मगर बरामदे और बाग़ में क़ुमक़ुमे जल रहे थे। सिर्फ़ बरामदे में शोर था, जहाँ मेज़ के गिर्द ख़ुशपोश और तन्दुरुस्त लड़के-लड़कियाँ जमा होकर काम कर रहे थे। सब्ज़े पर नौकर सफ़ेद वर्दियाँ पहने ख़ामोशी से एक दूसरे को हिदायात दे रहे थे।

अयाज़ बेग और नईम जब बरामदे में चढ़े, तो सामने से भूरी आँखोंवाली एक नौ-उम्र लड़की जारिहाना[2] अन्दाज़ में निकली।

"चचा..." वह ठिठककर ऊँची आवाज़ में बोली, "तसलीम[3] ! बाबा बैठे हैं। आप चलिए अन्दर...हम लोग नेपकिन बना रहे हैं। अभी तो...।" वह घड़ी देखती हुई जाकर नौ-उम्रों के उस गिरोह में शामिल हो गई। नईम का ध्यान उनकी तरफ़ था। उनकी औसत उम्र नईम की उम्र के लगभग थी।

"देखो, अज़रा ! परवेज़ उलटी तरफ़ से बना रहा है और कहता है, कि यही सीधा है" पहली लड़की से एक दूसरी लड़की, जो सुर्ख़ रेशमी लिबास में थी, बोली।

भूरी आँखोंवाली लड़की ने जाकर उसी जारिहाना अन्दाज़ में सबसे लम्बे और बड़ी उम्र के लड़के का नेपकिन खोल दिया "ग़लत...बिलकुल ग़लत..." वह बोली। उसके भूरे रंग के लम्बे बाल हवा में उड़ रहे थे, और गर्दन की सफ़ेद जिल्द दिखाई दे रही थी। "देखो भई सब लोगो !" उसने चिल्लाकर कहा, "परवेज़ यूँ बनाता है," और रूमाल को बेतरतीबी से गोल-मोल लपेट दिया, जिसे देखकर सब हँसने लगे।

"यूँ तो मौलाना सिर पर बाँध के नमाज़ पढ़ाते हैं," एक मोटा-सा सफ़ेद रंगतवाला लड़का बोला। क़हक़हों का शोर बुलन्द हुआ। भूरी आँखोंवाली लड़की सिर पीछे फेंककर हँस रही थी, जिससे गर्दन की पुश्त पर सफ़ेद, सेहतमन्द जिल्द इकट्ठी होकर उभर आई थी और गले पर तंग फ्रॉक गोश्त में धँसा जा रहा था। उसका गहरा सुर्ख़ चेहरा एक पागल हँसी में तना हुआ था। नरख़रा[4] कपकपा रहा था और आँखों में पानी आ गया था।

परवेज़ खड़ा सबका मुँह देखता रहा। फिर बहुत गहरा झेंप गया, "मैं कोई लड़की थोड़ा हूँ। यह तो लड़कियों का काम है या बैरों का..." हँसी तेज़ हो गई।

अपने आपको अजनबी फ़िज़ा में पाकर नईम का दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगा, मगर जी खोलकर हँसते हुए लोगों को देखकर बेतकल्लुफ़ी, सादगी और बराबरी का जो एहसास होता है, उसकी वजह से उसका जी चाहा कि वह भी जाकर उनमें शामिल हो जाए। उसी वक़्त वह अयाज़ बेग के पीछे-पीछे अन्दर दाख़िल हो गया।

ड्राइंग रूम में दाख़िल होकर, जिस पर सबसे पहले नईम की नज़र पड़ी, वह घर का मालिक था। नवाब ग़ुलाम मुहीउद्दीन एक कोने में बड़ी-सी मेज़ पर बैठे कुछ लिख रहे थे।

"आइए, आइए..." वह बैठे-बैठे हाथ बढ़ाकर बोले, "मैं इतनी जल्द आपका मुतवक़्क़े[5] नहीं था। कब आए ?"

"आज सुबह !" अयाज़ बेग ने बहुत झुककर हाथ मिलाया। अपने चचा को इतनी इन्किसारी[6] के साथ किसी से मिलते हुए नईम ने पहले नहीं देखा था। नवाब साहिब के चेहरे पर सबसे नुमायां चीज़[7] उनकी नाक थी, जो ऊँची और नोकदार थी और उन्हें मर्दाना शक्लो-सूरत अता करती थी।

---

1. समानान्तर रेखाएँ, 2. आक्रामक, 3. प्रणाम, 4. गला, 5. जिसका आशा हो, 6. विनम्रता, 7. स्पष्ट वस्तु।

"अफ़सोस है, रौशन आग़ा की वफ़ात पर हाज़िर न हो सका। मुलाज़मत का सिलसिला है।" अयाज़ वेग ने कहा।

"आप तो बड़े फ़र्ज़-शनास अफ़सर हैं...ठीक है। काम-दाम करता ही आदमी अच्छा लगता है। हमारी भी कोई ज़िन्दगी है।" उन्होंने शरारत भरी मासूम मुस्कराहट के साथ कहा, जो पुराने ख़ानदानी लोगों का हिस्सा होती है।

"बजा फ़रमाया ! बजा फ़रमाया..." अयाज़ बेग हाथ मलते हुए ख़ुशदिली से बोले। दोनों दोस्तों की आँखों में चमक थी। फिर वह नईम की तरफ़ मुतवज्जेह हुए, "यह साहिबज़ादे ?"

नईम ने अयाज़ बेग की ही तरह बहुत झुककर हाथ मिलाया। जिससे उसकी टोपी का फुन्दना नवाब साहिब के हाथ की पुश्त से जा लगा।

"भतीजा है !"

"ओह ! मैं समझा..." वह ग़ौर से उसे देखते हुए बोले। आहिस्ता-आहिस्ता उनके चेहरे पर संजीदगी की सख़्ती पैदा होने लगी। तीनों आदमियों के दरमियान अजीब-सी ख़ामोशी छा गई। अयाज़ बेग का चेहरा बेहद उदास हो गया। नवाब साहिब के माथे को दो हिस्सों में तक़्सीम करती हुई रग उभर आई। बारीक रेशमी गाउन पहने वह अपने मज़बूत चेहरे पर वहशियाना कुव्वत[1] से भरपूर शबीह[2] लिए सीधे बैठे रहे। फिर अचानक उन्होंने पहलू बदला और आहिस्ता-आहिस्ता कहने लगे, "मैं देख रहा था, इनकी शक्ल नियाज़ बेग से मिलती है। ख़ूबसूरत आदमी था। वापस आ गया है ?"

"जी हाँ !"

"कै साल बाद ?"

"बारह !"

"ओह !" वह उठकर कमरे में टहलने लगे, "पढ़ता है ?"

"कलकत्ते में। इस साल सीनियर कैम्ब्रिज किया है," अयाज़ बेग ने बताया।

"हूँ। आप नियाज़ बेग से मिले ?"

"नहीं !"

"मिलेंगे ?"

"नहीं !"

दोनों कुछ देर तक ख़ामोश रहे। फिर अयाज़ बेग ने मौज़ूअ[3] तब्दील करते हुए कहा, "आज तो काफ़ी रौनक़ होगी।"

"उम्मीद तो है।" नवाब साहिब की संजीदगी दूर हो गई। "चीफ़ कमिश्नर आएँगे। गोखले भी शहर में हैं। शायद आ जाएँ, और आपकी एनी बेसेन्ट भी आ रही हैं। ज़रा तैयार रहिएगा। आप भी बड़े ज़ोरदार थिऑसॉफ़िस्ट हैं," फिर उन्होंने अयाज़ के कन्धे पर हाथ रखकर ग़ौर से देखा, "बूढ़े हो गए हो।"

"वक़्त सबको बूढ़ा कर देता है," अयाज़ बेग ने मुस्कराकर कहा।

नईम बहुत बेचैन बैठा था। अपने बाप का ज़िक्र उसने बहुत कम सुना था, और यह मंज़र[4] जो आज उसने देखा, और महसूस किया, बिलकुल नया था। मौज़ूअ की तब्दीली से उसे काफ़ी तसल्ली हुई और वह ग़ौर से अपने मेज़बान को देखने लगा।

नवाब साहिब चालीस के लगभग और बहुत सेहतमन्द थे। चश्मा उनकी नाक में गहरा फँसा हुआ और गाल शीशे से ऊपर उभरे हुए थे। आँखें गहरी और जबड़े, ठोड़ी और सिर की हड्डी मज़बूत और चौड़ी थी। उनके हाथ नाज़ुक और ख़ुशनुमा थे। मामूली नाक-नक़्शे के बावजूद उनके चहरे पर वह नर्मी और ख़ुश-शक्ली थी, जो पुर-आसाइश[5] ज़िन्दगी का पता देती थी। गुफ़्तगू करते

---

1. पागलों जैसी शक्ति, 2. आकृति, 3. विषय, 4. दृश्य, 5. सम्पन्न।

हुए वह एक हाथ को बड़े दिलकश अन्दाज़ में हरकत देते थे।

कमरा बड़े क़रीने से सजा था। नईम के ऐन पीछे एक भुस भरा शेर खड़ा था, जो ख़तरनाक हद तक ज़िन्दा दिखाई दे रहा था। चारों कोनों में ऊँचे-ऊँचे फ़र्शी लैम्प रौशन थे। खिड़कियों पर भारी परदे और फ़र्श पर मोटे-मोटे, बेआवाज़ क़ालीन पड़े थे। बरामदे के शोर के मुक़ाबले में अन्दर गहरी ख़ामोशी और सुकून था। ग़ौर से देखने पर मालूम होता था कि दरवाज़ों-खिड़कियों की दरज़ें फ़लालेन की तहों से बन्द की गई थीं।

फिर उनका मेज़बान उठा और थोड़ी देर तक लॉन पर मिलने का वादा करके अन्दर के कमरों की तरफ़ चला गया।

बाहर आकर नईम ने देखा कि नेपकिन सारी मेज़ों पर रखे थे और सफ़ेद वर्दियोंवाले बैरे आख़िरी इन्तिज़ामात में मसरूफ़ थे और कोई दिखाई न देता था। फाटक के बग़लवाले दूसरे लॉन में बैठने का इन्तिज़ाम किया गया। अयाज़ बेग ने कोने में एक कुर्सी घसीटी और कैमरा निकालकर रात को तस्वीरें लेने के लिए उसे तैयार करने लगे।

नईम इधर-उधर फिरने लगा। उस वक़्त अन्दर से वही लड़के-लड़कियाँ बातें करते निकले और इधर-उधर फैल गए।

लम्बे लड़के ने तमीज़ से झुककर अयाज़ बेग को सलाम किया। फिर वह नईम की तरफ़ आया।

"आप कलकत्ते से आए हैं न ?"

"जी हाँ !"

"मैं परवेज़ हूँ," उसने हाथ बढ़ाया, "यह...हमारा घर है !"

नईम ने हाथ मिलाया और ख़ामोशी से उसे देखने लगा। एक तनहा और बेख़तर परवरिश[1] के तुफ़ैल[2] यह उसका क़ुदरती, बेज़बान अन्दाज़े-गुफ़्तगू बन चुका था।

"आइए, उधर चलें !" परवेज़ ने कहा।

उनको अपनी तरफ़ आते देखकर वे सब उठ खड़े हुए। अब उन्होंने खिलंडरोंवाला लिबास उतारकर तक़रीबी[3] लिबास पहन लिया था और ज़्यादा ज़िम्मेदार दिखाई दे रहे थे।

"यह...यह...कलकत्ते से आए हैं," परवेज़ ने सटपटाकर कहा, "और यह मेरी बहन अज़रा है. ..ये सब हमारे बहन-भाई हैं !"

नईम घबराहट में अपनी लम्बी सुर्ख़ टोपी के फुन्दने पर हाथ फेरता रहा।

"आपसे मिलकर बड़ी ख़ुशी हुई। बैठिए !" सब अपनी-अपनी जगह पर बैठ गए।

"आप बोलते बिलकुल नहीं हैं ?" अज़रा ने अपनी भूरी आँखें नचाकर उसी बेतकल्लुफ़ी से पूछा।

"जी...जी नहीं तो..." सब लोग सादगी से मुस्कराए।

"आपने नाम नहीं बताया अपना ?"

"नईम !"

"ओह ! किस क़दर ख़ूबसूरत नाम है," एक पतले-से लड़के ने अंग्रेज़ी में कहा।

उनका खिलंडरापन और शोर सब ख़त्म हो गया था, उनकी आँखों में तमस्ख़र[4] की झलक साफ़ देखी जा सकती थी।

सिर्फ़ अज़रा उसी जारिहाना अन्दाज़ में बातें कर रही थी। अब उसने सफ़ेद रेशम की साड़ी बाँध रखी थी और देखने में काफ़ी बड़ी और समझदार लग रही थी।

"आपको नेपकिन बनाना आता है ?"

"नहीं !"

---

1. ऐसा पालन-पोषण जिससे अनिष्ट की आशंका न हो, 2. कारण, 3. रस्म सम्बन्धी, 4. परिहास, ठठोली।

"दरअसल आज हमें पता चला कि हममें से आधे लोगों को नहीं आता !"

"अज़रा ! यह तो ग़लत बात है," पतला लड़का अंग्रेज़ी में बोला, "अब तुम कहोगी, हमें साड़ी बाँधना नहीं आता, तो यह भला क्या बात हुई !" सब लोग चुपके-से हँसे।

कुछ देर तक वे इसी तरह बातें करते रहे। फिर मेहमान आना शुरू हो गए। अयाज़ बेग ने नईम को पुकारा और वह जाकर कैमरे में फ़िल्म चढ़ाने में उनकी मदद करने लगा। आध घंटा के बाद कैमरा दुरुस्त हुआ।

अब काफ़ी मेहमान आ चुके थे। नवाब साहिब और अधेड़ उम्र की एक ख़ूबसूरत औरत दरवाज़े में खड़े उनका इस्तिक़्बाल[1] कर रहे थे। अज़रा भी पास खड़ी थी। परवेज़ और गिरोह के दूसरे लोग मेहमानों के दरमियान इधर-उधर फिर रहे थे। अभी तक जो लोग आ चुके थे, उनमें ज़्यादातर ग़ैर-मुल्की[2] थे। चन्द एक ने ऊँचे सियाह हैट और टेल-कोट पहन रखे थे। बाक़ी ने, जो ज़्यादातर नौजवान तबक़ा था, शाम का सियाह चुस्त लिबास पहन रखा था, और सिर से नंगे थे। तक़रीबन सभी ख़ामोश बैठे सिगरेट और मोटे-मोटे सिगार पी रहे थे। औरतों ने बन्द गले के चुस्त फ़्रॉक पहन रखे थे। अब हिन्दोस्तानी मेहमान आ रहे थे। वे मुख़्तलिफ़ क़िस्म के लिबास में थे। मुसलमान फुन्दनेवाली सुर्ख़ टोपियों और लम्बे-लम्बे चोग़ों में थे। कुछ लोग शेरवानियों में भी थे, जिनसे उनकी क़ौम और मज़हब का पता चलाना दुश्वार था। हिन्दोस्तान में अब हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, सबने शेरवानियाँ पहननी शुरू कर दी थीं, अलबत्ता हिन्दू अपनी ढीली-अड़ंग धोतियों और बड़ी-बड़ी सफ़ेद पगड़ियों से पहचाने जा सकते थे।

वे दो-दो और चार-चार घोड़ोंवाली बहलियों में आ रहे थे। सिर्फ़ अंग्रेज़ मेहमान और चन्द हिन्दोस्तानी मोटरों पर आए थे। वे फाटक पर नवाब साहिब और उनकी साथी औरत के साथ अख़्लाक़[3] से झुककर हाथ मिलाते या दूर से हाथ जोड़कर प्रणाम करते और जाकर ख़ामोशी से बैठ जाते। अंग्रेज़ सब एक तरफ़ बैठे थे। हिन्दोस्तानी दूसरी तरफ़ ! ग़ैर-मुल्कियों ने अपनी-अपनी टोपियाँ और स्कार्फ़ आते ही नौकरों के हवाले कर दिए थे। हिन्दोस्तानी टोपियाँ पहने, छड़ियाँ हाथों में थामे बैठे थे।

एक हिन्दोस्तानी ज़र्क़-बर्क़[4] शेरवानी और पगड़ी पहने मोटर से उतरा। साथ एक नौजवान अंग्रेज़ी लिबास में था। नवाब साहिब बहुत नीचे झुककर मिले। किसी ने कहा, "महाराज कुमार प्रतापगढ़ हैं। हमराह[5] शायद सेक्रेटरी थे। वह वाहिद[6] हिन्दोस्तानी थे, जो आकर अंग्रेज़ों में बैठे। उन्होंने अपनी छड़ी भी नौकर के हवाले कर दी।

फिर गोखले आए, जिस पर तमाम हिन्दोस्तानी और चन्द अंग्रेज़ उठ खड़े हुए और झुक-झुककर मिले। अयाज़ बेग ने जब उनका नाम लिया, तो नईम चौंककर उठा और क़रीब जा खड़ा हुआ। गोखले का नाम उसने बहुत सुन रखा था, मगर देखने का आज पहली बार मौक़ा मिला था। उन्होंने पतलून के ऊपर बन्द गले का बड़े-बड़े कालरोंवाला हाफ़-कोट पहन रखा था और सिर पर टोपी लिए हुए थे (इस क़िस्म की टोपी नईम ने कलकत्ते में तिलक को भी पहने देखा था), गले में लम्बा-सा मफ़लर था। सुनहरे फ़्रेम का चश्मा लगाए इकहरे जिस्म का यह आदमी ख़ूबसूरत कहलाया जा सकता था, हालाँकि बहुत कमज़ोर था। नईम ने उसके साथ हाथ मिलाते वक़्त अजीब-सी कैफ़ियत महसूस की।

फिर डॉक्टर एनी बेसेन्ट आईं, जिनका नाम नईम ने अयाज़ बेग की ज़बानी अक्सर सुना था। वह हिन्दोस्तानियों के एक ग्रुप में जाकर बैठ गईं। नौकर मेहमानों को फलों का रस पेश करने लगे।

अनार के एक पौदे के नीचे नईम खड़ा था। पत्तों में छुपे हुए बल्ब की रौशनी उसके चेहरे पर पड़ रही थी।

---

1. स्वागत, 2. विदेशी, 3. शिष्टता, 4. चमकीली, 5. साथ, 6. एकमात्र।

"हलो...आपने फलों का रस पिया ?" अज़रा उसके पीछे से निकलकर बोली।

"नहीं !"

"लीजिए।" उसने गिलास नईम के हाथ में थमा दिया, जो उसने फ़ौरन लबों से लगा लिया।

"सब मेहमान आ गए ?" बहुत सोचकर उसने बात की।

"तक़रीबन !" अज़रा ने तमस्ख़ुर और सादगी के अजीब अन्दाज़ में उसकी तरफ़ देखा। नईम ने महसूस किया कि साये में उसकी आँखों का रंग गहरा सियाह हो गया था। उसने गिलास में से दो बड़े-बड़े घूँट लिए।

"आप टोपी बिलकुल नहीं उतारते ?"

वह घबराकर टोपी और फुन्दने पर हाथ फेरने लगा।

"उतार दीजिए।"

उसने जल्दी से टोपी उतार दी।

"यह..बटन खोल दीजिए,.." अज़रा ने उँगली से उसके गले की तरफ़ इशारा किया। जब वह ऊपर के दो-चार बटन खोल चुका, तो अचानक वह बहुत गहरी झेंप गई, "मेरा मतलब है, सिर्फ़ यह कि...आपको गरमी महसूस नहीं होती शेरवानी में ?"

"नहीं !"

"यूँ भी...देखिए, यह हमारे मटर-फूल सूख गए हैं। आख़िर अप्रैल तक इनकी बहार होती है," उसका चेहरा अभी तक सुर्ख़ हो रहा था। नईम को पहली दफ़ा महसूस हुआ कि वह कोई ग़ैर-मामूली शै[1] नहीं, बल्कि आम-सी लड़की थी, बिलकुल जिस तरह का वह ख़ुद था। जल्द ही वह उसके सिह्र[2] में से निकल आया। अज़रा ने हाथ बढ़ाकर होली हॉक्स का एक गुलाबी फूल तोड़ा।

"आजकल इनकी बहार है। मुझे अन्दर जाना है। आप बैठिए !" उसने कहा। अँधेरे की तरफ़ जाती हुई वह एक बड़ी उम्र की संजीदा औरत की तरह चल रही थी। नईम ने उसे बरामदे में ग़ायब होते देखा और हाथ बढ़ाकर चन्द ख़ुश्क मटर-फूल तोड़े। वे खड़खड़ाकर टूटे और बिखर गए।

मेहमानों की टोलियों में गुफ़्तगू बड़े ज़ोर-शोर से शुरू हो चुकी थी। सामने तीन अंग्रेज़ बैठे चौथे की बातें ग़ौर से सुन रहे थे। यह चौथा,जिसका सियाह हैट नीचे घास पर पड़ा था, अधेड़ उम्र का बड़े-से सिरवाला शख़्स था, और बड़ी मह्वीयत[3] से ड्रामाई अन्दाज़ में हाथ हिला-हिलाकर कोई क़िस्सा बयान कर रहा था। नईम आगे बढ़ा। एक लम्बे सोफ़े पर महाराज कुमार प्रतापगढ़ चीफ़ कमिश्नर के साथ बैठे ताश के पत्ते बाँट रहे थे।

"ताश के लिए यह मौज़ूँ[4] वक़्त तो नहीं, मिस्टर...पर मैं आपको सिखाने के लिए बहुत बेताब हूँ। ऐसा अजीबोग़रीब खेल है, जो यहाँ पर किसी को न आता होगा। पिछले महीने मैंने पेरिस में एक ख़ातून[5] से सीखा था," उन्होंने पत्तों की तक़सीम से ग़ैर-मुत्मइन[6] होकर ताश अपने सेक्रेटरी को पकड़ाए और ख़ुद चीफ़ कमिश्नर को खेल के इब्तिदाई[7] उसूल समझाने लगे। साथ बैठी एक अंग्रेज़ ख़ातून भी दिलचस्पी लेने लगी। सेक्रेटरी माहिरे-फ़न की तरह ताश लगा रहा था।

जब नईम गमलों की उस क़तार के साथ-साथ, जिनमें गरमी के मौसम के फूल की पनीरी लगी थी, महाराज कुमार के सोफ़े के पीछे से गुज़रा, तो वह पत्ते तरतीब-वार लगाते हुए अचानक रुककर बोले, "पेरिस में मैंने देखा, मिस्टर...कि जिस होटल में मैं ठहरा, वहाँ अजीब रिवाज था। वह पेरिस का सबसे बड़ा होटल था, और हर एक Suite के साथ दो-दो ग़ुस्लख़ाने थे। क्या हुआ कि सुबह-सुबह जब मैं नहाने के लिए निकला, तो क्या देखता हूँ कि सामने वाले Suite से एक साहिब नंग-धड़ंग, कमर को तौलिए से पोंछते निकले चले आ रहे हैं। मैंने घबराकर कहा, 'ओह ! मुआफ़ कीजिए..." और वापस चला आया। वह साहिब जवाब दिए बग़ैर निकल गए।

---

1. असाधारण वस्तु, 2. सम्मोहन, 3. तल्लीनता, 4. उपयुक्त, 5. महिला, 6. असन्तुष्ट, 7. प्रारम्भिक नियम।

अंग्रेज़ ख़ातून सुर्ख़ हो गईं। "अंग्रेज़ी बहुत कम समझते हैं वहाँ पर।" वह जल्दी से बोली।

"जी हाँ !" राजकुमार ने बेहद अख़्लाक़ से कहा, "बड़ी दिक़्क़त होती है। हैरत की बात है कि फ़्रांस का साहिल आपसे सिर्फ़ तीस मील दूर है..."

"दुरुस्त है...बिलकुल दुरुस्त !" ख़ातून ने बात टालने की कोशिश की। "हैरत की बात तो है।"

"अच्छा, तो मिस्टर..." महाराज कुमार ने बहरहाल बात जारी रखी। "दूसरे दिन फिर यही हरकत हुई। अब के कोई दूसरे साहिब थे। मैं भी ढिठाई से सामने देखता हुआ पास से गुज़र गया। लेकिन आगे निकलने पर मैं एक नज़र पीछे मुड़कर देखने से बाज़ न रह सका। क्या देखता हूँ कि एक ख़ातून बड़ी बेख़बरी और ला-तअल्लुक़ी से मेरे पीछे-पीछे चली आ रही है। उसके बाद मैं पेरिस का आदी हो गया।"

चीफ़ कमिश्नर हौले से मुस्कराए। सेक्रेटरी के पास जो नौजवान अंग्रेज़ बैठा था, आगे झुककर बोला, "भई, पेरिस की औरतें हिन्दोस्तानी औरतों की तरह थोड़ा होती हैं।"

"हाँ जी !" महाराज कुमार ने सोचते हुए कहा, "बड़ी मेहनती औरतें होती हैं !"

इस पर ज़बरदस्त क़हक़हा पड़ा। सब जी खोलकर हँसे। चीफ़ कमिश्नर मुस्कराए और अपने बेहद चौड़े माथे पर हाथ फेरा। महाराज कुमार फिर से पत्ते तक़सीम करने लगे। सिर्फ़ वही एक शख़्स थे, जो अंग्रेज़ों के साथ बेतकल्लुफ़ी से बातें कर रहे थे।

आगे दो बड़ी-बड़ी पगड़ियों और धोतियोंवाले हिन्दू ताजिर[1] बैठे तिजारत की बातें कर रहे थे। मजमा[2] के ऊपर से नईम ने दूसरी तरफ़ देखा। तीन अंग्रेज़ों को क़िस्सा सुनानेवाला अंग्रेज़ अब उठकर उन कुर्सियों के आगे इस तरह फिर रहा था, जैसे जंगली जानवर पिंजरे में चक्कर लगाता है और उसी इन्हिमाक[3] से बोल रहा था। फाटक के अन्दर जो कारें खड़ी थीं, उनको देखने के लिए चन्द बच्चे और निचले तबक़े के लोग सड़क पर जमा हो गए थे। चीफ़ कमिश्नर के हमराह आए हुए सिपाही उन्हें बेंत मार-मार कर भगा रहे थे, लेकिन वे एक जगह से हटकर दूसरी जगह जा खड़े होते। मई के शफ़्फ़ाफ़ आसमान पर अब मुकम्मल अँधेरा था, और सितारे थे। रात गरम थी और दरख़्तों में रंगीन बल्ब जल रहे थे। अगले सोफ़े पर उसे अयाज़ बेग दिखाई दिए, जो डॉक्टर एनी बेसेन्ट के साथ बातें कर रहे थे। उनकी गुफ़्तगू में एक और शख़्स, बहुत साफ़ रंगत और सियाह बालोंवाला भी शामिल था। नईम अपने चचा के पास ख़ाली जगह पर बैठ गया।

"लेकिन मिस्टर बेग, इस बात पर मैं मैडम ब्ल्यूटसकी से मुत्तफ़िक़[4] नहीं हूँ।" एनी बेसेन्ट कह रही थीं। "वह कहती हैं कि सितारों की दुनिया में जो वुजूद[5] हैं, वे महज़ रूहें[6] हैं और यह कि वे माद्दी[7] नहीं हैं, और वह उन्हें माबादत्तबीआती[8] तौर पर साबित करना चाहती हैं। मैं कहती हूँ कि वे बाक़ायदा तौर पर अजसाम[9] हैं और माद्दी हैं और तबीआती[10] तौर पर इसका सुबूत पेश किया जा सकता है, और यह कि तबीआत[11] के इतलाक़[12] से 'थिऑसॉफ़ी' की थ्योरी पर कोई असर नहीं पड़ता !"

"लेकिन इस बात का जवाब पिछली अप्रैल में मैंने आपको ख़त में भी दिया था कि अभी वह वक़्त नहीं आया कि 'थिऑसॉफ़ी' पर साइंस को सादिर[13] किया जा सके।" अयाज़ बेग बोले।

"साइंस के क़ानून को 'सादिर' करने का सवाल ही पैदा नहीं होता," एनी बेसेन्ट ने अपने दिलकश लहजे में कहना शुरू किया, "सादिर करना और बात है और..."

नईम ने उकताकर सुनना छोड़ दिया। उसकी समझ में इस गुफ़्तगू का एक लफ़्ज़ न आया था, लेकिन वह मिसेज़ बेसेन्ट पर से नज़रें न हटा सका। उसके सिर पर बर्फ़ ऐसे सफ़ेद बालों की

---

1. व्यापारी, 2. भीड़, सभा, 3. एकाग्रता, 4. सहमत, 5. अस्तित्व, 6. आत्माएँ, 7. भौतिक, 8. पराभौतिक, 9. भौतिक तत्त्व, 10. भौतिक रूप से, 11. भौतिकी, 12. चरितार्थ, 13. लागू।

टोपी-सी बनी हुई थी और उसकी आवाज़, नईम ने सोचा, शायद दुनिया की ख़ूबसूरततरीन आवाज़ थी। अपनी उम्र के बावजूद वह बड़ी पुर-कशिश औरत थी।

दिल में वह सोचे बैठा था। अज़रा के जाने के बाद किसी ने उससे बात न की थी। उस लड़की के साथ मुख़्तसर मुलाक़ात और उसके जारिहाना अन्दाज़ से वह झल्ला गया था। आहिस्ता-आहिस्ता उसके दिल पर लड़कपन की उदासी उतर आई और इर्द-गिर्द बातें करते हुए और बातें सुनते हुए तमाम आदमियों को वह ख़ामोश रक़ाबत[1] के एहसास के साथ देखने लगा। दाईं तरफ़ नवाब साहिब, उनकी साथी अधेड़ उम्र ख़ूबसूरत औरत, दो अंग्रेज़ और एक हिन्दोस्तानी छोटे-से दाइरे में बैठे थे। हिन्दोस्तानी मुतवातिर बातें कर रहा था और उसके साथी दिलचस्पी से सुन रहे थे। जब वह आया, तो लँगड़ाकर चल रहा था और सब लोग बड़े तपाक से उसे मिले थे। चीफ़ कमिश्नर और महाराज कुमार के बाद उसकी कार सब कारों से ऊँची और चमकदार थी, और उसके पहियों के तार बिजली की रौशनी में चमक रहे थे। उस वक़्त उसकी टाँग, जो ख़राब थी, बिलकुल सीधी, अकड़ी हुई कुर्सी पर से नीचे घास तक आ रही थी, लेकिन उसकी बातों के हल्ले में कोई उसकी टाँग से दिलचस्पी न ले रहा था। उसके चेहरे से ज़हानत टपकती थी। नवाब साहिब के ख़ास मुलाज़िम ने एक राइफ़ल और एक बड़ी-सी पिस्तौल, जिसके पीछे लकड़ी का दस्ता लगा था, लाकर उसे पकड़ाई और वह तारीफ़ी नज़रों से देखता हुआ कुछ कहने लगा।

नईम ने जब दोबारा एनी बेसेन्ट की तरफ़ देखा, तो वह कह रही थी : "मैं भी गोखले से मिलना चाहती हूँ। बहुत कमज़ोर दिखाई दे रहे हैं" फिर वह, अयाज़ बेग और सियाह बालोंवाला शख़्स उठकर लॉन पार करने लगे। नईम भी उनके पीछे-पीछे हो लिया। जब वह लँगड़े बातूनी शख़्स के क़रीब से गुज़रा, तो उसने सुना, वह कह रहा था, "उफ़्फ़ोह ! ये जर्मन, कमबख़्त ऐसी मशीन बनाते हैं ! अब देखिए, इस सारी पिस्तौल में आपको एक भी कील (rivet) नज़र न आएगी। सारा वेल्डिंग का काम है। यह असल मर्द का खेल है। पार-साल शेर के शिकार को चीफ़ कमिश्नर के साथ जब मैं बंगाल गया..."

नईम गुज़र गया। बातों का शोर बहुत ज़्यादा था। जब वह दूसरी तरफ़ पहुँचा, तो उसके साथी झुक-झुककर गोखले से मिल चुके थे और ख़ैरियत पूछ रहे थे। वह सोफ़े के पीछे जाकर अँधेरे में खड़ा हो गया। गोखले आनेवालों को जगह देने की ख़ातिर खिसककर सोफ़े के कोने पर चले गए, जिससे उनका चेहरा अचानक रौशनी में आ गया।

"हम यही बात कर रहे थे। मैं इनसे कह रही थी कि मिस्टर गोखले की "मजलिसे-ख़ुद्दामे हिन्द" (Servants of India Society) ख़ालिस थिऑसॉफ़िकल उसूलों पर बनाई गई है।" एनी बेसेन्ट ने कहा।

"लेकिन इन्हें सिर्फ़ लफ़्ज़ "हिन्द" पर एतिराज़ है, यानी "ख़ुद्दामे इनसानीयत"[2] क्यों नहीं ?" अयाज़ बेग बोले।

"या ख़ुद्दामे-थिऑसॉफ़ी !" सियाह बालोंवाले शख़्स ने मुस्कराकर कहा। उसकी बात को सुनी-अनसुनी करके एनी बेसेन्ट फिर बोलीं : "इससे, आप मानेंगे कि तहरीक महदूद[3] हो जाती है !"

गोखले सँभलकर बैठे और अपने बूढ़े हाथों में छड़ी को फिराने लगे।

"थिऑसॉफ़ी..." उन्होंने धीमे लहजे में बात शुरू की। फिर चश्मा उतारकर साफ़ किया, और दोबारा लगा लिया। "थिऑसॉफ़ी, मिसेज़ बेसेन्ट, न साइंस है, न सियासत। महज़ फ़लसफ़ा है। सियासत चन्द माद्दी फ़वाइद[4] का नाम है, जैसे बेहतर ख़ुराक, बेहतर लिबास, बेहतर रिहाइश, इन्हें हासिल करने का तरीक़ा, और थिऑसॉफ़ी, या किसी भी ग़ैर-माद्दी या ग़ैर-अमली[5] फ़लसफ़े पर यक़ीन करके हम ये चीज़ें हासिल नहीं कर सकते। माद्दे[6] का एक हज्म[7] होता है और वह एक

1. ईर्ष्या, 2. मानवता के सेवक, 3. आन्दोलन सीमित, 4. भौतिक लाभ, 5. अव्यावहारिक, 6. पदार्थ, 7. स्थूलता।

ख़ास जगह घेरता है। वही मादुदा उससे ज़्यादा रक़बे की जगह नहीं घेर सकता, चुनाँचे महदूद है। हम मादुदे या सियासत को ग़ैर-महदूद नहीं कर सकते। "ख़ुद्दामे हिन्द" के उसूल और तरीक़ाकार हालाँकि ख़ालिस मादुदी तो नहीं, और उन्हें किसी हद तक रूहानी[1] कहा जा सकता है, क्योंकि जो लोग मजलिस में शामिल हैं, उन्हें अपने हर आरामो-आसाइश को तर्क[2] कर देना पड़ता है, लेकिन वह काम करते हैं दूसरे लोगों की बेहतरी की ख़ातिर, और ये दूसरे लोग हैं हिन्दोस्तान के लोग। यही "हिन्दोस्तान" का लफ़्ज़ मजलिस को एक मादुदी शक्ल दे देता है।" एनी बेसेन्ट कसमसाई, मगर जब बोलीं, तो उनकी आवाज़ कम दिलकश न थी, "लेकिन मैं नहीं समझती कि आप वसीअ-तर मक़सद और इस्तिलाहों[3] से क्यों घबराते हैं। काम जो भी हो, एक बड़ा नाम काम और मक़सद को वुसअत[4] बख़्शता है।"

"लेकिन यह अज़मत[5] और वुसअत तो आप समझती हैं, या नवाब साहिब समझते हैं या कर्नल ओल्कॉट समझ सकते हैं। मेरे मुल्क के ये छोटे-छोटे लोग न ज़हीन हैं, न रूहानी बुज़ुर्ग। उनसे अगर कहा जाए कि दुनिया की बेहतरी के लिए आओ, तो वे अपना गन्दुम बोना जारी रखेंगे, लेकिन अगर कहा जाए कि हिन्द के लिए, अपने फ़लाँ भाई और फ़लाँ बहन के लिए आओ, तो देखिए, मिसेज़ बेसेन्ट..." गोखले ने एक हाथ से चश्मा उतारा और दूसरे हाथ की उँगली हिलाते हुए बोले, "ये लोग जो खेतों और सड़कों पर और गलियों में काम करते हैं, हालाँकि ज़हीन और रूहानी नहीं, मगर अक़्लमन्द ज़रूर हैं। वे अपने गाँव, अपनी ज़मीनों, अपने माँ-बाप और बच्चों के नाम पर ज़रूर आएँगे, और इसीलिए किसी सियासी तहरीक[6] को ग़ैर-महदूद नहीं किया जा सकता !"

उस वक़्त नवाब साहिब, जो क़रीब से गुज़र रहे थे, चौंककर रुके, "ख़ूब...हर तरफ़ सियासी तहरीकात की बात हो रही है। आप बड़े कमज़ोर नज़र आ रहे हैं, मिस्टर गोखले...आपकी ज़ियाबीतुस[7] कैसी है ?"

"ख़राब ही जा रही है। सेहत या मौत का ग़म तो नहीं है। ग़म है तो महब्बत का !"

"महब्बत का ?" सियाह बालोंवाला आदमी मुस्कराया। एनी बेसेन्ट ख़ूबसूरती से चौंकीं।

"जबसे पैदा हुआ, मीठे से महब्बत करता रहा। अब इधर दस बरस से मीठा हलक़ से नहीं उतरा," वे हँसे।

"मगर यही क्रिसमस पर जब बाँकीपुर आप आए, तो आप सेहत में थे !"

"आप कांग्रेस के इजलास[8] पर बाँकीपुर में थे ?" एनी बेसेन्ट ने बात काटकर कहा।

"हाँ, हाँ। मैं था, गोखले थे, महाराज कुमार थे, मिस्टर सिन्हा थे।" नवाब साहिब ने लँगड़े बातूनी की तरफ़ इशारा करके बताया।

"ओह ! मैं उस वक़्त हिन्दोस्तान में नहीं थी। इजलास कैसा रहा ?"

"अच्छा-ख़ासा रहा। बहुत लोग आए !"

"बंगाल की तक़सीम के मुतअल्लिक़ कोई रेज़ल्यूशन हुआ ?"

"अरर..." नवाब साहिब ने दिमाग़ पर ज़ोर डालते हुए सामने देखा, जहाँ नईम खड़ा था। वह खिसककर अँधेरे में हो गया, "अरर...क्यों मिस्टर गोखले ?"

गोखले हँसे। "बंगाल तक़सीम हो या मुत्तहद[9] रहे, आपका रायल बंगाल टाइगर का शिकार जारी रहेगा !"

"मेरी याददाश्त कुछ ठीक नहीं रही कई दिनों से," वह खिसियाने होकर बोले और इज़ाज़त लेकर चले गए।

"आपका बाँकीपुर के इजलास के बारे में क्या ख़याल है ?" एनी बेसेन्ट ने गोखले से पूछा।

1. आध्यात्मिक 2. त्यागना, 3. परिभाषाओं, 4. विशालता, 5. महानता, 6. राजनैतिक आन्दोलन, 7. मधुमेह, 8. अधिवेशन, 9. संयुक्त।

"ख़याल ?" वह तन्ज़[1] से मुस्कराए, "बस ऐसी ही एक पार्टी थी, जैसी आज है। बड़े शानदार लोग थे। ख़ूबसूरत और अप-टू-डेट ! ख़ूबसूरत बातें थीं। ख़ुशगप्पियाँ थीं !"

"यह तो ज़्यादती है, मिस्टर गोखले ! मैं भी प्रेस की तरफ़ से वहीं था। अच्छी-ख़ासी कांफ्रेंस थी।" सियाह बालोंवाला आदमी शुस्ता[2] अंग्रेज़ी में बोला।

पीछे खड़ा नईम अपनी टोपी को बुरी तरह हाथों में मरोड़ने लगा। गोखले एकदम संजीदा हो गए। "आपके अख़बार का कोई नुमाइन्दा जुनूबी[3] अफ़्रीका में भी था ?"

"ओह ! हाँ, ज़रूर था।" अख़बारनवीस ने रुककर बालों पर हाथ फेरा। "आप जुनूबी अफ़्रीका से आ रहे हैं, मैं जानता हूँ। मगर वहाँ का मुक़ाबला आप हिन्दोस्तान से नहीं कर सकते। यहाँ तो...सियासत, यानी पढ़े-लिखे लोगों के हाथ में है !"

"पढ़े-लिखे लोगों से आपकी मुराद ?"

"यही कि...तालीमयाफ़्ता हैं, तारीख़ से वाक़िफ़ हैं और..."

अचानक नईम आगे बढ़ा, जिससे उसका चेहरा, जो सुर्ख़ हो रहा था, रौशनी में आ गया। ज़रा-सा झुककर नौ-उम्री के जोशीले लहजे में वह बोला : "और यह भी कि सारी कार्रवाई अंग्रेज़ी ज़बान में हुई !"

सबने एक साथ मुड़कर देखा। नईम के माथे पर पसीना था। उसने टोपी के फुन्दने को इस ज़ोर से खींचा कि वह उसके हाथ में आ गया। अयाज़ बेग का रँग सफ़ेद पड़ गया।

"यह कोई बुरी बात नहीं। इसके अलावा कोई भी बड़ी ज़बान सीखना बुरी बात नहीं, बल्कि अच्छी तालीम है।" अख़बारनवीस अपने आपको सँभालकर बोला।

"इसीलिए कम पढ़े-लिखे लोग क़ैद कर दिए जाते हैं। और आप क्या उम्मीद रखते हैं। तिलक जेल में है क्या ?"

अख़बारनवीस अंग्रेज़ का चेहरा एकदम ग़ुस्से से सुर्ख़ हो गया। उसके माथे से नफ़रत टपकने लगी और वह बार-बार मुट्ठियों को खोलने और बन्द करने लगा।

"तो आप उसे सियासतदाँ कहते हैं ? वह..." फिर उसने एक शरीफ़ अंग्रेज़ की तर्बियत के मुताबिक़, बहुत कोशिश से अपने आपको क़ाबू में किया और ख़ुश्क लहजे में बोला : "उसकी सियासत के मुतअल्लिक़ तो चीफ़ कमिश्नर आपको बता सकते हैं। एक अख़बारनवीस की हैसियत से मैं कहता हूँ कि वह अच्छा अख़बारनवीस भी नहीं।"

अयाज़ बेग बेचैनी की हालत में दोनों पाँव हिला रहे थे। अनार के पत्तों में छुपा हुआ क़ुमक़ुमा हवा के झोंके के साथ ज़ोर से झूला और साया उनके पाँव पर डोलने लगा। उसी वक़्त सब लोग खाने के लिए उठना शुरू हुए। गोखले एनी बेसेन्ट से कह रहे थे : "लेकिन चन्द नौजवानों से मैं ज़रूर मुतस्सिर[4] हुआ। मोती लाल नेहरू का लड़का भी आया था। अभी कैम्ब्रिज से लौटा है।"

अख़बारनवीस अंग्रेज़ देर तक खड़ा, चेहरे से हर असर को दूर करने के लिए, माथे पर रूमाल फेरता रहा। लँगड़ा आदमी बड़ी तनदिही[5] से बातें करता और हँसता हुआ क़रीब से गुज़रा। नईम ने देर तक जेबों में रूमाल तलाश करने के बाद टोपी के साथ माथे का पसीना पोंछा और भीड़ में शामिल हो गया।

खाने की मेज़ों की दो लम्बी क़तारें थीं, जिन पर सब मेहमान आसानी से बैठ गए। सब्ज़े के उस टुकड़े पर रंगीन क़ुमक़ुमों का जाल बिछा था। रकाबियों में भुने हुए सालिम मुर्ग़ और तीतर लकड़ी की टाँगों पर खड़े थे। पुलाव अभी नहीं आया था, पर ख़ुशबू आ रही थी। दस से ज़्यादा क़िस्म के खाने मेज़ पर आ चुके थे। खानों के दरमियान चीनी की छोटी-छोटी बेदाग़ प्लेटों में सियाह चर्बी की भद्दी मोमबत्तियाँ खड़ी थीं...ये मोमबत्तियाँ दरमियानी उँगली के बराबर

1. व्यंग्य, 2. शुद्ध, 3. दक्षिणी, 4. प्रभावित, 5. तल्लीनता।

मोटी और ख़ासी बदशक्ल थीं, और उन्हें रौशन नहीं किया गया था।

एक मेज़ के सिरे पर दो बड़ी कुर्सियाँ पड़ी थीं, जिन पर नवाब साहिब और एक दूसरे बुज़ुर्ग आकर बैठ गए। नवाब साहिब ने शाम के खाने का लिबास उतारकर अब सुर्ख़ चमकीले रेशम का लिबास पहन रखा था। यह कुछ इस तरह का लिबास था, जैसा मुग़ल शहंशाह या उनके दरबारी पहना करते थे, और आजकल सर्कस के मसख़रे पहनते हैं। कपड़ा ऐसा था, जो औरतों के लिए ही होता है। एक लम्बा-सा तंग ब्लाउज़ था, जिस पर गले तक सफ़ेद चमकदार बटन लगे थे। आस्तीन चुस्त थी। कमर से नीचे ब्लाउज़ का घेरा बड़ा था, और नीचे उसी कपड़े की भारी-सी तंग पायंचोंवाली शलवार थी। जूता भी उसी कपड़े का और मोज़े जैसा था। कमर के साथ सुनहरी मियानवाली तलवार लटक रही थी और ब्लाउज़ की पट्टी भी सुनहरी थी। उनके ख़ास मुलाज़िम ने एक बड़ी-सी सुर्ख़ टोपी, जिस पर सुनहरा काम किया हुआ था, लाकर उनके सामने मेज़ पर रख दी। क़रीब ही एक प्लेट में काली चर्बी की सबसे बड़ी मोमबत्ती रखी थी। साथवाले बुज़ुर्ग ने आम हिन्दोस्तानी मुसलमानों का लिबास, शेरवानी और पाजामा पहन रखा था। उनके साथ दोनों तरफ़ परवेज़ और अज़रा बैठे थे। आगे वह अधेड़ उम्र औरत थी, जो अब तेज़ रौशनी में ख़ासी बूढ़ी दिखाई दे रही थी। आगे चीफ़ कमिश्नर, महाराज कुमार, एनी बेसेन्ट, गोखले, और तक़रीबन सब अंग्रेज़ मेहमान थे। मेज़ के आख़िर में चन्द हिन्दोस्तानी थे, जिनमें नईम भी बैठ गया।

दूसरी मेज़ पर सभी हिन्दोस्तानी थे, जिनमें अयाज़ बेग भी थे। मुलाज़मीन बेदाग़ लिबास पहने सरगर्मी से आ-जा रहे थे। सारे ग़ैर-मुल्की नवाब साहिब का अजीबोग़रीब[1] लिबास देखकर चेहरों पर संजीदगी तारी[2] किए हुए थे।

जब सब लोग बैठ चुके, तो मेज़ के सिरेवाले बुज़ुर्ग अपनी जगह से उठे। सब ख़ामोश हो गए। हवा पेड़ों में थम गई।

कुछ पल तक ख़ामोश खड़े रहने के बाद उन्होंने रूमाल निकालकर माथे का पसीना ख़ुश्क किया और बोले : "आज...आज यानी 13 मई, 1913 को रौशन आग़ा को फ़ौत हुए तीन माह मुकम्मल होते हैं। मैं ख़ानदानी रवायात के मुताबिक़, और उस हैसियत की वजह से जो मुझे सौंपी गई है, नवाब ग़ुलाम मुहीउद्दीन ऑफ़ रौशनपुर को रौशन आग़ा के लक़ब[3] का सही हक़दार होने का एलान करता हूँ।"

तक़रीर ख़त्म करके उन्होंने जल्दी से सुर्ख़ टोपी उठाकर नवाब साहिब के सिर पर रख दी, जिसने आँखों तक उनका चेहरा छुपा लिया। परवेज़ और अज़रा उठकर अपने बाप की तरफ़ बढ़े, लेकिन इससे पहले दूसरे बुज़ुर्ग ने जलती हुई तीली उनकी तरफ़ बढ़ाई, जिसकी मदद से उन्होंने अपने आगे की सियाह मोमबत्ती रौशन की। "रौशन आग़ा" कहकर उनके दोनों बच्चे उनसे लिपट गए।

तालियों और मुबारकबादों का शोर बरपा हो गया। ग़ैर-मुल्की जो अब तक ज़ब्त किए बैठे थे, रौशन आग़ा की हैअते-कज़ाई[4] पर अब दिल खोलकर हँस रहे थे। रौशन आग़ा अपने दोनों बच्चों को थामे झुक-झुककर मुबारकबाद वुसूल कर रहे थे। एक दफ़ा झुकते हुए उनकी अनोखी टोपी ठोड़ी तक लटक आई। अज़रा ने जल्दी से उसे फिर से उनकी आँखों पर जमाया और एहतियात से झुकने की तम्बीह[5] की। हर तरफ़ क़हक़हों, तालियों और "रौशन आग़ा...रौशन आग़ा" की चीख़ों का शोर था। मुअद्दब[6] बैरे हाथ पीछे बाँधे शरमाकर हँस रहे थे। क़ुमक़ुमे एक-एक करके बुझने शुरू हुए, यहाँ तक कि सिर्फ़ रौशन आग़ा की मोमबत्ती रौशन रह गई। चारों तरफ़ अँधेरा हो गया। सबसे पहले परवेज़ और अज़रा ने अपने-अपने आगे की मोमबत्तियाँ ले जाकर उससे जलाईं और वापस लाकर रख दीं। फिर ख़ूबसूरत औरत और दूसरे बुज़ुर्ग ने ऐसा ही किया। उसके बाद चीफ़ कमिश्नर

1. विचित्र, 2. अच्छादित, 3. उपाधि, 4. ऐसी धज जिसमें कोई हँसी की बात हो, 5. चेतावनी, 6. शिष्ट।

और महाराज कुमार अपनी-अपनी मोमबत्तियाँ उठाकर ले गए और बड़ी मोमबत्ती से रौशन करके वापस ले आए। फिर एनी बेसेन्ट और गोखले उठे। फिर अख़बारनवीस, फिर सब लोग उठ खड़े हुए और मोमबत्ती के गिर्द धाँधली पड़ गई। बाज़ लोग मोमबत्तियाँ जलाने गए और वहीं खड़े होकर गप्पें हाँकने लगे। अख़बारनवीस एक बुड्ढे अंग्रेज़ को, जिसने उससे शिकायत की थी कि सारी कार्रवाई को पहले से छापकर सब मेहमानों में बाँट दिया जाता, तो वह इस गड़बड़ से बच जाते, समझा रहा था कि यह सारी तक़रीब एक ख़ानदानी राज़ है और इसे प्रिन्ट में लाने की हरगिज़ इजाज़त नहीं दी जाती। बुड्ढा संजीदगी और उदासी से मोमबत्ती को तके जा रहा था। हर तरफ़ से क़हक़हों की आवाज़ें आ रही थीं।

फिर मोमबत्तियों की रौशनी में खाना शुरू हुआ और ख़ामोशी से जारी रहा। अब चाँद मई के आसमान पर रौशन और गर्म था, और हवा पेड़ों में थम चुकी थी। मद्धिम चाँदनी में दिल्ली की आधी से ज़्यादा आबादी सो चुकी थी, और रौशन महल के बाग़ में मुक़द्दस[1] चर्बी की रौशनी में ख़ामोशी से खाना खाया जा रहा था। सफ़ेदे के ऊँचे पेड़ चुप खड़े थे। मेज़ों से परे एक फ़व्वारा अँधेरे में ख़ामोशी से पानी उछाल रहा था। नईम ने खाने पर से सिर उठाकर देखा। सारी फ़िज़ा जादुई थी–जादू...जिसमें सिर्फ़ ख़ुशबूदार खाना और जबड़े हिलाते हुए लोग हक़ीक़ी[2] थे। सारी दुनिया, सारे लोगों का सिर्फ़ एक काम था–खाना...लँगड़े बातूनी की मुहज़्ज़ब[3]... ख़ुशगवार आवाज़ अब भी आ रही थी।

"भूक...चूँकि इन्तिहाई वहशतनाक जज़्बा[4] है, चुनाँचे खाना इनसान का शरीफ़-तरीन फ़ेल[5] है। वह कह रहा था। नईम के दाएँ बाज़ू पर जो शख़्स बैठा था, प्लेट में चावल निकालते हुए उसकी तरफ़ झुका। मैंने आपको बात करते सुना, जब आप तिलक के मुतअल्लिक़ कुछ कह रहे थे !"

उसने देखा, यह वही क़िस्सा-गो अंग्रेज़ था, जो कुछ देर पहले अपने साथियों के सामने जंगली जानवर की तरह चक्कर लगा रहा था। वह फिर बोला : "क्या आपको पता है कि तिलक ने मुसलमानों के ख़िलाफ़ क्या कुछ किया ? वह ज़बीहा-ए-गाव[6] के ख़िलाफ़ सोसाइटी, और मस्जिद के सामने बाजा बजाने पर इसरार...और वह सब.."

कोई जवाब न पाकर कुछ देर बाद उसने दोबारा बात करने की कोशिश की : "इस मोमबत्ती को देख रहे हैं। सुना है, यह चर्बी पिछले सौ साल से इस ख़ानदान के पास है। मैं सोचता हूँ, जब यह ख़त्म हो जाएगी, फिर क्या होगा ?"

नईम ने ख़ुश होकर उसे देखा। "आपको कैसे पता चला, मैं मुसलमान हूँ ?" उसने आहिस्ता से कहा।

"ओह !" जंगली जानवर बुरा-सा मुँह बनाकर बोला : "आप आज शाम सुर्ख़ टोपी पहने हुए थे !" उसके बाद उसने कोई बात न की।

खाना काफ़ी देर तक जारी रहा। फिर लोग उठ-उठकर जाने लगे। दूसरे लॉन में जब वे आराम से टाँगें फैलाकर बैठ गए, तो बैरे कॉफ़ी के ख़ूबसूरत प्यालों में क़हवा पेश करने लगे। जब खाने की मेज़ों पर वे अकेले रह गए, तो रौशन आग़ा उठे। देर तक वहीं खड़े वे बड़ी मोमबत्ती को टकटकी बाँधे देखते रहे। अपने अनोखे लिबास में वे बा-रोब[7] भी और मसख़रे भी दिखाई दे रहे थे। फिर उन्होंने फूँक मारकर मोमबत्ती को बुझा दिया।

"रौशन आग़ा !" उनके ख़ास मुलाज़िम ने धीरे से कहा और सारे दाँत निकालकर हँसने लगा। उन्होंने एक पल ग़ौर से उसे देखा। फिर अपनी छोटी उँगली से चमकदार अँगूठी निकालकर उसकी तरफ़ उछाली जिसे ज़मीन पर गिरने से बचाने के लिए वह दीवानावार हवा में हाथ चलाने लगा।

जब वे बजरी की सड़क पार करके दूसरी तरफ़ जा रहे थे, तो कोनेवाले पेड़ के नीचे उन्होंने

1. पवित्र, 2. वास्तविक, 3. सभ्य, 4. भीषण भावना, 5. सबसे अच्छा काम, 6. गौ हत्या, 7. तेजस्वी।

नईम और अज़रा को देखा, और उनके ख़ुशी से दमकते चेहरे पर फ़िक्र की एक परछाईं गुज़र गई।

नईम क़हवे का प्याला पकड़े-पकड़े एक अजीबोग़रीब पेड़ के पास जा निकला। वह ठिगना-सा फैला हुआ पेड़ था और उसकी मोटी-मोटी शाख़ें नईम की छाती के बराबर आती थीं। उसका जी चाहा कि छलाँग लगाकर ऊपर चढ़ जाए। क़हवे का प्याला शाख़ पर रखकर उसने ऊपर देखा। शाख़ों में सुर्ख़ रंग का कुमक़ुमा जल रहा था।

"आप अकेले-अकेले क्यों फिर रहे हैं ?" अज़रा ने क़रीब आकर पूछा। जवाब देने के बजाय उसने क़हवे का प्याला उठाया और गड़बड़ा के एक जलता-जलता घूँट भरा।

"यह पेड़ हमारी महबूब जगह है। हम छुट्टी के रोज़ सारा दिन यहाँ चढ़े रहते हैं।" वह शाख़ पर हाथ फेरने लगी। मद्धिम सुर्ख़ रौशनी में उसकी आँखें और बाल भूरे और रंग गन्दुमी था। उसका बाज़ू, जो शाख़ पर रखा था, गोल और सेहतमन्द था और तंग आस्तीन में सख़्ती से फँसा हुआ था। बेइख़्तियार नईम का जी चाहा कि उस उभरी हुई जगह को छुए, जहाँ से आस्तीन ने जिल्द को दबा रखा था। वह शाख़ पर हाथ फेरने लगा।

"आपकी कॉफ़ी गर्म है ?"

"कुछ ज़्यादा ही गर्म है।" नईम ने कहा।

"ओह !" वह उसी तरह सिर पीछे फेंककर हँसी, जैसे शाम के वक़्त बरामदे में हँस रही थी। उसकी गर्दन चौड़ी हो गई, और नरख़रा तेज़ी से काँपने लगा। वह बेहद जानदार हँसी थी। "आपका मुँह जल गया ?" नईम बुरा-सा मुँह बनाकर हँसा।

"यह बहुत अच्छा हुआ।" वह उसी जारिहाना अन्दाज़ में ख़ुशी से बोली और दोनों हाथ ऊपर बाँधकर शाख़ के साथ झूल गई।

"अरर..." एकदम वह झेंप गई। "मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए ! रौशन आग़ा नाराज़ होंगे। वे हमेशा मुझे इस पर चढ़ने से मना करते हैं। आप ख़फ़ा तो नहीं हुए। मैंने आपसे मज़ाक़ किया है !" वह क़हवा पीती हुई बोली।

"नहीं...लेकिन आप मेरा क़हवा पी रही हैं !"

"अरे...ओह..." वह सादगी से हँस पड़ी। "लाइए, आपके लिए और ला दूँ !"

"मैं यही पियूँगा !"

"यही ?" उसने आँखें फैलाकर पूछा।

"हाँ...यही !"

हैरत के मारे उसकी आँखें और ज़्यादा फैल गईं। फिर उसने आहिस्ता से कहा : "प्याले बिलकुल एक जैसे हैं !"

वह ख़ामोशी से खड़े क़हवा पीते रहे। सामने से बातों का शोर आहिस्ता-आहिस्ता उठ रहा था। हवा ठंडी हो गई थी। अज़रा के बाल पीछे की तरफ़ उड़ने लगे। नईम ख़ामोश खड़ा उसके बाज़ू और गर्दन को देखता रहा। क़हवा पीती हुई वह अपने मोटे सुर्ख़ होंठों पर ज़ुबान फेर रही थी।

"मैं इस सारी तक़रीब[1] का मतलब नहीं समझा...यह जो आज हुई।" नईम ने कहा।

"आपको किसी ने नहीं बताया ? अरर...यह दरअसल इस तरह है। रौशनपुर का मालिक रौशन आग़ा कहलाता है। यह तक़रीब इसी सिलसिले में थी। आज से बाबा रौशन आग़ा कहलाएँगे। इससे पहले बड़े अब्बा थे !"

"बेहद दिलचस्प तक़रीब थी !"

"यूँ यह ख़ालिस ख़ानदानी तक़रीब है। बाबा का लिबास भी ख़ानदानी है। सिर्फ़ आज के दिन पहनने के लिए है।" वह एहतिराम[2] से बोली।

1. जश्न, समारोह, 2. आदर-सत्कार।

"जिन्होंने तक़रीर की, वे कौन हैं ?"

"हमारे ख़ानदान के सबसे उम्र-रसीदा बुज़ुर्ग हैं !"

"और वे ख़ातून[1] ?"

"मेरी ख़ाला हैं। यहीं रहती हैं !"

"आपकी वालिदा ?"

"मम्मी परदा करती हैं।" उसने प्याला ख़ाली करके शाख़ पर रखते हुए अचानक नईम से पूछा : "आप अंग्रेज़ी लिबास पहनते हैं ?"

"हाँ !"

"इतवार को हम परवेज़ के बी.ए. करने की ख़ुशी में पार्टी कर रहे हैं। आप आएँगे ?"

"आ जाऊँगा !"

"ज़रूर याद रखिएगा। पाँच बजे शाम !"

"अच्छा !"

"ज़रूर !" उसने फिर कहा। नईम हँस दिया।

"शब-बख़ैर[2]।" वह सब्ज़े पर से गुज़र के रौशन आग़ा की तरफ़ चली गई। वह दूसरे कोने में ऊँची तिकोनी टोपी पहने बैठे सिर हिला रहे थे और बार-बार तलवार सँभालते जा रहे थे। नईम अज़रा को सब्ज़े पर चलते हुए देखता रहा। उस वक़्त वह उस बेफ़िक्र लड़की से बहुत मुख़्तलिफ़ थी, जो शाम के वक़्त अंग्रेज़ी लिबास पहने बरामदे में दौड़ रही थी। बड़ी शिद्दत से यह ख़्वाहिश नईम के दिल में पैदा हुई कि वह मुड़कर उसके पास चली आए और वह उसके होंठ, बाज़ुओं और गर्दन को क़रीब से देखे।

कुछ देर के बाद वह जाकर अयाज़ बेग के पास बैठ गया, जो लँगड़े बातूनी को किसी इमारत के तामीरी नक़ाइस[3] के बारे में बता रहे थे। उसे ख़ामोशी से अयाज़ बेग की बातें सुनते हुए पाकर नईम को दुख हुआ।

आधी रात के क़रीब मेहमान रुख़सत होना शुरू हुए। रौशन आग़ा को "शब-बख़ैर" कहकर जम्हाइयाँ लेते और डकारों को रोकते हुए वे अपनी-अपनी सवारियों में जाकर बैठने लगे। निचले तबक़े के चन्द लोग अभी तक शोर मचाकर रवाना होती हुई मोटरकारों को देखने के लिए बाहर खड़े थे।

जब नईम अयाज़ बेग के साथ आख़िर में "शब-बख़ैर" कहकर अपनी बहली के क़रीब आया, तो उसे नींद आ रही थी और ज़्यादा खा जाने से पेट भारी हो रहा था। सवार होने से पहले एक ताक़तवर ख़्वाहिश के तहत मुड़कर उसने सारे रौशन महल पर नज़र दौड़ाई। बाग़ में सिर्फ़ नौकर ख़ामोशी से फिर रहे थे, और बरामदा सुनसान पड़ा था। दरख़्तों में सुर्ख़ क़ुमक़ुमे ज़ोर-ज़ोर से झूल रहे थे। वह बेदिली से उचककर अयाज़ बेग के बराबर बैठ गया।

"अज़रा ने इतवार की शाम को दावत दी है चाय की।" उसने कहा।

जवाब के बजाय चन्द मच्छर उसके चेहरे से टकराए। उसने चचा की तरफ़ देखा। उनका खुला, सपाट, मामूली ख़द्दो-ख़ाल[4] का चेहरा था, जैसा आम काम करनेवाले लोगों का होता है। उस पर कोई गहराई न थी। उस पर हर तअस्सुर[5] साफ़ वाज़ेह[6] हो जाता था। वह चौंक उठा।

"तुम तक़रीर करने के लिए वहाँ नहीं गए थे।" अयाज़ बेग ने ग़ुर्राकर कहा, "तुम्हें पता है, तिलक का नाम लेना दहशतपसन्दी[7] में शुमार होता है। कोई और जगह होती, तो तुम्हें गिरिफ़्तार कर लिया जाता। रौशन महल की तक़रीब थी, इसलिए..." नईम बैठा सोचता रहा। फिर आहिस्ता से बोला, "मुझे अफ़सोस है, चचा ! वह हमारा सबका ऐसा हीरो है, वरना..."

---

1. महिला, 2. शुभ-रात्रि, 3. निर्माण के दोषों, 4. नयन-नक़्श, 5. प्रभाव, 6. स्पष्ट, 7. आतंकवाद।

थोड़ी देर तक दोनों ख़ामोश बैठे बहली के चलने के साथ हलकोरे खाते रहे। फिर अयाज़ बेग नर्म लहजे में बोले : "हमारा ख़ानदान इन्हीं बातों की वजह से तबाह हो चुका था। मैंने तुम्हें तालीम दिलवाई। सारी उम्मीदें...तुम मेरी सारी ज़िन्दगी हो। एक रोज़ तुम्हें पता चलेगा कि मैंने कितना दुख सहा..."

नईम को ख़याल हुआ कि वे रो रहे हैं। उसने कनखियों से देखा। उनकी ख़ुश्क, चमकती हुई आँखें देखकर उसको ख़ुशी हुई। बहली देर तक सुनसान सड़कों पर चलती रही।

3

जब नईम रौशन महल में दाख़िल हुआ, तो पार्टी शुरू हो चुकी थी। फाटक पर एक ऊँची-सी सियाह मोटर-गाड़ी खड़ी थी। क़रीब ही परवेज़ खड़ा उसके मालिक से बातें कर रहा था। नईम से उसका तआरुफ़[1] कराया गया। साहिबज़ादा वहीदुद्दीन कॉलेज में परवेज़ से दो साल सीनियर रहा था। महकमा-तालीम[2] में आला अफ़सर था। ये सब बातें उसे उसी तआरुफ़ के दौरान मालूम हुई। फिर मसरूफ़ियत से ऐप्रन के साथ हाथ पोंछती हुई एक अंग्रेज़ लड़की को ठहराकर नईम से तआरुफ़ कराया गया।

"मुआफ़ कीजिए। मेरे हाथ काले हैं। हमने ख़ुद ही चाय बनाने का फ़ैसला किया है।" उसने बेहद अख़्लाक़ से कहा और बजरी की सड़क को पार करके लॉन पर उतर गई। वहाँ बरगद के पुराने दरख़्त के नीचे हंगामा बरपा था। आज वहाँ कोई कुर्सी न थी, और न मेज़। दो-तीन स्टूल पड़े थे, जिन पर दो लड़कियाँ और एक लड़का उकड़ूँ बैठे बातें कर रहे थे। पास ही दो बच्चे सब्ज़े पर लेटे एक तस्वीरदार रिसाले के पन्ने उलट-पलट रहे थे। उनसे परे अज़रा एक बड़े-से स्टोव को जलाने में जुती हुई थी, और आठ-दस लड़के-लड़कियाँ उसे घेरे हिदायात दे रहे थे। सामने से दो लड़कियाँ चली आ रही थीं। एक के हाथ में चाय के बर्तनों से भरी हुई बेंत की टोकरी थी। दूसरी पानी की केतली उठाए हुए थी।

अंग्रेज़ लड़की स्टोव के क़रीब पहुँचकर घुटनों के बल सब्ज़े पर झुकी और हौले-से बोली : "वह तुम्हारा ख़ूबसूरत दोस्त आ रहा है।"

अज़रा ने सिर उठाकर देखा और देखती रही।

"लेकिन आज शरीफ़ आदमी लग रहा है!"

"हिश्त !" अज़रा ने कहा और उठ खड़ी हुई। एक पल की परीशानी जो उस पर छा गई थी, फ़ौरन ख़ुशी में बदल गई। "सलाम लैकुम।" उसने कहा और अपने तेल और कालिक लगे हाथों में नईम का हाथ पकड़कर काला कर दिया। क़हक़हों के दरमियान वह सुर्ख़ हो गया।

"लिडिया ने आज मशविरा दिया कि चाय ख़ुद ही बनाई जाए। अब मज़ा आ रहा है सबको। देखिए।" उसने स्टोव की तरफ़ इशारा किया, जिसके साथ अब आधे दर्जन लड़के-लड़कियाँ कुश्ती लड़ रहे थे। उन सबके चेहरे पसीने से भीगे हुए थे, और बेहद इनहिमाक[3] से वे उसे जलाने की कोशिश कर रहे थे।

अज़रा आज बेहद सेहतमन्द और चुस्त नज़र आ रही थी। चेहरा सुर्ख़ और आँखें चमकदार थी, हालाँकि हँसते हुए उसका मुँह बहुत फैल जाता था, लेकिन भरे हुए होंठों में अजीब कशिश थी और उसका वुजूद उड़ता हुआ मालूम होता था। नईम के सारे बदन में ख़ुशी की सनसनी दौड़ गई। केतली स्टोव पर रखकर वे बातें करने लगे।

"वहीद, अपनी नौकरी लगने की न तुमने हमें कोई पार्टी दी है, न कुछ..." खड़े पाजामे और

---

1. परिचय, 2. शिक्षा विभाग, 3. तल्लीनता।

कमीज़-दुपट्टेवाली एक लड़की ने कहा।

"हाँ, हाँ..." अंग्रेज़ लड़की बात काटकर चिल्लाई। "अब तुम्हें नौकरी मिल गई है। चलो, पार्टी दो हमें फ़ौरन। कंजूस टॉम !"

"इतनी पार्टियाँ तो खा चुकी हो, और अभी कंजूस टॉम हूँ !"

"पर रोज़गार मिलने की ख़ुशी में कोई नहीं हुई !"

बात को बीच में छोड़कर वे क़हक़हे लगाने लगे।

"वहीद, यह बताओ।" अज़रा बोली : "स्कूल में लड़कों को कैसे पढ़ाओगे ?" फिर क़हक़हा बुलन्द हुआ।

"अच्छा, भई ! ठहरो सब लोग !" परवेज़ बोला : "वह मिसेज़ मिलन की क्या बात है, वहीद ? तुम तो सिविल क्लब जाते हो ?"

"क्या ?"

"वह सुना है, कि मिलन साहिब को उसने मजबूर किया वापस जाने पर ! इसलिए वह इस्तीफ़ा देकर चले गए।"

"अरे, हाँ ! वह...पता नहीं क्या हुआ कि और...लेकिन यह दुरुस्त है कि उसी ने मिलन साहिब से इस्तीफ़ा दिलवाया।"

इस गुफ़्तगू से उकताकर लड़कियाँ वापस स्टोर की तरफ़ चली गईं। चन्द लड़के बरगद पर चढ़ने की मश्क़ करने लगे। जब वहाँ पर वहीद के साथ बस परवेज़ और नईम रह गए, तो वह आवाज़ नीची करके बोला : "यार, क़िस्सा यह था असल में कि वह जाने क्या समझने लगी थी ख़ुद को ! डिप्टी कमिश्नर की बीवी तो थी ही, और काफ़ी ख़ूबसूरत भी थी। और ऊपर से उस पिट्यल पार्टी ने सिर पर चढ़ा रखा था उसे कि घर पे सलाम करने को हाज़िर हो रहे हैं बारी-बारी, और ब्रिज खेल रही है, तो जनाब पार्टी की पार्टी इर्द-गिर्द घुटने टेके मदद को हाज़िर है, तो बस..."

"तो बस क्या ?"

"होना क्या था...अब हर कोई चुग़द राम थोड़ा ही होता है। वह मुझे हासिल न कर सकी, नवाबज़ादा आफ़ताब को हासिल न कर सकी, ए.एस.पी. को हासिल न कर सकी, तो दिल-बरदाश्ता[1] होकर ख़ाविन्द[2] से इस्तीफ़ा दिलवा दिया।" साहिबज़ादा वहीदुद्दीन ने फ़ातिहाना[3] नज़रों से चारों तरफ़ देखा। परवेज़ ने मरऊब[4] होकर संजीदगी से सिर हिलाया।

अज़रा बार-बार केतली का ढकना उठाकर देख रही थी। तीन-चार लड़कियाँ मुख़्तलिफ़ क़िस्म के केक और मिठाइयों को डिब्बों में से निकाल-निकालकर प्लेटों में लगा रही थीं। वह लड़का, जो स्टूल पर बैठा दो लड़कियों के हाथ देख रहा था, उठकर दरख़्त पर चढ़नेवाली पार्टी में शामिल हो गया। वहाँ पहले से ही पाँच-छह लड़के ऊपर शाख़ों पर बैठे आराम कर रहे थे और बाद में आनेवालों को टहनियाँ तोड़-तोड़कर मार रहे थे। क़ियामत का शोर था।

उस वक़्त केतली के पास से अज़रा की आवाज़ आई : "आओ, बच्चो, चाय तैयार हो गई !"

परवेज़ का गिरोह फ़रमांबरदारी[5] से केतली के पास जा खड़ा हुआ।

"हमें यहाँ पर चाय भेज दो।" दरख़्त पर से एक लड़के ने चिल्लाकर कहा।

"हमारे पास कोई हवाई जहाज़ नहीं, जो आपको रसद पहुँचाए। जो नीचे आएगा, उसे चाय मिलेगी !"

"हम नीचे नहीं आएँगे। यहाँ पर आबो-हवा अच्छी है।" दो-तीन आवाज़ें आईं।

"तुम अपना प्रोग्राम शुरू करो।" मिठाइयों के पास खड़ी पाजामेवाली लड़की ने तेज़ी से कहा।

अज़रा ने जल्दी से बालों की पिनें ठीक करते हुए शराफ़त से दुपट्टा ओढ़ा और क़मीज़ का

1. खिन्न, 2. पति, 3. विजयपूर्ण, 4. प्रभावित, 5. आज्ञापालन।

दामन खींचकर ठीक करती हुई उठ खड़ी हुई, "मुअज़्ज़ज़ हज़रात[1] !" उस शोर में उसकी आवाज़ कम होकर रह गई।

"वहीद, लोगों को चुप कराओ !"

वहीद हड़बड़ाकर चिल्लाया, "प्यारी ख़वातीन[2] और मुअज़्ज़ज़ बच्चो...अरर...लाहौल वला कुव्वत...मुअज़्ज़ज़ ख़्वातीन और प्यारे बच्चो..."

अब सब लोगों का ध्यान उसकी तरफ़ हुआ।

"अज़रा बेगम, कुछ फ़रमाती हैं !" उसने संजीदगी से मुत्तला[3] किया। नईम को हँसी आ गई।

ताज़ा ख़्वाही दाश्तन गर दाग़-हाए सीना रा
गाहे-गाहे बाज़ ख़्वाँ क़िस्सा-ए-पारीना रा

(अगर तू सीने के दाग़ों को ताज़ा रखना चाहता है तो कभी-कभी उन पुराने क़िस्सों को याद किया कर।)

अज़रा ने इफ़्तिताही श'र पढ़ा।

"तक़रीर फ़ारसी में नहीं होगी, उर्दू में होगी !" दरख़्त पर से आवाज़ आई।

"नहीं ! अंग्रेज़ी में होगी।" अंग्रेज़ लड़की ने फ़ैसलाकुन लहजे में कहा।

"अंग्रेज़ी में होगी...अंग्रेज़ी में होगी। धाँधली मत करो।" परवेज़ ने चुप कराते हुए कहा।

"आज...आज..."

"इतवार है।" एक लड़की ने चुपके से कहा।

"हेयर...हेयर..." वहीद ने ताली बजाई। तालियों और क़हक़हों का एक शोर उठा। परवेज़ और नईम भी दिल खोलकर हँसे। दरख़्त पर कोई गाने लगा।

"ख़ामोश रहो।" अज़रा की आँखों में आँसू आ गए।

"ख़ामोश...ख़ामोश..."

"आज बतारीख़ सोलह मई, 1913 को नवाबज़ादा परवेज़ मुहीउद्दीन के बी.ए. पास करने की ख़ुशी में चाय का इफ़तिताह[4] किया जाता है।"

"तालियाँ बजाओ !" वहीद ने कहा। तालियाँ बजाई गईं।

फिर अज़रा ने एक प्याली उसके सामने रखी और चायदानी उठाकर पकड़ाई। परवेज़ ने चाय उँडेली। वहीद ने दूध-दान पकड़ लिया। उसने दूध डाला। फिर एक चमचा चीनी डाली। उसकी तक़लीद[5] में अज़रा और वहीद ने एक-एक चमचा चीनी का डाला। फिर नईम ने एक चमचा और अंग्रेज़ लड़की ने और क़मीज़ दुपट्टेवाली लड़की ने एक-एक चमचा भरकर डाला...फिर दरख़्त से सब लड़के उतरकर आए और अपने-अपने हिस्से की चीनी डाली, यहाँ तक कि चाय बाहर गिर गई और प्याली चीनी से भर गई।

एक प्याली चाय उन्होंने सब्ज़े पर बैठकर क़हक़हे लगाते हुए ख़त्म की। फिर साहिबज़ादा वहीदुद्दीन ने, जिसे एक से एक अनोखे खेल सूझते थे, एलान किया : "जो शख़्स बग़ैर चाय गिराए प्याली लेकर पेड़ पर चढ़ेगा, उसे मोटर की सैर कराई जाएगी !"

उसकी नई-नई मोटर में बैठकर पूरी रफ़्तार से दौड़ाने और नारे लगाने में भी बेपनाह कशिश थी। चुनाँचे मुक़ाबला शुरू हुआ।

सबसे पहले एक लड़की ग़ज़ाला नाम की आगे बढ़ी। वह स्कूल में जिमनास्टिक करती थी और बास्किटबाल टीम की कप्तान थी। लबालब भरी हुई प्याली पर नज़रें गाड़े हुए, एहतियात से जमा-जमाकर पैर रखते हुए उसने चढ़ना शुरू किया। चन्द फुट तक वह कामयाबी से चढ़ती गई। उसकी हिम्मत बँधाने के लिए नीचे से अजीबोग़रीब नारे लगाए जा रहे थे। नारों के उस शोर में अचानक उसकी चाय छलकी। फिर पाँव फिसला और वह गिरते-गिरते बची। प्याली बहरहाल नीचे

1. माननीय व्यक्तियों, 2. महिलाओं, 3. सूचित, 4. उद्घाटन, 5. अनुसरण।

आ रही। वह वहीं पर पाँव लटकाकर बैठ गई। नीचे मसनूई[1] यासो-हसरत[2] की "आह" और "उफ़" बुलन्द हुईं। अब दूसरा उम्मीदवार बढ़ा। जल्द ही उसका भी यही हश्र[3] हुआ। फिर प्यालियाँ एक-एक करके टूटने लगीं।

परवेज़ उकताकर पनीरी के गमलों के साथ-साथ टहलता हुआ दूसरी जानिब चला गया, जिधर ख़ाला खड़ी माली से बातें कर रही थीं। नईम और अज़रा क़रीब-क़रीब बैठे अपनी-अपनी प्यालियों में चाय बनाने लगे। अंग्रेज़ लड़की क़मीज़ दुपट्टेवाली लड़की से कह रही थी : "यह हिन्दोस्तान के नवाब, अगर इनको कुछ अरसे के लिए इंगलिस्तान भेज दिया जाए, तो क्या अच्छा हो। जमीला, तुम नहीं समझतीं। मेरे वालिदैन की भी स्काटलैंड में जागीर है, और चाय का एक सेट टूटने से हमारा भी उतना ही नुक़सान होता है, जितना अज़रा का लेकिन हमें उसकी सज़ा में सारा दिन चाय नहीं मिलती। मुझे याद है, एक मर्तबा जब हमारे गाँव की झील पर बर्फ़ जमी हुई थी और मैं छोटी-सी थी, तो...ओह ! तुम नहीं समझतीं।"

मग़रिब[4] की तरफ़ से बादल उठ रहे थे और फ़िज़ा गहरी हुई जा रही थी। नईम प्याली हाथ में पकड़े दूर उस अजीबोग़रीब दरख़्त की तरफ़ देख रहा था, जिससे कुछ दिन पहले उसकी दोस्ती हुई थी।

"तुमने कहा था, वह तुम्हारी महबूब जगह है।"

"हाँ !" अज़रा ने जवाब दिया। फिर वे दोनों उठकर उसकी तरफ़ चल दिए।

अज़रा ने प्याली मख़सूस जगह पर टिकाई और हाथ शाख़ पर बाँधकर झूल गई।" आज की तक़रीब का मतलब आप समझ गए ?"

"इसका कोई मतलब ही नहीं।" वह हँसा। अज़रा कूदकर शाख़ पर बैठ गई।

"आज प्याले फिर एक जैसे हैं।" नईम ने कहा।

"हाँ, अजीब इत्तिफ़ाक़[5] है।"

"इत्तिफ़ाक़ नहीं है !"

"फिर ?"

"पहले मुझे दूसरा प्याला मिला था !"

"तो ?"

"फिर मैंने जमीला से यह प्याला लिया !"

"क्यों ?"

"शायद आज फिर तब्दील हो जाएँ !"

अज़रा सिर पीछे फेंककर हँसी।" अजीब मंतिक़[6] है।"

"मगर नहीं हुए !"

"हाँ !"

"जमीला ने पूछा था, इसमें कोई ख़ास बात है !"

"आपने क्या कहा ?"

मैंने कहा : "नहीं !"

"आपने झूठ बोला !"

"हाँ !" वह ख़ामोश हो गया।

"जमीला बड़ी प्यारी दोस्त है। वह हमारे सगे रिश्तेदारों में से है !"

"यह अच्छा लगता है," अचानक नईम ने पूछा।

"क्या ?"

---

1. बनावटी, 2. निराशा और दुख, 3. दुर्दशा, 4. पश्चिम, 5. संयोग, 6. तर्क।

"तुमने कहा था, अंग्रेज़ी लिबास पहनकर आना !"

"ओह !" वह एकदम झेंप गई।

भूरे रंग के बादल सारे आसमान पर गरज रहे थे और हवा तेज़ हो गई थी। महीन फुहार उनके चेहरों पर पड़ने लगी। "बारिश शुरू हो गई !" अज़रा ने कहा। फिर उसने जूता उतारकर फेंका और ऊपर चढ़ने लगी। नईम भी उसके पीछे-पीछे चढ़ा। वह चारों हाथ-पाँव पर आहिस्ता-आहिस्ता शाख़ पर चल रही थी। गोल, सुर्ख़ एड़ियाँ नईम की तरफ़ उठी हुई थीं। एक पल के लिए उसकी एड़ी नईम के मुँह से टकराई। वह रुक गया और सिर उठाकर देखने लगा। उसके टख़ने भरे हुए, गोल और गुलाबी थे। हवा उसके जिस्म से रगड़ खाकर दरख़्त में गुम हो रही थी। और ऊदे रेशम का लिबास जिस्म के साथ चिपका हुआ फड़फड़ा रहा था, जिससे उसकी मोटी, सेहतमन्द टाँगें, कूल्हे और कमर वाज़ेह हो गए थे। आठ-दस गज़ ऊपर जाकर वह बैठ गई और तेज़-तेज़ साँस लेने और हँसने लगी। अँधेरा चारों तरफ़ बढ़ता जा रहा था।

"अगर बारिश तेज़ हो गई ?" नईम ने पूछा।

"तो भाग जाएँगे !"

"मैंने अभी कुछ पूछा था !"

"क्या ?"

"यह लिबास ?"

अज़रा ने एक पल को अँधेरे में ग़ौर से उसे देखा। फिर खिलखिलाकर हँस पड़ी, "तुम जब रौशन आग़ा की पार्टी में आए थे, तो बड़े अजीब लग रहे थे !"

"कैसे ?"

"तुम्हारी टोपी का फुन्दना..."

"चुप रहो।" नईम ने अँधेरे में ख़ुद को सुर्ख़ होते हुए महसूस किया।

वह हँसी। यह वही बेसाख़्ता, नौजवान, भारी हँसी थी, जो इतनी मानूस, इतनी पागल कर देनेवाली थी। बिजली चमकी और उन्होंने पत्तों में से एक दूसरे को देखा और नईम जो बात इतने दिनों से सोच रहा था, दफ़्अतन जान गया। रौशन आग़ा के चेहरे पर जो मानूसियत[1] थी, अज़रा की वजह से थी। दोनों के चेहरों पर एक-सा वहशियानापन था, जिसने उनके होंठों और आँखों की हलकी-सी दरिन्दगी[2] अता की थी, और जिससे नईम रौशन आग़ा की तरफ़ भी उसी तरह खिंच गया था, जैसे अज़रा की तरफ़। उसने एक पतली-सी टहनी तोड़ी और हवा में हिलाने लगा। शाम की गहरी नीलगूँ बारिश सारे लॉन में भरी हुई थी, और पत्तों पर से बूँदें उनके सिरों पर टपक रही थीं। वे एक साथ उठे और उसी तरह चलते शाख़ के आख़िर तक चले गए। यहाँ पत्ते घने थे।

"क्यों हँसते हो ?" अज़रा ने पूछा।

"हम बन्दरों की तरह चल रहे हैं।" नईम ने कहा। वे पाँव लटकाकर साथ-साथ बैठ गए।

बरगद के दरख़्त तले से ग़ोल का ग़ोल "बारिश-बारिश" का शोर मचाता हुआ बरामदे की तरफ़ भागा जा रहा था। वहाँ रौशनी थी और परवेज़ के कमरे में लिडिया प्यानो के स्टूल पर बैठी दिखाई दे रही थी। बारिश का और प्यानो के इक्का-दुक्का सुर का और बातों का शोर दूर तक आ रहा था।

"तुम सिर पीछे फेंककर क्यों हँसती हो ?"

"क्यों ?"

"यूँ ही।" वह रुका, "अच्छा लगता है !"

दोनों ख़ामोश बैठे रहे। फिर नईम बोला : "तुम्हारे होंठ रबड़ की तरह फैल जाते हैं। मेरा जी

1. एकरूपता, 2. पशुता

करता है, हाथ लगाऊँ।" वह दम साधे बैठा इन्तिज़ार करता रहा। फिर मसनूई हँसी हँसा।

"तुम भी रौशनपुर में रहते हो ?"

"तुम्हें कैसे पता ?"

"ख़ाला ने बताया था।"

"ख़ाला ने और क्या बताया ?"

"कुछ नहीं। रौशनपुर जाओगे ?"

"शायद !"

"कब ?"

"पता नहीं !"

नईम ने हाथ बढ़ाकर अँधेरे में उसके होंठों को छुआ और उन पर उँगली फेरता रहा। फिर उसकी नाक और आँखों को छुआ। फिर गालों को दबाकर महसूस किया। फिर जबड़े और ठोड़ी पर से फिसलता हुआ उसका हाथ अज़रा के गोल, मज़बूत कन्धे पर आ गिरा और वहीं पड़ा रहा। गीले जिस्मों और हरे पत्तों की बू उनकी नाक में दाख़िल हो रही थी।

बरामदे में से ख़ाला की तेज़ आवाज़ गूँजी, जो अज़रा को बुला रही थी। वह ख़ामोश बैठी रही। बारिश. दफ़्अतन तेज़ हो गई। फिर वह चौंककर उठी और नईम के कन्धे पर हाथ रखकर आहिस्ता से नीचे की तरफ़ धकेलने लगी।

"यहीं बैठते हैं।" नईम ने भारी आवाज़ से कहा।

"चलो।" वह शर्म और ग़ुस्से से दाँत पीसकर चीख़ी ! वे दोनों बड़े-बड़े सियाह चौपायों की तरह चलते हुए नीचे उतर आए।

नईम को देखकर ख़ाला के माथे पर हलका-सा बल आया, लेकिन उसने नर्मी से कहा : "पानी पड़ रहा है, बीबी ! आप क्यों भीगती रहीं ?"

परवेज़ के कमरे में हड़बोंग मची थी। सब वहाँ जमा थे और अपने-अपने खेलों और बातों में लगे थे। सिर्फ़ साहिबज़ादा वहीदुद्दीन बरामदे में खड़े अपने दिलकश, फ़ातिहाना अन्दाज़ में अंग्रेज़ लड़की से बातें कर रहे थे। बरामदे पर झुकी हुई बेल पर से पानी टपक रहा था।

4

सवेरा होनेवाला था और सितारे तेज़ी से झिलमिला रहे थे। नईम ने मसहरी का परदा उठाया और बाहर निकल आया। मुँडेर पर झुककर नीचे थूका और उकताहट से अँधेरे में देखने लगा। उसके मुँह में सुबह की मख़सूस बू और फीकापन था। रात वह बड़ी देर में रौशन महल से लौटा था।

उसने हथेलियों से आँखें मलीं और साथवाली मसहरी में अपने चचा को हिलते हुए देखा। रात किस क़दर गर्म थी। उसने सोचा, लेकिन अब उसका ज़ेहन साफ़ और तारोताज़ा था और वह बड़ी वज़ाहत[1] और काहिली[2] के साथ सोच सकता था। कलकत्ता...सेंट ज़ेवेयर्ज़...दिल्ली...रौशन महल...अज़रा...रौशन आग़ा...एनी बेसेन्ट...गोखले....अज़रा...अज़रा...जमीला...अज़रा...अज़रा... अज़रा...होंठ...गर्मी...मच्छर....होंठ...बारिश...होंठ...वह मुँडेर पर हाथ रखे खड़ा रहा, यहाँ तक कि दिन का उजाला चारों तरफ़ फैल गया। फिर अयाज़ बेग ने आहिस्ता से उसे कन्धे पर छुआ और पीछे आने का इशारा करके सीढ़ियाँ उतर गए।

नाश्ता ख़त्म करके उन्होंने सिगार सुलगाया। नईम चाय की दूसरी प्याली बना रहा था।

1. स्पष्टता, 2. सुस्ती।

"तुम एक हफ़्ते से रौशन महल जा रहे हो !"

नईम ने उनके चौड़े, सपाट चेहरे को देखा, जहाँ कोई तअस्सुर न था।

"हाँ !" उसने कहा।

"मैं नहीं गया !"

"अच्छा !"

"क्यों ?"

नईम ख़ामोश रहा।

"क्योंकि रौशनपुर में हमारा ख़ानदान ज़लील हो चुका है !"

काफ़ी देर के बाद नईम ने कहा : "मैं रौशन आग़ा से तो नहीं मिला !"

"मैं जानता हूँ...अज़रा...एं ? जानते हो, उसकी माँ बुरी औरत है।"

यह कहते हुए वह ज़र्द पड़ गए। फिर बड़ी कोशिश से उन्होंने अपनी आवाज़ को क़ाबू में करके कहा : "और उसकी बहन भी। उन दोनों के बाप का किसी को पता नहीं, लेकिन उनकी माँ बड़ी होशियार औरत थी। उसने उन्हें बड़ी अच्छी तर्बियत[1] दिलाई और ऊँचे घरानों में ब्याहा।" वह उठे और खिड़की में जा खड़े हुए। धूप उनके ज़र्द और बेताब चेहरे पर पड़ रही थी, "हम इज़्ज़तदार लोग थे। अब कुछ भी नहीं हैं। तुम्हारा बाप मेरा बड़ा भाई है !"

फिर खिड़की में सिगार को मसलकर वह नईम के सामने आकर बैठ गए, "तुम्हें अब पता चल जाना चाहिए। अब तुम बच्चे नहीं हो। गाँव में हमारा वाहिद घर ऐसा था, जो रौशनपुर की जागीर का मुज़ारे[2] नहीं था। हमारा बाप जागीरदार के घर जाकर कुर्सी पर बैठता था। ऐसा हमने सुना था। वह दिलेर और मेहनती शख़्स था, लेकिन तुम्हारा बाप...ओह..." उन्होंने दोनों हाथ मेज़ पर फैलाए, जो मज़बूत और ज़र्द थे, और तम्बाकू से रँगी हुई मोटी उँगलियों में कँपकँपाहट थी। "वह भी दिलेर आदमी था, लेकिन ज़िद्दी था। उसको अस्लिहा[3] बनाने का ख़ब्त[4] था। वह अजीबोग़रीब दिमाग़ का मालिक था। यह सच है कि उस कारीगरी से विलायतवाले भी बन्दूक़ों की नालियाँ नहीं बनाते होंगे, जैसी वह बनाता था। वह उन्हें बच्चों की तरह सँभाल-सँभालकर रखता था। मुझे अच्छी तरह याद है, और वह दिन भी जब पुलिस आई। सारे गाँव के लोग घरों में घुस गए और किवाड़ बन्द कर लिए गए। गलियाँ सुनसान हो गईं, और मवेशी अकेले-अकेले गलियों और खेतों में फिरने लगे। उन्होंने हमारे घर की तलाशी ली और अस्लिहा बरामद कर लिया। जब वह उसे इकट्ठा कर रहे थे, तो मुझे याद है, नियाज़ बेग उनकी मिन्नतें करने लगा, लेकिन एक सिपाही ने उसकी दाढ़ी पकड़कर मुँह पर तमाचे मारे और वे घसीटते हुए उसे साथ ले गए।" उनके हाथ अब मुर्दा परिन्दों की तरह मेज़ पर रखे थे, और वह अपनी चिकनी और उदास आँखें आहिस्तगी से झपक रहे थे। "चन्द दिन बाद तुम्हारा बाप वापस आ गया। उसके गालों की हड्डियाँ सियाह हो गई थीं, और दाढ़ी के आधे बाल झड़ चुके थे, लेकिन उसका हुनर उसके साथ था। वह उससे उसकी हुनरमन्दी[5] का फ़ख़्र[6] न ले सके। कोई भी न ले सका। रौशन आग़ा ने उससे कहा, 'नियाज़ बेग ! तुम सारे गाँव पर तबाही लाओगे !' मगर नियाज़ बेग भूसेवाले कमरे में दरवाज़ा बन्द करके अपने काम में मशग़ूल रहा। उसके हाथ में हुनर था। उसने दस-दस गोलियोंवाली ऐसी-ऐसी पिस्तौलें बनाईं, जो गाँव में किसी ने न देखी थीं।"

"अब की दफ़ा पूरी गारद आई। उन्होंने सब कुछ क़ब्ज़े में कर लिया। भूसेवाले कमरे को उन्होंने आग लगा दी, और सारे किवाड़ तोड़कर मैदान में ढेर लगा दिया। फिर उस पर उन्होंने तुम्हारे बाप के और उसकी बीवियों के और मेरे तमाम नए ख़ूबसूरत कपड़े फेंके और आग लगा दी। गोरे सार्जेन्ट ने पिस्तौल निकालकर आग में फ़ायर किया और चीखकर बोला, 'तुम्हारी माँओं के सिर मूँडकर इसमें

1. शिक्षा-दीक्षा, 2. किसान, 3. हथियार, 4. बुद्धि विकार, 5. कुशलता, 6. गर्व।

जलाऊँगा अगली दफ़ा...' फिर वह पिस्तौल लहराता हुआ हमारी दुकान पर गया। गलियों में सन्नाटा था। गाँव की सबसे बड़ी दुकान हमारी थी और नियाज़ बेग बड़ा माहिराना काम करनेवाला था। उसने किसानों की ज़रूरत की तमाम चीज़ों के अलावा तारों और सलाख़ों से समन्दरी जहाज़ों के मॉडेल भी बनाकर रखे हुए थे। सार्जेन्ट ने ताले में गोली मारी और दरवाज़ा तोड़कर बाज़ार में डालने का हुक्म दिया। फिर उस पर उन्होंने दुकान के सारे औज़ार और बैलों के नॉल और हल और कुओं की चकलियाँ, और जहाज़ों के मॉडेल ढेर किए और आग में लोहे की चीज़ें मक्खन की तरह पिघलने लगीं। उसने आग में तीन फ़ायर किए और जानवरों की तरह चीख़ मारकर बोला : 'एक तुम्हारी बन्दूक़ों के वास्ते है, और यह सारे गाँव के वास्ते है। और यह तुम्हारी बीवियों-बेटियों के वास्ते है, जो बेवा हो जाएँगी, अगर तुम बाज़ न आए। नियाज़ बेग, जिसकी हथकड़ियों की ज़ंजीर उसके घोड़े की ज़ीन से बँधी थी, कहता रहा : 'मेरी बन्दूक़ों से एक भी गोली कभी नहीं चली। यह मेरी नुमाइश की चीज़ें हैं।...' लेकिन उसने वहशियों की तरह घोड़े की पसलियों में एड़ियाँ मारना शुरू कीं और मैंने गन्ने के खेत में बैठे-बैठे देखा कि नियाज़ बेग घोड़े के पीछे भागता-भागता...ओह...''

वह ख़ुश्क, वज़नी आवाज़ नईम के दिल पर पत्थर की तरह बैठती जा रही थी। दोबारा बोलने से पहले अयाज़ बेग ने झुककर फ़र्श पर थूका। लुआब[1] सिगार के तम्बाकू की वजह से सियाही-माइल था, ''बारह साल हो गए, मैं उससे नहीं मिला। मैंने अपनी मेहनत से इतनी तरक़्क़ी की। अगर सरकार को आज भी कोई ख़बर कर दे कि मैं उससे मिलता हूँ, तो मुझ पे सारे दरवाज़े बन्द हो जाएँ, उसने ख़ानदान को तबाह कर दिया...''

''तुम्हारे माँ-बाप अब तुमसे मिलना चाहते हैं। वह गाँव आ चुका है, मगर तुम्हें जल्द वापस आ जाना चाहिए। मैंने कभी कोई किताब नहीं पढ़ी। मैं पढ़ सकता ही न था, लेकिन हमारे ख़ून में हुनर है, और तुम्हें मैंने तालीम दिलवाई है। तुम दुनिया में तरक़्क़ी कर सकते हो !''

वह उठे। कोने में जाकर थूका और ठिगने बूढ़े जानवर की तरह धीरे-धीरे चलते हुए बाहर निकल गए।

नईम शाम तक सोता रहा। तीन दफ़ा उसकी आँख खुली, लेकिन नींद के ग़लबे की वजह से फिर सो गया। अयाज़ बेग ने कई बार दरवाज़े में आकर देखा और ख़ामोश पलट गए। जब कमरे में अँधेरा बढ़ने लगा, तो वह अन्दर दाख़िल हुए। लैम्प जलाया और नईम के माथे पर हाथ रखा।

''बाहर चलोगे ?''

वह आँखें बन्द किए चारपाई पर बैठा रहा। पसीने से तकिया गीला हो गया था और क़मीज़ उसकी कमर पर चिपकी हुई थी, ''नहीं...'' उसने भारी आवाज़ में कहा।

लैम्प की बत्ती ऊँची करके अयाज़ बेग बाहर निकल गए। कमरे में उसने गीली क़मीज़ उतारी। चेहरे और गर्दन का पसीना पोंछा और उसे दूर कोने में फेंक दिया। फिर वह चारपाई पर बैठा-बैठा ऊँघने लगा। उस हालत में उसने बहुत-से मिले-जुले, मुख़्तसर ख़्वाब देखे। जब उसका सिर नींद में दीवार से जा टकराया, तो वह झुँझलाकर उठ खड़ा हुआ। कुछ देर तक कमरे के बीच में बाँहें लटकाए खड़ा दीवार पर अपने साये को देखता रहा। फिर पतलून टाँगों पर चढ़ाई, नई क़मीज़ पहनी और भागता हुआ बाहर निकल आया।

''शायद गर्मी की वजह से है।'' खुली हवा में आकर उसने सोचा, लेकिन ग़ुस्सा सुस्त-रफ़्तार की तरह उसके दिमाग़ पर मँडला रहा था।

दूर से उसने अज़रा को देखा। वह फ़व्वारे के पास कुर्सी पर बैठी किताब पढ़ रही थी। उस वक़्त उसने ठिठककर सोचा कि वह स्लीपर पहने चला आया है। सब्ज़े पर आहिस्ता-आहिस्ता चलता

1. थूक

वह अज़रा के पास जा खड़ा हुआ।

"मैं आज शाम को नहीं आ सका।" जम्हाई रोकते हुए वह मेज़ के कोने पर बैठ गया।

"क्यों ?"

"सोया रहा !"

"क्यों ?"

"गर्मी की वजह से !"

"क्यों ?"

"क्यों ?" वे खिलखिलाकर हँस पड़े।

बिजली की रौशनी, हरी-भरी घास और अज़रा की मौजूदगी से उसका मिज़ाज खिल गया। "तुम इन्तिज़ार करती रहीं ?"

"हम सब इन्तिज़ार करते रहे !"

"कौन-कौन ?"

"परवेज़...जमीला..."

"तुमने नहीं किया ?"

जवाब देने के बजाय अज़रा ने हाथ बढ़ाकर पानी की फुहार को महसूस किया।

"तुमने नहीं किया ?" उसने पूछा।

"क्यों ?"

"क्यों ?" वह ख़फ़गी[1] से चिल्लाया। वे दोनों हँस पड़े और नदामत[2] से इधर-उधर देखने लगे। वह धीमी, ख़तावार[3] हँसी थी, जो उनके लबों पर थी और जिसने दोनों को एक दूसरे की मौजूदगी से बेहद आगाह[4] कर रखा था।

"तुमने आज मुँह नहीं धोया ? फ़व्वारे से धो लो !" अज़रा ने कहा।

नईम ने फुहार में हाथ गीला करके चेहरे पर फेरा। भीगी पलकों को तेज़-तेज़ झपकते हुए बच्चों की-सी हँसी उसके सारे चेहरे पर फैल गई। एक लम्हे का चोर, जो आँखों में ज़ाहिर हुआ था, ग़ायब हो गया। "घास ठंडी है।" उसने कहा।

शाम की गर्म हवा उसके रुख़ तेज़ हो गई और फ़व्वारे के महीन क़तरे उसके जिस्म को भिगोने लगे। वह आँखें बन्द करके लेट गया। उसका ज़ेहन पहाड़ी झील की तरह शफ़्फ़ाफ़ था। उसने फुहार को गिरते, हवा को तेज़ी से चलते, सब्ज़े को हाथों के नीचे उठते और पानी को ज़मीन में जज़्ब होते हुए साफ़तौर पर देखा और महसूस किया।

"यहाँ आ जाओ।" आँखें खोलकर उसने भारी आवाज़ में कहा।

अज़रा ठोड़ी हथेली पर रखे उदास नज़रों से उसे देखती रही। नन्हे-नन्हे क़तरे उसके गन्दुमी गालों पर गिर रहे थे। नईम को महसूस हुआ कि उसका गला सूज गया है। उसने बेताबी से गले पर हाथ फेरा।

"आओ !" उसकी आवाज़ भारी, ख़ुश्क और ग़ैर-मानूस थी।

अज़रा क़लम से नाखुन पर लकीरें खींचने लगी। वह घुटनों के बल खड़ा हो गया।

"मैंने आज तुम्हें ख़्वाब में देखा था !"

"हम सब ख़्वाब देखते हैं।" वह एक के बाद एक सारे नाखुन काले कर रही थी।

नईम नन्हे क़तरों को देखता रहा, जो उसके गाल, ठोड़ी, नाक, माथे और होंठों पर चमक रहे थे, जैसे हज़ारों क़ुमक़ुमे उसके चेहरे पर जल रहे हों। उसने सोचा, वह बन्दरगाह पर खड़ा है और जहाज़ों की अनगिनत रौशनियाँ पानी में झिलमिला रही हैं। उसने बोलना चाहा, लेकिन उसका गला

1. रोष, 2. लज्जा, 3. क़ुसूरवार, 4. सूचित।

फिर सूज गया। फिर उसकी दो उँगलियाँ अज़रा के गाल पर फिसलीं। कई नन्हे-नन्हे क़तरे टूटकर एक दूसरे के साथ मिले और एक बड़ा क़तरा उसकी ठोड़ी पर जाकर लटक गया। वह मुड़कर हँसने लगा।

"तुमने कोई बन्दरगाह देखी है ?"

"नहीं !"

"जहाज़ों की रौशनियाँ समन्दर में इसी तरह तैरती हैं।"

अज़रा मुँह फेरे अँधेरे में देखती रही।

"मेरा जी चाहता है, समन्दरी फ़ौज में चला जाऊँ !"

"अच्छा ?"

"हाँ ! यह ऐसा शानदार होता है। जहाज़ एक शहर की तरह होता है, जिसमें घर बने हुए हैं और दुकानें, खाने के हॉल-कमरे, खेल के मैदान और रौशनियाँ, जो रात के वक़्त पानी में झिलमिलाती हैं !"

"अच्छा !" उसने आँखें फैलाकर कहा : "मैंने यह सब सुन रखा है। मेरा दिल चाहता है, समन्दर का सफ़र करूँ !"

"जब मैं नेवी में जाऊँगा, तो तुम भी साथ चलना।"

"अचचचछा..." वह मेज़ पर झुक गई।

"चलोगी ?"

वह ख़ामोशी से नाखुन खुरचती रही।

"चलोगी, अज़रा ?"

"क्या तुम जा सकते हो ?" उसने हौले से पूछा।

"मैं कोशिश करूँगा !"

उसी वक़्त रौशन आग़ा बरामदे में ज़ाहिर हुए और बाग़ की तरफ़ देखे बग़ैर दूसरे बाज़ू की तरफ़ चले गए।

"आज रौशन आग़ा नाराज़ हैं !" अज़रा ने कहा।

"क्यों ?"

"परवेज़ के ब्याह की बात हो रही थी।"

"फिर ?"

"सबका ख़याल है कि उसे जमीला से शादी कर लेनी चाहिए। वह नहीं करता !"

"क्यों नहीं करता ?"

"वह इस बात का जवाब नहीं देता !"

रात पड़ने पर सिरिस के दरख़्त के पत्ते बन्द होकर लटक गए थे। सड़क पर एक रेलगाड़ी रुँ-रुँ करती गुज़र रही थी और बैलों को चलाते हुए दो जाट आहिस्ता-आहिस्ता बातें कर रहे थे। सब्ज़े पर चलती हुई हवा गर्म और ख़ुशगवार थी। नईम ने मेज़ पर उँगलियाँ फैलाईं।

"क्या यह मुमकिन है, अज़रा...मैंने पूछा था, क्या यह मुमकिन है ?" उसने रुक-रुककर रोज़ की मामूली, ग़ैर-जज़्बाती आवाज़ में कहा।

"रौशनपुर कब जाओगे ?"

"तुमने पहले भी पूछा था। क्यों पूछती हो ?"

"तुम अपने वालिदैन[1] से मिलने जाओगे ?"

नईम का रंग सफ़ेद हो गया। उसने महसूस किया कि बहुत-सी ताक़त उसके घुटनों में से

1. माँ-बाप।

गुज़रकर नीचे ज़मीन में जा रही है। वह आहिस्ता से घास पर हाथ रखकर बैठ गया।

"लेकिन ख़ाला ने मुझे बताया था कि...तुम सरकारी नौकरी में नहीं जा सकते..." अज़रा ने कहा, और नईम की उँगलियों को देखने लगी जो सब्ज़े पर बहुत सफ़ेद लग रही थीं। वह घुटनों के बल बैठा हुआ सफ़ेद पत्थर की मूर्ति कीं तरह ख़ूबसूरत और नाज़ुक नज़र आ रहा था।

फिर वह उठी और बात किए बग़ैर बरामदे की तरफ़ चली गई।

जब नईम फाटक से निकल रहा था, तो चौकीदार ने बढ़कर कोई बात की, जिसका उसने कोई जवाब न दिया। बन्द मुट्ठी की तरह कोई वज़नी बदमज़ा-सी चीज़ उसके पेट में पड़ी थी। सड़क पर चन्द क़दम चलने के बाद अचानक धुएँ की तरह बल खाता हुआ गुस्सा उसके सिर पर चढ़ा। उसने छलाँग लगाकर नाली पार की और बाड़ में से मुँह निकालकर चीख़ा : "लेकिन तुम्हारी माँ...वह बुरी औरत है, और ख़ाला भी..."

चौकीदार ने क़रीब आकर फिर कोई बात की।

"जाओ !" वह आँखें निकालकर दहाड़ा और सड़क पर भागने लगा।

5

चन्द रोज़ के बाद नईम रौशनपुर के लिए रवाना हुआ। रेल का सफ़र ख़ामोशी से तय हुआ, सिवाय एक नागवार वाक़िए[1] के, जो रानीकोट से एक स्टेशन इधर पेश आया।

अलीपुर से गाड़ी चली, तो घुटन से घबराकर डिब्बे के दरवाज़े में वह आ खड़ा हुआ। प्लेटफ़ॉर्म पर भागता हुआ एक बूढ़ा आदमी गाड़ी पकड़ने के लिए बदहवासी में हाथ-पाँव मार रहा था। उसके कन्धे पर लाठी में उड़सी हुई गठरी झूल रही थी और उसका चेहरा लू में काम करते रहने की वजह से झुलसा हुआ था, जैसे आम किसानों का होता है। नईम ने उसका हाथ पकड़ने की कोशिश की, मगर गाड़ी तेज़ हो गई। आख़िर "मर जाएगा...कट जाएगा" के शोर में उसने लपककर साथवाले फ़र्स्ट क्लास के डिब्बे का हैंडल पकड़ा और किसानों की तरह टाँगें फैलाकर छलाँग लगाई।

जब वह जमकर पायदान पर खड़ा हो गया, तो शर्मिन्दगी से इधर-उधर देखने लगा। कई ख़श्मगीं[2] चेहरे गर्दनें बढ़ा-बढ़ाकर उसे घूर रहे थे।

"अगर मर जाता तो.?" नईम ने ग़ुस्से से चिल्लाकर कहा।

बुड्ढे का बे-दाँत का मुँह अचानक सादा, शर्मीली हँसी में फैल गया। "मेरी बीवी गाड़ी में है !"

"बेवक़ूफ़ !"

जवाब देने के बजाय उसने लाठी से दरवाज़ा खटखटाया और गठरी की गाँठ कसने लगा। दरवाज़ा खुला और एक सफ़ेद चेहरा और नंगा बदन ज़ाहिर हुआ। गोरे की आँखें नींद से सुर्ख़ हो रही थीं। डिब्बे में ख़ुनक अँधेरा था।

"क्या माँगटा ? क्यों आया ?" गोरा आँखें निकालकर चीख़ा।

जवाब में किसान उसी तरह सादगी से हँसा। "मैं नीचे बैठ जाता हूँ। अगले स्टेशन पर उतर जाऊँगा। मेरी बीवी गाड़ी में है।" उसने कहा, और इत्मीनान से दरवाज़े में बैठकर गठरी कसने लगा।

"नीचे जाओ, माँगटा ! आं। सुनटा ?" पाँव से वह उसे नीचे धकेलने लगा।

"गाड़ी भाग रही ए साब। कहाँ जाऊँ ?"

"आं ? नाईं जाओ आं ?" उसने पैर की ठोकर से किसान की गठरी बाहर उछाल दी, जो उड़ती हुई ज़मीन पर गिरी और लोगों ने उसमें से बाजरा और गुड़ बिखरते हुए देखा। "जाओ !"

"हा...मेरा बाजरा..." बुड्ढे का मुँह खुल गया। फिर अचानक ग़ुस्से से भिन्नाकर वह उठा और

1. अप्रिय घटना, 2. क्रुद्ध, ग़ुस्से से भरे।

लाठी गोरे की टाँगों पर मारने लगा। "मुझे मार दो...फेंक दो...बाजरा...मेरा गुड़...मैं तुम्हारे बाप से भी लूँगा। गोरे सुअर...अब मैं अपनी लड़की के लिए क्या लेकर जाऊँ ?" चीख़ने से राल उसकी दाढ़ी पर बहने लगी। अंग्रेज़ ने उसकी लाठी छीनकर नीच फेंक दी और बड़े-बड़े बूटोंवाले पाँव अन्धाधुन्ध उसके चेहरे और छाती पर मारने लगा।

"अपनी लड़की के लिए एक सुअर ले जाओ।" उसने अंग्रेज़ी में कहा। फिर वह गालियाँ बकने लगा और बेतहाशा टाँगें चलाने लगा। उसका एक बूट एड़ी तक उखड़ गया। किसान का सिर लटक गया और आँखें बन्द हो गईं। लेकिन उसका बाज़ू अभी तक हैंडल के गिर्द कसा हुआ था। लू से झुलसे हुए चेहरे पर ख़ून की धारियाँ बह रही थीं और उसकी दाढ़ी ख़ून, पसीने और राल से लुथड़ गई थी।

जब रानीकोट के स्टेशन पर दो गोरे सार्जेन्टों ने आकर उसे हैंडल से अलग किया, तो वह गन्दुम की बोरी की तरह ज़मीन पर गिरा और मर गया। सार्जेन्टों ने दरवाज़ा खटखटाया। गोरे का चेहरा खिड़की से बाहर आया। पुलिसवालों के जवाब में उसने कुछ कहा, जिस पर दोनों सार्जेन्टों ने मुस्तैदी से फ़ौजी सलाम किया और बोले : "लेकिन आप ज़ेरे-हिरासत हैं !"

"बाह !" गोरे ने गाल फुलाकर कहा और खिड़की गिरा दी। सार्जेन्ट दोनों हैंडल पकड़कर पायदान पर खड़े हो गए।

"वह गिरफ़्तार कर लिया गया है। पर बूढ़ा मर गया।" भीड़ में से किसी ने बात की।

"तो क्या हुआ ?" सुनहरी चश्मे और बड़े-से माथेवाले एक आदमी ने कहा।

"वह अदालत में तो पेश होगा ?" नईम ने ख़फ़गी से कहा।

"ज़रूर होगा। ज़रूर होगा !" वह आदमी बोला, "ये लोग बड़े क़ानूनदाँ होते हैं, लेकिन ज्यूरी में कौन होगा ?...तुम्हारा कोई चचा ज्यूरी में है ?" वह जाने के लिए मुड़ा। फिर पलटकर नईम के पास आ खड़ा हुआ। "यह सुअर, मैं तुम्हें बताता हूँ, बरख़ुर्दार ! आज ही रात को अपनी बीवी के साथ जाकर सोएगा। मैंने अपनी उम्र में ऐसे पचास से ऊपर वाक़िआत देखे हैं। ऐसे मुक़दमों के लिए सफ़ेद ज्यूरी होती है–बिलकुल सफ़ेद !"

नईम उसके लहजे की तेज़ी से घबरा गया। जब वह प्लेटफ़ॉर्म से बाहर जा रहा था, तो उसने मुड़कर देखा। एक भद्दी-सी बूढ़ी किसान औरत लाश के साथ लिपटकर रो रही थी।

चौदह कोस का सफ़र नईम ने एक मरियल-सी सियाह घोड़ी पर तय किया। गाँव का एक कमीन, जो उसे लेने आया था, साथ-साथ चलता रहा। पगडंडियों के दोनों तरफ़ झड़बेरियाँ और जंगली झाड़ियाँ कसरत से उगी हुई थीं। उसका साथी मुस्तक़िल[1] बातें कर रहा था।

"इस साल चौधरी नियाज़ बेग ने ख़ुद ग़ल्ला काश्त किया। बड़ी भारी फ़सल हुई। तीन मन तो मुझको दिए, और यह घोड़ी ख़रीदी। बड़ा अव्वल नस्ल का जानवर है।" उसने घोड़ी की पीठ पर हाथ मारा, जो टस से मस न हुई। "मगर यह जाटनगर के जुलाहों के पास थी। उन्होंने इसका नास मार दिया। कमबख़्त कमीन ! जानवर पर ज़ुल्म करना अपनी जान पर ज़ुल्म करना है। भाई ! चौधरी नियाज़ बेग के बाद तो ज़मीन वीरान हो गई थी। हत तुम्हारे की। कमज़ात कुत्तो ! हम तुम्हारे गाँव में नहीं ठहरते। फ़िक्र न करो। अब दफ़ा हो जाओ। अब की बार पानी की तंगी रही। चावल की काश्त नहीं हो सकी, मगर..."

शाम पड़ रही थी, जब धुँधलके में उन्हें रौशनपुर के पेड़ दिखाई दिए, "कुत्तों की परवाह न करो। इनकी भौंकने की पुरानी आदत है। हमें पहचानकर ख़ामोश हो जाएँगे। नियाज़ बेग आ गया।"

नियाज़ बेग एक बड़े-से कीकर के नीचे लेटा हुआ था। उन पर नज़र पड़ते ही उठा और बाँहें

1. निरन्तर।

फैलाकर दौड़ता हुआ आया। पतली छड़ी जो पकड़े हुए था, परे फेंकी और नईम से लिपट गया। पहले उसने अपने बेटे को छाती पर चूमा। फिर चेहरा खींचकर क़रीब लाया, और मुँह ही मुँह में नाक़ाबिले-फ़हम अल्फ़ाज़[1] बड़बड़ाता हुआ उसके माथे, गाल और कानों को चूमने लगा। लिपटने और चूमने के दौरान वह हलक़ से ख़ुशी की अजीबोग़रीब आवाज़ें निकालता जा रहा था। नईम ने महसूस किया कि उसकी दाढ़ी सख़्त खुरदरी थी और जिस्म से पसीने और सब्ज़ चारे की बू आ रही थी।

फिर नईम से जुदा होकर वह उसके साथी की तरफ़ मुतवज्जेह हुआ। "इतनी देर लगाई ? पैदल चलाता लाया ? या बातें करता रहा होगा ? बातूनी मीरासी...मैं तुम कमीन लोगों को अच्छी तरह से जानता हूँ।" उसने हवा में उँगली नचाकर कहा और घोड़ी की बाग पकड़कर चलने लगा।

मीरासी उसके आगे हाथ फैला-फैलाकर अपनी बेगुनाही साबित करने की कोशिश में बहस कर रहा था। लेकिन उसने कुछ न सुनते हुए नईम की कमर में टहोका दिया। "देखा ! कैसे बातें कर रहा है ? मैं ख़ूब समझता हूँ। कमीन की ज़ात को ख़ूब समझता हूँ। तुम्हारा दिल काला और ज़बान रौशन होती है ! अब तुम फ़सल पर आना ! तुम्हें चींटी का फ़ुज़्ला[2] दूँगा। पूरा तीन मन..." उसने हवा में मुक्का चलाया और बनावटी ग़ुस्से से उछल-उछलकर चलने लगा।

घर के बाहर दो औरतें खड़ी ऊँची आवाज़ में रो रही थीं। नियाज़ बेग लाल-पीला होकर उनसे बोला : "देखो...मैं न कहता था, इस बातूनी मीरासी को मत भेजो। जा, दफ़े हो जा..."

फिर वह उछलकर घोड़ी पर सवार हो गया और औरतों के गिर्द एक चक्कर काटा। फिर कूदकर उतरा और छड़ी से बेतहाशा उसे पीटने लगा। "जुलाहों कमीनों ने तुझे कुछ नहीं खिलाया...हैं ? मकड़े की तरह चलती है...कमीनी..." घोड़ी टाँगें फैलाए ख़ामोश खड़ी रही।

बूढ़ी औरत रोती हुई नईम से लिपट गई और उसे सारे जिस्म पर चूमने लगी। उसके बालों से घी की बू आ रही थी। "मेरे बच्चे...मेरे बच्चे..." वह कहे जा रही थी। दूसरी निस्बतन[3] जवान औरत पास खड़ी उसके सिर पर हाथ फेर रही थी। बूढ़ी औरत उसके सारे जिस्म को टटोल-टटोलकर देख रही थी और रोती हुई कुछ बड़बड़ाती जा रही थी। जो नईम की समझ से बाहर था। दो कुत्ते उनके पास आकर लड़ने लगे। नियाज़ बेग घोड़ी को छोड़कर गालियाँ देता हुआ भागा और दूर तक उनके पीछे दौड़ता हुआ चला गया। आस-पास के घरों में मर्द और औरत दिये और लालटेनें लेकर निकल आए। नियाज़ बेग ने उसे अन्दर की तरफ़ खींचा।

"इन्हें छोड़ो। ये बेवक़ूफ़ औरतें हैं। तुम्हारा बाप मर गया, जो रो रही हो ?"

गली के नुक्कड़ पर एक नौजवान सिख लड़के ने पुकारकर पूछा : "चचा, तेरा बेटा आ गया ?"

"हाँ, हाँ ! आ गया !" उसने जल्दी से नईम को बे-किवाड़ के दरवाज़े में से अन्दर खींचा। "ये अनपढ़, आवारा लौंडे हैं। तुम्हें इनसे दोस्ती रखने की ज़रूरत नहीं !"

मवेशियों के एहाते में दो भैंस बैठी जुगाली कर रही थी। दो बैल चारा खा रहे थे।

"यह मैंने इस साल तीसरे महीने में ख़रीदा था।" नियाज़ बेग ने अपने ख़ुश्क, मज़बूत हाथ से बैल की पीठ पर थपकी दी। "चार मन ग़ल्ले में आया। पिछली मंडी में इसे काग़ज़ मिला था। बेहतरीन नस्ल का जानवर है। क्यों चौधरी ?"

"हाँ, चौधरी !" मीरासी ने जवाब दिया। "बीस-बीस कोस में इसका जवाब नहीं। जाटनगर के चौधरियों का बैल भी मर के एक खेत तैयार करता है। इस हीरे ने सूरज सिर पर आने से पहले-पहले डेढ़ खेत तैयार किया है। मेरे सामने की बात है, चौधरी !"

"सच है—बिलकुल सच !" नियाज़ बेग ने फ़ख़्र से कहा। फिर वह औरतों को मुख़ातिब

1. न समझ आनेवाले शब्द, 2. मल, 3. अपेक्षाकृत।

करके बोला : "हू-हू बन्द करो बेवक़ूफ़ औरतो। तुमने चावल नहीं निकाले। आओ, चौधरी, बैठो। चावल खाओ !"

उसने दोस्ताना अन्दाज़ में मीरासी का कन्धा थपका।

जब वह खाने पर बैठे, तो उसकी माँ भागकर स्टूल ले आई, और इसरार करके नईम को उस पर बिठाया।

"बैठो, बैठो...यह स्टूल मैंने ख़ुद बनाया है।" उसके बाप ने कहा।

एक बड़े-से थाल में सफ़ेद उबले हुए चावल निकालकर बुड्ढ़ी ने उन पर सुर्ख़ शक्कर छिड़की और गर्म-गर्म मक्खन उँडेला, जो शक्कर और चावलों में जज़्ब हो गया। फिर एहतियात से उठाकर उसे कमरे के बीच में ला रखा। घर के तीनों मर्द उसके गिर्द बैठ गए और अपने-अपने आगे से खाने लगे। स्टूल पर बैठे-बैठे नईम ने झुककर दो-चार निवाले लिए। फिर झल्लाकर उसे पीछे लुढ़का दिया।

"यह फ़ुज़ूल है !"

उसे ज़ोरों की भूक लगी थी। इधर-उधर देखे बग़ैर उसने आधा थाल ख़ाली कर दिया। यहाँ तक कि उसकी ख़ाली की हुई जगह बढ़ती-बढ़ती उसके बाप और छोटे लड़के के आगे की ख़ाली जगहों के पास जा मिली। नईम ने हाथ खींच लिया। उसकी माँ ने बड़ी एहतियात से कुरते के दामन में पकड़कर उसका हाथ साफ़ किया। फिर उसने छोटे लड़के की गर्दन में पंखे की डंडी चुभोई।

"कम खा। फिर तेरा पेंदा तो दो-दो घड़ी पर खुलने लगेगा।" लड़का ख़ामोशी से उठकर बाहर चला गया।

"यह कौन है ?"

"यह बुढ़िया का भतीजा है। इसके माँ-बाप बड़े हैज़े में मर गए !"

"यह तुम्हारे मामूँ का लड़का है।" बुढ़िया ने बताया। "उसकी बीवी कमज़ात ने उस पर जादू कर दिया था।"

"झूठ मत बोल, बेवक़ूफ़ ! वह बीस गाँव में सबसे ख़ूबसूरत औरत थी।" नियाज़ बेग ने हाथ रोककर कुछ सोचा। फिर ख़याल ही ख़याल में मुसकराया और थाल पर झुक गया। उसकी बीवी ने सारे चावल उसके आगे समेटे। फिर मक्खनवाला बर्तन औंधा करके उँगली से पोंछकर आख़िरी क़तरा तक उन पर टपकाया और थाल उसके हाथ में दे दिया। वह लालचियों की तरह चावल पर पिल पड़ा।

दीवार पर लटकी हुई लालटेन की रौशनी उपलों के धुएँ में और भी मद्धिम हो गई थी। नियाज़ बेग की आँखों के घेरे आधे चेहरे पर फैले हुए थे। गालों की हड्डियाँ सियाह थीं। गालों में गढ़े पड़ गए थे और जबड़े की हड्डी मज़बूत और नंगी थी। वह एक भूके बूढ़े बैल की तरह चेहरे की तमाम हड्डियों और पट्ठों की नुमाइश करता हुआ खा रहा था। उसकी आँखों में ख़ौफ़[1] का ख़ला[2] था और चेहरा कभी गए-गुज़रे हुए वक़्तों में ख़ूबसूरत रहा होगा। नईम यह सोचकर लरज़ गया कि उसकी अपनी शक्ल अपने बाप से किस क़दर मेल खाती है।

"वह चुड़ैल तुम्हें दिखाने को रो रही थी।" बुढ़िया ने पंखा नियाज़ बेग के कन्धे में चुभोया।

"हैं ?"

"वही अब रात को टोना करेगी !"

"भौंको मत !" वह यूँ चावलों पर झुक गया, जैसे उन पर ख़फ़ा हो रहा था।

"वह कौन थी, जो रो रही थी ?" नईम ने पूछा।

"वह दूसरी औरत है।" उसकी माँ ने बताया। "तुम्हें उसके घर जाने की कोई ज़रूरत नहीं है। जादूगरनी है !"

---

1. भय, 2. ख़ालीपन।

जब चावल थोड़े से रह गए, तो नियाज़ बेग ने बर्तन अपनी बीवी के आगे सरकाया और उँगलियों से दाढ़ी और सिर के बाल चिकने किए।

"आप कब आए ?"

नियाज़ बेग ने ख़ाली-ख़ाली नज़रों से नईम को देखा। "पर-साल छठे महीने !"

हालाँकि रात बेहद गर्म थी और आँगन की ज़मीन गोबर के मच्छरों से अटी पड़ी थी, पर नईम बेसुध होकर सोया रहा।

जब वह उठा, तो सुबह का उजाला फैल चुका था और घर में कुहराम बरपा था। दोनों औरतें आँगन में अपने-अपने दरवाज़े पर खड़ी झगड़ रही थी। बाज़ू बढ़ा-बढ़ाकर इशारे कर रही थीं और गला फाड़-फाड़कर चीख़ रही थीं।

नईम चारपाई से उठा, तो भैंस ने पेशाब करना शुरू किया। उससे बचने के लिए उछलकर परे हुआ, तो टख़नों तक गोबर में धँस गया। वहाँ से उछला, तो पेशाब के एक छोटे-से तालाब में जा गिरा, जहाँ वह घुटनों तक भीग गया। दिल ही दिल में कोसता हुआ वह नलके के नीचे जा खड़ा हुआ। छोटा लड़का भागता हुआ नलका चलाने के लिए आया।

औरतें चीख़ रही थीं : "परसों 'मैं' ने उसे खिलाया और ले के आज तू उसे घुस गई। गरम कुतिया !" बूढ़ी औरत ने कहा।

"और पिछले महीने ? खिला-पिला के मैं मैके चली गई थी, तो तूने गुलछर्रे नहीं उड़ाए मेरे माल पर !"

"तुम्हारा यार जो मर गया था। तेरा जाना तो ज़रूरी था। और खा-पीकर क्या वह तेरी माँ के पास जा के सोता ?"

"ज़बान बन्द कर, चुड़ैल ! मेरा माल मुफ़्त में नहीं आया। तेरा जवान बेटा कल आया है। आज ही रात को...आज ही रात को तूने...हैं ?"

"तुझे शरम नहीं आती, कमज़ात ! नौ महीने हुए नहीं उसे लौटे, और ले के बच्चा बाहर फेंक दिया। असतग़फ़िरुल्लाह[1]..."

"बदमाश...तेरे सफ़ेद बालों का लिहाज़ है, वरना मैं तेरे बेटे से डरती नहीं हूँ..." छोटी औरत ने जान-बूझकर सिर नंगा करके अपने सियाह बाल बुड्ढे की तरफ़ झटके।

कुछ देर पहले नियाज़ बेग खिसियाना चेहरा लेकर छोटी औरत के कमरे से निकला था और दोनों के दरमियान आ खड़ा हुआ था। थोड़ी देर तक इधर-उधर देखने के बाद ग़ुस्से में आकर वह भी चीख़ने लगा : "चुप रहो ! बेवक़ूफ़। तुम दोनों को बाहर निकाल दूँगा। दोनों को मार दूँगा...दोनों को पीटूँगा...दोनों को..." उसकी दाढ़ी हवा में हिल रही थी और दोनों बाज़ू हवा में लहराता हुआ वह तेज़ी से घूम रहा था। दूर से देखनेवालों के लिए वह किसी देहाती नाच का मंज़र पेश कर रहा था।

"भौंकना बन्द करो, कुतियो ! दोनों को कुत्ते ख़रीद दूँगा। दोनों को गधे ख़रीद दूँगा...दोनों को सुअर ख़रीद दूँगा। फिर ठीक है ?" नाचते हुए उसने बाज़ू से दोनों औरतों के दरमियान की हवा काटी, मगर इस एहतियात के साथ कि दोनों में से एक भी उसके क़रीब न आने पाए। यूँ बचा-बचाकर उसने दो-चार हाथ हवा में चलाए और गर्दन लम्बी करके धमकाता रहा। "ज़मीन में गाड़ दूँगा...ज़िन्दा...जानती हो ? सुअर ख़रीद दूँगा !"

मगर जब दोनों औरतें चिमटे पकड़कर फुँकारती हुई बढ़ीं और गुत्थम-गुत्था हो गईं, तो वह शर्मिन्दगी से हँसता हुआ नईम की तरफ़ आया, "तुम बाहर जाओ। ये सब उजड्ड गँवार औरतें हैं। मैं उन्हें कच्चा चबा जाऊँगा।" उसने उसे दरवाज़े की तरफ़ धकेला।

---

1. अल्लाह मुझे क्षमा करे।

दरवाज़े के बाहर दो कुत्ते चुहलें कर रहे थे। एक पली हुई भैंस इत्मीनान से जुगाली कर रही थी। एक कौआ उसके सिर पर बैठा चोंच मार रहा था और दो बातूनी चिड़ियाँ उसके गोबर को कुरेद रही थीं। रातवाला सिख लड़का छींट की बनियान पहने कुत्तों के पास काहिली से खड़ा जम्हाइयाँ ले रहा था। सामने खाद के ढेर पर एक कुतिया अपने कई बच्चों को दूध पिला रही थी। सिख लड़के ने लापरवाही से नईम को देखा और जम्हाइयाँ लेता रहा।

"तुम चौधरी नियाज़ बेग के बेटे हो ?" फिर उसने परे देखते हुए गँवारों की तरह पूछा।

"हाँ !"

सिख ने एक नौ-उम्र कुत्ते को कान से पकड़कर उठाया और घुमाकर जोहड़ में फेंक दिया। कुत्ता चीख़ता हुआ भैंसों की पीठ पर जा चढ़ा, जो वहाँ नहा रही थीं। छोटे लड़के, जो भैंसों की दुमें पकड़े तैर रहे थे, कुत्ते की नक़ल में चीख़ने और उस पर पानी फेंकने लगे।

"आज फिर बुड्ढियाँ लड़ रही हैं।" सिख लड़का सादगी से हँसा। "रोज़ लड़ती हैं !"

"क्यों ?" नईम ने ग़ुस्से को दबाकर कहा।

"तीन दिन एक चौधरी को मक्खन का पेड़ा और मुर्ग़ा खिलाती है। तीन दिन दूसरी। सातवें दिन चौधरी खेतों में जाकर सोता है, मगर जब एक का खाकर दूसरी के पास चला जाता है, तो लड़ाई हो जाती है !"

नईम की गर्दन पर बाल खड़े हो गए। सिख लड़का फिर ख़ुशदिली से हँसा।

"रोज़ चौधरी कहता है : 'मार दूँगा, गाड़ दूँगा...' पर उसने आज तक हाथ नहीं उठाया !"

नईम इन्तिहाई ग़ुस्से की हालत में भी अपने बाप का हुलिया याद करके हँस पड़ा।

"लेकिन बारह साल उनका बड़ा अच्छा सुलूक रहा। जब चौधरी जेल में था, तो दोनों बहनों की तरह रहीं और एक ही थाली से खाती रहीं और किसी ग़ैर-मर्द की रान नहीं देखी !"

नईम ने दिल में उसे गाली दी।

"बुड्ढे का उन्होंने औरतों की तरह इन्तिज़ार किया।" सिख फिर बोला : "छिनालों की तरह नहीं !"

"कहाँ जा रहे हो ?"

"गन्दुम लादनी है।"

"मैं भी चलूँगा !" नईम ने कहा। सिख लड़का बेध्यानी से चलता रहा। जोहड़ के आख़ीर पे जाकर वे दाईं तरफ़ मुड़ गए। सामने फैले हुए नंगे खेत थे। बाईं तरफ़ गाँव के छोटे-छोटे कच्चे मकान थे। सूरज काफ़ी उठ आया था और गर्म चमकदार धूप खेतों में फैल गई थी। फ़सल काट ली गई थी और कहीं-कहीं हरी घास नज़र आ रही थी। बाक़ी जगह पर भूसे की नाड़ें और ख़ुश्क, सख़्त जड़ें बिखरी हुई थीं। ताज़ा-ताज़ा कटाई के बाद जगह-जगह कबूतरों और दूसरे परिन्दों के ग़ोल परे बैठे चुग रहे थे। दरख़्त सिर्फ़ गाँव के इर्द-गिर्द और जोहड़ के किनारे पर थे। ज़्यादातर शीशम और आम के घने पेड़ थे, जिनके साये में मवेशी बँधे थे और चारपाइयों पर इक्का-दुक्का किसान सो रहे थे। दूर पच्छिम में घने दरख़्तों की क़तार थी और किसी-किसी खेत में पकी हुई फ़सल खड़ी थी। वे दोनों ख़ामोशी से चलते हुए गाँव से निकल आए।

"कटाई की यह कौन-सी रुत है ?"

"हमने देर से बुआई की थी। हमारी वह सामने कुछ फ़सल खड़ी भी है !"

"तुम्हारा नाम क्या है ?"

"ठाकुर महिन्दर सिंह !"

चलते-चलते वे गेहूँ के खेत के क़रीब पहुँच गए। यहाँ की ज़मीन नम और घास सर-सब्ज़ थी।

"तुम कहाँ से आए हो ?" महिन्दर सिंह ने पूछा।

"देहली से !"

"वहाँ रहते हो ?"

"नहीं। मैं कलकत्ते में रहता हूँ।"

"कलकत्ता...!" महिन्दर सिंह रुककर सोचने लगा। फिर उसके चेहरे पर वही बच्चों की-सी हँसी फैल गई। "कलकत्ता बंगाल में है। मुझको पता है !"

"तुम्हें कैसे पता है ?"

"मेरा भापा वहाँ था !"

"वहाँ क्या करता था ?"

"तुम्हें इससे क्या ?"

अजीब जाहिल लोग हैं। नईम ने सोचा, चोरी करता होगा।

वह एक ख़ुश्क बरसाती नाला पार कर रहे थे, जिसकी रेत तपना शुरू हो गई थी।

"तुमने मेरा नाम नहीं पूछा ?"

"तुम चौधरी नियाज़ बेग के लड़के हो। मैं जानता हूँ।" सिख सामने देखता हुआ मोतबरी[1] से बोला। जैसे ही उन्होंने नाला पार किया, वे गन्दुम के खेत के किनारे खड़े थे। सोने के रंग की फ़सल तेज़ धूप में चमक रही थी। हवा बालियों में सरसरा रही थी। फ़सल की ओट में चन्द किसानों के बातें करने की करख़्त[2] आवाज़ें आ रही थीं। एक बड़ा-सा लकड़ी का काँटा थोड़ी-थोड़ी देर बाद फ़सल के ऊपर लहराता। वे गेहूँ अलग कर रहे थे। नईम ने चुनकर एक ख़ूबसूरत बाली को तोड़ा। हथेली में मसलकर दाने निकाले और एक दाना मुँह में डालकर बाक़ी को फेंक दिया।

"तुम्हें फ़सल की क़द्र नहीं। तुमने एक सिट्टा ख़राब कर दिया। तुम शहर से आए हो..." महिन्दर ने नफ़रत से कहा।

सामने से एक लड़की आ रही थी। वह लम्बे क़द की सेहतमन्द लड़की थी, और सिर पर चँगेर और छाछ का मटका उठाए लापरवाही से चल रही थी। उसने कतराकर निकलना चाहा, तो महिन्दर सिंह रास्ता रोककर खड़ा हो गया। वह माथे पर बल डालकर मुस्कराई।

"कहाँ से आ रही हो ?"

"भापे को रोटी दे के।"

"मुझे भी भूक लगी है !"

"तुम्हारी माँ मर गई है ?" लड़की ने बनावटी ग़ुस्से से कहा।

"तुम अपने भापे की माँ हो ?" वह हँसा।

"दाँत मत दिखाओ। मुझे जाने दो !"

महिन्दर सिंह ने छाछ का मटका उसके सिर से उचक लिया। वह ख़ाली था।

"तेरा भापा बड़ा पेटू है। सारी लस्सी पी गया।" वह मटका लड़की के पेट पर मारकर बोला। वह ज़रा-सी झुकी और मटके को उसके हाथ से छीन लिया।

"चँगेर नहीं दिखाऊँगी।" वह पीछे हटती हुई बोली।

"तेरी माँ भी दिखाएगी।" उसने गाली दी और कन्धा लड़की के सीने में चुभोया। वह छाती और हाथों के ज़ोर से धकेलती हुई उसे दूर तक ले गई। इस पर महिन्दर सिंह ने किचकिचाकर ज़ोर लगाया, और उलटे पाँव उसे वापस ले आया। दोनों के चेहरों से पसीना निकल रहा था। हवा से लड़की की धोती का एक पल्लू उड़ रहा था। और उसकी मज़बूत, गन्दुमी रान दिखाई दे रही थी।

"चलो..." महिन्दर सिंह ने ठोड़ी से खड़ी हुई फ़सल की तरफ़ इशारा किया।

---

1. विश्वास, 2. कर्कश।

"नहीं...सुअर..." लड़की ने नाखुन उसके कन्धों में गाड़ दिए। "मुझे जाने दो !"

लेकिन वह उसे धकेलता हुआ फ़सल के अन्दर ले गया और बेशर्मी से हँसते हुए दो दफ़ा "चलो...चलो..." कहा।

"तुम्हारा भापा बैठा है। उसे बुलाऊँ ?" लड़की ने रुककर कहा।

"वह क्या करेगा ?"

"तुम्हारी हड्डियाँ तोड़ेगा !"

"वह हमें नहीं ढूँढ़ सकता !"

तभी फ़सल के पीछे से एक किसान की भारी, ख़ुश्क आवाज़ आई, जो किसी को पुकार रहा था। महिन्दर सिंह ने सीधे होकर बदमज़गी से इधर-उधर देखा और गालियाँ देता हुआ बाहर निकल आया। "कल तुम्हारी सारी लस्सी पियूँगा !"

"कल भापे के साथ जाटनगर जा रही हूँ। बियाई पर लौटूँगी।" लड़की भौंएँ उठाकर शरारत से मुस्कराई और नाले में उतर गई। महिन्दर सिंह ने बड़ी-सी गाली दी और नईम की तरफ़ देखकर हँसा।

"यह कौन थी ?"

"थी एक छिनाल।"

"छिनाल तो नहीं लगती थी !"

"तुम्हारी माँ लगती थी ?" महिन्दर सिंह हँसा।

"बको मत..."

"और क्या लगती थी ?"

नईम के सारे बदन में ग़ुस्से की लहर दौड़ गई। "सुअर, तुम्हारी माँ थी।" महिन्दर रुक गया। आँखें सिकोड़कर नईम की तरफ़ देखते हुए उसने आहिस्तगी और मज़बूती के साथ तहबन्द में उड़सी हुई लकड़ी की पतली बाँसुरी निकाली। "अकड़ो मत...मुझे जानते हो ?"

"जट हो। तुम्हारे पास सिर्फ़ एक बाँसुरी है !"

"यह तुम ले लो।" उसने बाँसुरी नईम की तरफ़ उछाली। "अब भी तुम्हारा सिर तोड़ दूँ..."

"आओ !"

वे आँखों में आँखें डाले खड़े रहे। कई लम्हों तक ख़ामोशी और खिंचाव बढ़ता गया। महिन्दर सिंह ने बेध्यानी से गेहूँ की चन्द बालियाँ उखेड़ीं और उँगलियों में मरोड़ने लगा। उसकी पगड़ी में से गन्दे बालों की एक लट गर्दन तक लटक रही थी और नई-नई दाढ़ी में भूसे के तिनके अटके हुए थे।

फिर उसने सिट्टा ज़मीन पर फेंक दिया और मख़सूस हँसी उसके बड़े-से चेहरे पर फैल गई। "तुम कल आए हो। अभी कुछ रोज़ चौधरी की बुड्ढियों का दूध पियो। फिर लड़ना..."

"बुज़दिल !" नईम ने बाँसुरी गिरा दी।

"मैं तुमसे नहीं लड़ता।" महिन्दर सिंह हँसा और बाँसुरी उठाकर होंठों से लगा ली।

उसके पीछे चलते हुए नईम ने देखा कि उसके कन्धे, जो बनियान से बाहर रहते थे, सियाह हो चुके थे और बाक़ी कमर पर, जो गन्दुमी रंग की थी, बनियान के मुस्तक़िल निशानात पड़ गए थे।

"तुम क़मीज़ नहीं पहनते ?" नईम ने पूछा। महिन्दर सिंह ने मुड़कर देखा और बाँसुरी बजाता रहा।

चलते-चलते वे दाएँ हाथ मुड़ गए। सामने चन्द किसान तेज़ धूप में झुके हुए गन्दुम से भूसा अलग कर रहे थे। उनके जिस्म सियाह और चमकदार थे।

कई महीने गुज़र गए। नईम ने बाप के साथ थोड़ा-थोड़ा काम करना शुरू कर दिया था। बाक़ी सारा वक़्त वह सोया रहता। वह बहुत ज़्यादा खाने और सोने लगा था। उसका ज़ेहन गड्डमड्ड-सा रहता और नामालूम-सा बेवजह ग़ुस्सा हर वक़्त उस पर छाया रहता। भारी-भारी क़दमों से चलते हुए वह हैरत और ख़ौफ़ से देखता कि वह मोटा हो रहा है। उसका पेट बढ़ रहा है और ठोड़ी के नीचे गोश्त लटकनेवाला है। इस ख़याल से वह हर वक़्त झुँझलाया रहता कि वह इन्तिहाई काहिल और पेटू होता जा रहा है, गो उसका बाप कहता रहता कि गर्मियों के मौसम में नींद अक्सर ज़्यादा आती है और यह सेहत के लिए मुफ़ीद[1] होती है।

कभी-कभी वह खेतों में काम करते हुए बाप से कहता : "तुम अपनी दुकान शुरू क्यों नहीं करते हो, बाबा ? यह काम बहुत सख़्त है। मैं भी दुकान पर काम करूँगा !"

नियाज़ बेग के गाल सियाह हो जाते। ख़ौफ़ एक वाहिद जज़्बा था, जो ऐसे वक़्तों में उसकी आँखों से ज़ाहिर होता। फिर जल्द ही वही मुस्तक़िल, पागल ख़ला[2] उसकी जगह ले लेता और वह खेत में झुक जाता, "हाँ...हाँ...हम किसी रोज़ दुकान शुरू करेंगे, मगर ज़मीन का काम भी अच्छा है। हम ज़मीन का ही खाते हैं।"

फिर कभी वह बुड्ढे को समझाता : "यह हर वक़्त लड़ते रहना भी अच्छा नहीं। लोगों की नज़र में इज़्ज़त जाती रहती है। औरतों के साथ सुलूक से रहा करो, और गालियाँ मत दिया करो !"

उस वक़्त नियाज़ बेग ग़ुस्से में आकर चीख़ने लगता : "और तुम मुझे सबक़ देने के लिए आए हो ? तुम मेरे नुत्फ़े[3] से हो, तुम्हें पता है ? अपनी अक़्ल अपने पास रखो। मेरा सिर मेरे लिए काफ़ी है !"

रात को वे खाने पर बैठते। हफ़्ते में तीन दिन बुड्ढा उनके साथ खाता। तीन दिन दूसरी औरत के साथ। सातवें दिन नईम या छोटा लड़का उसका खाना लेकर खेतों में जाते। सिर्फ़ वही तीन रोज़, जब घर का मालिक मेहमान होता, खाना अच्छा पकता। बाक़ी दिनों में रूखा-सूखा खाने को मिलता। ज़ाहिर है।

अयाज़ बेग के कई ख़त आए, जिनका नईम ने कोई जवाब न दिया। एक रोज़ वह महिन्दर सिंह के साथ घुड़दौड़ का मुक़ाबला करके लौट रहा था कि जोहड़ के किनारे उसे अयाज़ बेग का मोतमदे-ख़ास[4] मिला, जो देहली में रहता था। वह सूखे चेहरे और सियाह दाँतोंवाला वज़अदार[5] बुड्ढा था। नईम को देखकर उसके चेहरे पर रौनक़ आ गई और वह घोड़े के साथ-साथ भागने लगा।

"मैं आपसे मिलने के लिए आया हूँ, भैया ! मैं आपके घर भी गया था !"

नईम ने घोड़ा रोक लिया। "फिर ?"

"चौधरी ने मुझे गालियाँ दीं, जनाब, और जान से मार डालने की धमकी दी !"

नईम ख़ामोश रहा।

"आपके चचा ने आपको बुलाया है, भैया ! वे बहुत परेशान हैं। छह बार देहली आ चुके हैं इस दौरान में !"

नईम ने बेध्यानी से घोड़े की अयाल पर हाथ फेरा, "सेहत कैसी है चचा की ?"

"यूँ सेहत तो ठीक है, मगर आप न गए भैया, तो ख़राब हो जाएगी !"

वह इन्हिमाक[6] के साथ अयाल नोचता रहा। सूरज छुप रहा था, जब उसके सीने में कोई भारी, बदमज़ा-सी चीज़ तैरती हुई नीचे की तरफ़ उतरी और उसने पूछा : "और सब लोग कैसे हैं ?"

---

1. लाभदायक, 2. शून्य, 3. वीर्य, 4. विश्वासी, 5. शिष्ट, 6. तल्लीनता।

''सब ठीक हैं, भैया ! ठाकुर दर्शन सिंह का इन्तिक़ाल हो गया। रौशन महल के परवेज़ मियाँ विलायत चले गए।'' वह बताने लगा। नईम घोड़े की पुश्त पर बैठा बेख़याली से उसके ग़ैर-दिलचस्प, मशीनी चेहरे को हिलते हुए देखता रहा। फिर एक ख़याल, बड़ा तेज़ और वाज़ेह उसके ज़ेहन में उभरा, ''क्या फ़ायदा ?''

अचानक नफ़रत और गुस्से का तूफ़ान उसके ऊपर से गुज़रा, ''जाओ !'' वह बाज़ू से पीछे की तरफ़ इशारा करके चीख़ा। ''मैं नहीं जाऊँगा !'' और घोड़े की पसलियों में एड़ियाँ मारने लगा।

वह अभी ज़्यादा दूर न गया था कि पीछे से नियाज़ बेग की आवाज़ सुनकर रुक गया। वह गालियाँ दे रहा था और मख़सूस अन्दाज़ में एक टाँग पर नाच रहा था, ''जा, हरामज़ादे नौकर ! मेरा बेटा नहीं जाएगा। जाकर उसे कह दे कि वह मेरे बाप के नुत्फ़े से नहीं है। वह जुलाहा है और तू जुलाहे का नौकर है, चुनाँचे जुलाहा है। दफ़े हो जा !''

मोतमदे-ख़ास, जो मिस्कीन और वज़अदार आदमी था, पहले हक्का-बक्का खड़ा देखता रहा। फिर अपनी बेइज़्ज़ती का ख़याल करके एकदम गर्म हो गया और रुक-रुककर बोला : ''तुम उसकी ज़मीन में से नहीं खाते ? तुम्हारी कहाँ है ? कहाँ है आपकी ? हिसाब दीजिए !''

नईम ने घोड़े को एड़ लगाई और मोतमद के सिर पर जा चढ़ा। मोतमद गिरा। फिर उठा और पूरी क़ुव्वत से भागने लगा।

''जुलाहे...नौकर...'' चीख़ता हुआ नियाज़ बेग दूर तक उसके पीछे भागता गया। धुँधलके में गाँव पर उपलों के धुएँ का ग़िलाफ़ चढ़ा हुआ था।

6

बियाई ज़ोरों पर थी। पिछले चन्द दिनों में नियाज़ बेग और नईम ने बहुत मेहनत की थी। उनके पास बैलों की सिर्फ़ एक जोड़ी थी, गो महिन्दर सिंह कई बार उन्हें एक जोड़ी मुहैया कर देने की पेशकश कर चुका था, मगर बाप-बेटे जानते थे कि ये बैल चोरी के होंगे। चुनाँचे वे अपने दो बैलों पर क़ाने[1] रहे और आठ एकड़ ज़मीन बियाई के लिए तैयार करके बाक़ी पाँच एकड़ सावनी के लिए छोड़ दी। कुल तेरह एकड़ उनकी मिल्कियत थी।

अभी बहुत रात बाक़ी थी, जब नियाज़ बेग ने उठकर हुक़्क़े में पानी डाला। चूल्हे में से रात का दबाया हुआ दहकता हुआ उपला निकाला। तम्बाकू सुलगाया और हुक़्क़ा पीने लगा। बुड्ढा और छोटा लड़का ज़मीन पर सो रहे थे। कोने में नईम की चारपाई थी।

''आज आख़िरी रात है, इधर...'' ऊँघते हुए उसने सोचा और अपनी बीवी के ढीले-ढाले, सूखे जिस्म पर हाथ फेरने लगा। औरत नींद में कसमसाई। कमरे में सोते हुए इनसानी जिस्मों की मख़सूस बू थी, और गर्म, नींद में डूबी भारी साँसों की आवाज़ आ रही थी। आँगन में फैली हुई सफ़ेद ठंडी चाँदनी दरवाज़े के अन्दर आ रही थी और कमरे में रुका हुआ उपलों का धुआँ दूधिया दिखाई दे रहा था। नियाज़ बेग वहीं बैठा-बैठा साथवाले कमरे में सोती हुई छोटी औरत और आनेवाली रात के ख़याल से दिल ही दिल में मज़ा लेने लगा।

फिर उसने उठकर कमरा पार किया और हुक़्क़े की नै नईम की गर्दन में चुभोई, ''कैसे सोते हो ? जाड़ा सिर पर आ गया और बियाई अभी इतनी बाक़ी है !''

नईम ने अँधेरे में आँखें खोलीं और करवट बदलकर सो गया। नियाज़ बेग चारपाई पर बैठकर हुक़्क़ा गुड़गुड़ाने लगा। नईम की नींद उचाट हो गई।

''मैं हल लेकर कीकरवाले खेत में जा रहा हूँ। बीज लेकर आ जाओ।'' नै मुँह से अलग किए

---

1. आत्मसन्तोषी।

बग़ैर उसने कहा और बुढ़िया के पास जाकर रुक गया। एक पाँव उठाकर उसने सोती हुई औरत के पेट पर रखा और हौले से दबाया। फिर उसके सीने पर, फिर गर्दन पर, फिर टाँगों पर, कुछ देर तक इसी तरह अपने तलवों में बूढ़े जिस्म की गर्मी महसूस करता रहा। फिर अँधेरे में हँसा और बाहर निकल आया।

"उठो...किसानों के बेटे लड़कियों की तरह नहीं सोते।" दरवाज़े पर से हल उठाते हुए उसने कहा और बैल खोलकर खेतों की तरफ़ चल पड़ा।

कातिक का चाँद जैसे बिलकुल सामने खड़ा था, और आख़ीर ख़िज़ाँ की ठंडी और सफ़ेद लट्ठे की-सी खड़खड़ाती हुई रात चारों तरफ़ फैली हुई थी। जोहड़ के किनारे चन्द कुत्ते उस पर काहिली से भोंके। दरख़्तों के नीचे सोए हुए किसानों ने सिर उठाकर देखा और करवट बदलकर फिर सो गए।

"इतने सवेरे कहाँ जाते हो, चौधरी ?" एक किसान ने नींद में डूबी आवाज़ में पूछा।

"बियाई को !"

"अल्लाह करम करे !"

"अल्लाह करम करे !" नियाज़ बेग ने उकताहट से दुहराया।

"लौंडे को मेहनत कराया करो। शहर में रहकर नाजुक हो गया है।"

वह नईम के देर करने पर ग़ुस्से से भिन्ना गया, मगर बैलों की रस्सियाँ थामे, हुक़्क़ा गुड़गुड़ाता हुआ चलता रहा। ख़ामोश, सफ़ेद फ़िज़ा में बैलों की घंटियाँ, सहरख़ेज़ी[1] से बज रही थीं।

कीकर के नीचे पहुँचकर हल जोतने लगा। फिर खेत में घुस गया और ज़मीन को महसूस करने लगा।

"बिलकुल तैयार है।" उसने अपने आपसे कहा और ख़ुशी के मारे खेत का लम्बा चक्कर काटा। ज़मीन सुहागा फिराकर हमवार कर दी गई थी और अन्दर से नर्म और गीली थी। उसमें बस इतना पानी था कि मिट्टी हाथ में भर भी जाए और उँगलियों पर नमी भी छोड़ जाए।

"पानी पूरा है ! बिलकुल पूरा है।" उसने बार-बार मिट्टी को हाथ में लेकर मलते हुए कहा। फिर जाकर बैलों को थपथपाया और जैसा कि कुछ किसानों को आदत हो जाती है, उनका मिज़ाज पूछा। चाँदनी रात में एक साया उसके क़रीब आकर रुक गया।

"किससे बातें कर रहे हो ?" यह एक लम्बा-तड़ंगा सिख किसान था।

"ज़मीन में बिलकुल पूरा पानी है।" नियाज़ बेग भागकर गया और मुट्ठी भर मिट्टी लाकर ख़ुशी से उसे दिखाने लगा। सिख किसान ने मिट्टी को उँगलियों में मला और गिरा दिया।

"बिलकुल पूरा पानी है।" सिख ने दुहराया।

"कहाँ जा रहे हो ?"

"पानी लगाने !"

"पानी लगाने ? अब ?"

"हट...तो बियाई कब करोगे ?"

"पानी अब मिला है," सिख ने दोबारा अफ़सोस से कहा।

"अच्छा, तो ओ ओ ओ...अब तुम पानी दोगे, तो बियाई माघ में कहीं जाकर हुई...ऐं ?"

"हाँ !"

"तुम्हें जल्दी करनी चाहिए। तुम हमेशा देर कर देते हो। पारसाल तुमने फ़सल छठे महीने में जाकर उठाई थी। याद है ?"

"वाहेगुरु की मर्ज़ी !"

1. तड़के से।

"तुम्हें सुस्ती नहीं करनी चाहिए !"

"और तुम समझते हो कि मैं औरत के साथ सोया रहता हूँ ? मेरी सिर्फ़ एक औरत है।" सिख किसानों की मोटी, भद्दी आवाज़ में हँसा।

उसके जाने के बाद नियाज़ बेग ने ग़ुस्से से इधर-उधर देखा और घर की जानिब दौड़ पड़ा। नईम अभी तक सो रहा था। उसने ऊँची आवाज़ में उसे पुकारा : "हम जब जवान हुए, तो हमारे बाप ने लस्सी-पानी हमारा सब बन्द कर दिया कि सो-सोकर पोस्ती न हो जाएँ।" उसने कहा। नईम नींद से बोझल जिस्म लिए चारपाई के किनारे पर बैठा रहा, "चिल्लाते क्यों हो ? अभी इतनी रात बाक़ी है..." वह झुँझलाया। रात के खाने से अभी तक उसके पेट में भारीपन था। आँखें बन्द किए-किए उसने पतलून टाँगों पर चढ़ाई।

दोनों ने मिलकर गन्दुम की बोरी घोड़ी की पीठ पर रखी और बाहर निकल आए। हाथ से बोरी थामे वह घोड़ी के बराबर खेतों के बीचों-बीच चलता रहा। नियाज़ बेग, जो पीछे-पीछे आ रहा था, कभी-कभी तेज़, बेसुरी आवाज़ में गाने लगता। चाँदनी इस क़दर साफ़ थी कि च्यूंटी तक नज़र आ रही थी। पिछली रात की बोझल, नमदार हवा उसके चेहरे से टकराई और वह चलते-चलते ऊँघने लगा।

कीकर के नीचे एक गीदड़ मुँह उठाए खड़ा ग़ौर से बैलों को देख रहा था। नियाज़ बेग ने दूर से उसे देख लिया। उसने फ़ौरन नईम को रोका। चक्कर काटकर दबे पाँव पीछे से गया। क़रीब जाकर घुटनों के बल हो गया। फिर लेट गया और आहिस्ता-आहिस्ता रेंगने लगा। गीदड़ आहट पाकर चौंका और भाग गया। नियाज़ बेग ने गाली दी, "लालू की घोड़ी पाले से जुड़ गई है। उसके लिए चाहिए था।"

"गीदड़ ?" नईम ने पूछा।

"हाँ ! उसका गोश्त गर्म होता है !"

बोरी उतरवाकर वह फ़ौरन खेत में घुस गया। "आओ...मेरे साथ चलो !" दूसरे चक्कर पर गुज़रते हुए वह पुकारा : "देखो...बियाई का तरीक़ा दूसरा होता है। इसमें तुम हत्थी पर बोझ नहीं डालोगे। सिर्फ़ नाली को ज़मीन में डुबोए रखना है। हूँ ? लो करो ! और बीज नाली में डाले जाओ। इसे नल-बियाई कहते हैं !"

उसने नाली नईम के हवाले की। बीज की झोली उसकी पुश्त पर कसकर बाँधी और साथ-साथ चलने लगा। तीसरे चक्कर पर वह खेत से बाहर निकल आया और कीकर के नीचे खड़ा होकर देखने लगा।

"हूँ...हूँ...हूँ...लकीर टेढ़ी आ रही है।" वह वहीं से चीख़ा। नईम उलटे-सीधे क़दम रखता, नाली से कुश्ती करता, दबी आवाज़ में गालियाँ देता बैलों के पीछे-पीछे चलता रहा।

"हुवावूं..." उसका बाप फिर चिल्लाया : "अन्धे हो ? बीज बाहर गिर रहा है !"

"तुम्हारी नज़र बड़ी तेज़ है।" नईम ने जलकर कहा : "चाँद की रौशनी में दाने देखते हो !"

वह बेहद एहतियात के साथ बियाई कर रहा था, लेकिन थोड़ी-थोड़ी देर बाद उसे बराबर डाँट पड़ रही थी। लकीर सीधी रखने की कोशिश में बीज बाहर गिरने लगता और उसकी तरफ़ ध्यान देता, तो नाली बाहर निकल आती। ठंड के बावजूद उसके सारे जिस्म में से पसीना निकल रहा था।

"नीले की दुम मरोड़। ऊपरवाले की। दबता है कमीन का बैल ! खाने को तो तीन मरले भी खा जाए !" उसका बाप चीख़ा। वह बग़ैर सुने काम में लगा रहा। जब दोबारा नियाज़ बेग चिल्लाया : "नीले को चलाओ नीले को..." तो उसने झुँझलाकर बैल रोक दिए और ख़ाली झोली कमर पर से उतारकर उसके पास ला फेंकी।

"जब मैंने पहले दिन बियाई की थी, तो एक सौ चालीस कीकर की छड़ियाँ मुझे पड़ी थीं।

इतनी बैलों को नहीं मारीं, जितनी बाप ने मुझको मारीं।" नियाज़ बेग ने झोली भरकर नईम की कमर पर कसते हुए कहा।

"तो तुम अब बदला उतारना चाहते हो ?"

"काम करो। चिल्लाओ नहीं। सवेरा होनेवाला है !"

"दादा जब मरा, तो तुम छोटे-से थे। मुझे पता है !"

"जिरह मत करो। सवेरा होनेवाला है !"

सुबह का सितारा तेज़ी से चमकने लगा। फिर दूसरे सितारे एक-एक करके ग़ायब होने लगे। उजाला फैला और चाँद सफ़ेद हो गया। सूरज निकलने तक नईम का जिस्म इतना नहीं थका था, जितना उसका मिज़ाज नियाज़ बेग की झक-झक से बिगड़ चुका था, मगर आख़िर उसने बियाई करना सीख ली थी। आख़िरी खेत उसने मुकम्मल सफ़ाई से बोया था। दो घड़ी दिन गुज़र चुका था, जब उसने बैल खोले। उन्हें कीकर तले बाँधा और लस्सी का मटका उठाकर मुँह से लगा लिया। उसकी छोटी माँ आज अपनी बारी पर छाछ और रोटी लेकर आई थी। दस्तरख़्वान पर दो बाजरे की रोटियाँ पड़ी थीं। एक पर मक्खन चुपड़ा था, जिसे उसका बाप खाने लगा। ख़ुश्क रोटी उसके हिस्से में आई। उसकी माँ बैठी चन्द माह के बच्चे को दूध पिला रही थी। वह मामूली शक्ल की एक सीधी-सादी औरत थी और उसके सँवलाए हुए चेहरे पर किसान औरतों की आम जिल्दी[1] बीमारी के सफ़ेद धब्बे थे।

"अभी एक तिहाई बियाई हुई है।" नियाज़ बेग ने खाते हुए कहा।

"बाक़ी कल करेंगे !"

"कल ? कल ?" फिर वह तन्ज़[2] से हँसा, "कलकत्ते में बियाई फागुन तक करते रहते हैं ? आज शाम तक बियाई ख़त्म हो जानी चाहिए...सुना ? कल...हुँह ! हुँह...हुँह...कल !"

"कल क्यों नहीं ?" नईम ने ग़ुस्से से कहा।

"जो दो सेर आज रात को हम बीज में से खा लेंगे, कल वह कहाँ से आएगा ?"

वे ख़ामोशी से खाते रहे। उसके बाप के जबड़ों की आवाज़ दूर तक जा रही थी। कई किसान हल पकड़े हुए पास से गुज़रे। सूरज ऊँचा हो गया था और धूप में सफ़ेदी और सख़्ती आ चली थी। ताज़ा-ताज़ा बिछाए हुए बीज पर कबूतरों के ग़ोल के ग़ोल आ रहे थे, जिन्हें नियाज़ बेग गालियाँ देता हुआ उड़ाता जा रहा था।

"नईम को भी मक्खन दो !" औरत ने नियाज़ बेग से कहा।

"हाँ ! हाँ ! लो खाओ। आज तुमने मेहनत की है !"

नईम अपनी रोटी ख़त्म करके बाप की रोटी खाने लगा।

"मैं तो तुम्हें भी अली की तरह समझती हूँ।" छोटी माँ ने उससे कहा। नईम ने ख़ामोशी से खाना ख़त्म किया और लस्सी का कटोरा भर के पिया। फिर वह सोए हुए बच्चे के गालों पर हाथ फेरने लगा। नियाज़ बेग ने बाक़ी लस्सी एक साँस में चढ़ाई और हुक़्क़ा गुड़गुड़ाने लगा।

"लो, हुक़्क़ा पी लो। फिर तुम्हें काम करना है।"

"मैं नहीं पीता !" नईम ने ज़मीन पर लेटते हुए कहा : "मुझसे अब बियाई नहीं होगी !"

नियाज़ बेग ने टेढ़ी नज़रों से उसे देखा। फिर ग़ुस्सा दिखाने को हवा में बाज़ू फेंक-फेंककर कबूतरों को गालियाँ देने लगा। जब सारा तम्बाकू जल गया, तो वह उठा, "इसीलिए बियाई के दिनों में हमें मक्खन नहीं मिलता था।" उसने अपने आपसे बात की और झोली कमर पर लादकर खेत में चला गया।

धूप तेज़ हो गई। कीकर के नीचे की ज़मीन बयक-वक़्त नीम-गर्म, ठंडी और नमदार थी। नईम

1. त्वचा रोग, 2. व्यंग्य।

को छाछ और बाजरे की ख़ुमारी चढ़ने लगी।

"तुम्हारी माँ समझती है, मैं तुम्हारी दुश्मन् हूँ।" छोटी माँ ने बात शुरू की। "अब एली हो गया, तो मेरा क्या क़ुसूर है ? वह कहती है, मैंने टोना किया है !"

नईम बच्चे के जिस्म पर हाथ फेरता रहा। वह छोटा-सा, सेहतमन्द, गन्दुमी रंग का बच्चा था और उसके सोते हुए मुँह से दूध की बू आ रही थी, "हाँ ! तुम्हें लड़ना नहीं चाहिए ! मैंने माँ से कहा था।" उसने कहा। बच्चे की पकी हुई फ़सल की तरह सुनहरी जिल्द को थपकते हुए उसे बहुत प्यार आया। लेटे-लेटे मुँह आगे बढ़ाकर उसने उसे प्यार किया। वह पहली दफ़ा उस बच्चे को प्यार कर रहा था और शायद पहली बार उस अजनबी, दुश्मन औरत से बात कर रहा था।

"आज मैंने तीन खेत बियाई की है। अली को खूब दूध पिलाओ। फिर हम मुक़ाबले पर हल चलाया करेंगे...और बाप बैठकर गालियाँ दिया करेगा।"

लड़का हिला और आँखें बन्द किए-किए रोने लगा। माँ ने गिरेबान खोलकर बड़ी-सी, गन्दुमी दूध से भरी हुई छाती उसके मुँह में दे दी।

"तुम भी मेरे बेटे हो। एली भी। तुम दोनों का एक ख़ून है !"

नईम बच्चे का पाँव दाँतों में लेकर दबा रहा था। औरत ने पहली बार ग़ौर से उस जवान, अजनबी आदमी की तरफ़ देखा और रोने लगी।

"बारह साल तक हम बहनों की तरह रहीं। मेरे बाप ने, जब मेरा पहला ख़ाविन्द मर गया, तो मुझे यहाँ पर दे दिया। मुझे आए हुए बीस दिन हुए थे कि तुम्हारा बाप चला गया। हम एक छत के नीचे रहीं और किसी दूसरे मर्द की रान न देखी। अब वह मेरी दुश्मन है।" वह देर तक बातें करती रही। नईम लेटा-लेटा सो गया।

सारा पिछला पहर नियाज़ बेग बियाई करता रहा। धूप में काम करने से उसका रंग सियाह हो गया और पसीने से दाढ़ी और छाती के बाल भीग गए। मगर जब वह वापस आया, तो बीज की बोरी ख़ाली हो चुकी थी और दो खेत अभी बाक़ी थे। वह थकी हुई आवाज़ में बोला : "उधार लेना पड़ेगा। बैलों को घर ले जाओ !"

जागीरदार का मुंशी, जो हवेली के एक हिस्से में रहता था, अधेड़ उम्र, मोटा-ताज़ा, सुर्ख़ रंगत का आदमी था और आँखों पर चश्मा लगाता था, जिससे उसकी हैसियत गाँव में यूँ ही मुसल्लम[1] हो जाती थी। जब यह बाप बेटा नहा-धोकर उसके पास पहुँचे, तो वह दूर से देखकर पुकारा : "आओ, चौधरी ! कैसी गुज़ार रहे हो ? क़र्ज़ के बग़ैर ?"

"हाँ क़र्ज़ के बग़ैर, क़र्ज़ के बग़ैर..." नियाज़ बेग ने उसके पास दीवान पर बैठते हुए कहा, "पर अब नहीं !"

"जान माँग लो चौधरी, पर बीज न माँगो। एक दाना जो हो, भाई...क़सम है..."

"क़सम न खा, गुनहगार ! रुक जा ! मैं एक क़दम बे-बोई ज़मीन के लिए जान दे दूँगा। तुम जानते हो, कमीन !" वह हँसा। मुंशी ने ज़ोर से उसकी पीठ पर हाथ मारा और गाली दी। फिर वे खुसर-फुसर करने लगे।

"एक दस, बस बस...ज़्यादा मत बको...एक दस ठीक है !" नियाज़ बेग ने कहा।

"मैं तेरी दाढ़ी का एक बाल न छोड़ूँगा, याद रख..." मुंशी हँसा। "एक बारह..."

"बस बस...एक दस...एक दस..." नियाज़ बेग उठ खड़ा हुआ।

"एक बारह...एक बारह..." मुंशी ने दोहराया और नीचे बैठे एक किसान को इशारा किया।

"अल्लाह करम करे !"

"अल्लाह करम करे !"

---

1. निर्विवाद।

दोनों ने मुंशी के गोदाम से आधा बोरी गन्दुम की ली और उसे घोड़ी पर लादकर वापस हुए।

"हमें अब दस बोरियाँ देनी पड़ेंगी ?" नईम ने बोरी थामकर चलते हुए पूछा।

"पाँच...यह आधी बोरी है।"

"बहुत ज़्यादा है। तुम फ़सल में से क्यों नहीं रखते ?"

"इस दफ़ा तो बहुत था।" वह रुका। "एक और मुँह जो आ गया।"

"कौन ?" नईम ने बेख़याली में पूछा। फिर एकदम वह बेहद झल्ला गया। "तो मैं चला जाऊँ ?"

नियाज़ बेग चुपचाप सिर झुकाए चलता रहा। बढ़ते हुए अँधेरे में उसके चौड़े जिस्म का थोड़ा-सा झुकाव और ढलके हुए कन्धे एक बूढ़े देव के मालूम हो रहे थे। उसके भारी क़दमों की मुस्तक़िल, मुसलसल आवाज़ गली में उठ रही थी। बे-किवाड़ के दरवाज़ों के सामने से गुज़रते हुए उन्हें औरतें और मर्द चूल्हों के गिर्द बैठे खाते हुए दिखाई दिए। उपलों का तेज़ घना धुआँ गली को लपेट में लिए था और वह बार-बार आँखें पोंछ रहे थे।

फिर उसने सिर उठाया, और जब वह बोला, तो उसकी भारी, करख़्त आवाज़ में किसानों के ख़ाम जज़्बात की नर्मी और कँपकँपाहट थी।

"नहीं...तुम भी अपना ही ख़ून और गोश्त हो। पर तुम्हें काम करना चाहिए।"

जाड़ों की एक शाम को महिन्दर सिंह के घर चन्द लोग जमा हुए। उनमें ज़्यादातर गाँव के नौजवान थे, जो उसके भाइयों के दोस्त थे, और अलग-अलग टोलियों में बैठे थे। हर एक टोली का सरग़ना महिन्दर सिंह का एक भाई था, जो अपने दोस्तों के हलक़े में बैठा डींगें मार रहा था और बड़ी इन्किसारी[1] के साथ दूध के गिलास पेश करता जा रहा था। सब नौजवान नहा-धोकर, खेतों की मिट्टी उतारकर, आँखों में सुरमा और सिर में तेल डालकर आए थे। उन्होंने अपने-अपने बेहतरीन, भड़कीले और रँगे हुए कच्चे चमड़े की जूतियाँ पहन रखी थीं।

सिखों का घर गाँव से बाहर जोहड़ के किनारे पर था। दालान में जहाँ लोग जमा थे, चन्द चारपाइयाँ पड़ी थीं और दीवार के साथ दो लालटेनें लटक रही थीं। कुछ लोग चारपाइयों पर बैठे थे। बाक़ी चटाइयों पर, जो नीचे बिछी थीं। कमरा धुएँ, मिट्टी के तेल की बू, क़हक़हों और बातों के शोर से भरा हुआ था। महिन्दर सिंह का बड़ा भाई उस रात का दूलहा था। उसने सफ़ेद, झूठे रेशम का लिबास पहन रखा था और सिर से नंगा था। कड़ाके का जाड़ा पड़ रहा था, लेकिन अपने-अपने लिबास दिखाने के शौक़ में सब नौजवानों ने लोइयाँ और कम्बल उतारकर कोने में ढेर कर दिए थे और अब कच्चे दूध के नशे में क़हक़हे लगा रहे थे।

"मेरी गन्दुम में तो घुटने नज़र नहीं आते, महिन्दरू !" फ़क़ीर दीन ने, जो मुंशी का ख़ास जाँनिसार था, कंजी आँखें झपकते हुए कहा।

"हाँ बे ! तुम्हारी फ़सल में तो मुंशी और उसकी बीवी ने एक-एक पौदे पर पेशाब किया है। कल को तुम्हारा पेंदा भी नज़र न आएगा।" महिन्दर सिंह ने कहा, जो अकेला फिर रहा था।

जोगिन्दर सिंह को मेहमानों की देखभाल के सिलसिले में बार-बार बाहर जाना पड़ रहा था, लेकिन कीकर की शराब के नशे में उसे सर्दी का एहसास न था और वह तेज़ हवा में ख़ाली क़मीज़ फड़फड़ाता हुआ अन्दर-बाहर फिर रहा था। साथवाले कमरे में, जहाँ भूसा भरा था, ख़ाली जगह पर चटाई बिछाकर शराब की मटकी धरी थी और पीनेवाले किसान इर्द-गिर्द बैठे बातें कर रहे थे।

"मेरा नीला बीमारी की हालत में भी छह घंटे मुतवातिर हल के आगे चल सकता है।" मँझले भाई करम सिंह ने कहा।

---

1. विनम्रता।

"और आसानी से दो मरले ज़मीन तैयार कर सकता है।" एक बूढ़ा, जो भूसे के ढेर के साथ लेटा था, बोला।

"ओ कुबड़े बूढ़े ! तेरी माँ..." करम सिंह ने शराब से भरा हुआ मिट्टी का प्याला ज़मीन पर दे मारा।

साथ बैठे हुए तीन आदमियों ने, जो देर से आहिस्ता-आहिस्ता बातें कर रहे थे, शराब के प्याले ज़मीन पर रखे और किसी बात पर हँसने लगे। वह सिर पीछे फेंककर करख़्त[1] आवाज़ों से हँस रहे थे, और अपने खुरदरे, बड़ी-बड़ी गाँठोंवाले हाथों से तालियाँ बजा रहे थे। उनके सियाह चेहरों पर शराब और हँसी की वजह से मोटी-मोटी रगें उभर आई थीं। उन्हें देखकर करम सिंह हँसने लगा और बूढ़े की रान पर हाथ मारकर बोला : "देख कुबड़े जुलाहे ! इनकी माँ को कुछ हो गया !"

बूढ़ा मसख़रा चीख़ें मारकर हँसने लगा। थोड़ी-सी शराब छलककर उसकी छाती के सफ़ेद बालों में जज़्ब हो गई, जोगिन्दर सिंह दरवाज़े पर नमूदार हुआ।

"छह माह बाद मैंने यह मटकी निकाली है, आज के लिए।...और यह तेरे दादे से भी बुड्ढे कीकर की है...कुबड़ू...दो घूँट तेरी अक़्ल के लिए बहुत हैं...थोड़ी पी..." वह हँसकर आगे चला गया।

कुछ देर के बाद जब एक मोटी-ताज़ी जवान लड़की, जो जोगिन्दर सिंह की बीवी थी, दरवाज़े के सामने से गुज़री, तो उसके मुँह से ख़ौफ़ की हलकी-सी चीख़ निकल गई। हवा के ज़ोर से बूढ़े की चिलम से चन्द चिंगारियाँ उड़कर भूसे पर जा गिरी थीं और वह जगह-जगह से सुलग रहा था। लड़की ने बदहवासी के साथ अपने ख़ाविन्द को आवाज़ें देकर बुलाया, जिसने गालियाँ देते हुए भाग-भागकर पानी की चन्द बाल्टियाँ भूसे पर डालीं।

"सारा नशा ख़राब कर दिया ससुरे ने। इस वाहेगुरु के दुश्मन को यहाँ क्यों लाए ?" वह बुड्ढे से हुक़्क़ा छीनते हुए बोला।

"देख ओ जोगिन्दरे ! भूसे की माँ को अग्ग लग जाए।" करम सिंह ने बड़े भाई से कहा, "ठाकुर बलदेव सिंह मेरा मेहमान है। तू हुक़्क़ा यहाँ रख दे।"

जोगिन्दरे ने अपने छोटे भाई के नशीले चेहरे की तरफ़ देखा और हुक़्क़ा छोड़ दिया। "दरवाज़ा तो बन्द करो फिर !" वह आँखें निकालकर बोला।

"अब पहले गीला भूसा जानवरों को डालना, वरना सारा सड़ जाएगा।" उसकी बीवी कुलदीप कौर ने कहा।

"कुतिया की औलाद...सारा नशा ख़राब कर दिया माँ के यार ने !" वह कुंडी चढ़ाकर चला गया।

कुलदीप कौर, जिसने शादी के बाद पहली बार इतने सारे लोग देखे थे, बग़ैर पिए नशे में थी। वह मुस्तैदी से खाने का इन्तिज़ाम करती हुई, भारी कूल्हे हिला-हिलाकर और छाती आगे निकालकर चलती हुई इधर-उधर आ-जा रही थी। मज़बूत जिस्म की होने के बावजूद उसके चेहरे पर मासूमियत थी और औरतों के ख़ूबसूरत नक़्श उसके हिस्से में आए थे।

नईम जोहड़ के किनारे चलता उनके घर में दाख़िल हुआ।

"शादी हो रही है ?"

"नहीं ! दस्तारबन्दी है।" महिन्दर सिंह ने कहा। नईम गाँव भर में उसका वाहिद दोस्त था। दोनों दालान की तरफ़ चले गए। अन्दर जो लोग बैठे थे, सब जागीरदार के किसान थे, और नईम ग़रीब होने के बावजूद काश्तकार का बेटा था। चुनाँचे सबने उसे अपनी-अपनी तरफ़ बुलाकर पास बैठने के लिए कहा।

"कल तूने जो घुड़दौड़ में महिन्दरू को हराया, जवान, तूने चौधरी का नाम रख लिया !" एक

1. कर्कश।

पक्की उम्र के आदमी ने कहा।

"चौधरी भी बड़ा दिलेर आदमी था, पर उसका बेटा नम्बर ले गया। वह जुलाहों की घोड़ी किस घोड़ी से मिलाई है, चौधरी ?" एक और आदमी ने पूछा।

"मुंशी के घोड़े से !" नईम के बजाय फ़क़ीर दीन ने जवाब दिया। और हुक़्क़ा नईम की तरफ़ बढ़ा दिया, "लो, हुक़्क़ा पियो !"

"मैं नहीं पीता !" नईम ने परे हटाते हुए कहा।

"वह तो निकम्मा घोड़ा है...पोस्ती है।" पीछे से एक कमज़ोर आवाज़वाला किसान बोला।

"कौन-सा ? मुश्की ?" फ़क़ीर दीन कंजी आँखें पूरी तरह खोलकर मुड़ा।

"अच्छा मुश्की...मुश्की...मैं समझा, वह जो मुंशी के बेटे की दस्तारबन्दी पर आया था।" कमज़ोर आवाज़वाले ने माज़िरत[1] की !

"दारू पियोगे ?' महिन्दर ने पूछा।

"नहीं !"

कीकर की शराब में मदहोश होकर भूसे के कमरेवाले बाहर निकल आए थे और आँगन में ऊट-पटाँग क़िस्म का नाच नाच रहे थे। यह देखकर दालान में बैठे हुए चन्द लड़के, जो बहुत अच्छा नाचते थे, लोगों के बार-बार कहने पर उठे और आँगन में निकल आए। उन्होंने एक दूसरे को चन्द हिदायात दीं और क़तार में खड़े होकर एक देहाती नाच शुरू कर दिया। कुबड़ा बूढ़ा कान पर हाथ रखकर गाने लगा। वह ऊँची, करख़्त और पत्थर की तरह भारी आवाज़ में गीत के बेमानी[2] बन्द गा रहा था और नाचनेवाले क़तार से निकलकर दायरे में हो गए थे और तेज़ी से उछलकर बाज़ू हवा में फेंकते हुए नाच रहे थे...वह बेहंगम[3], वहशियाना[4] क़ुव्वत और ख़ुशी का मज़हर[5] जंगलियों जैसा नाच था।

"दस्तारबन्दी क्या है ?" नईम ने महिन्दर सिंह से पूछा।

"भाइए ने झुग्गी तोड़ी है !"

"ऐं ?"

"हाँ ! नहीं समझे ? तुम्हारी अक़्ल में नहीं आएगा। यह शेरों की दुनिया है !"

"बको मत ! तुम नशे में हो !"

"मैं नशे में नहीं हूँ, चौधरी साब ! हममें से जब तक कोई दूसरे का कोठा न तोड़े, पगड़ी नहीं बाँध सकता !"

"पगड़ी तो जोगिन्दर पहले ही बाँधता था !"

"वह तो वाहेगुरु की पगड़ी थी। यह इज़्ज़त की पगड़ी है। दस्तार नहीं समझते ? दिलेरी और मर्दानगी की..."

नईम हँसा, "कोठा कैसे तोड़ा ?"

"रात अलीपुर गए, मगर वे लोग जान गए बिलोंगड़े !"

"फिर ?"

"फिर क्या ? थोड़ी-सी लड़ाई हुई और एक भैंस ले आए। एक को मारना भी पड़ा।" महिन्दर सिंह ने गाली दी।

"यह तो चोरी हो गई !"

"बुज़दिलों के अपने नाम होते हैं।" फिर अचानक उसने अपनी शराबी आँखें फिराईं, "और एक लफ़्ज़ भी जो तूने कहा 'तो वाहेगुरु की क़सम, याद रखना !"

नईम ख़ामोश खड़ा नाचनेवालों को देखता रहा। गानेवाले की उदास और भारी आवाज़ के साथ

1. क्षमायाचना, 2. अर्थहीन, 3. भद्‌दा, 4. पागलों जैसी शक्ति, 5. द्योतक।

नाच की ख़ामोश ताल ने मिलकर सर्द चाँदनी को तिलिस्मी बना दिया था।

फिर खाना दिया गया। भुने हुए आटे का हलवा, जिसमें गुड़ और बेतहाशा घी डाला गया था और तन्दूर की रोटियाँ थीं। सब किसान लड़के नीचे बैठकर उँगलियों पर तोल-तोलकर हलवा खाने लगे, और घी उनकी दाढ़ियों पर बहने लगा। एक साथ कई जबड़ों में से चिकने हलवे की 'चप-चप' सुनाई दे रही थी।

"ये लोग कटाई तक गन्दुम खाते रहते हैं। मेहनती लड़के हैं।" किसी ने कहा।

कुलदीप कौर बार-बार दरवाज़े पर आकर दूध के भरे हुए कटोरे जोगिन्दर सिंह को पकड़ाती जा रही थी। उसके सुर्ख़ गालों पर पसीने के क़तरे रुके हुए थे।

खाने के बाद एक बड़ी-सी सुर्ख़ रेशमी पगड़ी, जोगिन्दर सिंह के सिर पर रखी गई और सब लोगों ने बारी-बारी उठकर दोनों हाथों से उससे हाथ मिलाया और 'सरदार जोगिन्दर सिंह मुबारकबाद' कहा।

किसानों के पास बातें करने को बहुत कुछ नहीं होता। वे अनपढ़, आँखोंवाले, सीधे-सादे, ग़ैर-दिलचस्प और क़नाअत-पसन्द[1] लोग होते हैं, जिनकी ज़्यादातर ज़िन्दगी अमल[2] और हरकत[3] से इबारत होती है। उनके पास वह ज़हानत[4] नहीं होती, जिसकी बदौलत इनसान मुकम्मल तौर पर मुत्मइन होने के बावजूद गुफ़्तगू करने की ख़्वाहिश महसूस करता है। चुनाँचे नाच, खाने और मुबारकबाद के बाद जब उन्होंने हुक़्क़ा पीना शुरू किया और ख़ामोशी के लम्बे-लम्बे वक़्फ़े आने लगे तो उन्होंने उठना शुरू किया और थोड़ी देर के बाद दालान में सिर्फ़ घर के लोग रह गए। बाहर चूल्हे के पास कुलदीप कौर और उसकी सास बैठी ऊँघ रही थीं।

तीसरे दिन गाँव में पुलिस आई। उन्होंने जोगिन्दर सिंह, करम सिंह और ख़ुशवन्त सिंह को पकड़ लिया और पंचायतवालों को बुलाकर गवाहियाँ लेने लगे। तीनों भाइयों को अलफ़ नंगा करके पीठ पर डंडे मारे गए और पंचायतवालों को गालियाँ दी गईं, लेकिन एक भी गवाही न मिल सकी।

नियाज़ बेग के घर दोनों औरतें धूप में काम कर रही थीं। एक चरख़ा कात रही थी और दूसरी लिहाफ़ निगन्द रही थी। छोटा लड़का भैंस को नहला रहा था। जब वह फ़ारिग होकर काँपता हुआ आकर उनके पास बैठ गया, तो बड़ी औरत बोली : "छोटी भैंस को भी नहला दो। वह भी तुम्हारी फूफी की ही है !"

छोटी औरत ने चरख़े से नज़रें उठाकर नर्मी और मुहब्बत से उसे देखा। लड़का जाकर छोटी भैंस को नहलाने लगा, जो हालाँकि बड़ी थी, मगर छोटी औरत की थी इसलिए छोटी कहलाती थी। सुबह का सूरज कमज़ोर और सर्द था। सर्दी की वजह से इनसान, जानवर, परिन्दे, सब धूप में निकल आए थे और फ़िज़ा बड़ी पुर-रौनक़ थी।

नियाज़ बेग घर में दाख़िल हुआ, और बात किए बग़ैर भूसेवाले कमरे में चला गया। उसके चेहरे पर ख़ौफ़ के आसार थे और वह मामूल से पहले चला आया था। दोनों औरतें काम छोड़कर उसके पीछे-पीछे गईं।

"जाओ...कोई पूछे, तो मत बताना !" उसने चेहरा भूसे में गाड़ दिया। "जाओ...दरवाज़ा बन्द कर दो।" उसके गालों की हड्डियाँ उभर आई थीं और सौदाई[5] आँखों में सहम आ गया था।

छोटा लड़का भागता हुआ दाख़िल हुआ, "पुलिस आई है !"

दोनों औरतों ने झट से दरवाज़ा बन्द कर दिया और आगे चारपाई खड़ी करके उस पर लिहाफ़ फैला दिया। फिर दोनों आँगन में ख़ामोश बैठकर इन्तिज़ार करने लगीं। उनके घर का सारा काम रुक गया। आँगन में मुर्ग़ियाँ ख़ुशदिली से दाना चुग रही थीं।

नईम ने खेतों की तरफ़ से लौटते हुए महिन्दर सिंह को देखा, जो फ़सल की ओट में किसी

---

1. सन्तोषी, 2. काम, 3. चेष्टा, 4. बुद्धि, 5. विक्षिप्त।

चीज़ पर कूद रहा था। जब वह फ़सल से बाहर आया, तो उसने देखा कि महिन्दर सिंह एक भैंस के साथ कुश्ती लड़ रहा था। वह हँसा। ''आज कोई लौंडिया नहीं मिली ?''

महिन्दर सिंह ने कुश्ती जारी रखी। वह हाथ में एक ईंट पकड़े उस महीबुलजुस्सा[1] जानवर से ज़ोर-आज़माई कर रहा था।

''यह ईंट से नहीं मरेगी,'' नईम ने कहा।

''चुप रहो, सुअर.'' वह दाँत पीसकर भैंस से जुट गया। वह बार-बार उसकी गर्दन को बाज़ू में लेकर उसके होंठ खोलने की कोशिश कर रहा था, मगर भारी, सुस्त और ताक़तवर जानवर एक ही ज़ोरदार झटके से उसे दूर फेंक देता था। वह उठकर दोबारा उस पर लपकता। उसके सियाह जिस्म का एक-एक पट्ठा नुमायाँ हो जाता और चेहरे पर जंगली जानवरों की वहशत फैल जाती। उसके कूदने से पानी की नाली टूट गई थी और पानी खेतों में जाने के बजाय वहीं पर फैल रहा था।

आख़िर महिन्दर सिंह अपनी कोशिश में कामयाब हो गया और भैंस का मुँह खोलकर ईंट की एक ज़ोरदार चोट से उसका दाँत आधा तोड़ दिया और छलाँग लगाकर दूर जा गिरा।

''पागल हो गए हो ?''

''तुम्हारे बाप इधर आ रहे हैं।'' महिन्दर सिंह गाँव की तरफ़ इशारा करके बोला।

''कौन ?''

वह सिर्फ़ मोटी-मोटी गालियाँ देता रहा, ''सारी भट्ठी में से ढूँढ़कर यह खंगर निकाला। लोहे से ज़्यादा मज़बूत है।'' उसने ईंट को खड़ी फ़सल में फेंक दिया।

उसी वक़्त फ़सल के पीछे से सिपाही नमूदार हुए। उनके हाथों में डंडे थे। आते ही उन्होंने भैंस को खोला और महिन्दर सिंह और नईम को डंडे मारते हुए आगे लगाकर ले गए।

जोहड़ के किनारे सिखों के सारे मवेशी जमा थे और तीनों भाई औंधे लेटे हुए जूते खा रहे थे। इस क़ाफ़िले को आते देखकर थानेदार के पास से एक किसान उठकर भागा।

''यह मेरी भैंस...मेरी भैंस...यही है। इन्होंने ही मेरे नौकर को मारा है। मेरी भैंस, क़ातिलो... चोरों...''

महिन्दर सिंह भागकर भैंस के क़रीब जा खड़ा हुआ। ''ख़बरदार, तेरी माँ की ज़बान खींच लूँगा। यह देख...यह तेरी माँ बोड़ी...मैंने मंडी से ख़रीदी थी। पोस में। तेरी भैंस बोड़ी थी ?'' उसने होंठ उठाकर भैंस का टूटा हुआ दाँत दिखाया।

''यह बदमाशी है, साब !'' किसान चिल्लाया, ''अभी इसे छोड़ दो, तो सीधी मेरे डेरे पर जाएगी। अभी...''

''और यह मेरा बैल लुंडा ?'' महिन्दर सिंह ने दुम-कटे बैल की ज़रा-सी दुम हवा में उठाकर सबको दिखाई। फिर वह भाग-भागकर सब मवेशियों की ख़ुसूसियात[2] बयान करने लगा : ''और यह मेरा बैल काना...और यह मेरी मुश्की...और यह गाय चौगान...और यह मेरी भूटी...''

जब वह थानेदार के क़रीब से गुज़रा, तो उसने घुमाकर डंडा महिन्दर सिंह के कन्धों के बीच में मारा, ''लिटा दो इसे !''

सिपाहियों ने उसे नंगा करके औंधे मुँह लिटाया और डंडे मारने लगे। दूसरे भाइयों के बरअक्स[3], जो ख़ामोश थे, या आहिस्ता-आहिस्ता कराह रहे थे, उसने शोर मचाना शुरू कर दिया। हर चन्द मिनट के बाद सिपाही मारते-मारते रुककर पूछते, तो जवाब गालियों में मिलता।

''इसे धूनी दो।'' थानेदार गरजा।

उन्होंने दरख़्त की टहनी से उसके पाँव बाँधकर उलटा लटका दिया। फिर सुर्ख़ मिर्च को आग

---

1. भीमकाय, 2. विशेषताएँ, 3. प्रतिकूल।

दिखाकर उसकी नाक के क़रीब ले गए।

"मैं बताता हूँ...मुझे खोलो..." वह घबराकर चिल्लाया। जब उन्होंने धुआँ परे किया, तो वह छींकें मारने लगा। छींकें ख़त्म करके ख़ामोश हो गया। थानेदार के बार-बार पूछने पर भी चुपका लटका रहा। फिर अचानक उसके कान के क़रीब मुँह ले जाकर चीख़ा, "मैं नहीं जानता, तेरी माँ को कौन ले गया ?"

चन्द किसान लड़के, जो खड़े तमाशा देख रहे थे, हँसने लगे। उसे दोबारा धूनी दी गई। वह लगातार छींकें मारने और बच्चों की तरह ऊँची आवाज़ में रोने लगा।

"मुझे उतारो...मैं बताता हूँ।" उसने दोहराया। जब उतारा गया, तो वह नाक और गला साफ़ करके रोता हुआ बोला : "मुझे कुछ पता नहीं...कुछ पता नहीं..."

तमाशबीन लड़के फिर हँसने लगे, "थोड़ी-सी दारू पी लो। धूनी कुछ न कहेगी।" एक ने कहा। महिन्दर सिंह ने पलटकर उसे गाली दी। उसे फिर धूनी दी गई और चिल्लाता हुआ वह बेहोश हो गया। शाम के वक़्त पुलिस कोई सुबूत बरामद किए बग़ैर वापस चली गई।

रात को कुछ लोग मिज़ाजपुरसी की ख़ातिर उनके डेरे पर गए। करम सिंह के दोस्तों ने उसकी ज़ख़्मी पीठ पर तेल की पट्टियाँ रखनी शुरू कर दीं। बाक़ी उसके पास बैठकर हुक़्क़ा पीने और गप्पें मारने लगे। कुलदीप कौर दालान के कोने में दहकते हुए उपले पर तेल औरं लौंग कड़कड़ा रही थी।

"हुँह...औरत की औरत...हमें मार नहीं पड़ी ?" जोगिन्दर सिंह दाख़िल हुआ और बीवी के पास जाकर बैठ गया, "हमें मार नहीं पड़ी ? तू जो बच्चा जननेवाली की तरह टाँगें फैलाकर लेट गया है ?"

एक किसान ने उबलते हुए तेल में भिगोकर सूत की पट्टी जो करम सिंह की पीठ पर रखी, तो वह बिलबिला उठा और पट्टी दीवार पर खींचकर मारी, "ले जा इसे माँ के पास...मैं नहीं लगवाता..." वह बैठकर कराहने लगा।

"हुँ...औरत की औरत..." जोगिन्दर ने दोहराया।

"सुअर..." करम सिंह ने दाँत पीसे। चन्द किसान हँसने लगे।

छरहरे बदन का एक किसान घुटनों तक कीचड़ में लथड़ा हुआ दाख़िल हुआ, और दीवार के साथ टेक लगाकर खड़ा हो गया। वह लम्बोतरे सियाह चेहरेवाला आदमी था, और उसके जिस्म पर सिर्फ़ जाँघिया और बनियान थी। जोगिन्दर सिंह ने हैरत से उसे देखा, "वाहेगुरु की फ़तह...राम सिंह कैसे आए ?"

जवाब देने के बजाय राम सिंह दीवार के साथ घिसटकर बैठ गया। जोगिन्दर सिंह उठकर उसके क़रीब गया और दोनों धीमी आवाज़ में बातें करने लगे। अचानक जोगिन्दर सिंह के चेहरे पर ग़ुस्से के आसार पैदा हुए और वह मुट्ठियाँ भींचकर बोला : "कब ?"

"कल...आधी रात..." राम सिंह ने कहा। महिन्दर सिंह नईम के पास से और करम सिंह चारपाई से उठकर उनसे जा मिले और आहिस्ता-आहिस्ता बातें करने लगे। सबके रंग सफ़ेद और आँखें सुर्ख़ हो गईं। मिज़ाजपुरसी के लिए आए हुए किसान रुख़सत होने लगे।

"आज रात को...आज ही..." जोगिन्दर सिंह ने खड़े होकर गाली दी और कँपकँपाती उँगलियों से पगड़ी ठीक करता हुआ बाहर निकल गया।

"क्या हुआ ?" नईम ने वहाँ बैठे-बैठे महिन्दर सिंह से पूछा।

"क़त्ल हो गया !"

"कौन ?"

"हमारा भाई...चचेरा..."

"क्यों ?"

"पानी लगा रहा था !"

"फिर ?"

"ज़्यादा बातें मत करो। हम आज उनका सफ़ाया कर देंगे !"

"कैसे ?"

"जैसे उन्होंने किया। समझते नहीं हो ?"

"यह तो मुश्किल है। नहीं ?"

"मुश्किल है ?" महिन्दर सिंह शराबी आवाज़ में चीख़ा। फिर छाती पर हाथ फेरता हुआ बोला : "चलोगे ? हम अपने दोस्तों के साथ उनका बदला लेने जाया करते हैं। बुज़दिल !"

"बको मत...मैं तुम्हारे साथ जाऊँगा !" नईम ने कहा और बाहर निकल आया।

रखवाली के लिए फ़सल में सोने की आज उसकी बारी थी। वह शीशम के पेड़ पर मचान में दुबका हुआ लिहाफ़ के अन्दर घुटने सीने से लगाए सो रहा था कि एक झटके से उठकर बैठ गया। एक साया नीचे उसकी पसली में बल्लम की नोक चुभा रहा था।

"क्या है ?" उसने पूछा।

"हम जा रहे हैं !"

वह नीचे उतर आया।

"तुम्हारे पास कुछ है ?"

"नहीं !"

"आओ..हमारे पास सब कुछ है।" महिन्दर सिंह ने भारी आवाज़ में कहा। कीकर की शराब की तेज़ बू नईम की नाक में घुसी। अँधेरे में बड़े-बड़े क़दम उठाते हुए उन्होंने दूसरों को जा लिया। यह महिन्दर सिंह के तीनों भाई, कुलदीप कौर और उसकी सास थे। मर्दों के बदन पर एक-एक लँगोट था और उनके तेल मले हुए सियाह जिस्म अँधेरे में चमक रहे थे। औरतों ने सिरों पर टोकरियाँ उठा रखी थीं।

"औरतों को लेकर लड़ने जा रहे हो ?" नईम ने पूछा। किसी ने जवाब न दिया।

वे ख़ामोशी से हरे-भरे खेतों के बीचों-बीच पच्छिम की तरफ़ बढ़ते रहे। फ़सलों को पानी दिया जा रहा था। पिछली रात की ठंडी, बोझल हवा के साथ ही तेल, शराब और गीली मिट्टी की मिली-जुली बू भी उनके साथ-साथ चल रही थी। गन्दुम की कच्ची बालियों में नर्म, रेशमी, दूध भरे दाने पड़ने शुरू हो गए थे। वह नहर की पटरी पर चढ़ आए। बादलों के अँधेरे में सिर्फ़ बहते हुए पानी का धीमा शोर सुनाई दे रहा था।

एक जगह महिन्दर सिंह रुक गया। "यहाँ ?" उसने बल्लम के फल से खेत के टूटे हुए किनारे को छुआ, जहाँ पानी एक छोटे-से गढ़े में जमा हो गया था। "यहाँ पर...! वह पानी लगा रहा था !"

"उन्होंने पानी क्यों तोड़ा ?" नईम ने पूछा।

"उन्हें नहीं मिला था !"

"यह तो कोई वजह नहीं !"

"सुअर...एक बेलचे से मर गया !"

"चुप रहो...जोगिन्दर सिंह दाँत पीसकर नीची आवाज़ में चीख़ा।

वे दरिया पर खड़े थे। तीन आदमी किनारे पर से हटकर घास पर लिहाफ़ ओढ़े सो रहे थे। तीनों भाइयों ने एक साथ उनके लिहाफ़ झटककर दूर फेंके और बल्लमों के फल सोए हुए आदमियों के सीनों में उतार दिए। महिन्दर सिंह ने बल्लम नईम को पकड़ाया। लपककर माँ की टोकरी से तलवार निकाली और एक-एक वार में उनके सिर जुदा कर दिए। वे आवाज़ निकाले बग़ैर मर गए। नईम

बल्लम पकड़े दरिया के किनारे जा खड़ा हुआ। उसकी आँखें जल रही थीं और गले में से गर्मी निकल रही थी। सर्दी की वजह से कँपकँपाहट, जो उस पर छाई हुई थी, सारे बदन पर फैल गई।

मर्दों ने चारा काटनेवाले टोकों से मरे हुए आदमियों के छोटे-छोटे टुकड़े किए और औरतों ने टोकरियों में भर-भरकर उन्हें दरिया में बहा दिया। फिर उन्होंने लालटेन जलाई और ख़ून से लथड़ी ज़मीन को कुदाल से खोदा। फिर कुलदीप कौर और उसकी सास ने बड़ी फुर्ती और सफ़ाई से मिट्टी टोकरियों में लाद-लादकर दरिया में बहा दी। ज़मीन को हमवार करने के बाद वे ख़ामोशी से वापस लौटे। नईम को अपने मुँह में ख़ून का मज़ा महसूस होने लगा उसने खँखारकर थूका और उसे लगा कि उसने बहुत-से पत्थर खा लिए हैं, जो उसके पेट में जाकर बैठ गए हैं।

आख़िरी तारीख़ों का कमज़ोर-सा चाँद बादलों में से निकला और महिन्दर सिंह की आँखें, जो शराब और ख़ून की वजह से सुर्ख़ हो रही थीं, नज़र आने लगीं। उसने चलते-चलते हाथ बढ़ाकर कुलदीप कौर के सीने पर फेरा। लड़की होंठ चबाने लगी। नीम-तारीक रात में वे सायों की तरह हरी-भरी रेशमी फ़सलों के बीचों-बीच चलते रहे।

चारे के एक खेत पर पहुँचकर महिन्दर सिंह रुक गया।

''बोड़ी के लिए चारा नहीं है।'' वह बड़बड़ाया।

''ओ, तेरा क्या इरादा है अब, हैं ?'' जोगिन्दर सिंह ग़ुस्सा दबाकर बोला।

''चारा काटूँगा !''

''बेवक़ूफ़ ! मरेगा ? तेरी अक़्ल कहाँ गई है ?''

''और तेरी माँ बोड़ी भूकी मर जाए ?'' महिन्दर सिंह बल्लम का फल गीली ज़मीन में गाड़कर बोला।

''आहिस्ता बोल, जानवर ! चारों तरफ़ लोग खेतों को पानी लगा रहे हैं। चल...''

''जाओ !'' महिन्दर सिंह चिल्लाया, ''मैं चारा लेकर आऊँगा।''

उसकी आवाज़ बन्द करने के लिए सब जल्दी से रवाना हो गए।

''तू कहाँ जा रही है ?'' महिन्दर सिंह बल्लम का चोबी दस्ता कुलदीप कौर के पेट में गाड़कर बोला, ''ख़ाविन्द के साथ सोने के लिए अब कोई वक़्त नहीं। चल, चारा कटवा !''

जोगिन्दर सिंह खेत के कोने पर जाकर रुका। चन्द मिनट तक अँधेरे में अपनी बीवी और भाई को देखने की कोशिश करता रहा। फिर ज़ेरे लब[1] गालियाँ देता हुआ चला गया।

पगड़ी में उड़सी हुई दराँती निकालकर महिन्दर सिंह ने खेत के बीचोंबीच चारा काटना शुरू किया और मशीन की-सी तेज़ी से बहुत-सी जगह ख़ाली कर दी। कुलदीप कौर गट्ठे बाँध-बाँधकर टोकरी में भरती गई। हरे, गीले चारे की बू उनके इर्द-गिर्द मँडला रही थी। रात अँधेरी और सर्द थी। बादलों ने हवा तक़रीबन बन्द कर रखी थी, और सारी दुनिया एक बहुत बड़े सियाह गोले की तरह दिखाई दे रही थी। दरिया का हलका शोर दूर से उनके कानों में आ रहा था। एक साया खेत के कोने पर नुमूदार हुआ और महिन्दर सिंह लेट गया।

''लेट जा !'' उसने धीरे से कहा। कुलदीप कौर लेट गई। नीम-तारीकी में उसका उभरा हुआ सीना महिन्दर सिंह को नज़र आ रहा था। साया, जो कोई पानी को जाता हुआ किसान था, हाथ में कुदाल पकड़े ख़ामोशी से गुज़र गया।

''तेरा सीना चारे के ऊपर दिखाई दे रहा था। औंधी लेटा कर...'' महिन्दर सिंह ने कहा, ''अगर देख लेता माँ का यार तो...'' ''तो एक और सही !'' कुलदीप कौर ने कहा, ''तुम्हारा बल्लम तो अभी साबुत है !''

''बक-बक मत कर...इधर आ...''

---

1. होंठों में।

वह आकर उसके पास बैठ गई। "चलो, चलें। सवेर होनेवाली है !" महिन्दर सिंह ने उसके सख़्त सीने पर हाथ रगड़ा।

"जानवर !" वह अँधेरे में चीख़ी।

"थक गया हूँ।" उसने बाँहें फैलाकर ठंडे चारे पर लोट लगाई।

"मुझे सर्दी लग रही है !"

"इधर आ !"

वह उसके बराबर लेट गई।

"अब भी सर्दी लगती है ?" महिन्दर सिंह ने उसे कसकर अपने साथ लिपटाते हुए कहा, "बता...अब भी लगती है ?"

"नहाते नहीं हो ?"

"नहीं !"

"तुम्हारे सिर से बू आ रही है !"

"हरामज़ादी !"

"मत दबा !" वह दाँतों के दरमियान से चीख़ी, "मेरी साँस रुक रही है !"

वह हँसा, "मैं और भी ज़ोर से दबा सकता हूँ !"

"सुअर...तुम मुझसे ज़्यादा ज़ोरावर नहीं हो !"

"मैं सबसे ज़्यादा ज़ोरावर हूँ।" वह हँसा और टाँगें उसकी टाँगों में फँसाकर चारे पर लोटने लगा। एक दूसरे से जुड़े दोनों दूर तक लोटते हुए चले गए। नर्म हरा चारा उनके नीचे दबता और सिर उठाता रहा।

"जानवर...बैल की औलाद...छोड़ मुझे !" वह रुक-रुककर बोली।

"मैं सबसे ज़्यादा ज़ोरावर हूँ !"

"जोगिन्दर तुमसे ज़्यादा ज़ोरावर है !"

"मेरी माँ का यार, वह मुझसे ज़्यादा ताक़तवर है ?"

"उसने आज सब काटे हैं !"

"हरामज़ादी !" उसकी गिरफ़्त ढीली पड़ गई।

"ग़लत है यह ?"

"सुअरनी ! तेरे बाप थे, जो उनका रोना रोती है ?" थूक उसके गले में अटक गया और वह उठ खड़ा हुआ।

"रात हराम कर दी !"

उसने बल्लम को चारे के ढेर पर मारा। फल दूसरी तरफ़ निकल गया। कुलदीप कौर ने बाल समेटकर जूड़ा बनाया। बल्लम निकालकर उसे पकड़ाया और टोकरी उठाकर उसके पीछे-पीछे चलने लगी। काफ़ी देर तक ख़ामोशी से चलते रहने के बाद महिन्दर सिंह ने ऊँची आवाज़ से गाना शुरू कर दिया।

"कोई सुन लेगा !" कुलदीप कौर ने कहा। वह गाता रहा।

जब वह घर में दाख़िल हुए, तो सुबह का सितारा मुँडेर के पास चमक रहा था और उसकी सास लकड़ी की बाल्टी उठाए गाय दुहने के लिए जा रही थी...

"इतनी देर लगाकर आई ?"

"अपने बेटों को थोड़ा दिया कर ना खाने को ! कुत्ते की तरह हर वक़्त तंग करते हैं..." उसने कहा और सीधी खाट पर चली गई।

7

कटाई शुरू थी। रौशनपुर का हर आदमी और हर जानवर काम में मसरूफ़ था। सिर्फ़ परिन्दे उसी तरह आवारा और निकम्मे उड़ रहे थे। कड़कती धूप और लू की वजह से किसानों के जिस्म सियाह हो गए थे। और औरतों की मटकियों में घी ख़त्म हो चला था, कि हर कटाई करनेवाले को पाव सेर मक्खन रोटी पर लगाने को चाहिए था। चौपायों की पसलियाँ निकल आई थीं। औरतों के चेहरों और हाथों पर ख़ुश्की के सफ़ेद धब्बे पड़ गए थे और उनके बाल खुरदरे हो चुके थे। बच्चों की टाँगें पतली और पेट बढ़ गए थे, और यह हालत हर जानदार की मेहनत और ज़िन्दगी की सख़्ती की वजह से हो जाती है।

लेकिन किसान अपने गहरे झुर्रीदार चेहरों, धँसी हुई आँखों और गालों के बावजूद एक सौ बीस दर्जे की गर्मी में काम करते हुए ख़ुश थे, क्योंकि सामने उनकी भारी और पकी हुई फ़सल खड़ी थी। वे दराँतियाँ चलाते हुए इधर-उधर की बातें करते हुए मज़ाक़ में गालियाँ देते हुए सुनहरी और मीठी गन्दुम काट-काटकर ढेर करते जाते थे।

कटाई के तीसरे दिन ज़्यादातर खेत साफ़ किए जा चुके थे, और जगह-जगह काटी हुई फ़सल के अम्बार लगे थे। गाँव का हर आदमी काम करने को खेतों में निकल आया था। औरतों के रंग-बिरंग कपड़ों और मर्दों के काले जिस्मों का सैलाब हर तरफ़ फैला हुआ था और एक अन्दरूनी ख़ुशी की धारा थी, जो किसानों की आँखों और हाथों से फूटी पड़ती थी कि ये अनपढ़ लोग क़हक़हा लगाकर हँसना नहीं जानते। इनकी ख़ुशी हरकत और अमल[1] से ज़ाहिर होती है।

महिन्दर सिंह के खेत पर पहुँचकर नियाज़ बेग ने रस्सियों पर जिस्म का सारा बोझ पीछे फेंककर बैलों को रोका और गाड़ी पर बैठा-बैठा बोला : "मैं कल भी आया था !"

महिन्दर सिंह खेत में से उठकर आया और गाड़ी की हत्थी पर कुहनी रखकर खड़ा हो गया। "चौधरी ! क्या बात है ?"

"अल्लाह करम करे। तुम्हारे आँखें क्यों सुर्ख़ हो रही हैं ?"

"पसीना पड़ गया है। पसीना तो मादरचोद लस्सी की तरह बहता है।" उसने आसमान की तरफ़ देखा। फ़िज़ा में मटियाले रंग की धूप और मैली-सी धूल बिखरी हुई थी। आसमान पर चीलें ज़बानें निकाले उड़ रही थीं और चारों तरफ़ से उमड़ती हुई गर्मी और उमस ज़मीन पर जमी हुई थी।

"तूफ़ान के आसार हैं।" उसने गाली दी और दराँती के दस्ते से माथे का पसीना पोंछा। "मैं मतलब से आया था।" नियाज़ बेग ने कहा और दाढ़ी खुजाने लगा। फिर उसे छोड़कर बैलों की पीठ पर उँगलियाँ बजाने और सिर उठाकर चीलों को देखने लगा।

"वाहेगुरु ! चौधरी क्या बात है ?"

"तुम्हारे पास जगह है ?"

"कैसी जगह ?"

"हमारा ग़ल्ला शायद कुछ बच रहे !"

महिन्दर सिंह ने पगड़ी में से लटकती हुई बालों की लट को पकड़कर दराँती से काटा और उँगलियों में मसलकर नीचे गिरा दिया।

"पता नहीं। हमारी अपनी फ़सल बहुत है इस बार। पता नहीं !"

"मैं मुंशी के पास गया था। वह आधे पर रखता है। तुम मेरे बेटे के दोस्त हो। तुम्हारा दालान बड़ा है !"

---

1. काम।

"रख देना ! रख देना ! मैं भूसे पर सो जाऊँगा जाड़े में।" महिन्दर सिंह ने कहा।

"हाँ, हाँ ! मेरा बेटा तुम्हारा दोस्त है !"

"ठीक है !"

नियाज़ बेग ने रस्सियों को ढील दी, फिर खींच लिया। "जब मैं सज़ा पर गया, तो तुम्हारे बाप को एक बैल दे गया था। तुम्हारा बाप मर गया। बैल का पता नहीं क्या हुआ ?" वह रुका। फिर शर्मिन्दगी से हँसा। "मैं कोई वापस तो नहीं माँगता। मैंने कोई एहसान नहीं किया। वह मेरा दोस्त था आख़िर !" वह रस्सियाँ बैलों की पीठ पर मारने लगा।

"ये नहीं चलेंगे, चौधरी !" महिन्दर सिंह हँसा। "इन्हें थोड़ी-सी दारू पिला !"

नियाज़ बेग ग़ुस्से में आकर बैलों को बेतहाशा पीटने लगा।

अगले खेत में ढोल बज रहा था और कटाई की धुन पर किसान दराँतियाँ चला रहे थे। दो मीरासी नंगे बदन पसीने से सराबोर खेत के बीच में खड़े ढोल पीट रहे थे। यह कटाई की मख़सूस धुन थी। इससे बजानेवाले और सुननेवाले का ख़ून उबलकर बाज़ुओं में आ जाता था, और वह दुनिया-जहान से बेख़बर दराँती चलाता जाता था। मीरासी आँखें मीचे दो-दो घंटे तक ढोल बजाते रहते और किसान उसकी धुन पर मस्त बग़ैर साँस लिए हाथ चलाते जाते। यह एक और तीन की ताल थी और दराँती के चलाओ के लिए मख़सूस थी। दराँती तीन बार छोटे-छोटे झटके खाती और चौथी बार बड़ा झटका...करर...और ख़ुश्क...तड़...तड़ करते पतले नाज़ुक गन्दुम के पौदों का गट्ठा हाथ में आ जाता और फिर ताल का चक्कर शुरू होता...धम-धम-धम धमाधम...करर करर...करर...किसान पाँव पर बैठे-बैठे चलते जाते और छोटे-छोटे गट्ठे छोड़ते जाते। पसीना उनके माथे से, गर्दन से, बग़लों से टपकता और ज़मीन में समा जाता। भूकी और कमज़ोर ज़मीन पसीने से सेराब[1] होती और फ़सल उनके हवाले कर देती। छह माह पहले यही ज़मीन सियाह, ताक़तवर और गीली थी और नन्हे-नन्हे सब्ज़ पौदों को मज़बूती से जकड़े हुए थी। पाँच माह बाद फिर यह सियाह, ताक़तवर, और कमज़ोर थी और अपने बच्चों को पालकर मालिक के हवाले कर रही थी।

"दुर दुर...दुर सुअर...सुस्त हो गया..हला पोस्ती का हला ला ला ला।" वह जानवरों की बोली बोलकर एक-दूसरे को उकसाते और धम-धम धम...धमा धम...कर कर कररर...शरीफ़ मेहनतकश हाथों में दराँतियों की क़तार एक ताल पर झूलती फ़सल की जड़ों पर नाचने लगती।

जब सूरज सिर पर आया, तो गाँव की तरफ़ से रंग-बिरंग कपड़ों का सैलाब उमड़ पड़ा। बूढ़ी, जवान, सभी औरतें सिर पर लस्सी के मटके और घी से तर-ब-तर बाजरे की रोटियाँ उठाए घरों से निकल पड़ीं। वे अकेली-दुकेली और ग़ोलों में आईं और मुख़्तलिफ़ खेतों में फैल गईं। उनके बारीक कुरते पसीने से कमर, पेट, और छातियों पर चिमटे हुए थे। बाल इकट्ठे करके उन्होंने जूड़े बाँध रखे थे और बड़ी जवान चाल चलती, लालची नज़रों से अपने मर्दों को देखती चली आ रही थीं। अपने-अपने खेतों पर पहुँचकर उन्होंने खाना रखा और जगह-जगह से छोटे-छोटे गट्ठे उठाकर जमा करने लगीं। मीरासियों ने ढोल बजानेवाली सोंटियों से माथे का पसीना पोंछा और दरख़्तों के ठंडे साये की तरफ़ लौटे। कटाई करनेवाले दुखते हुए घुटने और धँसे हुए पेट लेकर उठे और भूके जबड़ों के साथ रोटी पर पिल पड़े।

"तू बिना सिर चुपड़े नहीं रह सकती।" महिन्दर सिंह ने दोनों गालों में रोटी भरकर खाते हुए कुलदीप कौर से कहा।

"तुझे क्या...तुझे तो पूरा घी मिलता है !"

"और तू अपनी माँ का घी सिर पर लगाती है ?" वह चीख़ा।

"चुप रह...भेड़िए।" जोगिन्दर सिंह ने कहा : "सब अपनी-अपनी माँ का घी खाते हैं...

1. तृप्त।

एक-दूसरे से मत लड़ो।'' तीनों हँसने लगे। फिर उन्होंने कटोरे भर-भर के लस्सी के पिए और वापस काम में जाकर जुट गए।

सूरज ढल गया था, तो पच्छिम की तरफ़ से बादल उठे और तेज़ी से आसमान पर फैल गए। किसानों की फ़िक्रमन्द निगाहें आसमान पर भटकने लगीं। उनकी आँखों में दिन भर की ख़ुशी और सुकून के बजाय ख़ौफ़ की झलक लहरा गई। बैलगाड़ियाँ भगाकर वे गाँव से तमाम बोरियाँ और तिरपालें लाए और उनसे कटी हुई फ़सल को ढँक दिया। जो बच रही, उसे गाड़ियों पर लादकर घर ले चले।

''इसे क़साई को दे दो...आज यह नहीं चलते !'' महिन्दर सिंह बैलों का चलाते हुए पुकारा।

''नहीं चलते ? इनकी माँ...'' फ़क़ीर दीन ने पूरे ज़ोर से रस्सियों को खींचा, जिससे उसके बैलों की आँखें उबल पड़ीं। फिर ढील दी। वे आगे को झूल गए। फिर खींचा। फिर ढील दी। बैलों के नथुने फड़फड़ाए। मूँछें हवा में लहराईं। पट्ठे अकड़े और वे एक झटके से दौड़ पड़े।

''अला ला ला ला लाह...'' फ़क़ीर दीन पास पहुँचकर ललकारा। महिन्दर सिंह ने भी उसी आवाज़ में जवाब दिया और बैलों को ढीला छोड़ दिया। कच्ची सड़क पर दोनों की गाड़ियाँ भागने लगीं। बग़ैर एलान के दौड़ शुरू हो गई। देहातों में ऐसे मुक़ाबले रोज़मर्रा की बात थी, और उनमें बहुत कम बाक़ायदा एलाने-जंग की ज़रूरत समझी जाती थी। अब दोनों तरफ़ से ''अलालालाह'' की मख़सूस रट उठ रही थी। यह ऊँची, करख़्त भेड़ियों की आवाज़ थी, जो दोनों फ़रीक़[1] जोश और गुस्से में आकर निकाल रहे थे, और छड़ियाँ, रस्सियाँ और गेहूँ के नाड़ बैलों की पसलियों पर मारते जा रहे थे। रास्ते में जाते हुए किसान उन्हें देखते और रास्ता छोड़ देते। जोशीले लड़के ऐसी ही आवाज़ें निकालकर उनकी हिम्मत बढ़ाते। गाड़ियाँ कच्ची सड़क के गढ़ों और पत्थरों पर उछलती, बैठती, चरचराती, धूल का तूफ़ान उठाती हुई भाग रही थीं, और ऊपर हर दो फ़रीक़ के बहीख़्वाह[2] गाड़ी के डंडों से लिपटे हुँकारे मार रहे थे।

''ऊपर बरखा आ रही है और लौंडों को मस्ती सूझती है।'' जल्दी से रास्ता छोड़ता हुआ एक बुड्ढा भौंओं में झल्लाया। गाड़ियाँ खड़खड़ाती हुई उसके पास से निकल गईं और वह सिर से पाँव तक धूल में अट गया।

जोहड़ के किनारे पहुँचकर महिन्दर सिंह ने गाड़ी ठहराई और मुड़कर तहबन्द निकाल दिया। ''अलालालाह...वाहेगुरु...'' जीत और ग़रूर के नशे में वह फ़क़ीर दीन के रास्ते में खड़ा होकर नाचने लगा। फ़क़ीर दीन ने कंजी आँखें सिकोड़कर देखा और नफ़रत से उसकी तरफ़ थूकता हुआ निकल गया। कुलदीप कौर अन्दर से निकली और शर्म से लाल होकर वापस चली गई।

रात भर वे जागते और फ़सलों के गिर्द फिरते रहे। पिछली रात आसमान साफ़ और पुर-सुकून हो गया। तूफ़ान ख़ामोशी से गुज़र चुका था। किसान अगला दिन शुरू करने से पहले दो घड़ी आराम करने की ख़ातिर अपने-अपने घरों को लौट गए। सवेरे एक और तूफ़ान उनकी राह देख रहा था।

सूरज हाथ भर भी ऊपर नहीं आया था, लेकिन दिन में दोपहर की तपिश आ चुकी थी। सुबह की ताज़ा, मन्द हवा के साथ धूप कच्ची ममटियों और भूरे खेतों पर फैल चुकी थी। मटियाले रंग की धूल जो तीन रोज़ तक गाँव पर मँडलाती रही थी, बादल और हवा के गुज़रने के बाद छँट चुकी थी।

फ़िज़ा पहाड़ी झरने की तरह खनकती हुई शफ़्फ़ाफ़ थी और आख़िर मई के सफ़ेदी-माइल नीले आसमान पर परिन्दे आज़ादी से उड़ रहे थे। धूप बड़ी आहिस्तगी से गलियों में दाख़िल हुई और बैलों की घंटियाँ बज उठीं। उन्हें खेतों को ले जाते हुए किसान हँस-हँसकर बातें करने लगे। घंटियों

1. दल, 2. शुभचिन्तक।

की खनक और किसानों की आवाज़ें सुबह की धूप की तरह गर्म, शफ़्फ़ाफ़ और जानदार थीं। निखरी, नहाई हुई फ़िज़ा में आक की सफ़ेद रुई की 'बुढ़ियाँ' उड़ रही थी, और चन्द बच्चे शोर मचाते हुए उनके पीछे भाग रहे थे।

जोहड़ के किनारे पर पहुँचकर सारी आवाज़ें एकदम रुक गईं। सिर्फ़ बच्चों के चिल्लाने का शोर दूर से आता रहा। नियाज़ बेग बाहर निकला और घबराकर वापस घर में घुस गया। भूसे के ढेर में चेहरा गाड़कर वह औरत से बोला : "किवाड़ बन्द कर दो। ताला लगा दो। छप्पर पर पड़ा है। किसी को मत बताना। यहाँ पर कोई नहीं है। कोई नहीं है। सुना ? जाओ।" पसीना उसकी सियाह गर्दन पर धारियाँ बनाता हुआ गन्दे कालर में जज़्ब हो रहा था।

नईम बाहर निकला। शीशम के बड़े पेड़ के नीचे दस-बारह फ़ौजी ट्रक और लारियाँ खड़ी थीं। तीन गोरे सार्जेन्ट और दो गोरे फ़ौजी अफ़सर किसानों और बैलों के हुजूम[1] के सिरे पर हरकत कर रहे थे। उनके पास महिन्दर सिंह की बैलगाड़ी दोनों डंडे आसमान की तरफ़ उठाए खुली खड़ी थी। पुलिस के सिपाही हर तरफ़ के किसानों को घेरकर ला रहे थे।

एक अंग्रेज़ सार्जेन्ट ने शुस्ता[2] उर्दू में भारी, करख़्त फ़ौजी लहजे में हुजूम को मुख़ातिब[3] किया : "अपने मुल्क, अपनी हुकूमत की हिफ़ाज़त करने का फ़र्ज़ हर फ़र्द[4] पर आइद[5] होता है। जंग तुम्हारे मुल्क और तुम्हारी हुकूमत को तबाह करने पर तुली हुई है।"

हुजूम पर सन्नाटा छाया हुआ था। कभी कोई बैल सींग झटककर फुँकारता और उसकी घंटी की आवाज़ एक पल के लिए ख़ामोशी को तोड़ देती। सार्जेन्ट ने अपने ज़र्द चेहरे पर आहिस्तगी से हाथ फेरा और तनकर खड़ा हो गया।

"जंग जीतने के लिए हमें जवानों की ज़रूरत है। जिसके पास ज़्यादा जवान होंगे, वह हुकूमत जंग जीतेगी। हमारे मुल्क में लाखों जवान हैं।" उसने रुककर हाथ फैलाया। "उनकी मदद से हम ज़रूर फ़तह हासिल करेंगे। जवानों को चाँदी के साथ शाही सिक्के माहवार दिए जाएँगे। और राशन, वर्दी की ज़िम्मेदार हुकूमत होगी। जंग ख़त्म होने पर जवान वापस आ जाएँगे।"

"वापस आ जाएँगे ?" बुड्ढा रहमत तन्ज़[6] से हँसा। "जंग में अब ख़ून होना बन्द हो गया है। हम तमाशे पर जा रहे हैं। एं ?"

सार्जेन्ट के होंठ काँपे। "हम बूढ़ों को नहीं ले जाएँगे। जवान अपना नाम दें !"

मजमे में से शहद की मक्खियों की-सी भिनभिनाहट उठी। दरमियान में दो लड़के बातें करने लगे।

"लड़ाई कहाँ हो रही है ?"

"पता नहीं !"

"लड़ाई हो कहाँ रही है...हैं !"

अगली सफ़[7] में खड़े हुए महिन्दर सिंह ने सार्जेन्ट को मुख़ातिब किया : "हाँ...लड़ाई कहाँ हो रही है ?" भिनभिनाहट तेज़ हो गई।

"ख़ामोश !" सार्जेन्ट ने हाथ फैलाया। "जंग इंगलिस्तान को धमकी दे रही है। मेरा मतलब है, आपकी हुकूमत। हुकूमते-बरतानिया को बचाने के लिए आपकी ज़रूरत है। जवान अपना नाम दें !"

"हम कटाई पर जा रहे हैं।" बीच में से आवाज़ आई।

"कटाई ख़त्म करके जाएँगे !"

"फ़सल बाहर पड़ी है...अभी..." महिन्दर सिंह अगली सफ़ में से बोला। सार्जेन्ट ने एक नज़र मुड़कर अंग्रेज़ फ़ौजियों को देखा। फिर मज़बूत आवाज़ में बोला : "हमारे पास वक़्त नहीं है। हमें सारे ज़िले में जाना है। अपने नाम दो !"

1. भीड़, 2. शुद्ध, 3. सम्बोधित, 4. व्यक्ति, 5. लागू, 6. व्यंग्य, 7. पंक्ति।

हुजूम में जुम्बिश पैदा हुई। किसान अपने-अपने बैलों के साथ जिस्म रगड़ने लगे। मुख़्तलिफ़ जगहों से चन्द दबी-दबी आवाज़ें आईं : "हम क्या खाएँगे ?"

"फ़सल को गीदड़ उठाएँगे...हैं ?"

"हम नहीं जाएँगे !"

"सारे बरस हमने सुअरों के लिए मेहनत की ?"

"देखो...हमारे हाथ देखो।" पीछे खड़े हुए एक किसान ने सियाह, ख़ुश्क, तड़का हुआ हाथ फैलाया। आस-पास खड़े हुए लोगों ने उसका गाँठदार, पुराने सूखे हुए चमड़ेवाला हाथ देखा, लेकिन सार्जेन्ट मुड़कर फ़ौजियों को देख रहा था।

लम्बे, पतले चेहरेवाले फ़ौजी अफ़सर ने जेब से काग़ज़ों का एक पुलिन्दा निकाला। उलट-पुलटकर देखा और अपने साथी को पकड़ा दिया। फिर वह तेज़-तेज़ चलकर रुकी हुई गाड़ी पर जा चढ़ा और वज़न क़ायम रखने के लिए एक बाजू फैलाकर तेज़ लहजे में बोला : "अपनी फ़सलें अब तुम इससे काटोगे और मैदाने-जंग में काटोगे।" यह कहकर उसने संगीन[1] हवा में लहराई। चमकते हुए लोहे पर सूरज की छाया पड़ी और बैलों ने बिदककर सींग झटके। फिर उसने माहिरे-फ़न की तरह संगीन गाड़ी के फ़र्श पर फेंकी, जो जाकर लकड़ी में गिर गई।

"सिपाहियों को हुक्म दो, जवानों को पेश करें।" उसने सार्जेन्ट से कहा।

संगीन लगी राइफ़लों से जवानों को हाँका जाने लगा। बाज़ किसानों की पसलियों में राइफ़लों के दस्ते और संगीनें चुभो-चुभोकर बैलों से अलग किया गया, लेकिन वे बच्चों की तरह उनकी गर्दनों और सींगों से लिपटे हुए दबी-दबी ज़बान में गालियाँ देते रहे। नईम ख़ामोशी से चलता सार्जेन्ट के पास जा खड़ा हुआ।

"मेरा नाम लिखो !" उसने अंग्रेज़ी में कहा।

सार्जेन्ट अचम्भे से उसे देखा। "तुम तालीमयाफ़्ता[2] हो ?"

"मैंने कलकत्ता से सीनियर कैम्ब्रिज किया है !"

"और अब कटाई को जा रहे हो ?"

"हाँ !"

"जाओ !" सार्जेन्ट काग़ज़ात पर झुक गया।

"मैं महाज़[3] पर जाऊँगा !"

सार्जेन्ट ने हाथ के इशारे से उसे जाने को कहा। "तुम इसके लिए मौज़ूँ[4] नहीं हो। जाओ !" पतले चेहरेवाला अफ़सर क़रीब आ खड़ा हुआ। नईम ने ग़ैर-यक़ीनी नज़रों से उसकी तरफ़ देखा और एक शदीद अन्दरूनी ख़्वाहिश के ज़ेरे-असर[5] बोला : "मैं सवारी कर सकता हूँ। राइफ़ल चला सकता हूँ। इन सबसे बेहतर लड़ सकता हूँ !"

"ठहरो ! भरती ख़त्म होने दो।" अफ़सर ने आहिस्ता से कहा।

वह वहाँ खड़ा सिरों के ऊपर-ऊपर पच्छिम की तरफ़ देखने लगा, जहाँ धूप में चमकते हुए खेत थे और गेहूँ के भारी गुच्छे शराबियों की तरह हवा में झूम रहे थे। जगह-जगह कटी हुई फ़सल के अम्बार बड़े-बड़े मुरदा कछुओं की तरह सुनसान खेतों में पड़े थे और एक इकलौती सियाह घोड़ी उनके दरमियान फिर रही थी। आसमान पर चीलें ज़बानें निकाले चीख़ रही थीं और दोपहर की गर्म हवा खेतों में, खलियानों में, फ़सलों में और किसानों के पसीने की मुंतज़िर[6] ख़ुश्क मटियाली ज़मीनों में सरसरा रही थी। नईम का अपना खेत उसके पीछे था। वह उसे देखने के लिए मुड़ा। फिर रुक गया और सोई-सोई नज़रों से उछलते-कूदते हुए, धक्कमपेल करते और गालियाँ देते पसीने

---

1. एक लम्बी और पतली बरछी जो बन्दूक के सिरे पर लगाई जाती है, 2. शिक्षित, 3. मोरचा, 4. योग्य, 6. प्रभाव में, 6. प्रतीक्षारत।

और धूल में अटे हुए हुजूम को देखने लगा। दो घंटे की मुसलसल कोशिश के बाद सिर्फ़ दो नौ-उम्र लड़के, जिनके माँ-बाप मर चुके थे, भरती किए जा सके। पतले चेहरेवाला फ़ौजी अफ़सर, जो बहुत ग़ुस्से में था, नईम की तरफ़ मुड़ा। "हमें तालीमयाफ़्ता लोगों की नहीं, किसानों की ज़रूरत है। बेहतर है, तुम यहीं ठहरो या महकमा-ए-तालीम[1] में नौकरी कर लो !"

"मैं किसी महकमा में नौकरी नहीं करना चाहता। मैं किसान हूँ।" नईम ने कहा।

अफ़सर ने उकताकर उसे सार्जेन्ट के हवाले किया और परे चला गया। एक हिन्दुस्तानी हवलदार ने उसका नाम, बाप का नाम, मज़हब, पेशा, उम्र, क़द और शनाख़्ती-निशान दर्ज किए और काग़ज़ उसके हाथ में थमाकर दूसरे लड़कों के साथ खड़ा कर दिया।

वह रात उन तीनों ने मिलिटरी ट्रक में गुज़ारी। रात गए तक वे बैठे आहिस्ता-आहिस्ता बातें करते रहे। फिर उन्हें नींद आने लगी और वे एक-एक करके सो गए। अगली सुबह अंग्रेज़ अफ़सर, जो रातों रात गाड़ी लेकर कहीं चला गया था, लौटा। उसके साथ रौशन आग़ा थे। वह फ़ौजी गाड़ी की अगली सीट से उतरकर हवेली तक आए और वहीं खड़े-खड़े जवानों को इकट्ठा करने को आदमी दौड़ा दिए। उनकी आवाज़ पर देखते-देखते गाँव के तमाम नौजवान, बूढ़े और बच्चे हवेली के मैदान में जमा हो गए। एक मुद्दत के बाद रौशन आग़ा की शक्ल देखकर उन्होंने अपनी मसरूर, गूँगी, वफ़ादार आँखों में 'ख़ुशआमदेद'[2] कहा और आकर अदब से खड़े हो गए। रौशन आग़ा ने एक उकताई हुई, सरपरस्ताना[3] नज़र उन पर डाली, और कुर्सी पर चढ़कर खड़े हो गए। फिर एक मुख़्तसर-सी तक़रीर के दौरान उन्होंने हिन्दोस्तानी किसानों की बहादुरी, बरतानिया हुकूमत से उनकी वफ़ादारी और जंग की हौलनाकियों[4] वग़ैरह का ज़िक्र किया। इस दौरान में सारे फ़ौजी अफ़सर सीने पर हाथ बाँधे बड़ी मतानत[5] और ला-तअल्लुक़ी[6] से खड़े रहे। आख़िर में रौशन आग़ा ने जंग पर जानेवालों के ख़ानदानों की देखभाल का ज़ाती तौर पर ज़िम्मा लेते हुए सरसरी, लेकिन फ़ैसलाकुन लहजे में भर्ती के लिए पेश होने का हुक्म दिया। अब किसी को दम मारने की मजाल न थी। फ़ौजियों ने अपना काम शुरू किया। किसानों के मजमे में एक ख़ामोश हलचल पैदा हुई, लेकिन वे एक-एक करके नंगे बदन डॉक्टर के आगे से गुज़रते रहे। डॉक्टर ने चन्द एक को छूकर देखा। बाक़ी को सिर से हलके-से इशारे के साथ सार्जेन्ट के हवाले कर दिया, जो उनके काग़ज़ात तैयार कर रहा था। तीन घंटे के अन्दर-अन्दर गाँव के ज़्यादातर नौजवान, जो तादाद में चालीस थे, भर्ती कर लिए गए।

लाल दीन से हुक़्क़ा रखवाने के लिए एक सिपाही उसकी तरफ़ बढ़ा।

"जाओ।" लाल दीन हुक़्क़े को बाज़ुओं में छुपाकर चीख़ा। "जा, मैं नहीं देता। मुझे मार दे, ख़ून कर दे, पर इसे हाथ मत लगा। मैं इससे तेरा सिर तोड़ दूँगा !"

सार्जेन्ट ने हाथ के इशारे से सिपाही को रोका और इस तरह एक हुक़्क़ा नौजवानों के साथ चला गया। सबको ट्रकों और लारियों में भर लिया गया। रौशन आग़ा थोड़ी देर रुककर उसी फ़ौजी गाड़ी में वापस लौट गए। गाँव की औरतें अपने बेटों, ख़ाविन्दों और महबूबों को जंग पे जाते देखकर ऊँची आवाज़ से रोने लगीं। बूढ़े आँखों पर हाथ का साया करके अमीर और वीरान खेतों को तकने लगे।

नियाज़ बेग अगली सुबह भूसेवाले कमरे से निकला। कम-ख़्वाबी की वजह से उसकी आँखों का ख़ला[7] शिद्दत इख़्तियार कर गया था।

"नईम चला गया ?..." उसने पूछा। ठंडे चूल्हे के आगे बैठे-बैठे बड़ी औरत ने ख़ामोशी से उसे देखा और सिर झुकाकर कुरेदने लगी। उसकी आँखें ज़र्द और ख़ुश्क थीं। नियाज़ बेग झुककर चलता हुआ दीवार के पास गया, और एड़ियाँ उठाकर अगले मकान में झाँकने लगा।

---

1. शिक्षा विभाग, 2. शुभागमन (स्वागत-वाक्य), 3. अभिभावकों जैसी, 4. भयानक का बहुवचन, 5. गम्भीरता, 6. असम्बद्धता, 7. शून्यता।

"हुसैन चला गया ?"

"हाँ !" दीवार की परली तरफ़ अहमद दीन ने जवाब दिया।

"और कौन गया ?" दूसरी तरफ़ से कोई जवाब न आया।

"फ़सल पर जा रहे हो ?" वह दोबारा उचका। उस तरफ़ ख़ामोशी रही।

कुछ देर तक वह आँगन के बीच में काँपती हुई टाँगों पर खड़ा रहा। दो रातों में वह बहुत बूढ़ा हो गया था। फिर वह चिलम पर तम्बाकू और गुड़ रखकर चूल्हे के पास गया।

"आग है ?"

"नहीं !" औरत उसके ग़ुस्से का इन्तिज़ार करने लगी।

उसने ख़ामोशी से चिलम ज़मीन पर रख दी और कोने में जाकर दराँती और रस्सा उठाया। झुके हुए जिस्म और कमज़ोर चाल से आँगन पार करते हुए उसे उसकी बीवी ने देखा और रंज और रहम से ख़ौफ़ज़दा[1] हो गई। "बूढ़े के अब कितने दिन हैं !" उसने सोचा।

नियाज़ बेग ने रस्सा कन्धे पर फेंका और दराँती को पगड़ी में उड़सने लगा। देर तक वह काँपती उँगलियों के साथ पगड़ी, रस्से और दराँती के साथ उलझता और भौंहों में झल्लाता रहा। फिर उसने झुककर नईम की दराँती और रस्सा उठाया और दरवाज़े में बैठे हुए छोटे लड़के के कन्धे पर रखा। "आओ !" बाहर निकलते हुए वह बोला।

बच्चा रस्से को सँभालता हुआ कूदकर उठा और ख़ुश होकर चहका : "मैं कटाई कर लेता हूँ, बाबा ! कल मैंने दो मरले फ़सल काटी थी !"

दरवाज़े के पास वह भैंस के फूले हुए नथुनों को देखकर रुक गया।

"इसे दोहा नहीं ?" थनों के नीचे हाथ फैलाते हुए उसने पूछा। भैंस डकराई और सफ़ेद गाढ़े दूध के चन्द क़तरे उसकी हथेली पर गिर पड़े। छोटे लड़के ने सहमकर उसे देखा। (यह नियाज़ बेग के घर में बहुत बड़ा जुर्म था। इस लापरवाही पर वह दो-दो फ़ुट उछला करता और कहता : "जानवर को दुख देकर तुम कभी सुखी नहीं रह सकते। तुम्हारी गोद के बच्चे भी मर जाएँगे और तुम्हारी छातियों से दूध टपकेगा...कुतियो !) औरत हाथ रोककर फैली हुई आँखों से उसे देखने लगी।

उसने गन्दी हथेलियों में दूध मलकर सिर के बालों से पोंछा।

"भैंस दूध फेंक रही है।" फिर उसने बीमार आवाज़ में कहा और बाहर निकल गया।

लड़का फ़सल काटने की ख़ुशी में उसके पीछे-पीछे दौड़ रहा था और मुसलसल बातें कर रहा था। अचानक बड़ी औरत, जो दो रोज़ से ख़ामोश बैठी थी, फूट-फूटकर रोने लगी।

धूप खेतों और कच्चे मकानों की ममटियों पर फैल गई थी और गलियों में से बैलों की घंटियों की इक्का-दुक्का आवाज़ें आ रही थीं।

8

नम्बर 129, बलोची, ड्यूक ऑफ़ कनाट्स ओन, फ़ीरोज़पुर ब्रिगेड, लाहौर डिवीज़न। रेजीमेंट दो माह तक हैड-क्वार्टर्ज़ पर रुकी रही। इस अरसे में रंगरूटों को इन्तिहाई सख़्त ट्रेनिंग से गुज़रना पड़ा। अठारह घंटे जो वह जागते, उनमें से बारह घंटे मश्क़ें (Exercise) करते। परेड-दौड़ और अस्लिहा[2] का इस्तेमाल सीखते। छह घंटों में खाना खाते। कपड़े सीते। जूते और बटन पॉलिश करते और गप मारते।

दरख़्तों, कबूतरों और खेतों की हवा की तरह आज़ाद, अपनी मर्ज़ी से काम करनेवाले किसानों पर यह मुनज़्ज़म[3] मशीनी अमल[4] बहुत भारी हो गया। खेतों और बाग़ों में वे इससे ज़्यादा सख़्त

1. भयभीत, 2. हथियार, 3. व्यवस्थित, 4. काम।

काम करते थे, लेकिन अब बैलों और घोड़ों के बजाय राइफ़ल, ख़ुराक और बारूद का थैला था और जहाँ वे अपनी मर्ज़ी के मुताबिक़ गाँव की किसी भी गली, किसी भी कोने पर मुड़ सकते थे, रुककर बातें कर सकते थे; अब ख़ास हिदायात के तहत दाएँ और बाएँ मुड़ना और हुक्म मिलने पर रुकना, चलना पड़ता था। मेहनत की इस पाबन्दी से उनके जिस्म थकावट से टूट गए और चाक़ो-चौबन्द ज़ेहन ग़बी[1] और सुस्त हो गए।

अगस्त के पहले दिन नईम परेड पर से लौटा। आसमान पर सावन के सियाह घने बादल गड़गड़ाकर चमक रहे थे। अलीपुर का अब्दुल्ला, जो सारी पल्टन में नईम का वाहिद दोस्त था, बैरिक के कोने में बैठा कुछ सी रहा था। पच्छिमी पंजाब के चार सिपाही एक दूसरे की तरफ़ पीठ किए वर्दियाँ उतार रहे थे। इस बैरिक में यही छह सिपाही थे।

"तुम चाँद-मारी के बाद कहाँ ग़ायब हो गए ?" नईम ने अब्दुल्ला से पूछा।

"मैं आवारागर्दी नहीं करता। सीधा घर आता हूँ।"

"घर..." नईम ने तमस्ख़ुर[2] से दुहराया। बँधे हुए बितर को बूट से धकेलकर उसने दीवार के साथ लगाया और उस पर बैठकर आँखें बन्द कर लीं। वह थक गया था। घसीटकर टोपी उतारने के बाद उसने उसके साथ चेहरे और गर्दन का पसीना पोंछा और घुमाकर उसे फ़र्श पर फेंक दिया। फिर उसने आँखें खोलीं। बादल आसमान पर बहुत नीचे झुक आए थे।

"आज तुम किसी-न-किसी को मार देते !" उसने बूट पट्टियाँ उतारते हुए कहा।

बाहर बारिश शुरू हो चुकी थी। दूसरे कोने में एक पंजाबी सिपाही सावन का कोई गीत गाने लगा।

"अगर फिर ऐसा किया, तो गोली से उड़ा दिए जाओगे।" नईम ने फिर कहा।

अब्दुल्ला ख़ामोशी से सुई-धागे पर झुका रहा।

"बाज़ लोगों के सिर पर बैल का दिमाग़ होता है !"

"तुम बावले हो गए हो !" अब्दुल्ला आँखें निकालकर चीख़ा।

नईम होंठों में हँसा। वर्दी उतारकर उसने गोल बिस्तर बग़ल के नीचे रखा और लेट गया। अब्दुल्ला ने आख़िरी टाँका लगाकर धागा तोड़ा और ग़ौर से उसे देखकर बोला : "पारसाल इन्हीं दिनों मैंने एक मछली पकड़ी थी। बड़ी ख़ूबसूरत !"

"फिर ?"

"मुझे याद है। मैं सारा दिन बैठा धूप में जलता रहा था, मगर एक कछुए के सिवा कुछ हाथ न आया था। शाम के वक़्त बादल छा गए। ख़ूब बारिश हुई और एक मछली भी हाथ लग गई। छोटी-सी। बस यह उँगली देख लो, पर इतनी ख़ूबसूरत मछली मैंने आज तक नहीं देखी। उसके जिस्म पर हज़ार रंग के दाने थे, और हीरों की तरह चमक रहे थे। मैं उसे कटोरे में डालकर घर ले आया, और नाँद में पानी भरकर उसे छोड़ दिया।"

बारिश मूसलाधार हो रही थी। चारों पंजाबी सिपाही नंगे बदन बाहर खड़े नहा रहे थे। इसी तरह सब बैरिकों के आगे नंगे, गन्दुमी और सियाह जिस्म भीगते, कूदते और शोर मचाते हुए दिखाई दे रहे थे। जो नहीं नहा रहे थे, वे बरामदों में खड़े तम्बाकू पी रहे थे और गप मार रहे थे। बादल फ़ीरोज़पुर छावनी पर बहुत नीचे झुक आए थे और कमरों में अँधेरा बढ़ता जा रहा था।

"क्या कह रहे थे ?" नईम ने पूछा।

"आज बिलकुल वैसा एक पत्थर मेरी ठोड़ी के आगे पड़ा था। उस पर हज़ार रंग के दाने थे और ऐन-मैन उसी शक्ल का था। मैंने इतने अरसे से मछली नहीं पकड़ी। मेरा दिल चाहा, उसे पकड़ लूँ। यक़ीन करो, मेरा इरादा नहीं था।" वह रुका, "लेकिन मुझे महसूस हुआ कि वह मछली है और

1. मन्दबुद्धि, 2. उपहास, व्यंग्य।

भाग जाएगी। मैंने उस पर फ़ायर कर दिया। मेरा इरादा नहीं था। ख़ुदा की क़सम, मेरा कोई ख़याल न था। पर उस वक़्त मेरी कुछ समझ में न आया। बस, पता नहीं !"

बाहर बारिश का ज़ोर कम पड़ गया था और बैरिक में उजाला बढ़ने लगा।

"मज़्हकाख़ेज़[1]।" नईम ने कन्धे उचकाए। "और उस मछली का क्या हुआ ?"

"वहाँ किसी ने बैल लाकर बाँध दिए। शायद वे खा गए।"

नईम ने हाथ चौड़ा करके अब्दुल्ला के कन्धे पर मारा, जिससे उसका सारा बदन हिल गया।

"इसीलिए तो कहता हूँ, बाज़ लोगों के सिर में बैल का दिमाग़ होता है !"

"दाँत मत निकालो। तुमने कभी मछलियाँ नहीं पकड़ीं। तुम नहीं समझ सकते ! बाज़ लोगों में बैल का दिल भी होता है।" उसने ट्रंक खोलकर पॉलिश का सामान निकाला और बूट चमकाने लगा। बरामदे के बाहर मेंह थम चुका था, लेकिन सिपाही अभी तक नंगे बदन दौड़ते हुए हँसी-मज़ाक़ में मसरूफ़ थे। उनके जिस्म मेहनत की वजह से हलके पड़ गए थे और रगें उभर आई थीं। नईम आहिस्ता-आहिस्ता एक धुन, जो उसने रौशन महल में सुनी थी, गुनगुनाने लगा।

"लेकिन एक बात तुम्हें बताऊँ !" अब्दुल्ला हाथ रोककर बोला : "बैलों का दिल बिलकुल आदमियों की तरह होता है !"

"कैसे ?"

"वे सब कुछ सुनते हैं और समझते हैं। रोते भी हैं..."

नईम गुनगुनाता हुआ हँसा।

"तुम यक़ीन नहीं करते ? तुमने बैल कभी देखे हैं ? मैं तो बैलों में पैदा हुआ और बैलों में पला।"

नईम को बेध्यानी से गुनगुनाते देखकर वह ज़ोर-ज़ोर से ब्रश रगड़ने लगा।

"घोड़ों का मुझे पता है। वे सब समझते हैं !" अचानक नईम ने कहा।

"हाँ ! घोड़े भी समझते हैं और बैल भी। मैं तुम्हें बताता हूँ, जब मेरी पहली बीवी मरी, तो लाठा, जो हमारे घर में ही पैदा हुआ था, दो रोज़ तक भूका रहा। मेरी बीवी उसे चारा डाला करती थी। मैं बाहर गया, तो वह भी पीछे-पीछे आ गया। आम के पेड़ के नीचे मैं घुटनों में सिर देकर बैठ गया, तो वह मेरी गर्दन चाटने लगा। फिर क़रीब ही बैठ गया, और मेरे कन्धे पर सिर रखकर साँस लेने लगा। बड़ी देर बाद मैंने देखा, तो उसकी आँखों में आँसू थे। एक आम तोड़कर दिया, तो नहीं खाया। बस सिर हिला दिया। फिर आधा मैंने खाया, तो उसने भी चख लिया..."

खाने की पहली घंटी हो चुकी थी, और नहानेवाले अन्दर आकर कपड़े पहन रहे थे।

"घोड़ों के मुतअल्लिक़ मुझे पता है !" नईम ने कहा।

"हाँ ! घोड़े भी और बैल भी !"

नईम ने उठकर तामचीनी का जग और थाली ट्रंक में से निकाली और टोपी के साथ उन्हें साफ़ किया। "चलो लंगर, सज्जनो !" एक पंजाबी सिपाही ने थाली और मग बजाते हुए उन दोनों से कहा।

"चलो !"

बाहर आकर अब्दुल्ला ने ऊँचे होते हुए बादलों और धुली-धुलाई फ़िज़ा को देखा।

"आज तो आम खाने का दिन है। पता नहीं, यह हमें आम क्यों नहीं देते ?" उसने कहा।

हर तरफ़ से जवान बर्तन हाथों में लिए एक ही तरफ़ जा रहे थे। खाने के एक घंटे बाद वे फिर परेड के लिए तैयार हो रहे थे।

"यह बकलस लगाना, भाई !" अब्दुल्ला ने दोनों हाथों से थैले को पीठ पर थामते हुए कहा।

---

1. हास्यास्पद।

"मैं सार्जेन्ट को बताऊँगा।"

"क्या ?"

"तुम अपनी "किट" भी नहीं बाँध सकते !"

अब्दुल्ला ने गाली दी : "मैं उसका सिर तोड़ दूँगा, सुअर..."

फिर जब वह "किट" बाँध चुका, तो उसने थकी हुई आवाज़ में पूछा : "जंग कब शुरू होगी, नईम ?"

"तुम्हें मरने की जल्दी है ?"

"मैं इस परेड से तंग आ गया हूँ। बहनचोद वहाँ पर आम तो होंगे। आमों के दरख़्त ही होंगे। शायद मछलियाँ भी हों।"

"वहाँ मौत भी होती है !"

"ठीक है। लोग मरेंगे तो सही ! यहाँ तो बहनचोद बन्दूक़ है और गोलियाँ हैं...क़ैदियों की तरह बन्द पड़े हैं। एक न एक दिन मैं किसी को गोली मार दूँगा !"

"क्या कहा ?" नईम ने अचानक पूछा। अब्दुल्ला ने घबराकर उसे देखा और हँसने लगा।

बाहर आकर उसने नईम को कुहनी पर छुआ। "तुम यक़ीन न करो चाहे, पर मैं बन्दूक़ हाथ में लेता हूँ तो मुझे ताव आ जाता है। मेरा दिल करता है किसी का ख़ून करूँ। तभी आज सवेरे मैंने फ़ैर किया था। पर पत्थरों में ख़ून कहाँ से आया ?"

"फ़िक्र न करो। जल्द ही मौक़ा मिलेगा !" नईम ने कहा।

अब्दुल्ला खिसियानी और खोखली आवाज़ से हँसा।

चार अगस्त, 1914 को जंग का एलान किया गया। पाँच दिन के बाद ब्रिग्रेड को कूच का हुक्म मिला। तमाम सफ़ों में ख़ुशी की लहर दौड़ गई। उन्होंने रगड़-रगड़कर बूट-पॉलिश किए। राइफ़ल की नाली और दस्ता चमकाया। वर्दी के बटनों पर सोडा घिसा, और बालों में तेल और आँखों में सुरमा लगाया। जो तालीमयाफ़्ता थे, उन्होंने लम्बे-लम्बे ख़त अपने घरों को लिखे और दूसरों को लिखकर दिए। इतने दिनों की ख़ुश्क भारी ड्यूटी के बाद जब असल जंग का लफ़्ज़ चारों तरफ़ फैला, तो उदास और उकताए हुए ज़ेहन और थकन से चूर आज़ा[1] ख़ून की तेज़ी से सनसनाने लगे।

बैरिक नम्बर 6 में वे तैयार हो रहे थे।

"तुम घर ख़त नहीं लिखोगे ?" नईम ने पूछा।

"नहीं !" अब्दुल्ला के हाथ मशीन की तरह राइफ़ल के हड़के पर चल रहे थे। वह उसे तेल देकर रवाँ कर रहा था। पंजाबी सिपाही अपना-अपना सामान बाँध रहे थे। बैरिक में सिर्फ़ राइफ़ल के हड़के की ठक-ठक और ट्रंकों के घसीटने की आवाज़ें थीं और लालटेन की रौशनी में इनसानी जिस्मों के छोटे-बड़े साए दीवार पर नाच रहे थे। बाहर शाम का अँधेरा तेज़ी से फैल रहा था। एक भारी, धमाके से फटनेवाली ख़ामोशी कमरे की फ़िज़ा पर छाई हुई थी। उन छहों में से हर एक यह महसूस कर रहा था कि अभी वे सब क़हक़हा लगाकर हँसने लगेंगे, या अचानक एक दूसरे पर टूट पड़ेंगे, या फिर पता नहीं...लेकिन कुछ होगा ज़रूर, जिसके लिए वे ख़ामोशी और फुर्ती से तैयार हो रहे थे। उनकी तबीअत हलकी-फुलकी थी और हर एक यह सोच रहा था कि उसको कोई बात करनी चाहिए, लेकिन इतने दिनों की उदास, ग़ुबार की-सी यकसाँ ज़िन्दगी के ख़ातिमे, और जंग की सनसनी से आरिज़ी[2] तौर पर उनकी ज़बानें गुँग हो गई थीं और दिमाग़ों में ख़ून भर गया था।

"मैं ख़त नहीं लिखूँगा !" राइफ़ल पर हाथ रोककर अब्दुल्ला ख़ुशदिली से बोला।

"क्यों ?"

"अगर मैं मारा गया, तो ख़त का क्या फ़ायदा ? तीन सौ ख़त भी मेरी बीवी के पास हुए तो

1. अंग का बहुवचन, 2. अस्थायी।

भी वह दूसरी शादी कर लेगी। ख़त किसी को कुछ नहीं कहते।"

"अगर पंजाब में कोई ऐसा करे, तो हमारे भाई उसे क़त्ल कर देते हैं।" एक पंजाबी सिपाही ने कहा।

"पंजाब में जंगली रहते हैं।" बात करनेवाला पंजाबी सिपाही बिस्तर पर झुककर हँसा।

"तो मैं क्या कह रहा था, नईम ?"

"क्या बेसुरा नाम है—नाईम !" दूसरा पंजाबी मुँह में बड़बड़ाया।

"तुम ख़तों की बात कर रहे थे।"

"हाँ ! ख़त जब एक दफ़ा पढ़ा गया, तो फिर समझो, वह नाकारा हो गया। फिर वह गुज़रे हुए ज़माने की बात बन गया। फिर वह किसी को कुछ नहीं कहता। जैसे आदमी मर जाए। पता है, मुरदा आदमी और ख़त में बहुत थोड़ा फ़र्क़ है। दोनों गुज़रे हुए वक़्त की चीज़ें हैं। पुराने ख़त पढ़ना और मुरदे पर रोना वक़्त बर्बाद करने के बराबर है !"

नईम होंठ भींचकर सीटी बजा रहा था। गाँव की ज़िन्दगी के, जिसने उसकी रूह और जिस्म दोनों का सत्यानाश कर दिया था, ख़ातिमे पर उसने एक बोझ सीने पर से उठता हुआ महसूस किया। छावनी की पाबन्द ज़िन्दगी, जहाँ गाँव-गाँव से आए हुए किसानों ने पहली बार ज़िन्दगी में शदीद उकताहट और ग़ुनूदगी[1] देखी थी, नईम के लिए ख़ुश-मिज़ाजी और लापरवाही लेकर आई थी। हालाँकि उसका दिमाग़ अभी तक सल्ब[2] था और उसने कभी सोचने की ज़रूरत महसूस न की थी, मगर अब वह एक मामूली, सेहतमन्द आदमी की तरह वक़्त गुज़ार रहा था।

आधी रात के क़रीब वे फ़ीरोज़पुर छावनी से गाड़ी में सवार हुए। मालगाड़ी के ख़ाली डिब्बों में भूसा, घास और बाजरे के नाड़ बिछाकर उन्हें सफ़र के क़ाबिल बनाया था। सिपाही अपने-अपने बिस्तर दीवार के साथ रखकर उनके ऊपर बैठ गए। उनकी नींद उड़ चुकी थी और आँखें उनके सिगरेटों की तरह नीम-तारीकी में तेज़ी से चमक रही थी। सिर्फ़ एक सिपाही, जिसके पेट में दर्द था, बिस्तर पर सिर रखे घास पर लेटा था, और गले में "ग़र्र-ग़र्र" कर रहा था। कोने में एक अधेड़ उम्र पंजाबी सिपाही पुराने वक़्तों की कोई कहानी सुना रहा था और इर्द-गिर्द आठ-दस नौजवान, दहकते हुए मुश्ताक़[3] चेहरे सुन रहे थे। छत के साथ लटकती हुई धुँधली-सी हरीकेन डोल रही थी। दीवारों पर आदमियों के साए मुस्तक़िल फैल और सिकुड़ रहे थे।

गाड़ी स्टेशन पर रुकती, तो डिब्बे में घुटन हो जाती और लोग दोनों तरफ़ के दरवाज़ों पर जमा हो जाते।

"कौन-सा स्टेशन है ?"

"धर्मपासा !"

"हैं ? कौन-सा ? ज़ोर से बोला !"

"कहाँ जा रहे हो ?" स्टेशन पर से कोई पूछता।

"लड़ाई पर !"

"अल्लाह करम करे !"

"अल्लाह करम करे !"

"कहाँ जाते हो, साईं ?" आगे से एक और आवाज़ आई।

"लड़ाई पर।" अगले डिब्बेवाले जवाब देते !

"कहाँ ?"

"लड़ाई पर !"

"पर कहाँ ?...किस जगह ?"

1. निद्रालस, 2. जड़वत, निश्चल, 3. उत्सुक।

"तेरी माँ के पास।" डिब्बा क़हक़हों से भर जाता। "कोई पैग़ाम ?" मज़ीद क़हक़हे।

अब्दुल्ला ने घास पर हाथ फेरते हुए बूट से नईम का घुटना हिलाया।

"हमें घोड़े मिलेंगे ?"

"पता नहीं !" नईम ने कहा।

"मैंने अगले डिब्बों में कुछ घोड़े देखे हैं !"

"वे अफ़सरों के लिए हैं !"

"अगर वे कहते, तो मैं अपना घोड़ा साथ ले आता !"

"अपनी बीवी को लिखो, ले आए !"

अब्दुल्ला ख़ामोश बैठा घास में उँगलियाँ दौड़ाता रहा। मरीज़ सिपाही का दर्द बढ़ गया। उसने बहुत-सी घास उठाकर मुँह में डाली और गरर-गरर चबाने लगा।

"अगले स्टेशन पर तुम्हें उतार देंगे। सब्र करो।" तीमारदार सिपाही ने सिगरेट ख़त्म करते हुए कहा।

"देखो।" अब्दुल्ला ने गेहूँ की एक पकी हुई बाली घास में से खींचकर निकाली और चिल्लाया : "देखो ! यह यहाँ से निकली है। हरामियों ने पकी हुई फ़सल उठाकर डाल दी है !"

नईम ने चुपके से हाथ बढ़ाकर बाली उससे ले ली। हथेली पर मसलकर दाने निकाले और फूँक मारकर छिलका उड़ा दिया। "एकाध बाली तो भूसे में भी चली जाती है !"

"एकाध बाली..." अब्दुल्ला ने तेज़ी से कहा : "तुम्हारी फ़सल का क्या बना ? और मेरी का ? वह अभी खेत में थी। हम चले आए !"

"हुँह ! चले आए।" ताश खेलता हुआ एक पंजाबी तन्ज़ से हँसा। "तुम अपने पैरों पर आए थे ? हैं ?"

"वह सुअरों ने खाई होगी या गाड़ियों में बिछी होगी।" अब्दुल्ला ने अँधेरे में देखते हुए बात ख़त्म की।

"कल हमें भी सुअर ही खाएँगे...लो खाओ।" नईम ने चन्द दाने मुँह में डालकर बाक़ी उसकी तरफ़ बढ़ाए, जो उसने, ज़रा तअम्मुल[1] के बाद लेकर फाँक लिए। अनाज कसैला और बेरस था, लेकिन उनके गर्म-गर्म लुआब के साथ मिलकर उसका मीठा, सफ़ेद गूदा गाढ़े ख़ुशबूदार दूध में तब्दील हो गया और उन्होंने गेहूँ की मख़सूस, ताक़तवर हरारत ज़ुबान पर, दाँतों में और हलक़ के अन्दर उतरती हुई महसूस की। देर तक वह ख़ामोशी से गेहूँ के दाने चबाते और बाहर तेज़ी से भागते हुए सियाह दरख़्तों को देखते रहे। उनके जबड़े एक साथ, एक ताल पर, परेड करते हुए सिपाहियों की तरह चल रहे थे।

"यह सारा ख़ून है।" अब्दुल्ला ने मुँह में ज़ुबान फेरते हुए कहा।

"हाँ !" नईम ने इत्तिफ़ाक़[2] किया। अब्दुल्ला ने हवा में गाली दी।

ताश खेलते हुए चारों सिपाही किसी बात पर क़हक़हा लगाकर हँसे। उनके साथ ही पेट के दर्दवाले ने एक चीख़ मारी और मुट्ठियाँ पेट में ठूँसकर दाँत घास में गाड़ दिए। सब लोग उसके गिर्द इकट्ठे हो गए।

"सब्र करो। स्टेशन आनेवाला है।" कहानी सुनानेवाले देवहैकल[3] सिपाही ने कहा।

"पानी पिलाओ," एक और ने कहा और छागल बढ़ाई। मरीज़ ने मुँह मोड़कर एक और चीख़ मारी।

"गाड़ी रोको। मुँह क्या देख रहे हो ? गधो, ज़ंजीर खींचो !"

"हाँ, ज़ंजीर खींचो !...ज़ंजीर कहाँ है ?"

1. विलम्ब, संकोच, 2. सहमति, 3. भीमकाय।

ज़ंजीर की तलाश शुरू हुई। कहानी सुनानेवाले ने लालटेन उतारकर दीवार के साथ चलना शुरू किया। आधे सिपाही उसके पीछे-पीछे चलने लगे।

"ज़ंजीर नहीं है ?" उसने एलान किया।

"हैं ? ज़ंजीर नहीं है ?"

"यह जानवरों का डिब्बा है, आदमियों का नहीं ! देखते नहीं हो," एक नौ-उम्र लड़के ने घास पर ठोकर मारी।"जानवर को ज़ंजीर की ज़रूरत नहीं पड़ती !"

मरीज़ अब सीधा लेट गया था और हौले-हौले कराह रहा था। गाड़ी रुकी, तो सिपाही दोनों दरवाज़ों पर जा खड़े हुए।

"कौन-सा स्टेशन है ?" उन्होंने मख़सूस सवाल दुहराया।

"और तुम जानवरों की तरह दरवाज़े में क्यों खड़े हो ? हवा आने दो।" अब्दुल्ला बिस्तर पर बैठे-बैठे चीख़ा। दो-एक सिपाहियों ने पलटकर देखा और सुनी अनसुनी कर दी। वह झल्लाकर उठा और पूरी ताक़त से कुहनी एक की पसलियों में मारी। "हटो, मुझे बाहर जाने दो !"

नीचे ज़मीन गीली थी और मिट्टी में से ताज़ा हल जुते हुए खेत की ख़ुशबू आ रही थी। बारिश अभी-अभी होकर थमी थी। यह एक छोटा-सा देहाती स्टेशन था, जिसके दोनों सिरों पर लालटेनें वीरानी से जल रही थीं। दूसरी तरफ़ से आनेवाली गाड़ी की रौशनी नज़र आ रही थी। सिपाही कूद-कूदकर बाहर निकल रहे थे और स्टेशन पर फिर रहे थे, जिन्होंने बाहर आना मुनासिब न समझा, वे टाँगे लटकाए दरवाज़े में बैठे थे।

"मारो...मारो...मारो..." अचानक एक डिब्बे में शोर उठा और भाग-दौड़ शुरू हुई। कुछ देर बाद एक सिपाही बेंट की नोंक पर छोटा-सा साँप चढ़ाए बाहर निकला। राइफ़लों की नालियों से उसको उलट-पलटकर देखा गया। बेंटों से कचोके लगाए गए और सबकी एक ही राय थी : "बड़ा ज़हरीला है !" फिर उसका क़ातिल उसे बेंट में अटकाकर आगे बढ़ गया। चार डिब्बे आगे जाकर वह रुका और उसे दरवाज़े में खड़े सिपाहियों की तरफ़ बढ़ा दिया।

"लो, भोपालियो। एक तुहफ़ा लाया हूँ !"

"क्या है ?" दरवाज़े में से किसी ने पूछा। वहाँ पर अँधेरा था।

"बलोचियों ने भेजा है !"

एक जाकर अन्दर से लालटेन उठा लाया। दरवाज़े में खड़ा हुआ सिपाही अपने चेहरे के इतना क़रीब साँप की शक्ल देखकर चौंककर पीछे हटा। ऊपर और नीचे क़हक़हे बिखर गए।

"सुअर !" उसने बूट की ठोकर से साँप को दूर उछाल दिया। "हम भी जल्दी ही तुम्हें एक तुहफ़ा भेजेंगे !"

"यह कौन-सी रेजीमेंट है ?" अब्दुल्ला ने चलते-चलते पूछा।

"नम्बर 9 भोपाली !"

आगे एम.जी. डिटैचमेंट के डिब्बे थे। मशीनगनों की ख़ोल चढ़ी नालियाँ दरवाज़ों से बाहर निकली थीं और सिपाही उन पर टाँगें रखे सो रहे थे। आगे ज़ख़्मियों को उठानेवाली कम्पनी थी। वे स्ट्रेचरों के अम्बार के सहारे बैठे बातें कर रहे थे। उससे आगे घोड़ों के दो डिब्बे थे, जो मुँह बाहर निकाले घास खा रहे थे।

"जानवरों को ज़ंजीर की ज़रूरत नहीं पड़ती।" अब्दुल्ला ने हँसकर धीरे से दोहराया।

सामने से आनेवाली गाड़ी सीटी बजाती हुई ज़न से गुज़र गई। उसके ज़्यादातर कमरों में तेज़ रौशनी थी और पंखे चल रहे थे। मुसाफ़िर अख़बार पढ़ रहे थे। सो रहे थे और बाहर देख रहे थे। एकाध नंगी सफ़ेद-फ़ाम औरत चमड़े के बक्सों के सहारे बैठी क़हवा पी रही थी। बर्फ़ चूसता हुआ एक मोटा आदमी हैरत से फ़ौजियों की गाड़ी को देख रहा था। पिछली रात की नशीली नमदार

हवा अब्दुल्ला के चेहरे से टकराई और वह पलट आया।

"तुमने गाड़ी देखी ?" डिब्बे पर लटककर चढ़ते हुए उसने नईम से पूछा।

"हाँ !"

"उसमें एक औरत थी !"

"अच्छा ?" नईम ने मुस्कराकर कहा।

वे अपना बिस्तर खोलने लगे। कहानी सुनानेवाला पंजाबी कान पर हाथ रखकर हीर गा रहा था। बाक़ी सिपाही सोने की तैयारी कर रहे थे। चार बजे के क़रीब ज़्यादातर लोग सो चुके थे। जो नहीं सोए थे, वे नींद से भर्राई हुई आवाज़ में बातें कर रहे थे और अपना-अपना आख़िरी सिगरेट पी रहे थे।

कराची से वे एच.एम.एस. विमोथ में सवार हुए। जहाज़ की ऊपरी मंज़िल में कम्पनी को जगह मिली। उनके साथवाले कमरों में मशीनगन डिटैचमेंट थी। नीचे की मंज़िल में नम्बर 9 भोपाली का आधा ब्रिगेड था। पहला पड़ाव अदन पर आया, जहाँ चौबीस घंटे तक रुकना पड़ा। वहाँ हिन्दोस्तान की दूसरी बन्दरगाहों से फ़ौजी आ-आकर जमा होना शुरू हुए, और जब वहाँ से रवाना हुए, तो वे पैंतालीस जहाज़ों का एक बड़ा क़ाफ़िला था। बहीरए-कुल्ज़ुम[1] में दाख़िल होकर तीन जंगी हिफ़ाज़ती जहाज़ उनके साथ हो लिए। नईम और उसकी कम्पनी के ज़्यादातर जवानों को समन्दरी बीमारी हो गई थी और वे दिन भर लीमूं का अरक़ पीते रहते थे।

चन्द रोज़ के सफ़र के बाद समन्दर पुर-सुकून हो गया और किसान सिपाही अपने पहले समन्दरी सफ़र से पूरी तरह लुत्फ़-अन्दोज़[2] होने लगे। आसमान के रंग के साथ पानी का रंग बदलते देखकर वे बच्चों की तरह हैरान हो जाते। दूर-दूर तक पानी, जहाज़ों का बड़ा क़ाफ़िला, उनकी सीटियाँ और भोंपू, समन्दर का शोर और उछलती-कूदती हुई रंग-बिरंग मछलियों का नज़्ज़ारा भोले-भाले किसानों के लिए, जिनमें से कई तो पहली बार अपने गाँव से बाहर निकले थे, अजीब कशिश रखता था।

पोर्ट सईद पर वे जहाज़ छोड़कर गाड़ी पर सवार हुए और क़ाहिरा पहुँचे। रास्ते का इलाक़ा और क़ाहिरा के बाज़ार और गलियाँ दिल्ली और उसके इलाक़े जैसी थीं। सिर्फ़ लोगों का लिबास मुख़्तलिफ़ था। क़ाहिरा में चन्द लोग यूरोपी लिबास में दिखाई दिए। शहर से बाहर हैली पुलिस रेसकोर्स में उनका कैम्प लगा।

कम्पनी आध घंटे से "फ़ॉल इन" थी। मिस्री आसमान पर सूरज तेज़ी से चमक रहा था और ज़मीन यूँ ख़ुश्क और सख़्त थी, जैसे बरसों से पानी की शक्ल न देखी हो। रेसकोर्स बहुत बड़े दायरे की शक्ल में था, जिसके तीन-चौथाई रक़बे पर कैम्प फैला हुआ था। दक्खिन में भूरे रंग की ख़ुश्क, पथरीली पहाड़ियाँ थीं, जिनके पत्थर सूरज की मुसलसल तपिश और तेज़ी से सियाही-माइल हो चुके थे और उन पर उसी रंग की पहाड़ी बकरियाँ जाने क्या चरा करती थीं। उत्तर और पच्छिम में क़ाहिरा फैला हुआ था, जिसकी चौड़ी ख़ुशनुमा सड़कों पर देहाती अरबी लिबास पहने बद्दू गधा-गाड़ियों और ऊँट-गाड़ियों पर सब्ज़ियाँ और दूध बेचते फिरते थे। पूरब में रेगिस्तान था और जगह-जगह चमकती हुई रेत के टीले थे, जिनके पीछे से हर सुबह गर्म चमकता हुआ सूरज क़ाहिरा पर, और रेसकोर्स के कैम्प पर और थके हुए, धूल में अटे हुए, उकताए हुए फ़ौजी चेहरों पर निकलता।

दूर से कैप्टेन मैकलिन के घोड़े को आते देखकर हवालदार, जो एक तरफ़ खड़ा जमादार से बातें कर रहा था, वहाँ से चिल्लाया : "अटेंशन !"

उन्होंने राइफ़लें कन्धों पर रखीं और तनकर खड़े हो गए। कैप्टेन मैकलिन का सियाह ख़ूबसूरत घोड़ा उन घोड़ों में से था, जो मिस्र और सूडान से हासिल किए गए थे। उसने कम्पनी के दो चक्कर

1. लालसागर, 2. आनन्दित।

लगाए। हवालदार ने कड़ककर दो "कॉशन" दिए।

"बिलकुल ऐसा मेरा घोड़ा पिछले साल फूलकर मर गया।" अब्दुल्ला के साथ खड़े सिपाही ने उसे बताया।

"चुप रहो !"

"जवानो !" घोड़ों को काबू में करके कैप्टेन बोला : "हमें चन्द हालात की बिना पर कुछ दिन और यहाँ रुकना पड़ गया है, मगर उम्मीद है कि जल्द ही हम मैदाने-जंग में पहुँचेंगे।" उसने रुककर बाएँ हाथ का सफ़ेद सवारी का दस्ताना उतारा। "अपने आपको चुस्त और ताज़ा रखो। हुकूमत तुम्हारे घरों और घरवालों की सलामती की ज़िम्मेदार है और वे राज़ी-खुशी हैं।"

घोड़ा पिछले पाँव पर दो बार ज़रा-ज़रा उठा। फिर सीख़-पा[1] हो गया। सवार ने बागें दाँतों में पकड़कर दस्ताना पहनने की कोशिश की, मगर वह नीचे गिर पड़ा। घोड़ा तेज़ी से नाचने लगा। रेत उड़-उड़कर कैप्टेन के तर चेहरे पर जमने लगी।

"हवालदार !" वह गरजा।

हवालदार ने मुस्तैदी से दस्ताना उठाकर पकड़ाया।

"कम्पनी...रूट मार्च !" कैप्टेन के करख़्त "कॉशन" के साथ उसका हन्टर घोड़े की पीठ पर पड़ा। वह घोड़े की तन्दुरुस्त, चमकदार पुश्त पर, रानें जमाकर ज़रा-सा उठा और अपने पीछे रेत की शीशे जैसी चमकती धूल छोड़ता हुआ ग़ायब हो गया।

"यह जानवर मेरे नीचे हो, तो एक दिन में ठीक कर दूँ।" अब्दुल्ला के साथवाला सिपाही फिर बोला। अब्दुल्ला नईम से कह रहा था : "यहाँ तो भैनचोद अलीपुर से भी ज़्यादा गर्मी होती है !"

रूट मार्च करते हुए वे रेसकोर्स से बाहर निकल आए। दूर पहाड़ियों के दामन में किसान हल चला रहे थे। बीच में रेगिस्तान पड़ता था और रेत तपनी शुरू हो चुकी थी।

हवालदार मालूमात देता हुआ उन्हें पहाड़ियों की तरफ़ ले गया। यहाँ पानी के आसार थे और कुछ सब्ज़ा उगा हुआ था। हल चलाते हुए बद्दू किसान ने उन्हें अपनी तरफ़ आते देखा और खजूर के दरख़्त तले रुककर पसीना पोंछने लगा। उसका रंग सियाह और गहरा लकीरदार चेहरा था और उसके लोहे के हल को ख़च्चर खींच रहा था। खजूर के नीचे से एक मशक-नुमा छागल उठाकर उसने पानी का घूँट भरा और आँखें फाड़कर पास से गुज़रते हुए फ़ौजियों को देखने लगा।

"यहाँ बारिश होती है ?" एक सिपाही ने भूरी, ख़ुश्क ज़मीन की तरफ़ इशारा करके पूछा।

किसान छागल हाथ में लटकाए खड़ा रहा।

"या इनका पेशाब काफ़ी होता है ?" सिपाही ने ख़च्चर की तरफ़ इशारा किया। उनके क़हक़हे सुनकर बद्दू ने छागल दरख़्त के तने के साथ रखी और सादगी से हँसने लगा। उसके अगले दाँत ग़ायब थे।

"बातें मत करो।" हवालदार कड़का।

"सुअर.. !" किसी ने ज़ेरे-लब कहा।

वे पहाड़ियों का लम्बा चक्कर लगाकर दोपहर के वक़्त ख़ेमों की तरफ़ लौटे।

अब्दुल्ला ने टोपी उतारकर चेहरा और बाज़ू पोंछे और उसे ज़मीन पर दे मारा।

"आज चार रोज़ से नहीं नहाए। देखो।" वह कपड़े झाड़ने लगा।

"धूल मत उड़ाओ।" नईम ने तंग आकर कहा।

"मेरी नाक में रेत भर गई है।" एक पंजाबी सिपाही ने, जिसके चेहरे पर पसीने और रेत की लकीरें बनी थीं, गाली देकर कहा।

"अफ़सरों को रोज़ पानी मिलता है !"

---

1. पिछले पाँव पर खड़ा होना।

"और हम जानवर हैं ?"

"तुम जानवरों से ज़्यादा बदबूदार हो।" एक पठान सिपाही ख़ेमे के बाहर क़मीज़ फैलाते हुए बोला : "क्या ही अच्छा हो, अगर तुम बाहर आकर लेटो !"

उन्होंने वर्दियाँ उतारकर रस्सियों पर फैलाई और सिगरेट सुलगाकर लेट गए।

"परदा सारा उठा दो। हवा अन्दर आने दो।" किसी ने कहा।

एक सुबह को नईम ब्रिगेड मेजर के सामने पेश हुआ। उसका छोटा-सा सब्ज़ रंग का ख़ेमा था, जिसमें उसकी और उसके हवालदार क्लर्क की मेज़ थी।

"तुम तालीमयाफ़्ता हो ?" ब्रिगेड मेजर ने चश्मा उतारते हुए पूछा।

"मैंने सीनियर कैम्ब्रिज किया है !"

"कहाँ से ?"

"कलकत्ता से !"

"मशीनगन की ट्रेनिंग हासिल की है ?"

"नहीं !"

"तुम्हें तरक़्क़ी देकर लांस नाइक का उहदा दिया जाता है और मशीनगन डिटैचमेंट में तब्दीली की जाती है !"

"यस सर !" वह ज़रा-सा पंजों पर उठा।

"कल तुम सेक्शन कमांडर एम.जी. डिटैचमेंट को रिपोर्ट करोगे, डिसमिस !"

क़ाहिरा से गाड़ी में बैठकर वे इस्कन्दरिया पहुँचे। वहाँ भी रूट मार्चिंग का सिलसिला जारी रहा। इस्कन्दरिया से फिर एच.एम. विमोथ में सवार हुए और बीस जहाज़ों का क़ाफ़िला बहीरए-रूम[1] में दाख़िल हुआ। मौजें मारते हुए समन्दर के बावजूद बहुत कम सिपाही बीमार पड़े। समन्दरी सफ़र में निस्बतन बेहतर ख़ुराक और नहाने के लिए पानी आम मिलता था।

नम्बर 9 भोपाली पीछे रह गए थे और उनकी जगह एक अंग्रेज़ बटालियन उनके साथ सफ़र कर रही थी। जब मारसेल्ज़ की बन्दरगाह नज़र आई, तो अंग्रेज़ फ़ौजी जहाज़ के अर्शे[2] पर चढ़कर नाचने लगे और बैंड ने "मारसेल्ज़" बजाना शुरू कर दिया।

मौसम चमकदार और ख़ुशगवार था। बहुत-से भोंपुओं और सीटियों के बाद जहाज़ ने लंगर फेंका। साज़िन्दों ने धुन तेज़ कर दी और अंग्रेज़ सिपाही "मारसेल्ज़" गाते हुए बन्दरगाह पर उतरने लगे। सफ़ेद-बुर्राक़ वर्दियों में फ्रांसीसी मल्लाह तम्बाकू पीते हुए इधर-उधर फिर रहे थे। फ्रांसीसी औरतें शोख़ रंग स्कर्ट और छोटे-छोटे सफ़ेद हैट पहने खड़ी थीं। उन्होंने गालों पर चूम-चूमकर फ़ौजियों का ख़ैर-मक़्दम[3] किया। फिर हिन्दोस्तानी फ़ौज के अफ़सर उतरे। कैप्टेन मैकलीन, कैप्टेन इशर, लैफ्टिनेंट ब्राउनिंग। सबके चेहरे ख़ुशी की सनसनाहट से सुर्ख़ हो रहे थे और वे चिल्ला-चिल्लाकर पूछ रहे थे : "हमें देर तो नहीं हो गई ? क्या हम देर में पहुँचे ?"

फ्रांसीसी मल्लाह ख़ुशी से भरी आवाज़ों में चिल्ला-चिल्लाकर जवाब देते और औरतें सिर पीछे फेंककर ख़ुशी से तालियाँ बजातीं। फ्रांस के आसमानों पर से ज़र्द ख़ुशनुमा धूप सफ़ेद-फ़ाम अफ़सरों के ऊँचे माथों और सुनहरी बालों पर पड़ रही थी और उनके कँपकँपाते हुए होंठों और नीली दिलकश आँखों से सेहत और ज़िन्दगी टपक रही थी। उनके बेख़ौफ़ क़दम और मुस्तैद फ़ौजी जिस्म देखनेवालों को मरऊब[4] करते थे। उनके दिमाग़ फ़ौजी स्कीमों और अपने घरवालों की याद से पुर थे। वे ज़हीन, सेहतमन्द और प्यारे इनसान थे। ऐसे नौजवान, जिनका बहुत-से मुहब्बत करनेवाले दिल इन्तिज़ार करते हैं, और जिनके घरों के दरवाज़े उनके लिए तमाम उम्र खुले रहते हैं, जिनकी

1. रूम सागर, 2. जहाज़ की छत, 3. स्वागत, 4. प्रभावित।

तस्वीरें आतिशदानों पर सदा मुस्कराती हैं और जिनकी दी हुई अँगूठियाँ लड़कियों की उँगलियों पर हमेशा जगमगाती हैं। सूरज ने अपनी ख़ूबसूरत-तरीन किरनें उन पर फेंकीं और मुस्कराया। "तुम्हारी यादें सदा जवान रहेंगी।"

छह माह के अन्दर-अन्दर ये सब मैदाने-जंग में काम आ चुके थे।

हिन्दोस्तानी फ़ौजियों को गुज़रता देखकर फ्रांसीसियों ने हैट उतारे और ज़ोर-ज़ोर से उन्हें हिलाने लगे।

"लॉ इंडियन्ज़" (Le's Indians) उन्होंने दूसरे को बताया।

बोरले रेसकोर्स में कैम्प लगा। तीसरे मशीनगन सेक्शन में दो मशीनगनें, बारह ख़च्चर, सोलह सिपाही, लांस नाइक नईम, हवलदार ठाकुर दास और सेक्शन कमांडर मैक ग्रेगर था। मारसेल्ज़ का रेसकोर्स वसीअ और ख़ूबसूरत था। उस जगह की मिट्टी सियाह और ज़रख़ेज़[1] थी और यहाँ पानी की फ़िरावानी[2] थी।

"यहाँ का पानी मीठा है।" हवालदार ठाकुर दास ने सिर पीछे फेंककर छागल से पानी पिया। "और खाना ताक़तवर है !"

"लोगों का लिबास भी ख़ुशनुमा है।" नईम ने छागल उससे पकड़कर मुँह से लगाई।

"ख़ासतौर पर औरतों का।" ठाकुर दास बूट पट्टियाँ समेत लम्बा लेट गया। वह दस मील के रूट-मार्च से थककर लौटे थे। फ्रांसीसी तर्ज़े-तामीर[3], बाग़ात की फ़िरावानी और बिदेसी फूल और पौदों को देखकर वे बच्चों की तरह ख़ुश थे। इतने दिनों तक उकता देनेवाले, यक-रंग रेगिस्तान, और पथरीली पहाड़ियों के नज़्ज़ारे के बाद फ्रांस की खुली सड़कों पर ख़ूबसूरत ख़ुशरंग औरतें और बड़े-बड़े हैट पहने ख़च्चर-सवार मर्द, जो उनको गुज़रता देखकर हैट उठाकर सलाम करते थे, उन्हें बहुत भले मालूम हुए।

"कल हमें नया बारूद मिलेगा।" ठाकुर दास ने मूँछों को बल देते हुए कहा।

"कितना ?"

"कितना-कितना नहीं...नया...फ्रांसीसी तर्ज़ का...मार्क नम्बर 7 गोली।"

"और मार्क नम्बर 6..."

"यह सब कंडम। मार्क नम्बर 7 सीधी जाती है।"

"कैसी होती है ?"

ठाकुर दास ने लेटे-लेटे पेटी में से गोली निकाली। "देखो...मार्क नम्बर 6 तो नोकदार है। वह आगे से चिपटी होगी...और यह तो यूँ जाती..." उसने उँगली से हवा में कमान बनाई। "और वह यूँ तीर की तरह सीधी जाएगी...शूप..."

"क्या फ़र्क़ पड़ेगा ?"

"फ़र्क़ ! हा हा हा। कहते हो कि कलकत्ते में पढ़ते रहे। अरे मियाँ ! टेढ़ी जाएगी, तो मार नज़दीक करेगी। सीधी जाएगी, तो मार दूर करेगी। सारा हिसाब का सवाल है। समझे ?...और बेंट भी विलायती तर्ज़ की मिलेगी...लम्बीवाली...अब पूछो, क्या फ़ायदा ?"

"छोटी होगी, तो मार नज़दीक करेगी। लम्बी होगी, तो मार दूर !"

उसकी आवाज़ ठाकुर दास के भयानक क़हक़हे में गुम हो गई। उसने एक ज़ोर के धप से नईम का सारा बदन हिला दिया।

"शाबाश...बच्चे...शाबाश !"

"तुम्हें यह किसने बताया ?" नईम ने पूछा।

---

1. उपजाऊ, 2. अधिकता, 3. निर्माण शैली।

"सेक्शन कमांडर के पास मैंने देखा।" वह दीवार की तरफ़ मुँह करके लेट गया।

सरज़मीने-फ्रांस पर वह दिन बड़ा ख़ूबसूरत था। सुबह-सुबह बारिश हुई थी, जब वे रूट-मार्च करते हुए भीगे थे। उसके बाद सूरज निकल आया था। अब भारी नमदार हवा ख़ुशरंग फूलों पर से गुज़रती, आ-आकर थके-माँदे फ़ौजी चेहरों को थपकियाँ दे रही थीं। आसमान गहरे नीले रंग का था। दूर सड़कों पर औरतें और बच्चे शोख़ रंग कपड़े पहने, फूलदार छाते और हैट लेकर निकल आए थे। उनकी चाल बड़ी मसरूर और जवान थी और वे ताज़ा-दम रिसाले की तरह मुख़्तलिफ़ रास्तों पर बढ़ रहे थे।

"जंग कहाँ पर हो रही है ?" नईम ने पूछा। वह देर से एक गीली माचिस को जलाने की कोशिश कर रहा था।

"हम बहुत जल्द जा रहे हैं !"

"कहाँ ?"

"महाज़ पर !"

"कहाँ ? किस जगह ?"

"तुम क्यों इसके पीछे पड़े हो ?" ठाकुर दास ने सख़्त लहजे में कहा। फिर अचानक वह उठकर खड़ा हो गया। "लांस नाइक नईम अहमद...अटेंशन..."

नईम तेज़ी से उठा और फ़ौजी अन्दाज़ में तन गया।

"मैक्सिम गन की पट्टी में कितने राउंड आते हैं ?"

"दो सौ पचास !"

"वज़न ?"

"तक़रीबन छह पा..."

"मैक्सिम गन का वज़न... ?" ठाकुर दास ने कड़ककर पूछा।

"साठ पाउंड !"

"स्टेंड एट ईज़..."

वह लम्बे-लम्बे क़दम रखता ख़ेमे के दरवाज़े पर जा खड़ा हुआ। उसकी चौड़ी कमर सारे दरवाज़े पर फैली हुई थी। बाहर धूप मांद पड़ने लगी थी। "शायद बादल फिर आ गए !" नईम ने खड़े-खड़े बेध्यानी से सोचा।

कुछ देर के बाद वह नईम के पास आ खड़ा हुआ। "बैठ जाओ !"

नईम खड़ा रहा।

"लड़ाई के मैदान में औरतों की तरह सवाल मत करो ! जंग करने निकले हो, तो मरने का इन्तिज़ार करो। जीने का इन्तिज़ार मत करो। 'क्यों ? कहाँ ? कब ? कैसे ?' सवालात बुज़दिल बना देते हैं !"

"ग़लत है ! मैं बुज़दिल नहीं हूँ।" एक नामालूम-सा ग़ुस्सा उसके दिमाग़ में उबाल खाने लगा।

"बैठ जाओ।" ठाकुर दास ने उसका कन्धा दबाया और जेब से माचिस निकालकर दी।

दोनों ने सिगरेट जला लिए। बादल फिर आसमान पर इकट्ठे हो रहे थे और पीली-सी मरियल धूप ख़ेमे के दरवाज़े में से अन्दर आ रही थी।

"तुम सवाल नहीं पूछते ?" नईम ने आँखों के कोनों में से देखते हुए कहा।

ठाकुर दास ने धुआँ उसके मुँह पर छोड़ा। "नहीं !"

"तुम मरने से नहीं डरते ?"

"नहीं !"

"अगर मैं तुम्हें अभी क़त्ल कर दूँ ?"

ठाकुर दास के होंठ कँपकँपाए और वह पीला पड़ गया। "तुम्हारे दिल में क्या है, सुअर ? तुम इतनी हिम्मत करोगे ?" उसने तेज़ी से कहा।

नईम अपने बिस्तर के साथ टेक लगाए बैठा था। वहीं पर खिसककर लेट गया और छत को घूरने लगा। ठाकुर दास अभी तक अपने आप पर क़ाबू नहीं पा सका था। वह तेज़-तेज़ कश लगा रहा था और काँपती हुई उँगलियों से घुटना खुजा रहा था। कुछ देर तक ख़ेमे में ख़ामोशी रही। ठाकुर दास ने दूसरा सिगरेट सुलगाया और तेज़ी से ख़त्म कर दिया। फिर उसे बाहर उछालते हुए वह भारी आवाज़ से बोला : "क़त्ल दूसरी चीज़ है !"

"वहाँ भी लोग इसी तरह मरते हैं।" नईम ने छत को देखते हुए कहा।

"नहीं ! तुमने जंग नहीं देखी, इसलिए कहते हो। वहाँ हर तरफ़ मौत होती है। आदमी चूहों की तरह मरते हैं। वहाँ मरना और मारना बड़ा आसान काम है। यूँ। सड़क पर जाते हुए हम च्यूँटियों के एक क़ाफ़िले पर पाँव रखकर गुज़र जाते हैं और सैकड़ों च्यूँटियाँ हमारे जाने बग़ैर मर जाती हैं, लेकिन इकलौती च्यूँटी अगर हमारे बाज़ू पर चल रही हो, तो उसे मारते हुए हम हिचकिचाते हैं, घबराते हैं, और उसे उठाकर हम नीचे रख देते हैं या फूँक मारकर उड़ा देते हैं !"

धूप अब आधे फ़र्श तक आ गई थी और उसकी रौशनी में ठाकुर दास ग़ैर-मामूली तौर पर ज़र्द और बेताब दिखाई दे रहा था। उसने तीसरा सिगरेट जलाया।

"वहाँ तुम बे-ज़मीर होकर मार देते हो। बिलकुल साफ़, बेदाग़ ज़मीर[1] के साथ और मर भी जाते हो !"

"मैदाने-जंग में मौत की तकलीफ़ नहीं होती ?" नईम ने तमस्ख़ुर के साथ पूछा।

"नहीं ! शायद...पता नहीं...पर मैंने लोगों को चूहों की तरह मरते हुए देखा है !"

उसने काँपती हुई उँगलियों से सिगरेट ख़त्म किया और दरवाज़े से बाहर उछाल दिया। उसका एक घुटना तेज़ी से हिल रहा था। "मैं अपनी मौत से नहीं डरता, लेकिन मेरे दो बच्चे हैं !"

लंगर पर खाने का पहला भोंपू हुआ।

"औरत को दूसरा ख़ाविन्द मिल जाएगा, पर बच्चे ? मेरी बीवी का पहले ख़ाविन्द से बच्चा है। मुझे पता है, मैं कभी उसे अपने बच्चे की तरह नहीं देख सकता।"

"अच्छा ?" नईम ने लेटे-लेटे तमस्ख़ुर से कहा।

ठाकुर दास ने दिल में गाली दी और दीवार की तरफ़ मुँह करके लेट गया। "या मैं अपनी मौत से ख़ौफ़ज़दा हूँ ?" उसने सोचा। "बदबख़्त...इसके दिल में क्या है ?"

दूसरे ख़ेमों में खाने के बर्तन खनक रहे थे और सिपाहियों की तेज़ और करख़्त आवाज़ें आ रही थीं।

तीन दिन तक रेजिमेंट सफ़र में रही। गाड़ी बिलकुल वैसी थी, जैसी फ़ीरोज़पुर से मिली थी। मालगाड़ी, जिसमें घास बिछाया गया था। रेजिमेंट में नौ अंग्रेज़ अफ़सर, उन्नीस हिन्दोस्तानी अफ़सर और सात सौ नब्बे सिपाही थे। दिलफ़रेब पहाड़ी इलाक़े में से वे तीन दिन और तीन रात तक गुज़रते रहे। रास्ते में जनरल सीवरियर्ज़ की फ़ौज के क़रीब से गुज़रे, जो पन्द्रहवीं रीजन की कमान कर रहा था। सफ़र ख़त्म होने पर वे सरकाट कैम्प, ऑरलियंज़ पहुँचे।

सरकाट कैम्प बड़ी ख़ूबसूरत जगह थी। तीन तरफ़ हरे-भरे पाइन के दरख़्तों से ढँके हुए पहाड़ थे। नीले, बर्फ़ानी चश्मे, जिनके बीचोंबीच बहते थे। रूट मार्च करते हुए जवान चश्मों पर रुकते, प्यास बुझाते, तह में चमकते हुए रंग-बिरंगे पत्थर और सीपियाँ चुनकर जेबों में भरते, पाइन की ख़ुशबूदार छाँव में दम लेते। फिर बड़ी-बड़ी चट्टानों पर घूमकर बूटों से कंकर उड़ाते ढलानों पर

1. अन्तरात्मा।

उतर जाते। पहाड़ियों पर इक्का-दुक्का मकान मिलते, जो अंगूर की बेलों में छुपे होते और आस-पास सफ़ेद और रेशमी भेड़ों के रेवड़ चरा करते। कहीं-कहीं कोई छोटा-सा गाँव आ जाता। रेजिमेंट वहाँ सोलह दिन तक हैड-क्वार्टर्स के अहकाम[1] के इन्तिज़ार में रुकी रही।

उनके क़ियाम के पाँचवें रोज़ ड्यूक ऑफ़ कनॉट के लड़के हिज़ रायल हाईनैस प्रिंस आर्थर ऑफ़ कनॉट ने रेजिमेंट का मुआयना किया। सफ़ेद घोड़े पर सवार, सफ़ेद और सुर्ख़ शाही-वर्दी पहने हुए रोबदार शहज़ादे ने सुबह की हलकी धूप में उन्हें मुख़ातिब[2] किया : "मुझे वह राहत अभी तक याद है, जो चन्द बरस पेश्तर रेजिमेंट को हांगकांग में देखकर मुझको हुई थी, और आज आपको यूरोप में ब्रिटिश फ़ौज के साथ-साथ लड़ने के लिए तैयार देखकर मुझे दुगुनी ख़ुशी हुई है। मैं आपकी ख़ुशक़िस्मती के लिए दुआ करता हूँ। उम्मीद है कि चन्द रोज़ तक महाज़ पर हमारी मुलाक़ात होगी। मैं अपने वालिद रेजिमेंट के कर्नल-इन-चीफ़ को लिखूँगा कि आप बेहतरीन हालत में हैं।" सिपाही दूर तक, आँखों के कोनों से शानदार सवार को जाते हुए देखते रहे।

सतरहवें दिन वे ऑरलियंज़ से उसी गाड़ी में सवार हुए और अगले रोज़ एक नामालूम मुक़ाम पर जाकर उतरे, जहाँ पर चारों तरफ़ काग़ज़ बनाने के कारख़ाने थे। रूट मार्च करते हुए वे नम्बर 57 फ्रंटियरफ़ोर्स के पास से गुज़रे। लम्बी-लम्बी मूँछों और छोटी-छोटी तेज़ आँखोंवाले पठान सिपाही, जो ख़ारदार तार के अन्दर बर्तन धो रहे थे, अपने देश के जवानों को देखकर हाथ हिलाने और तेज़-बारीक आवाज़ में "हवाव-हवाव" करने लगे। अगले दिन शाम के अँधेरे में दूर से च्यूँटियों की तरह रेंगती हुई फ़ौजी बसों की क़तार नज़र आई। नम्बर 129 ड्यूक ऑफ़ कनॉट्स ऑन बलोच रेजिमेंटवालों की आँखें ख़ुशी से चमक उठीं और वे तारों पर हाथ रखकर धड़कते हुए दिलों के साथ इन्तिज़ार करने लगे।

"हमारा लारियों का हिस्सा आ गया !"

"कल हम महाज़ पर होंगे !"

"मैं तोप की आवाज़ यहाँ से सुन सकता हूँ !"

दूसरा सिपाही हँसा। "फिर तुम रास्ते में ही मर जाओगे। कभी गोला न देख पाओगे...हाहा।"

"दाँत मत निकालो !"

"महाज़ यहाँ से दो सौ मील पर है। स्टॉफ़ कैप्टेन कह रहा था। बेल्जियम में।'"

"फ्रांस में लड़ाई नहीं हो रही क्या ?"

"इस तरफ़ नहीं..."

बसें आकर नम्बर 57 फ्रंटियर फ़ोर्स के पास रुक गईं और रेजिमेंट सवार होनी शुरू हुई। बलोचियों के हाथ नीचे आ पड़े और आँखें मन्द पड़ गईं। उस रात चन्द यूनिटों को काग़ज़ के कारख़ानों के इर्द-गिर्द उन मकानों में पोस्ट किया गया, जो नम्बर 57 एफ़.एफ़. के जाने से ख़ाली हो गए थे।

9

अगले रोज़ रेजिमेंट को अपना गाड़ियों का हिस्सा मिल गया और वे उन्तालीस घंटे के सफ़र के बाद बेल्जियम की सरहद पार करके मैदाने-जंग में दाख़िल हुए। गाड़ियाँ उन्होंने आर्क्स के मुक़ाम पर छोड़ीं और होली बेक में क़ियाम[3] किया।

असल महाज़ होली बेक से तीन मील के फ़ासिले पर था। सारे मकान और दुकानें शहरी आबादी से ख़ाली हो चुके थे। मकानों पर गोरे रिसालों, रेजिमेंटों और तोपख़ाने का क़ब्ज़ा था, जिनमें

1. आदेशों, 2. सम्बोधित, 3. निवास।

तीन यूरोपी अक़्वाम[1] के लोग—बेल्जियम, फ़्रांसीसी, और अंग्रेज़ शामिल थे। दो-मंज़िला मकानों के तमाम कमरे गोरे सिपाहियों, अस्लिहा, बारूद, बावर्चियों और राशन के डिब्बों से भरे पड़े थे। हैडक्वार्टर स्टॉफ़ अलग-अलग मकानों में था। मकानों से ज़रा फ़ासिले पर दुकानें थीं, जिन्हें ख़ाली करके फ़र्श पर मकई के नाड़ बिछाए गए थे। इनमें रिसालों के घोड़े और ख़च्चर बन्द थे। जो दुकानें बच रही थीं, वे हिन्दोस्तानी फ़ौजियों के लिए मख़सूस[2] की गईं।

अक्तूबर के आख़िरी दिन थे। बाहर तेज़ ठंडी हवा चल रही थी और रात होली बेक पर बहुत नीचे झुक आई थी। सिपाही ख़ुश्क गोश्त के टुकड़े और पनीर खाने के बाद सोने की तैयारी कर रहे थे। चन्द एक सो भी चुके थे। पाइन के दरख़्तों की चोटियाँ दूर ऊपर अँधेरे में आहिस्ता-आहिस्ता हिल रही थीं और उनकी बूढ़ी उँगलियों की तरह झुकी हुई झुर्रीदार शाख़ें और तेज़ नुकीले सब्ज़ पत्ते रात के मख़सूस असरार[3] में सायं-सायं कर रहे थे। दुकान में तम्बाकू, पनीर और मकई के नाड़ों की मिली-जुली बू फैली हुई थी। एक ख़ाली अलमारी में मद्धिम-सी लालटेन जल रही थी। दीवार के साथ दो मशीनगनें, जिनकी नालियों पर ख़ोल चढ़े थे, खड़ी थीं। बारूद सेक्शन कमांडर के पास था।

''ख़च्चर महफ़ूज़ हैं ?'' हवालदार ठाकुर दास ने कम्बल तानते हुए पूछा।

''हाँ !'' नईम बिस्तर लगा रहा था। उसने चन्द नाड़ इकट्ठे करके उनका सिरहाना बनाया और हाथ से दबाकर देखा।

''पहरे पर कौन है ?''

''अहमद !''

''उसके बाद ?''

''दो बजे रियाज़ बदली करेगा।''

''सोने से पहले चैक कर लेना।'' ठाकुर दास ने घुटने उठाकर बिस्तर का ख़ेमा बनाते हुए कहा।

एक सिपाही ने कम्बलों में करवट बदली और भारी नींद में डूबी हुई आवाज़ में बड़बड़ाया : ''यह तो मकई भी साली सर्द है !''

लेटते ही नईम के नथुनों में ख़ुश्क मकई की जानी-पहचानी बू दाख़िल हुई। नींद में डूबी हुई साँसों की हरारत और इनसानी बू आहिस्ता-आहिस्ता कमरे में फैल रही थी। जब बिस्तर गर्म हो गया, तो उसने अन्दर ही अन्दर हाथ बढ़ाकर बूट उतारे और बाहर धकेल दिए। दूर किसी मकान में से एक ऊँचा, करख़्त क़हक़हा बुलन्द हुआ और गहरी रात में गुम हो गया।

''तुम्हारे पास सिगरेट है ?'' ठाकुर दास ने उठकर बैठते हुए पूछा।

''हाँ !''

''एक दो !''

नईम ने सिगरेट उसे पकड़ाए। ''दरवाज़े के पास चले जाओ। यहाँ मत पीना !''

''तुम्हें नींद आ रही है ?''

''नहीं ! मगर मैं ख़ूब गर्म हो गया हूँ।''

''आओ, वहाँ बैठें !''

दोनों कम्बल ओढ़कर दरवाज़े के पास नंगे फ़र्श पर जा बैठे और ख़ामोशी से सिगरेट सुलगाकर पीने लगे।

''फ़र्श बड़ा ठंडा है।'' नईम ने कहा।

''थोड़े-से नाड़ खींच लो। लगने दो आग (गाली) जब हमला शुरू होगा, तो किसको पता है, इस जगह का क्या हश्र होगा ?''

1. क़ौमें, जातियाँ, 2. आरक्षित, 3. विशिष्ट रहस्य।

नईम ने नाड़ मरोड़कर फ़र्श पर रखे और उन पर उकड़ू बैठकर कम्बल की आरामदेह हरारत महसूस करने लगा।

"महाज़ तीन मील पर है।" ठाकुर दास ने बड़ा-सा हाथ बढ़ी हुई दाढ़ी पर फेरा !"

"ख़ामोशी क्यों है ? सिर्फ़ गीदड़ बोल रहे हैं !"

"जर्मनों ने अभी हमला शुरू नहीं किया !"

"हमारी लाइनों में इस वक़्त कौन है ?"

"गोरा रिसाला !"

"क्या ज़रूरी है कि जर्मन हमला करें ?" थोड़ी देर के बाद नईम ने पूछा।

"पता नहीं।" ठाकुर दास ने नाड़ दबाते हुए कहा। "मगर उनकी फ़ौज ज़्यादा है। एक डिवीज़न...या इससे भी ज़्यादा !"

उसने सिगरेट फेंकने के लिए लोहे का किवाड़ खोला। भीगी हुई ठंडी हवा नईम के चेहरे से टकराई। एक गीदड़ ने बिलकुल सामने आकर आवाज़ निकाली। अगली दुकानों में से ख़च्चरों में भगदड़ मचने और ख़च्चर के मकई के नाड़ों पर पेशाब करने की आवाज़ आने लगी। नईम ने सिर बाहर निकाला।

"सिपाही अहमद ख़ाँ ?"

अँधेरे में अहमद ख़ाँ के राइफ़ल के दस्ते पर हाथ मारने और जवाब देने की आवाज़ आई।

"शाबाश !"

बाहर हलकी-हलकी ख़ामोश बारिश हो रही थी और पाइन की चोटियों में बादल फिर रहे थे। थोड़ी-थोड़ी देर बाद बिजली चमकती।

"यह मौसम जंग के लिए ख़तरनाक होता है।" ठाकुर दास ने तश्वीश[1] से कहा।

नईम ने ख़ामोशी से दरवाज़ा बन्द कर दिया।

"जब ख़ामोश बारिश हो रही हो, तो आवाज़ दूर तक जाती है...और बिजली..."

"अच्छा है कि आज हमला नहीं हुआ !"

दूर मशरिक़ी[2] आसमान पर से गर्र-गर्र की आवाज़ आनी शुरू हुई।

"वह...आ रहा है।" ठाकुर दास ने चौंककर कहा। वह कान लगाए सुनते रहे। हलकी गरजदार आवाज़ क़रीब आ रही थी। नईम ने जल्दी से उठकर लालटेन पर बहुत-से नाड़ फेंके। वापस आते हुए वह अँधेरे में एक सोए हुए सिपाही से टकराकर गिर पड़ा। सिपाही ने नींद में गाली दी और करवट बदलकर सो गया।

बाहर निकलकर उन्होंने दरवाज़ा बन्द कर दिया। महीन फुहार से लकड़ी का पायदान गीला और फिसलवाँ हो रहा था। सामने अँधेरे में पाइन के दरख़्त भारी, सियाह भूतों की तरह खड़े थे। ख़ौफ़नाक आवाज़ अचानक बिलकुल क़रीब आ गई। ठाकुर दास और नईम बेजान लकड़ी के तख़्तों की तरह ज़मीन पर गिरे और बेसुध लेटे रहे। दरख़्तों के ऊपर एक धुँधली हरी बत्ती नमूदार हुई और तेज़ी से पच्छिम की तरफ़ गुज़र गई।

"बदबख़्त हज़ार तोपों की आवाज़ है।" ठाकुर दास ने धीरे से कहा।

काले-सफ़ेद बादल दुकानों की छत पर आ गए थे और बारीक फुहार ख़ामोशी से उनके चेहरों को भिगो रही थी। वे उठे और वापस दुकान में दाख़िल हुए।

"यह हवाई जहाज़ था !" ठाकुर दास ने अपने आपसे बात की।

"जर्मनों का था ?"

"पता नहीं।"

---

1. चिन्ता, 2. पूर्वी।

"हरी बत्ती थी।"

"सबकी हरी होती है !"

कँपकँपाती हुई उँगलियों से उन्होंने दोबारा सिगरेट सुलगाए। हवाई जहाज़ के साथ उनका यह पहला तजर्बा था।

"सिगरेट यहीं ख़त्म कर दो। मोर्चों में नहीं पी सकते," ठाकुर दास ने बोला।

"क्यों ?"

"सिगरेट पर गोली पड़ेगी और जबड़े साफ़ कर जाएगी। हर बात पर क्यों ?"

वे ख़ामोशी से धुआँ उड़ाते रहे। कमरे में सोनेवालों के ख़र्राटों की आवाज़ बलन्द होती जा रही थी।

"शायद कल हम चले जाएँ !"

"कहाँ ?"

"फ़ायरिंग-लाइन पर...एं ?"

नईम ने एक पल को उसे ग़ौर से देखा। "अब तुम क्यों पूछते हो ?"

ठाकुर दास ने अबरू उठाकर कड़ी तमस्ख़राना[1] नज़र उस पर डाली। फिर सिगरेट पर एक लम्बा कश लेने के बाद नीम-ख़फ़गी[2], नीम-तन्ज़[3] से हँसा।

"मैं इस क़दर उकता गया हूँ यहाँ से !"

नईम ख़ामोशी से अँधेरे में देखता रहा।

"मुझे इस वक़्त महाज़ पर होना चाहिए या घर !"

"क्यों ?"

"मैं घर जाना चाहता हूँ। इतने महीने हो गए। यहाँ मेरी ख़च्चरों से बुरी हालत हो गई है !"

"तुम्हें अपनी बीवी से मुहब्बत है ?"

"हाँ ! शायद। उसे मुझसे बड़ी मुहब्बत है।"

"अच्छा !"

"हमने शादी अजीब तरीक़े से की थी। मैं औरतों का कारोबार किया करता था।"

"कारोबार...एं ?"

"मैं और राम सिंह...हम लुधियाने, अम्बाले और रोहतक से औरतें उठाया करते और पंजाब में लाकर बेचा करते थे। ख़ासतौर पर लायलपुर और सरगोधा में वे अच्छे दाम दे जाती थीं। यूँ हमें ख़ुद औरतों का कोई चाव न था। हम कबड्डी के माने हुए खिलाड़ी थे और सबसे पहले जिस्म और जान की रखवाली करते थे। जवानी का ज़माना था। बीसियों औरतें आईं और बीसियों गईं। कभी-कभार कोई पसन्द आई, तो दो-चार रोज़ के लिए रख लिया, वरना इधर से लादा, उधर बेचा। लो, पियो !"

"मैं नहीं पीता।" नईम ने उसका सिगरेटवाला हाथ पीछे धकेल दिया।

"एक दिन मैंने सुना कि चक नम्बर 30 की एक कुम्हारी ने आवाज़ दी है चारों तरफ़ के गाँव में कि है कोई ऐसा जवान, जो मुझे दिन-दिन को आकर ले जाए। यह आवाज़ सुनकर मेरी मूँछ को ताव आ गया। मैंने कहा, चल राम सिंह, मगर राम सिंह दिन-दिन को जाने से घबराए। मैंने एक औरत भेजकर पता करवाया, तो मालूम हुआ कि उसका ख़ाविन्द कुम्हार अपने गाँव का बहुत ताक़तवर जवान है और रात के वक़्त उसकी माँ बेटे और बहू को अन्दर बन्द करके ताला लगा देती है, चुनाँचे रात को निकलना मुश्किल है।" उसने गला साफ़ करके ज़ोर से फ़र्श पर थूका और बात जारी रखी : "चुनाँचे रात को निकलना मुश्किल है। ख़ैर, बहुत सोच-विचार के बाद मैंने

1. उपहासपूर्ण, 2. थोड़ी अप्रसन्नता, 3. थोड़ा व्यंग।

फ़ैसला किया कि औरत की पुकार बेकार नहीं जानी चाहिए। मैंने पैग़ाम भेजा कि फ़लाँ दिन तुम्हारे गाँव से तीन मुरब्बा बाहर बड़े पीपल के नीचे दोपहर को आऊँगा। हिम्मत हो, तो आ जाओ। सख़्त गर्मियों के दिन थे। दस कोस चलकर मैं पीपल के नीचे पहुँचा। बैठे-बैठे दोपहर ढल गई। औरत का नामो-निशान नहीं मिला। मैं वहीं पर सो गया। पता नहीं, कितनी देर सोया था कि छड़ी की नोंक से किसी ने मुझे जगाया। आँख खोली, तो एक बड़ा जवान नज़र आया। सिर पर मुंडासा, कमर में फूलदार लाचा, हाथ में छड़ी। मैंने पूछा : ''क्या बात है जवान ?'' कहने लगा : ''अब उठ, अगर चलना है, तो। मुझे सन्देसा भेजकर अब सोता है।'' मेरी आँखें खुली की खुली रह गईं। ग़ौर से देखा, तो औरत थी। ''पर नईम, क्या औरत थी कमबख़्त ! यहाँ सारे विलायत में मैंने ऐसी जवान और जलालवाली औरत नहीं देखी।'' वह एक मुस्कराहट के साथ कुछ पल तक फ़िज़ा में देखता रहा। ''हम सारी रात और सारा दिन चलते रहे और तीन कोस पर जाकर पहली रात गुज़ारी। वह मेरे दोस्त का गाँव था। सवेरे उठकर औरत बोली : 'मैं तुमसे ब्याह करूँगी !' मैंने कहा : ''ब्याह-व्याह की बात छोड़। मैं ब्याह का क़ायल नहीं हूँ।'' यह सुनकर वह रोने लगी और रो-रोकर बुरा हाल कर लिया। ख़ैर, वहाँ से हम घोड़ी लेकर दस दिन में अमृतसर पुहँचे। रातों-रात मैंने उसके सात सौ रुपए वुसूल किए और उसे सोता छोड़कर चला आया।

''कोई दस दिन नहीं गुज़रे होंगे, इस बात को। एक दिन मैं खेत में सोया पड़ा था कि वह मेरी छाती पर आन चढ़ी। मैंने चिल्लाना चाहा, लेकिन उसने एक हाथ से मेरा मुँह बन्द किया और दूसरे हाथ से छुरी की नोक मेरी गर्दन पर रख दी और बोली : ''मैं सुरेन्दरी हूँ। बोल, मेरे साथ शादी करेगा या नहीं ? मैं तुझे क़त्ल कर दूँगी।'' जान के ख़ौफ़ से मैंने वादा कर लिया। रातों-रात उसी की घोड़ी पर सवार होकर हम गाँव से निकल आए। उसने मुझे अपने आगे बिठाकर बाँहों में कस रखा था। सुबह एक गाँव के मन्दिर में जाकर हमने शादी कर ली। पता है कैसे ? घोड़ी की पीठ पर और किसी चौथे आदमी के बग़ैर ! पंडित के सिर पर सुरेन्दरी की छुरी थी और वह घोड़ी की बाग पकड़े-पकड़े फेरे दे रहा था और श्लोक पढ़ता जा रहा था।'' वह अँधेरे में आहिस्ता से हँसा। ''सुरेन्दरी ने चन्द रुपए खोलकर उसकी तरफ़ फेंके और हम लौट आए। उस रात को वह मुझसे लिपटकर रोती रही। मैंने कहा : ''रोती क्यों है ? अगर मैं शादी न करता, तो तू मुझे क़त्ल कर देती ?'' कहने लगी : ''वह तो सिर्फ़ धौंस थी। अगर तुम शादी न करते, तो मैं अपने आपका ख़ून कर लेती। तुम मर्द हो। तुम क्या जानो, औरत के दिल में क्या है ?'' रात भर वह मेरे साथ लिपटी छोटी-सी कमज़ोर चिड़िया की तरह रोती रही। आज दस बरस हो गए इस बात को, और उसने आज तक मेरे सामने आँख नहीं उठाई। अब वह मेरी बीवी है।''

वह एक लम्बी साँस लेकर ख़ामोश हो गया। लालटेन की बत्ती झिलमिला रही थी, और फ़र्श पर सोए हुए सिपाहियों की टाँगें आपस में गड्डमड्ड हो रही थीं। साथवाली दुकान में कोई गा रहा था।

''अब वह किसी और के साथ भाग जाए तो ?'' नईम ने कहा।

''नहीं, वह नहीं जाएगी। जिस मर्द के साथ उसका दिल नहीं था, उसे उसने बोलकर कह दिया था कि तू मुझे लाख ताले में रख, एक न एक दिन मैं चली जाऊँगी। मेरे घर में उसने दो बच्चे दिए हैं, और ऊँची आवाज़ से बात नहीं की है। अब वह कहीं न जाएगी। तुम नहीं जानते नईम, औरत जब महब्बत करने पर आती है, तो ख़त्म हो जाती है। महब्बत करने के लिए इतना बड़ा दिल चाहिए। वह दिलेर औरत है। मैं जानता हूँ। वरना मैंने ऐसी भी औरतें देखी हैं, जो एक घर में पाँच-पाँच बच्चे जनने के बाद दूसरे मर्द के साथ भाग जाती हैं।'' वह रुका, ''औरतें बुरी नहीं होतीं। यह मेरा यक़ीन है, पर अपने-अपने हौसले की बात है। जिसका हौसला नहीं होता, वह कभी महब्बत नहीं कर सकती। उसे सारी उम्र धोखादिही से काम लेना पड़ता है !''

ठाकुर दास ने अपने नीचे से नाड़ निकालकर सोए हुए सिपाहियों पर फेंके और कम्बल झाड़कर उठ खड़ा हुआ। "तुम पहले आदमी हो, जिसको मैंने यह क़िस्सा बताया है !"

नईम ने सिर बाहर निकाला। "सिपाही रियाज़ अहमद। शाबाश !" उसने दरवाज़ा बन्द कर दिया।

"बारिश हो रही है ?" ठाकुर दास ने पूछा। नईम ने कोई जवाब न दिया। वह कुछ सोचता हुआ बिस्तर सीधा कर रहा था। साथ की दुकान में गानेवाले सिपाही की खुरदरी, दुखी, भारी आवाज़ छोटे-छोटे सुर बनाती रात के अथाह सन्नाटे में गुम हो रही थी। बादल फटने से चाँद सामने आ गया था और गीले पाइन की बूढ़ी उँगलियाँ और लम्बे नोकदार पत्ते चमकदार आसमान के मुक़ाबिल सियाह और साकित[1] थे और उन पर से पानी की बूँदें ख़ामोशी से नीचे पत्थरों पर गिर रही थीं।

ठाकुर दास कम्बलों में हिला और बोला : "मगर मेरे दो बच्चे हैं !"

"मत सोचो। मत सोचो !" नईम ने बिस्तर पर धँसते हुए कहा। "रात बहुत गुज़र गई है !"

दूसरे दिन वाइप्रस पर जर्मन हमला शुरू हुआ, जो आख़ीर नवम्बर तक रहा। ऑर्क्स से नम्बर 129 बलोच रेजिमेंट (ड्यूक ऑफ़ कनॉट्स ऑन, सेविन्थ फ़ीरोज़पुर ब्रिगेड) मार्च करके बेलोल तक पहुँची। वहाँ जनरल फ्रेंच अपनी सियाह कार में आया और फ़ीरोज़पुर ब्रिगेड को सेकेंड कैवेलरी डिवीज़न से जाकर मिलने के अहकाम[2] जारी किए। उसी शाम को रेजिमेंट मोटर-लारियों में सवार होकर रात के वक़्त सेंट अलोई पहुँची और ब्रिगेड जनरल वाह्न के हवाले कर दी गई, जो थर्ड कैवेलरी ब्रिगेड (सेकेंड कैवेलरी डिवीज़न) की कमान कर रहा था।

सुबह सवेरे वे फ़ायरिंग-लाइन पर पहुँचे, और छहवें और पाँचवें लांसर्ज़ ने मोर्चे सँभाले। कैवेलरी के दस्ते वतिश्त और ज़िन्दरोर्द के दरमियान के सारे इलाक़े पर छाए हुए थे। दायाँ बाज़ू पिलोग स्ट्रीट के जंगल के उत्तर-पूर्वी कोने की आड़ में था। यह ख़ूबसूरत और ख़ामोश जंगल उत्तर की तरफ़ दूर तक फैलता हुआ चला गया था। आगे जाकर हरी-भरी पहाड़ियों का सिलसिला शुरू होता था, जिस पर जंगल यूँ चढ़ गया था, जैसे हाथियों का लश्कर हमवार ज़मीन पर चलते-चलते एकदम पहाड़ पर चढ़ने लगे और चोटी तक चला जाए। घास, जो कभी काटा जाता होगा, बेतहाशा उगा हुआ था और उस पर झड़े हुए ज़र्द पत्ते अटके थे। यह पतझड़ का मौसम था।

जंगल के उत्तर-पूर्वी कोने से पन्द्रह क़दम हटकर खुली जगह में उन्होंने मशीनगनें लगाईं। इन्हीं मोर्चों में इनसे पहले पाँचवें और सोलहवें लांसर्ज़ पड़े थे और उनके छोड़े हुए राशन के ख़ाली डिब्बे, टूटे हुए सख़्त बिस्कुट, काग़ज़ के टुकड़े और जले हुए सिगरेट इधर-उधर बिखरे हुए थे। ठाकुर दास और नईम ने अपने सेक्शन को मोर्चों में जमाया। गनों को लोहे की टाँगों पर बाँधा और आठ-आठ जवान हर दो मशीनों पर मुक़र्रर किए। उसी ख़न्दक में दो और सेक्शन बीस-बीस गज़ के फ़ासिले पर मोर्चे सँभाले हुए थे और उनकी चार मशीनगनें पहले से खुदी हुई बुनियादों में खड़ी थीं। उत्तरी महाज़ पर जर्मन हमला शुरू हो चुका था और तोपख़ाने के फ़ायर की मुसलसल आवाज़ दक्खिनी मोर्चों तक आ रही थी। उनसे आगे निचली ख़न्दक़ों में कैवेलरी के दस्ते थे। सेकेंड कैवेलरी डिवीज़न नहर के पुल और होली बेक के पूर्वी बाज़ू के दरमियान साढ़े तीन मील रक़बे को घेरे हुए था। ख़न्दक़ें एक से डेढ़ मील तक लम्बी थीं। थर्ड ब्रिगेड बाएँ बाज़ू पर था।

सूरज तमाम दिन उनके लोहे के टोपों पर चमकता रहा और वे ख़न्दक़ों में सिर छुपाए अहकाम के इन्तिज़ार में बैठे रहे। ख़न्दक़ें गीली और ठंडी थीं और उनमें अजीबो-ग़रीब शक्लोंवाले नन्हे-नन्हे कीड़े रेंग रहे थे। ठाकुर दास ने टोप उतारकर घुटने पर रखा और दीवार के साथ टेक लगाकर बैठ गया।

"हवालदार नूर मुहम्मद कहाँ है ?" नईम ने पूछा।

---

1. निश्चल, ख़ामोश, 2. हुक्म का बहुवचन।

"आउट-पोस्ट पर है।" ठाकुर दास ने आहिस्ता से एक कीड़ा उठाकर टोप पर रखते हुए कहा।

"कहाँ पर ?"

"रेजिमेंटल हैडक्वार्टर स्टॉफ़ की इमारत। चोटी की मंज़िल।"

"अगर मुझे मिल जाए, तो कच्चा चबाऊँ !" नईम ने सख़्त ग़ुस्से में मशीनगन की टाँगों पर ठोकर मारी। "कह रहा था, आज सुबह हम ज़रूर हमला करेंगे।"

ठाकुर दास ख़फ़गी और तन्ज़ से हँसा। "हर कोई अपने को ब्रिगेडियर जनरल वाहन समझता है।" फिर वह टोप पर चलते हुए कीड़े से खेलने लगा। "हम हमला नहीं करेंगे !"

"फिर ?"

"जर्मन पहले करेंगे। उत्तर में भी उन्होंने ही किया है।"

"तुम भी ब्रिगेडियर जनरल वाहन हो।"

"एं ? तुम्हारी तबीअत अब खुलने लगी है, बच्चे।"

सामने ऊँची-नीची ज़मीन पर सूरज डूब रहा था और पथरीली ज़मीन मकई के रंग की थी। ख़ुश्क टहनियों और ज़मीन के रंग की घास की ओट में ख़न्दक़ों के अन्दर हज़ारों सिपाहियों के सुर्ख़ और ज़र्द, ग़ुस्सैले और बेचैन, फ़िक्रमन्द चेहरे साकिन[1] थे और ख़ौफ़ज़दा, होशियार आँखों में इन्तिज़ार की थकान नुमायाँ थी। उन सबके कान उत्तर की तरफ़ लगे हुए थे, जहाँ से हलकी-हलकी, बादल के गरजने की-सी, तोपख़ाने की आवाज़ आ रही थी। सामने लगभग एक मील पर दुश्मन के मोर्चों में हरकत हो रही थी।

"भैनचोद।" नईम ने गाली देकर बूट की एड़ी से कीड़ों की पूरी क़तार कुचल दी।

ठाकुर दास बिस्कुट चबा रहा था। उसने चन्द बिस्कुट मुँह में डालकर नईम की तरफ़ बढ़ाए।

"मुझे भूक नहीं।" उसने ख़फ़गी से कहा और कमर से छागल खोलकर पानी पीने लगा।

"अपना पानी मत ख़त्म करो। मोर्चे में दो चीज़ों की बड़ी क़ीमत है—बारूद और पानी। कभी-कभी तो यूँ होता है कि दुश्मन को ख़त्म करने के बाद सबसे पहले उसकी छागल तलाश करनी पड़ती है।"

नईम का दिमाग़ एक बे-वजह ग़ुस्से और थकान की चंगुल में था। उसने जवाब दिए बग़ैर कीड़ों को कुचलना जारी रखा।

ठाकुर दास घुटनों के बल खड़ा हो गया। "रियाज़, पेटियाँ ले आए ?"

"ले आया !"

"गुल मुहम्मद...अब तुम जाओ।" उसने हुक्म दिया। "हमले के अन्दर इसी तरह बारूद के लिए दौड़ना पड़ेगा। रियाज़ और रामलाल, तुम इन्हें ख़ाली करके फिर से भरो। ढाई सौ राउंड तीन मिनट में निकलता है। ख़ाली मत बैठो। मश्क़ करो। ख़ाली बैठे-बैठे तुम एक दूसरे को क़त्ल करने की तरकीबें सोचने लगोगे।"

उसने कनखियों से नईम की तरफ़ देखा, जो बेंट को चौड़ा करके कीड़ों पर मार रहा था।

"मत मारो इन्हें।" उसने नर्मी से कहा। "अपने मोर्चे में मत किसी को मारो ! मैदाने-जंग के कुछ उसूल होते हैं !"

नईम ने बेंट की मदद से मरे हुए कीड़ों को छोटे-से ढेर में इकट्ठा किया और घुटनों के बल उठ खड़ा हुआ। सूरज डूब चुका था। ख़न्दक़ की दीवारों और मशीनगनों के साथ टेक लगाकर बैठे हुए सिपाहियों के टोप ज़मीन की सतह पर नज़र आ रहे थे। गुल मुहम्मद घिसटता-घिसटता तोपख़ाने के पास से गुज़र रहा था। उसने रुककर लेटे-लेटे सेल्यूट किया। सेक्शन कमांडर कैप्टेन डल जवाब देता क़रीब से गुज़रा। आगे जाकर कैप्टेन ने एक लम्बे और पतले अंग्रेज़ आरटिलरी ऑफ़िसर से

1. ख़ामोश, निश्चल।

कोई बात की और फिर सीधा उनके मोर्चों की तरफ़ आया। बारी-बारी उसने सारी मशीनगनों पर रुककर बात की : "शाबाश जवानो। डटे रहो। कल हम हमला करेंगे।" जाते-जाते वह एक पैकेट सिगरेट ठाकुर दास की तरफ़ फेंक गया।

"कल हमला करेंगे...सुअर...यह तीसरी बार है। गप मारने यहीं आता है।" ठाकुर दास ने कहा।

दोनों ने सिगरेट सुलगाए। बाक़ी पैकेट ठाकुर दास ने सिपाहियों की तरफ़ उछाल दिया। वे आँखें चमकाकर सिगरेटों की तरफ़ लपके।

"पर अब सिर न उठे, लौंडो !" उसने तम्बीहन[1] कहा।

"रात के लिए हमें और सिगरेट चाहिए !" नईम ने कहा।

"रात के लिए तुम्हें औरत भी चाहिएँ, एं ?" वह खुरदरेपन से हँसा।

"सिगरेट तो हैं। इतने ख़ुश क्यों हो रहे हो ?"

वे ख़ामोश बैठे सिगरेट पीते रहे। ठाकुर दास ने पीठ पर से थैला उतारा और सिर के नीचे रखकर लेट गया। आसमान पर इक्का-दुक्का सितारे निकल आए थे और पच्छिम की तरफ़ से बादल उठ रहा था।

"मेरी बात का ग़ुस्सा मत करो।" ठाकुर दास ने कहा। "मैंने बड़ी ख़न्दक़ें देखी हैं। मैं सिपाही था। मुझे पता है कि सिपाहियों को भी सिगरेटों की ज़रूरत होती है। ख़न्दक़ बड़ी ख़तरनाक जगह है। यहाँ सिपाहियों की देखभाल पालतू जानवरों की तरह करनी पड़ती है। मुझे हुक्म देना है और उन्हें लड़ना है और मरना है, लेकिन जब हमला शुरू होगा, तो वे ख़ुद अपने इंचार्ज होंगे, और गनों के और मैदाने-जंग के इंचार्ज होंगे। इस बात का इनहिसार[2] कि वे किस तरह लड़ते हैं, और किस तरह मरते हैं, उस वक़्त पर है। इस वक़्त पर नहीं। मैं अपनी ड्यूटी को अच्छी तरह समझता हूँ।" वह गीली, नर्म दीवार में नाखुन चुभोता रहा। नईम बढ़ते हुए अँधेरे में ग़ौर से उसके चेहरे के मज़बूत, किसी हद तक ज़ालिमाना नक़ूश को देखता रहा।

"और तुम्हें पता है, इस ख़न्दक़ में हमें कब तक रहना है ? किसी को पता नहीं ! अगर तुम हँसोगे नहीं, तो हमले से पहले ही मर जाओगे। सुन ?" ठाकुर दास ने कहा।

नईम बेदिली से हँसा। ख़न्दक़ में गहरा अँधेरा था। दूसरी मशीनगन के पास एक सिपाही बारीक धीमी आवाज़ में कोई देहाती गीत गा रहा था। दूसरे उसके गिर्द बैठे सुन रहे थे। दो सिगरेट सुलगे हुए थे और वे सिपाहियों के दायरे में बारी-बारी घूम रहे थे। ख़न्दक़ के ऊपर तेज़ ठंडी हवा सायं-सायं कर रही थी। बादल आधे आसमान पर फैल चुके थे। उत्तरी महाज़ की तरफ़ से आनेवाली तोपख़ाने की आवाज़ बन्द हो चुकी थी।

ठाकुर दास ने मूँछ को झुकाकर दाँतों में चबाया। "नईम ! यह मौसम देखते हो ?"

"हूँ !"

"इसी मौसम में मैं और वह औरत शादी करने के लिए गाँव से भागे थे। हैरत की बात है। बिलकुल ऐसा ही बादल था !"

नईम ने आँखें ख़ोलकर अँधेरे में उसे देखने की कोशिश की। चन्द लम्हे के अन्दर-अन्दर नींद उसकी आँखों से ग़ायब हो गई और उसके पेट में एक पुराना-मानूस, बदमज़ा-सा भारीपन पैदा हुआ। उसने महसूस किया कि वह उस शख़्स से, जो उसका अफ़सर है, और अँधेरे में ख़न्दक़ की दीवार के साथ लेटा हुआ है, इन्तिहाई नफ़रत करता है। यह वह एहसास था, जो कई दिन से आहिस्ता-आहिस्ता उसके दिल में पैदा हो रहा था और जिसकी ख़ातिर उसका दिमाग़ मुस्तक़िल ग़ैर-यक़ीनी,

1. चेतावनी के रूप में, 2. निर्भरता।

सुस्त हालत में काम करने की कोशिश कर रहा था। उस वक़्त अचानक वह एहसास, ख़तरे और दुख की वजह से जागे हुए दिमाग़ में, एक मुकम्मल जज़्बे, एक बड़े वाज़ेह तअस्सुब[1] की शक्ल में ज़ाहिर हो गया था। बहुत अरसे के बाद पहली बार उसने महसूस किया कि उसके दिमाग़ ने एक झटके के साथ अपने आपको किसी अनजानी ताक़त के असर से छुड़ाकर तेज़ी से काम करना शुरू कर दिया है।

उसने नफ़रत से ख़न्दक़ में थूका। "औरतों का ज़िक्र करने का यह अच्छा मौक़ा है !"

ठाकुर दास भारी गले से हँसा। नईम ने मुँह में बदमज़गी महसूस की और दोबारा थूका।

"तुम्हारी तबीअत ठीक है ?"

नईम ने बड़ी कोशिश से अपने आप पर क़ाबू पाया। "शायद तम्बाकू ख़राब था।"

"विलायती तम्बाकू था।" ठाकुर दास ने कहा।

दोनों ख़ामोश बैठे अँधेरे में जागने की कोशिश करते रहे।

आधी रात के बाद बारिश शुरू हो गई और लगातार चार घंटे तक होती रही। तिरपालों के लिए सिपाही भेजा गया, मगर वे ख़त्म हो चुकी थीं। सिर्फ़ तोपख़ानेवालों से कैनवस के चन्द बिस्तर-बन्द हासिल हो सके, जिन्हें ख़ेमे की शक्ल में ख़न्दक़ के ऊपर लगाया गया और पानी को रोकने के लिए बन्द बनाए जाने लगे। लेकिन जब बारिश थमी, तो ख़न्दक़ में छह-छह इंच पानी भर चुका था। उन्होंने राशन के ख़ाली डिब्बों से पानी निकालना शुरू किया। सेक्शन कमांडर बरसाती और दस्ताने पहने किनारे-किनारे फिर रहा था। कभी-कभी ठहरकर बात करने लगता। "शाबाश जवानो...आवाज़ न निकलने पाए...शाबाश !"

चारों तरफ़ डिब्बों के पानी में डूबने और पानी के बहने की धीमी आवाज़ें आ रही थीं। सुबह से पहले का गहरा अँधेरा छाया हुआ था, और पानी के झपाकों की आवाज़ तेज़ हवा के साथ दूर तक जा रही थी। सिपाहियों के लम्बे फ़ौजी कोट भीग चुके थे। उनके बूटों में पानी घुस गया था और वे सर्दी से काँप रहे थे। दुश्मन के मोर्चों की तरफ़ से गर्र-गर्र की जानी-पहचानी आवाज़ आनी शुरू हुई और दूर आसमान में नन्ही-सी हरी बत्ती रेंगने लगी।

"वह आया..." धीरे से बहुत-सी आवाज़ें आईं। सारे सिपाही एक साथ सिर के बल ख़न्दक़ में गिरे। उनके कानों और नथनों में कीचड़ घुस गया और उँगलियाँ नर्म ज़मीन में धँस गईं। कछुओं की तरह औंधे मुँह कीचड़ में वे उस वक़्त तक पड़े रहे, जब तक कि हवाई जहाज़ ख़ौफ़नाक आवाज़ पैदा करता हुआ ऊपर से गुज़र न गया।

"अच्छा है कि हमारे पास ख़राब होने को कुछ हई नहीं।" उठकर खड़े होते हुए ठाकुर दास हँसा। "ओह...ठीक है...कैप्टेन डल अपनी नफ़ीस बरसाती पर से कीचड़ साफ़ करता हुआ सादगी से हँसा। "मेरे ऊपर मत हँसो। हो सकता है, मैं तुमसे पहले मर जाऊँ !"

सुबह होने तक ख़न्दक़ों में सिर्फ़ कीचड़ रह गया था। फूँकें मार-मारकर गीली लकड़ियों को जलाया गया, लेकिन धुआँ उठने पर फ़ौरन बुझा दिया गया। जो पानी कुनकुना हुआ, उसी से सिपाही चाय बनाकर पीने लगे। जागने और धुएँ की वजह से उनकी आँखें सुर्ख़-अंगारा हो रही थीं।

"तुमने अलग चूल्हा क्यों बनाया है ?" ठाकुर दास ने पूछा।

"ठीक है !"

"धुआँ उठ रहा है। इसे बुझा दो, और कोट सूखने को फैला दो। फेफड़ों को सर्दी लग जाएगी !"

"ठीक है।" नईम ने पथरीले लहजे में दुहराया।

"ठीक है ? क्या ठीक है ?" ठाकुर दास ग़ुस्सा दबाते हुए बोला। नईम पीठ मोड़े ईंधन में फूँकें मारता रहा।

---

1. कट्टरता।

"लांस नाइक नईम अहमद ख़ाँ !"

नईम एक झटके से मुड़ा और पागलों की तरह दाँत नंगे करके चीख़ा : "मुझे चाय बनाने दो !"

"मैं तुम्हें हुक्म देता हूँ।" ठाकुर दास गरजा और आगे बढ़कर अपने बड़े-बड़े बूटों से मसलकर अधजली लकड़ियाँ बुझाने लगा।

नईम ने खींचकर सिर से टोपी उतारी और उसकी तरफ़ फेंकी। जो उड़ती हुई ठाकुर दास के कान के पास से गुज़र गई। फिर उसने राइफ़ल को स्लिंग से पकड़कर उसकी तरफ़ उछाला। वह उसी तरह जाकर ख़न्दक़ की दीवार के साथ खड़ी हो गई।

"लो..." वह जानवरों की तरह चीख़ा। "लो..." कुछ देर तक वह भद्दे चेहरे के साथ उसकी तरफ़ देखता रहा। फिर पलटकर खड़ा हो गया। ठाकुर दास ने कन्धे उचकाए और बैठकर चाय पीने लगा।

"लांस नाइक कोर्ट मार्शल करवाने की फ़िक्र में है।" दूसरी मशीनगन की टाँगों से टेक लगाकर बैठे-बैठे एक सिपाही ने लापरवाही से कहा। उसके चेहरे पर मैल की लकीरें बनी हुई थीं।

सूरज पूरी तेज़ी और चमक के साथ ऊपर आ रहा था और बारिश के बाद फ़िज़ा के रँग गहरे हो गए थे। पिलोग स्ट्रीट का जंगल सियाही–माइल सब्ज़ और पुर-सुकून था। ख़न्दक़ों में रात के जागे हुए और थकान से चूर गन्दे सिपाही, टेक लगाए बैठे, मैले बर्तनों में चाय पीते हुए, सूरज की गर्मी को अपने ठंडे और गीले जिस्मों पर महसूस कर रहे थे। बाहर ढलवान ज़मीन पर उनके बड़े कोट फैले हुए थे। गीली, सियाह ज़मीन भाप छोड़ रही थी। ठाकुर दास देर तक चाय के साथ बिस्कुट चबाता रहा। उसके पथरीले चेहरे की एक-एक हड्डी और पट्ठा हरकत कर रहा था। कीचड़ की एक नन्ही-सी बूँद उसकी भौं पर जम गई थी। मग ख़ाली करके उसने दोबारा उसे चाय से भरा और नईम की राइफ़ल उठाकर उसके क़रीब जा खड़ा हुआ।

"मैदाने-जंग में पहले ही क्या कम दुश्मन हैं, एं ?" उसने राइफ़ल उसकी तरफ़ उछाली और मग आगे बढ़ाया। नईम ने राइफ़ल को हवा में पकड़ा और बैठकर चाय पीने लगा।

उस दिन कैवेलरी के दस्तों को पीछे हटा लिया गया। तमाम दिन कोई अहकाम वुसूल न हुए और तेज़ धूप ने गीली ख़न्दक़ों में से जो भाप उड़ाई, उससे घबराकर सिपाही झुके-झुके चलते एक से दूसरी जगह आते-जाते रहे। रात को बादल फिर झूमकर उठा और थोड़ी-सी बारिश के बाद बर्फ़ गिरने लगी। हिन्दोस्तान के गर्म मुल्क से आनेवाले सिपाहियों ने बर्फ़बारी पहली बार देखी थी। वे ख़न्दक़ों में से मुँह निकाले अँधेरे में गिरती हुई बर्फ़ को महसूस कर रहे थे। मशीनगन नम्बर एक के पास अध-गीली टहनियों की आग जल रही थी और ठाकुर दास बेंट की मदद से बूटों के तलवों से कीचड़ छुड़ा रहा था। ऊपर राइफ़लें एक-दूसरे के सहारे खड़ी करके बिस्तरबन्द का ख़ेमा बनाया गया था। दूसरी गन के पास सिपाही नीम-ग़ुनूदगी[1] की हालत में बैठे बातें कर रहे थे। दरमियान में आग जल रही थी। एक सिपाही संजीदगी से बैठा आग पर जुराबें सुखा रहा था। दीवारों पर उनके छोटे-बड़े साये काँप रहे थे।

नईम देर से अपनी राइफ़ल पर झुका, मुँह बाहर निकाले दीवार के सहारे खड़ा था और बर्फ़ के नन्हे-नन्हे फोहे ख़ामोशी से उसके चेहरे और बालों पर गिर रहे थे। "बर्फ़बारी मैंने शिमले में देखी थी। वहाँ भी पाइन के दरख़्त थे, शायद चीड़ के थे। याद नहीं रहा। उस वक़्त मैं बहुत छोटा था। और जंगल, जो हमारे घर के ऊपर और नीचे और हर तरफ़ था, और पहाड़ की ढलान पर हमारा घर था। फ़्लावर...मे-फ़्लावर...? ऐसा कोई नाम था। पता नहीं। और वह लड़का शायद मेरा पहला दोस्त था। वे घर के दूसरे हिस्से में रहते थे। लकड़ी के बरामदे में रेलिंग पर झुककर हम बर्फ़बारी देख रहे थे। ऐसी ही रात थी। शायद वही रात हो, और फिर से आई हो..." वह दिल

1. अर्द्धनिद्रावस्था।

में हँसा। "उसकी सफ़ेद बिल्ली पाँव में बैठी थी और बर्फ़ छतों पर, दरख़्तों पर, पत्थरों पर, और दूर-दूर चोटियों पर, जहाँ सिर्फ़ बर्फ़ गिरती है, ख़ामोशी से गिर रही थी। और कमरे में उसकी बहन मुँहवाला बाजा बजा रही थी।" उसने हाथ बढ़ाकर ताज़ा गिरी हुई बर्फ़ पर रखा। "वह लड़का अब कहाँ है ? दीपक। हैरत है। वह अब कहाँ होगा ? मेरे अल्लाह ! मेरा दोस्त कहाँ है ?" वह आँखें बन्द करके सोचता रहा। "शायद डॉक्टर बन गया हो। जब बारिश हुई थी, तो नाला, जो हमारे घर के पास से गुज़रता था, उसमें कश्तियाँ छोड़ने गए थे, जो उसकी बहन ने बनाई थीं। तब उसने बताया था कि वह डॉक्टर बननेवाला है। वह तमाम दिन रंग-बिरंगे पत्थर जमा करता और उन्हें पीस-पीसकर बिल्ली को खिलाता रहता था, जो उसकी मरीज़ा थी। मेरा प्यारा दोस्त ! बर्फ़बारी रुक गई है ? नहीं, जारी है। सिर्फ़ कम हो गई है। छत पर, दरख़्तों पर, दुश्मन के मोर्चों पर...आज सारा दिन मैंने उससे बात नहीं की...ठीक है...मैं उसे पसन्द नहीं करता...क्यों ? पता नहीं...नहीं... नहीं...यह बात नहीं...अगर है भी, तो ठीक है। सुअर...ख़न्दक़ में वह इस क़दर मुत्मइन[1] है... भेड़िया...जानता है कि मैं उसे पसन्द नहीं करता...फिर भी हँसता है मक्कार...हर वक़्त खाता रहता है। पता नहीं, इन जानवरों को ख़न्दक़ में भी इतनी भूक लगती है..."

गहरी, तेज़ नफ़रत रेंगकर उसके दिल में दाख़िल हुई, और उसके सारे वुजूद को गिरफ़्त में ले लिया। बर्फ़बारी की उस रात में इनसानों के फैले हुए समन्दर के दरमियान उसने अपने आपको बेहद अकेला महसूस किया...देर तक वहाँ खड़ा वह महब्बत, नफ़रत और हसद[2] के जलते हुए जज़्बों की अज़ीयत[3] सहता रहा।

बर्फ़बारी थम चुकी थी। बादल फटने पर चाँद ज़ाहिर हो गया और चारों तरफ़ सारी फ़िज़ा बर्फ़ की सफ़ेदी से जगमगाने लगा। दुश्मन के मोर्चों में से कोई गिटार का एक तार बार-बार बजा रहा था और उसकी गम्भीर, नर्म आवाज़ सफ़ेद और गहरी ख़ामोश रात के सिहर[4] में इज़ाफ़ा कर रही थी।

उसने सिर अन्दर खींच लिया। एक कमज़ोर-सा नीला शोला कोयलों के दरमियान नाच रहा था। और ठाकुर दास दीवार के साथ बैठा सो रहा था। उसका चेहरा गन्दा था और एक मूँछ ठोड़ी पर लटक आई थी। नीले शोले का साया गाल के गढ़े में काँप रहा था। उसके दोनों खुले हुए हाथ ज़मीन पर रखे थे, और सिर छाती पर झुका हुआ था। झुकी हुई कमर दीवार से लगाए, टाँगें दोहरी किए, सोया हुआ वह देखनेवाले के दिल में रहम का जज़्बा पैदा करता था। उसके बड़े-से, सख़्त चेहरे पर भोलापन था।

देर तक खड़े रहने की वजह से नईम की टाँगों में कँपकँपाहट पैदा हो गई थी। पेट में सख़्त भूक महसूस करके उसने फ़ैसला किया कि अब वह चन्द बिस्कुट खाएगा।

अगले दिन तीसरे पहर के वक़्त हमले का हुक्म मिला। उनके साथ नम्बर एक, नम्बर दो और नम्बर तीन कैवलरी ब्रिगेड के ज़्यादातर हिस्से थे। हमले के लिए हुक्म यह था :

नम्बर तीन डबल कम्पनी, जो मेजर हमफ़्री की क़ियादत[5] में होली बेक के सेक्शन की ख़न्दक़ों पर क़ाबिज़ थी, आगे बढ़ेगी और छह सौ गज़ का महाज़ घेर लेगी। नम्बर एक कम्पनी कैप्टेन एडियर की कमान में रोज़बक पर क़ब्ज़ा करेगी, और ज्यूँही नम्बर दो कम्पनी उनके बराबर आ जाए, चढ़ाई शुरू कर देगी। कम्पनी के दाएँ बाज़ू का रुख़ फ़ार्म की तरफ़ कन्टूर तीस पर होगा। नम्बर तीन कम्पनी के दो प्लाटून (कम्पनी मैकलीन की क़ियादत में थी) मशीनगन सेक्शन के हमराह कैप्टेन डल की कमान में उस फ़ायर की मदद करेंगी, जो बाज़ू की तरफ़ से जार्डेन्ज़ फ़ार्म की ख़न्दक़ों में से होगा। नम्बर तीन कम्पनी (प्लाटून) और नम्बर चार कम्पनी जार्डेन्ज़ फ़ार्म के पीछे रिज़र्व में रहेंगी।

---

1. सन्तुष्ट, 2. ईर्ष्या, 3. यातना, 4. सम्मोहन, जादू, 5. नेतृत्व।

तीन बजे फ़ायरिंग शुरू हुई। रेजिमेंट दुश्मन के मशीनगन और राइफ़ल फ़ायर के सामने आ गई।

तोपख़ाना अभी दोनों जानिब से ख़ामोश था। कैप्टेन डल दूरबीन लगाए मशीनगन की ख़न्दक़ों में घूम रहा था। सूरज ख़न्दक़ों में झुके हुए लोहे के टोपों पर तेज़ी से चमक रहा था और अन्धाधुन्ध चलती हुई गोलियों की आवाज़ पच्छिमी पहाड़ियों में से लौटकर आ रही थी। हवा में बारूद की बू थी।

''ज़ाविया[1] नम्बर 39 दक्खिन-पूरब—फ़ायर'' कम्पनी कमांडर चीख़ा।

नईम ने लबलबी दबा दी। गोलियों की बौछार निकली और दुश्मन की ख़न्दक़ से पचास गज़ इधर ज़मीन में धँस गई। छोटे-छोटे कंकर, पत्थर और गीली मिट्टी के डले हवा में उड़े।

''डेविल (Devil)।'' कैप्टेन डल झुँझलाकर मुड़ा और दूरबीन से ओ.पी. की इमारत को देखा। शीशों को आगे-पीछे फिराते हुए वह अंग्रेज़ी में गालियाँ देने लगा : ''मुझे बेवक़ूफ़ समझता है। फ़ायर स्टॉप !'' उसने मुड़कर दुश्मन के मोर्चों पर दूरबीन लगाई, ''ज़ाविया नम्बर 42, दक्खिन-पूरब... फ़ायर...''

नालियाँ ऊँची हुईं और ख़ौफ़नाक तड़तड़ाहट के साथ गोलियों की दूसरी बौछार निकली। अब मिट्टी ऐन दुश्मन ख़न्दक़ों पर से उड़ी और चमकते हुए सियाही टोपों की क़तार अचानक ग़ायब हो गई। सिर्फ़ एक जगह से दो बाज़ू हवा में उठे और एक सिपाही ज़बरदस्त झटके के साथ ख़न्दक़ से बाहर जा पड़ा। दूसरी बौछार से वह दस गज़ लुढ़कता हुआ चला गया और हमवार ज़मीन पर जाकर गिरे हुए पाइन के बेजान तने की तरह साकिन[2] हो गया।

''शाबाश !'' ठाकुर दास चीख़ा : ''फ़ायर !''

नईम के जिस्म में ख़ून की गर्दिश तेज़ हो गई। एक अनजानी-सी ख़ुशी और फुर्ती के साथ उसने लबलबी पर उँगली का दबाव बढ़ा दिया।

''पेटी लगाओ।'' वह चीख़ा।

''गनों को गर्म मत करो। थोड़ा ठहरो। शाबाश। पिघलने मत दो। मशीनगन तुम्हारा बेहतरीन साथी है !''

कैप्टेन डल दूरबीन में देखता हुआ बोल रहा था।

राइफ़ल और मशीनगन की गोलियाँ हवा को चीर रही थीं। फ़िज़ा में बारूद और धूल की धुँधलाहट फैल गई थी, और सूरज मुर्दा जर्मन सिपाही के टोप पर चमक रहा था।

सूरज ढलने लगा, तो पीछे से तोपख़ाने ने रेपिड फ़ायर (Rapid Fire) शुरू कर दिया। दुश्मन का फ़ायर चन्द मिनट के लिए रुक गया। कैप्टेन डल ने दूरबीन में देखा और हुक्म दिया : ''कम्पनी एडवांस !''

दो सिपाहियों ने ख़न्दक़ पर चढ़कर मशीनगन बाहर निकाली। तीसरे को ठाकुर दास ने टाँगें पकड़ाईं। नईम के सिपाहियों ने अपनी मशीन उठाई और झुके-झुके दौड़ते हुए आगे बढ़े। गोलियों की एक बौछार ''सां'' करके उनके टोपों पर से गुज़री। ठाकुर दास के एक सिपाही ने बाज़ू हवा में फेंके और पंजों पर उठकर तेज़ चक्कर में घूमा। फिर वह धप से गीली ज़मीन पर गिरा और आवाज़ निकाले बग़ैर मर गया। सारी की सारी कम्पनी मुँह के बल ज़मीन पर आ रही। गोलियों की दूसरी बौछार आई। तीसरी उनके जिस्मों से दो इंच ऊपर सीटियाँ बजाती हुई गुज़री। डर के मारे पहले उन्होंने छोटे-छोटे पत्थरों के पीछे सिर छुपाने की कोशिश की। फिर ज़मीन में सिर गाड़े, लेकिन दुश्मन के सही और भारी फ़ायर के सामने उन्हें पीछे हटना पड़ा। मिट्टी और कंकर उनके नथनों में घुस रहे थे और वे ज़ख्मी साँपों की तरह लेटे-लेटे उलटे पाँव रेंग रहे थे। ख़न्दक़ से पाँच

1. कोण, 2. निश्चल।

गज़ के फ़ासिले पर नईम का एक आदमी गोली के ज़बरदस्त धक्के से कमानी की तरह सीधे पाँव पर खड़ा हो गया और लट्टू की तरह तेज़ी से घूमता हुआ ख़न्दक़ में जा गिरा। एक गोली मशीनगन पर लगी और मैगज़ीन को, जिससे नईम अपना चेहरा छुपाए हुए था, तबाह कर दिया।

ख़न्दक़ में पहुँचकर उन्होंने मशीनगनें लगाईं और पेटियाँ चढ़ाकर कैप्टेन डल की तेज़, ग़ुस्सैली आवाज़ के मुताबिक़ फ़ायर खोल दिया। ज़ख़्मी सिपाही दोनों हाथों से पेट को पकड़े घुटनों के बल बैठा था। "पानी !" उसने ख़ौफ़नाक, ग़ैर-इनसानी आवाज़ में कहा और झुक गया। उसका सिर ज़मीन को जा लगा और उसी हालत में पड़ा वह कमज़ोर, मुर्दा आवाज़ में कराहने लगा। दो सिपाहियों ने उसे सीधा लिटाया और छागल मुँह के साथ लगाई। मुश्किल से एक घूँट उसके गले से उतरा। बाक़ी पानी बाछों में से बहने लगा। तकलीफ़ की शिद्दत से उसका चेहरा भद्दा हो गया था और आँखों में मौत का ख़ौफ़ लिए वह टकटकी बाँधे आसमान को तक़ रहा था। जब नईम ने आख़िरी बार उसे देखा, तो वह आँखों से पेट की तरफ़ इशारा कर रहा था, जिसे अभी तक उसके ख़ून में लथड़े हुए हाथ जकड़े हुए थे।

हमले के मक़तूलीन[1] की फ़ेहरिस्त[2] : दो जवान, एक मशीनगन।

कैप्टेन विंसेन्ट की कमान में जो कम्पनी थी, उसका एक हिस्सा रास्ता भूल गया, और नम्बर दो कम्पनी के दाएँ बाज़ू पर आ निकला। शाम के वक़्त कैप्टेन ने मदद माँगी और नम्बर चार कम्पनी की दो प्लाटून उसे भेजी गईं। कुमुक[3] पहुँचने से पहले उसके सिर में गोली लगी और वह घोड़े पर बैठा-बैठा मर गया।

दाएँ बाज़ू की तरफ़ ज़्यादा अहम वाक़िआत[4] को देखते हुए डिवीज़न को तोड़ना नागुज़ीर[5] हो गया था। अगली सुबह रेजिमेंट वहाँ से हटाकर होली बैक के उत्तर में पोज़ीशन पर भेजी गई। शाम को दो कम्पनियाँ फिर उसी महाज़ पर ए. और बी. ख़न्दक़ों में वापस बुला ली गईं। दो दिन तक वे इसी तरह लड़ते रहे। जानी नुक़सान ज़्यादा होता गया। दो दिन में एक तिहाई तोपख़ाना तबाह हो गया। पुरानी छह इंच की होटज़र तोपें इतना ही मुक़ाबला कर सकती थीं। इस हालत में उन्हें जर्मन हमले का सामना करना था।

सेकेंड बेवेरियन कार्प्स भारी कवरिंग फ़ायर (Covering Fire) के नीचे उस सेक्शन पर जमा हो रही थी, जहाँ पर थर्ड कैवेलरी ब्रिगेड का मोर्चा था। यह जगह सेकेंड कैवेलरी डिवीज़न के बाएँ बाज़ू पर थी। नम्बर 129 की दो कम्पनियाँ अगली सफ़ों में थीं और पाँचवीं और सोलहवीं लांसर्ज़ को सुबह सात बजे इनसे मोर्चा सँभालना था, जबकि नम्बर एक कम्पनी ने नम्बर तीन कम्पनी की ख़न्दक़ें अभी-अभी ली थीं, और नम्बर दो कम्पनी रिज़र्व में थी। चुनाँचे उस वक़्त दुश्मन के हमले ने तितर-बितर कर दिया और नम्बर दो कम्पनी को भारी तोपख़ाने के फ़ायर के सामने पीछे हटकर जंगल में एक फ़ॉर्म के पीछे पनाह लेनी पड़ी।

कैप्टेन डल की कम्पनी अभी तक मोर्चा सँभाले हुए थी। उनके आधे जवान ख़त्म हो चुके थे और बाक़ी तेज़ी से ख़त्म हो रहे थे। दुश्मन की बैटरियाँ बुरी तरह गोलाबारी कर रही थीं। सेक्शन कमांडर देर हुई आख़िरी चक्कर लगाकर पीछे जा चुका था। ख़न्दक़ें आधी से ज़्यादा टूट चुकी थीं और दुश्मन की "बिग बर्था" और दूसरी तोपों के जवाब में उनकी आर्टिलरी के पास पुरानी और छोटी छह इंच मुँह की तोपें थीं। दुश्मन की सफ़ें तेज़ी से बढ़ रही थीं और ग़ैर-मानसू[6] वर्दियोंवाले सिपाही पाँच सौ गज़ के फ़ासिले पर हरकत करते हुए नज़र आ रहे थे। नम्बर 129 रेजिमेंट की ख़न्दक़ों में छह मशीनगनें थीं और अभी तक सारी चल रही थीं।

अँधेरा होने में अभी दो घंटे थे और ढलते हुए सूरज की धूप धूल और बारूद की वजह से ज़र्द मटियाले रंग की हो गई थी। पिछली रात की गिरी हुई बर्फ़ पर चलनेवाली तेज़ ठंडी हवा के

1. मृतकों, 2. सूची, 3. सहायता, 4. महत्त्वपूर्ण घटनाओं, 5. अनिवार्य, 6. अपरिचित।

साथ ख़ून और बारूद की बू और ज़ख़्मियों के कराहने की आवाज़ें सब तरफ़ फैल रही थीं। भारी आर्टिलरी फ़ायर की भयानक, मुसलसल आवाज़ से सिपाहियों के कान पक गए थे और दिन-रात की गोलाबारी से वे सुस्त और बेज़ार हो चुके थे।

''पेटी लगाओ।'' ठाकुर दास चीख़ा। दो सिपाहियों ने तेज़ी से आख़िरी पेटी भरना ख़त्म की और मैगज़ीन में फ़िट करने लगे। ''बस ?'' ठाकुर दास ने घबराकर ख़ाली पेटियों के ढेर को देखा।

''रहमदीन लेने गया है !''

''अभी तक नहीं लौटा ?''

''नहीं !''

''तुम जाओ !''

रियाज़ ने हिचकिचाते हुए इधर-उधर देखा।

''जाओ...एक गन रह गई है। चूहे की तरह मरना चाहते हो ?''

वह पेट के बल बाहर निकल गया।

ठाकुर दास और नईम ने मशीनगन की नाली के ऊपर से आहिस्ता-अहिस्ता बढ़ती हुई दुश्मन की सफ़ को देखा और उनकी पीठ पर ख़ौफ़ की सरसराहट पैदा हुई। झुककर चलते हुए वे दूसरी मशीन तक गए। उसमें आधी चली हुई पेटी लगी थी और ''ट्राईपाड'' के पास छह गन्दे, भद्दे चेहरोंवाले सिपाही मरे पड़े थे। ठाकुर दास ने लबलबी को दबाकर देखा।

''जाम हो गया ! एक इंच नहीं हिलता।''

''एक इंच तो कभी भी नहीं हिलता !''

''मज़ाक़ मत करो !''

इसी तरह चलते हुए वे अपनी जगह पर लौट आए।

''हम इसे नहीं लगा सकते ?'' नईम ने अधचली पेटी की तरफ़ इशारा किया।

''यह नहीं लग सकती। तुम्हें पता नहीं ? एम.जी. का तुम्हें क्या पता है ?''

''पता है !''

''फिर ?''

''यूँ ही पूछा है !''

ठाकुर दास एक ख़ाली पेटी उठाकर फाड़ने लगा।

एक गोला ख़न्दक़ से तीन गज़ के फ़ासिले पर गिरा और डायनामाइट से रियाज़ उड़ी हुई मछली की तरह पलटकर गिरा और चित हो गया। उन दोनों ने खड़े-खड़े आँखें सिकोड़कर उसे देखा। दूसरा गोला उनके मुँह के आगे तीन फुट पर आकर पड़ा और मिट्टी की उड़ती हुई दीवार ने ठाकुर दास को पाँव पर से उठाकर चार फुट दूर फेंक दिया। ठंडी, गीली मिट्टी उसके मुँह, नाक और आँखों में भर गई। चन्द सेकेंड तक वह सुन्न पड़ा रहा। फिर आहिस्ता-आहिस्ता उठा। उँगली फेरकर गला साफ़ किया। नाक सिनकी और आँखें मलकर खोलीं। नईम अपनी जगह पर हैरान खड़ा था।

''क्या हाल है ?'' ठाकुर दास ने पूछा।

''मुझे कुछ नहीं हुआ !''

''मुझे भी कुछ नहीं हुआ, मैंने कई बार मिट्टी चखी है।'' वह हँसा। ''मगर नाक में यह तकलीफ़ देती है भैनचोद।'' उसने उँगलियों से दबाकर नाक साफ़ की और लापरवाही से गोले के बनाए हुए बारह फ़ुट गोल गढ़े को देखते हुए घुटी आवाज़ में बोला : ''हैरत की बात है। मैदाने-जंग में बारूद बाज़ दफ़ा अजीब सुलूक करता है !''

''ख़न्दक़ तबाह हो गई।'' नईम ने बेज़ारी से कहा।

तीसरा गोला ज़रा दूर आकर गिरा और बारीक मिट्टी की बारिश ने उन्हें ढँक लिया।

"सुअर...बैठने भी न देंगे।" ठाकुर दास ने सुस्ती से बढ़कर मशीनगन उठाई और मुर्दा सिपाहियों के ढेर के पास जाकर रख दी।

"बारूद नहीं आएगा। रियाज़ भी गया !" उसने आँखों के कोनों में से नईम को देखा।

नईम ने राइफ़ल का स्लिंग कन्धे पर जमाया और लपककर बाहर निकल आया। सूरज ढल चुका था और कुहनियों की मदद से आगे बढ़ने लगा। रियाज़ छह फ़ुट गहरे गढ़े में बाज़ू और टाँगें फैलाए लम्बा-लम्बा चित पड़ा था। उसकी ज़र्द हथेलियाँ आसमान की तरफ़ उठी हुई थीं। पेट खुल गया था और बाहर लटकते हुए अंतड़ियों के ढेर में से भाप उठ रही थी। नईम ने रुककर झाँका। गढ़े में से ताज़ा मिट्टी, बारूद और अंतड़ियों की भाप की मिली-जुली बू आ रही थी। जाते-जाते आख़िरी बार मुड़कर उसने उसके ख़ौफ़नाक तौर पर ऐंठे हुए चेहरे को देखा, जिसकी ठोड़ी, जबड़े की हड्डी टूट जाने की वजह से ऊपर उठ आई थी। वहाँ से बीस क़दम के फ़ासिले पर रहमदीन पड़ा था। गोली उसकी गर्दन में लगी थी और ख़ून बह-बहकर उस गढ़े में जमा हो रहा था, जो उसके सिर रगड़ने से ज़मीन में बन गया था। वह अभी तक ज़मीन में आहिस्ता-आहिस्ता एड़ियाँ मार रहा था। नईम ने कन्धे से पकड़कर उसे सीधा लिटा दिया। मौत का साया ज़र्द, बेजान चेहरे पर लहरा रहा था, लेकिन वह बिलकुल दुरुस्त हालत में था और उस पर बच्चों की-सी मासूमियत थी। उसके चेहरे को देखकर किसी को ख़याल न आ सकता था कि यह शख़्स मर रहा है। नईम ने कान लगाकर सुना। वह बरीक, कमज़ोर आवाज़ में कह रहा था : "ले चलो। छोड़ के न जाओ। आ आ आ...भाई।" वह करवट पर हो गया और तेज़ी से एड़ियाँ रगड़ने लगा। "छोड़ के न जाओ...भाई...आ..." उसने ज़ुबान निकालकर ओस से भीगी घास को चाटा।

नईम का जी मतलाने लगा। उसने बर्फ़ का एक टुकड़ा उठाकर मुँह में डाला और उसे चूसता हुआ आगे रवाना हुआ।

जंगल की ओट में उस फूस के झोंपड़े के अन्दर तीन सिपाही तेज़ी से पेटियाँ भर रहे थे। एक तरफ़ गोलियों के क्रेट और दूसरी तरफ़ ख़ाली पेटियाँ रखी थीं। वे आहिस्ता-आहिस्ता बातें भी करते जा रहे थे। नईम दौड़ता हुआ अन्दर दाख़िल हुआ। झोंपड़ा पाइन के तनों पर खड़ा था और छत से घास की दाढ़ियाँ लटक रही थीं। अन्दर गीली घास और मिट्टी के तेल की बू फैली हुई थी। आहट सुनकर तीनों सिपाहियों ने राइफ़लें उठाईं और घुटनों पर खड़े हो गए।

"फ़्रेंड !" नईम ने कहा : "पेटियाँ तैयार हैं ?"

"शाबाश !"

उसने तीन पेटियाँ उठाकर कन्धे पर डालीं और बाहर निकल गया।

जब वह ख़न्दक़ों के क़रीब पहुँचा, तो तीन मशीनें ख़ामोश हो चुकी थीं। उनके पास से गुज़रते हुए उसने पुकारा : "फ़्रेंडज़् ! बारूद ?"

उसे कोई जवाब न मिला। सिर्फ़ एक के पास से आहिस्ता-आहिस्ता कराहने की आवाज़ आ रही थी। "फ़्रेंड...फ़्रेंड...आओ !"

"बारूद ?" उसने फिर पूछा।

चौथी मशीन जो चल रही थी, उस पर एक सिपाही बैठा था। वह मुड़े बग़ैर ग़ुस्से से बोला : "अपने मोर्चे पर जाओ। हमारे अन्दर काफ़ी बारूद पहुँच चुका है !"

चाँद की रौशनी सारे में फैल चुकी थी। मशीन में पेटी लगाते-लगाते नईम ने चौंककर ऊपर देखा। "ये आ गए !"

"कौन ?" ठाकुर दास ने घबराकर पूछा।

तीन सौ गज़ पर वे राइफ़लें हाथों में उठाए तेज़ी से दौड़े चले आ रहे थे।

"सुअर..." ठाकुर दास दाँत पीसकर चीख़ा और लबलबी पर उँगली रख दी। गोलियों की

बारिश सही जगह पर हुई। चाँद की रौशनी में एक सिपाही बाज़ू फैलाकर औंधे मुँह गिरा और सियाह जिस्म दूर तक लुढ़कता हुआ चला गया। सारी लाइन ने सिर के बल ज़मीन पर गिरकर फ़ायर खोल दिया।

"जाओ...और पेटियाँ..." ठाकुर दास ने रुक-रुककर फ़ायर करते हुए कहा।

नईम एक पल को हिचकिचाया। फिर उचककर ख़न्दक़ से बाहर निकल आया। चन्द गज़ के फ़ासिले पर जाकर वह अचानक ठहर गया और गाल ज़मीन पर टिकाकर आँखें बन्द कर लीं। फिर मुड़ा।

"हवालदार !" उसने पुकारकर कहा।

"क्या है ?"

"हवालदार...हमें रिट्रीट नहीं करना चाहिए ?"

ठाकुर दास लबलबी पर उँगली रखे मुड़ा। "हाएँ ? क्या कहा ? यह तुम्हारा घर है। यह सुना ? भूल जाओ कि तुम वापस भी जा सकते हो...भूल जाओ...जाओ.."

नईम ने दिल में उसे गाली दी और आहिस्ता-आहिस्ता रेंगने लगा। पीठ पर से गुज़रती हुई गोलियों की हवा उसने गर्दन पर महसूस की।

झोंपड़े में से हँसने की आवाज़ आ रही थी। ऊँची...बच्चों की-सी बेसाख़्ता हँसी ! वह आहिस्ता से दरवाज़े में जाकर खड़ा हुआ। सामने बैठा हुआ सिपाही सिर पीछे फेंककर हँस रहा था। उसकी गर्दन की रगें फूल गई थीं और लम्बे पट्टे कमर पर लटक रहे थे। थोड़ी देर के लिए नईम का जी चाहा कि वह इसी तरह हँसता रहे। बार-बार हँसे।

हँसनेवाले ने उसे देखा। "लांस नाइक ! तुम अभी ज़िन्दा हो ? तुम्हारी मशीनें तो सारी ख़ामोश हो चुकीं ?" वह लापरवाही से बोला।

"इतने ख़ुश क्यों हो रहे हो ?" नईम ने तल्ख़ी से कहा और पेटियाँ उठाने को झुका।

"यह हमें अपने बैल का क़िस्सा सुना रहा था, जो लोगों की गायें अग़वा[1] करके लाया करता था।"

"फ़ुज़ूल क़िस्से बन्द करो। वे सिर पर चढ़ आए हैं।"

तीनों सिपाहियों के चेहरे मुंजमिद[2] हो गए।

"हमें पता है। पता है।" हँसनेवाले ने गोलियों का क्रेट औंधा करते हुए सख़्ती से कहा। फिर अचानक वह मुड़ा और पूरी आवाज़ से चिल्लाया: "और अब भी हम बातें नहीं कर सकते ? अब भी ? हमारे हाथ पक गए हैं। देखो...देखो। हम ऐसे ही मर जाएँगे ?"

दोनों हाथ हवा में फैलाए वह पागलों की तरह सबको देख रहा था। नईम ने नज़रें चुराकर पेटियों का वज़न एक झटके से कन्धे पर बराबर किया और बाहर अँधेरे में निकल आया।

गोलियों की ज़द में पहुँचकर वह पेट के बल हो गया। छह की छह मशीनें ख़ामोश थीं। अपने पीछे उसे एक धमाके की आवाज़ सुनाई दी। उसने रुककर देखा। एक गोला झोंपड़े पर आकर गिरा था, जिससे वह बीच में से दो टुकड़े हो गया था और धड़ाधड़ जल रहा था। साँस रोके वह इन्तिज़ार करता रहा। कोई भी बाहर निकलता दिखाई न दिया। फिर एक ज़बरदस्त धमाके से बारूद के क्रेट फटे और पाइन के जलते हुए तने दूर-दूर तक उड़ गए। उत्तर की तरफ़ से चलनेवाली हवा ने जलते हुए इनसानी गोश्त की बू सारे में फैला दी। नईम के सीने में एक भारी बदमज़ा-सी चीज़ कुलबुलाई और उसने धीरे-धीरे बेदिली से रेंगना शुरू कर दिया।

चाँद की रौशनी में चमकता हुआ ठाकुर दास का टोप उसने दूर से देख लिया। साथ ही उसकी पतली, तेज़ सीटी की आवाज़ उसके कान में आई। दुश्मन की तरफ़ से गोलियाँ आना बन्द हो गई

---

1. अपहरण, 2. जड़वत।

थीं। सिर्फ़ आर्टिलरी दोनों जानिब से मसरूफ़ थी। वह ख़न्दक़ से चन्द क़दम के फ़ासिले पर था, जब उसने जर्मनों की पूरी लाइन को दो सौ गज़ पर तेज़ी से उठते और चढ़ाई करते हुए देखा।

"पेटियाँ ले आए ?" दुश्मन से बेख़बर ठाकुर दास ने पूछा।

ख़न्दक़ से सिर्फ़ दो पल का फ़ासिला था। नईम ने बढ़ना चाहा, लेकिन जलती हुई नफ़रत और हसद[1] का जज़्बा ग़ालिब आ गया।

"नईम, तुम ज़ख़्मी हो ?"

वह ख़ामोश पड़ा रहा। ठाकुर दास उचककर बाहर निकला और उसकी तरफ़ दौड़ा। गोलियों की एक बौछार हुई। ठाकुर दास के दोनों पाँव ज़मीन से उठ गए और वह हवा में एक लम्बी छलाँग लेकर ज़मीन पर गिरा और लोटता हुआ ज़ोर से उसके साथ आ टकराया।

"आ आ आ..." मुर्दा, ग़ैर-इनसानी आवाज़ उसके दाँतों के बीच से निकली और वह बेजान होकर सीधा लेट गया। ख़ून की एक पतली-सी धार निकलकर उसकी दाढ़ी में जज़्ब होने लगी। चाँद उसके सने हुए गन्दे चेहरे पर चमक रहा था।

एक पल इन्तिज़ार किए बग़ैर मुड़ा और पेट के बल साँप की-सी तेज़ी से पीछे झपटा। जर्मनों ने ख़न्दक़ पर गोलियाँ बरसाईं, और क़ब्ज़ा कर लिया।

ज़द से बाहर आकर वह उठा और पूरी ताक़त से भागने लगा। आगे उनकी बैटरियाँ कवरिंग-फ़ायर दे रही थीं। उसने फ़र्स्ट-एड के थैले से सफ़ेद पट्टी निकाली और ज़ोर-ज़ोर से सिर के गिर्द घुमाने लगा। ऑफ़िसर ने फ़ायर रोकने का हुक्म दिया। बैटरी के एक घोड़े के सीने से ख़ून बह रहा था और चार सिपाही उसे थामे हुए खड़े थे।

"फ्रेंड्ज़ !" क़रीब पहुँचकर नईम चिल्लाया। "लांस नाइक नईम अहमद ख़ाँ नम्बर 129 बलोच। मशीनगन डिटैचमेंट, सेक्शन नम्बर..."

"लांस नाइक। बोलो।"

"मोर्चे पर दुश्मन का क़ब्ज़ा हो गया है। सब जवान ख़त्म हो गए हैं। मशीनें दुश्मनों के हाथ में हैं !"

चाँद की रौशनी में ऑफ़िसर ने काँपती उँगलियों से सफ़ेद माथे को छुआ। "एडजुटेन्ट को रिपोर्ट करो" उसने कहा।

नईम ने बैटरी पार की, तो फ़ायर फिर शुरू हो गया। उसने रुककर बैटरियों के ऊपर से मैदाने-जंग को और जले हुए झोंपड़े को देखा। धुँधली, पीली रात में बारूद का धुआँ और बर्फ़ीली हवा की धुन्ध आहिस्ता-आहिस्ता दक्खिन की तरफ़ बढ़ रही थी। वह ख़ामोशी से ब्रिगेड हैडक्वार्टर की इमारत की तरफ़ चला गया।

10

वे एक साल तक बेल्जियम और फ्रांस के इलाक़ों में लड़ते रहे। नईम बीसियों हमलों में शरीक हुआ, जिनमें वे कामयाब हुए और बीसियों, जिनमें उन्हें हार हुई। जंग में वह ख़ुशक़िस्मत रहा। सिर्फ़ एक गोली उसकी छोटी उँगली से रपटती हुई गुज़र गई। इसके अलावा और कोई सिक्का उसके जिस्म से न टकराया। अपने मोर्चों में और दुश्मन के मोर्चों में उसने हज़ारों सिपाही मरते हुए देखे। किसी को आसानी के साथ, किसी को ऐंठकर मरते हुए। किसी के चेहरे पर सफ़ेदी और मासूमियत होती। किसी पर मौत की नीलाहट और तकलीफ़। किसी की आँखें ज़िन्दा आदमी की तरह झाँकती होतीं। किसी की अन्धे शीशों की मानिन्द माथे में जड़ी होतीं। किसी की जेब में ख़ुश्क राशन और चन्द

1. ईर्ष्या।

गोलियाँ होतीं। किसी के पास बच्चों और ख़ूबसूरत लड़कियों की तस्वीरें और उनके सियाह बालों के गुच्छे बतौर निशानी के होते, और डायरियाँ। वे सब पत्थरों पर, ख़न्दक़ों में, ख़ुश्क जोहड़ों में, बर्फ़ पर, कीचड़ में मरे हुए पड़े होते। वक़्त होता, तो नईम किसी नौजवान, पुर-सुकून चेहरे के पास रुकता। जेबें टटोलकर तस्वीरें और ख़त निकालता। उन औरतों का ख़याल करता, जो गाँव के बाहर जोहड़ के किनारे खड़ी-खड़ी अपने महबूब चेहरों के लिए तरस गई हैं और नहीं जानतीं कि उनके अज़ीज़, ख़ूबसूरत होंठ सर्द कर दिए गए हैं और जिस्म, जिन्होंने बेपनाह ख़ुशी की रातें उन्हें बख़्शीं, हज़ारों मील दूर ख़ाक में बिखरे पड़े हैं और बेकार इन्तिज़ार करती हैं। उन खेतों के बारे में सोचता, जो नौजवान हाथों के बग़ैर वीरान हो गए हैं, और आगे बढ़ जाता। भूल जाता। वह अब इन बातों से बे-असर हो चला था। इसके बावजूद इस तमाम अरसे में एक ख़ौफ़नाक बोझ उसके दिल पर सवार रहा। यह ठाकुर दास का ख़याल था। जुर्म का दर्दनाक एहसास। गो बाद में आकर वह बहुत कुछ सँभल गया, लेकिन कभी-कभी पूरे चाँद की रात में, ख़न्दक़ में बैठे हुए, किसी हमले के दौरान, ठाकुर दास का भूत उसके क़रीब आकर खड़ा होता। "अपनी ख़न्दक़ में किसी को मत मारो। मैदाने-जंग के कुछ उसूल होते हैं।" वह इस ख़याल से ही ख़ौफ़ज़दा हो जाता। बड़ी मुश्किल से वह हथौड़ों की तरह पड़ते हुए अल्फ़ाज़ को ज़ेहन में से निकाल फेंकने में कामयाब होता। उसके बाद कई रोज़ तक उसके दिमाग़ में उल्लू बोलते रहते।

साल के वस्त में रेजिमेंट को पूरबी अफ़्रीक़ा जाने का हुक्म मिला और माह जुलाई के एक ख़ुशगवार दिन वह वापस मारसेल्ज़ पहुँचे। अगले रोज़ उनको जहाज़ पकड़ना था।

मारसेल्ज़ पर वह दिन उसी तरह ख़ुशगवार और चमकदार गुज़रा था। नईम सड़क के किनारे-किनारे चला जा रहा था। लोगों के चेहरे तरोताज़ा और ख़ुश थे। औरतें बड़े घेरदार ख़ुशरंग लिबास और बच्चे सफ़ेद नेकरें पहने पटरियों पर आ-जा रहे थे। सूरज भी नहीं डूबा था, मगर होटलों पर भीड़ लग चुकी थी और उनके रंग-बिरंग शीशोंवाले दरवाज़ों पर रौशनियाँ जल रही थीं। मर्द बड़े-बड़े हैट, खुली क़मीज़ें, और तंग पतलूनें पहने खड़े बातें कर रहे थे, और क़हक़हे लगा रहे थे। पीछे से एक दो घोड़ोंवाली बग्घी सड़क पर बगटुट भागती हुई आई। औरतों ने ठिठककर अपने बच्चों को मज़बूती से पकड़ लिया और मर्द रास्ता छोड़कर अलग हो गए। बग्घी सब्ज़ी के टोकरों से लदी थी और उन पर एक बूढ़ा किसान छाज-सा हैट पहने बैठा था। उसके नौजवान लड़के के हाथ में बागें थीं। घोड़े तन्दुरुस्त और मुँहज़ोर थे और उनके नालों[1] से चिंगारियाँ निकल रही थीं। चन्द क़दम पर जाकर ढलवान सड़क पर एक घोड़े के पाँव फिसले और वह चारों टाँगें फैलाकर पेट के बल कई गज़ तक फिसलता चला गया। राहगीर ठिठककर रुक गए। चन्द औरतों की हलकी-हलकी चीख़ों की आवाज़ बुलन्द हुई। किसान का लड़का नीचे उतरकर घोड़े को उठाने की कोशिश करने लगा। चन्द राहगीर किसान रुककर उसको मदद करने लगे। बूढ़ा किसान सड़क पर बिखरे हुए चुक़न्दर चुन-चुनकर टोकरे में डाल रहा था। घोड़े के नथने फूले हुए थे और उसकी गर्म और गीली साँस धौंकनी की तरह चल रही थी।

अचानक भीड़ में नईम को एक भारी, मानूस जिस्म दिखाई दिया। वह जल्दी से आगे बढ़ा। वह जिस्म एक सिख सिपाही का था, जो कन्धे ढलकाए, झूलता हुआ पटरी पर चला जा रहा था। उसकी वर्दी मैली थी, सिलवटें पड़ी हुई थीं और सिपाही के बजाय वह जेल से भागा हुआ क़ैदी मालूम होता था। चन्द क़दम उसके पीछे-पीछे चलने के बाद नईम ने आगे बढ़कर उसके कन्धे पर हाथ रखा। सिख सिपाही ने पलटकर देखा। चन्द सेकेंड तक वह अपनी सोई-सोई, सुन्न आँखों से नईम को तकता रहा। फिर किसान फ़ौजियों के मख़सूस अन्दाज़ में बोला : "नईम, तुम अभी ज़िन्दा हो ?"

1. रगड़ से बचाने के लिए घोड़े की टाप के नीचे लगाया जानेवाला लोहे का टुकड़ा।

"महिन्दर सिंह..." नईम ने सिर्फ़ इतना कहा। वह देर तक हाथ मिलाते और आँखों ही आँखों में मुस्कराते रहे।

"रेजिमेंट से भाग आए हो ? उसके साथ-साथ चलते हुए नईम ने तमस्ख़र से पूछा।

"नहीं !"

"तुमने कितने अरसे से दाढ़ी साफ़ नहीं की ?"

"हम महाज़ से लौट रहे हैं !"

"रेजिमेंट ?"

"नम्बर 9 हैड सन हार्स, अम्बाला ब्रिगेड।"

"मैं नम्बर 129 बलोच में हूँ। फ़ीरोज़पुर ब्रिगेड। तुम किस महाज़ पर थे ?"

"उधर।" महिन्दर सिंह ने बाज़ू से उत्तर और पच्छिम में ग़ैर-वाज़ेह[1]-सा इशारा किया।

"किससे ?"

"पहले तुर्कों से। फिर जर्मनों से !"

वे सड़क के किनारे चलते रहे। पटरी पर चलते हुए बच्चे अजीबोग़रीब सिख सिपाही को देखने के लिए रुक जाते।

"खाना खाओगे ?" नईम ने पूछा।

"कहाँ ?"

"होटल में !"

महिन्दर सिंह ने एक नज़र अपने आप पर डाली और दाढ़ी खुजाकर हँसा। नईम ने आँखें सिकोड़कर उसके सारे चेहरे का जायज़ा लिया। यह खोखली और बेजान हँसी थी। वह जिससे नईम इस क़दर वाक़िफ़, इस क़दर मानूस[2] था, उससे इतनी मुख़्तलिफ़[3] थी।

"मैं रेजिमेंट को जा रहा हूँ।" महिन्दर सिंह ने कहा। "चलो, वहाँ बैठेंगे। पास ही एक बड़ी अच्छी जगह है।" वे ख़ामोशी से चलते हुए बाहर निकल आए। सूरज डूब रहा था और सुर्ख़ी-माइल ज़र्द, कमज़ोर धूप ऊँचे-नीचे टीलों और दरख़्तों और छोटे-छोटे कंकरों पर से खिंचती हुई पच्छिम में सिमटती जा रही थी।

"तुम बहुत बदल गए हो।" नईम ने बूट की ठोकर से चन्द कंकर उड़ाते हुए आँखों के कोनों में से महिन्दर सिंह को देखा। उसने सड़क पर गिरे हुए घोड़े की तरह फुँकार के साथ साँस छोड़ा। "मैं ? ओह...नहीं...इतनी देर के बाद महाज़ से लौटा हूँ। थक गया हूँ। आज नहाऊँगा, तो सब ठीक हो जाएगा।" वह दोबारा खोखली आवाज़ में हँसा।

"मेरा ख़याल था, जंग तुम्हें कुछ न कहेगी।" नईम ने कहा। वह ख़ामोश रहा।

शाम के बढ़ते हुए अँधेरे में वे एक क़ब्रिस्तान की चारदीवारी में दाख़िल हुए। चारों तरफ़ सीमेंट और ईंटों की क़ब्रें थीं और ऊँचे-ऊँचे कत्बे, जिन पर फ़्रांसीसी ज़बान में यादगारें लिखी हुई थीं। सुर्ख़ ईंटों की दो तंग पटरियाँ क़ब्रिस्तान के दरमियान में एक दूसरी को काटती थीं। दोनों तरफ़ ख़ूबानी के दरख़्त थे, जो सफ़ेद फूलों से ढँके हुए थे। सुर्ख़ रास्तों पर अभी-अभी कोई झाड़ू देकर गया था।

"पिछले महीने रमज़ान रौशनपुर से भर्ती होकर आया था।" महिन्दर सिंह सिर झुकाकर चलते हुए बोला।

"क्या सुनाता था ?"

"ऐं ? कुछ नहीं।"

"रौशनपुर की कोई बात ?"

---

1. अस्पष्ट 2. परिचित, 3. भिन्न।

"इस साल सैलाब आया था। दरिया ने बड़ी तबाही की। सावनी ज़्यादातर तबाह हो गई।" उसने चलते-चलते एक सफ़ेद फूल तोड़कर सूँघा। "फिर जानवरों में महामारी फैल गई। 'मोखर' से बहुत जानवर मरे, लेकिन मेरी जोड़ी जोगिन्दर सिंह ने पहले ही बेच दी थी। घोड़ी और भैंस महामारी में मर गईं। नियाज़ बेग ख़ुशक़िस्मत रहा। उसने सारे जानवर बीमारी से पहले बेच दिए थे। उसकी फ़सल भी बच गई !"

"रमज़ान का कोठा बारिशों में गिर गया और अनाज सारा बह गया, तो वह फ़ौज में भर्ती हो गया। करम सिंह बम्बई चला गया था। सुना है, मिल में काम करता है। फ़क़ीर दीन की बहू भाग गई है। उसका लड़का हमारे साथ महाज़ पर था। तीसरे महीने में मारा गया। वह और क्या करती।"

वह देर तक अँधेरे रास्तों पर चलते और बातें करते रहे। गाँव की बातें करने से महिन्दर सिंह की आँखों में नामालूम-सी चमक आ गई थी और वह अपने पुराने, फुर्तीले अन्दाज़ में सँभलकर चल रहा था।

"हमारे बाद पुलिस बस दो-एक बार गाँव में आई। पहले छह माह में बहुत-सी लड़कियाँ जाटनगर के लौंडों के साथ भाग गईं। चकबन्दी भी हुई। हमारा जौ का खेत तुम्हारे जोहड़ के खेत के बदले में हो गया है। अच्छा हो गया है न ? एक जगह पर बियाई करने से बड़ा बचाव रहता है, वरना एक से दूसरे खेत का फ़ासिला आधे मील का हो, तो जानवर रास्ते में ही रह जाता है। चकबन्दी में सबका फ़ायदा होता है। हमारा जौ का खेत बुरा नहीं है। तुम्हारे खेत से अच्छा ही होगा। फ़िक्र न करो। सबका फ़ायदा होता है।"

गाँव की बातें ख़त्म हो गईं तो वे ख़ामोश हो गए। क़ब्रिस्तान में अँधेरा थी और सुकून। वे दोनों चुपचाप, हाथ पीछे बाँधे, सिर झुकाए सीधे अँधेरे रास्तों पर आते और जाते रहे। कभी-कभी चन्द ख़ुश्क पत्ते और फल हवा के ज़ोर से टूटकर ईंटों पर आ गिरते और उनके पाँव तले चरमराकर टूट जाते। कभी वे वापस आते हुए पक्का रास्ता छोड़कर दरख़्तों के नीचे-नीचे चलने लगते और वह पुर-असरार[1] आवाज़ बढ़ जाती। सियाह तनों के सामने से गुज़रते हुए ख़ूबानी की झुकी हुई शाख़ें, उनके चेहरों से टकरातीं और सफ़ेद, हलके फूल आधी रात की बर्फ़ की तरह अँधेरे में धीरे से उनके बालों और आँखों पर गिरते। अँधेरे, सायादार रास्तों पर क़ब्रों के दरमियान चुपचाप चलते हुए वे पुराने ज़माने के दो भूत मालूम हो रहे थे, जिन्होंने रात के मुक़र्ररा[2] वक़्त पर अपनी-अपनी क़ब्रों से निकलकर ख़ामोशी से एक दूसरे को ख़ुश-आमदेद कहा था और अब अपने दोस्त दरख़्तों, ख़ुश्क पत्तों, कत्बों और सफ़ेद फूलों के दरमियान टहल रहे थे और अपने दिलों में दोस्ती का वह जज़्बा महसूस कर रहे थे, जो सालहा-साल साथ रहने के बाद ख़ुद-ब-ख़ुद पैदा हो जाता है। नईम ने रात के इस समय के, क़ब्रिस्तान के, सफ़ेद फूलों के और अपने वुजूद[3] के उस असरार[4] को बेहद साफ़ और शदीद तौर पर महसूस किया। उसे लगा कि अभी कुछ देर में, मुक़र्ररा वक़्त पर वह और उसका रफ़ीक भूत ख़ामोशी से एक दूसरे को अलविदा कहेंगे और अपनी-अपनी क़ब्रों को लौट जाएँगे।

"तुम ज़ख़्मी हुए थे ?" उसने पूछा।

"नहीं !"

"नहीं ?" अचानक रुककर नईम ने रात की मद्धिम रौशनी में उसके भारी ढलके हुए जिस्म और अन्धे शीशे की-सी मरी हुई आँखों को देखा। "फिर क्या है ? तुम बीमार हो ? एं ?"

महिन्दर सिंह ने बेज़ारी से उसे देखा और कन्धे उचकाकर बोला : "मैं ठीक हूँ।"

"तुम ठीक नहीं हो। मुझे तकलीफ़ पहुँची है तुम्हें देखकर।"

1. रहस्यमय, 2. निश्चित, 3. अस्तित्व, 4. रहस्य।

वह बूढ़े, ताक़तवर बैल की तरह नईम के साथ-साथ चलता रहा।

"देखो, महिन्दर सिंह।" नईम एक तने पर हाथ रखकर उसके सामने खड़ा हो गया। "तुम मेरे दोस्त हो। मैं तुम्हारी बात सुनूँगा। मुझे बताओ, तुम्हारे दिल पर क्या है ? बताओ, तुम मुझे एक मुर्दा आदमी की तरह दिखाई दे रहे हो !"

महिन्दर सिंह ने बेताबी से इधर-उधर देखा। कुछ कहना चाहा, लेकिन रुक गया। फिर बोलना चाहा और रुक गया। वह उस घोड़े की तरह था, जो छठी हिस[1] की मदद से चन्द क़दम पर छुपे हुए ख़तरे को पहचानकर सवार के बार-बार चिल्लाने के बावजूद अपनी जगह रुका रहता है। उसने एक बार फिर बेचैनी से सारे जिस्म को जुम्बिश दी और ख़फ़गी से बोला : "क्या पूछते हो ? मुझे कुछ पता नहीं। महाज़ पर बहुत-से ख़ून देखे हैं। सिर्फ़ थक गया हूँ। बहुत ज़्यादा !"

वह भारी फ़ौजी क़दमों से जाकर एक बड़ी-सी क़ब्र पर बैठ गया। उसकी राइफ़ल की धात पत्थर के साथ टकराने से क़ब्रिस्तान की ख़ामोश फ़िज़ा में एक ना-ख़ुशगवार आवाज़ पैदा हुई।

"तुमने बहुत ख़ून किए हैं ?" नईम ने पूछा।

"क्यों ? तुमने नहीं किए ?"

"मैंने ?" उसे इस सवाल की उम्मीद न थी। एक तीसरा भूत दूर क़ब्रिस्तान के तारीक कोने में से उभरा और उनकी तरफ़ बढ़ने लगा। बड़ी कोशिश से नईम ने उस पर से नज़रें हटाईं और महिन्दर सिंह के काले, डरावने जिस्म को देखने लगा। वह कमर झुकाए, क़ब्र पर टाँगें लटकाए बैठा था।

"लेकिन मैंने कभी न सोचा था कि तुम इतने बदल जाओगे ?" नईम ने कहा।

"क्यों ? तुमने ख़ून महसूस नहीं किया ? अपने अन्दर, यहाँ।" उसने पेट पर हाथ रखा। "क्या तुम आसानी से..."

"लेकिन, महिन्दर, तुम इतनी आसानी से क़त्ल कर सकते थे। याद है जब हम...?"

"वह और बात थी। एक चूहा भी अपने भाई का और अपने ख़ानदान का बदला ले सकता है। यहाँ पर बिलकुल दूसरी बात है।" वह अँधेरे में नईम की तरफ़ झुका। "क़त्ल...ख़ून का बदला ख़ून। उसके लिए हमारा ख़ून जोश मारता है। हम तैयारी करते हैं। मगर यहाँ ?...जैसे सुअर को या नील गाय को मार दिया। बस मार दिया। लेकिन उसकी एक हद होती है। आख़िर हम तंग आ जाते हैं, थक जाते हैं।" उसकी भारी, बुख़ारज़दा आवाज़ से नईम को अन्दाज़ा हुआ कि वह वाक़ई बहुत ज़्यादा थक चुका था। उसने एक सिगरेट निकालकर सुलगाया।

"तुम्हें पता है, हम क्यों लड़ रहे हैं ?" अचानक महिन्दर ने पूछा।

"जर्मनों ने हमला किया है !"

"कहाँ ? रौशनपुर पर ?"

"यहाँ !"

"पर हम यहाँ क्यों हैं ? 'हम' किसलिए आए ?"

"जर्मन अंग्रेज़ों के दुश्मन हैं, और अंग्रेज़ हमारे मालिक हैं। बस !"

"हमारे मालिक रौशन आग़ा हैं। मैं इतना जानता हूँ !"

"अंग्रेज़ रौशन आग़ा के मालिक हैं। इसलिए।"

"कुल कितने मालिक हैं...एक दफ़ा बताओ।" वह एकदम चिढ़कर बोला। नईम के गले में कोई चीज़ आकर अटक गई। उसने सिगरेट का कश लिया और फ़ौरन उगल दिया। सिगरेट उसकी उँगलियों में रौशनी की मद्धिम-सी किरन छोड़ता हुआ जलता रहा। रात का अँधेरा उन्हें चारों तरफ़ से ढाँपे हुए था और बीच में ख़ूबानी के फूलों की सफ़ेदी दबी-दबी जगमगा रही थी, जैसे अँधेरी

1. ज्ञानेन्द्रिय।

रात में बर्फ़ गिरी होती है।

"हम या तो मर जाएँगे या वापस चले जाएँगे। यहाँ पर कोई न रहेगा। हम अपनी फ़सलें खेतों में छोड़कर इसीलिए आए थे कि सैकड़ों आदमियों की जान लें और गन्दगी में लौटें ? मेंढ़क जो जाड़े आने पर कीचड़ में घुसकर सो जाता है ? मुझे अपने आपसे बू आ रही है। जुओं ने मेरे सिर में सूराख़ कर दिए हैं।" वह कत्बे से टेक लगाकर बैठ गया। "यक़ीन करो नईम ! मैं तंग आ चुका हूँ। एक गाँव हमने फ़तह किया। वहाँ एक औरत मेरे हाथ लगी। चार घंटे तक वह मेरे पास रही, लेकिन डर की वजह से मैंने उसे हाथ तक न लगाया। इतनी देर से मैंने दूध नहीं पिया। सवारी नहीं की। नहाया भी नहीं। मैं ख़त्म हो चुका हूँ।"

वह मरते हुए आदमी की आवाज़ में, भारी टूटी हुई कराह के साथ बोल रहा था। नईम का गला अभी तक साफ़ नहीं हुआ था। तारीक सन्नाटे में उसे बहुत क़रीब से महिन्दर सिंह के भारी-भारी साँसों की आवाज़ सुनाई दे रही थी, जैसे पाइन के जंगलों में हवा चलती है या जैसे कान के क़रीब से गोलियाँ गुज़रती हैं।

"पता है, मैं यहाँ क्यों आता हूँ। यह जगह मुझे पसन्द है। यहाँ शरीफ़ और ईमानदार लोग दफ़न हैं। यह मैंने महसूस किया है। इनके कत्बे, इनके नाम, इनकी तारीख़ें...ये चूहों की तरह बेईमानी की मौत नहीं मरे। वह मौत मैंने देखी है। अपना-अपना मुक़द्दर है !"

देर तक ख़ामोश रहने के बाद वह उठ खड़ा हुआ। "लेकिन एक बात अच्छी है। इन वक़्तों में हम एक दूसरे से मिलकर बहुत ख़ुश होते हैं। कौन कब मर जाए, क्या पता ! ख़ुदा हाफ़िज़ !"

कुछ देर तक वह नईम के कन्धे पर हाथ रखे उसे देखता रहा। फिर उसने कन्धे पर राइफ़ल को ठीक किया और भारी, सियाह जानवर की तरह झूलकर चलता हुआ अँधेरे में ग़ायब हो गया।

11

सिर ऊपर निकलती हुई सुर्ख़ घास में बेंत लगी राइफ़ल की मदद से रास्ता बनाते हुए आख़िरकार वे पानी के किनारे पर आ निकले। यह एक छोटी-सी झील थी, जो जंगल को दो हिस्सों में जुदा करती थी। इससे परे फिर जंगल का सिलसिला शुरू हो जाता था।

सियाह और सुनहरे जंगल के ऊपर सूरज डूब रहा था और सुर्ख़ धूप ने पानी में आग लगा रखी थी। झील की सतह पर तीन मुर्ग़ाबियाँ तैर रही थीं। घास में से सिपाहियों की क़तार को निकलते देखकर वे फड़फड़ाकर उड़ीं। उनके परों से पानी के क़तरे चाँदी के दानों की तरह सतहे-आब[1] पर बरसे और डूब गए। सिपाहियों के सिरों पर एक चक्कर लगाने के बाद ख़ूबसूरत, मख़मली परिन्दों ने पच्छिमी आसमानों की तरफ़ रुख़ कर लिया। "हाह ! ओह !" लांस नाइक सज्जन ने गहरा, थका हुआ साँस छोड़ा और टोपी उतारकर चेहरा पोंछने लगा। उसके माथे और गालों पर बेशुमार नन्ही-नन्ही खरोंचे आ गई थीं और उन पर ख़ून के बारीक सियाही-माइल क़तरे जमे हुए थे। उसने ऊँची आवाज़ में गाली दी।

"नश्तर[2] की तरह तेज़...है।"

नईम आँखें सिकोड़कर सामनेवाले जंगल को देख रहा था। अचानक बेहद ख़ौफ़ज़दा होकर उसने अपने पाँव पर नज़र डाली, जो आहिस्ता-आहिस्ता दलदल में उतर रहे थे। दो-तीन छोटे-छोटे झटकों के साथ उसने अपने आपको बाहर निकाला। पूरी क़ुव्वत से चिल्लाया : "रिट्रीट !"

जवान कूदे। गिरे। बिखरे। फ़ौरन ही तरतीब में होकर घास में ग़ायब हो गए।

"घास के क़ानून का ख़याल रखो।" नईम ऊँची करख़्त आवाज़ में चिल्लाया। चेहरे को बचाने

1. जलतल; 2. शल्य।

के लिए उसने टोपी आँखों पर खींच रखी थी।

"अजीब मुल्क है !" सज्जन ने फिर गाली दी और सख़्त बेज़ारी से लम्बी, तेज़-धार घास को देखा, जो बिला-दर्द उसके चेहरे को काट रही थी। "यह मैंने पहली बार देखी है। इसे क्या कहते हैं ?"

"दलदल !" नईम ने बताया।

"सिपाहियों की क़तार राइफ़लें सँभाले फूँक-फूँककर क़दम रखती हुई बढ़ रही थी। घास ने चारों तरफ़ अँधेरा कर रखा था। और ज़मीन में से गीले पत्तों की सड़ांध उठ रही थी। सज्जन ने उँगली से भौं पर लटकता हुआ ख़ून का क़तरा पोंछा और आँखों के क़रीब लाकर देखा :

"मेरा ख़ून सियाह हो गया है !"

"नहीं ?"

"यह देखो !"

"क्या देखूँ ?" नईम आगे-आगे चलता हुआ बोला : "रात में सब चीज़ सियाह हो जाती है।"

"नहीं ! मैंने दिन में भी देखा है। पारसाल फ्रांस में मैं ज़ख़्मी हुआ था, तो सुर्ख़ ख़ून निकला था। अब काला हो गया है।"

नईम ज़ेरे-लब हँसा।

"पता है। यह मच्छरों का ख़ून है !"

"फ़ुज़ूल बातें मत करो।" नईम ने ख़ुश्क लहजे में कहा।

"कल मैंने एक मच्छर मारा था। उसका इसी तरह का काला ख़ून था। फिर मुझे पता चला, यह मच्छरों का ख़ून है, जो दिन-रात काटते रहते हैं।" वह हँसा, खोखली, ज़बरदस्ती की हँसी, जो ज़्यादा देर तक मैदाने-जंग में रहने से अक्सर मर्द हँसने के आदी हो जाते हैं।

दाहिनी तरफ़ से घास में सरसराहट पैदा हुई और ज़र्द और काली धारियोंवाला लम्बा जिस्म उनके सामने से निकल भागा। इससे पहले कि कोई फ़ायर होता, दरिन्दे ने बिजली की-सी तेज़ी से छलाँग मारी और एक जवान को दबोच लिया। उसकी कमर पर कन्धों के दरमियान दाँत गाड़े। वह कई तवील, कर्बनाक लम्हों[1] तक उसे नोचता रहा। कई सिपाहियों ने एक साथ निशाना बाँधा, लेकिन गोली चलाए बग़ैर दुविधा में खड़े रहे। उनका साथी ही ख़तरनाक हद तक गोली की ज़द में था। शेर के नीचे वह कमज़ोरी से झुरझुराया और ज़ख़्मी भेड़िए की तरह चीख़ा : "फ़ायर !" आख़िरकार नईम चीख़ा : "फ़ायर !"

चन्द गोलियाँ चलीं और दरिन्दे ने अपने शिकार के ऊपर ही दम तोड़ दिया।

शाम पड़ चुकी थी, जब थके-माँदे, बेज़ार, गन्दे सिपाहियों की क़तारें जंगल में से बरामद हुईं। यह एक छोटा-सा रेगिस्तान था, जो जंगल को दो हिस्सों में जुदा करता हुआ मीलों तक चला गया था। यहाँ उनका कैम्प लगा था। जर्मनों के मोर्चे पच्छिमी जंगल के पास किसी अनजानी जगह पर थे। पूरबी अफ़्रीक़ा में क़वाइद (Exercises) करते हुए उन्हें दो माह हो चले थे। यह मश्क़ें उन्हें ख़ासतौर पर "अफ़्रीक़ी जंग" से वाक़िफ़ कराने के लिए की जा रही थीं। अफ़्रीका की ख़ास "घास की जंग"। घास जो नीली और सुर्ख़ और ज़र्द और हरे रंग की थी, और तेज़-धार जिसमें से गुज़रना मुश्किल था। घास की जंग का उसूल, "पहले गोली मारो। बाद में मुआफ़ी माँगो !" सिपाहियों को याद कराया जा रहा था। आबो-हवा[2] शदीद गर्म और मर्तूब[3] थी और अंग्रेज़ और फ़्रांसीसी बटालियनों की हालत जिल्दी[4] बीमारियों की वजह से बहुत ख़राब थी। रात को बेशुमार, बड़े-बड़े और ज़हरीले मच्छर निकल आते, जो किसी सिपाही को एक वक़्त में पाँच मिनट से ज़्यादा सोने

---

1. लम्बे यातनाजनक पलों, 2. जलवायु, 3. आर्द्र, 4. त्वचा-रोग।

न देते। जवान वाज़ेह तौर पर कमज़ोर हो रहे थे। हमले के ग़ैर-मुअय्यन मुद्दत[1] के लिए मुल्तवी[2] हो जाने से उनके आसाब[3] मुस्तक़िल कशीदगी[4] की हालत में थे। हर क़िस्म की बीमारियाँ सिपाहियों और जानवरों में फैल रही थीं और उनका ''मॉरल'' तबाह हो चुका था। इत्तिहादियों[5] को बड़ी मदद उन अफ़्रीक़ी यूनिटों से मिली, जो बज़ाहिर मौसम और मच्छरों से बे-असर, और घास की जंग के माहिर थे। उनके साथ उसी जंगल में हब्शी पलटनों के अलावा नम्बर 29, नम्बर 25 रायल फ़्यूज़लर्ज़ और एक बटालियन कैम्प कोर (Corps) की थी।

रात आधी से ज़्यादा गुज़र चुकी थी। जब भी यूनिट का कोई सिपाही बीमार होकर, साँप के काटे से या दरिन्दों के हाथों मरता, तो वे देर तक जागते रहते।

''जाग रहे हो ?'' नईम ने अँधेरे में करवट बदलकर पूछा।

''मच्छरों की मदद से।'' सज्जन ने मख़सूस, खोखले मज़ाहिया[6] लहजे में कहा।

''तुमने क़मीज़ सी ली है ?''

''हाँ, अब ठोड़ी सीने की फ़िक्र में हूँ !''

''किस क़दर बदबूदार है।'' नईम ने दिल में मच्छर के तेल को कोसा। वह अँधेरे में चुपचाप आँखें खोले लेटे थे। मच्छर हज़ारों की तादाद में उनके कानों पर चक्कर लगा रहे थे। सज्जन ने पीठ पर उस गाँठ को महसूस किया, जो क़मीज़ सीने से बन गई थी।

''हवालदार !'' वह हौले से पुकारा।

''हूँ।''

''यह फ़ुज़ूल मौत न थी ?''

कुछ देर तक ख़ामोशी रही। फिर नईम ने कहा : ''आम मौतों की तरह थी।''

''तो सब मौतें फ़ुज़ूल होती हैं ?''

''नहीं अररर...शायद...लेकिन मौतें फ़ुज़ूल नहीं होतीं। मौत से आदमी मर जाता है !''

काफ़ी देर के बाद सज्जन ने भारी, दुखी आवाज़ में सिर्फ़ इतना कहा : ''हाँ !''

फिर उसने सिगरेट सुलगाया और देर तक जलती हुई तीली को हाथ में पकड़े बड़े-बड़े मच्छरों को जलकर गिरते हुए देखता रहा। 'यह हवा की तरह हैं, जो कोने-कोने में भरी है।'' उसने सोचा।

''लेकिन इसका यह मतलब नहीं,'' नईम ने कहा, ''कि हम इसका मातम करने बैठ जाएँ !''

''नहीं !'' सज्जन ने बेचैनी से करवट बदली। ''पता नहीं, नईम ! मुझे लगता है कि, यूँ मैं बुज़दिल नहीं हूँ, मगर इस तरह जब कोई मरता है, तो मेरा दिल रोने को चाहता है !''

''ये क़ुदरत की बरतर ताक़तें हैं। फिर भी मैं महसूस करता हूँ कि जाने क्यों ?'' वह बेचैनी से अपनी जगह पर हिला।

''सज्जन !'' नईम उसकी तरफ़ झुका, ''तुमने कितने आदमी मारे हैं ?''

''नहीं !'' उसने बाज़ू हवा में हिलाया और ऊँची, बेचैन आवाज़ में बोला, ''उसका कोई सवाल नहीं !''

गश्तवाले सिपाही ने सिर ख़ेमे के अन्दर दाख़िल करके कहा : ''आराम करो। आराम करो।'' और आगे बढ़ गया।

''हवालदार !'' सज्जन उठकर बैठ गया। ''इसका यह मतलब नहीं कि मैं जानवर हूँ। मैंने साठ आदमी मारे हैं, मगर यह सब जंग में गुज़रा है। जंग में सब मारते हैं। अपने बचाव के लिए। इसका यह मतलब नहीं कि मैं महसूस नहीं करता। कोई कम, कोई ज़्यादा ! मैंने हर मौत महसूस की है।'' उसकी आवाज़ टूट गई और वह बैठे हुए, ख़ुश्क गले से बोलने लगा।

1. अनिश्चित समय, 2. स्थगित, 3. स्नायु-समूह, 4. तनाव, 5. मित्र-राष्ट्रों, 6. हास्य।

"हर आदमी, जिसे मैंने मारा, मैंने महसूस किया। उसका ख़ून मैंने अपने हलक़ में...लेकिन यह मौत..."

नईम को महसूस हुआ कि उसका गला बन्द हो गया है। वह घबराकर तेज़-तेज़ बोलने लगा : "हम शायद जल्द ही हमला करें। दुश्मन का कैम्प पच्छिम में है, जहाँ दो दफ़ा हवाई जहाज़ नज़र आया था। उस जगह उनकी ताक़त सोलह हज़ार है। इंटेलीजेंस यही बताती है। दो हज़ार गोरे और चौदह हज़ार अफ़्रीक़ी ! दो-दो सौ जवानों की कम्पनी है। साठ बड़ी तोपें और अस्सी मशीनगनें हैं। ये मच्छर..." उसने दिल में गाली दी।

"हवालदार, जर्मनों के मोर्चों में भी मच्छर होंगे !"

"हाँ !"

बाहर रात जंगल पर और उनके ख़ेमों पर बहुत नीचे झुक आई थी और मद्धिम-सी चाँदनी में रेत के ज़र्रे हलके-हलके चमक रहे थे। उत्तर के रुख़ की हवा सारे में चल रही थी। नईम और सज्जन और दूसरे ख़ेमों में दूसरे सिपाही देर तक आँखें खोले, आँखें बन्द किए अपने-अपने सीनों में मौत के ख़ला[1] को महसूस करते रहे।

इन्हीं मश्क़ों के दौरान एक रोज़ उन्हें असल दुश्मन का सामना करना पड़ गया। तेज़ धूप में वे लोमड़ियों की तरह होशियारी से, हथियार थामे चल रहे थे कि चन्द क़दम के फ़ासिले पर घास में सरसराहट पैदा हुई। कम्पनी पाँव पर ही रुक गई। एक, दो, तीन, चार...ख़ामोशी..."ब्लैक बर्ड" कम्पनी कमांडर ने, "कोर्ड-वर्ड" दुहराया। जवाब में गोलियों की बौछार हुई। कम्पनी सिर के बल ज़मीन पर आ रही। दोनों तरफ़ से फ़ायर जारी हो गया। पतली घास कट-कटकर हर तरफ़ उड़ने लगी और गोलियाँ उनके ऊपर से गिरकर जड़ों में से मिट्टी उड़ाती हुई ज़मीन में धँसने लगीं। फ़ायरों की ख़ुश्क, पटाख़ेदार आवाज़ें जंगल के सन्नाटे में हर तरफ़ फैल गईं और जानवरों ने शोर मचाकर भागना शुरू कर दिया।

चन्द मिनट के बाद सामने से गोली चलनी बन्द हो गई, और वर्दियोंवाले सिपाहियों की एक क़तार घास में से निकलकर उन पर टूट पड़ी। अब दस्त-ब-दस्त लड़ाई शुरू हुई। नईम ने लेटे-लेटे सामने से आते हुए एक सिपाही के दिल में निशाना बाँधकर गोली चला दी। जर्मन, जो सुर्ख़ चेहरेवाला मोटा-ताज़ा जवान आदमी था, टाँगें समेटकर, घुटने ठोड़ी से लगाकर, गेंद की तरह हवा में उछला और घनी उगी हुई घास में जा पड़ा। दाएँ तरफ़ सज्जन ने दुश्मन के दो सिपाहियों को संगीन भोंकी। जब नईम ने उसे देखा। वह एक के सीने में से संगीन निकालने की कोशिश कर रहा था और मरता हुआ सिपाही संगीन को मज़बूती से थामे उस पर झुका हुआ था। दो-एक बार झटके देने पर भी जब संगीन न निकली, तो उसने घोड़ा चढ़ाकर लबलबी दबा दी। उसके झटके से मुर्दा सिपाही नीचे गिर पड़ा और ख़ून से चमचमाती हुई सुर्ख़ संगीन हवा में खड़ी रह गई। सज्जन के चेहरे पर जंगली जानवरों की-सी वहशत थी। वह भागता हुआ जाकर एक दुश्मन पर पीछे से टूट पड़ा।

एक अधेड़ उम्र का किसानों के-से चेहरेवाला जर्मन भागता हुआ नईम के सामने से गुज़रा। उसकी संगीन का रुख़ कम्पनी कमांडर के पेट की तरफ़ था, जो पिस्तौल हाथ में लिए दूसरी तरफ़ देख रहा था। मशीन की तरह नईम बढ़ा और संगीन उसकी पसली में गाड़ दी। जर्मन किसान के मैले ज़र्द दाँतों के बीच से एक दर्द से भरी हुई आवाज़ निकली और वह संगीन पर झुक गया। एक पल के बाद उसने चेहरा उठाकर अपने हमलावर की तरफ़ देखा। उसकी आँखों में आँसू थे। अचानक नईम की आँखों के नीचे अँधेरा छाने लगा। उसने दरख़्त के तने पर हाथ रखकर अपने

1. शून्य, रिक्तता।

आपको सँभाला। जब अँधेरा दूर हुआ, तो वह राइफ़ल उठाने के लिए झुका। उस वक़्त बेतहाशा ख़ौफ़ज़दा होकर उसने देखा कि बायाँ बाज़ू सिर्फ़ दो पतली-पतली नसों के सहारे लटक रहा था। बेहोश होने से पहले उसने साफ़तौर पर लड़नेवालों को अपने इर्द-गिर्द दौड़ते हुए, गिरते हुए, तेज़-तेज़ गहरे-गहरे साँस लेते हुए सुना।

चक्कर, चक्कर ! चेहरे, चेहरे, चेहरे। सितारें। हज़ारों लाखों सितारे। कभी दूर पच्छिम में एक इकलौता सब्ज़ सितारा जगमगाता। चक्कर...जैसे हवा के तूफ़ान में एक चक्करदार सीढ़ी। चढ़ाई, उड़ान, दोनों बाजुओं की जगह दो पर। ऊपर-ऊपर, बहुत ऊँची उड़ान। फिर ख़ूबसूरत जंगल आए, जिनके रास्तों पर ज़र्द पत्ते गिर रहे थे, और दोनों पर फैलाए कोई दरख़्तों के नीचे-नीचे उड़ता हुआ चेहरा। चाँद की रौशनी में सुता हुआ, गन्दा चेहरा। आगे समन्दर आए...और शिकस्ता[1] साहिल[2], जिन पर सफ़ेद बादबानी कश्तियाँ सुकून से खड़ी थीं।...फिर वादी...बहुत तवील वादी...और साये, जिन पर आहिस्ता-आहिस्ता बारिश हो रही थी। चेहरा, मोटे होंठ और भूरी आँखें। गहरे साये और ख़ामोशी...नर्म बारिश...फिर होंठ एकदम फैल गए और सिर पीछे फेंककर कोई हँसा। और चक्कर...चाँद पर बर्फ़ गिरने लगी। एक जहाज़ तेज़ी से उड़ता हुआ पास से गुज़रा और चाँद पर चला गया। सितारे लम्बी-लम्बी रौशन लकीरें बनाते हुए आसमान पर लटकने लगे। बर्फ़बारी तेज़ हो गई। लकड़ी की मेज़ और उस पर झुके हुए चन्द अजनबी चेहरे...औज़ार...काफ़ूर की बू... चीख़ें...एक समन्दरी जहाज़ बादलों पर खड़ा सीटियाँ बजा रहा था और ख़ाली कमरों में सितारे लटक रहे थे। सफ़ेद परोंवाला परिन्दा आहिस्ता-आहिस्ता पर हिलाता बादलों में ग़ायब हो गया। चक्कर...चक्कर...सीटियाँ। अँधेरा...चक्कर...चक्कर...चक्कर...

उसने आँखें खोलकर इर्द-गिर्द देखा, तो छत और दीवारें हिल रही थीं ! उसे महसूस हुआ कि वह बहुत देर से आँखें खोले पड़ा था।

दो सिपाही 'रेडक्रॉस' के बैज बाजुओं पर बाँधे उसके पाँव के क़रीब बैठे थे और कार तेज़ी से तारकोल की सड़क पर भाग रही थी। खिड़की के शीशे में नर्म धूप छनकर आ रही थी। सड़क के किनारे घुटनों-घुटनों पानी में झुकी हुई सियाहफ़ाम औरतें शायद चावल की पनीरी बो रही थीं।

"चावल बोने का मौसम है ?" उसने दिल में सवाल किया। सड़क के किनारे फ़ौजियों के ख़ेमे तेज़ी से गुज़रने लगे। उसने गर्दन मोड़ी। बाज़ू कुहनी पर ख़त्म हो गया था और बहुत-सी सफ़ेद पट्टियों में लिपटा स्ट्रेचर के साथ जकड़ा हुआ था। ख़ौफ़ और कमज़ोरी से वह फिर बेहोश हो गया।

सुबह की हलकी ठंडी धूप खिड़की के रास्ते उसके चेहरे के निचले हिस्से पर पड़ रही थी और बढ़ी हुई दाढ़ी में से जिल्द का ज़र्द रंग दिखाई दे रहा था। कम्बल को टाँगों पर खींचकर वह दीवार से टेक लगाकर बैठ गया। वह नुमायाँ तौर पर कमज़ोर हो चुका था। उसके जबड़े और गालों की हड्डियाँ निकल आई थीं, और तीखे, ख़ूबसूरत चेहरे पर सख़्ती दिखाई दे रही थी। सबसे नुमायाँ तब्दीली बहरहाल उसकी आँखों में आई थी...बड़ी-बड़ी सियाह, चमकदार और बेचैन आँखें, जो बड़ी गहराई से चारों तरफ़ देख रही थीं।

हस्पताल एक स्कूल की इमारत में था। लम्बा हॉल कमज़ोर ज़ख़्मियों से भरा पड़ा था। ज़मीन पर, बढ़ी हुई दाढ़ियोंवाले मरीज़ कन्धे-से-कन्धा भिड़ाए एक-दूसरे की टाँगों में सिर दिए पड़े थे। डॉक्टरों और तीमारदारों के गुज़रने का कोई रास्ता न था। वे उनकी टाँगों और बाजुओं के दरमियान क़दम रखते, मरीज़ों की कराहों और गालियों को नज़रअन्दाज़ करते हुए अपना काम जारी रखते। बाक़ी तमाम कमरे और बरामदे और आँगन ज़ख़्मियों से अटे पड़े थे। सेहतयाब[3] होते हुए मरीज़ अपनी जगहों पर बैठे-बैठे नए आनेवालों की चीख़ो-पुकार को बड़ी मानूसियत और ला-तअल्लुक़ी[4] से देखते रहते। जैसे तन्दुरुस्त भैंसें बच्चा जनती हुई भैंस को देखती हैं।

1. टूटे हुए, 2. समुद्र का किनारा, 3. रोगमुक्त, 4. असम्बद्धता।

नईम के साथवाले बिस्तर पर कुछ देर हुई एक पठान सिपाही को लाया गया, जो एक रोज़ पहले ज़ख़्मी हुआ था। उसकी टाँग घुटने के ऊपर से काट दी गई थी और वह बच्चों की तरह रो रहा था। उसकी दाढ़ी और मूँछों के बाल कीचड़ में लथड़े हुए थे और क़मीज़ के गन्दे कफ़ पर जुएँ चल रही थीं। डॉक्टर कुछ देर पहले राउंड करता हुआ उसके पास से गुज़रा था।

"क्या हाल है, जवान ?" उसने रुककर अपने मख़सूस बेहिस[1] लहजे में पूछा था।

"ख़रकुस[2] का बच्चा...क्या हाल है ?' वह सूजी हुई आँखें खोलकर चिल्लाया। फिर अचानक फूट-फूटकर रोने लगा। "मैं लँगड़ा हो गया हूँ...मैं..."

"जुमए के रोज़ तुम्हारी आख़िरी ड्रेसिंग होगी...हवालदार नईम अहमद ख़ाँ..." डॉक्टर ने उसके काग़ज़ देखकर कहा और फलाँगता हुआ गुज़र गया।

उसके पीछे-पीछे अधेड़ उम्र की ख़ूबसूरत, उदास, ख़ामोश, सिस्टर डोरिस पानी का बर्तन उठाए ज़ख़्मी पठान के पास आई। वह कम्बल में मुँह देकर रंज और तकलीफ़ की वजह से दाढ़ी नोच रहा था।

"मत नोचो दाढ़ी।" सिस्टर डोरिस ने प्यार से धमकाया और उसका मुँह धोने लगी।

नईम गहरी नज़रों से उसे देखता रहा। किस क़दर फुर्तीली औरत है। उसने सोचा।

"मत रोओ।" वह ज़ख़्मी को बनावटी गुस्से के साथ झिड़क रही थी।

"सिस्टर, हम सब तुम्हारे बच्चे हैं।" नईम ने ख़ुशदिली से कहा।

सिस्टर ने उसे सियाह, गहरी आँखों से देखा और उदासी से मुस्कराई।

"याद है, पिछले महीने जब तुम आए थे, तो इसी तरह रो रहे थे।"

"तुम झूठ कहती हो। मैं कभी नहीं रोया।"

"तुम्हें अब याद भी नहीं रहा। उस वक़्त तुम बहुत छोटे-से थे।"

वह हँसा। "सिस्टर ! तुम बड़ी मेहनत करती हो। मैं तुम्हारा शुक्रिया अदा करना चाहता हूँ !"

उसने एक पल के लिए रुककर नईम को देखा। फिर कपड़े से पठान का चेहरा ख़ुश्क करने लगी। उससे फ़ारिग़ होकर वापस जाने के बजाय वह नईम के पास आ खड़ी हुई और ठेठ अंग्रेज़ी में बोली; "ज़ख़्मियों से मुझे बहुत कम हमदर्दी मिलती है, हवालदार। मेरे दो बच्चे हैं और मेरा ख़ाविन्द पागलख़ाने में है। इस तमाम अरसे में मैंने गन्दे और बदबूदार इनसानों की ख़िदमत की है। इसलिए कि मेरे बच्चे नफ़ीस, साफ़-सुथरी फ़िज़ा में पल सकें।" वह रुकी। "इस जगह महज़ बीमारी और मौत ही नहीं होती, हवालदार। सात दिन के बाद तुम चले जाओगे, लेकिन अगली बार जब तुम ज़िन्दगी की ख़ूबसूरती और मेहनत और अच्छाई को देखना चाहो, तो यहाँ आ जाना।" वह गन्दे पानी का बर्तन उठाकर बचती-बचाती, रास्ता बनाती बाहर निकल गई।

वह आहिस्ता से बिस्तर पर से उठा और अपने पड़ोसी के पास जा खड़ा हुआ।

"तुम्हारा नाम क्या है ?"

"अमीर ख़ाँ !"

"घर ?"

"काकाख़ेल-पेशावर !"

"कहाँ ज़ख़्मी हुए थे ?"

"मुझे नाम नहीं आता !"

"रेजिमेंट ?"

"फ्रंटियर फ़ोर्स राइफ़ल्ज़ !"

इस दौरान में ज़ख़्मी की नज़रें उसके आधे बाज़ू पर जमी रही थीं। नईम ने वह बाज़ू आगे

1. भावहीन, 2. मूर्ख।

बढ़ाया और हँसा। "हाँ...इसको भी काट देना पड़ा।"

चन्द सेकेंड तक ज़ख़्मी तअज्जुब से उसे देखता रहा। फिर अचानक बच्चों की-सी बेतकल्लुफ़ मुस्कराहट उसके चेहरे पर फैल गई। हमसाएगी[1] के एक पल में उसने एक साझे दुख को पहचान लिया था।

बाहर बरामदे में दोपहर से पहले की धूप फैल रही थी और शफ़्फ़ाफ़, शीशे की-सी फ़िज़ा में शहद की मक्खियाँ उड़ रही थीं।

आख़िरी पट्टी करवाने के फ़ौरन बाद नईम ने यूनिट में रिपोर्ट की, जहाँ से उसे ब्रिगेड हैडक्वार्टर भेज दिया गया।

ब्रिगेड हैडक्वार्टर की ऊँची, पच्छिमी तर्ज़ की इमारत में दाख़िल होकर उसने अपने काग़ज़ एक क्लर्क के हवाले किए और बरामदे में बैठकर इन्तिज़ार करने लगा। उसे बैठे अभी थोड़ी ही देर हुई थी कि पीछे से किसी ने उसके कन्धे पर हाथ रखा। उसके सामने जाटनगर का ख़ालिक़ खड़ा था। उन्होंने किसान फ़ौजियों के अन्दाज़ में एक-दूसरे को पुकारा और गर्मजोशी से हाथ मिलाने लगे। फिर ख़ालिक़ की नज़रें उसकी लटकती हुई ख़ाली आस्तीन पर रुक गईं।

नईम ख़ामोश रहा।

"यह...यह।"

"हाँ !" नईम ने लापरवाही से कहा। "मैं ज़ख़्मी हुआ था।"

उसने सिगरेट निकालकर ख़ालिक़ को दिया। दोनों ख़ामोशी से धुआँ उड़ाने लगे।

"तुम्हें याद है, नईम ! जब हम कबड्डी खेलने के लिए रौशनपुर आते थे, तो इस हाथ की ज़र्ब से तुमने मेरा कान तोड़ दिया था," उसने ग़ैर-इरादी तौर पर कान छुआ।

नईम हँसा। "तुम्हारी बद-दुआ लगी होगी !"

"मज़ाक़ मत करो। मुझे दुख हुआ।"

"कोई और बात करो।" नईम ने बेचैनी से इर्द-गिर्द देखा, "मुझे अस्ल में वह वाक़िआ याद नहीं रहा। तुम ज़ख़्मी हुए थे ?"

"मैं सप्लाई में था।"

"अम्बाला ब्रिगेड में और सब लोग ?"

ख़ालिक़ आँखें सुकेड़कर हौले-हौले बोलने लगा; "अब्दुल्ला को पिछले महीने क्रॉस मिला था। मेरा भाई तुफ़ैल हवालदार हो गया है। फ़्रांस में है। दर्शन सिंह नाकारा होकर वापस चला गया था। रौशनपुर का महिन्दर सिंह मारा गया।"

नईम के हाथों में सिगरेट काँपने लगी। ख़ालिक़ ने बात जारी रखी; "वह बिलकुल गधा निकला। सुना है, जब उनकी कम्पनी एडवांस में पड़ी, तो उसने हिलने से इनकार कर दिया। कम्पनी कमांडर के बार-बार हुक्म देने पर भी टस-से-मस न हुआ।"

"फिर ?" नईम ने बेध्यानी से पूछा।

"फिर क्या ? नाचार कम्पनी कमांडर ने उसे वहीं पर शूट कर दिया। बड़ा अच्छा सिपाही था, पर ज़रा यहाँ पर कमज़ोर था !" ख़ालिक़ ने सिर को छूकर बताया।

"यहाँ का मौसम भी अजीब है..." नईम ने बेचैनी से कहा। "धूप निकले तो गर्मी, न निकले तो सर्दी।"

"तुम्हारा दोस्त था।" ख़ालिक़ ने कहा।

नईम ने काँपती उँगलियों से सिगरेट के तीन-चार कश लिए और उसे दूर फेंक दिया। फिर

1. निकटता, पड़ोसपन।

उसने कँपकँपाते हुए होंठों पर हाथ फेरा। "रौशनपुर में वह मेरा वाहिद दोस्त था, लेकिन वह इससे पहले ही मर चुका था। फ्रांस में।"

"फ्रांस में ?" ख़ालिक़ ने सिर्फ़ इतना कहा। लोहे के बैंच पर दोनों ख़ामोश बैठे रहे।

कुछ देर बाद एडज्यूटेंट के सामने पेश हुआ।

"हवालदार नईम अहमद ख़ाँ ?"

"यस सर !" वह तनकर खड़ा था।

"हमें अफ़सोस है, तुम ज़ख़्मी हुए, लेकिन रेजिमेंट को तुम्हारी बहादुरी पर फ़ख़्र है। हमने मिलिट्री क्रॉस के लिए तुम्हारी सिफ़ारिश की है। इस सिलसिले में अभी तक डिवीज़नल हाई कमांड के अहकामात[1] का इन्तिज़ार है। बूढ़े कर्नल ने उसके चेहरे पर सीधा देखते हुए कहा; "राइफ़ल उठा सकते हो ?"

"यस सर !"

"इस अरसे में तुम ज़ख़्मी क़ैदियों पर ड्यूटी दोगे !"

"यस सर !"

"डिसमिस !"

बरामदे में मुड़ता हुआ वह एक धचके के साथ रुका और पिछले पाँव पर लौट आया। वह दो मरीज़ अभी तक बातें कर रहे थे। एक का चेहरा सूजकर कुप्पा हो रहा था। दूसरे की आँखों पर पट्टी बँधी थी, लेकिन उसके होंठ ख़ूबसूरत थे और चमकीले ज़र्द रंग के बाल थे। उसके जिस्म में ख़ून पहुँचाया जा रहा था। उससे अगले के बाएँ हाथ की कटी हुई उँगलियों पर ख़ून में लथड़ी पट्टी बँधी थी। उससे अगला ज़ख़्मी...और उससे अगला...और उससे अगला..वे सब भारी, बेज़ार चेहरों के साथ लेटे और बैठे हुए थे और उनकी आँखों में दूध देनेवाले जानवरों की-सी बेबसी थी। नईम वेख़याली से उन्हें देखता हुआ गुज़र गया। अगले मोड़ पर उसका सिपाही राइफ़ल उठाकर 'अटेंशन' हो गया। नईम ने कन्धे पर राइफ़ल को दुरुस्त किया और सीढ़ियों के ऊपर जा खड़ा हुआ। नीचे दो गिलहरियाँ बैठी धूप सेंक रही थीं। अचानक बेहद घबराकर वह मुड़ा और बरामदे में चलने लगा, लेकिन अगले 'विंग' में जाने की हिम्मत न हुई। वह उसी बरामदे में चक्कर लगाता रहा।

"वह पहचान लेगा।" एक ख़याल बार-बार उसके ज़ेहन में उभर रहा था। "यक़ीनन... ख़ुदाया...ये कैसे सख़्त-जान लोग हैं।" सीढ़ियों पर गिलहरियाँ दुमें फैलाए एक-दूसरे के पीछे भाग रही थीं।

"अब क्या होगा ?" उसने सोचा। "क्या होगा ? क्या होगा ? लाहौल-वला-क़ुव्वत ! मुझे उस तरफ़ के सिपाही को चेक करना है। बहरहाल..."

सूजे हुए चेहरेवाले ने अपना बे-तअस्सुर[2] चेहरा उठाया और बड़ी मुश्किल से आँखें खोलकर उसे देखा। मज़बूती से जबड़े पर जबड़ा जमाए, वह अगले 'विंग' में मुड़ा और सीधा देखते हुए चलने लगा। सिपाही ने राइफ़ल कन्धे पर रखकर सलाम किया। वह दीवार पर नज़रें जमाए उसके पास खड़ा रहा।

"उसने देखा है। उसने देख लिया है। यक़ीनन...क़तई...उसके पाँव हिल रहे थे।" वह आधा एड़ियों पर घूमा। "अब उसने देख लिया होगा। बाज़ू से देखने पर मैं पहचाना जाता हूँ ? पता नहीं...शायद !" वह उसी तरह खड़ा रहा। हवा से उसकी ख़ाली आस्तीन हिल रही थी। सामनेवाले दरख़्त के मैले, ज़र्द पत्तों पर बारिश बहुत देर से नहीं हुई थी।

"वह मेरा क्या कर सकता है ? एँ ? हाँ ! वह क्या कर सकता है ? कुछ भी नहीं !" इस

1. आदेशों, 2. भावहीन।

ख़याल ने उसे बेहद सुकून पहुँचाया और वह हैरान हुआ कि अब तक वह क्या सोचता रहा था।

सामने पिचके हुए गालोंवाला अधेड़ उम्र जर्मन किसान दीवार से टेक लगाए आँखें बन्द किए बैठा था। वह आहिस्ता-आहिस्ता चलता उसके सामने से गुज़र गया। आगे जाकर वह मुड़ा और ज़ख़्मी के सरसों की तरह ज़र्द, पथरीले चेहरे पर नज़रें गाड़ दीं। वह आँखें बन्द किए बैठा रहा। नईम दोबारा उसके सामने से गुज़रा। तीसरी बार जब वह उसके करीब से गुज़र रहा था, तो ज़ख़्मी ने आँखें खोल दीं और सोई-सोई बेज़ार नज़रों से इर्द-गिर्द देखने लगा। नईम पर से उसकी नज़रें दूसरी जानदार, बेजान चीज़ों की तरह गुज़र गईं। उन नज़रों में शनासाई[1] की रमक़[2] तक न थी। नईम ने दिल में अजीब-सी बेचैनी महसूस की। वह ग़ैर-इरादी तौर पर एक पल के लिए उसके सामने रुका। उसे अपनी तरफ़ ग़ौर से देखते हुए पाकर ज़ख़्मी ने हाथ से रुकने का इशारा किया। नईम ने हैरत से उसकी गहरी, मुलाइम आवाज़ को सुना, जिसकी उसके चेहरे से कोई मुताबक़त[3] न थी।

''ऑफ़ीसर ! मुझे मदद की ज़रूरत है।'' वह टूटी-फूटी अंग्रेज़ी में बोला। नईम घुटनों के बल उसके पास बैठ गया।

''अभी यहाँ धूप आ जाएगी...'' वह तकलीफ़ से बोल रहा था। ''हर रोज़ ऐसा होता है। यहाँ की धूप, मेरा मतलब है, कि अगर मुझे कमरे में जगह मिल जाए तो...''

नईम ख़ामोशी से उठकर डॉक्टर के पास आया। ''डॉक्टर ! एक मरीज़ सख़्त तकलीफ़ में है।''

डॉक्टर ने उकताई हुई नज़रों से उसकी तरफ़ देखा। वह एक मामूली ऑपरेशन की तैयारी कर रहा था।

''धूप सारी उस पर आ जाती है !''

''धूप तो हर जगह आ जाती है।'' डॉक्टर झुँझलाकर बोला।

''मेरा मतलब है, डॉक्टर, कि अगर उसे कमरे में डाल दिया जाए ?''

''तुम अन्दर जाकर देख सकते हो। पाँव धरने की भी जगह नहीं !'' वह मरीज़ पर झुक गया।

''लेकिन कैप्टन'', नईम आगे बढ़ा, ''वह सख़्त तकलीफ़ में है।'' डॉक्टर औज़ार बर्तन में रखकर सीधा खड़ा हो गया। ''तुम्हें उसकी इतनी फ़िक्र क्यों है ? एँ ? तुम्हारा बाज़ू क्या गधा चबा गया है ?''

''मगर कैप्टेन...वह तो मरीज़।''

''मरीज़...जर्मन।'' सबने देखा कि ग़ुस्से के मारे डॉक्टर के कान सुर्ख़ हो गए और उसकी गर्दन के बाल उठ खड़े हुए। आख़िर उसने अपने आप पर क़ाबू पा लिया और दाँत पीसकर धीमा-सा ''सुअर'' कहने के बाद औज़ारों पर झुक गया।

नईम ने आख़िरी कोशिश की। ''कैप्टन ! सर ! वह मेरे एक दोस्त की तरह है। उसका चेहरा बहुत अज़ीज़ दोस्त...वह फ्रांस में मारा गया था।''

''ज़्यादा-से-ज़्यादा तुम बरामदे में तिरपाल लटका सकते हो।'' डॉक्टर ने झुके-झुके कहा।

सिपाही की मदद से तिरपाल लगा चुकने के बाद वह उसके पास जा खड़ा हुआ।

ज़ख़्मी उसी गहरी, नर्म आवाज़ में बोला : ''मैं तुम्हारा शुक्रिया अदा करता हूँ, सार्जेंट।''

''तुम कहाँ ज़ख़्मी हुए थे ?''

''ऐगरंजू की दलदल में...तुम ?''

''मैं ? अरर...फ्रांस में।'' नईम ने झूठ बोला।

उसने आँखें मीचकर सिर दीवार के साथ लगा दिया। उसके पथरीले चेहरे पर सिर्फ़ होंठों के गिर्द हलकी-सी मुस्कराहट थी। उसके सीने पर छोटे-छोटे सुर्ख़ दाने निकले हुए थे और पसली और पेट पर पट्टियाँ बँधी थीं। नईम राइफ़ल के पट्टे पर हाथ रखे उसे देखता रहा। ''मैंने तुम्हें देखा

1. जान-पहचान, 2. थोड़ा-सा अंश, 3. अनुरूपता।

था। तुम्हारी आँखों में आँसू थे। मुझे पहचानते हो ?" उसने दिल में कहा।

ज़ख़्मी क़ैदियों का हस्पताल एक पुराने गिरजाघर के एहाते में था। नईम सीढ़ियाँ चढ़कर बरामदे में दाख़िल हुआ।

ज़ख़्मी बहुत कम बात करता था। वह हर रोज़ नईम को देखता और हौले से मुस्करा देता, हालाँकि नईम उसे देखते ही उससे बातें करने, उसकी आवाज़ सुनने के लिए बेताब हो जाता। हर रोज़ उसके पाँव के पास रुककर वह पूछता; "कैसे हो ?" जिसके जवाब में उसके पथरीले चेहरे पर सिर्फ़ होंठ मुस्कराते और वह आँखें बन्द कर लेता। नईम के दिल में बेचैनी का बोझ बढ़ता जा रहा था।

उस रोज़ नईम को देखकर उसकी आँखें ग़ैर-मामूली तौर पर चमकने लगीं। नईम घुटना टिकाकर उसके पास बैठ गया।

"तुमने मेरी मदद की थी, सार्जेंट ! मैं तुम्हारे लिए कुछ करना चाहता हूँ।" बात करने में उसकी आँखों में वही नामालूम-सी नर्मी आ गई, जिसको देखनेवाला महसूस नहीं करता, लेकिन बाद में हमेशा के लिए वाज़ेह तौर पर याद रहती है। "मैं काम कर सकता हूँ। अगर तुम मुझे चीड़ की लकड़ी का एक टुकड़ा और चन्द औज़ार ला दो, तो मैं तुम्हारा बाज़ू बनाऊँगा।"

"ओह !" नईम हँसा। "तुम्हारा बहुत-बहुत शुक्रिया, लेकिन मुझे उसकी ज़रूरत नहीं !"

"मगर मैं कुछ करना चाहता हूँ। मैं ख़ाली बैठ-बैठकर तंग आ गया हूँ। ला दोगे ?" उसकी आवाज़ की हलकी-सी कपकपाहट नईम के कानों में गूँजती रही।

"अच्छा।" उसने सिर झुकाकर कहा। "तुम्हें कौन-से औज़ार चाहिएँ ?"

अगले दिन नईम ने तीन औज़ार और चीड़ का दो फ़ुट लम्बा टुकड़ा लाकर उसके आगे रख दिया।

"डॉक्टर से बड़ी चख़-चख़ करनी पड़ी।"

"क्या कहता था ?"

"कहता था, औज़ारों से तुम अपना ज़ख़्म खोल लोगे !"

ज़ख़्मी मख़सूस धीमे अन्दाज़ में मुस्कराया और फ़ौरन काम में लग गया।

"मुझे बता देना चाहिए।" उसने बैरिक में लेटे-लेटे हज़ारवीं बार सोचा और अपनी जगह पर कसमसाया। उसकी बे-ख़्वाब[1] आँखें जल रही थीं और वह बड़ी देर से पुश्त पर लेटा अँधेरी छत को घूर रहा था। आधी रात के बाद नींद आनी शुरू हुई और एक शदीदतर कर्बनाक कैफ़ियत[2] उस पर तारी हो गई। रोज़ाना रात को इसी तरह होता। नींद आती, मगर वह सो न सकता। बुख़ार की तरह जलता हुआ ख़ुमार उसकी आँखों में भर जाता, जो आहिस्ता-आहिस्ता उसके सारे जिस्म को गिरिफ़्त में ले लेता। वह जम्हाइयों पर जम्हाइयाँ लेता। आँखें नींद के बोझ तले बन्द हो जातीं। जिस्म ढीला पड़ जाता। फिर एक बेचैनी उसके दिल से निकलती और सारे जिस्म पर फैल जाती और वह मरते हुए बैल की तरह झुरझुराने लगता। वह इनसानी जज़्बात के शदीद कर्बनाक दौर में से गुज़र रहा था। चन्द दिनों में वह नुमायाँ तौर पर दुबला हो गया था और बे-ख़्वाबी का ख़ला[3] उसकी आँखों में फैल रहा था।

वह नहीं चाहता था, कि ज़ख़्मी सिपाही अपने काम को जारी रखे। हर रोज़ रात को फ़ैसला करता कि सुबह जाते ही उससे तमाम औज़ार छीन लेगा और लकड़ी का वह कमबख़्त टुकड़ा नोचकर फेंक देगा। या उसको सारी बात बता देगा। लेकिन हर रोज़ सुबह बरामदे में दाख़िल होते ही उसके हवास जवाब दे जाते और उसका इरादा दोपहर की बर्फ़ की तरह पिघलने लगता और उसे देखते ही ज़ख़्मी के चेहरे पर हलकी-सी मुस्कराहट पैदा होती, और वह जल्दी से झुक जाता।

1. जिसे नींद न आए, 2. तीव्र यातनाजनक अवस्था, 3. शून्य।

"यह सब तुम क्या कर रहे हो ?" एक रोज़ नईम ने ख़फ़गी से कहा।

वह चेहरा उठाकर तअज्जुब से उसे देखने लगा।

अब मैं बता दूँगा। अब मैं उसे बतानेवाला हूँ, सब। नईम ने सोचा। "सुनो...एक बात...तुम्हें बताऊँ।" ज़ख़्मी उसी तरह देखता रहा। नईम ने उसकी कोरी, मुख़लिस[1] आँखों में झाँककर देखा और नदामत[2] से इधर-उधर देखने लगा।

"क्या है ?" कुछ देर के बाद जर्मन ने पूछा।

"कुछ नहीं। डॉक्टर कह रहा था, तुम्हारे लिए काम करना अच्छा नहीं।"

"मैं ठीक हूँ।" लकड़ी पर झुकने से पहले उसने कहा।

बैठे-बैठे नईम का जी घबराने लगा। "तुम बातें क्यों नहीं करते ?" उसने पूछा।

"करता हूँ !"

"बहुत कम !"

"बातें करूँगा, तो काम कैसे ख़त्म होगा !"

नईम ख़ामोश बैठा देखता रहा। आज पहली बार वह ध्यान से उस लकड़ी के टुकड़े को देख रहा था, जिसने इन चन्द दिनों में एक लम्बी गोल कलाई और मज़बूत, मेहनती इनसानी हाथ की शक्ल इख़्तियार कर ली थी। वह उसे घुटने में दबाए झुका हुआ निहायत इन्हिमाक[3] और कारीगरी से उँगलियों के जोड़ बना रहा था। उसने काम करते-करते सिर उठाया और बोला; "दोस्ती ख़ामोशी और मेहनत में परवरिश पाती है। बातें हम बाज़ारों और दुकानों में करते हैं !"

"तुम मेरे दोस्त हो ?" नईम ने मुस्कराकर कहा।

"मैं समझता हूँ !"

"मगर हम तो दुश्मन हैं। एक-दूसरे के ख़िलाफ़ लड़ रहे हैं !"

"नहीं," वह झुका-झुका बोला, "मैं यह सब नहीं समझता। क्या फ़र्क़ पड़ता है। वह सब मैदाने-जंग में था। यहाँ तुमने मेरे ऊपर एहसान किया है। मैंने तुम्हारे लिए मेहनत की है। हम दोनों दोस्त हैं।" फिर हाथ रोककर उसने सिर उठाया। "सुनो ! हैमबर्ग के क़रीब मेरा गाँव है। मैं तीस साल तक वहाँ रहा और किसी से नहीं लड़ा। अब अगर वापस चला गया, तो किसी से नहीं लड़ूँगा। क्या फ़र्क़ पड़ता है। यहाँ अगर मैं लड़ा, या तुम लड़े, तो कौन क़ुसूरवार है ? मुझे सब पता है। मैं तरखान का काम करता हूँ, लेकिन गाँव की अदालतवाले मुझसे आकर मशविरा लिया करते थे। यह सब ज़िन्दगी का बहाव है। किसी बात से कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। मैं जानता हूँ !"

उसकी आवाज़ बुलन्द हो गई और आस-पास के चन्द ज़ख़्मी दिलचस्पी से उसे देखने लगे। वह जल्दी से लकड़ी के टुकड़े पर झुक गया। बातों के जोश की वजह से अभी तक उसके ज़र्द हाथों में कँपकँपाहट थी।

"यह मेहनती हाथ है।" नईम लकड़ी को छूकर बोला।

"यह एक ईमानदार आदमी का हाथ है।" ज़ख़्मी ने संजीदगी से कहा।

ज़र्द मटियाले बालों की एक लट उसके माथे पर हिल रही थी।

ब्रिगेड हैडक्वाटर्ज़ से लौटने के बाद नईम पहली बार रात भर सोया। सोने से पहले उसने आँखें बन्द करके दिल में कहा, "कल मैं उसे बता दूँगा। आख़िर क्या फ़र्क़ पड़ता है, जब किसी बात से कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता...

सूरज गिरजे के कलस पर चमक रहा था, जब वह कम्पाउंड में दाख़िल हुआ। उसके पास जाने से पहले वह देर तक बरामदों और कमरों के चक्कर लगाता रहा।

---

1. सदभावक, सहृदय, 2. पछतावे, 3. तल्लीनता।

आज वह दोनों हाथ सीने पर बाँधे, आँखें बन्द किए, दीवार से टेक लगाए बैठा था। नईम आहिस्ता-आहिस्ता चलता उसके पास जा खड़ा हुआ। वह काहिली से आँखें खोलकर मुस्कराया।

"तुम जाग गए ?" नईम ने पूछा।

"मैं जाग रहा था। मुझे पता चल जाता है, जब तुम आते हो !"

नईम का दिल बैठ गया।

"आज तुम तरो-ताज़ा नज़र आ रहे हो।" जर्मन ने कहा।

"मुझे मिलिट्री-क्रॉस मिल गया है। कल ब्रिगेड हैडक्वार्टर्ज़ में पेशी थी। आज मेरा यहाँ आख़िरी दिन है।"

जर्मन की आँखों में चमक पैदा हुई। "मैं ख़ुश हूँ। " उसने कहा और कम्बल में से औज़ार और लकड़ी का बाज़ू निकालकर उसकी तरफ़ बढ़ाया।

"शुक्र है, कल मैंने अपना काम ख़त्म कर लिया था !"

नईम ने चीज़ें उसके हाथ से लेकर जल्दी से बड़े कोट की जेब में डाल दीं। चन्द लम्हे तक वे इधर-उधर देखते रहे।

"तुम्हें अफ़सोस नहीं है ?" नईम ने पूछा।

"क्यों ?"

"अपने मुल्क में होते, तो तुम्हें भी क्रॉस मिलता !"

"ओह !" वह हँसा। "क्या फ़र्क़ पड़ता है ? मैं अपने गाँव वापस जाकर काम शुरू करना चाहता हूँ बस।"

नईम खिसककर उसके क़रीब हो गया। "सुनो ! तुम भागना चाहते हो ?" जर्मन ने चौंककर उसकी तरफ़ देखा।

"मुझे बताओ।" नईम ने तेज़-तेज़ साँस लेते हुए धीरे से कहा। "मैं तुम्हारी मदद कर सकता हूँ।"

इतने अरसे में पहली बार वह हँसा। किसानों की तरह मुँह खोलकर गहरी, मुख़्तसर हँसी। "ओह ! नहीं।" उसने नफ़ी में सिर हिलाया। "मुझे अफ़सोस है। मैं ज़िन्दा रहना चाहता हूँ। चन्द साल क़ैद में काटकर मैं वापस चला जाऊँगा। ईमानदार आदमी की तरह। मुझे यक़ीन है, ये मुझे गोली नहीं मारेंगे। मैंने कोई क़ुसूर नहीं किया।" उसने हाथ आगे बढ़ाया। "तुम्हारा बहुत-बहुत शुक्रिया। बहरहाल, मैं ख़ुश हूँ कि जंग के बावजूद भी हम दोस्त बने। मैं तुम्हें याद रखूँगा।

देर तक वे एक दूसरे की आँखों में देखते और हाथ मिलाते रहे। "अब मैं इसे बता रहा हूँ। अभी..." उसने सोचा। "दोस्त !" उसने पूरी ताक़त से उसका हाथ दबाया और देर तक दबाए रखा। फिर गर्मजोशी से हिलाने लगा और हिलाता रहा। "ख़ुदा हाफ़िज़ !" आख़िर बन्द होते हुए गले से उसने कहा और उठकर तेज़ी से बरामदे में मुड़ गया।

आख़िरी सीढ़ी पर पाँव रखकर उसने आख़िरी बार मुड़कर देखा। सामने लेटे और बैठे हुए मरीज़ों की लम्बी क़तार थी। उसके दिमाग़ में ज़ोर से कोई चीख़ा। जेब में लकड़ी के टुकड़े पर उसकी गिरफ़्त मज़बूत होती गई। वह मुड़ा और तेज़ी से सीढ़ियाँ उतर गया। ज़िन्दगी में पहली बार उसका जी चाहा कि चीख़ें मार-मारकर रोए।

बाहर सड़क पर चन्द बच्चे एक दूसरे की क़मीज़ें पकड़े आगे-पीछे भाग रहे थे।

हिन्दोस्तान

अफ़्सुर्दगी-ए-सोख़्ता-जानां है क़हर मीर
दामन को टुक हिला कि दिलों की बुझी है आग

–मीर तक़ी मीर

12

गाँव की सोई-सोई गर्दआलूद फ़िज़ा उसी तरह क़ाइम थी। इन बरसों में रौशनपुर के बीसियों नौजवान अजनबी सर-ज़मीनों[1] में हलाक[2] हो गए थे। जंग के मैदानों में बिखरे हुए उनके महबूब, मज़बूत जिस्म तेज़ धूप में भाप बनकर उड़ गए, और नए सैलाबों, नई आँधियों और तूफ़ानों ने उनकी हड्डियाँ ज़मीन में दबा दीं। बीसियों औरतें बेवा[3] हो गईं, और लड़कियाँ मुहब्बत में ग़रीब हो गईं। रौशनपुर की ज़मीनों में सैलाब आए और फ़सलें तबाह हो गईं और किसान क़र्ज़े और भूक के नीचे झुक गए। जानवर बीमारी से मर गए या भूके किसानों ने काटकर खा लिए और औरतों और भैंसों के दूध सूख गए, और एक वक़्त आया, जब पागल आँखोंवाले किसानों के ढाँचे गलियों में आवारा फिरते थे और छतों पर बढ़े हुए पेटोंवाले, पीले चेहरेवाले बच्चे टाँगें लटकाकर बैठते थे, तो उससे गाँव पर जले हुए जंगल या बमबारी से तबाहशुदा क़िले का शुबहा होता था।

लेकिन नया मौसम अपने पूरे रंग-रूप और आबो-ताब के साथ आया। सैलाब का पानी उतर गया और बारिशों से गिरे हुए मकानों की दीवारें खड़ी की गईं...और हरदम जवान होते हुए लड़कों और बैलों और बूढ़े होते हुए किसानों ने सैलाब की डाली हुई सियाह, ज़रख़ेज़ मिट्टी में हल चलाया और गेहूँ और चने और दूसरा अनाज बोया। दिन-रात की कड़ी मेहनत से खेतों में सब्ज़ रेशमी फ़सल उठी और गन्दुम के दानों में गूदा पड़ा और औरतों की छातियाँ दूध से भर गईं और उनकी कोख में इनसानी बीज बढ़ना शुरू हुआ और तख़्लीक़[4] की पुर-सुकून, शफ़्फ़ाफ़ फ़िज़ा हर तरफ़ फैल गई। लड़कियों ने नए-नए जवानों से मुहब्बतें लगाईं और रो-रोकर और गुमशुदा महबूब को याद कर-करके उन्हें बताया कि जंग कैसी ख़राब चीज़ होती है।

फ़सलों के दरमियान खड़े होकर किसानों ने पुर-क़नाअत[5] नज़रों से देखा कि सुबह की ताज़ा, बेज़रर धूप उनकी गलियों और मकानों की ममटियों में दाख़िल हुई और गहरे नीले, बेदाग़, आसमान के मुक़ाबिल मकड़ी के चमकीले तार और आक की "बूढ़ी मैया" गाँव के ऊपर-ऊपर लहराने लगीं और बच्चे उनको पकड़ने के लिए शोर मचाते हुए दौड़े। फिर सूरज ऊँचा हुआ, तो धूप उनके आँगनों और दालानों में फैल गई और एक ख़्वाब-आलूद, मटियाली गर्द ने, जो ज़िन्दगी और काम की अलामत[6] होती है, गाँव को लपेट में ले लिया, और खेतों में से उठकर वह साये में आ बैठे और दोपहर का खाना खाने और तम्बाकू पीने लगे, और उस सारे वक़्त को उन्होंने बड़े सुकून और दिलबस्तगी[7] से बरदाश्त किया कि जो कुछ गुज़रा, वह हिन्दोस्तान के किसान का मुक़द्दर था और ऐसा होता ही आया था।

गाँव की सोई-सोई गर्द-आलूद फ़िज़ा उसी तरह क़ाइम थी। नईम को गाँव में रहते चन्द महीने हो चले थे। वह कभी-कभी हल चलाता, लेकिन काश्तकारी की मेहनत के अब वह क़ाबिल नहीं

1. धरतियों. 2. मारे, 3. विधवा, 4. सृजन, रचना, 5. सन्तोषपूर्ण, 6. द्योतक, चिह्न, 7. प्रेम, लगन।

रहा था। वह शाम के वक़्त अक्सर पंचायतघर में जाता और बूढ़े, जवान सभी उठकर उसका इस्तिक़बाल करते। जवान सिरों पर पगड़ियाँ रख लेते और बूढ़े उसको अपने बराबर जगह देते, क्योंकि वह वाहिद शख़्स था, जो अभी तक रौशनपुर में जंग से ज़िन्दा लौटकर आया था और सीने पर इमतियाज़ी[1] निशान लगाता था, और एक मुरब्बा ज़मीन जिसे सरकार की तरफ़ से मिली थी। लड़कियाँ उसे देखकर एहतिराम[2] से रास्ता छोड़कर चलने लगतीं, क्योंकि नईम की माँ ने उन्हें बता रखा था कि समन्दर पार के मुल्कों में कई अजनबी औरतें उसकी मुहब्बत में गिरफ़्तार होकर उससे शादी करना चाहती थीं, मगर वह उन्हें छोड़कर अपने गाँव वापस चला आया था। नईम ग़रीबुलवतनी[3], मशक़्क़त[4], और अज़ीयत[5] के एक लम्बे वक़्फ़े[6] के बाद गाँव को पुर-सुकून ख़्वाब की तरह महसूस कर रहा था। वह जी भरकर खाता, सोता और कबड्डी के मुक़ाबलों और बैलगाड़ियों की दौड़ में फ़ौजी वर्दी पहनकर शरीक होता।

वह नहर का पुल पार कर रहा था, जब सामने से तीन सवार नुमूदार हुए। ये जोगिन्दर सिंह और गाँव के दो जवान होते हुए छोकरे थे। नज़दीक आकर उन्होंने बागें खींची और ऊँची आवाज़ में उसका हाल पूछा।

"कहाँ से आ रहे हो ?" नईम ने पूछा।

"वाहेगुरु की फ़तह...सुअरों को देखकर..." जोगिन्दर सिंह बोला।

"मिले ?"

"हाँ ! एक जगह डेरा मिला। रेवड़ का रेवड़ है !"

"फिर ?"

"कल शिकार है बड़ा भारी। चलोगे ? रात में हम गढ़े खोदने को जा रहे हैं !"

"कल ?" नईम ने कहा।

तीनों सवारों ने बागें ढीली छोड़ दीं, "एक नेज़ा टिकिया (सूरज) उठने पर आ जाना ! लस्सी हमारे साथ आकर पीना।" जोगिन्दर सिंह सरपट दौड़ती हुई घोड़ी पर से मुड़कर चिल्लाया और पुल पर से उतर गया।

"ऊपर बारिश हुई है।" नहर के गदले पानी को देखकर नईम ने सोचा।

सुबह वह सोकर उठा, तो दरवाज़े के बाहर हलका-हलका शोर हो रहा था। उसने जल्दी से पतलून टाँगों पर खींची और फ़ौजी बूट पहनकर जम्हाइयाँ लेता हुआ बाहर निकल आया। अहाते में रुककर उसने सफ़ेद बैल की गर्दन का ज़ख़्म देखा और फ़ैसला किया, कि शिकार पर जाने से पहले उस पर दवाई लगाएगा। फिर उसने घोड़ी की पुश्त पर हाथ फेरा और उसके पिछले दोनों घुटनों को उँगलियों में लेकर बारी-बारी दबाया। घोड़ी की फड़क से उसे अन्दाज़ा हो गया कि जानवर ताज़ा दम है और सवारी के लिए तैयार है। वहीं खड़े-खड़े उसने माँ को, जो दूध बिलो रही थी, हिदायत की कि काम छोड़कर उसकी बाग मरम्मत करना शुरू कर दे। फिर उसने कोने में से थोड़ी-सी ख़ुश्क घास उठाकर घोड़ी के आगे डाली और अली को, जो दरवाज़े में खेल रहा था, एक हाथ से उठाकर उसकी पुश्त पर बिठा दिया। बच्चा उसके बाल पकड़कर गर्दन के साथ चिमट गया और उसकी माँ कपास के ढेर को छोड़कर उसकी तरफ़ भागी। नईम हँसता हुआ बाहर निकल गया।

अहमद दीन के घर के आगे चन्द लोग जमा थे। नईम ने जम्हाई लेकर जोहड़ पर और सिखों ने बाग़ पर और आसमान पर सारे में नज़र दौड़ाई। यह एक सोकर उठे हुए किसान की तरह तरोताज़ा और ख़ुशगवार सुबह थी। जब धूप ने अभी-अभी दरख़्तों की चोटियों को छुआ था, और उन पर नन्ही-नन्ही चिड़ियाँ नाच रही थीं। दाएँ हाथवाली भीड़ में शोर बढ़ गया।

1. विशिष्ट, 2. सम्मान, 3. परदेस-प्रवास, 4. कठोर श्रम, 5. यातना, 6. अन्तराल।

अहमद दीन अपने दरवाज़े पर खड़ा ग़ुस्से में चीख़ रहा था। रौशन आग़ा का मुंशी घोड़ी की बाग थामे अपने चन्द ख़ास आदमियों में घिरा उसके सामने खड़ा था।

"मेरे पास कुछ नहीं है। भाग जाओ, कुछ नहीं है।" बाज़ू हवा में नचाकर अहमद दीन चीख़ा।

मुंशी ने हुक़्क़े के दो लम्बे-लम्बे कश लिए और गर्दन टेढ़ी कर के कठोर चालाक लहजे में बोला : "हम तुम्हारे दालान की तलाशी लेंगे।"

"तुम मेरे घर में क़दम नहीं रख सकते। मैं दावा कर दूँगा।" अहमद दीन चीख़ा। उसकी पगड़ी खुलकर ज़मीन पर घिसट रही थी और मिट्टी में सनी दाढ़ी हवा में उड़ रही थी। आस्तीन कन्धे पर से फट चुकी थी, और दुख और ग़ुस्से के आँसू उसके गालों की गहरी, सियाह झुर्रियों में बह रहे थे। "मैं बतलाऊँगा कि तुमने मुझे पीटा। मेरी बेइज़्ज़ती की। मेरी पगड़ी उतारी। मेरी दाढ़ी नोची। क्या मैं चोर हूँ ? हैं ? भाग जाओ...मेरे पास कुछ नहीं है...तुम..." उसने मुंशी की तरफ़ उँगली हिलाई, लेकिन उसका गला बन्द हो गया।

कुछ देर मुंशी खड़ा बूढ़े किसान को औरतों की तरह मुट्ठियाँ छाती में देकर रोते हुए देखता रहा, और उसके दिल में उस मख़सूस ख़ौफ़ ने सिर उठाया, जो पक्की उम्र के सीधे-सादे किसानों और मज़दूरों को रोते देखकर हर इनसान के दिल में पैदा होता है। फिर वह अपने आदमियों को लेकर चुपचाप एक तरफ़ चल पड़ा।

नईम आहिस्ता-आहिस्ता चलता हुआ अहमद दीन के पास जा खड़ा हुआ, जो अब बे-किवाड़ दरवाज़े में बैठ गया था और आँसू उसके गालों पर सूख रहे थे। सिर्फ़ एक नौजवान लड़का उसके पास खड़ा रह गया था।

"क्या बात है, चचा ?" नईम ने पूछा।

"मोटराना लेने आए थे।" अहमद दीन के बजाय लड़के ने जवाब दिया।

"मोटराना ?"

"रौशन आग़ा ने मोटर ख़रीदी है !"

"फिर ?"

"हमें मोटराना देना पड़ता है..."

नईम ने हवा में देखते हुए लम्बी-सी "ऐं ?" की और कुछ न समझकर घबरा गया, "ठहरो...ठहरो...देखो..." वह लड़के पर झुककर बोला, "मोटराना क्या होता है ?"

"जागीरदार ने मोटर ख़रीदी है। हमें अनाज देना पड़ता है।" लड़के ने कहा।

"कितना ?"

"यह ज़मीन के हिसाब पर है। मेरे पास बीस एकड़ है, और एक जोड़ी है। मैंने एक धड़ी दिया है !"

"रौशन आग़ा के हिस्से में से ?"

"नहीं, अपने हिस्से का !"

"क्यों ?"

लड़का सटपटा गया। "बस...हम पर लाज़िम[1] है !"

"मैं ज़रूर देता..." अहमद दीन ने सीने पर हाथ रखकर कहा।

"सौ दफ़ा देता, चौधरी, पर मेरे पास कुछ नहीं है। अगर मैं मोटराना दे दूँ, तो आठ महीने भूसा खाना पड़े...यह देखो !"

उसने दोनों हाथ उसके सामने फैला दिए। "मैंने सारी ज़मीन में बीज फेंक दी है। किसी ने

1. अनिवार्य।

मेरी मदद नहीं की। मैंने ख़ुद सारी बियाई की है। मेरा बेटा जंग में मारा गया है और आज इन्होंने मुझे पीटा है, मेरी दाढ़ी..."

उसने लरज़ते हुए बदसूरत हाथ नईम के आगे फैलाए रखे, जिनके पोरे ख़ुश्की की वजह से तड़ख़ चुके थे। नईम जेब में हाथ दिए, सिर झुकाकर चलता हुआ वापस आ गया। नियाज़ बेग चमड़े के तागे से बागें मरम्मत कर रहा था।

"तुमने भी मोटराना दिया है ?" आँगन में खड़े होकर उसने ख़फ़गी से पूछा।

"हमारी तो अपनी ज़मीन है। हम क्यों देंगे ?" उसके बाप ने छाती फुलाकर कहा, "हमारे नज़दीक आने की उनकी हिम्मत है ? सबको सुना दो। हमने क्रॉस जीता है। कोई मज़ाक़ है ?" आँखों के कोनों में से बेटे को देखता हुआ वह बागें मरम्मत करता रहा।

नईम ने चूल्हे पर से पकी हुई मिट्टी तोड़ी। उसे हाथ में मला। फिर उसमें कड़वा तेल डाला। छत के कोने में से मकड़ी का जाला उँगली पर लपेटकर उतारा और उसमें मिलाया और फिर उसी मिक़दार में बैल का गोबर उसमें मिलाकर उसकी लई बना ली। यह मरहम बैल के ज़ख़्म पर लगाने के बाद उसने अपने फ़ौजी थैले में से सफ़ेद पट्टी निकाली और बाप की मदद से उस पर बाँध दी।

"अगर तुम इसे ख़रगोश के बच्चे की तरह रखना चाहते हो, तो फिर यह खेत में काम कर चुका !" नियाज़ बेग पट्टी बाँधते हुए झल्लाया।

"जंग में यह मरहम बड़ा काम देता है, मगर इसमें ख़च्चर का गोबर बेहतर रहता है।" नईम ने कहा।

"फिर उसने घोड़ी पर ज़ीन कसी और बागें उसके मुँह डालीं। नियाज़ बेग खड़ा चौड़ी, उदास आँखों के साथ उसे निहायत होशियारी से एक हाथ के साथ सब काम करते हुए देखता रहा। जब नईम ने टोपी सिर पर जमाकर कोने में से नेज़ा उठाया, तो वह बोला, "लस्सी नहीं पियोगे ?"

"सिखों के यहाँ पियूँगा। शिकार पर जा रहे हैं।" वह उचककर घोड़ी पर सवार होते हुए बोला। घोड़ी बग़ैर किवाड़ के दरवाज़े को फलाँग कर ग़ायब हो गई।

जंगल घना था और वे शीशम, कीकर और जंड के दरख़्तों के नीचे-नीचे तीन मील तक चलते गए। जगह-जगह पर मुर्दा कौए और दूसरे छोटे-मोटे परिन्दे मरे पड़े थे। चारों तरफ़ गले-सड़े पत्तों और परिन्दों की बीटों की तेज़ जंगली बू फैली हुई थी। नीम-तारीक जंगल में घुड़सवार मुँडासे बाँधे, नेज़े उठाए, ऊँची-नीची ज़मीन पर से होते एक खुली जगह देखकर घोड़े ज़ोर से हिनहिनाए।

एक सवार ने बड़ी-सी गाली दी, "जगा देंगे साले..." और नेज़े का दस्ता घोड़े के सिर पर दे मारा। वहाँ पर सब उतर पड़े। सूरज सिर पर पहुँच चुका था।

"इस वक़्त आराम कर रहे होंगे...यह इनके आराम का वक़्त है।" गाली देनेवाला सवार नईम को शिकार के बारीक नुक़्ते समझाने लगा : "सोते में से जगाया जाए, तो अन्धा हो जाता है। फिर उसे कुछ सुझाई नहीं देता। जिधर हाँक दो, चला जाएगा। और अगर सामने से आ रहा हो, तो अपनी जगह मत छोड़ो। दिल में ख़ौफ़ मत लाओ। खड़े रहो। जब बिलकुल नज़दीक आ जाए, तो एकदम सामने से हट जाओ। सीधा निकल जाएगा। यह दस गज़ के अन्दर-अन्दर नहीं मुड़ सकता...और तुम...तुम हाँके में रहना !" उसने हिचकिचाते हुए नईम के लकड़ी के बाज़ू पर नज़र डाली, "नहीं...मेरा मतलब यह नहीं...तुम दिलेर आदमी हो। जवानों से लड़े हो। ये तो सुअर हैं। यहाँ बड़े तगड़े जवानों की ज़रूरत है। समझे ? तुम हाँके में रहना। बस !"

उन्होंने रात के खोदे हुए गढ़ों में से घास और लकड़ियाँ निकालीं। एक क़तार में सात गढ़े थे। जोगिन्दर सिंह और छह दूसरे जवान अपने-अपने खोदे हुए गढ़े में उतरकर बैठ गए। उन्होंने नेज़े सीधे ज़मीन के साथ लिटा दिए। सिर और मुँह पर कसकर मुँडासे बाँधे और हाँके का इशारा किया।

नेज़ों के दस्ते उनके कन्धों पर जमे थे।

हाँकनेवाले सब-के-सब घोड़ों पर सवार हुए और जंगल में ग़ायब हो गए। घने पेड़ों में से लम्बा चक्कर काटकर वे आधे मील पर उसी सीध में आ निकले और चढ़ाई करते हुए सिपाहियों की तरह सीधी क़तार में बढ़ने लगे। शीशम के एक झुंड में उन्हें सुअरों के एक रेवड़ के मिलने की उम्मीद थी, लेकिन वे उन्हें तवक़्क़ो[1] से पहले ही मिल गए। यह उन काले, मोटे-ताज़े, ताक़तवर जानवरों का एक बहुत बड़ा रेवड़ था, जिसका सवारों से अचानक सामना हो गया। सवारों ने तेज़ी से फैलकर आधा घेरा बनाया और घेरे में लेकर शोर मचाते हुए उस तरफ़ हाँकने लगे, जिधर शिकारी बैठे थे। सारा जंगल क़ियामत के शोर से जाग उठा। परिन्दे फड़फड़ाकर उड़े और छोटे-छोटे जंगली जानवरों में भगदड़ मच गई। सवार अपने नेज़े सिरों से ऊपर उठाए, चीख़ें मारते हुए हाँका लगा रहे थे। सुअर उस अचानक हमले से घबराकर चीख़ें मारते हुए इधर-उधर भाग निकलने की कोशिश में आख़िरकार उसी तरफ़ बढ़ते जा रहे थे, जिधर को हाँके जा रहे थे। उस वक़्त इनसानों, सुअरों और घोड़ों की चीख़ों में इमतियाज़[2] करना नामुमकिन था। नईम ने सारे जिस्म में मुकम्मल सुरूर की वह लहर दौड़ती महसूस की, जो इनसान, हर इनसानी क़ैद में से आज़ाद होकर अम्दन[3] जानवरों का रवैया इख़्तियार करते वक़्त महसूस करता है। उस जंगली माहौल में जान लेने की क़दीम, ज़ालिम इनसानी ख़्वाहिश उसके दिल में पैदा हुई।

आख़िर ठिगने, बदसूरत दरिन्दों का जुलूस खुली जगह में दाख़िल हुआ और शिकारियों के सिर गढ़ों में ग़ायब हो गए। वे तेज़ी से भागते हुए नाक की सीध में जा रहे थे। एकदम पाँच गज़ के फ़ासिले पर नेज़ों के सिरे बुलन्द हुए और सुअर अपनी तमामतर बर्क़-रफ़्तारी[4] और बोझ के साथ उनके साथ टकराए। नेज़े उनकी गर्दनों, सीनों और शानों में उतर गए। ज़ख़्मी जानवर पीछे हटे। चीख़ मारकर आगे बढ़े, पीछे हटे, लेकिन फ़ौलाद की तेज़ अनी के आगे उनकी कुछ न चली और नेज़ा, जो सिर्फ़ आगे ही आगे जा सकता था, उनकी मोटी गुँथी हुई चर्बी की तहें फाड़ता हुआ नीचे उतरता गया। नेज़े के दस्ते शिकारियों के कन्धों में गड़े जा रहे थे, और वे दाँत पीसकर ज़ोर लगाते हुए दोनों हाथों से उन्हें थामे बैठे थे।

पहले हल्ले में सिर्फ़ दो जानवर रुके। सुअर फैलकर दो हिस्सों में बँट गए और घोड़ों को एड़ लगाकर, रेवड़ के जंगल में ग़ायब होने से पहले उनके आगे पहुँचकर उन्हें वापस मोड़ लाए। शिकारियों ने गढ़ों में पाँसा पलटकर पोज़ीशन ली और नेज़े पीछे से आनेवाले गल्ले के सामने कर दिए। जोगिन्दर सिंह की सीध में एक सुअर आया। उसने दाँत पीसकर नेज़ा उसके सीने पर जमा दिया। एक ताक़तवर झटके से सीने की सख़्त खाल उधेड़ता हुआ कन्धे की तरफ़ बढ़ा और अपने पीछे सफ़ेद चर्बी की लकीर नंगी करता हुआ बाहर को फिसल गया। सुअर इन्तिहाई तेज़-रफ़्तारी से आकर उसके गढ़े में गिरा और उसकी तेज़ केंचुली ने शिकारी की कमर पर कन्धे से लेकर रीढ़ की हड्डी तक छह इंच लम्बा, गहरा घाव डाल दिया। जोगिन्दर सिंह के मुँह से दर्द की बिलबिलाहट उठी। दूसरे पल ज़ख़्मी जानवर एक झोंके के साथ बाहर निकला और भाग गया। इस बार में तीन और सुअर शिकारियों के साथ ज़ोर-आज़माई कर रहे थे। अगले हल्ले में छठा शिकारी भी ज़ख़्मी हो गया, तो रेवड़ को निकल जाने दिया गया। चीख़ें मारता हुआ ख़ौफ़ज़दा दरिन्दों का सैलाब बर्क़-रफ़्तारी से जंगल में ग़ायब हो गया। जोगिन्दर सिंह उठा और शीशम के एक बड़े दरख़्त के तने से टेक लगाकर बैठ गया। उसका चेहरा पीला था और कमर पर ख़ून बह रहा था।

एक बहुत घेरवाले तने के पास से गुज़रते हुए नईम को सुअर की पिछली टाँगें दिखाई दीं। घोड़ी का रुख़ मोड़कर वह दूसरी तरफ़ जा निकला। सुअर जड़ के पास बैठा था और सीने से लेकर कन्धे तक उसकी खाल का चीथड़ा लटक रहा था। सफ़ेद-सफ़ेद घनी चर्बी में से ख़ून निकल-

1. आशा, 2. अन्तर, भेद करना, 3. जान-बूझकर, 4. विद्युत-गति।

निकलकर ज़मीन पर जमा हो रहा था। वह ज़ख़्मी आँखों से नईम की तरफ़ देखता हुआ फुँकारते हुए बारी-बारी साँस लेने लगा। घोड़ी ज़ोर से हिनहिनाई। उस वक़्त अचानक नईम के दिल में ख़ौफ़नाक, बेबस जानवर को देखकर एक नंगी, ताक़तवर, पागल ख़्वाहिश पैदा हुई और उसके सोचने की कुव्वत मफ़क़ूद[1] होकर रह गई। वह कूदकर उतरा और नेज़ा उसके ज़ख़्म पर रख दिया।

सुअर ने उम्मीद के ख़िलाफ़ हलकी-सी झुरझुरी ली और चुपचाप बैठा रहा। नईम ने नेज़ा दबाया। सुअर ज़ोर से सिर झटककर उठा और आहिस्ता-आहिस्ता आगे बढ़ने लगा। नईम ने घुटने ज़मीन में गाड़ दिए और कन्धे पर नेज़े का दस्ता जमाकर एक हाथ से उसे थामे रखा, लेकिन उसने महसूस किया कि जानवर उसकी ताक़त से बाहर था। सुअर फुँकारा और एक झटके से आगे बढ़ा। नईम ने ख़ौफ़ और तहफ़्फ़ुज़े-नफ़्स[2] की ख़्वाहिश के एक इन्तिहाई हस्सास लम्हे[3] में बेहद वाज़ेह तौर पर नेज़े की अनी के चर्बी की मोटी तहों को फाड़ने की आवाज़ सुनी—खर्र र...खर्र...र

"हे...क्या करते हो चौधरी ?" दूर से एक आवाज़ आई और वे सब घोड़े दौड़ाते हुए वहाँ पहुँचे और कूद-कूदकर उतरने लगे।

"छोड़ो मत चौधरी, ज़ोर लगाओ। हई शाबा...हई शाबा..." वे चिल्लाए "नेज़ा ऊँचा रखो...आगे से...कन्धा नीचा...घुटने गाड़ो...हत तेरे सुअर की..."

"वाहेगुरु...यह लौंडा क्या बेवक़ूफ़ी करा !" एक बुड्ढे सिख ने ग़ुस्से से कहा। "और पता है, इसका एक हाथ है, एक।"

उनके शोर के दरमियान नईम ने आँखें मीचकर बाज़ू, कन्धे, सीने और टाँगों का पूरा ज़ोर लगाया। अचानक सुअर ने एक ऊँची, मरती हुई चीख़ मारी और थूथनी नेज़े पर रखकर आँखें बन्द कर लीं।

"सीधा दिल में उतर गया। मैं तो आवाज़ पहचानता हूँ। ऐसी चीख़ उसी वक़्त उठती है, जब नेज़ा दिल में उतरता है। मेरी तो उम्र सुअरों में गुज़री है।" बुड्ढे सिख ने छाती फुलाकर कहा।

जानवर की टाँगें काँपीं और वह भारी जिस्म के साथ ज़मीन पर आ रहा। भीड़ में से एक शोर उठा। नईम ने नेज़ा छोड़ दिया और परे खड़ा होकर पसीना पोंछने लगा। थोड़ी देर के बाद अपने शिकार की तरफ़ देखे बग़ैर वह घोड़े की बाग पकड़कर जोगिन्दर सिंह की तरफ़ चला गया। दो जवान मरे हुए जानवर में से नेज़ा निकालने लगे।

जोगिन्दर सिंह शीशम के तने के साथ टेक लगाए बैठा था। एक नौजवान सफ़ेद सूत जलाकर उसकी राख ज़ख़्म में भर रहा था।

"मैंने तुम्हारा बदला ले लिया है।" नईम ने कहा।

वह तकलीफ़ और दर्द के दरमियान मुस्कराया। "तुम दिलेर आदमी हो। तुम मेरे भाई हो। महिन्दर सिंह होता, तो वह भी बदला लेता !"

एक पल के लिए नईम के दिल में तेज़ और काटता हुआ दर्द सिमट आया।

शाम पड़ रही थी, जब वे वापस हुए। जोहड़ के किनारे कुत्ते भौंक रहे थे और उपलों के धुएँ ने गाँव को लपेट में ले रखा था। पच्छिम में अभी तक गुज़रे हुए दिन की सफ़ेदी रुकी हुई थी और पूरबी आसमान पर सितारे एक-एक करके ज़ाहिर हो रहे थे। खेतों पर अँधेरा तेज़ी से फैल रहा था और बीच-बीच में नालियों में बहते हुए पानी का हलका शोर उठ रहा था। नीची छतोंवाले ख़ामोश घरों में दिये तेज़ी से बुझ रहे थे कि दिन भर बैलों के साथ काम करनेवाले किसान जल्द सो जाते हैं।

हवेली की दीवार के पास से गुज़रते हुए रौशन आग़ा की बग्घी को देखकर नईम चौंका। घोड़ी रोककर वह रकाबों में उठा और दीवार पर से झाँकने लगा। मिट्टी के तेल के कई लैम्प जल रहे

---

1. शक्ति जड़वत् या ग़ायव, 2. आत्म-रक्षा, 3. संवेदनशील क्षण।

थे और अहाते में रौशन आग़ा के तक़रीबन सभी किसान जमा थे। वे अपने बेहतरीन लिबासों में थे और उनकी शोख़-रंग पगड़ियों में पेच लगे तुर्रे आसमान की तरफ़ उठे हुए थे। वे दरी पर बैठे सरगोशियों में बातें कर रहे थे, और हुक़्क़ा पी रहे थे। मुंशी दीवानख़ाने के दरवाज़े पर ज़ाहिर हुआ और छोटी-छोटी तेज़ आँखों को घुमाकर इधर-उधर देखने लगा। फिर अपनी बारीक तेज़ आवाज़ में बोला, "अहमद दीन !"

सबने मुड़कर देखा। अहमद दीन घुटनों पर उठा।

"इसके मटके अनाज से भरे हैं और इसने 'मोटराना' नहीं दिया। रौशन आग़ा के सामने पेश किया जाए !" मुंशी ने कहा।

अहमद दीन सिहरज़दा[1]-सा, आहिस्ता-आहिस्ता उठकर खड़ा हो गया। उसकी नई अबरक़ लगी सफ़ेद पगड़ी का शम्ला सीधा खड़ा था और उसने लम्बे लड़ोंवाला नीला रेशमी तहमद बाँध रखा था। उसके तेल मले हुए चेहरे की सियाह जिल्द चमक रही थी।

"बैल की तरह...बैल की तरह..." मुंशी ने कड़ककर कहा और दो नौजवान लड़कों की तरफ़ देखा। लड़कों ने उठकर उसकी बग़लों में हाथ दिए और घुटनों के बल गिरा दिया। एक लफ़्ज़ मुँह से निकाले बग़ैर वह चारों हाथ-पाँव पर हो गया। मुंशी ने झटककर उसकी पगड़ी उतारी और लड़के के हाथ में दी।

"बैल को रस्सी डालो।" उसने कहा। लड़के ने पगड़ी का एक सिरा उसके गले में बाँधा। दूसरा हाथ में पकड़ लिया।

"इसके मुँह में चारा दो।" मुंशी ने कहा। एक लड़का ख़ुश्क घास लाकर उसके मुँह में ठूँसने लगा।

अहमद दीन ने दोनों हाथ हवा में फैलाए और फटी हुई आवाज़ में चिल्लाया, "नहीं... नहीं...नहीं..." उसकी बाँछों से घास के तिनके लटक रहे थे। लड़कों ने घास ठूँसकर उसका मुँह मज़बूती से बन्द कर दिया। "चलो..." मुंशी रस्सी खींचते हुए बोला।

बूढ़ा किसान चौपायों की तरह ज़मीन पर चलने और जल्द-जल्द आँखें झपकने लगा। इन्तिहाई ज़िल्लत[2] के एहसास से उसका चेहरा बदनुमा हो गया, जैसे फ़ालिजज़दा[3] या मैदाने-जंग में मरे हुए आदमी का चेहरा होता है।

अचानक बहुत ज़्यादा घबराकर नईम ने घोड़ी की पसलियों में एड़ियाँ मारीं और दीवार के साथ-साथ चलने लगा। रौशन आग़ा की बग्घी के पास से गुज़रते हुए उसने हाथ में पकड़ी हुई कीकर की छड़ी घुमाकर उसकी छत पर मारी, जो फिसलती हुई दरवाज़े के क़रीब जा गिरी। कुछ देर के बाद दरवाज़े में से एक साया निकला और फैलते हुए अँधेरे में ग़ायब हो गया।

गलियाँ वीरान और अँधेरी थीं। घोड़ी अपनी मर्ज़ी से चल रही थी कि उसने पीछे आनेवाले के तेज़ क़दमों की चाप सुनी और कान खड़े करके फुँकारी। नईम ने मुड़कर देखा।

"मैं तुमसे बात करना चाहता हूँ।" आनेवाले ने उसकी रकाब पर हाथ रखकर कहा। नईम ने अँधेरे में नौजवान स्कूल-मास्टर की आवाज़ पहचान ली। "मेरे मकान तक चलोगे ?"

"तुम्हारा मकान कहाँ है ?"

"वहाँ !" मास्टर ने अँधेरे में उत्तर की तरफ़ इशारा किया। वह घोड़ी से उतर पड़ा। कुछ देर तक खड़ा सोचता रहा। फिर बागें पकड़कर ख़ामोशी से उसके साथ चल पड़ा।

"आज बहुत थक गया हूँ।" चलते-चलते नईम ने कहा।

"मैं तुम्हें सब्ज़ चाय पिलाऊँगा !"

बाक़ी रास्ता उन्होंने ख़ामोशी से तय किया।

---

1. चकित, 2. अपमान, 3. पक्षाघाती।

एक छोटे-से टूटी-फूटी दीवारोंवाले आँगन को, जिसमें एक घोड़ा खड़ा घास खा रहा था, पार करके मास्टर ने कहा। "मैं रौशनी करता हूँ !"

कमरे की दीवार के साथ गदले शीशोंवाली लालटेन लटक रही थी। उसके ऊपर छत धुएँ से सियाह हो चुकी थी। छत कीकर के टेढ़े-मेढ़े डंडों और फूँस की थी। दीवारों पर जगह-जगह बारिश के पानी की लकीरें थीं। एक तरफ़ चूल्हा था, जिसके गिर्द खाने-पीने के चन्द बर्तन धरे थे। लम्बी-चौड़ी खाट पर सफ़ेद बिस्तर बिछा था, जिस पर कुछ किताबें रखी थीं। मेज़ पर पेंसिलें और बहुत-से सफ़ेद काग़ज़ पड़े थे। एक कुर्सी थी, जिस पर किताबें थीं। एक ट्रंक था, उस पर भी किताबें थीं।

"बैठ जाओ।" कुर्सी पर से किताबें उठाते हुए मास्टर ने कहा।

फिर वह कीकर की लकड़ियाँ तोड़-तोड़कर तरतीब के साथ चूल्हे में रखने लगा। ख़ामोश, नीम-रौशन कमरे में लकड़ियों के चटख़कर जलने की आवाज़ पैदा हुई।

"नईम, तुम्हें अफ़सोस है ?" वह आग पर लकड़ियाँ फेंकते हुए बोला।

'किसका ?"

"जो अभी हुआ। तुमने देखा नहीं ?"

काफ़ी देर बाद नईम ने भारी आवाज़ में कहा। "हाँ !"

"रौशन आग़ा बुरा आदमी नहीं। मैंने देखा कि जब अहमद दीन बैल की तरह चलता हुआ अन्दर पहुँचा, तो उसका रंग ज़र्द पड़ गया और उसने सबको बाहर निकल जाने का हुक्म दिया।" वह पानी की केतली आग पर रखकर उठ खड़ा हुआ। "लेकिन यह बकवास है। हमें इस सारे चक्कर को ख़त्म करना है।"

नईम ने चौंककर उसकी तरफ़ देखा। मास्टर ने किवाड़ बन्द करके कुंडी चढ़ा दी और नईम के सामने आ खड़ा हुआ, "तुमने अपने बाप की हालत देखी है ?" उसने गहरी, साफ़ आवाज़ में पूछा।

नईम की आँखों में वहशत की हलकी-सी झलक ज़ाहिर हुई।

"यह सारा निज़ाम[1] रद्दी नहीं ? बताओ ?"

"फिर ?"

"मुझे बताओ," मास्टर ने हाथ उसके सामने फैलाया, "अगर तुम्हें बताया जाए कि तुम इस सारे निज़ाम को बदल सकते हो, तो..."

नईम ने माथे पर हाथ फेरा, "तुम जानते हो, मास्टर, मैं हर चीज़ के लिए तैयार हूँ, मगर कैसे ?"

मास्टर जवाब देने के बजाय जाकर चाय बनाने लगा।

वह पच्चीस-तीस के लगभग जवान आदमी था, लेकिन उसके बड़े-से, लम्बोतरे चेहरे पर दाढ़ी बहुत घनी और खुरदरी थी और जिल्द मोटी और सिकुड़ी हुई थी। वह एक ग़रीब किसान था।

चाय के दो प्याले मेज़ पर रखकर वह खाट पर बैठ गया और कुहनियाँ मेज़ पर रखकर आगे को झुका, "मुझे...अपना...काम करना है। तुम्हारा काम तुम्हें ज़िले का सेक्रेटरी बताएगा। वह तुम्हें जानता है। उसने मुझसे तुम्हारे बारे में पूछा था !"

"मैं उसे नहीं जानता ! उसका क्या नाम है ?"

"वह तुम्हें जानता है। हमारे और भी कई आदमी तुम्हें जानते हैं !"

"कांग्रेस !"

"हाँ !"

---

1. व्यवस्था।

वह ख़ामोश बैठे ख़ुशबूदार सब्ज़ चाय का फीका अर्क़ पीते रहे। मिट्टी के प्यालों में से दूधिया नीम-गर्म भाप उठ-उठकर फ़िज़ा में घुल रही थी।

"तुम्हारा यहाँ क्या काम है ?" नईम ने पूछा।

"पढ़ाता हूँ। इसके अलावा कई काम हैं, जिनका तुमसे मतलब नहीं। हमारे आदमी आस-पास के गाँव में हैं।" चाय ख़त्म करके नईम उठ खड़ा हुआ।

"फिर ?" मास्टर ने पूछा।

"मैं तैयार हूँ। तुमसे मिलकर जाऊँगा। शायद परसों !"

"अल्लाह करम करे।" मास्टर बेतकल्लुफ़ी से बड़ा-सा खुरदरा हाथ बढ़ाकर सादगी से मुस्कराया। उसकी सादा, बे-फ़न[1] आँखें देखकर नईम का जी चाहा कि गर्मजोशी से उससे हाथ मिलाए। उसने मज़बूती से उसका हाथ पकड़कर हिलाया और हँसा। अपने-अपने रास्ते पर जाने से पहले रफ़ाक़त के उस एक लम्हे में उसने उस अजनबी के लिए बेपनाह दोस्ती का जज़्बा महसूस किया।

सिर झुकाए बैठा, घोड़ी को क़दम-क़दम चलाता हुआ वह सुनसान गलियों में दाख़िल हुआ। घोड़ी अपनी मर्ज़ी से, ऊँचे-ऊँचे, जाने-पहचाने, पथरीले रास्तों पर चलती घर की तरफ़ जा रही थी। पत्थरों पर उसके क़दमों की आवाज़ अँधेरे में दूर तक सुनी जा सकती थी।

नहर के पुल से उतरते हुए उसने सामने की तरफ़ देखा और उसका दिल एकबारगी ठहर गया। उतरकर उसने नहर से पानी पिया। घोड़ी को पिलाया और उसी तरफ़ दोबारा देखा।

रौशन आग़ा की बग्घी एक गढ़े में फँसी हुई थी और तीन किसान उसके पहिए से चिमटे ज़ोर लगा रहे थे। दूर से उसने अधेड़ उम्र, ख़ूबसूरत ख़ाला को देखा, जो अगला पर्दा उठाए बैठी थी। बग्घी के बराबर पहुँचकर बिलकुल ग़ैर-महसूस तौर पर नईम की घोड़ी रुक गई। वह मुँह मोड़कर पहिए को देखने लगा। अजनबी घोड़े हिनहिनाए। ख़ाला तअज्जुब और अपनाइयत से मुस्कराई।

"नईम, कहाँ जा रहे हो ?" उसने कहा।

जवाब दिए बग़ैर वह ढिठाई से खड़ा पहिए को देखता रहा।

"नईम, तुमने क्रॉस जीता था ?"

"हाँ !" वह नीचे देखते हुए बड़बड़ाया।

"कैसे ?"

उसने सामने देखा और घोड़ी को एड़ लगा दी। दाईं तरफ़ उठे हुए पर्दे में उसे एक चेहरा नज़र आया। बहुत पुराना, बहुत जाना-पहचाना चेहरा। उसे ख़याल आया कि उसने अभी-अभी गाँव में या रास्ते के जंगल में, या ख़्वाब में यह चेहरा देखा है और उसे अच्छी तरह से जानता है। यहाँ पहुँचकर उसकी सोच ख़त्म हो गई और एहसास ऊपर आ गया। उसकी एड़ियाँ ज़्यादा तेज़ी से घोड़ी की पसलियाँ पर पड़ने लगीं।

वह पक्की सड़क पर चढ़ा ही था कि अचानक उसने महसूस किया कि वह बहुत ज़्यादा थक चुका है, और अब एक पल को सवारी नहीं कर सकता। पुलिया के पास उसने घोड़ी रोकी और भारी जिस्म के साथ उतरकर दीवार पर बैठ गया। नीचे बरसाती नाला ख़ुश्क पड़ा था और जगह-जगह मवेशियों के गोबर के ढेर लगे थे। उसका दायाँ हाथ मज़बूती से लकड़ी की कलाई को पकड़े थे और वह नीचे नाले में चलते हुए एक मेंडक को देख रहा था। फिर ग़ैर-महसूस तरीक़े से उसने लकड़ी को बाज़ू से अलग किया। वह पहली बार उसे ग़ौर से देख रहा था। उँगलियों के जोड़ों पर निहायत कारीगरी से इनसानी जिल्द की झुर्रियाँ बनाई गई थीं। नाखुन गोल और ख़ूबसूरत थे। कलाई पर उभरता हुआ, कसा हुआ सेहतमन्द गोश्त था और हथेली में लकीरें थीं। यह सब उसने उस वक़्त भी नहीं देखा था, जब वह बम्बई के हस्पताल में उसे फ़िट करवा रहा था। लकड़ी के

1. निश्छल।

खुले हुए, चौड़े हाथ में से एक चेहरा उभरा। उस चेहरे के गहरे दुख और बेकसी को महसूस करके उसके हाथ की पकड़ मज़बूत हो गई और उसने लकड़ी छाती में दबा ली। सफ़ेद होते हुए नाखुनों को देखकर उसने सोचा कि वह चेहरा, वह औरत, वह वाहिद औरत थी, जो दुनिया में उसे बेपनाह रंज दे सकती थी। उम्र भर ! तकलीफ़ की शिद्दत से उसका चेहरा पीला हो गया और तेज़, काटते हुए दाँत होंठों में घुसने लगे।

तुम्हारा महबूब नाम, बहुत पुराने ख़्वाब की तरह महबूब और ख़ूबसूरत, हवा पर बहता हुआ आया और मैंने चौंककर देखा। तुम सामने खड़े थे। हमेशा की तरह दिलकश, उदास। लेकिन इससे पहले भी मैंने तुम्हें देखा है। कहाँ ? कहाँ ? सब्ज़े पर, पहाड़ों पर, बर्फ़ में चलते हुए, नैनीताल में, जब लकड़ी के बरामदे में, मूँढ़े पर बैठकर टीन की छत पर बरसती हुई बारिश की आवाज़ मैंने सुनी थी, तो तुम गुज़रे थे, और नीचे मकई के खेत में बाघ बोल रहा था और जब तुम गुज़र गए थे, तो रात चारों तरफ़ फैल गई थी और हमने शिकार किए हुए पहाड़ी बकरे का शोरबा पिया था। और बाज़ारों में, और गलियों में, और रेलगाड़ी में, मुझे याद नहीं, कितनी बार और कहाँ-कहाँ तुम्हें देखा है, लेकिन मैं तुम्हें जानती हूँ। हम सब तुम्हें जानते हैं ! तुम रौशनपुर के रहनेवाले हो और बहुत ज़ूद-रंज[1] हो। तुमने एक बाज़ू गँवाकर एक क्रॉस हासिल किया है। तुम रौशनपुर से चले गए थे। तुमसे किसने कहा था ? तुम्हें मुहब्बत करने का ढंग आता है ? यह कैसा ढंग था ? तुम सीधे चले गए, लेकिन रास्ते में जो जंगल आएगा, उसमें मैं तुम्हें फिर देखूँगी। मैं जानती हूँ, इसलिए कि तुम भुगत रहे हो। मैंने कुछ नहीं कहा था। बात सिर्फ़ यह है कि तुम बेहद बुनियादी, बेहद क़दीम[2] और बेहद ख़ालिस मर्द हो ! मैंने कुछ नहीं कहा था, ग़लती तुम्हारी थी। तुम्हारा यह कमबख़्त, मग़रूर, मर्दूद[3] सिर... ख़ुदाया...!

अज़रा ने पर्दा गिराकर हिचकोले खाती हुई बग्घी की दीवार पर सिर टेक दिया और ख़ुश्क, जलती हुई आँखों से अन्दर बैठी हुई औरतों को देखने लगी।

सूरज ढल रहा था, जब नक़्शे के मुताबिक़ शहर के उस चौराहे पर पहुँचा। कुछ देर बाद वह अपनी मंज़िले-मक़सूद[4] पर खड़ा था।

यह एक पुरानी तर्ज़ पर दो-मंज़िला ईंटों का बना हुआ मकान था, जिसकी मरम्मत की तरफ़ तवज्जुह नहीं की गई थी। घोड़ी पर बैठे-बैठे उसने बन्द दरवाज़ा खटखटाया। दरवाज़े पर कोई कुंडी न थी। दो बार खटखटाने पर भी कोई जवाब न मिला, तो उसने रिकाब में से पाँव निकाला और उसके लोहे को चन्द बार पुरानी लकड़ी के दरवाज़े पर मारा। अन्दर से एक चारपाई घसीटने की आवाज़ आई और ख़ामोशी छा गई। फिर कोई चलता हुआ आया और दरवाज़ा खुला। यह एक ठिगना, सफ़ेद बालों वाला बुड्ढा था, जिसने रेलवे मुलाज़िमीन[5] की नीली सूत की वर्दी पहन रखी थी। उसका चेहरा आम मेहनती लोगों का-सा था।

"यहाँ कौन रहता है ?" नईम ने पूछा।

"मैं रहता हूँ।" बुड्ढे ने सुकून से कहा, "मैं रेलवे में मुलाज़िम था..."

नईम ने हाथ के इशारे से उसे रोका, "इससे मुझे कोई मतलब नहीं। मैं रौशनपुर से आया हूँ। मुझे हरीचन्द ने भेजा है–मास्टर हरीचन्द..."

"ठहरो..." बुड्ढे ने कहा और अन्दर ग़ायब हो गया। कमरे में अँधेरा था और ठंडी, गन्दी हवा की मख़सूस, बीमार कर देनेवाली बू आ रही थी, जैसी तहख़ानों में से आती है। कुछ पलों बाद बुड्ढा दरवाज़े पर नुमूदार हुआ।

1. किसी बात का जल्द बुरा माननेवाला, 2. प्राचीन, 3. बहिष्कृत, 4. गन्तव्य, 5. कर्मचारियों।

"तुम्हें सवारी का बहुत शौक़ है," उसने नईम को घोड़ी पर सवार देखकर कहा, "इसे यहाँ बाँध दो। हमारे यहाँ सवार बहुत कम आते हैं !"

अन्दर दाख़िल होकर वे बाएँ हाथ को मुड़े। सामने एक और दरवाज़ा था, जिसमें एक लम्बे क़द का, दुबला-पतला आदमी खड़ा था। अगले कमरे में भी कोई लैम्प न था। एक पिछले कमरे में से निकलती हुई किरनों ने कमरे को नीम-रौशन कर रखा था। लम्बे आदमी ने गर्मजोशी से उससे हाथ मिलाया।

"मेरा नाम बालमुकुन्द है। मैं ज़िला कमेटी का असिस्टेंट सेक्रेटरी हूँ।"

वे पिछले कमरे में दाख़िल हुए। उस कमरे की छत नीची थी और तीन जगह पर कीकर के पतले तने छत को सहारा देने के लिए ज़मीन पर खड़े किए गए थे। दरमियानवाले तने से मिट्टी के तेल की लालटेन लटक रही थी। उसके नीचे एक बहुत बड़ी बेढंगी-सी मेज़ रखी थी, जिस पर लिखे और अनलिखे काग़ज़ों के अम्बार लगे थे। एक पुराना लकड़ी का क़लमदान दरमियान में पड़ा था। स्टूल पर एक मलगजे बालोंवाला शख़्स कुहनियाँ मेज़ पर रखकर झुका हुआ था। उसका चश्मा मेज़ पर पड़ा था। दूसरे स्टूल पर एक नौजवान बैठा चन्द काग़ज़ देख रहा था।

उन दोनों के दाख़िल होने पर मलगजे बालोंवाले ने सिर उठाया। उसका चेहरा मैले-सँवलाए हुए रंग का था, जैसे घोड़े की लीद के उपलों का होता है।

"रौशनपुर से...हरीचन्द ने इन्हें..." बालमुकुन्द ने कहा।

"रौशनपुर से ?" बूढ़े ने हैरतअंगेज़ तौर पर जवान आवाज़ में दुहराया।

"नईम अहमद ख़ाँ..."'

"नईम अहमद ख़ाँ !" उसने उठकर गर्मजोशी से कहा।

"मैं तुम्हें जानता हूँ। तुम्हें कुछ देर इन्तिज़ार करना पड़ेगा। मैं अभी फ़ारिग़ होता हूँ। बालमुकुन्द..."

वह फिर सिर हाथों में लेकर बैठ गया। फिर उसने चश्मा उठाकर लगाया और नौजवान की तरफ़ देखकर दुख से सिर हिलाया, "यह तो बुरा हुआ...थ...थ...थ...बहुत बुरा !"

आतिशदान के क़रीब स्टूल पर बैठते हुए नईम ने देखा कि सेक्रेटरी की मेज़ की दो टाँगें टूट चुकी थीं। एक की जगह कीकर की टेढ़ी-मेढ़ी मोटी शाख़ कीलों से जड़ी गई थी और दूसरी तरफ़ ऊपर नीचे रखी ईंटें मेज़ को सहारा दिए हुए थीं। कमरे में उसी तहख़ानेवाली बू के साथ मिट्टी के तेल और जलती हुई सूत की बत्ती की बू शामिल थी।

बग़ैर पते का एक लिफ़ाफ़ा नौजवान के हाथ में थमाने के बाद वह नईम की तरफ़ मुड़ा, "आओ, यहाँ बैठो ! तुम्हें देखकर मैं बहुत ख़ुश हुआ हूँ। मैं तुम्हें दो साल से जानता हूँ। तुम मई, 1914 की रौशन महल की पार्टी में थे !"

नईम ने बेहद चौंककर उसे देखा, जैसे वह किसी दूसरी दुनिया की बात कर रहा हो।

"मैंने तुम्हें दूर से देखा था। उसी वक़्त से हम तुम्हारी तलाश में थे, लेकिन जब हमने यहाँ पर दफ़्तर क़ायम किया, तो तुम जंग पर जा चुके थे।" वह सिर हाथों में लेकर आहिस्ता-आहिस्ता दबाने लगा। "कांग्रेस के लिए काम करोगे ?"

"इसीलिए तो आया हूँ !" नईम ने मिट्टी के तेल की बू गले में महसूस की।

"हाँ ! यह पूछने की ज़रूरत न थी, मगर तुमने जंग में नौकरी की है और इम्तियाज़[1] के साथ..."

"ओह !" नईम ने जल्दी से उसकी बात काटी, "इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता !"

"ठीक है। हमारे पास फ़ंड नहीं है। हम सिर्फ़ रोटी और कपड़ा मुहैया कर सकते हैं और...

1. विशेष योग्यता।

और हो सकता है कि तुम्हारे क्रॉस की ज़मीन भी चली जाए, ज़ब्त हो जाए !"

"मैंने कहा ना, कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता !"

"अच्छा, अच्छा !" वह स्टूल घसीटकर नईम के क़रीब हो गया, "हमें पढ़े-लिखे नौजवानों की सख़्त ज़रूरत है। ख़ासतौर से इस काम के लिए जो तुम्हारे ज़िम्मे है। यह काम अरसे से मेरे दिमाग़ में था। जितना मुश्किल यह काम है, इससे ज़्यादा मुश्किल इसके लिए मौज़ूँ[1] आदमी के इन्तिख़ाब[2] का सवाल था। तुम इसके लिए मौज़ूँ-तरीन शख़्स हो। मैं जानता हूँ, मगर तुम्हें तर्बियत[3] की ज़रूरत है। तुम पन्द्रह दिन तक यहाँ रहोगे। बालमुकुन्द तुम्हें सब कुछ बता देगा। मेरे पास आने की तुम्हें अब ज़रूरत नहीं, मगर जाती दफ़ा मुझसे मिलकर जाना, ख़ुदा हाफ़िज़..."

उससे हाथ मिलाते हुए नईम ने महसूस किया कि उसके मुर्दा चहरे के बरअक्स[4] उसके हाथों का लम्स[5], उसकी आवाज़ की मानिन्द हैरतअंगेज़ तौर पर जवान और गर्म था।

बीच के कमरे में आकर बालमुकुन्द ने लालटेन जलाई। कमरे में सिर्फ़ एक चारपाई थी, जिस पर बिस्तर लगा हुआ था। बालमुकुन्द ने उसकी तरफ़ इशारा किया, "यह मेरा बिस्तर है, तुम इस पर सो सकते हो। जुएँ-वुएँ नहीं हैं। बेफ़िक्र रहो !"

"तुम कहाँ सोओगे ?" नईम ने पूछा।

"मैं भी सो जाऊँगा !" उसने लापरवाही से कहा।

नईम ने टोपी उतारकर उसके साथ धूल में अटा हुआ चेहरा साफ़ किया और बिस्तर के कोने पर बैठ गया, "मैं सवेरे से भूका हूँ !"

"चावल पक गए होंगे !" बालमुकुन्द ने अपने आपसे कहा।

कुछ देर के बाद नईम ने गोभी के शोरबे के साथ सुर्ख़ उबले हुए चावल पेट भरकर खाए और बालमुकुन्द से हाथ का बना हुआ सिगरेट क़बूल किया, जिसका काग़ज़ ख़ासा रद्दी था।

दो हफ़्ते के बाद नईम ने सेक्रेटरी की मेज़ पर से उठकर हाथ मिलाने के लिए बढ़ाया, "ख़ुदा हाफ़िज़ !"

"ख़ुदा हाफ़िज़ !" सेक्रेटरी ने उसका हाथ दबाते हुए कहा, "अच्छी तरह सोचो, समझो, देखो और सुनो। और वही करो, जो मुनासिब और दुरुस्त हो और...अपनी जान की हिफ़ाज़त करो। तुम मेरे बेटे हो, लेकिन सबसे पहले तुम हिन्दोस्तान के बेटे हो... ख़ुदा हाफ़िज़..."

दरवाज़े पर वह बालमुकुन्द से रुख़सत हुआ।

"तुम बहुत ख़तरनाक लोगों में जा रहे हो, मगर हममें से किसी को यह काम भी करना था," बालमुकुन्द ने अपनी तेज़ चमकीली आँखों से, जो उसके चेहरे पर अजनबी दिखाई देती थीं, देखते हुए कहा, "तुम्हारी ज़िन्दगी तुम्हारी निस्बत हमारे लिए बहुत क़ीमती है। बहुत ज़्यादा...मैं दुआ करूँगा कि तुम हिन्दोस्तान की आज़ादी अपनी आँखों से, अपने वुजूद[6] की पूरी क़ुव्वतों[7] के साथ देखो और..."

"बालमुकुन्द..." नईम लालटेन की धुँधली रौशनी में उससे बोला : "तुम्हारी आँखें बड़ी ग़ैर-मामूली[8] हैं। मुझे पसन्द हैं !"

बालमुकुन्द लड़कियों की तरह शरमाया और उसके ज़र्द चेहरे पर हलकी-सी सुर्ख़ी दौड़ गई।

"ज़िन्दगी की ज़्यादातर क़ुव्वतें, जो हम पर अमल-पैरा[9] होती हैं, अक्सर आँखों पर असरअन्दाज़ होती हैं। तुम भी जब अस्ल ज़िन्दगी के तकलीफ़देह और गर्द-आलूद मेहनत के चन्द साल गुज़ार लोगे, और तुम्हारे जिस्म पर चन्द और ख़राशें आ जाएँगी, तो तुम्हारी आँखें भी ग़ैर-मामूली हो जाएँगी। या रौशन, या अन्धी ! यह तुम्हारी आँखों पर मुन्हसिर[10] है।" वह मुँह

1. उपयुक्त, 2. चुनाव, 3. प्रशिक्षण, 4. प्रतिकूल, 5. स्पर्श, 6. अस्तित्व, 7. शक्तियों, 8. असाधारण, 9. क्रियाशील, 10. निर्भर।

मोड़कर खड़ा हो गया। उसके चेहरे पर, जो लालटेन की रौशनी में आ गया था, अलविदाई नज़र डालते हुए नईम ने उसके होंठों की हलकी उदास मुस्कराहट को महसूस किया।

13

"आज चालीस रोज़ हो गए।" उसने लेटे-लेटे सोचा और सीधा हाथ फैलाकर पथरीली ज़मीन को महसूस किया।

यह एक बड़ा-सा, तारीक[1] कमरा था, जिसका फ़र्श और दीवारें बड़े-बड़े, मैले पत्थरों की बनी हुई थीं। छत ऊँची और तारीक थी। कमरे की वाहिद[2] खिड़की बन्द थी। एक बे-किवाड़ का दरवाज़ा लकड़ी के भारी तख़्ते की मदद से बन्द किया गया था। छत के क़रीब छोटे-से सूराख़-नुमा रौशनदान में आनेवाली रौशनी कमरे की तारीकी बढ़ा रही थी। वह देर से फ़र्श पर लेटा हुआ था।

"आज चालीसवाँ दिन है," उसने मायूसी से सोचा, "और मैंने कुछ नहीं किया। बल्कि उनके साथ मिलकर ख़ुद... ख़ुद भी..." वह झल्लाकर उठा और घुटनों के गिर्द बाज़ू लपेटकर बैठ गया।

"और यह शीला कमबख़्त !"

"एक...दो...तीन...तीन लाइनें...जिनमें मैं भी शामिल था...तीन..." उसने तकलीफ़ से दोहराया, "एक के लिए तो मैंने ख़ुद डाइनामाइट...बालमुकुन्द को अगर पता चल जाए कि उसके प्यारे हिन्दोस्तान के साथ मैं क्या सुलूक कर रहा हूँ...प्यारा हिन्दोस्तान...माई फ़ुट...मैं क्या कर सकता हूँ...यह ज़रूरी था। इन ख़तरनाक, मायूस, भेड़ियों...हरामज़ादों.." उसने दिल में बहुत गाली दी, "दहशतपसन्दों[3] के साथ रहने के लिए और क्या कर सकता हूँ..." ख़यालात की रवानी[4] के पीछे या दरमियान में कहीं, उसने यह भी सोचा, कि यह तीसरी बड़ी गाली है, जो अपनी उम्र में उसने दी। "ऐसे नामुराद लोग मैंने मैदाने-जंग में भी नहीं देखे। या अल्लाह ! वह अंग्रेज़...किस क़दर बेदर्दी से उसे..." मैंने झुरझुरी ली।

दरवाज़े पर लकड़ी का तख़्ता आहिस्ता से हटा और एक लड़की का गोल चेहरा नुमूदार हुआ।

"लकड़बन्द क्या हाल है ?" उसने बच्चों के शोख़ लहजे में पूछा।

"ठीक है !"

लड़की तख़्ता उठाकर अन्दर आ गई। उसका चेहरा छोटा और जिस्म गदराया हुआ था। वह अपनी उम्र के लिहाज़ से लम्बी दिखाई देती थी।

"तुम आज क्यों नहीं गए ?" उसने नईम पर झुककर पूछा।

"मेरी तबीअत ख़राब थी !"

"बारूद लगाने से डरते हो ?"

"बको मत !" वह फिर फ़र्श पर लेट गया। कमरे में दो-एक बे-मक़सद चक्कर लगाने के बाद लड़की बाहर निकल गई। जो ज़रा-सी रौशनी दरवाज़े के रास्ते आ रही थी, ख़त्म हो गई।

"आज मैं नहीं गया। ठीक है। कल सिरदर्द का बहाना भी न बनाऊँगा, साफ़ इनकार कर दूँगा। पहले ही काफ़ी बेगुनाह ख़ून बहा लिया है, लेकिन इसका फ़ायदा है ? मैं सब कुछ कह क्यों नहीं चुकता हूँ। ऐं ? लाहौल वला क़ुव्वत ! मुझे यहाँ आना ही नहीं चाहिए था। मैं इनसे कुछ नहीं कह सकता। वह इतने अच्छे, इतने दुखी, इतने...और यह शीला...शीला...यह लड़की..." लकड़ी का तख़्ता फिर खिसका और शीला ने अन्दर झाँका।

"लकड़बन्द, चाय पियोगे ?"

"नहीं !" उसने लेटे-लेटे जवाब दिया।

---

1. अँधेरा, 2. एकमात्र, 3. आतंकवादियों, 4. प्रवाह।

वह अन्दर आकर उसके पास बैठ गई, "क्यों ? बारूद लगाने से डर लगता है ?"

"मत हँसो !" नईम ने ख़फ़गी[1] से कहा।

"क्यों ? बारूद तो मैं भी लगा सकती हूँ !" वह दोबारा हँसी।

नईम उठकर बैठ गया।

"क्या देखते हो ?" शीला ने आँखें चमकाकर कहा।

वह चुपके से उठकर दीवार के पास जा खड़ा हुआ। कुछ देर तक वह खिड़की की ज़ंग लगी चटख़नी से उलझता और सुर्ख़ होता रहा।

"इसे मत खोलो," शीला ने कहा, "बाबा नाराज़ होगा।"

उसने खिड़की का एक पट ज़रा-सा सरकाया। रौशनी की एक लम्बी लकीर कमरे में दाख़िल हुई। सामने छोटे-से पहाड़ी गाँव के पीछे सूरज डूब रहा था। ऊपर-नीचे बने हुए लकड़ी के मकान दूर से सीढ़ियों की तरह दिखाई देते थे। गाँव के दामन में घने, सियाह बाग़ थे। उनसे नीचे खेतों में धान की फ़सल खड़ी थी।

"और यह कमबख़्त बाबा, आज तक पता नहीं चल सका कि किसके साथ है ?" उसने हथेलियों से आँखों को मला, "इतनी मुद्दत से दिन की रौशनी में हरियाली नहीं देखी !"

"लकड़बन्द, सुनो !" शीला उसके क़रीब आकर बोली।

"मुझको लकड़बन्द मत कहो," नईम ने ख़फ़गी से कहा।

"क्यों ?"

"क्यों ?...क्यों ?..." उसने जलकर नक़ल उतारी, "नईम अहमद ख़ाँ मेरा नाम है !"

"भाई ने मुझे बताया था कि तुम्हारा यह..." उसने बनावटी हाथ को डरते-डरते छुआ, "लकड़ी का है...तो...हमारे गाँव में एक लँगड़ा था, एक बावला था। हम उसे लँगड़ा और बावला कहते थे !"

"अच्छा तो सुनो...हम यूँ नहीं कहते। हम कहते हैं, नईम अहमद ख़ाँ और शीला रानी... कहो ?"

"नईम अहमद ख़ाँ और शीला रानी..."

दोनों हँस पड़े। धान के खेत पर से मुर्ग़ाबियों की डार गुज़र रही थी।

"नईम अहमद ख़ाँ, तुम बात क्यों नहीं करते ?"

"करता हूँ !"

"कब ? इतने महीने हो गए तुमने कभी बात नहीं की ?"

"सिर्फ़ एक महीना और दस दिन हुए हैं !"

"तुम बड़ा हिसाब रखते हो !"

"अच्छा, सुनो ! मेरा यह हाथ असली हाथ है, देखो !" उसने लकड़ी की उँगलियों से उसकी नाक को छुआ, "यह तुम्हारी नाक है। मैं महसूस कर सकता हूँ। यह तुम्हारी आँखें हैं। यह होंठ हैं। यह गाल हैं। यह ठोड़ी है। यह गर्दन है..." वह देर तक लड़की के चेहरे की गन्दुमी, बेदाग़ जिल्द पर ठंडी, ठोस उँगलियाँ फेरता रहा। और उसने महसूस किया, जैसे कि वे उसकी असली उँगलियाँ हैं और उनमें ख़ून दौड़ रहा है और लड़की की जिल्द का गर्म लम्स ख़ून में शामिल होकर उसके सारे बदन में गर्दिश कर रहा है और उसके रौंगटे खड़े हुए जा रहे हैं। लड़की खिलखिलाकर हँस पड़ी।

"नईम अहमद ख़ाँ ! तुम कल... ?"

"नईम अहमद ख़ाँ मत कहो, सिर्फ़ नईम कहो।"

"तुम्हारे कितने नाम हैं ?"

1. स्पष्टता।

वह हँसा।

"नईम, कल जाओगे ?"

"कहाँ ?"

"लाइन पर !"

"नहीं...तुम्हें हर बात का कैसे पता होता है ?" वह ग़ुर्राया।

"मुझे हर बात का पता होता है।" लड़की ने आँखें नचाकर कहा, "क्यों नहीं जाओगे ?"

"मैं यह काम नहीं कर सकता !"

"यहाँ क्यों आए हो फिर ?"

"क्यों ?...अररररर...पता नहीं..."

"पता नहीं !" लड़की ने हलका-सा क़हक़हा लगाया, "रोटी यहाँ मुफ़्त नहीं मिलती, जनाब ! वापस जाइए !"

"ओह !" नईम ने गाल फुलाकर साँस छोड़ी, "मैं वापस चला जाऊँगा !"

लड़की आँखें झपकाती हुई उसकी तरफ़ देखती रही, "नईम, एक बात बताओ !"

"क्या ?"

"तुम मुझसे मिलने के लिए यहाँ रह गए थे ?"

"नहीं !"

"फिर ?"

"मेरी तबीअत ख़राब थी !"

वह एकदम बुझ गई, "अच्छा ?" उसने बाहर देखते हुए बेख़याली से कहा। खिड़की में से आती हुई सितारों की रौशनी में उसके होंठों की बारीक, सुर्ख़ जलती हुई लकीरें बहुत मद्धिम हो गईं।

नईम हँसा और सीधे हाथ से उसकी ठोड़ी को छुआ, "अच्छा, माना कि तुम्हारे लिए ठहर गया था !"

लड़की की आँखें अँधेरे में चमकीं, "तो ठीक है !"

"क्या ?"

"मैं तभी समझ गई थी। तुम्हारी आवाज़ बीमारोंवाली नहीं है !"

अँधेरे में नईम ने खोखली हँसी की आवाज़ वाज़ेह[1] तौर पर सुनी। उसने हाथ बढ़ाकर खिड़की बन्द करना चाहा, लेकिन शीला रास्ते में खड़ी रही।

"क्या देख रही हो ?"

"गाँव !"

"तुम्हारा भी गाँव था ?"

"हाँ ! वह मैदानों में था और बड़ा ज़रख़ेज़[2] था।"

"नागपुर के पास ?"

"हाँ ! तुम्हें कैसे पता है ?"

"तुम्हारे भाई ने बताया था। तुम्हारा वहाँ कोई दोस्त था ?"

"नहीं !"

"तुम झूठ बोलती हो।"

"नहीं...नहीं..." वह नीची आवाज़ में चीख़ी।

नईम ने कन्धे उचकाए, "यूँ ही मुझे ख़याल हुआ था ?"

1. स्पष्ट, 2. उपजाऊ।

''दोनों ख़ामोश खड़े रहे। फिर लड़की ने आहिस्ता-आहिस्ता कहना शुरू किया, ''मदन घर से भाग गया। मैं अकेली-अकेली खेला करती थी। गाँव में हर साल हैज़ा फैलता था। पहले माँ मरी। फिर बाप। फिर मदन कहीं से आ गया...फिर...''

''मुझे पता है,'' नईम ने हाथ से उसे ख़ामोश रहने का इशारा किया, ''मुझे सब पता है। तुम्हारे भाई ने बताया था !''

''कब ?''

''जब पहली बार लाइन पर गए थे। तुम पर बहुत ज़ुल्म हुए हैं।''

''अच्छा !'' शीला ने तअज्जुब से, बेध्यानी से अँधेरे में देखते हुए कहा।

चाँद की आख़िरी तारीख़ें थीं और सारे में तारीकी और सितारों की मद्धिम रौशनी फैली हुई थी। सामने पहाड़ी पर ऊपर-नीचे बने हुए मकानों में दिये जल रहे थे और बुझ रहे थे। उनकी खिड़की के नीचे एक पहाड़ी झरना बहता था। पत्थरों पर बहते हुए पानी की खनक, जो दूर चलते हुए रहट की आवाज़ से मिलती-जुलती थी, उनके कानों में आ रही थी। रात का एक परिन्दा फड़फड़ाकर खिड़की के सामने से गुज़रा।

''मैं जाऊँ ?'' लड़की ने सहमकर कहा।

''ठहरो !''

''अभी फ़रिश्ता गुज़रा था।'' लड़की ने कहा।

वह हँसा, ''नहीं। चमगादड़ थी !''

''चमगादड़ ?'' शीला ने ख़ौफ़ज़दा आवाज़ में दोहराया, ''ऐसा मत कहो। वह फ़रिश्ता था। यह जब भी गुज़रता है, वे आ जाते हैं। मुझे अब जाना चाहिए।''

लेकिन वह खड़ी रही।

''तुम कहाँ सोती हो ?''

''साथवाले कमरे में !''

''अच्छा ? मैं समझा, गाँव चली जाती हो !''

''तुम दरवाज़े के पास सोते हो ?''

''तुम्हें कैसे पता है ?''

''तुम बड़े ज़ोर के ख़र्राटे लेते हो। मुझे गुस्सा आ जाता है !''

''अच्छा ?'' वह धीरे से मुस्कराया, ''तख़्ता हटाने का शोर होता है ?''

''नहीं, मैंने कई बार हटाकर तुम्हें देखा है।''

''क्यों ?''

''तुम सोने नहीं देते थे। मेरा जी चाहता था, तख़्ता तुम्हारे ऊपर दे मारूँ।''

वह फिर मुस्कराया। एक और चमगादड़ फड़फड़ाती हुई खिड़की के पास से निकल गई। शीला ने हाथ उठाकर उसकी कुहनी पर रखा और आँखें फैलाकर अँधेरे में परिन्दे का पीछा किया। फिर वह चुपके से बाहर निकल गई।

आधी रात के क़रीब, बारिश अभी शुरू हुई थी कि वे तीनों आ गए। कमरे में दाख़िल होकर उन्होंने आतशदान पर पड़ा हुआ दिया जलाया।

''बारूद गीली हो गई ?'' इक़बाल ने क़मीज़ आतशदान पर फैलाते हुए पूछा।

''नहीं ! मेरे पेट पर थी,'' बैनर्जी ने क़मीज़ का दामन झटका और कमर पर से बारूद की पेटी खोलने लगा।

''आतशदान से दूर रखना,'' इक़बाल ने कहा।

''सुन-सुनकर कान पक गए हैं। ख़ामोश रहो,'' बैनर्जी ने हवा में मुँह उठाकर गाली दी। फिर

इक़बाल और बैनर्जी ने एक साथ उसी अनजानी चीज़ को तल्ख़ लहजे में गालियाँ दीं, और कपड़े उतारने लगे।

नईम दीवार के सहारे, घुटनों के गिर्द बाज़ू लपेटे बैठा, सुर्ख़ बेख़्वाब आँखों से उन्हें देखता रहा। उनके बालों से पानी की बूँदें टपक रही थीं। मदन आतशदान पर बैठा आग जलाने की कोशिश कर रहा था। इक़बाल ने कमर से पिस्तौल खोलकर कील पर लटकाया। कील उखड़ गई और सन के ख़ोल में लिपटा हुआ बड़ा-सा पिस्तौल आवाज़ पैदा करता हुआ फ़र्श पर गिर पड़ा। इक़बाल कुछ पलों तक उसे उठाने का इरादा करता रहा। फिर आतशदान के पास टाँगें फैलाकर बैठ गया।

"सिगरेट है ?" उसने पूछा।

"नहीं !" मदन ने कहा।

उसने कन्धे ढुलकाए और दीवार पर सिर रखकर आँखें बन्द कर लीं। ऊपर दिया जल रहा था। उसके चेहरे की उभरी हुई हड्डियाँ, आँखों और गालों के गढ़ों पर साया किए हुए थीं। दीवार के साथ यूँ साकित[1] बैठा वह चिकनी सियाह मिट्टी का बुत मालूम हो रहा था। उसके बाल खुरदरे, घुँघरियाले और गन्दे थे, और मज़बूत बनावट का चेहरा कमज़ोर दिखाई दे रहा था। नईम के दिल में उसके लिए बे-मालूम-सा रहम पैदा हुआ। उसने उठकर कील गाड़ी। उसका पिस्तौल लटकाया, और उसके पास जाकर एक सिगरेट निकालकर दी।

"कैसे हो ?" ख़ामोशी से सिगरेट सुलगाकर इक़बाल ने पूछा।

"ठीक हूँ !"

"क्या करते रहे ?"

"कुछ नहीं," नईम ने आग में देखते हुए कहा, "सोचता रहा।"

"तुम सोच लेते हो ?" बैनर्जी ने पलटकर तमस्ख़ुर[2] से पूछा।

"हाँ !" नईम ने ढिठाई से उसके चेहरे को देखते हुए कहा।

"बेहतर है कि सोचना छोड़ दो," वह दीवानावार गीले सिगरेट को सुलगाने की कोशिश करता हुआ बोला, "मैंने भी छोड़ दिया है।"

मदन ने एक लकड़ी तोड़कर आग में फेंकी और मुस्कराया, "तुम्हारे लिए यह काम मुश्किल था, तुमने छोड़ दिया।"

"क्यों ? यह मैंने ही सोचा था कि हम सबमें से आग जलाने के लायक़ सिर्फ़ तुम हो। देखो, तुम कम-से-कम वक़्त में आग जला लेते हो। मैं ख़ुश हूँ," उसने हाथ बढ़ाकर आग तापी, "हम सब ख़ुश हैं।"

उसके छोटे-से मक्कार और ज़हीन चेहरे पर तारीफ़ी[3] मुस्कराहट नुमूदार हुई। अपने दो कम्बल घसीटकर वह आग के क़रीब आ गया। बन्द कमरे में पत्थरें पर पड़ी हुई धूल उड़ी और उसकी नागवारी को सबने महसूस किया।

"तुम अपने बिस्तर से जुदा नहीं हो सकते ?" इकबाल ने नाक सिकोड़कर कहा, "औरतों की तरह !"

"हम खिड़की भी नहीं खोल सकते," मदन ने कहा।

बैनर्जी सिगरेट को उँगलियों में फिराता हुआ सोच रहा था। नईम उसकी तरफ़ झुका, "तुम वाक़ई ख़ुश हो, मधुकर ?"

"हाँ !" तुमने ऐसी ख़ौफ़नाक शक्ल क्यों बना रखी है ?" उसने बेज़ारी से सिगरेट को आग में उछाला, "गीला हो गया है !"

"बारूद की बजाय तुम्हें तम्बाकू बचाना चाहिए था।" नईम ने कहा।

---

1. निश्चल, 2. व्यंग्य, 3. प्रशंसात्मक।

"हाँ ! शायद..."

"अब बारूद पियो !"

शीला अलमूनियम के बड़े बर्तन में पानी भरकर लाई और उसे आग पर रख दिया।

"बुड्ढा कुछ खाने को देगा ? मैं भूक से मर रहा हूँ," मदन ने कहा।

"पता नहीं," वह कमर पर हाथ रखे खड़ी रही। घने सियाह बालों की लट उसके गाल पर लटक रही थी, और आँखें आग की रौशनी में चमक रही थीं।

"शीला ! कुछ खाने को दो।" मदन ने नरमी से कहा। नईम ने महसूस किया कि उसका माथा और आँखें बिलकुल अपनी बहन से मिलती-जुलती थी। शीला "अच्छा" कहकर बाहर निकल गई। कुछ देर के बाद बुड्ढा हाथ में खाने का बर्तन लिए दाख़िल हुआ।

"आज कुछ आलू पकाए हैं, लौंडो !" उसने जुनूबी (दक्षिणी) हिन्द के किसानों के लहजे में कहा। सख़्त गन्दा बर्तन आलुओं के सुर्ख़ शोरबे से भरा हुआ था और उसमें से हलकी-हलकी भाप उठ रही थी। चारों मर्द अपनी-अपनी मसरूफ़ियत छोड़कर बर्तन के गिर्द जमा हो गए। बुड्ढा अपने हुक़्क़े पर झुक गया।

"रोटियाँ !" दो आदमी एक साथ बोले।

"ओह !" बुड्ढे ने बड़े फ़ौजी कोट की जेब में से चन्द मैली रोटियाँ निकालकर उन्हें दीं। फिर उसने मधुकर बैनर्जी की लम्बी, बारीक छुरी कपड़े के ख़ोल में से निकाली और उसकी मदद से हुक़्क़े की नाली में जमा हुआ तम्बाकू का मैल खुरचने लगा।

देर तक वे आतशदान के सामने बैठे भूके, थके हुए जबड़ों के साथ खाना चबाते रहे। आग की रौशनी में उनकी कनपटियों और जबड़ों पर एक-एक हड्डी और पट्ठा अलग-अलग दिखाई दे रहा था। बाहर बारिश लगातार हो रही थी। खिड़की पर उसकी हलकी, मुसलसल आवाज़ कमरे की ख़ामोशी और उदासी में बढ़ा रही थी। अन्दर चीड़ के जलने की हलकी फुँकार और खाना खाने की आवाज़ें थीं। बुड्ढा एक पत्थर पर आँखें बन्द किए बैठा हुक़्क़ा पी रहा था।

"लौंडिया के लिए कुछ रहने दो। और कुछ नहीं है।" आँखें बन्द किए-किए वह बोला।

चारों मर्दों ने उसे घूरकर देखा। फिर तक़रीबन सबने एक साथ हाथ खींच लिया।

बर्तन बुड्ढे के हवाले करके वे आग के क़रीब होकर बैठ गए। मधुकर ने गीले सिगरेट को सुलगाने की चन्द मिनट बेकार कोशिश के बाद उसे आग में उछाल दिया और हवा में गाली दी।

"आज क्या हुआ ?" नईम ने इक़बाल से पूछा।

वह मुँह फेरकर क़मीज़, जो अब ख़ुश्क हो चुकी थी, पहनने लगा।

"डाकख़ाना ख़ामोश हो गया ?" नईम ने फिर पूछा।

"ऊँ...हूँ !"

"और तार ?"

"हूँ हुंक..." इक़बाल ने आग में देखते हुए दोबारा नाक में से मिली-जुली आवाज़ निकाली।

"तुम बोल नहीं सकते ?" नईम ने तेज़ी से कहा।

इक़बाल ने नाराज़ी, अलगाव और उकताहट से उसकी तरफ़ देखा और दीवार पर सिर रख दिया, "बेज़ार मत करो ! मैं थका हुआ हूँ !"

"तुम्हारे पास कहने के लिए कुछ है ही नहीं। तुमने कुछ भी नहीं किया !"

इक़बाल ने आहिस्ता-आहिस्ता आँखें खोल दीं, "हमने एक आदमी को ख़ामोश किया है। मेरे पास कहने के लिए बहुत कुछ है।" उसने आहिस्ता-आहिस्ता कहा।

"सिर्फ़ जब मजबूर कर दिए जाओ, वरना कुछ नहीं। तुम कुछ भी याद नहीं रखना चाहते।

तुमने कोई ऐसा काम नहीं किया, जिसके बारे में बात कर सको। मैं जानता हूँ। मैंने महसूस किया है।"

"बेकार बैठे-बैठे तुम नाकारा हो गए हो," मधुकर ने मायूसी से सिर हिलाया, "अच्छा होता तुम हमारे साथ चलते।"

"और...और..." नईम सख़्त ग़ुस्से में कुछ कहता-कहता रुक गया।

मधुकर उसकी तरफ़ झुका, "और यह क्या चलन हैं तुम्हारे ? बावले हो ?"

नईम ख़ामोश बैठा छोटी-छोटी कमज़ोर लकड़ियों को उँगलियों से तोड़ता रहा। धीरे-धीरे उसने अपने आप पर क़ाबू पा लिया।

इक़बाल दीवार से लगा-लगा सो गया था। मदन अपनी रान के ज़ख़्म को गर्म पानी से धो रहा था। बन्द खिड़की से लगातार बारिश की आवाज़ आ रही थी। मधुकर ने चन्द लकड़ियाँ आग पर फेंकीं। चीड़ के धुएँ की तेज़ बू कमरे में फैली। फिर लकड़ियाँ भड़ाक् से जल उठीं। शीला अपने भाई के ज़ख़्म पर पट्टी बाँधने लगी।

"कौन था ?" नईम ने पूछा।

"चौकीदार।" मदन ने बताया।

"फिर ?"

"फिर वे होशियार हो गए !"

"क्यों ?

"हमसे ग़लती हो गई।"

"उसे क़त्ल करना ज़रूरी था ?" नईम ने मश्कूक[1] नज़रों से इक़बाल की तरफ़ देखते हुए पूछा।

"ओह !" मदन ने कन्धे उचकाए, "शुरू हमले में हमसे ग़लती हुई, जो बाद में...यूँ करना ही पड़ा !"

शहद की-सी साफ़ आवाज़ में नईम बोला, "मैं जानता हूँ !"

"क्या ?"

"इसी वजह से डरा हुआ है।" उसने फिर इक़बाल की तरफ़ देखा।

"डरा हुआ ?" मधुकर हैरत से पुकारा, "वह एक मच्छर की तरह क़त्ल कर सकता है। पता है तुम्हें ?"

"ग़लत !" नईम ने ग़ुस्से से घूँसा अपनी रान में मारा, "मैं तुम्हें बताता हूँ। वह इस वक़्त ख़्वाब में भी यही देख रहा है !"

मदन और मधुकर ने तमस्ख़ुर से उसे देखा।

"क्या देखते हो ?" उसने आग की तरफ़ हाथ फैलाया, "यह सबक़ मैंने मैदाने-जंग में सीखा था। तुम किसी इनसान को मच्छर की तरह नहीं मार सकते। कभी नहीं..." वह आगे की तरफ़ झुककर बैठ गया, "सुनो...बहुत-से मच्छरों को...यह उसने मुझे बताया था। बहुत-सी च्यूँटियों को तुम आसानी से मार सकते हो। एक को नहीं...वह बेगुनाह आदमी था और एक आदमी था, और मज़दूर था या किसान था और ग़रीब भी था। चुनाँचे वह हमेशा उसके ख़्वाब में आएगा। मैं जानता हूँ !"

अचानक मधुकर का क़हक़हा बुलन्द हुआ–ऊँचा, ज़ोरदार, वहशी क़हक़हा। इक़बाल ने घबराकर आँखें खोल दीं। हँसते-हँसते मधुकर की आँखें उभर आईं और चेहरा सुर्ख़ हो गया। उसने हाथ चौड़ा करके इक़बाल की रान पर मारा।

"तुम ख़्वाब में क्या देख रहे थे ?"

---

1. संदिग्ध।

इक़बाल ख़ामोश ग़ुस्से के साथ उसे देखता रहा।

"बेगुनाह आदमी, और एक आदमी..." वह हँसते-हँसते झुक गया, "बेगुनाह आदमी और एक आदमी, सुना ? यह कहता है, चौकीदार तुम्हारे ख़्वाब में आएगा। वह बेगुनाह आदमी और एक आदमी है। बेगुनाह और एक...हुँह...हुँह...हो हो हा हा हा हा...बेगुनाह और एक..." इक़बाल उसी तरह सिर दीवार से टेके सुर्ख़ आँखों से उसे घूरता रहा। फिर खिसककर ज़मीन पर लेट गया—"शोर मत मचाओ। मुझे सोने दो !" उसने बेज़ारी से कहा।

आहिस्ता-आहिस्ता मधुकर ख़ामोश हो गया। फिर भी वक़्फ़े-वक़्फ़े पर ख़ामोश हँसी के झटके उसके पेटं और कन्धों पर ज़ाहिर होते रहे। बारिश थम चुकी थी। खिड़की की दरज़ों में से झरने का हलका शोर अन्दर आ रहा था। आतशदान में लकड़ियाँ चटख़ रही थीं। मर्दों पर ग़ुनूदगी तारी[1] थी और वे सोने की कोशिश कर रहे थे। नींद किसी को नहीं आ रही थी।

मैं आज सोचता रहा। हम पत्थर छोड़कर मैदानों में क्यों नहीं चले जाते, "धीमी, साफ़ आवाज़ में नईम ने कहा। इक़बाल आँखें खोलकर जलते हुए कोयलों को देखने लगा। उसकी आँखें ख़ुश्क थीं और चेहरा आग की वजह से सुर्ख़ हो रहा था। वह ख़ामोश लेटा रहा।

"क्या फ़र्क़ पड़ता है," मदन ने गर्म ईंट से ज़ख़्म पर टकोर मारते हुए कहा।

"यहाँ पर क्या है ? पत्थरों में कुछ पैदा नहीं होता। पत्थर पानी भी जज़्ब[2] नहीं करते। यहाँ पर जो पानी बहता है, ऊपर से गुज़र जाता है। यह जगह बाँझ औरत की तरह है !"

"यह जगह ज़्यादा महफ़ूज़[3] है !"

"महफ़ूज़ ? यह सारी जगह महफ़ूज़ है, "नईम ने बाज़ू फैलाकर कहा, "यह दुनिया इनसान का घर है—सारी दुनिया, जहाँ खाने को मिलता है, वह जगह सबसे ज़्यादा महफ़ूज़ है !"

"हुँह !" मदन हँसा, "खाने को ? खाने को किसे मिलता है ? हमें ? मुज़ारों को ? खाने को कौन देता है ?" ज़ख़्म पर ईंट की तपिश महसूस करके उसने निचला होंठ दाँतों में दबा लिया, "तुम चाँद पर से आए हो, या मैदानों में से ? तुम्हें वहाँ खाने को मिलता था, तो वह जगह तुम्हारे लिए महफ़ूज़ थी। तुम यहाँ क्यों आए ?"

"इसीलिए तो..."

"सुनो..." मदन ने बात काटी, "खाने के लिए बैलों को भी मिलता है, मगर बैलों और इनसानों में बड़ा फ़र्क़ है। वहाँ बैलों और आदमियों को एक ही बर्तन में खाना मिलता है। तुम नहीं जानते ? इनसानों की पगड़ी सिर पर होती है, गले में नहीं होती। इनसानों को खाना इज़्ज़त से, आबरू से मिलना चाहिए। वहाँ पर खाना सिर्फ़ बैल की नाँद में मिलता है !"

"मैं जानता हूँ," नईम ने हाथ उठाकर उसे चुप कराया, "लेकिन इज़्ज़त और आबरू के लिए एक बहुत बड़ी जंग की ज़रूरत है। उससे भी बड़ी, जो मैंने देखी है। हमारे पास हथियार नहीं हैं। हम कमज़ोर हैं। नीचे जाकर हम एक बड़ी जंग शुरू कर सकते हैं। एक नई जंग, जो बिना हथियारों के होगी, मगर लाखों और करोड़ों में होगी। इस तरह, जैसे हम कर रहे हैं, हम कोई जंग नहीं जीत सकते।"

"नीचे जाकर ?" मदन ने सख़्त झल्लाकर कहा, "नीचे जाकर हम फिर उन्हीं लाखों-करोड़ों में मिल जाएँ, जिनसे हम भागे हैं ? फिर बैलों की तरह काम करें ? तुम्हें पता है, वे कितनी मेहनत करते हैं और उन्हें खाने को कितना मिलता है। वे कितने घंटे काम करते हैं और कितने घंटे सोते हैं ? तुमने मेरे बाप को खेतों में काम करते हुए देखा है ? या अपने बाप को ? उनकी उँगलियाँ टेढ़ी हो गई हैं और पीठ की खाल धूप में जल गई है और आँखों में पसीना बह-बहकर वे अन्धे हो गए हैं और उन पर इतना क़र्ज़ है कि सात पुश्तें अदा नहीं कर सकतीं। और तुमने मालिकों

1. ऊँघ छाई, 2. सोखना, 3. सुरक्षित।

के मकान देखे हैं, और ज़मीनें, और मवेशी ? और जितना दूध रोज़ाना उनके घर में जाता है, उतना तुमने सारी उम्र में भी पिया है ? तुम कहाँ की बात करते हो ?''

''ओह ! मदन !'' नईम ने माथे पर हाथ फेरा, ''उन लोगों से बचकर तुम कहाँ जा सकते हो ? इस जंग में सभी शरीक हैं। हिन्दोस्तान कितना बड़ा मुल्क है। इसमें कितने जागीरदार, कितने मालिक, और कितने नौकर हैं ! इसका तुम्हें कोई अन्दाज़ा नहीं...हम चन्द आदमी ग़ारों[1] में छुपकर उनका मुक़ाबला नहीं कर सकते। यह दरिन्दों की ज़िन्दगी और दरिन्दों की जंग है। हम अपने वालिदैन[2] की निस्बत[3] बदतर ज़िन्दगी बसर कर रहे हैं। उन्होंने मेहनत की और ख़ामोश रहे। बड़ी ख़ामोश, बड़ी ताक़तवर जंग। हम न मेहनत करते हैं, न जंग करते हैं। महज़ चोरी करते हैं !''

मधुकर ने एक लकड़ी घुटने पर रखकर चटाख़ से तोड़ी और उसे आग में फेंककर बोला, ''दरिन्दे बग़ावत कर सकते हैं, बैल नहीं कर सकते ! एक दफ़ा मैंने एक सर्कस देखा था। रिंग-मास्टर ने जब छाँटा पटख़ाया, तो शेरों ने उस पर हमला कर दिया और उसको फाड़ डाला। कभी बैलों को भी मालिकों पर हमला करते तुमने देखा है। वे सिर्फ़ आपस में लड़ते हैं। कभी-कभी...बैलों से इनसान बनने के लिए पहले दरिन्दे बनना पड़ता है !''

''मालिकों की बहस बेकार है। हमारी असल जंग उनसे है, जिन्होंने मालिकों को बनाया है। जो कारीगरों के हाथ काट देते हैं और सोचनेवालों के दिमाग़ शल[4] कर देते हैं...वे ग़ैर-मुल्की, जो हमारे मुल्क को ग़रीब कर रहे हैं, तुम उनसे लड़ने का तौर नहीं जानते, इसके लिए...''

''मैं जानता हूँ,'' मदन ने उसकी बात काटी और आगे झुककर बैठ गया, ''मैं शायद तुम सबसे ज़्यादा ही जानता हूँ। मैंने तीन साल तक किताबें पढ़ी हैं। मआशियात और तारीख़[5]। यह मत समझो कि मैं किसी ग़लतफ़हमी में मुब्तला हूँ। मैं जानता हूँ कि हिन्दोस्तान अंग्रेज़ों की सल्तनत[6] है, और ऐसे कई हिन्दोस्तान अंग्रेज़ों की मिल्कियत हैं। मुझे पता है कि वे क्या हासिल कर रहे हैं और किस तरीक़े से हासिल कर रहे हैं। उन्होंने स्कूल और कॉलेज खोले हैं। रेलगाड़ी चलाई है। हस्पताल बनाए हैं, लेकिन वे कितना ''रेवेन्यू'' इकट्ठा कर रहे हैं। तुम्हें हिन्दोस्तान का रक़बा मालूम है ? वे कितनी खुली तिजारत हिन्दोस्तान के अन्दर और बाहर कर रहे हैं। मुझे सब पता है, मगर मैंने तारीख़ भी पढ़ी है। दुनिया की हर जंग की शुरुआत इसी तरह हुई। मुल्कों की नहीं, लोगों की जंग का ! हर तहरीक[7], जो मुल्क के अन्दर फैली, इसी तरह फैली। बेशक बाज़ जंगों का आख़िर में ज़्यादा बा-वक़ार[8] और ज़्यादा संजीदा तरीक़े पर फ़ैसला हुआ, लेकिन शुरू में क्या था ? चन्द लोग, जिनके सिर पर ख़ून सवार था। महकूमियत[9] और ज़ुल्म से सोए हुए दिमाग़ और हाथ-पाँव तक़रीरों और जलसे-जुलूसों से नहीं जागते, और हुकूमत, जिसकी जड़ें मुद्दतों से मज़बूत हो रही हों, इन बातों से कभी नहीं चौंकती। वह हंगामे से चौंकती हैं, और हालाँकि जंग को ख़त्म करने और जीतनेवालों ने हमेशा इन चन्द लोगों की मज़म्मत[10] की और उन्हें बुरा-भला कहा, लेकिन बाद में आनेवालों ने तारीख़ की किताबों में लिखा कि वे लोग, जिन्होंने जंग जीती, उसे कभी शुरू नहीं कर सकते थे। उनके दिमाग़ में ख़ून था जो शुरू करते हैं, उनके बाज़ुओं और सीनों में ख़ून होता है। आज़ादी की हर तहरीक को शुरू करने के लिए दरिन्दों की ज़रूरत है,'' उसने अकड़ी हुई ज़ख़्मी टाँग को मुश्किल से दोहरा किया। उसके माथे पर पसीने की बूँदें चमक रही थीं और चेहरा ज़र्द हो रहा था। बाहर बारिश एक बार फिर तेज़ी से शुरू हो गई।

नईम ने मायूसी से सिर हिलाया, ''मैं नहीं समझता। मैं नहीं समझता, मदन, तुम क्या कह रहे हो। तुम्हारे पास क्या तजवीज़ है ? क्या प्रोग्राम है ? मुझे कुछ पता नहीं। तुम ख़ुद इस बारे में कुछ नहीं जानते। तुम बग़ैर तजवीज़ के, बग़ैर इरादे के मारते और तबाह करते हो और ख़ुद

1. गुफ़ाओं, 2. माता-पिता, 3. अपेक्षा, 4. शिथिल, 5. अर्थशास्त्र और इतिहास, 6. साम्राज्य, 7. आन्दोलन, 8. मर्यादापूर्ण, 9. पराधीनता, 10. निन्दा।

उस पर पछताते हो। मैं जानता हूँ, मैं महसूस कर सकता हूँ। तुम्हारी ज़िन्दगियों में एक महीब ख़ला[1] है। तुम जो कुछ करते हो, उसे भुला देते हो। तुम कुछ याद रखना नहीं चाहते। तुम्हारे पास महज़ एहसासे-जुर्म[2] है। ऐसे कभी जंगें जीती जाती हैं ?"

मदन उसी तरह रानों पर झुका बैठा था। सिर उठाकर बोला, "तुम्हारे पास क्या तजवीज़ है ?"

"कि यह जंग सब लोगों की है। मेरी, तुम्हारी या इक़बाल की नहीं। उन तमाम लोगों की, जो खेतों में, बाज़ारों में, सड़कों पर, और रेल के स्टेशनों पर और बन्दरगाहों पर झुके हुए हैं और मेहनत कर रहे हैं, जिनके चेहरों पर मशक़्क़त की लकीरें पड़ चुकीं और जो नहीं जानते कि उन पर ज़ुल्म हो रहा है, हम..." मदन ने हाथ उठाकर उसे रोका, "यह तुमने पहले भी बताया था। मैं पूछता हूँ, तुम्हारे पास क्या तजवीज़ है ? ज़मीन हमें मिल जाएगी ?"

"हाँ !"

"हम उसके मालिक बना दिए जाएँगे ?"

"यक़ीनन !"

"मुल्क का 'रेवेन्यू' मुल्क पर ख़र्च होगा ?"

"होना चाहिए !"

"जागीरदारी ख़त्म कर दी जाएगी !"

"हाँ ! उसके साथ जागीरदार और मुज़ारे का रिश्ता भी ख़त्म हो जाएगा।"

मदन की आँखें चमकीं, "कैसे ?"

"उनके पास जाकर उन्हें बताया जाए कि वे मेहनत कर रहे हैं, और उसकी क़ीमत उनको नहीं मिल रही, और कि उन पर ज़ुल्म हो रहा है, और वे उसे ख़त्म कर सकते हैं कि दुनिया की तमामतर ताक़त उनके क़ब्ज़े में है..."

"और यूँ उन्हें बताते-बताते हम जेल में चले जाएँ ? कुछ किए बग़ैर..." मदन ने तेज़ी से कहा।

"कुछ किए बग़ैर ?" नईम तक़रीबन चीख़ पड़ा, "जेलख़ाने से पहले-पहले तुम हिन्दोस्तान भर में आग लगा सकते हो। तुम भी अपनी ताक़त से बेख़बर हो, मदन ! जब तुम चले जाओगे, तो वे लोग दूसरे लोगों को बताएँगे और जब वे लोग चले जाएँगे, तो दूसरे दूसरों को बताएँगे, और जब वे कमर सीधी करके खड़े होंगे तो..."

"ठहरो...ठहरो..." मदन ने बेताबी से बात काटी, "ज़्यादा बातें मत करो। सुनो...मैं गाँव का अछूत हूँ। मुझे किस तरह वहाँ से निकलना पड़ा, तुम्हें सब पता है। मैं ज़मींदार के कुत्तों के साथ बैठकर खाता और रहता-सहता था। फिर मैं कई साल तक मुल्क भर में धक्के खाता रहा। अब मैं पच्चीस बरस का हूँ। पच्चीस बरस एक लम्बा अरसा होता है। पच्चीस बरस मेरे दिल में महफ़ूज़ हैं। मैंने सब कुछ याद रखा है। मैं उसके बारे में बात करना चाहता हूँ। सुनोगे ? पच्चीस बरस...और मैंने एक रोज़ पेट भरकर खाना नहीं खाया। तुम्हें पता है, इसका क्या मतलब है ? और तुम एहसासे-जुर्म की बात करते हो...तुमने दो साल की जंग देखी है और डींग मारते हो...मैंने एक-एक दिन देखा है और पच्चीस बरस निकल गए हैं...मेरे पास याद रखने को बहुत कुछ है...और वह मेरी बहन है, जो मेरे बाद फ़ाहिशा[3] औरत बनेगी। इसलिए मैं जेल में जाना पसन्द नहीं करता। सुना तुमने ?" उसने अकड़ी हुई उँगली नईम की छाती में चुभोई, "तुम्हें अब चाहिए कि जाकर सो जाओ या दफ़ा हो जाओ। मुझे पता चल गया है कि तुम्हारे दिमाग़ में कुछ नहीं है। सब बकवास है," बात ख़त्म करके उसने ज़ख़्मी टाँग को सीधा किया और होंठ काटने लगा। नईम ख़ामोश बैठा ग़ुस्से से बन्द खिड़की को देखता रहा, जिसकी दरज़ों में से बारिश का पानी अन्दर आ रहा था।

---

1. भयानक शून्यता, 2. अपराध-बोध, 3. दुराचारिणी।

अचानक मधुकर बैनर्जी बोल उठा, "तो क्या तुम समझते हो कि हम यह सब कुछ नहीं चाहते। हम हमेशा से जानवरों की तरह रहते आए हैं ? हमने कभी साफ़-सुथरी जगह पर बैठकर, साफ़-सुथरे बर्तनों में, अलग-अलग बर्तनों में नहीं खाया ? या खाने की ख़्वाहिश नहीं की ? एँ ?" उसकी छोटी-छोटी आँखें ग़ुस्से में आए हुए नेवले की आँखों की तरह सुर्ख़ हो गई थीं।

"ठहरो..." इक़बाल ने एक जलती हुई लकड़ी निकालकर ज़मीन पर मारी। छोटी-छोटी चिंगारियाँ इधर-उधर उड़ीं। मधुकर सी-सी करते हुए बाज़ू पर गिरी हुई चिंगारियों को मलने लगा, "पागल हो गए हो ?" वह चीख़ा।

"तुम ज़बान चलाए जाओगे, तो मैं पागल हो जाऊँगा ! तुमने क्या किया जो अब बक-बक कर रहे हो ! मुझे आराम की ज़रूरत है। तुम्हें पता नहीं ? और तुम..." लकड़ी का जलता हुआ सिरा नईम की नाक के नीचे ठूँसते हुए वह चीख़ा, "तुम कल लाइन पर जा रहे हो हमसे पहले...और अपनी यह फ़ुज़ूल बातें ख़त्म कर दो हमेशा के लिए...सुना ? हमारे पास पहले ही बहुत काम है !"

ग़ुस्से और ख़ौफ़ के मारे नईम जल्दी से उठकर अपने कम्बलों की तरफ़ चला गया। इक़बाल ने लकड़ी आतशदान में फेंकी और आग की तरफ़ मुँह करके लेट गया।

दरवाज़े के क़रीब अपने कम्बलों पर लेटकर नईम ने टाँग पर हाथ फेरा और पतलून की जेब में पिस्तौल को महसूस किया। अँधेरी छत को घूरते हुए, सोने से पहले, उसने बहुत-से गड्डमड्ड ख़यालात के दरमियान साफ़तौर पर महसूस किया कि आग पल-पल बुझती जा रही है और खिड़की पर बारिश तक़रीबन रुक चुकी है।

उसकी आँख खुली, तो चारों तरफ़ घुप अँधेरा था। आतशदान की राख में से दो ज़िन्दा कोयले झाँक रहे थे। छत के क़रीब रौशनदान के सूराख़ में से तारों की मद्धिम रौशनी दाख़िल हो रही थी। आतशदान के गिर्द सोए हुए तीनों मर्दों के भारी साँसों की आवाज़ ख़ामोश कमरे में फैली हुई थी। कमरे में सर्दी थी।

सारा जिस्म एक दफ़ा अकड़ाकर ढीला छोड़ देने के बाद उसने जिल्द पर बनावटी गर्मी की एक तह रेंगती हुई महसूस की और आँखें मीचकर सोचा कि इस वक़्त क्या बजा होगा ? दूसरी बार वह आध मिनट तक अकड़ा रहा, "आज जाने कहाँ जाना पड़े ?" उसने सोचा, "और काम क्या होगा ? डाइनामाइट उठानेवाला काम तो आसान था। अगर मैं भाग जाऊँ, अभी, फ़ौरन..." फिर इस ख़याल को दिल से निकालने और सर्दी कम करने के लिए वह तीसरी बार अकड़ा, "बारिश रुक गई है..." उसने दिल में कहा, "नींद क्यों नहीं आ रही है ?" अँधेरे में सब कुछ भुलाकर वह इधर-उधर देखने लगा। फिर कम्बल में से हाथ निकालकर उसने लकड़ी का तख़्ता आहिस्ता से खींचा। तख़्ता पथरीले फ़र्श पर हलकी-सी भद्दी आवाज़ निकालकर दरवाज़े से अलग हो गया। कुछ देर तक जंगली चूहे की तरह चुपचाप पड़े रहने के बाद वह उठा, और बड़ा फ़ौजी कोट कन्धों पर डालकर घुटनों पर चलता हुआ रेंगकर तख़्ते के पीछे से निकल गया।

कमरे में घुप अँधेरा था। चन्द सेकेंड तक वह थूथनी उठाए बू सूँघते हुए शिकारी कुत्ते की तरह चारों हाथ-पाँव पर दरवाज़े में खड़ा रहा, "यहाँ पर आग कभी नहीं जलाई गई !" उसने ठंडक महसूस करके दिल में कहा और उसी तरह दीवार के साथ-साथ चलने लगा। फ़र्श पर लकड़ी की आवाज़ को बन्द करने के लिए उसने कोट हाथ में लपेट लिया। चलते-चलते उसका सिर सामनेवाली दीवार से जा टकराया। उसने दिल में गाली दी और मुड़कर दूसरी दीवार के साथ चलना शुरू किया। कोट आवाज़ निकाले बग़ैर ज़मीन पर घिसट रहा था।

यूँ चारों हाथ-पाँव पर चलते-चलते एक बार मुड़कर उसने अपने आप पर नज़र डाली। अँधेरे में कुछ दिखाई न दिया, लेकिन उसे ख़याल आया कि वह एक रीछ या बड़े-से भेड़िए की मानिन्द चल रहा है। यह सोचकर उसने दिल में अनजानी-सी ख़ुशी महसूस की और ख़ामोशी से हँसा।

अगले कोने पर मुड़ते हुए किसी ने उसका कोट पकड़कर खींचा, "इधर आओ !"

वह आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगा। आवाज़ इस क़दर धीमी थी कि वह पहचान न सका। फिर जब अच्छी तरह से उसके चेहरे को टटोल-टटोलकर देखने के बाद उसे यक़ीन हो गया, तो वह उसके बिस्तर में घुस गया।

"तुम्हें सर्दी लग रही है ?" उसने फुसफुसाकर पूछा।

"कम्बल छोटा है !" लड़की ने कहा।

"ठहरो !" उसने कम्बल पर बड़ा कोट फैला दिया और उसके साथ लगकर लेट गया, "इस कमरे में और कौन है ?"

"कोई नहीं !"

"और बाबा ?"

"बाहर सोता है !"

"इतनी सर्दी में ?"

"हाँ !"

ठंडक महसूस करके वह अकड़ा।

"मेरे पाँवों को सर्दी लग रही है," उसने कहा।

"अन्दर कर लो !"

उसने लड़की की तरफ़ करवट लेकर पाँव अन्दर कर लिए।

"तुमने मुझे देखा था ?" उसने शीला के चेहरे पर उँगलियाँ दौड़ाते हुए पूछा, "हाँ।"

"तुम्हारी नज़र बड़ी तेज़ है !"

"मैं सोई नहीं !"

"रात से जाग रही हो ?"

"हाँ !"

"मैं कितनी देर सोया ?" उसने पूछा।

"तुम सोए थे ?"

"हाँ !"

"अभी तो तुम बातें कर रहे थे !"

"ओह !...मैं समझ रहा था, बहुत सोकर उठा हूँ," उसने उसकी गर्दन को चूमा, "तुम्हारी गर्दन बहुत नर्म है !"

"आज तुम क्यों लड़ रहे थे ?"

नईम ने जवाब देने के बजाय दोबारा उसी जगह चूमा।

"उनसे मत लड़ा करो," शीला ने फिर कहा।

"क्यों ?"

"वे तुम्हें मार देंगे !"

उसने उसके होंठों को दबाकर चूमा।

"उन्होंने पहले भी एक को मारा था।" लड़की ने कहा।

"कब ?"

"वह पारसाल हमारे साथ आया था, तब हम बिहार में थे। दो महीने वह हमारे साथ रहा। फिर किसी बात पर झगड़ा हो गया। इक़बाल ने उसे गोली मार दी !"

नईम ख़ामोश लेटा उसके बदन पर हाथ फेरता रहा।

"मुझे इक़बाल से नफ़रत है।" शीला ने उसके पहलू पर हाथ रखा।

"तुम क़मीज़ उतारकर क्यों सोते हो ?"

"मेरी पुरानी आदत है !"

"तुम्हें सर्दी नहीं लगती ?"

"नहीं !"

नईम ने उसे गर्दन के नीचे नर्म जगह पर चूमा।

"शीला !" उसने भारी आवाज़ से कहा।

"आहिस्ता बोलो।"

"शीला !" उसने फुसफुसाकर कहा, "तुम्हें पता है, बोसों[1] का मज़ा कैसा होता है ?"

"नहीं !"

"मुझे चूमो !"

शीला ने आहिस्ता से उसके गाल को चूमा।

"नहीं...होंठों पर !"

"ऊँ हुँह !"

"क्यों ?"

"यह मर्द का बोसा है। मुझे शर्म आती है," वह उसकी बग़ल में मुँह देकर बोली।

"अच्छा, सुनो। यह पानी की तरह होते हैं। जब प्यास लगी हो, तो पानी मीठा लगता है। न लगी हो, तो बदमज़ा लगता है। दरअसल इसका कोई मज़ा नहीं होता।"

वह उसकी छाती में मुँह देकर हँसी, "तुम अजीब बातें करते हो !"

वह ख़ामोशी से उसकी क़मीज़ अलग करता रहा।

शीला ने उसकी छाती में नाक रगड़ी, "तुम्हारी छाती में बाल नहीं हैं !" उसने कहा।

"तुम्हारी छाती में भी नहीं हैं !"

"औरतों के नहीं होते !"

"मर्दों के भी नहीं होते," वह शरारत से बोला।

"होते हैं !"

"कब हुए हैं ?"

"उन सबके हैं," उसने अँधेरे में दूसरे कमरे की तरफ़ इशारा किया।

नईम के दिल में हसद[2] का एक अजीब, तेज़ ग़ुस्सैल जज़्बा पैदा हुआ, "उनकी बात मत करो," उसने ख़फ़गी से कहा।

"जिन मर्दों की छाती में बाल नहीं होते, वे मक्कार होते हैं," वह हँसी।

"तुम्हें किसने बताया है ?" उसने ग़ुस्से से कहा।

देर तक वे दोनों बराबर-बराबर लेटे रहे। उनकी साँसों की हलकी फुँकार कमरे में बुलन्द हो रही थी। उन्होंने एक दूसरे के जवान, सेहतमन्द जिस्मों की गर्मी होंठों से लेकर पाँव की उँगलियों तक रेंगती और सारे कमरे में फैलती हुई महसूस की।

"शीला ! तुम्हारा जिस्म बहुत मुलायम है !"

वह ख़ामोश रही।

"तुम्हारे बदन पर कोई ख़राश नहीं। किसी ज़ख़्म का निशान नहीं। तुम्हारी आँखें फिर भी चमकीली हैं !"

"चमकीली हैं ?"

"हाँ ! यह मेरे एक दोस्त की बात है !"

---

1. चुम्बनों, 2. ईर्ष्या।

"तुम्हारा दोस्त भी ख़ूबसूरत है !"

"पता नहीं !"

बाहर बारिश फिर शुरू हो गई।

"लेकिन...शीला ?" नईम ने कहा।

"हूँ !"

"तुम...बहुत छोटी हो !"

"नहीं, ठीक हूँ !"

"तुम्हारी उम्र कितनी है ?"

शीला ने गुस्से में आकर बाँहें उसकी गर्दन के गिर्द कसीं और फुँकार जैसी फुसफुसाहट में बोली, "तुम छोटे हो। अगर तुम औरतों के साथ बड़े नहीं होते, तो कभी बड़े न होगे !"

दूर गाँव में एक मुर्ग़ के अज़ान देने की आवाज़ बन्द दरवाज़े में से आई।

"अब हमें सो जाना चाहिए," नईम ने कहा।

"सो जाना चाहिए ?" शीला ने पूछा।

"हाँ ! अब हमें सो जाना चाहिए !"

दोनों ने सिर ढाँप लिए। हवा के साथ बारिश की आवाज़ तेज़ हो गई। अचानक शीला ने सिर उठाया और बोली, "नईम ! तुम चले तो नहीं जाओगे ?"

"नहीं !" नईम ने बेताबी से उसका सिर अपनी तरफ़ खींचा। तेज़ ठंडी हवा बड़े दरवाज़े की दरज़ों में सीटियाँ बजाने लगी। कम्बल में कई जगह से सर्दी दाख़िल हो रही थी। अचानक वह फूट-फूटकर रोने लगी।

"चुप रहो...कमबख़्त !" नईम ने दाँत पीसकर उसका मुँह बन्द किया। शीला ने उसका हाथ हटाया और होंठ दाँतों में दबाकर सिसकी। फिर उसने नईम की छाती पर मुँह रगड़ा। उसे चूमा और देर तक सिसकती रही, यहाँ तक कि उसकी छाती जगह-जगह से भीग गई। आहिस्ता-आहिस्ता वह ख़ामोश हो गई।

"क्यों रोती हो ?" नईम ने गुस्से और बेचैनी के आलम में पूछा।

"मुझे ख़याल हुआ था, तुम मुझे छोड़ जाओगे," उसने कहा, और वहशियों की तरह उसे चूमने लगी।

"बेवक़ूफ़ लड़की !"

गाँव में सुबह का पहला मुर्ग़ बोला, तो वह आहिस्ता से उठा और अपने कमरे में दाख़िल हुआ। लेटने से पहले उसने तख़्ता दरवाज़े के साथ बराबर कर दिया। ज़मीन पर सीधा लेटे-लेटे पशेमानी[1] का हलका-सा साया उसके ज़िहन पर से गुज़र गया।

फिर तख़्ता हिलने की आवाज़ सुनकर चौंक पड़ा। शीला दरवाज़े में बैठी बिल्ली की तरह आँखें चमका रही थी।

"क्या है ?" उसने पूछा।

"तुम्हारा कोट !"

उसने हाथ बढ़ाकर कोट तख़्ते के नीचे से खींच लिया, "ठीक है !"

वह वहीं बैठी रही।

"जाओ," उसने कहा। शीला की आँखें अजीब तरह से चमकीं।

"जाओ !" वह दाँतों के बीच में से चीख़ा।

वह सादगी से हँस पड़ी। उसके सफ़ेद दाँत अँधेरे में झिलमिलाने लगे। नईम ने उठकर तख़्ता

1. पछतावा।

बराकर कर दिया, लेकिन देर तक वह तख़्ते पर चमकती हुई आँखें और सफ़ेद दाँत देखता रहा।

नीचे पत्थरों पर झरने का पानी बह रहा था और बारिश थम चुकी थी।

"तो तुम्हें बस इस बात का ख़याल रखना है कि मालगाड़ी गुज़र गई या नहीं," इक़बाल ने नक़्शे पर उँगली दौड़ाते हुए कहा, "हम मालगाड़ी पर बारूद बर्बाद नहीं करना चाहते। ठीक है ?" बात ख़त्म करके उसने पहली दफ़ा सिगरेट निकालकर नईम को दिया।

सूराख़ में से धूप की लकीर कमरे में दाख़िल हो रही थी। कमरा पार करते हुए वह ठिठककर रुक गया। धूप की लकीर उसकी आँखों पर पड़ रही थी। आतशदान पर पड़े हुए टूटे हुए शीशे में उसे अपना चेहरा नज़र आया, गन्दा और पीला। बढ़ी हुई दाढ़ी में उसे अपने आपको पहचानने में काफ़ी दिक़्क़त हुई। अचानक एक बाग़ी ख़याल ने उसके दिल में सिर उठाया।

"ठीक है...ठीक है...मैं इसका हक़दार हूँ !"

पशेमानी का साया उसके ज़िहन से छँट गया और उसने पहली दफ़ा गुज़री हुई रात के सुरूर को अपने आज़ा[1] पर महसूस किया।

14

दरख़्त के तने से लगकर बैठे हुए उसने हज़ारवीं बार पत्थरों के ऊपर से वादी में देखा, "आधी रात हो गई," वह होंठों में बड़बड़ाया।

पच्छिम की तरफ़ से उठा हुआ बादल तेज़ी से आसमान पर फैल रहा था, और तारे एक-एक करके छुपते जा रहे थे। हवा नमदार और सर्द हो गई थी और उसकी खोपड़ी में घुसती जा रही थी। "गर्मी के दिनों में यहाँ नामुराद सर्दी होती है।" सीने पर कोट लपेटते हुए उसने अपने आप से कहा।

उसे ज़ोरों की भूक लग रही थी और वह बार-बार रेलवे लाइन पर और सामने ढलान पर देख रहा था। बादल के साथ अँधेरा बढ़ता जा रहा था और पहाड़ी दरख़्तों की चोटियाँ, जो सितारों के सामने साफ़ दिखाई देती थीं, ग़ायब हो चुकी थीं।

"अब तो मुसाफ़िर-गाड़ी का वक़्त हो गया। माल-गाड़ी शायद लेट है," उसने फिर बात की, लेकिन उसे ख़याल आया कि तेज़ चलती हुई हवा उसकी आवाज़ को कहाँ से कहाँ ले जाएगी, तने के पीछे से सिर निकालकर उसने अँधेरे में देखा—पहाड़...ढलवान...लाइन...सुरंग वादी...उसे कुछ भी दिखाई न दिया, लेकिन इन जगहों का उसे सही अन्दाज़ा था कि यह कहाँ पर है। शुरुआत में जब आसमान साफ़ था, वह यह सब जगहें देख चुका था। इतनी देर तक अकेला बैठा रहने के बाद वह अपने आप से बातें करने की ख़्वाहिश महसूस कर रहा था। इस ख़याल को दिल से निकालने के लिए वह आहिस्ता-आहिस्ता चलता हुआ पत्थरों की उस हद तक गया, जहाँ से ढलान शुरू होती थी।

"इस रास्ते से आएँगे," उसने कहा, "जाने कहाँ मर गए, कमबख़्त सुअर ! मैं कहूँगा, माल-गाड़ी गुज़र गई। बारूद लगा दो। हाँ, देखा जाएगा बाद में।" वह दिल में हँसा।

ढलान के किनारे लेटकर उसने बाज़ू हवा में फैला दिया। "अब क्या होगा ? घड़ी तो पहली लाइन पर गुम हो गई, अब बताओ !" बचपने में एक पहाड़ी मुक़ाम पर वह इसी तरह ढलान के किनारे लेटा था। उसने आँखें बन्द करके याद किया, लेकिन वहाँ हरियाली थी और धूप थी, और हवा में ख़ुशगवार गर्मी थी। उसका जी चाहा था कि नीचे कूद जाए। उसने नीली नेकर पहन रखी थी और

1. अंगों।

उसके साथ चचा का बड़ा कुत्ता था, जो घास पर उसके बराबर लेटा हुआ था। आस-पास और बहुत-से हिन्दोस्तानी और अंग्रेज़ बच्चे थे। वह अकेला था या उसके साथ कोई और भी था ? शायद ! और कौन था ? अररर...लेकिन ओह ख़ुदाया...किस क़दर ख़ूबसूरत !" उसने ज़ोर से आँखें मीचकर मुट्ठी हवा में चलाई और हँसा—किस क़दर ख़ूबसूरत वक़्त था और उस वक़्त पता नहीं चला...उस वक़्त कभी पता नहीं चलता।

देर तक इसी तरह लेटे रहने के बाद उसने आँखें खोल दीं। एक गाल जो हवा के सामने था, बर्फ़ की तरह जम चुका था और बाल उड़-उड़कर आँखों में पड़ रहे थे। कमबख़्त मर्दूद ! अभी तक ग़ायब है। पेट में सख़्त भूक महसूस करके वह दिल में गालियाँ देने लगा।

"यहाँ से कूद जाऊँ..." ख़याल की मज़्हकाख़ेज़ी[1] पर वह हँसा, "या भाग जाऊँ...वापस ? नहीं !" उसने तिरछी निगाहों से अँधेरे में देखा। "नहीं..." आहिस्ता-आहिस्ता रात का सुरूर उसके बदन पर फैल गया। वह उठा और चालाकी से मुस्कराता हुआ घुटनों और हथेलियों पर चलने लगा। पत्थरों पर लकड़ी की आवाज़ को रोकने के लिए उसने कोट की आस्तीन को नीचे दबा लिया।

उस वक़्त रात की बारिश की पहली बूँदें उसके चेहरे पर गिरीं। तने के साथ खड़े-खड़े उसकी टाँगें भीग गईं। बारिश अभी हलकी थी, अभी तेज़ हो गई। उसने पहाड़ी दरख़्त को गाली दी, जिससे बारिश में कोई फ़ायदा नहीं पहुँचता। "एक चिनार का दरख़्त वह खड़ा है, मगर ऐन रास्ते में है। भेड़िए...क्या मैं सर्दी और भूक से यहाँ मर जाऊँ ?" बारिश तेज़ हो गई। उसने सर्दी से काँपते हुए गीला कोट छाती और कन्धों पर कसकर लपेट लिया। उसकी पतलून टाँगों मे चिमट गई थी और बड़े फ़ौजी बूटों में पानी भर गया था।

हवा के साथ ढलान पर से बातें करने की आवाज़ आने लगी। वह बेताबी से बढ़ा, मगर बारिश के शर्राटे ने उसकी हिम्मत पस्त कर दी। पत्थरों पर चढ़ने और बातें करने की आवाज़ बराबर आ रही थी। "बेवक़ूफ़ जाहिल, इतना गला फाड़ रहे हैं।" उसने कहा।

दूर पूरब में, पहाड़ के पीछे गाड़ी की तेज़ व्हिसिल सुनाई दी और सामने की पहाड़ियों से टकराकर वापस लौटी। वह चौंका। बारिश और हवा के शोर के बावजूद उसने दिल के धड़कने की आवाज़ साफ़तौर पर सुनी। "कौन-सी गाड़ी है ?" उसने साँस रोककर सोचा। मालगाड़ी ? नहीं ! अब मुसाफ़िर-गाड़ी का वक़्त है।" मालगाड़ी शायद लेट हो गई या कहीं खड्ड में गिर गई या जब मैं पाँच मिनट के लिए सो गया था, तो गुज़र गई होगी। यक़ीनन...अब क्या होगा ? ख़ुदाया ! अगर वे दो मिनट पहले भी पहुँच गए, तो बारूद रख सकते हैं...यक़ीनन पहुँच जाएँगे...वे तो अब यह आ गए..." उसने कान लगाकर सुना। बातों की आवाज़ ढलान के किनारे पर आ गई थी। अचानक बन्द हो गई। वह देर तक हवा के रुख़ कान लगाए खड़ा रहा, लेकिन उसके कान में पानी भर गया। "ख़ुदाया !" उसने आँखें बन्द करके कहा। "मैं यह बिलकुल नहीं चाहता...तुम जानते हो...मैं इस वक़्त यहाँ महज़ इसलिए हूँ कि अपना फ़र्ज़ अंजाम देना चाहता हूँ। क्या ऐसा नहीं हो सकता या अल्लाह, कि वे वहीं बैठे रहें या फिर बारूदवाले का ढलान पर से पाँव फिसल जाए। पत्थर तो अब फिसलवाँ हो ही चुके हैं या फिर..." आवाज़ अब सामने पत्थरों पर से आ रही थी। उसका दिल एकबारगी धड़का। अँधेरे में दो साये उसकी तरफ़ बढ़ रहे थे। यह एक किसान था, जो गधे पर भूसा लादे जा रहा था। बारिश से बचने के लिए उसने सन की ख़ाली बोरी का छाता बनाकर सिर पर ओढ़ रखा था और गधे की पूँछ पकड़े बातें करता हुआ चल रहा था और दूसरे हाथ से कुछ खाता जा रहा था। कमज़ोर-सा गधा गीले भूसे के बोझ से मर रहा था।

"अब तुम्हारा पाँव फिसलता है। हैं ? कमज़ात ! मैं तेरे बहाने जानता हूँ," वह झिड़ककर बोला, "तेरी चाबी मेरे हाथ में है। फ़िक्र मत कर, कमीन। तू है ही कमीन ! तेरा बाप भी कमीन था।

1. हास्यास्पद।

जिस रोज़ ख़रीदा, उसी रोज़ मर गया। तू छोटा-सा रह गया। चमारों से ख़रीदा था। कमीन नहीं तो और क्या होता ? देख, तू ढलान पर टाँगें न पसारता, तो हम कभी के गाँव पहुँच चुके होते। सारा भूसा ख़राब हो गया। तुझे ज़रा से को मैंने पाला था, तू किसी का एहसान नहीं मानता ? हैं ? कमीन, चमार।" वह उसकी पूँछ मरोड़ने लगा, "हैं ? हैं ?"

वह मुसलसल खाता और बातें करता हुआ गुज़र गया।

"शायद सुर्ख़ गन्दुम की रोटी है," नईम ने सोचा। उसका जी चाहा, कि उसे धक्का देकर गिरा दे और रोटी उससे छीन ले। फिर वह हँसा, "यह मुझसे भी बेवक़ूफ़ निकला।"

गाड़ी सुरंग में से निकली और अचानक आवाज़ पैदा करती हुई गुज़र गई। इंजन की बत्ती से निकलती हुई रौशनी की लकीर में दूर तक चमकती हुई बूँदें गिर रही थीं। नईम ने हवा में कोयले के गीले धुएँ की बू सूँघी। यह माल-गाड़ी थी।

"अब मैं कहूँगा, माल-गाड़ी अभी नहीं गुज़री," वह अपनी चालाकी पर मुस्कराया, "लेकिन उसी पल भूक उसकी अँतड़ियों में ज़ोर पकड़ गई। मुसलसल कटकटाते हुए दाँतों के दरमियान से उसने बेशुमार गालियाँ दीं।

एक घंटे के अन्दर-अन्दर बारिश, भूक, और इन्तिज़ार ने उसका हाल बदतर कर दिया, और बग़ैर सोचे-समझे वह भाग खड़ा हुआ। ढलान पर उतरते हुए कई बार उसका पाँव फिसला, लेकिन वह कोसता, कुलबुलाता हुआ आस्तीन से नाक और आँखों का पानी पोंछता हुआ, जाने-बूझे रास्तों पर भागता रहा। रात के पिछले पहर वह दुकान में दाख़िल हुआ। छप्पर तले लकड़ी के तख़्तपोश पर बुड्ढा लिहाफ़ ओढ़े सो रहा था। उसके पालतू कुत्ते ने तख़्तपोश के नीचे से निकलकर दुम हिलाई।

पहले कमरे में सख़्त अँधेरा था। तख़्ते की दरज़ों में से दूसरे कमरे में जलती हुई आग की रौशनी दिखाई दे रही थी। कमरे के फ़र्श पर वह भारी क़दमों से झूलकर चलता हुआ बढ़ा।

"कौन है ?" एक धीमी, जानी-पहचानी आवाज़ उसके कानों में आई।

शीला उसके क़रीब आ खड़ी हुई, "नईम ?"

उसने मुड़कर थकी हुई निगाह उस पर डाली।

"वे अभी जाग रहे हैं," शीला ने कहा।

एक बड़ी-सी गाली उसके मुँह से निकली। जेब से हाथ निकाले बग़ैर वह सारे जिस्म के साथ तख़्ते से टकराया। तख़्ता ज़मीन पर गिर पड़ा और उस पर से चलता हुआ वह इस तरह कमरे में दाख़िल हुआ, जैसे कि दरवाज़े में कुछ था ही नहीं। सबने चौंककर उसे देखा। एक सुर्ख़ दाढ़ीवाला अजनबी बुड्ढा पत्थर पर बैठा हुक़्क़ा पी रहा था। उसने ठंडे कपड़े का ख़ाकी कोट पहन रखा था और सिर पर बड़ी-सी पगड़ी थी। उसका चेहरा गोल और तरोताज़ा था और वह किसी तौर से उनके गिरोह का आदमी दिखाई न देता था। मदन उसके क़रीब लेटा सोने की कोशिश कर रहा था।

"हम तुम्हारे इन्तिज़ार में थे। तुम ग़ुस्से में दिखाई देते हो। बैठ जाओ," इक़बाल ने कहा। वह आतशदान के क़रीब अपनी मख़सूस जगह पर एक कुहनी के सहारे लेटा पिस्तौल साफ़ कर रहा था।

नईम उसके ऊपर जाकर खड़ा हुआ, "आए क्यों नहीं ?"

उसने कन्धे उचकाए और ढीले छोड़ दिए, "बारिश हो रही थी। बारूद कैसे लाया जा सकता था ?"

"तो इत्तिला भी नहीं दे सकते थे ?" नईम ने ग़ुस्से को दबाकर कहा।

"हमने मधुकर को भेजा था," मदन ने आँखें खोलकर जवाब दिया !

"मैंने किसी को नहीं देखा। सिर्फ़ एक गधा गुज़रा था, और एक आदमी जो गधे से बदतर

था। मैं सर्दी से मर रहा हूँ !'' उसने लकड़ियों का एक छोटा-सा ढेर उठाकर बुझते हुए कोयलों पर फेंका और बैठ गया। चीड़ की लकड़ियों ने मख़सूस, तेज़ धुआँ छोड़ा और जल उठीं। उसके बूटों में भरा हुआ पानी निकल-निकलकर फ़र्श पर बहने लगा। कन्धों पर गीले कोट के बोझ को बेतरह महसूस करके उसने काफ़ी कशमकश के बाद उसे उतारकर वहीं फेंक दिया। बालों में उँगलियाँ डालकर पानी निचोड़ा और हाथ गोद में रखकर आग की गर्मी महसूस करने लगा।

मदन ने सिर उठाकर इक़बाल की तरफ़ उँगली हिलाई, ''वह निकम्मा आदमी, मैं कहता हूँ, शराब पीने के लिए गाँव चला गया होगा। तुमने ऐसे-ऐसे आदमी इकट्ठे कर रखे हैं, जो नुक़सान देंगे। सबको नुक़सान देंगे।''

इक़बाल ने रिवाल्वर की चकली तेज़ी से उँगलियों में घुमाई और ख़ामोशी से बुड्ढे की तरफ़ देखा।

''कुछ खाने को दो।'' नईम ने लकड़ी के गीले बाज़ू पर हाथ फेरते हुए कहा। सब ख़ामोश बैठे रहे।

''कुछ खाने को दो। मैंने कल सुबह से कुछ नहीं खाया !''

''तुमसे किसने कहा था ?'' इक़बाल चुपके से बोला।

''ऐं ?''

''कि मत खाओ। इस वक़्त तो कुछ नहीं है !''

''लेकिन...न...न...'' इन्तिहाई ग़ुस्से की वजह से वह तुतलाने लगा।

''आज एक नया मेहमान आ गया था,'' मदन ने बुड्ढे की तरफ़ इशारा करके कहा, ''यह...''

उसकी बात ख़त्म होने से पहले नईम का ज़ब्त टूट गया। ज़मीन पर हाथ टेके बग़ैर वह मशीन की तरह सीधा उठ खड़ा हुआ। चन्द सैकेंड तक अचानक और शदीद ग़ुस्से की वजह से गुंग खड़ा वह सबको बारी-बारी देखता रहा। फिर मुड़कर कमरे में तेज़-तेज़ चक्कर लगाने लगा। आँसू उसके गले और आँखों में पलट आए।

आहिस्ता-आहिस्ता उसने बोलने की क़ुव्वत दोबारा हासिल की।

''तो मैं भूका मर जाऊँ ?'' वह हवा में हाथ फेंककर चीख़ा, ''मैं गधा हूँ ? एक गधे को भी चारा न दोगे, तो काम नहीं करेगा। चार घंटे तक मैं वहाँ चूहे की तरह भीगता रहा। किसलिए ? तुम जानवर हो ? तुमने कभी इनसान नहीं देखे ?'' वह रुका और हाथ पतलून की जेब में देकर, कन्धे झुकाकर कमरे में फिरने लगा। मदन ने लेटे-लेटे आँखें बन्द कर लीं, ''मत चीख़ो !'' उसने कहा। इक़बाल उसी तरह सुकून से बैठा पिस्तौल में गोलियाँ डालता और निकालता रहा। कमरे में सिर्फ़ लकड़ी के जलने और हुक़्क़ा गुड़गुड़ाने की आवाज़ें थीं।

''मैं चालीस रोज़ से तुम्हारे साथ हूँ और मैंने एक दिन पेट भरकर नहीं खाया। मैं अपनी मर्ज़ी से यहाँ हूँ ? हरगिज़ नहीं। तुम वहशी हो, और वहशियों का काम कर रहे हो। मुझे इस सारे काम से नफ़रत है।'' ग़ुस्से और मायूसी की हालत में अल्फ़ाज़ उसका साथ छोड़ गए, ''मैं आज ही यहाँ से जा सकता हूँ !''

इक़बाल कुहनी पर उठा और नज़रें उस पर गाड़कर साफ़ आवाज़ में बोला, ''ठहरो...तुम कौन हो ? बताओ ?'' उसकी साफ़, बज़ाहिर पुर-सुकून आवाज़ में एक ज़ालिमाना जज़्बा था, जो सिर्फ़ नईम ने महसूस किया।

''ख़ुफ़िया पुलिस ?'' इक़बाल ने पूछा।

नईम के ज़ेहन में सफ़ेद ग़ुबार दोपहर की बर्फ़ की तरह पिघलने लगा। अचानक उसने महसूस किया कि वह निहायत ग़लत मुक़ाम पर आ पहुँचा है। तेज़, रुकी हुई नज़रों के सामने उसने सोचा,

कि अब कुछ नहीं हो सकता, कि ज़्यादा बातें बनाना अब बेकार था। वह जहाँ खड़ा था, वहीं पर बैठ गया।

"पहले भी .खुफ़िया पुलिस ने एक भेजा था। हमने उसके साथ अच्छा सुलूक नहीं किया था।" मदन ने लेटे-लेटे आँखें खोलकर कहा।

"मैं पुलिस का आदमी नहीं हूँ," नईम ने कहा, लेकिन तीन तरफ़ से जमी हुई नज़रों ने उसे मजबूर कर दिया। उसने घबराकर चेहरे पर हाथ फेरा, "मैं कांग्रेस का आदमी हूँ।"

मदन आहिस्ता से उठकर बैठ गया। कम्बल उसके कन्धे से ढलककर नीचे जा पड़ा। कुछ देर तक वह हैरत और तमस्ख़ुर से उसे देखता रहा। फिर खिलखिलाकर हँस पड़ा। उसके बड़े-से, शर्मीले चेहरे पर तल्ख़ी और मज़्हका था। "कांग्रेस ? नामर्दों की जमाअत ? क्लर्कों और जागीरदारों की ? जो सोफ़ों पर बैठकर आज़ादी की जंग लड़ते हैं, हा हा हा...हा हा..."

"यह ग़लत है," नईम ने हाथ को जुम्बिश दी, "तुम नहीं समझते। कांग्रेस मेरी जमाअत है। मुझे देखो। मैं जागीरदार हूँ ? क्लर्क हूँ ? मैं सीधा-सादा किसान हूँ। हाथ से काम करनेवाला मज़दूर हूँ—हमारा और तुम्हारा फ़र्क़..."

"तुम किसान हो," मदन ने उसकी बात काटी, "इसीलिए उन्होंने तुम्हें निकाल दिया है। यहाँ भेज दिया है। वह गवर्नर की दावतों में जाते हैं और अपने दरमियान किसानों को बरदाश्त नहीं कर सकते। उन्होंने तुम्हें बेवक़ूफ़ बनाया है। बस, और तुम यहाँ क्या करने आए हो ? बोलो... !"

"देखो," नईम ने घबराकर इधर-उधर देखा, "जिन लोगों से मैं मिला हूँ, वे मेरी और तुम्हारी तरह के इनसान थे, ग़रीब और मेहनतकश...शायद किसान या मज़दूर। मुझे पता नहीं, लेकिन वे कभी गवर्नर की दावतों में नहीं गए और मैं...यहाँ इसलिए आया हूँ कि तुम लड़ाई का ढंग नहीं जानते। हिन्दोस्तान बहुत बड़ा मुल्क है। उसके लिए उतना ही बड़ा दिमाग़ भी चाहिए। कुछ लोगों की दशहतपसन्दी[1] से क्या होगा ? इस जंग में हम भी उतने ही शरीक हैं जितने तुम..." उसने रुककर पसीना पोंछा, जो उस ठंडी रात में उसके माथे पर नुमूदार हो गया था, "हमारी तहरीक आम लोगों में है। किसानों और मज़दूरों में, लाखों और करोड़ों लोगों में, जिनके हाथ में बेपनाह ताक़त है। तुमने तारीख़ और मआशियात[2] पढ़ी है, मगर अक़्ले-सलीम[3] भी एक चीज़ है। एक रेलगाड़ी उड़ाने से तुम क्या कर लोगे ? हिन्दोस्तान में हज़ारों रेलगाड़ियाँ चल रही हैं। आज़ादी के लिए रेलगाड़ियों से नहीं, उनमें सफ़र करनेवाले लाखों लोगों से राबिता[4] पैदा करने की ज़रूरत है। उसके लिए एक प्रोग्राम चाहिए। एक ज़ाबिता। तुम्हारे पास क्या है ? चन्द गिरोह हैं, जो उँगलियों पर गिने जा सकते हैं और उनका भी आपस में कोई राबिता नहीं। तुम बग़ैर सोचे-समझे काम करते हो। तुम्हारे पास सोचने के लिए कुछ नहीं है। मैं नहीं समझता," उसने मायूसी से सिर हिलाया, "कि यह सब क्या है !"

"और तुम क्या समझते हो ?" मदन ने उस पर उँगली हिलाई, "तुम ?"

"सुनो !" नईम ने अकड़ी हुई टाँगें इकट्ठी कीं और बुड्ढे की तरफ़ हाथ बढ़ाया। उससे हुक़्क़ा पकड़कर दो लम्बे-लम्बे कश लेने के बाद उसने हुक़्क़ा वापस कर दिया और कन्धे झुकाकर बैठ गया।

"सुनो," उसने दोबारा कहा और गहरे इस्तिग़राक़[5] में बोलने लगा, "मेरा यह पुख़्ता यक़ीन है कि अगर बुज़दिली और तशद्दुद[6] में इन्तिख़ाब[7] करना पड़ जाए, तो बुज़दिलाना तौर पर ज़िल्लत और बेबसी का शिकार होने के बजाय हिन्दोस्तान को मुसल्लह[8] तौर पर अपनी इज़्ज़त की हिफ़ाज़त करनी चाहिए, मगर साथ ही मेरा यह भी अक़ीदा है कि अदम-तशद्दुद[9] तशद्दुद से कहीं ज़्यादा अच्छा और सज़ा देने से मुआफ़ कर देना कहीं ज़्यादा मर्दाना काम है। अपने दुश्मन को मुआफ़

1. आतंकवाद, 2. अर्थशास्त्र, 3. सद्‌बुद्धि, 4. सम्पर्क, 5. तन्मयता, 6. हिंसा, 7. चुनाव, 8. सशस्त्र, 9. अहिंसा।

कर देना एक सिपाही का ज़ेवर होता है। मगर सज़ा न देना उसी वक़्त मुआफ़ कर देना कहलाता है, जब मुआफ़ करनेवाले में सज़ा देने की ताक़त मौजूद हो। एक चूहिया, जबकि बिल्ली उसको टुकड़े-टुकड़े कर रही होती है, बिल्ली को मुआफ़ कर देनेवाली नहीं कहला सकती, क्योंकि वह ख़ुद मजबूर और बेबस होती है। मगर साथ ही मेरा यह भी यक़ीन है, कि हिन्दोस्तान ऐसा बेबस भी नहीं है। ताक़त जिस्मानी क़ुव्वत का नाम नहीं, सच्ची ताक़त एक ग़ैर-मफ़्तूह[1] पक्के इरादे से पैदा होती है।

''अदम-तशद्दुद का उसूल महज़ ऋषियों के लिए नहीं बना था, बल्कि आम इनसानों के लिए भी वह वैसा ही है। अदम-तशद्दुद इनसानों के लिए ऐसा ही ज़िन्दगी का क़ानून है, जैसे तशद्दुद वहशी जानवरों के लिए है। तशद्दुद का जज़्बा वहशी जानवरों के अन्दर छिपा होता है, और वह सिवाय हैवानी ताक़त के और किसी क़ानून को नहीं जानते, मगर इनसान से एक बड़ी ताक़त के सामने सिर झुका देने का तक़ाज़ा करता है, यानी रूहानी ताक़त के सामने। हमारे ऋषि, जिन्होंने एक तशद्दुद-आमेज़ माहौल में अदम-तशद्दुद के क़ानून को दरयाफ़्त किया, न्यूटन से बढ़कर समझदार और वेलिंगटन से बढ़कर बहादुर सिपाही थे। उन्होंने हथियारों के इस्तेमाल को जानते हुए उनके नाकारापन को समझ लिया था, और इसीलिए उन्होंने एक थकी-माँदी दुनिया को यह उपदेश दिया था कि उसकी नजात[2] का रास्ता तशद्दुद के बजाय अदम-तशद्दुद में है। अदम-तशद्दुद का हरगिज़ यह मतलब नहीं कि एक मज़बूत इरादेवाले बद-किरदार[3] शख़्स के सामने आजिज़ाना[4] तौर पर हथियार डाल दिए जाएँ, बल्कि इसका मतलब यह है कि अपनी पूरी रूहानी क़ुव्वत के साथ ज़ालिम के ज़ुल्म का मुक़ाबला किया जाए।

''मैं हिन्दोस्तान को उसकी कमज़ोरी की वजह से अदम-तशद्दुद इख़्तियार करने का मशविरा नहीं दे रहा, बल्कि मैं चाहता हूँ कि हिन्दोस्तान अपनी ताक़त और क़ुव्वत का एहसास रखते हुए अदम-तशद्दुद को इख़्तियार करे। मैं यह भी चाहता हूँ कि वह यह जाने कि वह अपने अन्दर एक ऐसी रूह रखता है, जो तबाह होना नहीं जानती, और जो हर जिस्मानी कमज़ोरी पर ग़ालिब[5] आ सकती है। मैं उन लोगों को जो तशद्दुद पर यक़ीन रखते हैं, दावत देता हूँ कि वह ग़ैर-मुतशद्दिद[6] और अमनपसन्द तर्क-मुवालात[7] का एक दफ़ा तर्जुबा करके देखें। मैं उन्हें यक़ीन दिलाता हूँ कि अदम-तशद्दुद अपनी किसी अन्दरूनी ज़ाती कमज़ोरी की वजह से नाकाम साबित नहीं होगा, बल्कि उस वक़्त नाकाम होगा, जब उस पर पूरे तौर से अमल न किया जाए, और वह वक़्त हक़ीक़ी ख़तरे का वक़्त होगा, क्योंकि उस वक़्त वह बुलन्द हिम्मत इनसान, जो अपनी क़ौमी ज़िल्लत[8] को ज़्यादा अरसे तक बरदाश्त नहीं कर सकते। अपने ग़ुस्से का अमली इज़हार शुरू कर देंगे और तशद्दुद को इख़्तियार कर लेंगे। इस तरह वे अपने आपको और अपने मुल्क को उस ज़ुल्म से नजात दिलाने की बजाय, जिसका वे तख़्ता-ए-मश्क़ बनाए जा रहे हैं, तबाह हो जाएँगे !''

''यह तुम्हारा फ़ल्सफ़ा[9] है ?'' मदन ने मुस्कराकर पूछा।

''मेरा इतना बड़ा दिमाग़ नहीं है !''

''मैं जानता हूँ। यह तुम्हारा गुरु है—गांधी !'' वह तन्ज़ से मुस्कराया, ''गांधी...राहिब[10]... साधु...वलीयुल्लाह[11]...जो हवा से बातें करता है। उसका हुलिया तुमने कभी देखा है ? और तुम समझते हो कि वह तुम्हें मुल्क लेकर देनेवाला है ? वह कभी गवर्नर की दावत में नहीं गया ? उसकी तक़रीरें और फ़ल्सफ़े तुम्हारी क्या मदद करेंगे ? दक्खिनी अफ़्रीक़ा में उसने क्या किया, जानते हो ?'' वह ख़ामोश हो गया। उसके माथे को दो हिस्सों में तक़सीम करती हुई वह मानूस रग, जो ख़तरे या जोश के वक़्त ज़ाहिर होती थी, उभर आई।

---

1. अविजित, 2. मुक्ति, 3. चरित्रहीन, 4. विनम्रतापूर्वक, 5. छाना, 6. अहिंसक, 7. असहयोग, 8. अपमान, 9. तर्क, 10. ईसाई साधु, 11. महात्मा।

"उसका सिर हलवा कद्दू की तरह है।" इक़बाल ने ज़हरीला क़हक़हा लगाया।

"ओह !" नईम ने मायूसी से हाथ हवा में हिलाया, "तुम नहीं समझते। मदन...यह फ़ल्सफ़ा काग़ज़ पर नहीं, हाथों पर लिखा गया है। इसमें काम करने की ताक़त है। ज़रा सोचो, हमारे हज़ारों आदमी मुल्क में भी फैले हुए हैं। हम पर क़ानून की कोई पकड़ नहीं। हम सिर्फ़ अपना हक़ माँगते हैं, लेकिन तुम...जुर्म करते हो...तुम जुर्म करते हो...और ग़ारों में छुप जाते हो और हमारे आदमियों को पकड़कर जेल में ठूँस दिया जाता है। हमारा काम रुक जाता है, समझे ?" वह रुका, "हमें तुम्हारी ज़रूरत है। नौजवान, जिनके पट्ठों में ताक़त है !"

इक़बाल आँखें सिकोड़े उसे देख रहा था। लापरवाही से बोला, "हमारी ज़रूरत हमारे काम को है। कांग्रेस को बुज़दिलों और लँगड़ों और लुँजों की ज़रूरत है !"

"बको मत !" नईम चीख़ा, "मैं बुज़दिल नहीं हूँ। मैंने जंग के मैदान में बाज़ू खोया है !"

इक़बाल ने रिवाल्वर को उलट-पुलटकर देखा। फिर एहतियात से उसे सीधा किया और एक वहशी, लेकिन पक्के इरादे के साथ हुक़्क़े का निशाना लेकर गोली चला दी। धमाके के साथ मिट्टी का हुक़्क़ा टुकड़े-टुकड़े होकर गिर पड़ा और बदबूदार पानी ज़मीन पर बहने लगा। लकड़ी की नाली सुर्ख़ दाढ़ीवाले के हाथ में रह गई, जो पत्थर पर टाँगें फैलाए हैरान बैठा था। मदन सुकून से आँखें बन्द करके लेट गया। इक़बाल रिवाल्वर को ख़ोल में डालने लगा।

पतलून की जेब में पिस्तौल पर नईम के हाथ की पकड़ मज़बूत हो गई। बाहर से बुड्ढा घबराया हुआ दाख़िल हुआ। सोते से एकदम जाग उठने से उसके बाल लोहे के तारों की तरफ़ खड़े थे। जिस्म पर सिर्फ़ एक धोती थी और दाढ़ी पर राल बह रही थी।

"कौन मर गया ?" क़रीब आकर उसने सहमी हुई सुर्ख़ आँखों से चारों तरफ़ देखा।

किसी ने जवाब न दिया। फिर सुर्ख़ दाढ़ीवाले ने हुक़्क़े की नाली से नईम की तरफ़ मुब्हम-सा[1] इशारा किया। बुड्ढे ने झपटकर नाली उसके हाथ से छीनी और कमर पर हाथ रखकर ग़ुस्से से सबको बारी-बारी देखने लगा।

"चाँद-मारी की अच्छी जगह ढूँढी है तुमने !" उसने इक़बाल से कहा, "मेरा भी बेड़ा ग़र्क़ करोगे। इसीलिए मैंने तुम्हें रखा है ?" ग़ुस्से और घबराहट की वजह से वह इससे ज़्यादा न कह सका और कुहनियाँ बाहर निकालकर कमरे की चौड़ाई में चक्कर लगाने लगा। कभी-कभी रुककर सबको देखता। कुछ कहता-कहता रुक जाता, और फिर चलने लगता। नईम जेब से हाथ निकाले बग़ैर उठा और अपने कम्बल पर जाकर लेट गया। इन्तिहाई कोशिश के साथ उसने अपनी उँगलियों को उसी वहशी इनसानी जज़्बे के तहत अमल करने से बाज़ रखा।

फिर बात किए बग़ैर बुड्ढा सबकी तरफ़ मलामत[2] और सरज़निश[3] से देखता हुआ बाहर जाने को बढ़ा। नईम के ऊपर खड़ा होकर बोला, "सोते में इसकी जान मत लेना।" और बाहर निकल गया।

कुछ देर के बाद सुर्ख़ दाढ़ीवाला आहिस्ता-आहिस्ता चलता हुआ नईम के पास आया। ख़ाकी कोट की जेब में इधर-उधर तलाश करने के बाद उसने हाथ बाहर निकाला और चन्द ख़ुश्क खजूरें उसकी तरफ़ बढ़ाईं।

"मेरे पास कुछ खजूरें हैं।" उसने कहा।

एक पल तक नईम उसकी सादा, बे-मतलब आँखों और बेतकल्लुफ़ी से बढ़े हुए हाथ को देखता रहा। फिर उसने खजूरें ले लीं और दीवार की तरफ़ करवट लेकर ग़ैर-मामूली इश्तिहा[4] के साथ खाने लगा।

जब उसने आँखें खोलीं, तो सितारों की मद्धिम रौशनी सूराख़ में से दाख़िल हो रही थी।

---

1. अस्पष्ट, गूढ़, 2. धिक्कार, 3. भर्त्सना, 4. भूक।

"बारिश थम गई !" उसने सोचा। आतशदान के क़रीब घुप अँधेरा था और तीन तरफ़ से ख़र्राटों की आवाज़ आ रही थी। उसका ज़ेहन बिलकुल ख़ाली था और वह दोबारा सोने की शदीद ख़्वाहिश महसूस कर रहा था। बन्द आँखों के सामने सफ़ेद पर्दा और सितारे लिए वह ख़ामोश लेटा कम्बल की आरामदेह[1] गर्मी को महसूस करता रहा। फिर तख़्ता सरकाकर दूसरे कमरे में दाख़िल हुआ। अँधेरे में आसानी से चलता हुआ वह उसके बिस्तर पर जा खड़ा हुआ। बिस्तर में कोई हरकत न हुई। घुटनों पर बैठकर उसने अँधेरे में हाथ फैलाया और शीला के चेहरे को छुआ। उसकी आँखें खुली थीं और वह दीवार के साथ टेक लगाए बैठी थी। नईम की उँगलियों के नीचे उसने आँखें बन्द कर लीं। कुछ पल तक वह उसी तरह जलती हुई ख़ुश्क आँखों पर उँगलियाँ रखे बैठा रहा और उसके दिल में उस अजनबी लड़की के लिए बेपनाह हमदर्दी और रंज पैदा हुआ।

"तुम सोई नहीं ?" उसने पूछा।

"नहीं !" शीला भारी आवाज़ में फुसफुसाई।

"रात भर ?"

"हूँ !"

ख़ामोशी से उसके बराबर लेटकर उसने उसे अपने साथ चिमटा लिया और उसकी पुश्त पर हाथ फेरते हुए एहसानमन्दी[2] के जज़्बे से उसके सिर और माथे को चूमा। वह बिल्ली के बच्चे की तरह उसके सीने से लगकर सिसकने लगी। उसकी गर्म-गर्म साँस नईम की नंगी छाती पर से गुज़री और उसकी जिल्द में एक दर्द भरी कँपकँपाहट जगाती हुई हड्डियों में उतर गई। नईम ने इन्तिहाई तकलीफ़देह एहसास के साथ एक बाज़ू के पूरे ज़ोर से उसे भींचा।

"तुम सोई क्यों नहीं ?"

"अभी तुम ख़र्राटे ले रहे थे !"

"तुमने जगाया क्यों नहीं ?"

"मैं कई बार गई। फिर लौट आई !"

"क्यों ?"

"पता नहीं !" वह कुहनियाँ उसकी छाती पर रखकर उठी, "आज वह तुम्हें मार देते तो ?"

"तो क्या था ?"

वह उसके सीने से चिमट गई। "मैं उसे मार देती...यक़ीनन रीछ..."

"कैसे ?" नईम ने पूछा।

"बारूद के थैले पर कोयला रखकर !"

"यूँ तो सब मर जाते !"

"पर ज़्यादा तो वह मरता। बारूद उसके सिर के नीचे होता है !"

वह चुपके से हँसा, "अजीब तरीक़ा है !"

"इस तरह मैंने तुम्हें मारने का भी मंसूबा बनाया था !"

"मुझे ?"

"हाँ !"

"कब ?"

"पहले पहल !"

"क्यों ?"

"तुम बात जो नहीं करते थे।"

"फिर ?"

---

1. सुखद, 2. कृतज्ञता।

"फिर मैंने सोचा," उसने नईम की गर्दन पर होंठ रखकर कहा, "मैं ख़ुद तुमसे बात करूँगी !"

वह फिर हँसा।

"मैं तुम्हें मार देती, तो अच्छा था," उसने कहा।

"क्यों ?"

कुहनियाँ नईम की छाती में गाड़कर धीमी फुँकारती हुई आवाज़ में वह बोली, "मैं आज रात भर जागती रही !"

"ओह ! मुझे मुआफ़ कर दो। अब मैं आ गया हूँ," उसने उसे होंठों पर चूमा।

"नईम !"

"हूँ !"

"तुम्हें अब चला जाना चाहिए !"

वह ख़ामोश लेटा उसकी जिल्द से निकलती हुई हलकी, नशीली हरारत को महसूस करता रहा। उसने सोचा कि वह हरारत अपनी क़ुव्वत ज़ाए[1] किए बग़ैर शीला की जिल्द से निकलकर उसकी जिल्द में दाख़िल हो रही है, और उसे ज़्यादा सेहतमन्द, ज़्यादा मज़बूत, और ज़्यादा रेशमी बना रही है, जैसी सेहतमन्द और मज़बूत और रेशमी वह दूसरी जिल्द है, जैसी सेहतमन्द और रेशमी वह हरारत है। अपनी छाती के हलके-से झुकाव में, जो शीला की छातियों के दरमियानी झुकाव के ऐन नीचे था, सर्दी महसूस करके उसने पूरे जिस्म के साथ उसे भींचा।

"ये लोग भेड़ियों से ज़्यादा ख़तरनाक हैं।" शीला ने कहा।

"हाँ !"

"हम यहाँ से चले जाएँगे !"

"हाँ !"

"तुम्हारा घर है ?"

"हाँ !"

"कहाँ ?"

"कहाँ ?" वह मुश्किल से उसकी बात समझ रहा था, "दिल्ली में !"

"हम फिर दिल्ली चले जाएँगे। हैं न ?" शीला ने उसके मुँह पर गाल रगड़ा।

"हाँ !"

"हम फिर शादी कर लेंगे !"

"हाँ !"

"तुम मुझसे शादी कर लोगे ?"

"हाँ !"

"नहीं...मुझे बताओ।" उसने बज़िद[2] होकर पूछा।

"हाँ...हाँ !" नईम ने सख़्ती से दोहराया और उसके होंठों को दबाकर चूमा।

"फिर हम मियाँ-बीवी की तरह रहेंगे !"

"हाँ !"

"तुम क्या करते हो ?"

"मैं ? खेती !"

"हम भी खेती करते थे," वह ख़ुश होकर बोली, "मैं सारा काम कर लेती हूँ !"

"अच्छा ?"

"दूध बिलो लेती हूँ। चारा काट लेती हूँ। चावल पका लेती हूँ। गोबर...भी थोप लेती हूँ।"

1. नष्ट, 2. हठपूर्वक।

वह हँसा।

"मैं सारा काम करूँगी। तुम्हारी माँ भी है ?"

"हाँ !"

"मैं तुम्हारा सारा काम करूँगी," ख़ुशी से बेहाल होकर लड़की ने उसके बाल दोनों हाथों में पकड़कर खींचे, "हाँ...हाँ !" फिर उसने दोनों बाज़ू उसकी गर्दन के गिर्द कसकर लपेटे और उसके गाल का एक तवील, गर्म बोसा लिया, "मैंने बड़ी देर हुई घर में काम नहीं किया। मैं तुम्हारे साथ जाऊँगी !" वहीं पर होंठ रखे-रखे उसने भारी, दुखी आवाज़ में कहा।

नईम के दिल में एक अनजानी-सी बेचैनी, एक रंज पैदा हुआ।

"अब वक़्त थोड़ा रह गया है !" उसने कहा।

"हाँ ! अब वक़्त थोड़ा रह गया है," शीला ने जवाब दिया।

"सुबह होनेवाली है !"

"हाँ...सुबह होनेवाली है !"

"अब हमें सोना चाहिए !"

"अब हमें सो जाना चाहिए।" शीला ने दोहराया।

और नईम ने महसूस किया कि उसकी राय में और इसकी राय में, उसकी रज़ामन्दी में और इसकी रज़ामन्दी में, उसके वुजूद में और इसके वुजूद में कोई फ़र्क़, कोई फ़ासिला नहीं है और उनके दरमियान मुकम्मल समझौता, मुकम्मल सुलह और मुकम्मल अमन है, जैसे मियाँ-बीवी में होता है।

तमाम दिन वह अकेला-अकेला पहाड़ियों पर फिरता रहा। वह छत्तीस घंटे से भूका था। उसका दिमाग़ काफ़ी हद तक सुन्न हो चुका था और वह सारे बदन में कमज़ोरी महसूस कर रहा था। कभी-कभी ख़यालात का छोटा-सा, तेज़ रेला कहीं से आता, "अब क्या होगा ? चला जाऊँ ? रुक जाऊँ ?" जवाब देने से पहले वह बेध्यान हो जाता।

दोपहर के वक़्त वह एक चट्टान के साये में सो गया। जब उठा, तो सूरज डूब रहा था और चट्टान का साया दूर तक चला गया था। उठते-उठते पेट में तेज़ दर्द महसूस करके वह परेशान हो गया।

"भूक की वजह से है।" उसने कहा और आहिस्ता-आहिस्ता पत्थरों पर उतरने लगा।

बुड्ढा अपने मुस्तक़िल अफ़ीमची अन्दाज़ में रुई के मैले गद्दे पर बैठा था और एक किसान लकड़ी के बैंच पर बैठा दूध पी रहा था। मिट्टी के मैले बर्तन बुड्ढे के आगे रखे थे। एक बड़ी-सी कड़ाही में दूध गर्म हो रहा था, जिस पर मैले रंग की मोटी मलाई की तह जमी हुई थी। कड़ाही के पास छोटा-सा ग्रामोफ़ोन पड़ा था। उसके हरे रंग के भोंपू पर मक्खियों की बीटों के बेशुमार काले-काले दाग़ पड़ गए थे। ग्रामोफ़ोन दिन भर घिसे हुए रिकार्ड बजा-बजाकर अब ख़ामोश हो चुका था।

नईम तख़्तपोश के कोने पर बैठा सिगरेट पीता रहा। तम्बाकू की वजह से उसके पेट का दर्द भारी और बदमज़ा हो गया। उसने दीवार पर थूका। किसान ने दूध का प्याला बैंच पर रखा और ख़ामोशी से उठकर चला गया। नईम उसे दूर तक जाते हुए देखता रहा।

बुड्ढे ने प्याला उठाकर मैले बर्तनों में रखा और नईम को देखकर मुस्कराया, "क्या देखते हो ? यह किसानों का तरीक़ा है ! आते-जाते तुम कोई बात नहीं करते !"

"मैं भी किसान हूँ !" नईम ने दोबारा थूका, "थोड़ा-सा दूध दो।"

बुड्ढे ने उसी प्याले में दूध डालकर उसे दिया।

"कल तुमने बड़ी ग़लती की। तुमने क्या कहा था ?" उसने कन्धे उचकाए, "पता नहीं, लेकिन उनका मिज़ाज ठीक नहीं है। ज़रा होशियार रहना !"

नईम ने चन्द बड़े-बड़े घूँटों में प्याला ख़ाली करके आसमान की तरफ़ देखा। आसमान पर सितारे थे और अँधेरा। वह अन्दर दाख़िल हुआ।

अँधेरे फ़र्श पर से गुज़रते हुए उसने अगले कमरे में मर्दों के बातें करने की आवाज़ सुनी। इससे पहले कि वह तख़्ते को छूता, किसी ने तेज़ी से उसका हाथ खींच लिया। वह मुड़ा। शीला उसे खींचती हुई अपने बिस्तर तक ले गई।

"अन्दर मत जाओ," उसने कहा।

"क्यों ?"

"वे तुम्हें मार देंगे !"

धुएँ की तरह बल खाता हुआ ग़ुस्सा उसके दिमाग़ में चढ़ा, "वह मेरे नज़दीक भी नहीं आएँगे।" आहिस्ता-आहिस्ता उसने कहा और हाथ छुड़ाकर पतलून की जेब में डाल लिया।

"मैंने ख़ुद सुना है," शीला ने कहा, "वे तुम्हें आतशदान तक पहुँचने से पहले मार देंगे !"

"मैंने किसी का कुछ नहीं बिगाड़ा। मुझे उनसे बात करने दो। मैंने उनसे ज़्यादा आदमी मारे हैं !"

"नहीं...नहीं..." शीला उससे लिपट गई, और रोकर बोली, "मत जाओ। वे तुम्हें मार देंगे... नहीं...नहीं..."

"मेरा बिस्तर अन्दर पड़ा है।" नईम ने सख़्ती से कहा।

"तुम बाहर बैठो। जब वे सो जाएँगे, तो मैं ले आऊँगी !"

नईम सवालिया नज़रों से उसे देखता रहा।

"फिर हम चले जाएँगे," शीला ने कहा।

कुछ देर तक वह उसी तरह खड़ा झूमता रहा। फिर आहिस्ता से हाथ छुड़ाकर बाहर निकल आया।

यह पूरे चाँद की रात थी। वह लगातार छत को घूरे जा रहा था। उसकी आँखें ख़ुश्क और बे-ख़्वाब थीं और वह लकड़ी के तख़्तपोश पर लेटा था। दूसरी तरफ़ बुड्ढा लिहाफ़ में सिकुड़ा हुआ सो रहा था। कुछ देर पहले मधुकर अन्दर से निकला था। बरामदे में रुककर उसने नेवले का-सा सिर घुमाकर इधर-उधर देखा और थैले को कन्धे पर दुरुस्त करता हुआ बाहर निकल गया था। छप्पर तले अँधेरे की वजह से वह नईम को न देख सका था। बातों की आवाज़ अब बन्द हो चुकी थी।

फिर वह दरवाज़े में नमूदार हुई। नईम का कम्बल और थैला उसे पकड़ाकर वापस चली गई। जब दोबारा बाहर आई, तो अपने कम्बल रस्सी में बाँधकर उसने कन्धे पर उठा रखे थे और हाथ में एक पोटली पकड़े हुए थी।

"चलो।" उसने कहा।

नईम ने अँधेरे में गहरी नज़रों से उसे देखा और देखता रहा।

"यह रोटी है," हाथ उठाकर उसने सादगी से कहा, "रास्ते के लिए..."

उसी तरह देखते हुए नईम ने थैला कन्धे पर लटकाया। फिर उसने पूरे बाज़ू के साथ, मज़बूती, लेकिन आहिस्तगी से उसे पीछे को धकेला।

"तुम यहीं रहो।" उसने कहा और कम्बल उठाकर बाहर निकल गया।

शीला ने भागकर उसके बाज़ू पर हाथ रखा, "नहीं ! मैं तुम्हारे साथ जाऊँगी। तुमने कहा नहीं था ?" उसने उदासी से पूछा।

"मैं गाँव नहीं जा रहा हूँ।" मुड़कर देखे बग़ैर नईम ने कहा और रफ़्तार तेज़ कर दी।

शीला ने साथ-साथ भागते हुए उसके बड़े कोट की जेब में हाथ डालकर खींचा, "मैं तुम्हारे

साथ जाऊँगी। तुम कहाँ जा रहे हो ? तुमने कहा नहीं था ?"

नईम ने एक पल को रुककर उसे देखा। उसका हाथ जेब से निकाला और तेज़ी से चल पड़ा।

"नईम !" वह उसकी आस्तीन को मज़बूती से पकड़े भागती रही, "मैं सारा काम कर सकती हूँ। मैं तुम्हारे साथ..."

"जाओ !" डरे हुए कुत्ते की तरह दाँत निकालकर वह चीख़ा और भाग उठा।

सीधा रास्ता छोड़कर वह एक पथरीली, ख़तरनाक ढलान पर उतरने लगा। शीला पत्थरों को पकड़-पकड़कर दो-एक क़दम उतरी। फिर एक चट्टान पर बैठ गई।

"नईम !" आख़िरी बार उसने कहा और बिलखकर रोने लगी। पत्थरों पर फिसलता, गिरता, लुढ़कता हुआ वह तेज़ी से नीचे उतर रहा था।

"सुअर...लकड़बन्द..." शीला ने चिल्लाकर कहा और पूरी ताक़त से एक भारी पत्थर उसके पीछे लुढ़का दिया। पत्थर शोर मचाता हुआ नईम के क़रीब से तेज़ी के साथ गुज़र गया।

ढलान के दामन में झरने के ठहरे हुए पानी के किनारे पर पहुँचकर उसने आस्तीन से पसीना ख़ुश्क किया और सख़्त प्यास महसूस की। पानी की सतह के साथ होंठ मिलाकर उसने चाँद और सितारों को देखा। बढ़ी हुई दाढ़ी को देखा और रात को चारों तरफ़ फैलते हुए महसूस किया।

प्यास बुझाकर वह सुस्ताने के लिए बैठ गया। फिर उसने अपना सियाह दस्तेवाला उस्तरा निकाला और देर तक उसे थैले के चमड़े पर तेज़ करता रहा।

पानी पर झुककर दाढ़ी मूँडते हुए उसने सोचा, "पता नहीं, कहाँ चला जाऊँ...मैं कैसे उसको...मैं कैसे...?"

पिछली रात की सर्द, बोझिल हवा पानी की सतह पर हौले-हौले चल रही थी। उसे नींद आ गई।

15

गुलाब के पौदों को पानी देकर अज़रा ने हाथवाला फ़व्वारा नीचे रखा और सूरज की तरफ़ पुश्त करके खड़ी हो गई। यूकिलिप्टस की चोटियाँ आसमान की जानिब हिल रही थीं और बरामदे पर ज़र्द फूलोंवाली विलायती बेल झुकी हुई थी। यह सितम्बर था। उसने दुख से बालों की लट को, जो माथे पर आ गिरी थी, पीछे किया। फिर संथे की बाड़ पर उसकी नज़र दौड़ने लगी।

हर एक पौदे पर उसने उसे रोकने की कोशिश की, लेकिन आप से आप चलनेवाली गोलियों की तरह वे एक से दूसरे, दूसरे से तीसरे पौदे पर आगे की तरफ़ फिसलती गई। जब बाड़ ख़त्म होने में पाँच फ़ुट का फ़ासिला रह गया, तो उसने एक भरपूर और सच्ची कोशिश के साथ आँखों को रोका और संथे के सब्ज़, रसदार, बदमज़ा पत्तों पर नज़रें जमाकर खड़ी हो गई। चन्द सैकेंड तक वह इसी तरह खड़ी रही। फिर उसने एक गहरा, पुर-सुकून साँस लिया।

बाड़ के पीछे सब्ज़े पर अठारह-बीस नौजवानों और बच्चों का हुजूम उस वक़्त किसी ऊट-पटाँग खेल में मसरूफ़ था, जिसमें सभी लोग एक साथ बोल रहे थे। बदलते हुए मौसम की ख़ुशगवार गर्म धूप सब्ज़े पर और जंगली संथे के घेरदार पौदों और बाड़ों पर फैली हुई थी। दरख़्तों पर पत्ते ज़र्द होना शुरू हो चुके थे और फ़िज़ा में पतझड़ का ज़र्द, मटियाला रंग ज़ाहिर हो रहा था। अभी कुछ दिनों में पतझड़ की हवाएँ चलेंगी, तो बाग़बान और उसकी बीवी बड़ी-बड़ी झाड़ओं से बाग़ की रविशों पर ख़ुश्क पत्तों के ढेर जमा करेंगे और आग जलाएँगे या ज़मीन में दबा देंगे, जो खाद बनेगी और मौसमे-बहार के आने पर गुलाब की जड़ों में डाली जाएगी। पतझड़ के बगूले और खड़खड़ाते हुए ख़ुश्क पत्ते ! सारे मौसम इस क़दर ख़ूबसूरत हैं, अल्लाह ! जाड़े भी, जब पिछले पहर

को ही शाम हो जाती है और आतशदान के क़रीब महफ़िलें जमती हैं। मख़मली स्लीपर और ऊनी जुराबें, ओवरकोट और कहानियाँ और रिकार्ड और आतशदान में लकड़ी के चटख़ने की आवाज़ें आती हैं और फिर जाड़ों की बारिश जो बेआवाज़ आहिस्तगी से गुमनाम अँधेरों में दूर-दूर तक गिरती है। और क़हवा, और फिर दस बजते हैं और रौशन महल के क़ानून के मुताबिक़ सब अपनी-अपनी ख़्वाबगाहों को चले जाते हैं...क़हवा और बारिश...भाप और बारिश...सारे मौसम !

उसने सहमकर बाड़ के पीछे उस दीवाने, शोर मचाते हुए मज्मे को देखा। वह वहाँ से चली आई थी और अब वापस जाना, उधर देखना भी नहीं चाहती थी, मगर देख रही थी...क्यों ? वह ? हुश्त ! खेलते और बातें करते हुए गिरोह का शोर बढ़ गया। यह रौशन महल का पिछवाड़ा था, जहाँ ऊँची-नीची कटी हुई घास थी और बेतरतीब बाड़ें थीं और गुलाब के चन्द पौदे थे। सामनेवाले ख़ूबसूरत कटे हुए क़तओं में उन्हें महफ़िलें जमाने की इजाज़त न थी। वहाँ रौशन आग़ा की बड़े पैमाने की सरकारी दावतें, जैसी कल शाम परवेज़ के सिविल सर्विस में दाख़िल होने की ख़ुशी में हुई थी, होती थीं, जिनमें मशहूर लोग शिरकत करते थे और तक़रीरें होती थीं और सियासत[1] पर गुफ़्तगू की जाती थी। चुनाँचे आज बाद दोपहर, हमेशा की तरह बड़ी पार्टी के बाद उनकी अपनी मंज़ूरशुदा छोटी पार्टी हो रही थी। उसी तक़रीब के सिलसिले में, लेकिन उससे कहीं ज़्यादा ख़ुशी, हंगामे और ग़ैर-ज़िम्मेदारी के साथ, जैसे गाय के पीछे-पीछे बछड़ा चला जाता है, वही पुराने जाने-पहचाने चेहरे थे, वही महबूब दोस्त, वही पुरानी ख़ुशी और अपनाइयत। अरशद, ग्रेगसन, शीरीं, परवेज़, तालिअ, तलअत, फिर सबके चचाज़ाद बहन-भाइयों का एक गिरोह, और छोटी नस्ल का हुजूम। सिर्फ़ ग़यास पहली मर्तबा शरीक हुआ था...और वह, वह...वहीद, साहिबज़ादा वहीदुद्दीन ऑफ़ रसूलपुर ! वह सबसे अलग ख़ामोशी से घास पर बैठा था और उसका लम्बा जिस्म बाड़ के पत्तों में से दिखाई दे रहा था और वह वहाँ से उठकर चली आई थी। क्यों ?...क्यों ?

बुलन्द होते हुए शोर में उसके ख़यालात की गाड़ी थम गई।

"तुम्हारा तो कोई कहना ही नहीं मानता ! तुम क्या मुक़ाबला करोगी ?" अरशद कह रहा था।

शीरीं बीच में ही बोल उठी, "हमारे में ज़्यादा डिस्पिलिन है। तुम अपने आदमी सँभालो !"

"अच्छा, तो दो ग्रुप ?" अरशद ने ललकारकर पूछा।

"कतई !" ग्रेगसन ने उसी जारिहाना[2] अन्दाज़ में जवाब दिया।

"मुक़ाबला ?"

"मुक़ाबला !"

अरशद ने हाथ पर हाथ मारा, "किसमें ?"

"तुम बताओ !"

"तुम बताओ !"

"हम नहीं बताते !"

"हम भी नहीं बताते। कोई ज़बरदस्ती है।" थोड़ी देर के लिए कार्रवाई रुक गई।

"लिप एंड नोज़ में कर लो।" तमाशाई हुजूम में से किसी ने सुझाव दिया।

"ठीक है !"

"ठीक है !"

"ठीक है, ठीक है !" एक शोर हुआ, और खलबली मच गई। दोनों टीमें आमने-सामने इकट्ठी होने लगीं। "आ जाओ...इधर आओ...यहाँ खड़े हो जाओ...अरे मियाँ, पीनक में हो ? देखो। नहीं-नहीं, हाँ-हाँ, दियासलाई...दियासलाई कहाँ है ? अरे दियासलाई कोई आदमी जा के लाओ भाई..."

---

1. राजनीति, 2. आक्रामक।

"माली !" शीरीं ने आवाज़ लगाई। माली ने बीड़ी किनारे-किनारे बहती हुई पानी की नाली में फेंकी और दौड़ा।

"दियासलाई ?"

अभी लाया, बीबी !" माली सूती वास्कट की जेबों में हाथ मारता हुआ रविशों पर भागने लगा।

"दो। दो।" अरशद ने दो उँगलियाँ हवा में हिलाईं, "सीधी क़तार में खड़े होओ, मियाँ। स्पोर्ट्समैनशिप कहाँ गई तुम्हारी ? एक-एक फ़ुट पर...एक-एक फ़ुट..." क़ियामत के शोर पर क़ाबू पाने के लिए अरशद चिल्लाता हुआ तेज़ी के साथ क़तार के सामने से गुज़र रहा था।

सामने घास पर बैठे हुए वहीद के ऊपर खड़ा ग़यास उसका कन्धा हिला रहा था, "उठो !'

"मैं नहीं खेलता !" वहीद ने रूठे हुए बच्चे की तरह कन्धा छुड़ाकर कहा।

"अरे वाह...कोई बात है ! स्पोर्ट्समैनशिप स्प्रिट का यह हाल है ? डूब मरिए !" बाज़ू से पकड़े-पकड़े वह उसे क़तार के सिरे पर ले गया।

अरशद कुर्सी पर खड़ा जोश से चारों तरफ़ देख रहा था। सामने लड़कियों की क़तार थी, जिसके आगे शीरीं और ग्रेगसन हड़बड़ाई फिर रही थीं और अपनी खिलाड़ियों को खेल के क़ानून याद करा रही थीं।

"ख़ामोश...ख़ामोश...भाइयो !" अरशद ने दोनों बाज़ू हवा में हिलाकर कहा, "दोस्तो और भाइयो...यह खेल का मुक़ाम नहीं...हमारी नाक का सवाल है !"

"बल्कि मुक़ाम है।" एक लड़की ने चुपके से कहा।

"बिलकुल दुरुस्त है।" परवेज़ संजीदगी से बोला। लड़कों ने तालियाँ पीटीं। चन्द एक ने नाकों को छूकर देखा।

"ख़ामोश...यह तालियाँ पीटने का मुक़ाम भी नहीं, बल्कि रोने का मुक़ाम है कि आज लड़कियाँ हमारे मुक़ाबले पर मैदान में निकल आई हैं !"

"हियर !" ख़ुशी के एक रेले में ग़यास ने ताली बजाई, लेकिन फ़ौरन ही मौक़े की नज़ाकत का ख़याल करके रुक गया ! इकलौती ताली फ़िज़ा में हलका-सा पटाख़ा छोड़कर ख़त्म हो गई। अरशद ने उसे सख़्ती से घूरा। क़तार के सब लड़कों ने घूरा। ग़यास बड़ी भोली शक्ल बनाकर इधर-उधर देखने लगा। वाक़िए[1] की शदीद मज़्हकाख़ेज़ नौईत[2] को महसूस करके लड़कियाँ खिलखिलाकर हँस पड़ीं। अरशद ने तक़रीर जारी रखी : "दोस्तो ! आओ, हम अहद करें कि आज हम नज़्मो-ज़ब्त[3] का बहुत बड़े पैमाने पर मुज़ाहिरा[4] करेंगे। आओ, हम...आओ..." अल्फ़ाज़ उसके ज़िहन से ग़ायब हो गए। दो बार उसने "आओ...आओ" कहा, जिसके जवाब में क़तार में से कोई मुस्तैदी से बोला, "आ गए।" अल्फ़ाज़ की तलाश में उसने मुट्ठी हवा में बुलन्द की और चन्द मिनट तक हिलाता रहा।

फिर अचानक उसने लड़कियों की तरफ़ मुँह किया और उन पर उँगली हिलाई, "और तुम...सुनो...तुम अपनी तक़रीर करो...सुना ?" उसने निहायत बदतमीज़ी से कहा।

लड़कियों की क़तार में गड़बड़ फैल गई और फिर कुर्सी के लिए बावली तलाश शुरू हुई। आख़िर बच्चों के गिरोह से एक कुर्सी छीनकर लाई गई, जिसकी एक टाँग पार्टी के शुरू में ही टूट गई थी। उसकी टाँग जोड़ने और कामयाब प्लेटफ़ॉर्म बनाने में काफ़ी वक़्त लग गया।

अरशद की तक़रीर अब अपने पूरे ज़ोरों पर थी। वह हाथ हिला-हिलाकर कह रहा था, "आज हम एक ख़ौफ़नाक चैलेंज से दो-चार हैं...आज..." कि एक लड़की की मुदाख़लत[5] से उसकी तक़रीर रुक गई। लड़की ने एक क़दम आगे बढ़कर एलान किया, "लड़कियाँ कम हैं !"

"नहीं, पूरी हैं !"

---

1. घटना, 2. तीव्र हास्यास्पद प्रकृति का, 3. व्यवस्था व संयम, 4. प्रदर्शन 5. हस्तक्षेप।

"नहीं, कम हैं !"

"पूरी हैं। धाँधली मत करो !"

अब तमाम लड़कों ने बादिले-ना-ख़्वास्ता[1] ध्यान दिया। सबने अपनी-अपनी जगह पर गिनना शुरू किया, "एलिस, शीरीं, तलअत, अज़रा कहाँ हैं ?"

"कहाँ हैं ?"

"हाँ, हाँ, कहाँ हैं ?"

"कौन ?'

"यही तो पूछ रहा हूँ !"

"लाहौल वला कुव्वत !"

"अज़रा कहाँ है ? अज़रा..." कोरस बुलन्द हुआ। फिर बाड़ के पीछे से अज़रा-अज़रा की पुकार मची और कोने-कोने में फैल गई।

"मैं ढूँढकर लाता हूँ। तुम कार्रवाई जारी रखो।" वहीद ने जाते-जाते अरशद की पीठ ठोंकी।

इस वक़्फ़े[2] से फ़ायदा उठाकर शीरीं पहले तक़रीर शुरू कर चुकी थी। जब अरशद ने बोलना शुरू किया, तो उनकी आवाज़ों ने मिलकर अजब शोर पैदा कर दिया, जिसमें साफ़तौर से कुछ भी सुनाई न दे रहा था, मगर इस बात से बेपरवाह दोनों मुख़ालिफ़ टीमें निहायत एतिमाद[3] और वफ़ादारी के साथ सुनती रहीं।

वह वहाँ से क्यों चली आई थी ? क्यों ? उसने झुककर फ़व्वारा उठाया। फिर फ़ौरन नीचे रख दिया और खड़ी रही। अभी-अभी वह घास पर उसके क़रीब बैठी थी और वह झुककर उसके कान में कह रहा था, "आहिस्ता बर्गे-गुल ब-फ़िशां..." और उसकी भारी, नर्म आवाज़ उसने गर्दन की जिल्द पर फैलती हुई महसूस की थी, और उसके साँस की नीम-गर्म भाप उसके ग़ाल से टकराई थी (उसने बेख़बरी में हाथ उठाकर गाल को छुआ) और वह अचानक बेहद ख़ामोश हो गई थी। वह सहमी हुई थी। क्यों ? वह इस क़दर दिलकश, इस क़दर मज़बूत, इस क़दर नाज़ुक था। हाँ, आँखों में ! हक़ीक़त में यह बड़ी अजीब बात थी, लेकिन बहरहाल थी, कि दूसरी तरफ़ देखते हुए उसने उसकी नज़रें अपने गाल में उतरती हुई महसूस की थीं, और वह उधर देखना न चाहती थी, मगर कुछ ही देर में जब उन तेज़, काटती हुई नज़रों के नीचे उसके गाल की जिल्द कँपकँपाने और उस जगह पर ख़ून उबलने लगा था, तो अचानक बहुत ज़्यादा घबराकर उसने उधर देखा था और देखती रह गई थी। उसकी आँखों में गाय के बच्चे की-सी नर्मी और नज़ाकत थी। ख़ुदाया ! वह दोबारा उसे अपनी तरफ़ झुकते हुए देखकर वहाँ से चली आई थी अपने दुखी दिल के एक मैकानिकी इशारे पर कुछ सोचे-समझे और महसूस किए बग़ैर !

मगर क्या यह सब ठीक था ? वह जानती थी। उसने मुहब्बत का तजर्बा किया था और उसके दिल में रंज था। वह सब जानती थी, और इसीलिए उस वक़्त की, उस एक पल की दहशत उस पर सवार थी। उसने दोबारा फ़व्वारा उठा लिया। गुलाब के नन्हे पौदे को पानी देते हुए अपने नाम की पुकार उसके कान में पड़ी और उस वक़्त अपने सारे पिछले दुखों को इकट्ठा करके उसने फ़ैसला किया कि अब किसी शक, किसी भूल की गुंजाइश नहीं थी।

रविश पर उसे जाने-पहचाने क़दमों की चाप सुनाई दी। वहीद...साहिबज़ादा वहीदुद्दीन ऑफ़...कमबख़्त ! छोटे-छोटे, तेज़ मुस्तैद क़दमों के नीचे सुर्ख़ बजरी चरचरा रही थी। इन क़दमों से वह इतनी वाक़िफ़ और मानूस थी, जितनी वह रौशन आग़ा और परवेज़ और तक़रीबन सब दोस्तों के क़दमों से थी। "आहिस्ता बर्गे-गुल..." जाने किसका शे'र था, लेकिन वह इससे वाक़िफ़ थी। मैं यहाँ से चली जाऊँ ? मैं बख़ुदा हरगिज़ यह नहीं...आहिस्ता बर्गे-गुल...फ़व्वारा ख़ाली हो रहा था,

1. इच्छा के विरुद्ध, 2. अन्तराल, 3. विश्वास।

लेकिन उसने पानी देना जारी रखा। पानी पौदे की जड़ों में से बह-बहकर रविश पर फैल रहा था। नन्हे पौदे की पत्तियों पर पानी डालने का अमल उसे बहुत भला लगा। सारे पानी को वहीं पर ख़त्म कर देने की दीवानी ख़्वाहिश बड़ी शिद्दत से उसके दिल में पैदा हुई और ऐसा करते हुए एक अजीब, बेवजह ख़ुशी की लहर उसके वुजूद पर फैल गई और उसके कान सनसनाने लगे।

गर्दन पर उसी जगह उसने उसके साँस की भाप को महसूस किया, "अज़रा बेगम ! आप क्यों चली आईं ?"

"मेरा गुलाब सूख रहा था, साहिबज़ादा साहिब !" उसने उसी अख़्लाक़[1] से जवाब दिया।

दोनों हँस पड़े। अज़रा ने फ़व्वारा नीचे रख दिया।

वहीद ने जूते की नोक से पानी को छुआ, "अभी-अभी मैं उस सब्ज़े को देख रहा था, जिस पर तुम बैठी थीं !"

"अच्छा !" अज़रा ने आँखें फैलाकर कहा।

"मैंने उसे छुआ, तो वह अभी तक गर्म था और उसमें से तुम्हारी ख़ुशबू आ रही थी।"

"ओह !" वह हँसी।

'तुमने कभी सब्ज़े को देखा है ?" साथ-साथ चलते हुए वहीद ने पूछा, "जिस पर से कोई उठकर गया हो ?"

"ऐं ? नहीं !"

"उसकी एक-एक पत्ती आहिस्ता-आहिस्ता, उठती है और जानेवाले के जिस्म की हरारत और ख़ुशबू छोड़ती है। सब्ज़े की अजीब ख़ासियत होती है। दिन भर उसको आने-जानेवाले रौंदते रहते हैं, लेकिन उसका एक-एक तिनका, एक-एक पत्ती, सिर उठाती है, और बढ़ती है हमेशा... हमेशा..."

बाड़ के पीछे एक साथ अरशद और शीरीं की तक़रीरों से फ़िज़ा गूँज रही थी और मज्मा क़हक़हे लगा रहा था। वे दोनों सुर्ख़ रास्ते पर आते और जाते रहे।

"किस क़दर हंगामा कर रहे हैं ये लोग।" अज़रा ने ख़ुशदिली से कहा।

"हंगामा...हंगामा..." वह उकताहट से बोला, "लड़कियों में वह एक चीज़ अररर वह जिसे अंग्रेज़ी में 'ग्रेस' कहते हैं, होनी चाहिए !"

"ऐं ? लिप एंड नोज़ ?" अज़रा ने बाड़ के पार देखने की कोशिश करते हुए कहा।

"वह देखो, अज़रा ! तुमने बेचारे पौदे को इतना पानी दे दिया कि पत्तियों पर अभी तक बूँदें रुकी हुई हैं। यूँ जैसे उनके साथ छोटी-छोटी आँखें लगी हों।"

अज़रा उसकी तरफ़ देखकर तमस्ख़ुर से मुस्कराई और एकदम पलटकर चलने लगी। वह तेज़-तेज़ क़दम रखता हुआ उससे आ मिला।

"मैं कभी अन्दाज़ा नहीं कर सका कि अभी, अगले पल तुम क्या करनेंवाली हो ?" उसने हवा में हाथ फैलाया, "किधर को जानेवाली हो ? क्या कहनेवाली हो ? यह तुम्हारी शख़्सीयत[2] है। पता नहीं, क्यों, अज़रा, पर यह सच है कि...मैं समझता हूँ कि तुम बड़ी अजीबोग़रीब लड़की हो।

"पता नहीं, क्यों वहीद..." अज़रा ने उसी लहजे में कहा, "पर यह सच है कि मैं समझती हूँ कि तुम बहुत बातें करते हो !"

"ठहरो, अज़रा ! मेरी बात सुनो !"

वह उसके लहजे को महसूस करके ठिठककर रुक गई।

"हम एक-दूसरे को इतने अरसे से जानते हैं। इतने अरसे से एक दूसरे से वक़िफ़ हैं। इन रास्तों से वाक़िफ़ हैं !"

1. शिष्टाचार, 2. व्यक्तित्व।

घबराहट में अज़रा ने रास्ते से उतरकर सब्ज़े पर क़दम रखा।

"मैं अररर अपने आपको बेहतर महसूस करता हूँ, जब...तुमसे मिलता हूँ...इसका मतलब समझती हो, क्या है। तुम..."

वह भाग खड़ी हुई। वहीद वहीं खड़ा झिलमिलाती आँखों से उसे देखता रहा। फिर वह भी उनमें जा मिला।

खेल का मुक़ाबला शुरू था। कुछ देर वह गुमसुम खड़ी रही। रंज और तमस्ख़ुर के शदीद एहसास के साथ-साथ उसके दिल में एक अनजानी ख़ुशी भर गई थी। उसका जी चाहा, कि पूरे ज़ोर के साथ चीख़े, और वह गला फाड़कर चिल्लाई, "शाबाश...शाबाश !"

"यह ऊपरी मुतवस्सित[1] तबक़े के हिन्दोस्तान की वह ख़ुश-तर्बियत[2] सेहतमन्द नस्ल थी, जो अंग्रेज़ी दर्सगाहों[3] में तालीम पा रही थी, या पा चुकी थी और दिन-ब-दिन फैलती जा रही थी, लेकिन जिन बरसों की हम बात कर रहे हैं, उस वक़्त यह लोग तादाद में हिन्दोस्तान के शहरों और देहातों में बसनेवाले करोड़ों किसानों, मज़दूरों और मेहनतकश के मुक़ाबले में न होने के बराबर थे और शहरों से बाहर अपने खुले, हवादार मकानों में रहते थे।

सोने से पहले अज़रा ने पूरबी दरीचे के पट खोले और दूर-दूर तक फैली हुई रात को देखा। यूकिलिप्टस के पत्ते हवा में हिल रहे थे। वह दरीचे के पत्थर पर बैठी उनकी हलकी खुशबू (जिसके साथ क़तई तौर पर ज़ुकाम का ख़याल शामिल था) को सूँघती रही। बरामदे में किसी नौकर के गुज़रने की चाप सुनाई दी। दस बज गए। उसने सोचा, वह सहमकर उठी और दरीचे बन्द करके पर्दा हमवार कर दिया। गुज़रे हुए दिन की ख़ुशी अभी तक उसके आज़ा[4] पर मौजूद थी। उसने तिपाई का सब्ज़ लैम्प जलाया और बड़ी बत्ती गुल करके बिस्तर में घुस गई। लेटे-लेटे उसने देखा कि कारनिस पर पड़ी हुई तमाम चीज़ों पर गर्द की तह जम रही थी। वह उठी और अपने रात के लिबास से रगड़कर उन्हें साफ़ करने लगी। काँसों के छोटे-छोटे मुजस्समे[5] और हाथी, सफ़ेद पत्थर का ताजमहल, चीनी के गुलदान। सूखे फूलों को निकालकर उसने आतशदान में फेंका। सुनहरी फ्रेम में से झाँकती हुई रौशन आग़ा की तस्वीर। फिर उसकी नज़र अपने साज़ों पर पड़ी। उसने आहिस्ता से दो उँगलियाँ साज़ों पर रखीं। फिर इर्द-गिर्द छाई हुई गुमनाम, नाज़ुक ख़ामोशी को तोड़ देने के डर से फ़ौरन उठा लीं। वह उस मुक़द्दस[6] ख़ामोशी को तोड़ना नहीं चाह रही थी। किसी भी चीज़, किसी भी एहसास को, जो उस वक़्त ज़ाहिर था, और जम चुका था, वह बिखेरना नहीं चाहती थी, यहाँ तक कि दिन, जो गुज़र चुका था, अपनी तरफ़ से उसे ख़त्म करते हुए वह डर रही थी और उसे जारी रखने के लिए मसरूफ़ियतें तलाश कर रही थी। कल का दिन शायद कुछ भी साथ न लाए, उसने सोचा, आज का यादगार दिन। यह वक़्त, यह पल, किस क़दर तेज़ रफ़्तार है—तेज़ और ख़ुश। आहिस्तगी से उसने साज़ों को झाड़ा और वापस आ गई। अलमारी में उसकी किताबों पर धूल जमी हुई थी। फिर एक अचानक ख़याल से कि अँधेरा फैलने से वक़्त की उड़ान थम जाएगी, उठकर एक जल्दबाज़ जुम्बिश से उसने मेज़ का लैम्प गुल कर दिया, मगर उस पल, और उससे अगले पल, और उससे अगले, उसने रात के गुज़रने की सरसराहट को साफ़तौर पर सुना और अपने एहसास की शिद्दत पर दिल में तअज्जुब किया। उसी जल्दबाज़ी के साथ उसने लैम्प जलाया और मद्धिम सब्ज़ रौशनी में कारनिस पर चमकती हुई चीज़ों को ख़ुशी से देखा। बयक-वक़्त[7] बेचैनी और सुकून, जो उसके दिल में बैठ गया था, उसके ज़ेरे-असर[8] उसने लैम्प बुझाया और जलाया, बुझाया और जलाया।

अनगिनत बार ऐसा करने के बाद आख़िरकार दिन भर की थकावट ने उसे ख़ुद-ब-ख़ुद सुला दिया। बढ़ती हुई रात में लैम्प सुबह तक जलता रहा।

1. मध्यम वर्ग, 2. प्रशिक्षित, 3. स्कूलों, 4. अंगों, 5. मूर्तियाँ, 6. पवित्र, 7. एक साथ, 8. प्रभाव में।

16

शुरू माघ में एक रोज़ बहुत सवेरे नईम शीशम के उस पेड़ के नीचे पहुँचा, जहाँ से रौशनपुर के खेत शुरू होते थे, और आनेवालों को पहली मर्तबा गाँव के दरख़्त और दीवारें दिखाई देती थीं। मलगजी रौशनी में उसने धुएँ और धुन्ध में लिपटे हुए उस पुराने, महबूब गाँव को देखा और उसका दिल एकबारगी धड़कने लगा। पूरब की तरफ़ हलका-हलका उजाला फैल रहा था। गेहूँ और चने की फ़सलों पर माघ की धुन्ध दूर-दूर तक तैर रही थी और खेतों की लकीरें कुहरे में ढँकी हुई थीं। इन सारी आबाद और ग़ैर-आबाद ज़मीनों पर तेज़ ठंडी हवा चल रही थी। वह मैला लम्बा कोट, गर्म फ़ौजी टोपी और बड़े फ़ौजी बूट पहने शीशम के पुराने, सियाह तने की आड़ में खड़ा था। फिर भी हवा उसका कोट उड़ाकर टाँगों में दाख़िल हो रही थी। उसने होंठों पर ज़ुबान फेरी। उस कड़ाके की सर्दी में भी दस कोस पैदल चलने के बाद उसे प्यास महसूस हो रही थी। उसने झुककर पतले शीशे का-सा कुहरे का टुकड़ा उठाया और मुँह में रखकर चूसने लगा। फिर वह उस वक़्त तक खड़ा मुहब्बत, उदासी और ख़ुशी के मिले-जुले जज़्बात के साथ गाँव को देखता रहा, जब तक कि सर्द हवा के थपेड़ों ने उसे चलने पर मजबूर न कर दिया।

बूटों पर लगे हुए कुहरे और कीचड़ को तने से रगड़कर साफ़ करने के बाद वह दौड़ता हुआ उस छोटे-से टीले पर से उतरा और जाने-पहचाने खेतों में दाख़िल हुआ। ठंड से जमी हुई, ख़ामोश सुबह में भारी बूटों के नीचे कुहरे के टूटने की आवाज़ बुलन्द होने लगी। उसने गेहूँ की चन्द नर्म पत्तियाँ तोड़कर मुँह में रखीं और चबाने लगा, ''अभी यह कुछ नहीं कहतीं। फागुन में ज़बान को काटने लगेंगी। !'' सब्ज़ थूक निगलते हुए उसने सोचा, ''अहमद दीन ने इस दफ़ा फिर देर में बियाई की है !''

अगले खेत में, और उससे अगले में उसे चन्द किसान मिले, जो मुँह अँधेरे हल कन्धों पर उठाए बैलों के पीछे-पीछे निकल आए थे। नईम कोट का कालर खड़ा किए, टोपी में मुँह छुपाए ख़ामोशी से उनके पास से गुज़र गया। उसने सबको पहचाना—गुरु, दीनानाथ, करम सिंह, इमाम दीन पहलवान, ये वही पुराने लोग थे, जिनसे वह अच्छी तरह वाक़िफ़ था। वे सब हुक़्क़ों से मुँह हटाकर ग़ैर-मानूस लिबासवाले उस राहगीर को देखते हुए गुज़र गए। सिर्फ़ इमाम दीन ने उसे देखकर कम्बल लपेटते हुए कहा, ''सन चौदह में ऐसा जाड़ा आया था...'' फिर नईम को ख़ामोशी से गुज़रकर जाते हुए देखकर बैलों को मुख़ातिब करके बोला, ''नियाज़ बेग के लौंडे की तरह चलता है !'' नईम का जी चाहा, कि रुककर उससे बात करे, लेकिन हवा के धक्कों के नीचे चलता रहा और बात किए बग़ैर ही उसने अपने आपको हैरतअंगेज़ तौर पर मुत्मइन[1] और ख़ुश पाया। गन्ने की फ़सल ज़्यादातर काटी जा चुकी थी। कहीं-कहीं दो-दो चार-चार मरले खड़ी थी। ''शायद शक्कर बना रहे हैं !'' जेब से हाथ निकालकर उसने एक गन्ने को छुआ।

खेतों के बीचों-बीच चलता हुआ वह जोहड़ के किनारे पर आ निकला। चलते-चलते उसने एक कंकर उठाकर जोहड़ की सतह पर फेंका। पत्थर के कुहरे के साथ टकराने की आवाज़ पैदा हुई और कंकर वहीं पड़ा रहा। नईम ने रुककर हैरत से पानी की सतह को देखा और एक बड़ा पत्थर उठाकर फेंका। अब के कुहरे के टूटने और पत्थर के पानी में डूबने की आवाज़ जोहड़ की ख़ामोश सतह पर से उठी और उसने लहरों को कुहरे के नीचे दूर-दूर तक फैलते हुए महसूस किया, ''मैंने तुम्हारे लिए रास्ता बना दिया है, मछलियो !'' उसने ख़ुशी से दिल में कहा।

जोहड़ के किनारे पर इकलौता घर देखकर उसे महिन्दर सिंह की याद आई, और फिर कितने ही मुर्दा दोस्तों की याद...जो उसके साथ रौशनपुर से रवाना हुए और लौटकर न आए। उसने टाँगों

1. सन्तुष्ट।

में हलकी-सी कँपकँपाहट महसूस की और कन्धे झुकाए वहाँ से गुज़र गया।

रास्ते के मोड़ पर वह ठिठककर रुक गया। सामने मुग़लों का घर था। उसका अपना घर? "लेकिन...ओह!" आँखें फाड़-फाड़कर देखने के बाद वह आहिस्ता-आहिस्ता चलता हुआ नज़दीक गया। दरवाज़े पर शीशम की लकड़ी का किवाड़ था, जिस पर सजावट के लिए अनगिनत लोहे की कीलें गाड़ी गई थीं। दीवार पक्की सुर्ख़ ईंटों की थी, जैसी रौशन आग़ा की हवेली की थी। दीवार के ऊपर से पक्के मकान का चौबारा नज़र आ रहा था। दो दफ़ा नईम ने आहिस्ता-आहिस्ता दरवाज़े पर हाथ रखा और उठा लिया—"दो बरस!" उसने सोचा, "इस अरसे में क्या नहीं हो सकता? मेरा बाप ज़िन्दा है? यह किसका मकान है?"

वह देर तक वहीं खड़ा कन्धे दीवार के साथ रगड़ता और ज़मीन पर पाँव मारता रहा, यहाँ तक कि दिन का उजाला सारे में फैल गया और जोहड़ की सतह पर कुहरा पिघलने लगा। उस वक़्त साथवाले घर के बे-किवाड़ के दरवाज़े से एक बैल का सिर नुमूदार हुआ। फिर हमसाया अहमद दीन, जो उसकी पीठ पर सवार हुक़्क़ा पी रहा था, ज़ाहिर हुआ। क़रीब से गुज़रते हुए उसने बूढ़ी, मश्कूक[1] निगाहों से नईम को देखा। नईम ने टोपी माथे पर ऊँची करके उसे सलाम किया।

"हा...आहा...आहा हा!" बूढ़े हमसाए ने दोनों हाथ फैलाकर हैरत और ख़ुशी के मारे मुँह खोला और धुएँ और भाप का एक बादल छोड़ा, "नियाज़ बेग का बेटा है तू? तू कब आया? यहाँ क्या कर रहा है?" वह नौजवानों की-सी फुर्ती से छलाँग लगाकर बैल पर से उतर आया और नईम की आस्तीन को पकड़कर ज़ोर-ज़ोर से हिलाने लगा, "अभी आ रहा है? कलकत्ते से? तू तो मोटा हो गया है!"

फिर वह उसका बाज़ू छोड़कर धड़ाधड़ दरवाज़ा पीटने लगा, "नियाज़ बेग! अभी तक सो रहा है बुड्ढे अफ़ीमची!" वह चिल्लाया, "देख, तेरा बेटा आया है। बाहर खड़ा है कब से? तेरा बेटा, जिसके क्रॉस की ज़मीन से इस दफ़ा मन-मन का तरबूज़ उतरा और जिसके अनाज से तूने महल खड़ा किया है और जिसके सबब तू चौधरी बन गया है, वह बाहर आया है। और तूने घोड़ी भी नहीं भेजी? ऐसा जाड़ा पड़ रहा है। तूने आग जलाई है? अब औरतों का पीछा छोड़कर बाहर आ..."

फिर दरवाज़ा पीटना और चिल्लाना छोड़कर वह मुड़ा और उसके कोट के बटन मरोड़ते हुए बोला, "मैंने कई बार तुम्हें पूछा। तुम कलकत्ते में थे। मेरा बेटा मारा गया है। अब सबके बेटे मेरे बेटे हैं, और तुम्हें पाला तो नहीं लग गया? बोलते क्यों नहीं!...थ...थ...थ...एक दफ़ा मुझे भी पूस की एक रात सफ़र में आ गई थी, तो तीन रोज़ तक मैं बोल न सका...मेरी ज़बान अकड़ गई थी।"

नईम ने हँसकर उसे यक़ीन दिलाया कि वह बात कर सकता था, "मगर मुझे सर्दी लग रही है।" उसने कहा।

शीशम की लकड़ी का मेख़ोंवाला दरवाज़ा चरचराया और उसने अपने बाप को देखा। उसे देखते ही अहमद दीन के मुँह से फिर डाँट-डपट की बौछार शुरू हुई। उसकी तरफ़ तवज्जुह किए बग़ैर नियाज़ बेग नईम को देखता रहा, और नईम ने देखा कि दो बरस के अरसे में उसका बाप बहुत बूढ़ा हो गया था कि झिलमिलाती आँखों के साथ उसकी तरफ़ देखते हुए उसका मुँह खुल गया और निचला जबड़ा तेज़ी से काँप रहा था। थोड़ी देर के बाद बाप और बेटे ने अपने आपको सँभाला और नियाज़ बेग ने बाहर निकलकर उसके माथे को और दाढ़ी को और गर्दन और कोट और असली और नक़ली हाथों को चूमा। साथ-साथ वह अजीब-सी आवाज़ें निकालता गया, जो गूँगे आदमी की उन आवाज़ों से मिलती-जुलती थीं, जो वह ख़ुशी के वक़्त या बातें करने की कोशिश में हलक़ से निकालता है। शोर सुनकर आस-पास के घरों से औरतें और लड़के बाहर निकल आए और खड़े

1. संदिग्ध।

होकर बाप-बेटे के मिलने का तमाशा देखने लगे। अन्दर जाने से पहले नईम ने इर्द-गिर्द नज़र डाली। देखनेवालों ने नज़रें झुका लीं। रौशन आग़ा के बाद वह पहला शख़्स था, जिसका एहतिराम[1] करना गाँववालों ने सीखा था।

घर के अन्दर नईम की माँ अपनी पुरानी आदत के मुताबिक़ ऊँची आवाज़ से रो रही थी। उसने हैरत से देखा कि उसकी माँ पर इन बरसों का बहुत कम असर हुआ था। उसके बाल सियाह और जिल्द मुलाइम और चिकनी थी। वह उसे घेरकर अपने कमरे की तरफ़ ले गई। पक्के फ़र्श को पार करते हुए नईम ने छोटी औरत को देखा, जो पाँच साल के अली को लिए अपने दरवाज़े में खड़ी थी।

कमरे में दाख़िल होकर नईम फ़र्श पर पाँव मारता हुआ बोला, "मेरा ख़ून जम गया है।"

"आग ला, कमबख़्त !" नियाज़ बेग बुढ़िया पर चीख़ा, "और अब हू-हू बन्द कर ! जानती नहीं कि सन् चौदह के बाद बस अब के साल जाड़ा पड़ा है। हू हू हू..." वह अपनी बीवी की नक़ल उतारने लगा।

थोड़ी देर के बाद नईम कोट और टोपी उतारकर सुर्ख़ कोयलों के आगे बैठा था। उसके हाथ में भैंस के गर्म दूध का कटोरा और सुर्ख़ गेहूँ की रोटी थी और सर्दी से अकड़े हुए जबड़ों को आहिस्ता-आहिस्ता चला रहा था।

"यह सब तुम्हारी ज़मीन का है।" नियाज़ बेग उसे बता रहा था।

"मेरी ?" दूध और रोटी चबाते हुए नईम बेध्यानी से बोला।

"हाँ ! आख़िर क्रॉस की ज़मीन थी। इन दो बरसों में इतना फल पड़ा, इतना फल पड़ा कि मैंने यह सब बनाया और नूरपुर के दस किसानों को बीज के लिए अनाज दिया और अभी तक कोठी भरी रखी है। जब तुम सोकर उठोगे, तो सब दिखाऊँगा। यह फ़र्श और चौबारा और दीवारें मैंने ख़ुद बनाई हैं और एक जोड़ी (बैल) जाटनगर के चौधरियों से ख़रीदी है। जब मैं जेब में रक़म डालकर जाटनगर जाने लगा, तो लोगों ने कहा, "चौधरियों के यहाँ ख़रीदार बनकर जाना कोई मज़ाक़ नहीं, सँभलकर जाना। लेकिन जब मैं वहाँ पहुँचा, तो उन्होंने इज़्ज़त से तुम्हारा नाम लिया और मुझे अपने पास बिठाया।"

"ऐसी चादरें हमारे पास ग्यारह और हैं।" उसकी माँ ने ख़ुशी से बिस्तर की चादर को छूकर कहा।

"तू बीच में मत बोल," नियाज़ बेग ने उस पर उँगली हिलाई, "सारे गाँव को पता है, ग्यारह और हैं !"

नईम ने बर्तन ख़ाली करके ज़मीन पर रख दिया और आस्तीन से मुँह साफ़ किया। उस वक़्त अली, जो बे-आवाज़ क़दमों से उसके क़रीब आ खड़ा हुआ था, पीछे से निकलकर बोला, "मेरे लिए शहर से क्या लाए हो ?"

नईम ने बच्चे की उदास, मासूम आँखों में देखा और उसके दिल में शदीद कम-मायगी[2] का एहसास पैदा हुआ। उसने मुँह फेरकर दिल में गाली दी।

"मैं शहर नहीं गया था।" उसने अली के गाल को छूकर कहा।

"जाओ, जाओ। तंग मत करो। थका हुआ है। इसे आराम करने दो।" नियाज़ बेग ने हाथ से लड़के को परे धकेल दिया। फिर कन्धे से पकड़कर खींचता हुआ नईम को बाहर ले गया।

"यह मुश्की बैल इस इलाक़े में दूर-दूर तक मशहूर है। इसे खोलने के लिए तीन दफ़ा चोर आए थे। फिर मैंने दरवाज़े में मेख़ें ठोंक दीं। ये सब मैंने अपने हाथ से ठोंकी हैं। मैंने काम करना नहीं छोड़ा। ख़ुद बियाई करता हूँ। फ़सल काटता हूँ। जब हाथ से कुछ न करोगे, तो क्या पाओगे ?"

1. सम्मान, आदर-सत्कार, 2. पूँजी की कमी।

उसने फ़ख़्र से दोनों हाथ फैलाए। सूखी जिल्द में से लकड़ी की तरह सख़्त और ख़ुश्क हड्डियों के जोड़ उभरे थे, "यह खलियान भी मैंने बनाया है। आओ, अनाज देखो !" उसने अनाजवाले कमरे का ताला खोला। नईम ने देखा कि उसकी टाँगें टेढ़ी हो गई थीं और चलते हुए उसे ठोकरें लग रही थीं।

"बाबा ! तुम बहुत बूढ़े हो गए हो !" नईम ने हँसकर कहा।

नियाज़ बेग की आँखों में एकबारगी दहशत की झलक आ गई। उसे इस सवाल की पहले से उम्मीद थी।

उसने मुँह फेरकर गेहूँ की मुट्ठी भरी और बनावटी सख़्त लहजे में बोला, "मैं किसी के लिए औरतों की तरह नहीं रोता। मैं काम करता हूँ। मैंने मकान बनाया है। मेहनत से इनसान कभी बूढ़ा नहीं होता।"

लेकिन नईम ने साफ़तौर पर महसूस किया कि वह अपने आपको छुपा रहा है, और मकान बनाने के बावजूद बेटे के सदमे ने उसे ख़त्म कर दिया है।

जब धूप गाँव की गलियों में दाख़िल हुई, और खेतों का कुहरा पिघलकर ज़मीन में जज़्ब हो गया, तो वह कोयलों की आग से गर्म किए हुए कमरे में घुसकर सो गया।

वह सोकर उठा, तो धूप ढल चुकी थी, और नियाज़ बेग आँगन में घोड़ी को लिटाए नॉल ठोंक रहा था। नईम को देखकर बोला, "दो मरले गन्ने रह गया था। आज सारा छील दिया है। रात को आख़िरी कड़ाह चढ़ेगा। बयालीस मन गुड़ रख लिया है। असाढ़ में बेचूँगा, जब भाव चढ़ेगा। इससे पहले नहीं !"

घोड़ी की नॉल ठोंककर वे दोनों गन्ना ढोने के लिए रवाना हुए। खेतों के बीच-बीच नियाज़ बेग आगे-आगे चलता हुआ मुस्तक़िल बातें करता रहा। उसने हर एक खेत के काश्तकार की काहिली और कामचोरी के क़िस्से सुनाए और पिछले दो बरस में जो-जो फ़सलें उनके खेतों में से उतरीं, उनका अपनी फ़सलों के साथ मुक़ाबला करके बताता रहा।

गाँव के बाहर निकलकर नईम की नज़र पच्छिमी कोने की जानिब उठ गई। वह फूँस की छतवाला एक कमरे का मकान था, जिसके अहाते की टूटी-फूटी दीवारें दूर से नज़र आ रही थीं। नईम ने चलते-चलते हलकी-सी झुरझुरी ली और नज़रें चुरा लीं।

"यहाँ से हमारी ज़मीन शुरू होती है," नियाज़ बेग ने हाथ फैलाकर बताया, "तुम एक क़दम ऐसी जगह पर नहीं रख सकते, जहाँ फ़सल की जड़ न हो...आ...हम...मेरे गन्ने को देखने के लिए सारा जाटनगर पिल पड़ा था।"

नईम को गन्नों पर काम करती हुई तीन लड़कियों की तरफ़ देखते हुए पाकर उसने फिर हाथ फैलाया।

"आ...हा...हा...यह अहमद दीन की बहू है। यह बेटी है। उसकी कटाई ख़त्म हो गई है। मेहनती लड़कियाँ हैं। हमारे घर में अब एक ऐसी औरत की ज़रूरत है।" वह नईम की तरफ़ देखकर शरारत से मुस्कराया, "और तू...तू कौन है ?"

तीसरी लड़की, जो तेज़ मालूम होती थी, सफ़ेद-सफ़ेद दाँत निकालकर हँसी, "मैं रहमू की बेटी हूँ। तुमने सुरमा लगाना छोड़ दिया है चचा ?"

नियाज़ बेग खिसियाना होकर पाँव पटकने और उनके गिर्द घूमने लगा, "काम करो। जवान लड़कियों को ज़्यादा बोलना नहीं चाहिए। काम करो !"

लड़कियाँ, जो नौजवान और सेहतमन्द थीं, हँसीं। नईम को देखकर शरमाईं, और पसीने से भीगे गालों और छातियों के साथ काम में जुट गईं। वे गन्ने छील रही थीं।

रात को मवेशियों के अहाते में गुड़ का कड़ाह चढ़ा, जैसे हर रोज़ रात को चढ़ता था। नीचे

गन्ने के छिलके की आग जलाई गई। नए बैल जोतते हुए नियाज़ बेग ने एक बार फिर उनकी तारीफ़ की और जाटनगर के चौधरी का क़िस्सा दोहराया। गाँव का एक नौजवान जुलाहा बेलने पर आ बैठा था और छीले हुए गन्ने उसमें दे रहा था। एक और नौजवान थोड़ी-थोड़ी देर बाद रस निकले हुए गन्ने का गूदा उठाकर सूखने के लिए फैला देता और ख़ुश्क गूदा आग में झोंक देता। तीसरा नौजवान, रस के भरे हुए घड़े उठा-उठाकर कड़ाह के पास क़तार में रखता जा रहा था। नियाज़ बेग खड़ा उबलते हुए रस में लकड़ी हिला रहा था। थोड़ी-थोड़ी देर के बाद वह भिंडी-तुरई की जड़ों का रस कड़ाह में निचोड़ता, जिससे गुड़ का मैल कटकर ऊपर आ जाता। लकड़ी के नीचे से मैल उतारकर वह फिर लकड़ी हिलाने लगता। जोश खाती हुई रस की मीठी, गर्म, ख़ुशबू फ़िज़ा में रची हुई थी। नियाज़ बेग बोलता जा रहा था : "मंडी के सारे गुड़ के सौदागर मेरा नाम जानते हैं। पचास गाँव का गुड़ रख दो। मेरे गुड़ को यूँ पहचान लेंगे, जैसे उस पर मेरा नाम लिखा हो। सोडे की एक चुटकी नहीं डालता, और लट्ठे का-सा सफ़ेद गुड़ निकालता हूँ। भिंडी की क्या बात है ! सारी करामात[1] हाथ की है !"

आम दस्तूर के मुताबिक़ गाँव के कई नौजवान, जिनकी अपनी फ़सल न थी, वहाँ जमा थे। दिन का काम ख़त्म करने के बाद उस वक़्त वे आग से अपने आपको गर्म करने और गुड़ खाने के लिए आ बैठे थे और नियाज़ बेग की हाँ में हाँ मिला रहे थे, और गप्पें मार रहे थे। किसानों के सादा, अक्खड़ मज़ाक़, गाँव की लड़कियों और अपने मुआशक़ों[2] की बातें और दिन भर की और कई छोटी-मोटी ख़ुशी और ग़म की बातें, और कहानियाँ–चाँद की और सितारों की और रात से मुतअल्लिक़ हर एक चीज़ की तवह्हुमात[3] से भरपूर कहानियाँ, और गाना...बेलनेवाले नौजवान ने गाना शुरू कर दिया था। वह एक हाथ से बेलने में गन्ने देता जा रहा था, और दूसरा हाथ कान पर रखे मुँह चाँद की तरफ़ उठाए गा रहा था। वह चाँद के और महबूब लड़की के बारे में एक देहाती गीत था। नईम ने सोचा, कि यह गीत सिर्फ़ रात का गीत था। सर्द रात में गानेवाले की भारी, बे-फ़न आवाज़, फ़िज़ा में जमी हुई चाँदनी को तोड़ती हुई दूर जा रही थी और सुननेवालों के दिलों में बैठ जाती थी। सीधी-सादी देहाती आवाज़ों में लचक और लहराव की कमी के बावजूद इस क़दर गहराई और वज़न होता है। उसने सोचा। वह सबसे अलग छिलके के ढेर पर बैठा पास से गुज़रते हुए बैलों को हर फेरे पर छड़ी जमाता जा रहा था।

एक पहर रात गुज़र चुकी थी, जब शीशम का मेख़ोंवाला दरवाज़ा चरचराया और एक शख़्स कम्बल में लिपटा हुआ अन्दर दाख़िल हुआ। आग की रौशनी में आने पर नईम ने मास्टर का चेहरा पहचाना और उसके जिस्म में अनजाने ख़ौफ़ की झुरझुरी पैदा हुई। चन्द नौजवानों के सलाम का जवाब देकर और नियाज़ बेग की सुनी-अनसुनी करके वह नईम के पास आकर बैठ गया।

"मैंने सुना था, तुम आ गए हो !" उसने बैलों पर चन्द छिलके फेंकते हुए कहा।

नईम ख़ामोश रहा।

"दो साल...क्या करते रहे ?"

"काम !" नईम ने जवाब दिया।

"कहाँ ? कहाँ-कहाँ ?"

"नौ।"

"नौ क्या ?" मास्टर ने बेतावी से पूछा।

"नौ जगहों पर...मुझे नाम याद नहीं रहे !"

"काम बना ?"

---

1. चमत्कार, 2. प्रेम-प्रसंग, 3. निराधार और काल्पनिक चीज़ों पर विश्वास।

"चन्द एक जगह पर बना। बाक़ी में तो ख़िफ़्फ़त[1] ही उठानी पड़ी !"

"ओह !" वह उदासी से बोला, "ख़िफ़्फ़त तो होती ही है। ख़िफ़्फ़त, अज़ीज़ दोस्त, आज़ादी और फ़तह से पहले ज़रूर आती है। ख़िफ़्फ़त ताक़त है। ताक़त जो कमज़ोरी से पैदा होती है, जो कम-मायगी के एहसास से..." बातें करते-करते उसने सिर उठाया और नईम की आँखों में शदीद खिंचाव देखकर एकदम ख़ामोश हो गया, "ओह...इन बातों का यह वक़्त नहीं !"

"मुझे इन बातों की कोई ख़्वाहिश नहीं।" नईम ने तेज़ी से कहा।

मास्टर ने उसके चेहरे पर बरहमी के आसार[2] को तअज्जुब से देखा और ख़ामोश बैठा गन्ने के छिलके को उँगलियों में मरोड़ता रहा। बेलने पर बैठे हुए नौजवान ने फिर गाना शुरू कर दिया था। उसकी ऊँची जानदार आवाज़ रात के सन्नाटे में नईम ने जैसे बहुत दूर से सुनी और उसके दिल में गाना सुनने की शदीद ख़्वाहिश पैदा हुई। गीत, जिसमें महबूब[3] लड़की का ज़िक्र था, और गेहूँ और मकई के खेतों का, और घोड़ों, शाहसवारों, कबड्डी के खिलाड़ियों, और नौजवानों के नाच का, और मुहब्बत के ग़म का ओर महबूब मर्दों की मौत का ज़िक्र था। आधी रात का गीत, जिसमें माघ की सर्द चाँदनी की तमामतर मूसीक़ी[4] खिली हुई थी, जिसमें ज़िन्दगी की कितनी ही छोटी-बड़ी ख़ुशियाँ थीं, जिनसे वह इतना अरसा दूर रहा था।

मास्टर ने आँखों के कोनों में नईम को देखते हुए सवाल किया, "अब कहाँ जाओगे ?"

"अब मैं कहीं नहीं जा रहा। यहीं रहूँगा !"

देर तक वे ख़ामोश बैठे गवैए की आवाज़ सुनते रहे और मिट्टी के आबख़ोरों[5] में से मक्खन मिला गर्म-गर्म गुड़ खाते रहे, जो नियाज़ बेग ने उनको दिया था। "जिस घोड़े को इसका एक आबख़ोरा खिला दो, वह चारों पाँव पर उठकर यह दीवार फाँद जाएगा।" उसने कहा था, "खाओ...सन चौदह के बाद इतना जाड़ा..."

गुड़ से लुथड़ी हुई उँगलियाँ साफ़ करते हुए मास्टर फिर बोला, "तुम्हारे बाद बहुत लोग तुम्हें पूछने आए !"

"कौन थे ?"

"रेवेन्यू के और पुलिस के !"

"फिर ?"

"चौधरी कहता रहा, तुम कलकत्ते गए हुए हो। जब वे अता-पता पूछते, तो कहता, "इत्ता-सा तो शहर है। जा के ढूँढ लो !"

नईम हँसा, "बाबा इस मुआमले में होशियार हैं !"

गाने के सुर बढ़ती हुई रात में चारों तरफ़ फैल रहे थे। मास्टर ने, जो बज़ाहिर गीत से बेख़बर बैठा था, प्याला रखा और उदास, मगर मज़बूत आवाज़ में बोला, "एक नई मुसीबत खड़ी हुई है !"

"क्या ?"

"हिन्दू-मुस्लिम सवाल !"

"ओह !"

"दिल्ली में फ़साद हुए हैं, मस्जिद के आगे बाजा बजाने पर, गऊ-कुशी[6] पर। अब यहाँ पर भी कुछ लोग आ गए हैं, जो इन चीज़ों को हवा दे रहे हैं !"

नईम का जी चाहा, कि उन लोगों के मुतअल्लिक़ कुछ पूछे, लेकिन इस मौज़ूअ[7] से उसे जो हिचकिचाहट और नामालूम-सी दशहत थी, ऊपर आ गई और वह चुपका बैठा रहा।

"ये चीज़ें सेहतमन्द तहरीकों[8] को तबाह कर देती हैं।" मास्टर ने फिर बात करने की कोशिश की, लेकिन वह उसे ज़्यादा देर तक न खींच सका और बात जल्द ही ख़त्म हो गई।

---

1. शर्मिन्दगी, 2. क्रोध के चिह्न, 3. प्रिय, 4. संगीत, 5. कुल्हड़ों, 6. गौहत्या, 7. विषय, 8. स्वस्थ आन्दोलनों।

थोड़ी देर तक इधर-उधर की बातें करने के बाद दोनों उठ खड़े हुए। मास्टर ने अपना बड़ा-सा, बेतकल्लुफ़ हाथ बढ़ाया। नईम ने बेदिली से हाथ मिलाया।

"ख़फ़ा मत होना, मास्टर ! मैं अब कहीं नहीं जा सकता। मैंने अपना काम ख़त्म कर दिया है। अब मैं यहीं रहूँगा। तुमने मेरे बाप की हालत देखी है ?"

"ठीक है। हर शख़्स का अपना काम होता है। ठीक है। ख़ुदा हाफ़िज़ !" मास्टर ने जल्दी से कहा, लेकिन वह अपने चेहरे की नागवारी[1] के असरात को छुपा न सका।

जाने से पहले नईम ने उसका हाथ गर्मजोशी से दबाया, और उस वक़्त उसे अजीब-सा एहसास हुआ। उसे लगा कि वह हाथ महज़ मुर्दा गोश्त और हड्डियों का भारी वज़न था। उसकी छठी हिस[2] ने, जो ऐसे मौक़ों पर तेज़ी से काम करने लगती थी, उसे आनेवाले ख़तरे का नामालूम-सा पता दिया। उसने अपने सामने खड़े हुए शख़्स के बड़े-से, उदास चेहरे को ग़ौर से देखा।

"मास्टर ! तुमने मुझे अपनी कहानी नहीं सुनाई ? तुमने कहा था..."

"अभी वक़्त नहीं, फिर कभी सही।" उसने हाथ खींच लिया और दरवाज़ा खोलकर बाहर निकल गया।

ऊँचे होते हुए चाँद के नीचे वे अजनबियों की तरह जुदा हुए, यह जाने बग़ैर कि वे आख़िरी बार मिल रहे हैं। गानेवाले की आवाज़ देर तक उनके पीछे बुलन्द होती रही।

सुबह सोकर उठने के बाद नईम ने अपने आपको ताज़ा दम महसूस किया। धूप अभी आँगन में नहीं आई थी। रात भर जागने के बाद उसका बाप अब सो रहा था। उसने दरवाज़े में से झाँककर देखा। नक़ली रेशम के सुर्ख़ लिहाफ़ में उसका बूढ़ा जिस्म गठड़ी बना हुआ था। उसने इर्द-गिर्द टोकरे ढँके हुए रखे थे और ताज़ा गुड़ की मीठी, गर्म बास कमरे में फैली हुई थी। नईम मुस्कराकर आँगन में निकल आया। उसके मामूँ का लड़का रावल और अली नल के पास खड़े थे। उसने कान से पकड़कर अली को उठाया और हवा में उछाला। लड़का आवाज़ निकाले बग़ैर उसके कन्धे पर आन गिरा और उसकी गर्दन को घोड़ा बनाकर बैठ गया। नईम उन दोनों को लेकर अहाते में निकल आया।

"तुम तो बड़े लम्बे हो गए हो !" उसने बड़े लड़के की गर्दन पंजे में दबाते हुए कहा।

लड़के उसके साथ खुले न थे और शरमा रहे थे, मगर चन्द ही बातों में खुल गए।

"मैं घोड़ी दौड़ा लेता हूँ।" अली उसकी गर्दन पर चढ़ा-चढ़ा बोला।

"मैं घोड़ी पर खड़ा होकर उसे दौड़ा लेता हूँ।" रावल ने कहा।

"जब मैं तुम्हारे जितना था, तो उस पर सीधा लेटकर दौड़ाया करता था।" नईम ने गप मारी।

"सीधा लेटकर !" दोनों लड़के तअज्जुब से एक साथ बोले।

"लो, इसे दौड़ाओ।" नईम उसे सफ़ेद घोड़ी के क़रीब ले गया, जिसकी तारीफ़ और ख़रीदारी की लम्बी कहानी, जो उसने अपने बाप से सुनी थी, वह अब भूल चुका था।

अली मेंडक की तरह उसके कन्धे पर से कूदकर घोड़ी की पुश्त पर जा पहुँचा। इस अचानक धचके से घोड़ी पिछले पाँव पर उठी और अली उसकी अयाल पकड़ने की कोशिश में फिसलकर ज़मीन पर आ रहा। उसके दोनों साथियों ने क़हक़हे लगाए। अली खिसियाना होकर हँसा और ढिठाई से उसकी दुम के साथ लटकने लगा।

"कलकत्ते में भी घोड़े होते हैं ?" रावल ने पूछा।

"हाँ ! गाड़ियों से जुतते हैं !"

"बैलगाड़ियों में ?"

"नहीं, घोड़ागाड़ियों में !"

---

1. अप्रियता, 2. इन्द्रिय।

"गुड़ भी होता है ?"

वह वहीं खड़ा उनके साथ गप्पें मार रहा था कि उसने आँगन में अपने बाप की आवाज़ सुनी। अब खाने का वक़्त था। वे तीनों अन्दर जाकर नियाज़ बेग के गिर्द तख़्तपोश पर बैठ गए। पहले उन्होंने रात का मक्खन मिला गुड़ गर्म करके खाया, फिर भैंस का दूध और रौग़नी रोटियाँ। नियाज़ बेग हर चीज़ उसके हाथ में पकड़ाते हुए कहता जा रहा था, "खाओ, खाओ। किसान और घोड़ा जब तक खाते रहें, जवान रहते हैं। जब खाना बन्द कर दें, तो मर जाते हैं। किसान और घोड़ा कभी बूढ़े नहीं होते।" और ख़ुद भी इस पर अमल करते हुए घोड़े की ख़ुराक खा रहा था। नईम कई बार उसके छोटे-से बूढ़े जिस्म और उसकी ख़ुराक का मुक़ाबला करके दिल में हैरान हुआ। आख़िर में उन्होंने कच्चे आमों का अचार और तरबूज़ खाया।

"भैंस का पेट ख़राब हो जाए, तो अचार की फाँक देते हैं। अचार खाओ, पेट हलका हो जाएगा।" नियाज़ बेग ने कहा।

खाना ख़त्म करने के बाद नईम ने अपने फ़ौजी थैले में से फ्रांस से ख़रीदा हुआ सिगार निकालकर सुलगाया और धूप में बैठकर पीने लगा। जंगली अंगूर की बेल उसके सिर पर झुकी हुई थी और उसमें कई नन्ही-नन्ही चिड़ियाँ पर फैलाए बैठी धूप सेंक रही थीं। सर्दियों का आसमान गहरे नीले रंग का था और फ़िज़ा में मकड़ी के चमकीले तार उड़ रहे थे। कड़वा, सियाह तम्बाकू पीते हुए उसने एक लम्बे अरसे के बाद जाड़ों की एक सुहानी सुबह और ख़ुशगवार गर्म धूप का लुत्फ़ उठाया और आँखें बन्द करके फ्रांस के बाज़ारों और औरतों के ख़ूबसूरत लिबास को याद किया।

नियाज़ बेग उसके पास आकर बैठ गया और लालची नज़रों से सिगार को देखने लगा।

"इसका धुआँ बड़ा कड़वा है। मुझको ज़्यादा नहीं भाता।" सिगार पर नज़रें जमाए-जमाए वह बोला। नईम ने उसका मतलब समझकर थैले में से दूसरा सिगार निकालकर उसे दिया और उसके लगाने में मदद की। नियाज़ बेग ने तम्बाकू का कश लेकर अफ़ीमचियों की तरह आँखें मीच लीं।

"तुम्हारे थैले को किसी ने हाथ नहीं लगाया। फ़िक्र न करो। मैं नहीं पसन्द करता कि लोगों के पीछे उनकी चीज़ों को छेड़ा जाए।" उसने कहा।

जब तक सूरज ऊपर आया, वे बैठे बातें करते रहे। नियाज़ बेग ने बनावटी सख़्त लहजे में, मगर दिल में डरते-डरते पहली बार उससे पूछा कि वह कहाँ चला गया था और क्यों इतना वक़्त बर्बाद करके आया था ? उसके जवाब देने पर कि उसने वक़्त बर्बाद नहीं किया था, नियाज़ बेग ने पूछा कि फिर उसने क्या तीर मारा था ? नईम बड़ी चालाकी से इस सवाल का जवाब टाल गया और उसको यक़ीन दिलाने लगा कि अब वह कहीं नहीं जाएगा।

जब सूरज की किरणें सीधी हो गईं और धूप उनकी जिल्द जलाने लगी, और वह वक़्त हुआ, जब गाँव की औरतें खेतों में काम करनेवाले मर्दों का खाना लेकर जाती हैं, तो उन्होंने बाहर हलका-हलका शोर सुना, जो बढ़ता जा रहा था। वे बाहर निकले। किसानों की एक टोली गली के मोड़ पर आई और उनके घर के सामने से गुज़रकर अगले मोड़ पर ग़ायब हो गई। उस टोली में ज़्यादातर नौजवान थे, जिनके चेहरों पर दबे-दबे जोश की ज़र्दी और ख़ौफ़ के निशानात थे। उनमें से कोई बातें न कर रहा था और न ही उनके होंठ हिल रहे थे। फिर भी एक अजीब तरह से उनके दरमियान से धीमा-धीमा दबा हुआ शोर उठ रहा था। उनमें नईम और उसके बाप ने चन्द अजनबी शक्लें देखीं। जब वे गुज़र गए, तो नियाज़ बेग का माथा ठनका। वह और पीछे-पीछे नईम उस गली की तरफ़ बढ़ा, जिसमें से वे लोग निकले थे।

लम्बी और वीरान गली में धूप फैल चुकी थी। घरों के दरवाज़े बन्द और अधखुले थे, लेकिन कोई आदमी नज़र न आ रहा था। वे दोनों अभी वहीं खड़े थे कि गली के दूसरे सिरे से एक औरत

भागती हुई दाख़िल हुई। सूरज उसकी पुश्त पर था और घबराहट में उसके दोनों पाँव बीच में बहनेवाली नाली के दोनों तरफ़ बारी-बारी पड़ रहे थे और वह अजीब तरीक़े से भाग रही थी। उसका लहँगा हवा में उड़ रहा था और वह अपने दो-साला बच्चे को छाती में दबाए हुए थी। नज़दीक आने पर उन्होंने पहचाना। वह रहमत की बहू थी। नियाज़ बेग को देखकर उसके ज़र्द, काँपते हुए होंठों से चीख़ निकली, "मार दिया...ख़ून कर दिया ज़ालिमों ने..." और बच्चा उसके हाथों से लटक गया।

नियाज़ बेग ने लपककर बच्चे को सँभाला, "किसको ? किसने ?"

"उसको...मास्टर को...हाय !" वह रोते हुए बोली।

"कहाँ ?...कहाँ पर ? क्यों ?...हैं ?..." नियाज़ बेग ने बेसब्री से पूछा।

औरत के मुँह से सिर्फ़ इतना निकला, "हाय चचा नियाज़ बेग ! वह बड़ा भलामानस था !"

अचानक बेहद उकताकर नईम पलटा और घर में दाख़िल हुआ। बेचैनी से उसने घोड़ी की पुश्त पर हाथ फेरा। घोड़ी ने झुरझुरी ली और पहचानकर उसके कन्धे पर मुँह रगड़ा।

"मुझे क्या... !" फ़िज़ा में देखते हुए उसने सोचा।

फिर वह सीधा अपनी माँ के पास जाकर चारपाई पर बैठ गया। उसकी माँ, जो बेटे के आने पर मग़रूर हो गई थी, सुबह-सुबह दूसरी औरत के साथ ख़ूब ज़ोर की जंग करने के बाद उस वक़्त इत्मीनान से बैठी हुक़्क़ा पी रही थी। कुछ देर के बाद वहाँ से उठकर वह बावर्चीख़ाने में घुस गया। बाजरे की मीठी रोटी का टुकड़ा तोड़कर चबाने लगा। फिर उसे निगलने की कोशिश में उगल दिया और लुआब का गोला उसके हलक़ में जाकर फँस गया। ग़ुस्से से झल्लाकर उसने रोटी का टुकड़ा दूर फेंका और ऊँची आवाज़ से बोला, "मुझको उससे क्या ग़रज़ ?"

आँगन में खड़ा होकर वह नलके की हत्थी मरोड़ता रहा। फिर उसने उचककर हमसाए अहमद दीन के आँगन में देखा। अंगूर की बेल पर बैठी हुई तितली को पकड़ने की कोशिश की। गाय के चार दिन के बछड़े को बाज़ू में लेकर उठाया और रख दिया। दरवाज़े में खड़े हुए अली को इशारे से बुलाया, जो अपनी माँ के डर से कमरे में ग़ायब हो गया। फिर वह दोबारा नलके के पास गया और टोंटी के साथ मुँह लगाकर बहुत-सा पानी पिया। जब पानी पी चुका, तो जेब में हाथ देकर बाहर निकल गया।

अब गली में इक्का-दुक्का आदमी ज़ाहिर होना शुरू हो गए थे, और नीची आवाज़ों में बातें कर रहे थे। पास से गुज़रते हुए मीरासी को रोककर नईम ने पूछा, "क्या बात हुई है ?"

"गऊ-कुशी की बात थी, चौधरी ! मुद्दत से तुम्हें पता है, साईं के डेरे पर पन्द्रहवें के पन्द्रहवें गाय ज़िबह होती आई है। आज हिन्दू ज़िद पर आ गए। ज़िद पर क्या आ गए, यह सब उन सुअरों की शरारत है, जो बाहर से आए हैं। बस झगड़ा बढ़ गया। मास्टर, जो बेचारा इधर का, न उधर का, समझाने गया और सुअरों ने उसे ख़त्म कर दिया। थ-थ-थ ! उसने सिर्फ़ इतना कहा।" वह मीरासियों के मख़सूस अन्दाज़ में बात बढ़ाता चला जा रहा था कि नईम वहाँ से चल पड़ा।

खेतों में चलता हुआ वह उस जगह पहुँचा, जहाँ शीशम और कीकर के भंडार के चारों तरफ़ जगह-जगह से टूटी हुई कच्ची दीवार खिंची हुई थी। पगडंडी पर एक जगह मिट्टी का एक बर्तन टूटा हुआ था और लस्सी बहकर ज़मीन में जज़्ब हो चुकी थी। पास ही एक चँगेर और बाजरे की रोटियाँ बिखरी पड़ी थीं। यह उस औरत की थीं, जिसे मौत के नज़्ज़ारे ने परीशान कर दिया था। नईम ने पंजों पर उठकर दीवार के ऊपर से देखा। कीकर के एक दरख़्त के नीचे मास्टर मरा पड़ा था। उसके दोनों बाज़ू फैले हुए थे और ज़र्द मुर्दा चेहरा आसमान की तरफ़ उठा हुआ था। ज़रा फ़ासिले पर एक मरियल-सी भूरे रंग की गाय घास चर रही थी और डकरा रही थी। जब नईम की टाँगें काँपने लगीं, तो उसने बेदिली से दीवार पर थूका और वापस चल पड़ा।

गाँव में दाख़िल होते वक़्त उसने नौजवानों के एक गिरोह को देखा, जो लट्ठ और बल्लम हाथों

में थामे, चेहरों पर ख़तरनाक इरादों की छाप लिए एक जगह जमा थे। नईम कन्धे झुकाए, जेब में हाथ दिए, तेज़ी से उनके पास से गुज़र गया।

"मुझको इससे क्या ग़रज़ !" उसने तीसरी बार अपने आपसे कहा, लेकिन रात को सोने के लिए जब वह बिस्तर पर लेटा, तो अँधेरे में मास्टर उसके क़रीब आ खड़ा हुआ और वह रात भर जागकर बेगुनाह इनसानी ख़ून का दुख सहता रहा।

वह मार्च महीने का पहला दिन था, जब नियाज़ बेग मुँह अँधेरे आख़िरी बार फ़सल को पानी लगाने के लिए खेतों को गया। एक घंटे तक वह ज़र्द होती हुई गेहूँ की फ़सल के दरमियान फिरता और पानी खुलने का इन्तिज़ार करता रहा। जब पानी खुला, तो वह कुदाल उठाकर कीचड़ में घुस गया और पानी काट-काटकर मुख़्तलिफ़ खेतों को लगाने और बातें करने लगा :

"पहले तो एक घंटे के बाद आया, नामुराद ! और जो आया, तो बर्फ़ की तरह लग रहा है। हैं ?" वह झिड़ककर बोला, "पर ठहर...फ़िक्र न कर ! मेरा भी इतना गेहूँ है कि एक घंटे में घुड़सवार चक्कर नहीं लगा सकता। तेरा भी फिरते-फिरते भुरकस न निकल गया, तो मुझे पकड़ लियो ! तू बस दो क़दम चलकर ज़मीन में घुस जाता है...हैं ? आ मेरे साथ, तुझे पता चले, कहाँ तक जाना है ? आ, नहर के बच्चे, बेईमान, इतना गेहूँ सारे गाँव में किसी एक की मिल्कियत नहीं है। मैं बुड्ढा आदमी हूँ, शर्म कर। जब जवान था, तो पता है, सारी-सारी रात तेरे अन्दर खड़ा रहता था और पता भी नहीं चलता था। इस गन्दुम को बेचकर मुझे अपने बेटे की शादी करनी है...मुझे उसकी बीमारी का पता है। उसे एक औरत की ज़रूरत है। यह मर्द की बड़ी बीमारी है। हैं ?" उसने अँधेरे में इधर-उधर देखा और अपने कामयाब फ़ैसले पर दिल में हँसा, "औरत को पाकर उसकी सारी काहिली दूर हो जाएगी और वह ख़ुद-ब-ख़ुद काम करने लगेगा। सुना तूने ? किसी को बताना नहीं। नहर के बेवक़ूफ़ बच्चे ! हैं ?" वह मुँह फैलाकर हँसा और बढ़ती हुई सर्दी के असर को रोकने के लिए ज़ोर-शोर से बातें करने लगा।

आख़िर जब सर्दी की वजह से उसकी टाँगें काँपने लगीं, तो उसने पाँव ख़ुश्क करके जूता पहना और कुदाल कन्धे पर रखकर किनारे-किनारे फिरने लगा।

सूरज दो नेज़े से भी ऊपर आ चुका था, जब वह घर लौटा। मक्खन और बादाम मिले हुए गुड़ और भैंस के दूध का नाश्ता करने के बाद वह उठा और सब्ज़ी की काश्त के लिए ज़मीन तैयार करने के वास्ते निकल गया। हल को उठाकर कन्धे पर रखते हुए उसने झुँझलाकर छाती को मला, "यह क्या सवेर से हो रही है, नामुराद !" और सीने में फिरते हुए दर्द को गाली दी।

"सब्ज़ी की बियाई अब तक ख़त्म भी हो जानी चाहिए थी। फागुन निकला जा रहा है। यह लौंडा अगर किसी काम का होता।" बैलों के पीछे-पीछे चलते हुए उसने दिल में बेटे के नाकारापन पर अफ़सोस किया।

हल चलाने के दौरान उसने दर्द को थोड़ी-थोड़ी देर बाद तेज़ होते हुए महसूस किया, मगर उसे काम और बातों के शोर में दबाए रखा। इसके अलावा उसे मक्खन-बादाम और गुड़ की ख़ुराक पर मुकम्मल भरोसा था, जिसने हमेशा उसे घोड़े जितनी गर्मी पहुँचाकर सारी तकलीफ़ों से बचाए रखा था। "किसान और बैल अगर मामूली तकलीफ़ों से बैठ जाएँ, तो दुनिया के काम हो चुके !" दाँत पीसकर उसने बैलों से कहा।

सूरज सिर पर पहुँच चुका था, जब उसने सब्ज़ी के लिए छह-छह इंच ज़मीन पलटकर रख दी। खेत के किनारे पर खड़ा होकर वह थोड़ी देर के लिए ख़त्म किए हुए काम की ख़ुशी में सीने की तकलीफ़ को भूल गया। घर पहुँचकर उसने उबली हुई गाजरें खाईं और हुक़्क़ा पीने के लिए बैठ गया, मगर हुक़्क़ा उससे ज़्यादा देर तक न चल सका। तम्बाकू के हर कश पर दर्द बढ़ता गया। अभी सारे जानवरों के लिए चारा लेकर आना था और फिर नियाज़ बेग के लिए तो हर बीमारी

का इलाज काम था। सख़्त मेहनत। "पसीने के साथ सारी इनसानी और हैवानी बीमारियाँ दूर हो जाती हैं।" उसने कहा और रस्सी और दराँती उठाकर चारा काटने के लिए चल पड़ा। अहाता पार करते हुए उसने दिन भर के भूके मवेशियों को रहम और मुहब्बत की नज़र से देखा।

"मैंने दो बार खाया है और तुमने चार बार खाया है, और इनका कोई ख़याल नहीं है ! हैं ?" उसने रावल की गर्दन में दराँती चुभोकर कहा।

"जा तो रहे हैं !" लड़का गर्दन मलते हुए ग़ुस्से से बोला।

चारा काटते हुए वह दर्द की शिद्दत से लड़के पर, दराँती पर, और चारे पर गरजता रहा : "अगर एक जानवर भी भूक से मर गया, तो मैं तुम सबको घर से निकाल दूँगा। वे मेरे बड़े बच्चे हैं। तुम छोटे हो। औरतों की क्या परवाह है !" उसने घमंड से कहा।

चारा काटकर उन्होंने दो गट्ठे बनाए और सिरों पर उठाकर झूलती हुइ मख़सूस चाल के साथ घर की जानिब रवाना हुए। सारे रास्ते वह बुख़ार और दर्द की शिद्दत से बेद की तरह काँपता रहा। उसके बदन पर बाल काँटों की तरह खड़े हो गए थे और जिल्द झुरझुरा रही थी। जब उसकी आँखों के आगे तारे नाचने लगे, तो उसने आँखें बन्द कर लीं और दिल में बोला, "मैं इन रास्तों पर आँखें बन्द करके चल सकता हूँ। मैं यहाँ पैदा हुआ था !"

लेकिन घर के दरवाज़े पर गट्ठा उसके सिर से गिर गया और वह गर्दन पकड़कर वहीं बैठ गया। वे उसे उठाकर अन्दर लाए और घर के तमाम नक़ली रेशम और सूत के लिहाफ़ उसे उढ़ा दिए। दोनों औरतों ने उसकी छाती पर तिली के तेल की मालिश की और पुदीने और जंगली बनफ़शे के फूलों की चाय बनाकर उसे पिलाई।

तेल और चाय की हरारत से वह होश में आ गया और नईम को पास बुलाकर हिदायतें देने लगा, "सब्ज़ी के लिए मैंने ज़मीन तैयार कर दी है। करेले और कद्दू के बीज अली की माँ से ले लेना और चार दिन के अन्दर-अन्दर बो देना, वर्ना ज़मीन ख़राब हो जाएगी। तुमने सरसों के फूलों को देखा है ? फागुन निकलता जा रहा है, और गेहूँ को अब पानी नहीं लगेगा। आज आख़िरी बार लगा दिया। यह शायद उसी की बरकत है। बदबख़्त बर्फ़ की तरह ठंडा था। और चने चैत के पहले दिनों में तैयार हो जाएँगे, लेकिन तुम्हें उनकी फ़िक्र करने की कोई ज़रूरत नहीं। उस वक़्त तक मैं भला-चंगा हो जाऊँगा। इस वक़्त चारा काटकर जानवरों को डाल दो ! सवेरे से भूके हैं, और घोड़ी के पिछले पाँव के नाल घिस गए हैं। चढ़ने से पहले नए ठोंक लेना, वर्ना खुर ज़ख़्मी हो जाएँगे।"

नईम पुश्त पर हाथ बाँधे खड़ा "अच्छा बाबा...अच्छा बाबा !" कहता जा रहा था। बातें करते-करते नियाज़ बेग की तकलीफ़ बढ़ गई, लेकिन उसने अपने लहजे को बरक़रार रखते हुए हिदायतें जारी रखीं : "और काम करो। काम करो। मेहनत से मैंने यह सब कुछ बनाया है। मेहनत से तुम इसे खड़ा रखोगे, वर्ना यह गिर जाएगा ! मैं अच्छा हो जाऊँगा, तो तुम्हारे लिए औरत की तलाश में निकलूँगा। फ़िक्र न करो। औरतें नाकारा होती हैं, लेकिन किसान के लिए औरत बड़ी मुफ़ीद[1] होती है। फ़िक्र न करो !" वह होंठों से मुस्कराया।

"अच्छा बाबा !" नईम ने कहा। वह देर तक इधर-उधर की बातें करता रहा। शाम के वक़्त जब कमरे में दिया जला, तो उसने आख़िरी बार नईम को पास बुलाया। जब वह उसके सामने आ खड़ा हुआ, तो उसने उसे नज़दीक आने का इशारा किया और उसे मज़बूती से पकड़कर फूट-फूटकर रोने लगा। मौत को सामने देखकर उसका सारा ग़ुरूर ख़त्म हो गया था। उस वक़्त वह सिर्फ़ एक मरता हुआ इनसान और एक बाप था।

बनफ़शे के फूलों की चाय और तिली के तेल के बावजूद आधी रात के क़रीब वह मर गया।

---

1. उपयोगी।

उसके जनाज़े पर सारा गाँव उमड़ आया। मरनेवाले का बेटा रौशन आग़ा के बाद गाँव का सबसे अमीर आदमी था और अभी कुँआरा था। आनेवालों में कुछ ऐसे किसान भी थे, जो उसके बाप के पुराने दुश्मन थे, और ऐसे भी, जो उसके सख़्त तबीअत और उसकी डींगों की वजह से उसे नापसन्द करते थे, और वे भी थे, जो एक नई-नई हासिल की हुई दौलत का ख़याल करके जलते थे। उस वक़्त वे सब ग़मज़दा[1] दिखाई दे रहे थे और नईम के पास बैठे अफ़सोस ज़ाहिर कर रहे थे।

"जिस वक़्त मुझे ख़बर मिली, मैं मकई के खेत में था। मेरे हाथ फावड़े पर रुक गए। यूँ लगा मेरे बच्चे कि जैसे दिल पर किसी ने हाथ डाल दिया हो।" एक बूढ़े किसान ने मुट्ठी हवा में लहराकर कहा।

"मुझे मेरी औरत ने बताया कि चौधरी न...न..." इतना कहने के बाद दूसरे किसान ने ऐसा हुलिया बनाया कि सब समझे, अब वह रोनेवाला है। "चौधरी नियाज़ बेग बड़ा बख़्तावर[2] आदमी था। वह जेल जाने लगा, तो..." उसने रुककर दोबारा रोने की कोशिश की। साथ ही कई सुननेवालों के चेहरे भी बिगड़ गए। बोलनेवाला फ़ौरन असली हालत पर आया और हाथ फैलाकर बात जारी रखी, "इत्ते...इत्ते...इत्ते...इत्ते...बड़े तरबूज़ थे उसके खेत में, जो उसने मुझे दे दिए ! हाय ! वह तरबूज़ अब कहाँ ?" वह झुका, लेकिन इससे पहले कि वह या सुननेवालों में से कोई रोता, उसने ख़ुश्क आँखों से चारों तरफ़ देखा और बात जारी रखी, "जब वह जेल से आया, तो उसने कभी उन तरबूज़ों का ज़िक्र मुझसे न किया...हा..."

कुछ देर तक रोने की नाकाम कोशिशों में उसका साथ देने के बाद लोग उसकी बहानेबाज़ी से तंग आ गए और उनमें ग़ुस्से की लहर बढ़ने लगी। एक मर्तबा जब वह झुका, तो उसे उसी हालत में छोड़कर तीसरे किसान ने बेसब्री से अपनी बात शुरू कर दी, "चौधरी बड़ा दिलवाला जवान था। जब मुझे मेले पर जाते हुए देखा, तो हमेशा मेरी पीठ ठोंकता और कहता, 'ऐश कर बेटा। ऐश कर' ऐसे ज़िन्दादिल बूढ़े अब मरते जाते हैं।"

इसी तरह हर एक ने बारी-बारी किसानों के चालाक और बे-फ़न अन्दाज़ में मरनेवाले की याद करके अफ़सोस ज़ाहिर किया।

जब उन्होंने जनाज़ा उठाया और बड़ी मुश्किल से दोनों बावैला करती हुई औरतों को लाश से जुदा कर चुके, तो अयाज़ बेग अपने भारी, ठिगने जिस्म के साथ अन्दर दाख़िल हुए और थोड़ी देर तक वह दरवाज़े में खड़े मजमे के ऊपर ख़ला[3] में देखते रहे। नईम ने दूर से उन्हें देखकर मुँह फेर लिया, मगर जब आहिस्ता-आहिस्ता चलते हुए नज़दीक आए और अपना बूढ़ा, पिलपिला हाथ उसके कन्धे पर रखा, तो वह मुड़ा और सब लोगों के दरमियान उनसे लिपटकर रोने लगा।

17

नईम को गाँव में रहते हुए चन्द महीने हो चुके थे। उसने दो जोड़ी बैल और ख़रीद लिए थे और अपने बाप की, अपनी और अयाज़ बेग की ज़मीन की, जो सारी मिलाकर चार जोड़ियों के लिए काफ़ी थी, अपनी निगरानी में मुज़ारों से काश्त करवा रहा था। इस साल कटाई के मौक़े पर उसने गाँव से बाहर एक कमरे का पक्का मकान बनवाया और उसमें मुस्तक़िल रिहाइश इख़्तियार कर ली। आबाई[4] मकान में दोनों औरतें, बच्चे और मवेशी रहते थे और नईम खाना खाने के लिए वहाँ जाया करता था।

अपने बाप के आख़िरी अल्फ़ाज़ वह कभी न भूला। काम, काम, काम ! यह उसकी ज़िन्दगी

1. शोकग्रस्त, 2. भाग्यशाली, 3. शून्य, 4. पैतृक।

का मक़ूला[1] था, और काम ही से वह ज़मीनों और मकानों को गिरने से बचाए हुए था। सुबह सवेर से लेकर दोपहर तक वह खेतों में रहता। हर रोज़ बढ़ती हुई फ़सल की रफ़्तार को देखता और मुज़ारों को उसके मुतअल्लिक़ हिदायात देता। हिस्से पर दी हुई ज़मीन की उसे फ़िक्र न थी। ज़्यादा वक़्त वह उस ज़मीन पर सर्फ़ करता, जो ख़ुद-काश्त थी, जिसके बैल और बीज उसके अपने और मुज़ारे उसके मुलाज़िम थे। दोपहर का खाना खाकर वह तम्बाकू पीता और घंटा भर आराम करता। फिर उठकर किताबों में अनाज की ख़रीदो-फरोख़्त और क़र्ज़ और उधार का अगला-पिछला हिसाब देखता। उसके बाद मवेशियों को देखने के लिए जाता और एक दिन छोड़कर बाक़ाइदगी से घर में औरतों के पास जाकर बैठता। ढंग से इधर-उधर की बातें करता। उनकी रोज़ाना की ज़रूरतें और शिकायतें सुनता। मकान की मरम्मत और मक्खन के ज़ख़ीरे के मुतअल्लिक़ पूछता और यह देखकर ख़ुश होता कि दोनों औरतें अब मुकम्मल सुलह और ईमानदारी के साथ रह रही थीं। शाम के वक़्त वह बाक़ाइदगी से (कभी-कभी पूरी फ़ौजी वर्दी में) पंचायतघर जाता, जहाँ वह फिर तम्बाकू पीता, और अगर मुंशी न होता, तो पंचायत की सदारत[2] करता और गाँव के रोज़मर्रा के चोरी, इग़्वा[3] वग़ैरह के मुक़दमे सुनता। इस तरह अब वह छोटे-मोटे ज़मींदार की तरह रह रहा था, और गाँव के बाशिन्दों की नज़र में उसकी हैसियत मज़बूततर होती जा रही थी।

लेकिन इस दिली इत्मीनान और फ़ारिग़ुलबाली[4] की ज़िन्दगी और मवेशियों की एक भारी तादाद के बावजूद उसका मिज़ाज तेज़ और तुन्द होता गया। मेलजोलवाले किसानों का कहना था कि यह ख़सूसियत उसे अपने बाप की तरफ़ से विरसे में मिली थी, लेकिन वह जानता था कि वह हमेशा से ऐसा न था। इस पर भी वह अक्सर किसी छोटी-मोटी बात पर अपने सही हाथ के एक ताक़तवर घूँसे के साथ गाँव के किसी कमीन या मुज़ारे की नाक से ख़ून जारी कर दिया करता, जिसकी नदामत[5] को मिटाने के लिए उसे कटाई के मौक़े पर दिल खोलकर हर एक को देना पड़ता !

इस आम इज़्ज़त-अफ़ज़ाई के बावजूद वह ज़ाती तअल्लुक़ात बढ़ाने से हिचकिचाता था और गाँव में महिन्दर सिंह के बाद अब तक कोई आदमी उसके ज़्यादा नज़दीक न हो सका था। कभी-कभी वह ज़मींदारी के मुआमलात रावल के सिपुर्द करके अपना फ़ौजी थैला उठाकर चन्द दिन के लिए अयाज़ बेग के पास दिल्ली चला जाया करता।

पतझड़ के मौसम में वह दिल्ली गया, तो अयाज़ बेग ने उसे सुनहरी हुरूफ़[6] में छपा हुआ आला दर्जे के मोटे काग़ज़ का एक कार्ड दिया। वह सह-रंगी कार्ड रौशन महल से जारी किया गया था और चन्द दिन. में होनेवाली परवेज़ की शादी का दावतनामा[7] था। उस पर अंग्रेज़ी ज़बान में उसका नाम और दावत की इबारत लिखी थी। इसी तरह का दूसरा कार्ड अयाज़ बेग के नाम का मेज़ पर पड़ा था। नईम ने उसे देखा और हलके दिल से मेज़ पर रख दिया, लेकिन वह ज़्यादा देर तक उससे लापरवाही न बरत सका। उसने दोबारा उठाया और रखा, उठाया और रखा, हाथ में उलट-पुलटकर देखा। फिर सलीक़े से तह करके अपने कोट की अन्दरूनी जेब में रख लिया। अयाज़ बेग ने खिड़की पर झुककर सिगार पीते-पीते उसके ताँबे के रंगवाले चेहरे को ज़र्द और फिर सुर्ख़ होते हुए देखा।

"चलोगे ?" उन्होंने बज़ाहिर देखते हुए पूछा।

"पता नहीं।" नईम ने उँगलियाँ चटख़ाते हुए कहा।

अयाज़ बेग ने सिगार को खिड़की के पत्थर पर मसला और ऐसे लहजे में, जिससे नईम को कुछ अन्दाज़ा न हो सका, कि वह किससे मुख़ातिब हैं, बोले, "रौशन महल की दावत है। ऐसी दावतें रोज़-रोज़ कहाँ..."

मेदे में बदमज़गी महसूस करके नईम ने उगालदान में थूका और बेचैनी से छाती को मला।

1. कथन, 2. अध्यक्षता, 3. अपहरण, 4. सम्पन्नता, 5. पश्चाताप, पछतावा, 6. अक्षरों, 7. निमन्त्रण पत्र।

बालों को नारियल के तेल से चिकना करने के बाद नईम ने उन्हें ठीक तरह बिठाया और दाढ़ी मूँडी। गालों को तौलिए से ख़ुश्क करते हुए उसने ज़रा मायूसी के साथ देखा कि ठोड़ी के नीचे गोश्त बढ़ रहा था और जबड़ों के पास चेहरा भारी होना शुरू हो गया था, और देहात के तेज़ मौसमों ने उसकी जिल्द को, जो कभी सफ़ेद और मुलायम थी, खुरदरा कर दिया था। फिर उसने चर्मी थैले में से पूरा फ़ौजी तक़रीबी[1] लिबास निकालकर पहना ! टोपी में मुर्ग़ाबी का पर लगाया। सीने पर जंगी मुलाज़िमत के रंगीन रिबन, फ़ीतियाँ और नीचे चमकती हुई धात का क्रॉस लटकाया। उसी थैले में से आख़िरी तीन फ़्रांसीसी सिगार निकालकर ऊपर की जेब में रखे और जाने से पहले लकड़ी का हाथ एहतियात से जेब में डालकर आस्तीन से ढँक दिया।

रौशन महल में दाख़िल होते वक़्त काग़ज़ की रंग-बिरंगी झंडियाँ और सुर्ख़ बजरी के रास्ते देखकर उसे वह दिन याद आया, जब वह पहली दफ़ा यहाँ आया था। आज भी पहली दफ़ा आ रहा था। पहली दफ़ा वह हमेशा तक़रीबात पर ही आता था, यह सोचकर वह दिल में हँसा।

इन सारे बरसों के दौरान रौशन महल में एक "गार्डन हाउस" के अलावा कोई तब्दीली न हुई थी। बाग़ के दक्खिनी कोने में ऊँचे-ऊँचे केले के पौदों में छुपा हुआ बाँस और लकड़ी का यह "गार्डन हाउस" अयाज़ बेग के नक़्शे के मुताबिक़ तैयार किया गया था। यह उसे वहाँ दाख़िल होते ही अयाज़ बेग ने बताया। घास के क़तओं पर, बरामदों में, और बाग़ के रास्तों पर आज उस पहली वाली तक़रीब से कहीं ज़्यादा चहल-पहल थी। दावते-वलीमा[2] पर आए हुए इनसानों का एक हुजूम था, जो बातों और क़हक़हों के शोर में इधर-उधर आ-जा रहा था। बीच-बीच में उसे जानी-पहचानी शक्लें भी नज़र आईं। ये वही लड़के और लड़कियाँ थे, जिनके साथ कुछ बरस पहले वह इन्हीं दरख़्तों के नीचे खेला-कूदा था। वह अब जवान हो चुके थे। उन्हें देखकर उसे अपने जवान होने और अयाज़ बेग के बहुत बूढ़े हो जाने का ख़याल आया।

"मुबारक हो !" उन दोनों ने परवेज़ से हाथ मिलाया।

"हैलो !" परवेज़ ने गर्मजोशी से नईम से हाथ मिलाया और देर तक उसका हाथ थामे उसकी आँखों में पुरानी दोस्ती को तलाश करके मुहब्बत से हँसता रहा। फिर वह मुड़कर अयाज़ बेग से बोला, "मुआफ़ कीजिएगा। मेरी बीवी अभी उधर गई है !"

"कोई बात नहीं। कोई बात नहीं !" अयाज़ बेग ने कहा।

फिर नईम ने हाथ उठाकर ख़ाला को सलाम किया। अधेड़ उम्र ख़ूबसूरत औरत ने पसन्दीदगी की नज़रों से उसे ऊपर से नीचे तक देखा।

"बहुत दिन के बाद आए हो, नईम मियाँ !" उसने कहा।

नईम मुस्कराया। उसी वक़्त उसने अपने आपको बहुत-से जाने-पहचाने, हँसते हुए चेहरों में घिरा पाया।

"हलो-हलो-हलो" का शोर उठा और उसे इतने हाथ मिलाने पड़े और ऐसे ज़ोरदार तरीक़े पर पुरानी दोस्ती को ताज़ा किया, कि उसका बाज़ू थक गया। यह वही परवेज़ और अज़रा का ग्रुप था।

"कहाँ चले गए थे, नईम ! इतनी देर के बाद..." एलिस ग्रेगसन ने अपनी मख़सूस तेज़, ख़ुशी से भरी आवाज़ में पूछा।

"जंगें फ़तह करके आ रहा है। दिखाई नहीं देता !" मलामतबार[3] नज़रों से एलिस को देखते हुए अरशद ने नईम के जिस्म की सारी लम्बान की तरफ़ इशारा किया।

मासूम तलअत, जो वैसी की वैसी छोटी-सी लड़की थी, बोली, "अरे नईम ! ओह ! तुम तो हीरो बन गए सचमुच के ! सब में से...अब तुम्हारी 'हीरो-वरशिप' होगी।" जोशे-मसर्रत[4] से उसने

1. औपचारिक, 2. विवाह-भोज, 3. भर्त्सनापूर्ण, 4. हर्षविग।

आँखें मीच लीं और मुट्ठियाँ कसकर कानों पर बजाने लगी।

"हमने अख़बार में पढ़ा था।" शीरीं ने कहा।

"क्या ?" नईम ने पूछा।

"तुम्हारे कारनामे के मुतअल्लिक़ और..." एक पल के लिए उसके इर्द-गिर्द ख़ामोशी छा गई और उसने पशेमान होकर मौज़ूअ बदल दिया, "तुम हिन्दोस्तान में तीसरे आदमी हो, जिसे यह एज़ाज़[1] दिया गया है।"

"हाँ।" वह आहिस्ता से हँसा। उनकी इस बेज़रूरत चश्मपोशी पर उसे सदमा हुआ।

"हल्लो !" पीछे से किसी ने उसके बाज़ू पर हाथ रखा।

"साहिबज़ादा साहिब !" नईम ने मुड़कर हाथ मिलाया।

"अरे मियाँ। कहाँ ग़ायब रहे इतने बरस ! बड़े मैदान मार के आ रहे हो ? वल्लाह, क्या शानदार सिपाही हो, आहा हा हा।" वहीद ने पसन्दीदगी से उसे देखा, "अब तो बड़े मशहूर आदमी..."

"नईम, तुम इनसे मिले..." शीरीं ने बात काटकर कहा, "बेगम बिलक़ीस वहीदुद्दीन ऑफ़..."

"हाँ, मेरी बीवी से मिलो, नईम !"

"आप इन्हें जानती हैं, बिलक़ीस भाभी," तलअत ने मासूमाना अन्दाज़ में कहा, "आप इन्हें नहीं जानतीं ? अरे वाह ! भई, नईम यानी नईम अहमद ख़ाँ, हमारे बहुत पुराने दोस्त हैं।"

बिलक़ीस ने अनजानेपन से सिर को ख़ूबसूरत जुम्बिश दी। वह एक पतली-सी जागीरदाराना नक़्शवाली लड़की थी। नईम ने ज़रा-सा झुककर एहतियात से उसे सलाम किया। वह जान-बूझकर ज़्यादा अख़्लाक़ बरतने की कोशिश न कर रहा था। उसमें एक क़ुदरती रुऊनत[2] आ गई थी, जो उसकी आँखों और होंठों की सख़्ती से बराबर मेल खाती थी। उसके साथी उसकी शख़्सियत में इस तब्दीली को शौक़ से देख रहे थे। वह उसे घेरे उसके चुस्त, बेदाग़ फ़ौजी लिबास और चमकते हुए क्रॉस और टोपी के पर को तारीफ़ी नज़रों से देखते हुए क़हक़हे लगा रहे थे। दरमियान में वह अपने आपको सँभाले, सबमें से सिर निकाले खड़ा संजीदगी और एहतियात से हँसता रहा। उस शख़्स की तरह, जो ब-यक-वक़्त मग़रूर, दुखी और ख़ुश हो।

जब मेहमान ज़्यादा इकट्ठे होने लगे, तो वे उसे कमरों की तरफ़ ले गए और चन्द एक इधर-उधर बिखर गए। अन्दर उसका इतने लोगों से तआरुफ़[3] कराया गया, कि उसे सिगार फेंकने के लिए बाहर आना पड़ा। मोटे-मोटे व्यापारियों और जागीरदारों और सियासी लीडरों ने उसे बे-एतिनई[4] से देखा और फ़ानूसों की रौशनी में सोफ़ों में धँसकर बैठे हुए बातें करते रहे।

नौजवान उहदेदार, जो परवेज़ और वहीद के दोस्त थे, उसी ख़ुशदिली के साथ उससे मिले, जो उनका ख़ास्सा[5] था। अंग्रेज़ औरतों और मर्दों ने उसके सीने पर लटकते हुए क्रॉस की इज़्ज़त में अपनी जगह खड़े होकर उसका इस्तक़्बाल किया और अपने नज़दीक बैठने के लिए कहा। उसने कई जगह रुकना चाहा, लेकिन अरशद, शीरीं और ग़यास, उसके साथ चिमटे हुए थे। उन ख़ुशदिल लोगों के लिए नईम एक दूसरी दुनिया का बेहद दिलचस्प बाशिन्दा था, जो तबक़ाती इख़्तिलाफ़[6] के बावजूद मग़रूर और बा-वक़ार[7] था, और किसी तरह से उनके दोस्तों के हलक़े में शामिल हो चुका था और इस वक़्त फ़ौजी लिबास में बेहद दिलकश लग रहा था।

आख़िर इस गहमागहमी से तंग आकर वह एक जगह पर बैठ गया। यह एक अधेड़ उम्र ज़मींदार था, जिसने अपने पास उसे जगह दी। उसने देहाती रईसों का लिबास पहन रखा था।

"आहा...नौजवान...तुम फ़ौज में मुलाज़िमत कर चुके हो ?" फ़ौज वाक़ई तुम जैसे नौजवानों

1. सम्मान, 2. अहंकार, घमंड 3. परिचय, 4. उपेक्षा, 5. गुण, स्वभाव, 6. वर्गीय भिन्नता, 7. प्रतिष्ठित।

से बनती है, जो मुल्क फ़तह करती है। जवानी में मैं भी फ़ौज में भरती होना चाहता था, लेकिन मेरा वज़न कम था। शायद मैं ज़मींदारी के लिए ही मौज़ूँ[1] था। आ हा हा...'' उसने नईम को छाती पर छुआ, ''कैसा आलीशान तमग़ा है। मैंने दूर से देखकर पहचान लिया था कि तुमने असल में जंगें लड़ी हैं। असल बात तो यह है, भई, कि ही ही ही...मैं सादा-सा आदमी हूँ, लेकिन जब तुम अन्दर दाख़िल हुए, तो मेरा दिल चाहा, कि तुम मेरे पास आकर बैठो...तुमने बुरा तो नहीं माना !''

''ओह ! हरगिज़ नहीं !''

''दरअसल मैं फ़ौज का शुरू से शैदाई हूँ, लेकिन अररर...मैं शायद ज़मींदारी के लिए ही मौज़ूँ था। तुम कहाँ से आ रहे हो ?''

''रौशनपुर से !''

''आहा ! फिर तो तुम मेज़बानों में शामिल हो। ही ही'' वह कम पढ़े-लिखे ख़ुशबाश देहाती रईसों की तरह हँसा और नईम को कन्धे पर थपथपाकर बोला, ''रौशन आग़ा से मेरी मुलाक़ात बम्बई में हुई थी, एक बार बस...मगर क्या वज़ादारी है साहिब, ग़ाज़ियाबाद से मुझे बुला भेजा।''

''आपका तअल्लुक़ कहाँ से है ?'' नईम ने पूछा।

''छोटी-सी ज़मींदारी है, भाई, ग़ाज़ियाबाद में, लेकिन मेरे बाग़ों में अव्वल दर्जे का गुलाब होता है। जंग में तुमने फूल कहाँ देखे होंगे। मेरा गाँव फूलों का गाँव है। गुलाब के फूलों का गाँव...तुम वहाँ ज़रूर आना !''

''यह बात तो नहीं। ग़ैर-मुल्कों में मैंने बहुत अच्छे-अच्छे फूल देखे हैं।''

''अभी तो मैं बियाई की तैयारी कर रहा था, जब रौशन आग़ा का सन्देश मिला।''

''आप कौन-सी गन्दुम बोते हैं ?'' नईम ने दिलचस्पी लेते हुए पूछा।

''सफ़ेद...रौशनपुर में सुर्ख़ गन्दुम होती है। मैं जानता हूँ, जो एकड़ में मुश्किल से बीस मन उतरती है–मेरी सफ़ेद गन्दुम...''

वह इसी तरह की बातें करते रहे। कुछ ही देर में नईम उसके बातूनीपन से उकताकर और ग़ाज़ियाबाद आने का वादा करके उठा और बरामदे में निकल आया। सिगार जलाकर उसने इधर-उधर देखा। परवेज़, अरशद ग़ायब हो चुके थे और अधेड़ उम्र के बा-वक़ार, अजनबी किसान उसके इर्द-गिर्द चल-फिर रहे थे। अगले बरामदे में उसकी मुठभेड़ रौशन आग़ा से हुई।''

''आहा, नईम !'' वह ख़ुशी और तअज्जुब से बोले। नईम ने झुककर सलाम किया।

''तुम यहाँ क्यों नहीं आते ?''वह उसके कन्धे पर हाथ रखकर शफ़क़त से बोले, ''नियाज़ बेग की मौत का हमें बहुत दुख हुआ। हमारा पैग़ाम मिल गया था ?''

''जी हाँ !''

''हम लोग एक ही नस्ल के आदमी थे। नियाज़ बेग और अयाज़ बेग और हम सब...अब तुम लोगों को चाहिए कि हमसे मिला करो। नई नस्ल कुछ इस क़दर बेमुरव्वत है।'' वह उदासी से हँसे और गुज़र गए।

कमरों में से अभी तक कई नज़रें उस पर जमी थीं। ख़ासतौर से औरतें इस फ़ौजी लिबास और सीधे जिस्मवाले शख़्स को देख रही थीं, जिसके चेहरे की पैदाइशी ख़ूबसूरती के साथ नक़्श की ख़ालिस मर्दाना सख़्ती और भारीपन ने मिलकर उसमें बला की कशिश[2] पैदा कर दी थी और जो सिर उठाए, एक हाथ जेब में डाले-डाले बरामदों में घूमता फिर रहा था।

फिर खाना शुरू होने की ख़बर नामालूम तरीक़े से चारों तरफ़ फैल गई और मेहमानों का हुजूम बाहर की तरफ़, जहाँ खाने की मेज़ें लगी थीं, निकलने लगा। पाम के एक बड़े गमले पर पैर रखे सिगार पीते-पीते उसने अपनी क़तई बे-वजह ज़ूद-रंजी[3] को महसूस किया। वे सब एक-एक करके

1. योग्य, 2. आकर्षण, 3. जल्द बुरा माननेवाला।

उसके पास से गुज़रते गए।

बरामदे के आख़ीर पर ऊपर की मंज़िल को जाते हुए लकड़ी के ज़ीने पर उतरती हुई अज़रा का सामना ख़ाला से हुआ।

"बीबी ! आप कहाँ ग़ायब हो गई थीं ? सारे मेहमान तो आ चुके।" ख़ाला ने कहा।

अज़रा लकड़ी के जंगले पर हाथ रखे बेध्यानी से खड़ी रही। नीचे बरामदे में नईम उनकी तरफ़ पुश्त किए खड़ा था।

"ख़ाला, आप उससे मिलीं !"

"नईम ! हाँ...वह उसी तरह दिलकश और ख़लीक़[1] है," ख़ाला ने सहमकर बात शुरू की, "लेकिन ओह...मैं बयान नहीं कर सकती...जैसे दिसम्बर में पत्थर की दीवार...उसका एक बाज़ू ज़ाए हो गया है। उसकी आँखों में सर्द-मेहरी[2] है–मौत !" वह कँपकँपाकर ज़ीना चढ़ने लगीं।

नईम बाहर जाने के लिए मुड़ा। उसी वक़्त अज़रा जैसे हवा पर चलती हुई उसके सामने आकर रुक गई। चन्द सैकेंड तक दोनों हैरान खड़े एक दूसरे को देखते रहे। उसने हिन्दोस्तानी शादियों का ज़रतार लिबास पहन रखा था और बेहद ज़र्द नज़र आ रही थी।

फिर नईम ने सँभलकर सिगार की राख झटकी और उसी सर्द, लातअल्लुक़ लहजे में बोला, "अज़रा बेगम ! कैसी तबीअत है ? मैं खाने पर जा रहा था !"

"अच्छा ! चलिए !" अज़रा ने उसकी नज़रों से बचने के लिए दूर हुजूम के एक हिस्से पर देखते हुए बेख़याली से कहा, लेकिन कोशिश के बावजूद उसके क़दम न उठ सके। नईम बदअख़लाक़ी से गमले पर पैर रखे खड़ा रहा। बाहर खाना खाते हुए अनगिनत मेहमानों का शोर आहिस्ता-आहिस्ता उठ रहा था और वे दोनों वहाँ ख़ामोश खड़े इस मुलाक़ात के बेढंगेपन को और एक दूसरे के वुजूद को शिद्दत और बेचैनी के साथ महसूस कर रहे थे। ग़ैर-महसूस तरीक़े से नईम ने फ़ैसला किया कि अब बात करने की क़तई ज़रूरत नहीं है।

आख़िर अज़रा ने इस तकलीफ़देह ख़ामोशी को तोड़ा, "बहुत दिनों के बाद तुम...आपसे मुलाक़ात हुई।"

"मैं काम में लगा रहा," नईम ने एक मसरूफ़ आदमी के मुख़्तसर लहजे में कहा और अज़रा के वुजूद की नफ़ी[3] करने को सिगार का धुआँ उसके मुँह पर छोड़ा।

लेकिन एक दूसरे की मौजूदगी का एहसास शिद्दत इख़्तियार कर गया और वे एक बार फिर बर्तनों के टकराने और इनसानी आवाज़ों के मिले-जुले शोर के नीचे ख़ामोश होकर इधर-उधर देखने लगे। बरामदे के बाहरी शोर और अन्दरूनी सन्नाटे को उन्होंने एक साथ महसूस किया। बेचैन पल एक-एक करके उनके सिरों पर टपकते रहे, टप...टप...टप, यहाँ तक कि उन्होंने महसूस किया कि उनकी मुलाक़ात और यह गुफ़्तगू इन्तिहाई मज़्हकाख़ेज़[4] और बेमसरफ़[5] है।

"आप जंग में गए थे ?" अज़रा ने सरसरी तौर पर कहना चाहा, मगर उसकी आवाज़ घुटकर रह गई।

अचानक नईम का ज़ख़्मी एहसास इन्तिहा पर पहुँच गया। तेज़-तेज़ साँसों के साथ उसकी छाती उठने और बैठने लगी और वह रुक-रुककर बोला, "हाँ ! मुझे हुकूमत की मुलाज़िमत मिल गई थी। बावजूद तुम्हारे...तुम्हारे बावजूद..."

एक झटके से अज़रा ने उसकी तरफ़ देखा। शदीद रंज से उसके होंठ और गाल काँप उठे।

"नईम...नईम..तुम...तुम मग़रूर हो," उसने कहा। अचानक आँसुओं का एक रेला उसकी आँखों में और गले में उमड़ आया।

और उस वक़्त, दोनों ने, अपनी-अपनी जगह पर, एक ही वक़्त में देखा और महसूस किया

1. सुशील, 2. कठोरता, 3. नकारना, अस्वीकार करना, 4. हास्यास्पद, 5. निरर्थक।

कि मुहब्बत का जज़्बा फ़ासिले, इख़्तिलाफ़[1] और लकड़ी के बाज़ू के बावजूद ताक़तवर है।

वह मुड़ी और दौड़ती हुई ख़ाली कमरे में दाख़िल हुई।

''अज़रा...अज़रा...'' नईम उसके पीछे लपका। कमरे से गुज़रते हुए एक मुलाज़िम ने अज़रा को रोते हुए देखा और ठिठककर रुक गया। फिर उसने दरवाज़े की तरफ़ देखा और चुपके से बाहर निकल गया।

चमड़े की एक बड़ी-सी मुतालआ[2] की कुर्सी में पूरी तरह समाकर बैठी हुई अज़रा ने होंठ सख़्ती से अन्दर की तरफ़ दाब रखे थे, और छोटी-सी लड़की दिखाई दे रही थी। जज़्बात के हंगामे से उसका चेहरा ज़र्द और ख़ौफ़ज़दा था। नईम फ़र्श पर एक घुटना टेककर बैठा उसके हाथ को हाथ में लिए घूर रहा था।

''नईम !'' देर के बाद अज़रा ने होंठ ढीले छोड़कर साफ़ और कमज़ोर आवाज़ में कहा, ''औरतें बेशर्म नहीं होतीं, पर मुहब्बत ज़रूर करती हैं !''

''मुझे मुआफ़ कर दो...मुआफ़ कर दो !'' वह उसके हाथ में मुँह छुपाकर कहता रहा।

और फिर वह हुआ, जो रौशनपुरवालों की तारीख़ में आज तक न हुआ था, और हक़ीक़त में जो हिन्दोस्तान के जागीरदार और अमीरों के तबक़े में बहुत कम हुआ था।

रौशन महल पर मौत की ख़ामोशी छाई हुई थी और पतझड़ के मौसम की वह शाम ऊँची छतोंवाली उस भयानक इमारत पर आहिस्ता-आहिस्ता झुकती आ रही थी। बरामदों में और बन्द दरवाज़ों और खिड़कियों के शीशों पर रौशनियाँ जल रही थीं, लेकिन कोई आदमी दिखाई न दे रहा था। घर के तमाम नौकर घर के पिछवाड़े अपने-अपने कमरे में बैठे थे और बरामदों में क़दम धरते हुए डर रहे थे। सड़क पर से गुज़रनेवालों को पहली नज़र में सुनसान बरामदे और रविश पर इकट्ठे किए हुए ख़ुश्क पत्तों के ढेर देखकर उस जगह चारों तरफ़ फैली वीरानी का एहसास होता था।

ऊपर की मंज़िल में सुर्ख़ शीशोंवाले बड़े दरीचे पर यूकिलिप्टस के पत्ते साया किए हुए थे। उनके पीछे अज़रा कमरे में ख़ाला के पलंग के कोने पर बैठी थी। पलंग पर अज़रा घुटनों और कुहनियों के बल औंधी लेटी थी। कमरे की फ़िज़ा पर धमाके से फटनेवाली ख़ामोशी छाई हुई थी।

''आह !'' ख़ाला ने हाथ उठाकर हवा में फैलाए और फिर गोद में रख लिए, ''किस क़दर ख़ौफ़नाक...! आज तक ऐसा नहीं हुआ...कभी नहीं। तुम सोच नहीं सकतीं ?'' कुछ देर तक वह अज़रा की बे-हरकत कमर को देखती रहीं। फिर सिर को दोनों हाथों में पकड़कर आहिस्ता-आहिस्ता दबाने लगीं।

अज़रा उठकर आतशदान तक गई और कमरे की तरफ़ पीठ किए देर तक खड़ी रही। ''क्या नहीं हुआ ?'' उसने बज़ाहिर कार्निस पर धरे धात के मुजस्समे[3] से पूछा।

''कि रौशनपुरवालों की लड़कियाँ निचले तबक़े में शादी करें।'' ख़ाला ने सिर छोड़कर कहा।

अज़रा कलदार गुड़िया की तरह मुड़ी। बिजली की रौशनी में उसके दुबले, सख़्त चेहरे में से पीलाहट फूट रही थी और उसकी आँखें ख़ुश्क और फैली हुई थीं।

''निचला तबक़ा...निचला तबक़ा...निचला तबक़ा क्या है ?'' उसने एक साथ सख़्ती और बेचारगी से कहा, ''क्या वह कमीन है ? क्या वह हमारी ज़मीन काश्त करता है ? उसके पास अपने मवेशी नहीं हैं, और घोड़े...और मकान...''

''इन चीज़ों की कोई वक़अत[4] नहीं। इनके बावजूद वह बे-हैसियत है। उसका बाप एक मामूली किसान था।'' ख़ाला ने उस औरत के पुर-अज़्म[5] और जसारत-आमेज़[6] लहजे में बात की, जो ख़ुद बा-हैसियत तबक़े में चोर-दरवाज़े से दाख़िल हुई हो, और अपनी ज़िन्दगी से बयक-वक़्त ख़ौफ़ज़दा और मुत्मइन हो। ''और उसके पास तुम्हारे लिए कुछ नहीं है। तुम जवान हो। उसे एक किसान

1. असहमति, 2. अध्ययन, 3. मूर्ति, 4. महत्त्व, 5. दृढ़तापूर्ण, 6. साहसपूर्ण।

औरत की ज़रूरत है !"

"वह किसान नहीं," अज़रा ने उसी अज़्म और बेचारगी से कहा, "वह पढ़ा-लिखा है। वह यहाँ पर भी रह सकता है और..." उसने धात के मुजस्समे को मज़बूती से पकड़ लिया और उसकी बेजान आँखों में देखकर बोली, "क्या वह बहादुर नहीं है ?"

"ओह !" ख़ाला दुख से हँसी, "हाँ ! वह बहादुर है, और मग़रूर और पुर-कशिश भी। लेकिन वह नाकारा हो चुका है।...वह..."

अज़रा ने दहलकर उसे देखा, और पहली बार उसकी आँखों में ख़ाला के लिए ख़ौफ़ और नफ़रत का जज़्बा पैदा हुआ। बूढ़ी औरत ने उसे देखा और अपनी बात ख़त्म करने का इरादा खो दिया। कमज़ोर आवाज़ में वह बोली, "और रौशन आग़ा ! तुम उन्हें सदमा पहुँचाओगी ?"

अज़रा, जिसने कुछ पल पहले सफ़ेद होंठ दाँतों में दबाकर अपने आपको रोने से रोका था, अचानक परेशान हो गई। उसने ठिठककर दूसरे कमरे में खुलनेवाले दरवाज़े की तरफ़ देखा और भागती हुई आकर पलंग पर गिर पड़ी।

"बाबा ! नहीं...नहीं...बाबा, वह मुझे नहीं रोकेंगे। नहीं !" ख़ुश्क आँखों को हाथों से ढाँपकर उसने दुहराया।

ख़ाला दिल में रहम और मुहब्बत और आनेवाले वक़्त का ख़ौफ़ लिए ख़ामोश बैठी रही। फिर उसने आहिस्ता से अज़रा की पीठ पर हाथ रखा, "उठो बीबी, खाना खाओ !"

"नहीं। नहीं।" अज़रा ने दुहराया, "बाबा से कह दो, मैं उन्हें सदमा न पहुँचाऊँगी। लेकिन...नहीं..."

साथवाले कमरे में रौशन आग़ा दीवारों के साथ-साथ चक्कर लगाते हुए थककर बैठ गए। बाज़ू सीने पर बाँधकर उन्होंने आँखें बन्द कर लीं और फिर सोफ़े की पुश्त पर टेक दिया। उनका चेहरा बहुत बूढ़ा नज़र आ रहा था। परवेज़ कोने के स्टूल पर से उठा और अपना सियाह हैट उठाकर चुपके से बाहर निकल गया। बाग़ की तरफ़ खुलनेवाली खिड़की के आगे सोफ़े पर उसकी माँ और बीवी, रिश्ते की बहन शीरीं ख़ामोश बैठी दहशत से रौशन आग़ा को देखती रहीं।

दरवाज़े के रास्ते अज़रा के हौले-हौले सिसकने की आवाज़ आ रही थी और बाहर बाग़ के नीम-तारीक सुनसान रास्तों पर पतझड़ की हवा में ख़ुश्क पत्ते खड़खड़ा रहे थे।

उसके बाद इस सिलसिले में जो कुछ हुआ, उसका ज़िक्र इस कहानी के अहाते से बाहर है। मुख़्तसर यह कि जाड़ों में नईम और अज़रा की शादी हो गई। फिर भी यह बताना ज़रूरी है कि शादी को रोकने के लिए तो दीवानावार कोशिशें हुईं और सूबे भर के तअल्लुक़ेदारों की जानिब से इस मज़्हकाख़ेज़ ख़याल की जो मुख़ालफ़त[1] हुई, वह अमीरों के उस तबक़े की अपनी इनफ़िरादीयत[2] और अलहदगी बरक़रार रखने की ख़्वाहिश की ख़सूसियत से ज़ाहिर था। शादी बहरहाल अज़रा की क़ुव्वते-इरादी[3] की बदौलत, जिसने कि इससे पहले कि रौशन आग़ा उस तकलीफ़देह स्कीम से तआवुन[4] करने पर अपने आपको मजबूर करते, घर के दूसरे लोगों को अपनी बेपनाह बेचारगी और अज़्म से मुतास्सिर[5] कर दिया था, अंजाम पाई।

गाँव के बाग़ में रौशन आग़ा ने उन्हें शानदार मकान बनवाकर दिया, जिसमें दोनों रहने लगे, मगर कुछ अरसे के बाद अज़रा कसरत के साथ ज़्यादा वक़्त दिल्ली में गुज़ारने लगी, जहाँ की ऊँची, चमकदार ज़िन्दगी में गाँव की ग़ैर-दिलचस्प फ़िज़ा के मुक़ाबले में उसके लिए ज़्यादा कशिश थी। उसकी ग़ैर-मौजूदगी में नईम ज़्यादातर वक़्त रौशन आग़ा की ज़मींदारी के मुआमलों पर सर्फ़ करता, जिसका तमामतर बन्दोबस्त अब उसकी निगरानी में हो रहा था।

---

1. विरोध, 2. विशिष्टता, 3. संकल्प-शक्ति, 4. सहयोग, 5. प्रभावित।

18

वह एक ऐसी सुबह थी, जब बहार का ज़ोर टूट चुका होता है, और धूप में तेज़ी आ जाती है, जब पत्तों का रंग शोख़ सब्ज़ से गहरा सब्ज़ हो जाता है और डालियों पर बहार के मौसम के आख़िरी फूल खिलते हैं और आसमान मटियाला और गर्म होना शुरू होता है, जब ओस गिरनी बन्द हो जाती है और औरतें रात को सोने के लिए छत से बाहर निकल आती हैं और मर्द दिन भर दराँतियों के दनदाने बनाते और बैलों के खुर साफ़ करते रहते हैं, और उनकी आँखों में कटाई से पहले का ख़ौफ़ साया किए रहता है और होंठों पर पपड़ी जमी होती है। जब दूर-दूर तक सोने के रंग की तैयार फ़सल धूल के तूफ़ानों में लहराती है और चमेली के पौदों पर गर्मी के मौसम की पहली कलियाँ फूटती हैं।

सूरज नईम के मकान की दीवारों के ऊपर आ चुका था, और धूप आँगन में फैलती जा रही थी। अज़रा पिछली शाम को दिल्ली से लौटी थी, और रात भर वह ख़ूब लिपटकर सोए रहे थे। चुनाँचे सुबह वे ख़ुशो ख़ुर्रम[1] उठे थे। नेमत-ख़ाने[2] के फ़र्श पर बैठकर ज़ोर-ज़ोर से हँसते और बातें करते हुए उन्होंने सुर्ख़ सन्तरों और भुने हुए जौ के दलिए और दूध का नाश्ता किया। फिर उन्होंने चाय पी और मवेशियों के अहाते में निकल आए। भूरी भैंस की गर्दन का ज़ख़्म खुलवाकर देखा और अपने सामने जानवरों के रखवाले से उस पर हल्दी और सरसों के तेल की पट्टी कराई। फिर वे दूसरे जानवरों के पास से गुज़रे और नईम ने, जो गुज़री हुई रात की जिस्मानी आसूदगी[3] के असर में मिलनसार मूड में था, हर एक जानवर से अलग-अलग उसका हाल पूछा। धूप में जुगाली करती हुई सियाह और सफ़ेद गायों, भैंसों, भेड़ों, और दूसरे मवेशियों ने उसका जवाब अपनी सियाह आँखों के साथ इस क़ाने और ला-तअल्लुक़[4] अन्दाज़ में देखकर दिया, जिसके ज़रिए मवेशी अपनी आसूदगी और गहरी मुहब्बत ज़ाहिर करते हैं। सिर्फ़ दोनों घोड़े ख़ुशी से हिनहिनाए और दुमों को फुन्दने की तरह हवा में लहराया, जिस पर नईम ने अपने बाप की बात दुहराई, कि घोड़े किसान के अक़्लमन्द और नज़दीक-तरीन रिश्तेदारों में से होते हैं।

मवेशियों से मुलाक़ात करने के बाद उन्होंने रखवाली के कुत्तों को सुबह का खाना खाते हुए देखा, और दोपहर के रातिब[5] के मुतअल्लिक़ नौकर को हिदायात दीं। फिर वे ग्वाले को कोठरी में गए और सुबह के दूध की मिक़दार[6] देखी। वहीं पर उन्होंने कल शाम की उतरी हुई भेड़ों की ऊन का मुआयना किया। फिर वहाँ से वे घर के पिछवाड़े सब्ज़ी की क्यारियों में गए और शीशे की तरह चमकदार पानी को शर्राटे से नाली मे बहते और आगे जाकर ख़ामोशी से मुख़्तलिफ़ रास्तों में दाख़िल होते हुए देखा। नई क्यारियों में पानी इन्तिहाई ख़ामोशी के साथ अपने रास्ते में आनेवाले हर भूरे और ख़ुश्क मिट्टी के ढेले को सियाह करता हुआ गहराइयों में उतर रहा था, जहाँ पड़े हुए छोटे-छोटे बीजों के हज़ारों नन्हे-नन्हे सूराख़ों में रच-बसकर उन्हें नर्म और गुदाज़ बनाता हुआ नाज़ुक-नाज़ुक रेशमी कोंपलों की तख़्लीक़[7] कर रहा था, जो पानी के उतरने ही के साथ ख़ामोश और चोर अन्दाज़ में बढ़ती और ज़मीन फाड़कर बाहर निकलती आ रही थीं। अज़रा के कन्धों पर हाथ रखे-रखे यह सब देखकर और महसूस करके नईम की आँखें तख़्लीक के सुरूर से मुँद गईं और उसने सोचा कि वह बुनियादी तौर पर किसान है और किसान का बेटा है, और अज़रा की ऊँचे छतोंवाली दुनिया में वह चोर-दरवाज़े से दाख़िल हुआ है, लेकिन इस ख़याल ने, जिसने कि आगे जाकर ज़िन्दगी में कई बार उसे लाचार कर दिया, उस वक़्त उसको ख़ुश कर दिया और आहिस्ता- आहिस्ता मुस्कराकर उसने अज़रा की कमर में हाथ डालकर उसे साथ लगा लिया।

"बाबा कहा करते थे, जमीन माँ है और पानी बाप है, और फ़सल औलाद है।" उसने कहा।

अज़रा ने आँखों में मुहब्बत की सारी मस्ती भरकर उसे देखा और एक अनजाने ख़याल से मुस्कराई।

---

1. प्रसन्नचित, 2. रसोईघर, 3. शारीरिक तृप्ति, 4. सन्तुष्ट और बेपरवाह, 5. कुत्ते या घोड़े का खाना, 6. मात्रा, 7. रचना।

वहाँ से वे चास्को की बढ़ती हुई बाड़ के साथ-साथ लम्बा चक्कर काटकर बाग़ में निकल आए और बल खाते हुए तंग रास्तों में दाख़िल हुए, जहाँ उन्होंने खिलते हुए और मुरझाते हुए फूलों और पौदों का मुआयना किया। खट्टे और नींबू की शाख़ों की छाँटी और चमेली की क़तार के नीचे नलाई करने का हुक्म देकर वे वापस हुए। वापसी पर उन्होंने सुबह के दो गुलदस्ते बनाए और उस वक़्त उन्हें गुज़रती हुई बहार का एहसास हुआ और उन्होंने एक दूसरे से उन वक़्तों का ज़िक्र किया, जब पाँच-पाँच गुलदस्ते बनाने पर भी पौदे उसी तरह लदे-फँदे रहते थे। नईम ने गिरे हुए बेशुमार ख़ुश्क पत्तों और फूलों को ज़मीन में दबा देने और इस तरह उम्दा खाद तैयार करने की तजवीज़ पेश की, जिसे अज़रा ने यह कहकर रद्द कर दिया कि वहाँ नमी और साए में पड़े-पड़े वे ख़ुद-ब-ख़ुद गल-सड़ जाएँगे और नलाई पर ज़मीन में रल-मिल जाएँगे। नईम अपनी बीवी की इस अहमक़ाना दलील पर दिल में हँसा।

फिर वे अपने मख़्सूस पीपल के दरख़्त के नीचे पहुँचे, और डालियों में से छनकर आती हुई धूप में नाड़ के मूँढ़ों पर बैठ गए। अज़रा ऊन के गोले सँभालकर उसके मोज़े बुनने लगी और नईम ने मूँढ़े पर खिसककर टाँगें फैला दीं, लेकिन इससे पहले कि वह सुबह का पहला सिगरेट सुलगाता, कुछ याद आने पर उठा और अन्दर से जाकर लकड़ी की एक तख़्ती उठा लाया। कई रोज़ से यह बहस हो रही थी कि इस पर क्या लिखकर फाटक पर लटकाया जाए। हर रोज़ किसी फ़ैसले पर न पहुँच सकने की वजह से इसे मुल्तवी कर देना पड़ता। आज उसने यह काम ख़त्म कर देने का फ़ैसला कर लिया। उसने तख़्ती मूँढ़ों के दरमियान लाकर रखी, तो अज़रा ने मुस्कराकर सलाइयाँ एक तरफ़ रखीं और झुककर बैठ गई। बड़ी देर तक वे दोनों पिछले दिनों की तजवीज़ों पर ग़ौर करते रहे। नईम और अज़रा...रौशन महल...मे-फ़्लावर (एक बहुत भूला हुआ नाम नईम ने पेश किया) और इसी तरह के कई और नाम...लेकिन इस सारे मुबाहसे[1] का कोई मतलब न निकला और जब हर एक नाम और हर एक सत्र[2] किसी-न-किसी वजह की बिना पर किसी-न-किसी तरफ़ से रद्द कर दी गई, तो उन्होंने हारकर इसका फ़ैसला मवेशियों के रखवाले पर छोड़ दिया, जो किसी काम से उधर से गुज़र रहा था। बूढ़े रखवाले ने उनके इसरार करने पर किसानों के अन्दाज़ में शरमाते हुए एक सादा-सी सत्र पेश की, जो अचानक उन दोनों को बेहद भा गई, और वे इस पर मुत्तफ़िक़[3] हो गए। उसी वक़्त नईम ने सियाह रोग़न के साथ तख़्ती पर लिखा : "यहाँ नईम और उसकी बीवी रहते हैं।" और सूखने के लिए धूप में रख दिया। फिर उसने सिगरेट सुलगाया और ख़ुशी और सुकून के साथ सुबह की धूप को टाँगों पर फैलते हुए महसूस किया।

मोज़े बुनते हुए अज़रा बार-बार उसकी तरफ़ देखने लगी। वह कोई बात करना चाह रही थी। नईम ऊँघ रहा था। उसका भारी जिस्म मूँढ़े पर फैला और सिर छाती पर झुका हुआ था। धूप उसकी ठोड़ी तक पहुँच चुकी थी और एक कान, एक गाल तपिश से लाल हो रहे थे। ऊपर के होंठ पर पसीने की नन्ही-नन्ही बूँदें चमक रही थीं। उसका सिगरेट पीपल के एक ज़र्द पत्ते पर गिरा था और सिगरेट और पत्ता दोनों राख हो चुके थे, और उन पर मकड़ी का एक बारीक तार चमक रहा था। मूँढ़े की पुश्त पर एक नन्ही-सी सब्ज़ रंग की चिड़िया बैठी थी, जो कभी-कभी फुदककर उसके कन्धे पर आ बैठती, लेकिन उसकी नींद में, जो धूप की गर्मी, ताज़ा हवा, कुव्वतबख़्श[4] खाने और जिस्मानी आसूदगी का नतीजा थी, चिड़िया की मुदाख़लत[5] से कोई फ़र्क़ न आया। क़रीब से बहती हुई नाली में पानी पर धूप की चिंगारियाँ बरस रही थीं।

आख़िर उसकी गहरी नींद से बेचैन होकर अज़रा ने ऊन के गोले और सलाइयाँ मूँढ़े पर रखीं और उठ खड़ी हुई। झड़े हुए पत्तों पर उसके चलने की आवाज़ से नईम की आँख खुल गई।

"ओह ! मैं सो गया था ?" वह हँसा।

---

1. वाद-विवाद, 2. पंक्ति, 3. सहमत, 4. बलवर्धक, 5. हस्तक्षेप।

"धूप आ गई थी।" अज़रा ने सरसरी तौर पर कहा, फिर वह बेचैनी से मुड़कर बाग़ में दाख़िल हो गई।

देर तक वे ख़ुश्क, सायादार रास्तों पर घूमते रहे। धूप में से उठने के बाद दरख़्तों का साया उन्हें आरामदेह और भला महसूस हुआ। दोपहर से पहले का आसमान रौशन और चमकदार था और फ़िज़ा बेहद ख़ामोश और शान्त। रास्तों के साथ-साथ पानी की नालियाँ अपने मख़्सूस धीमे शोर के साथ बह रही थीं और दरख़्तों की चोटियों पर उड़ती हुई सब्ज़ चिड़ियों के पर धूप में चमक रहे थे।

हरियाली और सुकून के उस लम्हे में अगर किसी जानदार के दिल में बेचैनी थी, तो वह अज़रा थी। लकड़ी के फाटक पर झुककर वह बोली, "जलियाँवाला बाग़ का वाक़िआ सुना ?"

"हाँ !" नईम ने कहा, "मगर मुझे पूरी बात मालूम नहीं हुई। बहुत आदमी मरे ?"

"एक हज़ार के क़रीब मौतें बतलाते हैं। अभी तो मार्शल-लॉ लगा है। मुकम्मल ब्लैक-आउट। पंजाब में हर तरफ़ से दाख़िला बन्द है।"

वह लकड़ी के जंगले पर झुकी रही। नईम सामने फ़सलों में से गुज़रती हुई एक जवान किसान औरत को देख रहा था। औरत ने सिर पर मिट्टी का दोना और रोटियों की चँगेर उठा रखी थी और पकी हुई फ़सल में से गुज़रते हुए उसका सिर और कन्धे नज़र आ रहे थे। एक कौआ बड़ी आहिस्तगी से चँगेर में आकर बैठा और रोटियों पर चोंच मारने लगा। नईम मुस्कराकर उस वक़्त तक कौए और औरत को देखता रहा, जब तक कि वह नज़र से ग़ायब न हो गए।

"शायद ख़िलाफ़त के सिलसिले में हुआ ?" फिर उसने कहा। "ख़िलाफ़त और रौल्ट एक्ट !"

"अररर रौल्ट एक्ट ?"

"हाँ...तुमने तो अब अख़बार पढ़ना भी छोड़ दिया है। तुम्हें रौल्ट एक्ट का भी पता नहीं ?" अज़रा ने झल्लाकर बात ख़त्म कर दी।

नईम नाक को छूकर शर्मिन्दगी से हँसा, "रौल्ट एक्ट ? दरअसल मैं मसरूफ़..."

"मसरूफ़ियत की बात नहीं। तुम यूँ ही ला-तअल्लुक़ होते जा रहे हो।"

अज़रा ने तेज़ी से कहा और चल पड़ी।

दोनों आगे-पीछे चलते हुए आकर मूँढ़ों पर बैठ गए। अज़रा मोज़े बुनने लगी और नईम ने सिगरेट सुलगाया। लेकिन जल्द ही अज़रा सलाइयों पर उलटे-सीधे हाथ मारने लगी और उसकी ज़ेहनी कशमकश[1] ऊपर आ गई। उसने जल्द-जल्द कई बार नईम की तरफ़ देखा, आख़िर दोनों हाथ गोद में रख दिए।

"तुम ज़ंग से लौटकर दो साल तक क्या करते रहे ?" उसने पूछा।

"मैं ? कांग्रेस की तरफ़ से काम करता रहा।"

वह फिर सलाइयों पर झुक गई।

"क्यों ?" नईम ने पूछा।

'मुझे पता है।"

"फिर ?"

"अब क्यों नहीं जाते ?"

नईम ने तअज्जुब से उसे देखा। नींद जो अभी तक उस पर छाई हुई थी, अचानक ग़ायब हो गई, "पगली हो ? तुम्हें छोड़कर मैं कहाँ जाऊँ ?"

अज़रा ने सिर उठाकर अपनी भूरी, बेचैन आँखों से नईम को देखा, "क्यों ? क्या हिन्दोस्तान आज़ाद हो गया ?"

---

1. मानसिक उलझन।

नईम के दिल में एक बहुत पुराने ख़ौफ़ ने सिर उठाया और वह उठ खड़ा हुआ। अमन और सुख की इस घड़ी में एक आदमी की बेचैनी ने छूत की बीमारी की तरह हर चीज़ को गिरफ़्त में ले लिया था। नईम ने पीपल के तने पर हाथ रखकर नाली में थूका। उसके सीने में एक भारी, बे-नाम-सी ख़लिश उभर रही थी।

अज़रा उसके पास आ खड़ी हुई, "नईम !" उसने आँखें उठाकर कहा और नईम ने देखा कि उनमें उस औरत की, हज़ारों औरतों की भरपूर क़ुव्वतें आ गई थीं। बड़ी कोशिश से वह ज़रा-सा मुस्कराया।

"चलो, चलें !" अज़रा बोली।

"कहाँ ?"

"अमृतसर...दोनों ! हैं, नईम ?"

"अज़रा ! यह ज़िन्दगी आसान नहीं है। तुम नहीं जानतीं !"

"लेकिन इतनी दिलचस्प है। इस बार दिल्ली गई,तो देसाई सिस्टर्ज़ ने बिदेशी माल की दुकानों पर पिकेटिंग की थी। उनकी तस्वीरें सारे बड़े-बड़े अख़बारों और रिसालों में छपीं, और जहाँ भी मैं गई, उन्हीं की चर्चा रही, हर मौक़े पर, हर पार्टी में। तुम कांग्रेस पार्टी के मेम्बर हो। हम आसानी से जा सकते हैं। नहीं नईम ? हम दोनों...हैं, नईम ?" उसने लजाजत[1] से दोनों हाथ उसके बाज़ू पर रखे, "मैं इस जगह से उकता गई हूँ।"

नईम ने उसके कन्धों के गिर्द बाज़ू लपेटकर अपनी तरफ़ खींचा और मुस्कराकर बोला, "अच्छा !"

रास्तों के साथ-साथ नालियों में बहता हुआ पानी ख़ामोश फ़िज़ा में अपनी मद्धिम मौसीक़ी बिखेरता रहा, और उसके ऊपर उसी ख़ामोशी से इनसानी ख़्वाहिशात की आफ़त ने नईम और अज़रा को अपनी गिरफ़्त में ले लिया और वे ख़ुशी-ख़ुशी जाकर मूँढ़ों पर बैठ गए।

ज़िहनी और आसाबी आसूदगी[2] के उस वक़्त में नईम ने अपनी बीवी की बात को लापरवाही से सुना और टाल गया, लेकिन आनेवाले दिनों में अज़रा के ख़यालों पर इस ताक़तवर ख़्वाहिश का जादू सवार रहा और हर काम और हर बात उसने बेख़याली और बेदिली से की, सिवाय इस एक बात के। यहाँ तक कि आहिस्ता-आहिस्ता नईम पर भी उसका रँग चढ़ने लगा।

वह इंक्वाइरी कमेटी में शामिल कर लिया गया, जो इंडियन नेशनल कांग्रेस ने ग़ैर-सरकारी तौर पर अमृतसर फ़ायरिंग की तफ़्तीश[3] के लिए मुक़र्रर की थी, और मार्शल लॉ की पाबन्दियाँ हटते ही वे अमृतसर पहुँचे।

19

"यह है वह जगह !" कुबड़े बुड्ढे ने हाथ से इशारा करके उन्हें बताया।

यह वही जगह थी, जहाँ उन्होंने सारा दिन गुज़ारा था, और इससे पहले कई ऐसे दिन गुज़रे थे। एक खुली-सी जगह के चारों तरफ़ चार फ़ुट ऊँची चार-दीवारी बनी हुई थी। एक कोने में कुआँ खुदा था। यह जगह तीन तरफ़ से ऊँचे-ऊँचे तीन मंज़िला मकानों से घिरी हुई थी। एक तरफ़ से रास्ता बाहर को निकलता था। यह जगह, जो जलियाँवाला बाग़ कहलाती थी, बाग़ से ज़्यादा मवेशी बाँधने का बाड़ा मालूम होती थी। यहाँ पर उन्होंने पिछले चन्द रोज़ फ़ायरिंग के सिलसिले में अख़बारी नुमाइंदों,[4] सियासी वर्करों, व्यापारियों और वकीलों के बयानात लिखने में सर्फ़ किए थे, लेकिन आज इत्तिफ़ाक़ से रास्ते में उन्हें यह बूढ़ा मछलीफ़रोश मिल गया था, जो बातें करने के शौक़

1. ख़ुशामद, विनीति, 2. मानसिक और शारीरिक सुख, 3. जाँच, 4. पत्रकारों।

में उस वक़्त उन्हें वहाँ ले आया था, जबकि उनके पास काग़ज़ और पेंसिल ख़त्म हो चुके थे।

वह ठिगने जिस्म और छोटे-छोटे हाथवाला कुबड़ा बुड्ढा था, जिसकी कमर के ख़म के बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता था कि पैदाइशी था या बुढ़ापे की वजह से निकला हुआ था। उसका लिबास ख़स्ता हालत में था और जिस्म से मछली की बू आ रही थी। उसका चेहरा और दाढ़ी के बाल भी गन्दे थे, लेकिन उसकी आँखों में बला की ताक़त और मासूमियत थी। वह उन लोगों में से था, जो अकेले पैदा होते हैं, और अकेले ही मर जाते हैं, मगर जिन्हें अपनी सादगी और ख़ुशदिली की बिना पर लोगों के साथ घुलने-मिलने और बातें करने के काफ़ी मौक़े मिलते हैं।

उनके देखते-देखते वह नौजवानों की तरह उचककर दीवार पर चढ़ा और दोनों पाँव जोड़कर आराम से बैठ गया।

"यह है वह जगह, मेरे बच्चो !" उसने उसी अन्दाज में हाथ फैलाकर दुहराया।

ढलती हुई ज़र्द धूप में साए लम्बे होते जा रहे थे, लेकिन जलियाँवाला बाग़ पर मुकम्मल वीरानी थी। सिर्फ़ दो गोरे सिपाही कमर से रिवाल्वर लटकाए अन्दर घूम रहे थे। दीवार पर चढ़कर बैठे हुए उस बुड्ढे को उसके साथियों ने इश्तियाक़[1] से देखा और उन्हें महसूस हुआ, जैसे वे एक उजाड़ और ख़ुश्क समन्दर के किनारे खड़े हैं और तह में डूबे हुए टूटे-फूटे जहाज़ और कश्तियाँ नंगी हो गई हैं।

अज़रा ने सहमकर दोनों हाथ दीवार पर रखे, "हमें सब कुछ बताओ, मछलीवाले !" उसने कहा।

"हमें सब कुछ बताओ, जो हुआ, बूढ़े मछलीवाले !" उन सबने कहा।

"मैं तो मछली बेचता हूँ, बच्चो, शुरू से, जबसे मैं पैदा हुआ...नहीं, बल्कि जबसे मैंने होश सँभाला, क्योंकि जब मैं पैदा हुआ, उस वक़्त तो मेरा बाप मछली बेचता था और मेरी माँ उन्हें नमक लगाया करती थी, ताकि वे ताज़ा रहें और उनमें सड़ांध पैदा न हो। वह बड़ी अच्छी और नेकदिल औरत थी। मेरा बाप उसे पीटा करता था, और वह मुझे पीटती थी, लेकिन साल का ज़्यादातर हिस्सा हम अमन और सुकून के साथ रहते थे। मार-पीट सिर्फ़ उस वक़्त होती थी, जब मछलियाँ मेरे बाप के हाथ न लगतीं। मुझे याद है, कि गर्मियों का मौसम, जंग और मुसीबत का ज़माना होता, जबकि दरिया में सैलाब आ जाता और मछलियाँ गदले पानी में बहुत नीचे चली जातीं और जाल के फन्दे में न आतीं। फिर मेरा बाप सख़्त ख़फ़ा होता। दरिया में वह मछलियों को कोसता और जाल को और कश्ती को और सूरज की तपिश को कोसता और बराबर ग़ुस्से से मेरी जानिब देखता जाता और मुझे ठोंकने के बहाने तलाश करता रहता, लेकिन मैं हमेशा उसके पंजे से बच निकलता, क्योंकि मैं उसकी तरफ़ पीठ किए चप्पू चलाता जाता और उसके कोसने एक कान से सुनकर दूसरे कान से उड़ा देता और जब किनारा आता, तो पूरी क़ुव्वत से दौड़ता, और जल्द ही उसकी पहुँच से बाहर हो जाता। फिर मैं तमाम दिन घर का रुख़ न करता, क्योंकि मुझे पता होता कि वहाँ अफ़रा-तफ़री का आलम होगा। मैं मछेरों की झोंपड़ियों से परे-परे गन्दे पानी के गढ़ों पर मारा-मारा फिरता और छोटी-छोटी मछलियाँ पकड़कर चबाता रहता। सैलाब के दिनों में मैं हमेशा नमक की डली जेब में रखता, क्योंकि कच्ची मछलियाँ नमक के बग़ैर आसानी से नहीं खाई जा सकतीं। पहले-पहल कुछ दिक़्क़त हुई, फिर बाद में आदत हो गई, और मैं मज़े ले-लेकर उन्हें खाने लगा। वह मेरे जिस्म में बेइन्तहा गर्मी और ख़ून पैदा करतीं। फिर शाम होने पर मैं घर जाता और दरवाज़े के बाहर अँधेरे में खड़े होकर देखता। माँ की सूजी-सूजी आँखें देखकर मुझे मालूम हो जाता कि उसकी ठुकाई हुई है। जब मैं बाहर खड़ा-खड़ा नींद के हिचकोले खाने लगता, तो अपने कुत्ते के पिल्ले को ज़मीन पर दे मारता, जिस पर वह चीख़ने लगता और मेरी माँ को मेरे आने का पता चल जाता, लेकिन वह

1. उत्कंठा।

काफ़ी होशियार होती थी, इसलिए वह बहानेबाज़ी से काम लेकर प्यार भरी आवाज़ में मुझे पास बुलाती और कोई काम करने को कहती, जैसे यह कि कुत्ता सवेरे से भूका है, उसके लिए मछली ले जाओ। जब मैं अन्दर दाख़िल होता, तो वह दरवाज़े की ओट में से निकलकर मुझे पकड़ लेती और मेरे कान मरोड़ती और आँखें निकालकर मुझ पर चीख़ती और मुझे आवारागर्द, कामचोर और बदबख़्त के नामों से पुकारती। यह तक़रीबन-तक़रीबन वही नाम थे, जो मेरा बाप ठोंकते वक़्त उसे कहा करता था। फिर वह मेरे मुँह पर ज़ोर-ज़ोर से तमाचे मारती। पहले-पहल मैं सचमुच रो दिया करता, लेकिन बाद में जब मैं आदी हो गया, तो झूठ-मूठ शोर मचा-मचाकर आसमान सिर पर उठा लेता और मेरा बाप नींद से उठकर हम दोनों को गालियाँ देता। वह कुछ हफ़्ते सख़्त आफ़त[1] और बदअमनी[2] के होते।

''एक बार जब सैलाब बहुत अरसे तक जारी रहे और मुफ़लिसी[3] के मारे हमारा बुरा हाल हो गया और हमारे सारे कुत्ते फ़ाक़े से मर गए, तो मेरा बाप बेहद चिड़चिड़ा हो गया और बहाना तलाश करने की तकलीफ़ किए बग़ैर मुझे पीटने लगा। तब मैंने एक बात सोची। एक रोज़ कोई मछली हमारे हाथ न लगी, तो मेरे बाप ने ख़ाली जाल कश्ती में दे मारा और सारी दुनिया को कोसते हुए मेरे सिर पर खड़ा होकर मुझे ठोंकने की तैयारी करने लगा। मैंने चप्पू सिर से ऊपर उठाकर अपना बचाव किया और कहा, ''ठहरो बाबा ! मेरी बात सुनो !''

उसने हाथ रोक लिया और ख़फ़गी से छींकें मारता और खँखारता हुआ मुझे घूरने लगा। मैंने कहा, ''देखो, अगर तुम मुझे मारोगे, तो मैं कश्ती नहीं चलाऊँगा...फिर क्या करोगे ?''

''मैं ख़ुद कश्ती चला लूँगा !'' उसने सड़ियल मिज़ाजों की तरह जवाब दिया।

''और मछलियाँ कौन पकड़ेगा ?'' मैंने कहा।

''मछलियाँ ?'' उसने दाढ़ी में उँगलियाँ डालकर सोचा। फिर कोसने देकर कहने लगा, ''मछलियाँ मिलती कहाँ हैं ?'' मैंने फ़ौरन कहा, ''जब सैलाब कम होगा फिर। फिर कौन पकड़ेगा ?''

वह उसी तरह दाढ़ी में उँगलियाँ डाले सोचता रहा। फिर ख़ामोशी से जाकर जाल पर बैठ गया। मेरी बात उसकी समझ में आ गई, क्योंकि उसके बाद उसने कभी मुझ पर हाथ न उठाया।

''लेकिन बदअमनी का ज़माना ज़्यादा देर तक न रहा, क्योंकि जाड़ों के आने के साथ-साथ पहाड़ों पर बर्फ़ पिघलनी बन्द हो जाती, और दरिया का पानी साफ़ हो जाता और मछलियाँ ऊपर आ जातीं, और एक बार फिर हमारे पास सैंकड़ों की तादाद में मछलियाँ जमा हो जातीं, जिन्हें मेरी माँ नमक लगाकर ख़ुश्क करती और बोरियों में भर देती और हम चन्द नए कुत्ते पाल लेते और मेरा बाप ख़ुश-मिज़ाज हो जाता और हम तमाम जाड़े, पतझड़ और बहार के मौसम मुकम्मल सुलह के साथ शरीफ़ और अमीर लोगों की तरह गुज़ारते और हर रोज़ शाम के वक़्त मेरी माँ आग के सामने बैठकर हाथ बाँधकर छत की तरफ़ देखती और कहती, ''तेरा शुक्र है मालिक कि सैलाब गर्मियों में आते हैं और जाड़ों में नहीं आते, वर्ना अगर सर्दियों में मछली न मिले, तो फेफड़े का बुख़ार हो जाए या जोड़ों में दर्द शुरू हो जाए। और ऊपर से तू-तू मैं-मैं जो हो, वह अलग। तेरा शुक्र है, अपनी पिटाई को वह हमेशा तू-तू मैं-मैं के नाम से याद करती।''

बुड्ढा साँस लेने के लिए रुका, तो पाँचों सुननेवालों ने, जिस बेताबी का इज़हार किया, उससे लगता था कि उसकी बेतुकी बातों ने उन्हें परेशान कर रखा था।

''हमें फ़ायरिंग के मुतअल्लिक़ बताओ, मछलीवाले,'' सबने एक साथ कहा।

''ठहरो,'' बुड्ढे ने अपना छोटा-सा हाथ हवा में बुलन्द करके कहा, ''सब कुछ बताऊँगा। रात को आठ बजे तक हम यहाँ बैठ सकते हैं। मुझे याद करने दो। आज कई रोज़ के बाद तुम लोग

1. संकट, 2. अशान्ति, 3. दरिद्रता, ग़रीबी।

बात करने को मिले हो, वर्ना इस शहर में एक-से-एक हवन्नक़[1] हो रहा है। जिस किसी से बात करो, लगता है, जैसे क़ब्र से उठकर आ रहा है। और बोल नहीं सकता, हालाँकि मैंने इससे कहीं ज़्यादा आदमी वबा[2] में मरते हुए देखे हैं...तो मैं अपनी माँ की बात कर रहा था। वह बड़ी नेकदिल और होशियार और ख़ुदा-परस्त[3] औरत थी, लेकिन वह जल्द ही मर गई और उसका सारा काम हमारे गले पड़ गया। फिर हमें उसकी क़द्रो-क़ीमत मालूम हुई। अब मेरा बाप अकेला ही किसी-न-किसी तरह से मछलियाँ पकड़कर लाता और मैं उनको नमक लगाकर धूप और छाँव में सुखाता और थैलों में भरता। रात को हम आमने-सामने बैठकर ख़ुश्क मछलियाँ मिर्चों के साथ खाते। मेरे बाप को बुढ़ापे की वजह से कभी कच्ची मछलियाँ खाने की आदत न पड़ सकी, और वह जब तक ज़िन्दा रहा, इसी तकलीफ़ में मुब्तला रहा, लेकिन इसके सिवा कोई चारा न था, क्योंकि आग जलाने में हममें से कोई भी माहिर न था। मुझे मज़े ले-लेकर मछलियाँ चबाते हुए देखकर वह बहुत ख़फ़ा होता और कहता, "जानवर के बच्चे, मगरमच्छ के बच्चे, कैसे मज़े ले रहा है ?" इस पर मैं हँसकर कहता, "बाबा, तुम मछेरे हो और मछली नहीं खा सकते। कैसे मछेरे हो ?"

"मैं इनसान की औलाद हूँ, जानवर की औलाद नहीं हूँ।" वह कहता। कभी-कभीं उसे जलाने के लिए मैं कहता, "मैं ज़िन्दा मछली भी खा सकता हूँ। तुम खा सकते हो ?"

"चुप रहो। तुम बकते हो !" वह कहता।

"अच्छा ?" मैं कहता, "तो यह लो," यह कहकर मैं लकड़ी की बालटी में, जिसमें मैं मछलियाँ पाला करता था, हाथ डालकर एक ज़िन्दा मछली निकालता और मुँह में पकड़ लेता। मेरे दाँतों के दरमियान तड़पती हुई मछली को देखकर वह ग़ुस्से से पागल हो जाता और एक लम्बी-सी ख़ुश्क मछली उठाकर मेरे पीछे दौड़ता। मैं ख़ुश्क मछली के डर से, जो कि बैंत की तरह लगती है, बाहर भाग जाता और अँधेरे में खड़ा होकर उसकी ग़ुस्सैली आवाज़ सुनता रहता, "कैसा ज़माना आ गया है ! साँपों और सुअरों के बच्चे इनसानों के घर में पैदा होने लगे हैं। ऐसा कभी सुना था ! ज़िन्दा मछली को...ज़िन्दा आदमी खाता है। एक ज़िन्दगी दूसरी ज़िन्दगी को..." मैं बाहर खड़ा होकर ख़ामोशी से हँसता और मछली खाता रहता। बुड्ढा बाज़ू हवा में फैलाकर हँसता, जिससे उसके आख़िरी तीन दाँत, जो उसके मुँह में रह गए थे, नंगे हो गए, और आँखों के गिर्द झुर्रियाँ पड़ गईं।" उसकी बातों में दिलचस्पी महसूस करने के बावजूद सुननेवाले वक़्त की कमी की वजह से घबराए हुए थे, और चाहते थे कि वह इधर-उधर की बातें छोड़कर जल्द असल मौज़ूअ[4] पर आ जाए। डूबते हुए सूरज की रौशनी में बुड्ढे ने बात जारी रखी : "लेकिन जल्द ही हमें पता चल गया कि घर का काम चलाने में हम किस क़दर नाकाम रहे हैं। तमाम मछलियाँ, जो मैं सुखाकर बोरियों में भरता, दो दिन के बाद बू देने लगतीं, और उन्हें घर में रखना मुश्किल हो जाता। चूँकि वे बेचने के क़ाबिल भी न होतीं, इसलिए जितनी हम खा सकते, एक-दो रोज़ में जल्द-जल्द खा लेते, बाक़ी गली-सड़ी मछलियाँ दरिया में बहा देते। उसके बाद मैंने यह भी महसूस किया कि हमारी रोज़ाना की आमदनी में नुमायाँ कमी होती जा रही है, और एक वक़्त आया कि जितनी मछली घर में आतीं, रोज़ की रोज़ हम खा जाते। ख़ुश्क मछली के मुक़ाबले में मेरे बाप को ताज़ा कच्ची मछली ज़्यादा भा गई, जिसकी चरबी नर्म और नमकीन होती है। चुनाँचे इधर वह चन्द मछलियाँ लाकर रखता, उधर खड़ा-खड़ा चट कर जाता। मैंने सोचा, यूँ काम नहीं चलेगा। आख़िर एक दिन कुछ अपनी, कुछ अपने बाप की ना-अहली[5] पर झल्लाकर मैंने झोंपड़ी का दरवाज़ा बन्द किया और उसके साथ चल पड़ा।

"माघ का महीना था या शायद फागुन का। मुझे याद है, पहाड़ों पर बर्फ़ जमी थी और दरिया का शफ़्फ़ाफ़ पानी तह के साथ टिका हुआ था और उसमें दौड़ती-भागती हुई मछलियाँ दिखाई दे

1. बुद्धू, 2. महामारी, 3. ईश्वर-भक्त, 4. विषय, 5. अयोग्यता।

रही थीं। मैं कश्ती चला रहा था और मेरा बाप मेरी तरफ़ पुश्त किए खड़ा था। मैंने देखा कि बुढ़ापे की वजह से उसकी टाँगें टेढ़ी हो चुकी थीं और उन पर ज़र्द-ज़र्द नसें उभर रही थीं, लेकिन मौसम बड़ा शानदार था। दरिया और आसमान का रंग गहरा नीला था और हवा हमारे बाल उड़ा रही थी और मेरे बाप के उड़ते हुए बाल बर्फ़ की तरह सफ़ेद थे और धूप में ख़ुशनुमा लग रहे थे और हवा की वजह से जो हलकी-हलकी लहरें उठ रही थीं, उन पर हमारी कश्ती डोल रही थी। चलते-चलते हम मछलियों के ख़ित्ते में दाख़िल हुए। यहाँ पर दरिया किनारे को काटता हुआ बहुत अन्दर तक चला गया था और ठहरे हुए पानी की एक नन्ही-सी झील की शक्ल इख़्तियार कर गया था। यहाँ पर हमने हज़ारों की तादाद में मछलियाँ देखीं। रंग-बिरंग की छोटी-बड़ी, क़िस्म-क़िस्म की मछलियाँ पानी में खेल रही थीं, और धूप छन-छनकर उनके जिस्मों पर पड़ रही थी। मेरे बाप ने जाल फेंका। मछलियों में अफ़रा-तफ़री मच गई। जाल में बहुत-सी बड़ी-बड़ी मछलियाँ आईं और उन्हें कश्ती में लादकर हम वापस लौटे। मैं बेहद ख़ुश था और तेज़-तेज़ चप्पू मार रहा था कि अचानक मैंने देखा कि मेरे बाप ने जाल में हाथ डालकर कुलबुलाते हुए ढेर में से एक मछली निकाली और उसे हाथ में पकड़े कुछ देर तक देखता रहा। वह बड़ी ख़ूबसूरत मछली थी। उसका रंग गहरा नीला और ऊपर बड़े-बड़े सुनहरी रंग के चाने थे। वह गर्दन के पर फुला-फुलाकर साँस ले रही थी और खुली हुई आँखों से जाने किधर देख रही थी।

"पानी ख़ूबसूरत है।" मेरे बाप ने आहिस्ता से कहा, "मेरा घर बदसूरत है। तू अपने घर जा।" मेरे बाप ने कहा और हाथ लटकाकर उसे पानी में छोड़ दिया। मुझे उसकी इस अहमक़ाना हरकत पर बड़ा ताव आया और मैंने उसे मुतवज्जेह करने को नाक में से आवाज़ निकाली, लेकिन वह गहरी सोच में था। फिर उसने दूसरी मछली उठाई। उसका जिस्म सुर्ख़ रंग का था और ऊपर सियाह लकीरें थीं और उसकी आँखों का रंग सुर्ख़ था और दुम भी सुर्ख़ थी। "तुम ख़ूबसूरत हो। मेरा घर बदसूरत है। तुम भी अपने घर जाओ।" मेरे बाप ने कहा और उसे भी छोड़ दिया। पानी में दाख़िल होते ही मछली ने तेज़ी से दुम छिटकी और तह में चली गई। फिर मेरे बाप ने एक और मछली उठाई, जिसकी जिल्द सफ़ेद रेशम की तरह थी, और जिस पर दुनिया के हर रंग के नुक़्ते और लकीरें पड़ी हुई थीं। उसका सिर और आँखें और होंठ भी सफ़ेद थे। मेरे बाप ने यह कहकर उसे भी छोड़ दिया, "तुम भी ख़ूबसूरत हो। तुम भी अपने घर जाओ ! मुझे पेट भरने के लिए बस चन्द एक निकम्मी और बदसूरत मछली की ज़रूरत है।"

मतलब यह कि किनारे पर पहुँचने से पहले-पहले तमाम उम्दा-उम्दा मछलियाँ उसने छोड़ दीं। मैं ख़ामोश बैठा दिल ही दिल में पेचो-ताब खाता रहा, मगर दिल में मैं मुत्मइन था कि आख़िरकार मुझे रोज़ाना के नुक़सान का राज़ मालूम हो गया है। किनारे पर उतरकर मैंने उससे कहा, "देखो बाबा ! तुम कल से घर पर रहोगे। दरिया पर मैं जाऊँगा !"

"क्यों ?" उसने ख़फ़गी से पूछा।

"क्यों ?" मैं चीख़कर बोला, "तुम सारी मछलियाँ तो ज़ाए कर देते हो, क्यों ?" मैं ग़ुस्से से काँप रहा था। मेरी उम्र उस वक़्त ग्यारह बरस की थी, लेकिन मेरे तेवर देखकर वह डर गया और ख़ामोशी से सिर झुकाकर आगे-आगे चलने लगा। रास्ते में उसने मुझसे सिर्फ़ इतना कहा, "जब तुम बूढ़े हो जाओगे और तुम्हारी औरत मर जाएगी, तो तुम्हें पता चलेगा।" मैं ग़ुस्से में था, इसलिए उसकी बात के जवाब में ख़ामोश रहा।

"इसके बाद वह हमेशा घर पर रहता और मैं दरिया पर जाता। हमारे पास फिर मछलियों का काफ़ी ज़ख़ीरा जमा हो गया और मछेरों की बस्ती में एक बार फिर अमीर ख़ानदानों में शुमार होने लगे, मगर अब मेरा बाप बूढ़ा और अन्धा होता जा रहा था। वह सारा-सारा दिन छाँव में मछलियों को फैलाकर उनकी रखवाली पर बैठा रहता और दूसरे मछेरों को लड़ने-झगड़ने से मना करता और

जो लोग अपनी औरतों को पीटते, उनको नसीहत करता कि औरतों को पीटना नहीं चाहिए, वर्ना वे मर जाती हैं और फिर बुढ़ापे में कच्ची मछलियाँ खानी पड़ती हैं।''

''इसी तरह जब मैं जवानी की उम्र को पहुँचा, तो वह मर गया।'' बुड्ढा साँस लेने के लिए रुका और सादगी से हँसकर चारों तरफ़ देखने लगा। उसके तीन दाँत फिर दिखाई दिए। अब वे सब उस बुड्ढे के बातूनीपन और उसकी बातों से उकता चुके थे और नईम तो उससे कोई फ़ायदामन्द तफ़्सीलात हासिल करने की उम्मीद क़तई तौर पर खो चुका था। सिर्फ़ अज़रा, जिसे नईम या उसके साथियों के काम से ज़्यादा सरोकार न था, उससे दिलचस्पी ले रही थी।

''फिर, मछलीवाले ?'' अज़रा ने कहा।

''हमें तेरह अप्रैल का वाक़िआ बतलाओ, मछलीवाले, वर्ना हम चले जाएँगे।'' मर्दों में से एक ने कहा।

''ओह ! अच्छा, अच्छा...मैं आठ बजे से पहले-पहले सब कुछ बता दूँगा, मेरे बच्चो। घबराओ मत, क्योंकि आठ बजे तुम्हें चले जाना होगा। उस वक़्त यहाँ कर्फ़्यू शुरू हो जाता है। जब मेरा बाप मर गया, तो मैं अकेला रह गया। फिर मैंने घर के काम के लिए एक औरत की तलाश शुरू कर दी, लेकिन बदक़िस्मती से मेरा क़द बहुत छोटा रह गया था। जो भी औरतें मुझे मिलीं, बहुत क़द्दावर निकलीं और उन्होंने मेरे साथ रहना पसन्द न किया। जो दो-एक औरतें राज़ी हुईं, वे बदमिज़ाज निकल आईं और बदमिज़ाज औरतें, तुम जानते हो बच्चो, मुझे एक आँख नहीं भातीं। कुछ अरसे के बाद मैंने औरतों की तलाश में वक़्त ज़ाए करना छोड़ दिया। फिर मैंने अपने बाप की टोकरी निकाली और उसमें रोज़ाना की ताज़ा मछलियाँ डालकर बेचने लगा। अब घर का कोई काम न था और औरत की ज़रूरत न थी। मैं ख़ुश-ख़ुश अकेला रहने लगा और अब तक रहता हूँ। मेरे पास अब भी मेरे बाप की टोकरी है, जिसमें मैं मछलियाँ बेचता हूँ, हालाँकि अपना गाँव छोड़कर अब मैं इस शहर में आ गया हूँ। मैंने आज तक कच्ची मछली और उबली हुई मकई के सिवा कुछ नहीं खाया। मैं इस वक़्त तक अपने बाप से पाँच बरस ज़्यादा दुनिया में रह चुका हूँ। मैंने जलियाँवाला बाग़ में से कहीं बड़े मौक़े देखे हैं। सन् सत्तावन का ग़दर, जब मेरा बाप नया-नया मरा था, और इस सदी के शुरू का सुर्ख़ बुख़ार, और...और...लेकिन तुम लोग चूँकि इस वाक़िए का इसरार करते हो, इसलिए मैं तुम्हें इसी का क़िस्सा सुनाऊँगा। मैं उस दिन की और उससे पहले कई दिन की एक-एक बात बता सकता हूँ। सन् सत्तावन के पचास बरस के बाद ग़दर की एक-एक बात सुनकर एक शख़्स ने मुझसे पूछा था, ''तुम क्या खाते हो ?'' मैंने बताया, ''मछली और उबली हुई मकई !'' तो वह कहने लगा, ''इसीलिए तुम अक़्लमन्द आदमियों में से हो।'' बुड्ढे ने बैठे-बैठे कमर सीधी की और अँधेरे में उसके तीन सफ़ेद दाँत दिखाई दिए, जिससे सुननेवालों ने अन्दाज़ा लगाया कि वह अपने सादा, बेतकल्लुफ़ और मुतकब्बिराना[1] अन्दाज़ में हँस रहा था। ''बदअमनी[2] चौथे महीने के नवें दिन ही शुरू हो गई थी, जब शहर के चार बाज़ारों में नौ अंग्रेज़ों को मार दिया गया। हर बात मेरी आँखों के सामने है। उन्होंने मुझे ठहराया। वे दो थे। मैं समझा, मछली के गाहक हैं। ख़ुशी में टोकरी नीचे रखी। एक वहीं खड़ा रहा, दूसरा कैमरा आँख से लगाए-लगाए पीछे हटता हुआ दूर तक चला गया। वहाँ खड़े होकर उसने तस्वीरें लीं। फिर जेब से चाँदी का एक सिक्का निकालकर मेरी तरफ़ उछाला। सिक्का ज़रा ग़लत निशाने पर पड़ा और मैंने पागलों की तरह नाच-नाचकर और घूमकर उसे हवा में पकड़ने की कोशिश की। उसने और तस्वीरें लीं। आख़िर सिक्का ज़मीन पर गिर पड़ा। जब मैं उसे उठा चुका, तो वे जा रहे थे। हँस-हँसकर बातें करते हुए। अब मेरे देखते ही देखते गली के मोड़ से दो आदमियों ने उन पर हमला किया। दोनों के हाथों में तलवारें थीं। एक की तलवार उसके, जिसने तस्वीरें ली थीं, पेट के पार हो गई। दूसरे की तलवार

1. अहंकारी, घमंडी, 2. अशान्ति।

उसके साथी की पसलियों में अटक गई। दोनों गिरते ही ख़त्म हो गए। मैं इस वाक़िए की वजह से हैरान रह गया। फिर मुझे ख़याल आया कि अभी मैंने इन ग़ैर-मुल्कियों से रुपया क़बूल किया था, हो सकता है, वे सुअर मुझ पर भी हमला कर दें। यह सोचकर मैंने रुपया अन्दरूनी जेब में रखा और टोकरी उठाकर वहाँ से खिसक आया। अगले बाज़ार में मैंने तीन और लाशें देखीं, जो थोड़े-थोड़े फ़ासिले पर पड़ी थीं। उनके चेहरे भी गर्म थे। वे भी तीनों ग़ैर-मुल्की थे, जिनके सुनहरे बाल ख़ून और गर्द की वजह से बदरंग हो रहे थे। उनके पास कैमरे नहीं थे, कुछ भी न था। उनके हाथ ख़ाली थे। बाज़ार में लोग जल्दी-जल्दी दुकानें बन्द कर रहे थे। चन्द एक लाशों के आस-पास खड़े थे और उनके चेहरे बच्चों की तरह ज़र्द और ख़ौफ़ज़दा थे। मुझे उन लोगों की हालत पर बड़ा तरस आया, क्योंकि मैं इससे भी बड़े-बड़े मौक़े देख चुका था और यह सूरते-हालात मेरे लिए मामूली थी। चुनाँचे उनमें दिलचस्पी लिए बग़ैर मैं वहाँ से गुज़र गया, बल्कि मैंने अपना कारोबार भी बन्द न किया और बराबर मछली की आवाज़ निकालता रहा। दरबार साहब के बड़े दरवाज़े के सामने मैंने एक और अंग्रेज़ को देखा, जो मर रहा था। एक पतली-सी छुरी उसकी गर्दन के आर-पार हो चुकी थी और वह दस्ते को पकड़े मरने के क़रीब था। दोपहर के वक़्त शहर का सबसे बड़ा चौक वीरान पड़ा था और आस-पास कोई जानदार दिखाई न देता था। मैं वहाँ से भी गुज़र गया, लेकिन वह बड़ा ख़ूबसूरत लड़का था। हज़ार कोशिश के बावजूद मैं उसे दोबारा देखने से बाज़ न रह सका। रास्ते के मोड़ पर रुककर मैंने देखा, मरते हुए उस शख़्स का चेहरा आसमान की तरफ़ था और नौजवान होंठ सर्द हो चुके थे। बच्चो ! तुम ख़ुशक़िस्मत हो कि अभी नौजवान हो और अनजान हो। मैं बूड्ढ़ा मछलीवाला हूँ, लेकिन एक ज़माना गुज़ार चुका हूँ और ज़िन्दगी की कुछ एक बातें जानता हूँ। नौजवान चेहरे पर आँखें, और होंठ दुनिया की ख़ुशनुमा चीज़ें हैं, लेकिन जब वे सर्द कर दिए जाते हैं, मैंने मछलियाँ देखीं हैं, जो मौत में भी आँखें खोलकर मुस्कराती रहती है, मगर नौजवान, उनकी दूसरी बात है। उससे इनसान का दिल टूट जाता है। उसका ख़्याल दिल से निकालने के लिए मैंने ज़ोर से मछली की आवाज़ लगाई। इसी तरह कचहरी तक पहुँचते-पहुँचते मैंने तीन और लाशें देखीं, जो नालियों के किनारे और पटरियों पर पड़ी थीं और लाशों के अलावा मैंने एक आग देखी, छुपी हुई और ख़ामोश आग, जो सड़कों और गलियों और बाज़ारों में दौड़ते हुए शहरियों के दरमियान लपक रही थी। आग, जो जिस्मों के बजाय दिलों और आँखों में लगी थी। एक ख़ौफ़नाक ग़ुस्सा, जो तमाम शहरियों के सिरों पर लहरा रहा था, और मैं तुम्हें सच बताता हूँ, बच्चो ! तुमने नहीं देखा, मैंने देखा है। मैंने हज़ारों मुर्दा इनसान और हैवान और मछलियाँ देखी हैं। और सुर्ख़ वबा में एक-एक दरवाज़े से तीन-तीन मुर्दे एक साथ निकलते और औरतों को मातम करते हुए देखा है। और रेलगाड़ियों की टक्कर हुई, तो मैं वहाँ पर मौजूद था। और मैंने देखा, कि एक आदमी की गर्दन के पास दूसरे का सिर पड़ा था, और मैंने चीख़ते-चिल्लाते और एक दूसरे पर हमला करते हुए क़ाफ़िलों को देखा है, मगर कभी ख़ौफ़ज़दा नहीं हुआ, कभी नहीं, क्योंकि इसमें ख़ौफ़ज़दा होने की कोई बात नहीं। लेकिन वह ख़ामोश और दबा हुआ ग़ुस्सा, जो उस शहर के हर आदमी, हर जानदार और हर पेड़ में साँस ले रहा था, उसे देखकर मैं घर चला आया।

"उस वक़्त से शहर का तमाम कारोबार बन्द हो गया और सड़कों पर और बाज़ारों में फ़ौजी ट्रक और गोरे सिपाही फिरने लगे और शहर के बाशिन्दे, जो चप्पे-चप्पे पर बिखरे हुए थे, अब गलियों, कोनों और मुहल्लों के अन्दर गिरोहों में इकट्ठे होने लगे, जैसे एक मछली के जाल को क़ैंची से बीच में से काट दिया जाए, तो जगह-जगह से गुच्छों में इकट्ठा हो जाता है, और उन्हीं में से एक गिरोह था, जिसने कि बाज़ार में उस अंग्रेज़ औरत की बेहुरमती की, जो फ़साद की जड़ बनी। यह गड़बड़ का तीसरा रोज़ था। मैं रोज़ की तरह मछलियाँ उठाए फिर रहा था और दिल में कुढ़ रहा था, क्योंकि उनमें सड़ांध पैदा हो चुकी थी और मुझे उनसे नफ़रत हो रही थी, लेकिन मैंने

होशियारी से काम लेकर अब आवाज़ निकालनी बन्द कर दी थी, क्योंकि कई दिन गुज़र जाने पर अब उनमें ख़ूबियाँ कम ही रह गई थीं, और इस उम्मीद में उन्हें लिए चुपचाप फिर रहा था कि शायद कोई नेकदिल शौक़ीन उन्हें ख़रीद ले। बड़े बाज़ार में जब उस गली के सामने पहुँचा, जो बाज़ार को सब्ज़ी मंडी के साथ मिलाती है, तो ठिठककर रुक गया। गली में से एक गोरी औरत दौड़ती हुई निकल रही थी। उसके पीछे शहरियों का एक गिरोह शिकारी कुत्तों की तरह लगा हुआ था। बाज़ार के बीच में उन्होंने औरत को आ लिया। चारों तरफ़ से उसे घेरे वे गन्दी नज़रों से घूरते रहे। औरत के बाल राख के रंग के थे और उसकी ओढ़नी ग़ायब थी। उसकी टाँगें कीचड़ में लुथड़ी हुई थीं। वह उनके दरमियान कलदार गुड़िया की तरह बहुत आहिस्ता-आहिस्ता एड़ियों पर घूम रही थी। उसका चेहरा सफ़ेद मछली की तरह बेजान था। कुछ देर तक भीड़ ख़ामोश खड़ी तकती रही। फिर एक शख़्स आगे बढ़ा, और औरत की क़मीज़ को गले से पकड़कर एक झटके के साथ दामन तक फाड़ दिया। औरत ने चीख़ मारी, जिससे सारा तिलिस्म टूट गया और भीड़ उस पर पिल पड़ी। थोड़ी देर के लिए वह बीस-पच्चीस आदमियों के नीचे ग़ायब हो गई, लेकिन उसकी चीख़ें ज़मीन के साथ-साथ मुझ तक पहुँचती रहीं। मेरे सामने वह सब उसे कौओं की तरह नोचते रहे, मगर वह अजब सख़्त-जान रबड़ की औरत थी, भई वाह-वाह...मैंने उससे ज़्यादा अजीबो-ग़रीब औरत आज तक न देखी। इधर हुजूम का दबाव ज़रा कम हुआ, उधर वह उछलकर उनके बीच में से निकली और एक तरफ़ को भाग खड़ी हुई। अब उसके बदन पर फूलदार क़मीज़ कहीं दिखाई न देती थी, सिर्फ़ उसके चूतड़ों पर हलका-सा अंडरवियर और छाती पर औरतों के पहनने का कपड़ा लिपटा हुआ था। उसके बाल सिर पर खड़े थे और वह टाँगें फैलाकर पूरी रफ़्तार से चुड़ैलों की तरह भाग रही थी। उसके पले हुए सफ़ेद कूल्हे और रानें अभी तक मेरी आँखों के सामने हिल रही हैं... आह...उस वक़्त मुझे ख़याल आया था कि यह औरत अगर शाम के वक़्त घर में बैठकर मछली खा रही हो, तो शायद आँखों को भली लगे...आह ! उसके बाद वह गिरोह उसी गली में ग़ायब हो गया। मैं दिल में उन्हें लानत-मलामत करता हुआ वापस चला आया।

"उस रात पहली बार मुझे अच्छी तरह से नींद न आई। उससे पहले मुझे याद नहीं कि कभी मेरी नींद में गड़बड़ हुई हो। मैं ख़ूब सोने का आदी हूँ, क्योंकि नींद सेहत के लिए मुफ़ीद होती है, लेकिन उस रात मैं ख़ुश्की के मारे हुए मरीज़ों की तरह जागता रहा। फिर मुझे अपनी सेहत के मुतअल्लिक़ बड़ा फ़िक्र हुआ। पहले मैंने आग लाकर कमरे को ख़ूब गर्म किया। फिर बची-खुची मछलियों को आड़ा-तिरछा दीवार के साथ खड़ा किया, ताकि गलने न पाएँ। फिर कोने में जाकर चटाई पर लेट गया, जो कि मेरी रोज़ाना सोने की जगह है, लेकिन नींद न आई। मैंने सोचा कि यह शायद सड़ांध की वजह से है। चुनाँचे मैं उठा और मछलियों को एक ढेर में इकट्ठा करके टोकरी के नीचे ढँक दिया। फिर अपनी जगह पर वापस आकर दाहिनी करवट लेट गया, क्योंकि इस तरह मैं गहरी नींद सोता हूँ। नींद फिर भी न आई। मैं उठकर चटाई आग के क़रीब ले गया, मगर चन्द ही साँस लिए होंगे, कि गर्मी की शिद्दत से बिलबिला उठा। अब मैं उकड़ूँ बैठा था और अपनी जिस्मानी हालत पर ग़ौर कर रहा था कि सोचते-सोचते मुझे एक तजवीज़ सूझी। मैंने टोकरी उठाई और गंदी मछलियों को चुनकर एक तरफ़ रखा। "नींद तो आती नहीं। आओ, तुमसे गप्पे ही मारें।" मैंने कहा और एक सड़ी हुई मछली उठाई। मछली की बाछें खिली हुई थीं।

"मेरा बाप ज़िन्दा होता, तो तुम्हें मरने से पहले ही छोड़ देता, लेकिन मैं तुम्हें आसानी से नहीं छोड़ने का। कान खोलकर सुन लो," मैंने कहा, "तुम लाख हँसो, लेकिन तुम्हारे बच्चे और दूसरे रिश्तेदार तुम्हारी मौत पर आँसू बहा रहे होंगे।" मछली उसी तरह हँसती रही। मुझे उस पर ग़ुस्सा आ गया, "तुम सोती नहीं ? बेआराम जानवर ! तुम्हें मरे भी एक अरसा हो गया, पर बे-दीद आँखें उसी तरह खुली हैं। न ख़ुद सोती हो, न किसी को सोने देती हो। लो..." यह कहकर मैंने उसे आग

में उछाल दिया। थोड़ी ही देर में ख़ुश्क मछली तरतराकर जलने लगी, मगर उसकी आँखें उसी तरह खुली थीं, और आग में पड़ी हुई वह अभी तक हँस रही थी। मैंने ग़ुस्से में दूसरी मछली को भी उठाकर आग में फेंका। यह मुक़ाबलतन संजीदा चेहरेवाली मछली थी, लेकिन यह भी जाग रही थी। जलती हुई मछली की चरबी की बू हर तरफ़ फैल रही थी, जो कि अगर तुमने कभी सूँघी है, बच्चो, तो तुम्हें पता होगा कि यह काफ़ी भूक बढ़ानेवाली होती है, मगर आधी रात के वक़्त मैंने ज़्यादा खाना मुनासिब न समझा और भूक को किसी और वक़्त पर टालकर एक और मछली उठाई।

"तुम्हारी खाल बड़ी ख़ूबसूरत और नर्म है, शायद कोई गाहक मिल जाए। तुम आराम करो।" यह कहकर मैंने उसे एक तरफ़ रख दिया।

"यह तजवीज़ कारगर साबित हुई और काफ़ी देर तक उनके साथ गपशप करने और नाकारा मछलियों को जलाने के बाद मैं ख़ुद-ब-ख़ुद सो गया।

"सुबह जब सोकर उठा, तो सूरज सिर पर आ पहुँचा था, और बाहर चहल-पहल थी। मेरा माथा ठनका। आज कई रोज़ के बाद सड़कें आबाद हुई थीं। मैंने अच्छी तरह से आँखें मलकर नींद को भगाया। वे सब बड़ी जल्दी में थे और एक ही तरफ़ को जा रहे थे। यूँ लगता था, जैसे मछली की नीलामी शुरू हो चुकी है और वे इस फ़िक्र में हैं कि अच्छी-अच्छी मछली हाथ से न निकल जाए, लेकिन एक बात, जिससे वह मछली के गाहक मालूम न होते थे, उनकी ख़ामोशी थी। वे बात किए और शोर मचाए बग़ैर तेज़-तेज़ चल रहे थे। उनमें हर क़िस्म के लोग थे, बुड्ढे, जवान, छोटे, बड़े, पतले, मोटे, लेकिन हैरत की बात यह थी कि सबके रँग ज़र्द थे और होंठ भिंचे हुए थे और वे एक-दूसरे की तरफ़ देख भी न रहे थे। उन्हें उस हालत में देखकर मुझे जुस्तजू[1] हुई। जल्द-जल्द टोकरी में मछलियाँ भरकर बाहर निकला, और उनमें शामिल हो गया। किसी ने मेरी तरफ़ तवज्जुह न दी। फिर मैंने भी होंठ भींच लिए और उन्हीं की तरह अकड़कर चलने लगा। वे तादाद में बेशुमार थे। आगे और पीछे, जहाँ तक नज़र जाती, उनकी क़तारें थीं और वे हर तरफ़ से आ रहे थे। उसी तरह चलते-चलते हम बाज़ार के मुँह पर पहुँच गए। वहाँ पर बहुत-से हथियारबन्द गोरे सिपाही खड़े थे। जब हमारा हुजूम बाज़ार में दाख़िल होने को बढ़ा, तो उन्होंने बन्दूक़ें तान लीं और इधर-उधर बिखरकर मैदाने-जंग की तरह मोर्चा लगा लिया। हम डरकर रुक गए। फिर बाज़ार में से हिन्दोस्तानी लाठी-बरदार पुलिस का एक दस्ता बरामद हुआ, जिसने हम पर लाठियाँ बरसानी शुरू कीं, जो किसी को लगीं, किसी को न लगीं लेकिन उससे यह हुआ कि हम बाज़ार में दाख़िल न हो सके। एक लाठी मेरी टोकरी पर लगी, जिससे वह गिर पड़ी और सारी मछलियाँ बिखर गईं। उन्हें इकट्ठा करते हुए चन्द लाठियाँ मेरी पीठ पर भी पड़ीं, लेकिन मैंने सारी मछलियों को इकट्ठा करके छोड़ा। जब मैं उठ रहा था, तो मेरे कान में गूँजदार नारों की आवाज़ आई। यह एक दूसरा हुजूम था, जो दूसरी तरफ़ से आकर बाज़ार में दाख़िल होना चाहता था। उसको भी लाठियों की मदद से रोका गया, और वह हमारे साथ आ मिला। उनके आकर मिलते ही हमारे लोगों की ज़बानों में जान पड़ गई और गूँगी भीड़ अचानक पूरी ताक़त से चिल्ला उठी। अब हम हज़ारों की तादाद में थे, और एक लम्बा चक्कर काटकर उस तरफ़ को बढ़ रहे थे, जहाँ इस वक़्त मौजूद हैं। मेरे चारों तरफ़ लोग धक्कमपेल कर रहे थे और नारे लगा रहे थे। उनके चेहरों से अब ख़ौफ़ ग़ायब हो चुका था और उसकी जगह ख़ून और जोश उभर आया था। उनके मुँह धूल से अटे थे और बार-बार दिल दहला देनेवाली आवाज़ में खुल रहे थे। हम देर तक उछल-उछलकर और छलाँगें लगाकर चलते हुए और शोरो-ग़ुल मचाते हुए सड़कों पर बढ़ते रहे। रास्ते में कई छोटे-छोटे हुजूम हमारे साथ आकर मिल गए और कई जगह हथियारबन्द सिपाहियों ने हमें रोकने की कोशिश की।

"जब हम यहाँ दाख़िल हुए, तो बाग़ में इनसानों का एक समन्दर था, जिसका कोई किनारा

1. उत्सुकता।

न था। हमसे पहले भी यह भरा हुआ था, जब हम दाख़िल हुए तो भी यह भरा हुआ था, और हमसे बाद में भी घंटों इसमें लोगों का सैलाब दाख़िल होता रहा और यह भरा ही रहा। धूल का तूफ़ान पाँव तले से उठ-उठकर सिरों पर मँडला रहा था। लाखों लोगों ने क़ियामत का शोर मचा रखा था और इतनी गड़बड़ थी कि अपने-आपको सँभालना मुश्किल हुआ जा रहा था। धूल मेरी नाक में घुस रही थी और मेरे पाँव हज़ारों पाँव के नीचे कुचले जा रहे थे और खुली बहार में भी मेरे सिर में पसीने की धारियाँ बह रही थीं। मैं उनको कोस भी रहा था, लेकिन वहाँ से निकलना भी मुश्किल था। उस रेलती-पेलती और शोर मचाती हुई भीड़ में मैं अकेला आदमी था, जिसके सिर पर टोकरी थी, और मुझे इस बात पर दिल में शर्म महसूस हो रही थी। फिर उसी वक़्त मेरी नज़र बारह साल के एक बच्चे पर पड़ी, जो शायद अपने बाप से बिछड़ गया था और भीड़ में धक्के खा रहा था और रो रहा था। मुझे उस पर बड़ा तरस आया। उसका हाथ पकड़कर गिरता-पड़ता मैं उसे एक तरफ़ ले गया। वह रोता रहा। मैंने टोकरी में टटोलकर एक अच्छी-सी मछली निकाली और उसके हाथ में थमाई, जिसे देखकर वह चुप हो गया और ख़ुश-ख़ुश एक तरफ़ को चल पड़ा। फिर मैंने सोचा, यह टोकरी लेकर आने के ये फ़ायदे हैं।

"दरवाज़े में से अभी तक चिल्लाते हुए लोग दाख़िल हो रहे थे। मुसलमान अपने ख़ुदा और पैग़म्बरों का नाम लेकर और हिन्दू और सिख अपने ईश्वर को पुकार-पुकारकर नारे लगा रहे थे। जब मैं मुड़ा, तो सब लोग एक सियाह दाढ़ीवाले शख़्स की तरफ़ देख रहे थे, जो एक ऊँची जगह पर खड़ा भीड़ को चुप कराने के लिए हाथ-पाँव मार रहा था। उसकी दाढ़ी हवा में हिल रही थी, लेकिन वह अपनी कोशिश में कुछ ज़्यादा कामयाब न रहा। देखते ही देखते उसके पीछे एक गोरा आया, जिसने फ़ौजी अफ़सरों की वरदी पहन रखी थी। उसने धक्का देकर काली दाढ़ीवाले को नीचे गिरा दिया और उसी की तरह हाथ हिला-हिलाकर कुछ कहने लगा। एक पल के लिए ख़ामोशी छा गई और उसकी इन्तिहाई ग़ुस्सैली आवाज़ हमारे कानों में आई। उसकी बात किसी की समझ में न आई, लेकिन उसके हाथ के इशारों से ज़ाहिर था कि वह हमें वहाँ से चले जाने को कह रहा है। अचानक शोर फिर उठा और उसकी आवाज़ दब गई। एक तरफ़ से किसी ने जूता उतारकर उसकी तरफ़ फेंका। फिर हर तरफ़ से जूतों की यलग़ार शुरू हो गई। साथ-साथ भीड़ मुसलसल हरकत में थी, क्योंकि उस धक्कमपेल में एक जगह रुकना सख़्त मुश्किल था। अब आस-पास से हज़ारों नए और पुराने जूते फेंके जा रहे थे और हवा में जूतों की यलग़ार थी, जैसे दरिया की सतह पर से मुर्ग़ाबियों की डार उड़कर एक पल के लिए अँधेरा कर देती है, लेकिन फ़ौजी अफ़सर के इर्द-गिर्द के लोग डरे हुए चुपचाप खड़े थे और पीछे से आनेवाले जूते उनके सिरों पर गिर रहे थे। उस वक़्त मैंने होशियारी से काम लेकर अपने जूते सँभालकर रखे, क्योंकि मेरे पास, तुम जानते हो, बच्चो कि जूतों का सिर्फ़ एक जोड़ा है। जब जूते ख़त्म हो गए, तो लोगों ने अपने कपड़े उतार-उतारकर फेंकने शुरू कर दिए। अब पगड़ियों, क़मीज़ों और बनियानों के गोलों की बौछाड़ हो रही थी और जल्द ही आधे से ज़्यादा लोग नंगे बदन हो गए, बल्कि कुछ तो बेहयाई से काम लेकर सब कुछ ही निकालकर फिरने लगे। जब सब कुछ ख़त्म हो गया, तो सिर्फ़ शोर बाक़ी रह गया, जो कि हुजूम और वह फ़ौजी अफ़सर मिलकर मचा रहे थे। इतने में मेरे आगे खड़ा हुआ एक शख़्स मुड़ा और मेरी टोकरी की तरफ़ बढ़ा। मैं पीछे हटा, तो पीछे से दस-बारह हाथों ने टोकरी घसीट ली और उसमें से मछलियाँ उठाकर ग़ुस्से से मुझे देखने लगे। फिर पूरे ज़ोर से उन्होंने मछलियाँ हज़ारों इनसानी सिरों के ऊपर से उस तरफ़ को फेंकीं। जिन लोगों पर वे गिरीं, उन्होंने उठाकर आगे फेंकीं, फिर आगे, और आगे, और इसी तरह एक मछली जाकर फ़ौजी अफ़सर की आँखों के दरमियान लगी। उसने वहीं पर उसे पकड़ लिया और एक पल तक उसे देखता रहा। फिर सिर उठाकर भीड़ को देखा, फ़िर मछली को, फिर भीड़ को। अचानक उसने मछली सिर से ऊपर उठाई

और पूरी ताक़त से उसे सामने खड़े हुए शख़्स के मुँह पर खींच मारी। फिर उसने बाज़ू हवा में फेंके और पागलों की तरह चीख़ मारकर चिल्लाया। उसी वक़्त गोली चलनी शुरू हुई।

"फिर वह मंज़र शुरू हुआ, जो ज़िन्दगी में बहुत कम देखने में आता है। सारे बाग़ में अफ़रा-तफ़री फैल गई और वह भगदड़ मची, जो साफ़ पानी में जाल फेंकने पर मछलियों में मचती है। लेकिन पीछा करती हुई गोलियाँ इनसानों से बहुत तेज़ भागती हैं, बच्चो ! एक वह शख़्स था, जो मेरे कन्धे पर हाथ रखे हुए दौड़ रहा था। गोली लगने पर हवा में उछला और वहीं पर टँग गया, क्योंकि नीचे आने से पहले कुछ और गोलियाँ उसके जिस्म में दाख़िल हुईं और उसने हवा में क़लाबाज़ी खाई। फिर और गोलियाँ, और एक और क़लाबाज़ी और इस तरह जब सर्कस के मसख़रे की तरह करतब दिखाने के बाद वह ज़मीन पर आया, तो कब का मर चुका था। उसके चेहरे पर वही जोशो-ख़रोश था और वह बद-शक्ल न हुआ था, क्योंकि उसने मौत देखी ही न थी। यह अजीबोग़रीब मौत थी। देखते-देखते उसका जिस्म गिरती हुई लाशों में छुप गया। यह सारा क़िस्सा कुछ पल का था। वहाँ से आँधी की तरह भागते हुए मुझे अपनी टोकरी दिखाई दी, जो गोलियाँ लगने पर गेंद की तरह उछल रही थी। फिर भागते-भागते मैं चीख़ मारकर रुक गया। चन्द गज़ के फ़ासिले पर वह कुआँ था, वह ख़ुश्क कुआँ तुम देख रहे हो, हाँ, वही ! मेरे साथ भागते हुए ज़्यादातर लोग उसमें जा गिरे। उनके ऊपर दूसरी तरफ़ से आनेवाले गिरे। फिर उसमें हर तरफ़ से आनेवाले ज़िन्दा और मुर्दा लोग गिरने शुरू हुए और इनसानों की चीख़ों ने गोलियों की आवाज़ को दबा दिया। मेरे देखते-देखते कुआँ मुर्दा और नीम-मुर्दा लोगों से भर गया और लोग आसानी के साथ उस पर से दौड़ते हुए गुज़रने लगे। गोलियों की बौछार के नीचे-नीचे दौड़ता हुआ मैं इस दीवार के पास से गुज़रा, जहाँ मैं अब बैठा हूँ। तुम देख रहे हो, बच्चो ? अब यहाँ पर कोई नहीं है, लेकिन उस वक़्त इस सारी दीवार पर आदमी लटके हुए थे। उनकी टाँगें दीवार से अन्दर की तरफ़ थीं और सिर और बाज़ू बाहर की तरफ़ लटक रहे थे और उनके पेट दीवार पर थे। ये वे लोग थे, जो दीवार को इस जगह से नीचा देखकर फाँदने के लिए ऊपर चढ़े और गोलियों की ज़द में आ गए और अन्दर से देखने पर यूँ मालूम हुए थे, जैसे धोबी ने बेशुमार पाजामे और कोट और पतलून सूखने के लिए धूप में फैला दिए हैं। तुमने दीवार में यह सूराख़ देखे हैं ? आह ! तुम जो ये सब बातें लोगों से पूछते फिरते हो, बच्चो ! तुम कभी यह अन्दाज़ा नहीं लगा सकते कि इस बाग़ी शहर को कितनी बड़ी सज़ा मिली...आह ! बाहर निकलते हुए मुझे चन्द कुत्ते दिखाई दिए, जो एक मछली को खींच रहे थे। यह वही सफ़ेद और चमकदार मछली थी, जो मैंने इस ख़याल से अलग कर दी थी, कि शायद कोई गाहक मिल जाए। उस वक़्त उसके ऐसे अनोखे गाहक देखकर मुझे बड़ी हँसी आई, लेकिन हँसने का वक़्त न था, इसलिए मैं जान बचाने की ख़ातिर सिर पर पाँव रखकर वहाँ से भाग आया।

"भागता-भागता मैं उस जगह पहुँचा, जहाँ एक रोज़ पहले उस गोरी औरत की मिट्टी पलीद की गई थी। वहाँ पर तमाम लोग रुके हुए थे। पीछे से गोलियाँ चलने की आवाज़ बराबर आ रही थी। मैं हुजूम को चीरकर आगे बढ़ा, तो अजीब मंज़र देखा। बाज़ार के दोनों तरफ़ गोरे सिपाहियों की क़तारें शस्त बाँधे गोली चलाने के लिए तैयार खड़ी थीं और बाज़ार के बीचों-बीच इनसानी जिस्मों का एक दरिया था, जो बह रहा था। वे सब ज़मीन पर लेटकर पेट के बल रेंगते हुए पच्चीस गज़ का वह टुकड़ा तय कर रहे थे। उन्हें कुहनियों या घुटनों से काम लेने की भी इजाज़त न थी। उन्हें बताया गया और हम सबको बताया गया कि हमें साँप की तरह पेट पर चलकर यहाँ से गुज़रना है, जहाँ पर कि उनकी औरत के साथ साँपों का-सा सुलूक किया गया था, और मैंने देखा कि जो कोई भी कुहनियों पर उठता, और जो कोई भी घुटनों पर उठता, उसे गोली मार दी जाती। और फिर उन्होंने ऐसा किया कि बाज़ार के एक तरफ़ जमा होकर रेंगते हुए जिस्मों से छह इंच ऊपर-ऊपर

गोली चलाना शुरू कर दी और जान बचाने के लिए भगोड़ों ने मिट्टी में सिर गाड़ दिए और पाँव की उँगलियों और नाखुनों की मदद से रेंगने लगे। लेकिन बाग़ से बचकर निकल भागनेवालों के लिए यही एक रास्ता था और लोगों का रश हर पल बढ़ता जा रहा था। जिस शख़्स के सामने जगह बनती, वह सिर के बल गिरकर अजगरों के उस जुलूस में शामिल हो जाता, और तुम जानते हो, बच्चो, कि हम मछेरों के लिए यह काम मामूली होता है। मैं अभी छह साल का था कि मेरे बाप ने, उसकी रूह को सवाब पहुँचे, मुझे पानी की सतह पर औंधे मुँह लेटकर बग़ैर हाथ-पाँव हिलाए मुर्दे की तरह तैरने का ढंग सिखाया था। इसलिए जब मेरी बारी आई, तो मैं फुर्ती और आसानी से रेंगने लगा, लेकिन गोलियों की ज़द से बचने के लिए मुझे अपना सिर ज़मीन में गाड़ना पड़ा, जिससे मेरी खोपड़ी ज़ख़्मी हो गई और कई दिन तक सूजी रही। फिर भी मैंने यह काम होशियारी और चालाकी से पूरा किया। मगर मैंने देखा कि मेरे साथ जो बुड्ढा रेंग रहा था, उसके सिर पर एक बाल भी न था और खोपड़ी से ख़ून बह रहा था। उसका एक गाल मिट्टी में दबा-दबा अपने पीछे एक चौड़ी लकीर छोड़ता जा रहा था, और वह बुड्ढों की तरह भौंडेपन के साथ रो रहा था। जब रास्ता ख़त्म होने पर हम उठकर भागे, तो मैंने देखा कि यह वही नूरानी दाढ़ीवाला बुड्ढा था, जो हर जुमेरात को मुझसे मछली ख़रीदा करता था और जिसके तीन जवान बेटे थे और पंसारी की बहुत बड़ी दुकान थी। उसके बाद मैं उस तरफ़ नहीं गया, लेकिन मैंने दूर से कई बार देखा कि एक मुद्दत तक लोग वहाँ से इसी अन्दाज़ में लेटकर गुज़रते रहे, जो इनसानों के चलने का सख़्त मायूब तरीक़ा है। मेरे बाप-दादा के वक़्त की टोकरी भी उस रोज़ खो गई।

"अब तुम्हें यहाँ से चले जाना चाहिए, बच्चो ! क्योंकि अभी यहाँ पर कर्फ़्यू लग जाएगा और उसके बाद बारह घंटे तक जो भी यहाँ पाया गया, उसे गोली मार दी जाएगी। मैंने काफ़ी मग़ज़मारी की है, लेकिन तुमने ख़ुद ही कहा था, "बुड्ढे ! हमको सब कुछ बताओ, मगर तुम्हें परेशान होने की कोई ज़रूरत नहीं, क्योंकि मैंने इससे बड़े-बड़े मौक़े देखे हैं और यह बातें मेरे लिए मामूली हैं।"

"तुम यहाँ से नहीं उठोगे, बाबा ?" एक सुननेवाले ने पूछा।

"नहीं !"

"तुम हिन्दू हो या मुसलमान ?" नईम ने जल्दी से सवाल किया।

"आहा। यह अच्छा सवाल है !" वह उँगली उठाकर हँसा, "यह अच्छा सवाल है ? वाक़िई...लेकिन मुझे पता नहीं...यह कुछ ऐसा है कि मैं मसरूफ़ ही रहा। मेरा बाप भी मसरूफ़ आदमी था। मछेरे का काम दरअसल जानतोड़ काम होता है। इधर-उधर की बातों पर तो ध्यान ही नहीं दे सकते।" उसने गोरे सिपाहियों की तरफ़ इशारा किया। "मैंने उन्हें भी सब कुछ बता दिया है। वे मुझे कुछ नहीं कहते। मैं आधी-आधी रात तक यहाँ बैठा रहता हूँ। ये जानते हैं कि मैं इन बातों में दिलचस्पी नहीं लेता। मैं मछली बेचनेवाला बुड्ढा हूँ !"

वापस आते हुए वह देर तक मुड़-मुड़कर उस सियाह, छोटे-से साए को देखते रहे, जो उस बुड्ढे का था, जो बातें कर-करके थक चुका था और अब सुकून से दीवार पर अकेला बैठा था और एक सुनसान रात उसके चारों तरफ़ फैलती जा रही थी। आहिस्ता-आहिस्ता वह रात उनके दरमियान आ गई और वे एक दूसरे की नज़रों से ओझल हो गए, लेकिन उस शाम के बाद कई बरसों तक दीवार पर बैठा हुआ वह इकलौता, सियाह जिस्म उन पाँचों की आँखों के सामने घूमता रहा।

पंजाब का दौरा ख़त्म करने के बाद साल के आख़िरी दिनों में नईम और अज़रा लाहौर स्टेशन से दिल्ली जानेवाली रात की गाड़ी पर सवार हुए। जिस डिब्बे में वे चढ़े, उसकी सारी सीटें सोनेवाले मुसाफ़िरों से घिरी हुई थीं, सिवाय एक के, जो कि ऊपरवाली सीट थी। तमाम रात दोनों मियाँ-बीवी को एक ही सीट में बसर करना था, लेकिन इसके सिवा कोई चारा न था। चुनाँचे वे ऊपर चढ़े और लिहाफ़ में घुसकर सो गए। जगह कम थी और गाड़ी उन्हें बुरी तरह हिला रही थी, लेकिन

इतना अरसा एक मुसीबतज़दा ख़ित्ते[1] में बसर करने के बाद घर वापस जाने के ख़याल से उनके आसाब[2] मुकम्मल तौर पर पुर-सुकून थे और वे रात भर ख़ूब गहरी नींद सोए रहे।

जब अज़रा जागी, तो लिहाफ़ के अन्दर आँखें खोलकर उसने कोनों-किनारों में से दाख़िल होती हुई दिन की रौशनी को देखा और उसे काफ़ी वक़्त गुज़र जाने का एहसास हुआ। साथ ही बहुत-सी ऊँची मर्दाना आवाज़ों का शोर उसके कान में पड़ा। उसने लिहाफ़ का कोना उठाकर देखा। यह शोर चन्द फ़ौजी अफ़सरों की बातों का था, जो सबके सब ग़ैर-मुल्की[3] थे। वे अपनी-अपनी जगह छोड़कर आमने-सामने दो निचली सीटों पर जमा थे। उनमें से दो पूरे फ़ौजी लिबास में थे। तीन को उनके हिन्दोस्तानी बैरे लिबास पहना रहे थे, और बाक़ी दो, जो रंग-ढंग से फ़ौजी अफ़सर ही मालूम होते थे, रात के लिबास में पास-पास बैठे सिगार पी रहे थे। रात के लिबास में एक और शख़्स भी था, जो उनके पास ही सीट पर बैठा उनकी बातों से बेपरवाह एक अंग्रेज़ी किताब पढ़ रहा था और पाइप पी रहा था। दो सीटों के दरमियान एक छोटी-सी मेज़ पर शैम्पेन की बोतल रखी थी। दो अफ़सर, जो लिबास पहनने से फ़ारिग़ हो चुके थे, छोटे-छोटे गिलासों में से घूँट-घूँट शराब पी रहे थे, और ऊँची, लापरवाही आवाज़ में बातें कर रहे थे। सुबह की नर्म धूप खिड़की के शीशों में से अन्दर आ रही थी और गाड़ी तेज़ी से आमों के एक बाग़ के पास से गुज़र रही थी। अज़रा ने अम्बाला के चारों तरफ़ के आम के बाग़ों से ढँके हुए इलाक़े को देखा और दिल में घर वापस आने की ख़ुशी, जो हर इनसान को होती है, महसूस की। उसने मुहब्बत और मेहरबानी की नज़र नईम पर डाली, जो बच्चों की तरह सो रहा था। वह देर तक ख़ामोश लेटी उसके जिस्म की गर्मी को जज़्ब करती रही।

अचानक एक जाना-पहचाना नाम सुनकर उसने कान खड़े किए। जिसका ज़िक्र उस अंग्रेज़ फ़ौजी ने किया था, जो गुलाबी लकीरोंवाला पाजामा और ड्रेसिंग गाउन पहने हुए था और सबसे ऊँची आवाज़ में बोल रहा था : "लाहौर में मैंने हन्टर कमेटी को बताया कि मुझमें कितनी इनसानियत है," उसने तेज़ी से कहा, "वर्ना..."

"बिलकुल ठीक है," दूसरे फ़ौजी ने उँगली सीधी करके कहा, "वर्ना कौन नहीं जानता कि क्या कुछ किया जा सकता था !"

"मैं हिन्दोस्तानियों के इस मुक़द्दस[4] शहर को जलाकर राख कर सकता था...और उनका रवैया देखकर मेरे जी में आया कि इस क़ानून तोड़नेवाली और बाग़ी भीड़ को बरबाद कर दूँ और उनके बच्चों और उनके घरों को आग लगा दूँ, लेकिन महज़ इनसानी रहम और ख़ुदा-तरसी के जज़्बे ने मुझे रोक लिया। मैंने एक बाग़ी क़ौम को ज़ंजीरों में जकड़कर रख दिया और...इसका नतीजा यह हुआ कि मुझ पर इंक्वायरी बिठाई गई !"

"इंक्वायरी कमेटियों के लोग इन्तिहाई जाहिल होते हैं। उन्हें पता है कि उनमें से किसी को अगर तुम्हारी जगह पर खड़ा कर दिया जाए, तो वह वही करेगा, जो कुछ तुमने किया। बहरहाल, अब इस क़िस्से को ख़त्म करो और अपनी कामयाबी का जाम नोश करो !"

इस तजवीज़ का ख़ुशी के साथ ख़ैरमक़्दम[5] किया गया और सब फ़ौजियों ने, जिनमें किताब पढ़नेवाले और तीन लिबास पहननेवाले भी शामिल थे, आगे बढ़कर अपने-अपने गिलास उठाए। यह तजवीज़ करनेवाले ने हर एक के गिलास में बारी-बारी शराब उँडेली और फिर सबने एक साथ गिलास सिरों से ऊपर उठाकर ख़ुशी का नारा लगाया और गटागट पी गए। इसके बाद ड्रेसिंग-गाउनवाला फिर जोशीले लहजे में तेज़-तेज़ बातें करने लगा। नईम और अज़रा को यह जानने में दिक़्क़त न हुई कि वह शख़्स जलियाँवाला बाग़ का फ़ातेह[6] ब्रिगेडियर जनरल डायर था। दिल्ली स्टेशन पर वह उसी लिबास में उतर गया।

1. आपद्ग्रस्त क्षेत्र, 2. तन्तु, 3. विदेशी, 4. पवित्र, 5. स्वागत, 6. विजेता।

अज़रा उसकी शानदार शख़्सियत और जारिहाना[1] अन्दाज़ से मरऊब[2] हुई, लेकिन नईम के हाथ उसे मार गिराने के लिए काँपने लगे।

20

रौशन आग़ा लगातार एक घंटे से ऊपरी मंज़िल की बालकनियों में चक्कर लगा रहे थे। इसी तरह वे पिछले चन्द घंटों में रौशन महल के तमाम बरामदों, ग़ुलाम-गर्दिशों और ख़ाली कमरों में घूम चुके थे। सिर निहुड़ाए, हाथ पीछे बाँधे, गहरी सोच में खोए, वे चल रहे थे। कभी-कभी वह पुश्त पर से खोलकर बाजुओं को सीने पर बाँध लेते, और फिर सीधे छोड़कर चलने लगते। बाहर ड्राइव के आख़ीर पर मोटरगाड़ियों और बहलियों की एक क़तार खड़ी थी और उनमें आनेवाले डॉक्टर और नर्सें घर के दूसरे लोगों के साथ, जिनमें नईम और अज़रा भी शामिल थे, गोल कमरे में जमा थे। तमाम डॉक्टर इत्मीनान से बैठे अख़बार और निजी काग़ज़ात देख रहे थे और सिगरेट पी रहे थे। घर के लोगों के चेहरों पर परेशानी के आसार थे और वे बेचैनी से वक़्त के गुज़रने का इन्तिज़ार कर रहे थे। कभी-कभी बेदाग़ लिबास में कोई नर्स बे-आवाज़ क़दमों से चलती हुई आकर किसी डॉक्टर की कुर्सी पर झुक जाती और खुसर-फुसर करने के बाद उसी तरफ़ ग़ायब हो जाती। डॉक्टर उकताई हुई नज़रों से इधर-उधर देखता और फिर काग़ज़ात पर झुक जाता। अन्दर बड़े-बड़े कमरों के पीछे कहीं से धीमा, मक्खियों के भिनभिनाने का-सा शोर उठ रहा था। थोड़ी-थोड़ी देर बाद उसको चीरती हुई एक तेज़ दर्द में डूबी चीख़ कमरे तक पहुँचती, जो घरवालों के चेहरे ज़र्द और डॉक्टरों की उकताहट बढ़ा देती।

बाहर बरामदों, ज़ीनों और गैलरियों में घर के नौकर, महरियाँ और माली एक बेकार मसरूफ़ियत के साथ एक दूसरे के पास से गुज़र रहे थे। ख़ासतौर पर औरतें ख़ामोश हँसी से गाल नचाती हुई मुसलसल इधर-उधर भाग रही थीं और अपने शौहरों के अलावा दूसरे मर्दों के क़रीब से गुज़रते हुए बे-वजह तौर पर मुस्कराए जाती थीं। उनके बाज़ू चाँदी के मोटे-मोटे कड़ों और कंगनियों से कुहनियों तक छुपे हुए थे और शोर करने के डर से वे उन्हें थामे हुए थीं। रौशन आग़ा को लकड़ी के बड़े ज़ीने पर उतरते हुए देखकर वे सब सायों की तरह कमरों में ग़ायब हो गए।

उन्होंने दोनों हाथ ऊनी ड्रेसिंग-गाउन की जेबों में गहरे ठूँस रखे थे और तेज़ आसाबी चाल से चल रहे थे। दरवाज़े पर आकर वे रुके और एक तवील, मुश्ताक़[3] निगाह कमरे की सारी गोलाई में फेंकी। एक सफ़ेदफ़ाम[4] नर्स एक अंग्रेज़ डॉक्टर से हिदायात लेकर वापस जा रही थी। उसके ग़ायब होते ही वह दर्दभरी चीख़ बुलन्द हुई। रौशन आग़ा जल्दी से मुड़कर चलने लगे। बरामदे की लम्बाई तय करते हुए वे कई जगह पर रुके। पाम के पत्तों को तोड़कर दाँतों में चबाया। नाखुनों से बरामदे के खम्भों पर लकीरें खींचीं और ज़र्द रंग की बेल में से चिड़ियों को उड़ाया। वे दोबारा दरवाज़े के सामने से गुज़रे, तो उनके दोस्त डॉक्टर अंसारी उठकर उनसे आ मिले।

''हलो रौशन आग़ा !'' सुनहरे रंग की सिगारदानी खोलकर बढ़ाते हुए बोले।

''नहीं, डॉक्टर...शुक्रिया ! तम्बाकू की ख़्वाहिश नहीं है, लेकिन डॉक्टर, पहले भी मेरे दो बच्चे हो चुके हैं, पर ऐसी हालत मेरी कभी नहीं हुई,'' उन्होंने एक थकी हुई साँस छोड़ी, ''शायद मैं बूढ़ा हो रहा हूँ !''

डॉक्टर हँसा, ''बूढ़े तो हम सब हो रहे हैं, पर यह कोई ऐसी बात नहीं !''

''लेकिन क्या यह मुमकिन है, डॉक्टर !'' उन्होंने रुककर पूछा, ''कि...यानी आख़िरी बच्चे से कमो-बेश बीस साल के बाद...यानी...क्या तुम्हें यक़ीन है कि...''

1. आक्रामक, 2. प्रभावित, 3. उत्सुक, 4. गौरवर्ण।

"बेशक..." डॉक्टर अंसारी ने सिगार का धुआँ पाम के पत्तों पर छोड़ा, "मैंने ऐसे केस भी देखे हैं, जब शादी के चालीस बरस के बाद पहला बच्चा हुआ..."

"मज़्हकाख़ेज़[1]...क़तई मज़्हकाख़ेज़... !" रौशन आग़ा कँपकँपाती हुई उँगलियाँ चटख़ाते हुए बोले, "लेकिन मैंने ज़िन्दगी भर एक दिन में इतना पैदल सफ़र तय नहीं किया है, जितना कि आज...डॉक्टर..."

"इत्मीनान रखो...अब वक़्त गुज़रा ही चाहता है।" डॉक्टर ने कहा।

थोड़ी देर के बाद रौशन आग़ा को उसी तरह बरामदे में चक्कर लगाते हुए छोड़कर वह अपनी जगह पर आकर बैठ गए। जब अन्दर से आनेवाली चीख़ें तेज़ हो गईं, तो अज़रा ने अपनी जगह पर बैठे-बैठे झुककर नईम के कान में कुछ कहा। नईम उठकर बाहर निकल आया। उसे देखकर रौशन आग़ा ने उसके कन्धे पर हाथ रख दिया। एक दफ़ा कहने के अन्दाज़ में उसकी तरफ़ देखा, फिर सिर झुकाकर चलने लगे। वक़्त के गुज़रने के साथ-साथ ग़ैर-महसूस तौर पर अब उन्होंने बराबर के आदमी की तरह उससे बात करने के ख़याल को क़बूल कर लिया था। अब वह उनमें से था।

दो दफ़ा बरामदे की लम्बाई तय करने के बाद आख़िर नईम बोला, "हमारा पंजाब का दौरा ख़ासा कामयाब रहा।"

"आहा...हाँ !" पंजाब में तुम लोगों ने बड़े दिन लगाए। क्या नतीजा निकला ?"

"कमेटी ने तमाम अहम और क़ाबिले-एतिमाद[2] लोगों से राबिता[3] क़ायम किया, जिनसे हमें चश्मदीद[4] हालात मालूम करने का मौक़ा मिला। गवर्नमेंट के एलान के मुताबिक़ चार सौ आदमी मरे और ज़ख़्मी हुए। अस्ल में मरनेवालों की तादाद इससे कहीं ज़्यादा थी !"

"हूँ !" रौशन आग़ा तश्वीश से बोले, "'तशद्दुद[5] ! इंक्वायरी कमेटी में और कौन लोग थे ?"

"देशबन्धु दास, जवाहरलाल नेहरू, सईद अहमद और चन्द और लोग थे। इंक्वायरी रिपोर्ट जल्द ही छपनेवाली है।"

"पंजाब के हालात में मुझे बड़ी दिलचस्पी है, लेकिन इस वक़्त..." उन्होंने हाथ से अन्दर की तरफ़ इशारा किया, "इस मुआमले ने मुझे परेशान कर रखा है। मैं कभी इतना पैदल नहीं चला !"

नईम ने एक क़रीबी अज़ीज़ की तरह चन्द बातें उनकी तसल्ली के लिए कहीं और कमरे में वापस आ गया।

अब अज़रा उठकर बाहर जाने इरादा कर रही थी कि अन्दर से चीख़ों की आवाज़ आनी बन्द हो गई और शहद की मक्खियों का शोर आहिस्ता-आहिस्ता क़रीब आने लगा। डॉक्टरों ने अपने-अपने काग़ज़ात और सिगरेट तिपाइयों पर रख दिए और जिन्होंने चश्मे लगा रखे थे, उतारकर हाथों में पकड़ लिए। घर के बाक़ी लोग अपनी-अपनी जगह छोड़कर उठ खड़े हुए। बाहर नौकरों में खलबली मच गई। अन्दर से दो नर्सें निकलीं और अपने डॉक्टरों को जाकर ख़ुशख़बरी दी। उनके पीछे-पीछे ख़ाला निकलीं और तेज़ी से कमरा पार करके बरामदे में पहुँची। एड़ियाँ उठाकर दोनों हाथ रौशन आग़ा के कन्धों पर रखे और बोला, "बेगम महफ़ूज़ हैं। आपको याद कर रही हैं !"

"ओह ! सच ?" उन्होंने दोनों बाज़ू बरामदे में फैलाए। फिर अपने बड़े-बड़े हाथों में ख़ाला का हाथ दबोच लिया और उसे मुँह के क़रीब लाकर चूमा, "आह ! यह कितना कड़ा वक़्त था....रब्बे-अमजद[6]..."

डॉक्टर अंसारी उनकी तरफ़ आए, "मुबारक हो, रौशन आग़ा ! आप बच्ची को देख सकते हैं...ज़च्चा की हालत मुकम्मल तौर पर तसल्लीबख़्श है !"

"मुबारक हो, मुबारक हो !" पुकारते हुए रौशन आग़ा दरवाज़े की तरफ़ बढ़े। दहलीज़ पर पहुँचकर रुके। फिर पलटकर बरामदे में पड़ी हुई बेद की लम्बी कुर्सी पर दराज़ हो गए। गाड़ियाँ

---

1. हास्यास्पद, 2. विश्वसनीय, 3. सम्पर्क, 4. आँखों देखे, 5. हिंसा, 6. ईश्वर।

एक-एक करके रुख़सत हो रही थीं। आरामदेह कुर्सी पर पूरी तरह फैलकर उन्होंने पाँव ठंडे फ़र्श पर रखे और आँखें बन्द कर लीं। सब लोग अन्दर के कमरों की तरफ़ चले गए। आहिस्ता-आहिस्ता बरामदे में सन्नाटा छा गया। चन्द मिनट के अन्दर-अन्दर रौशन आग़ा का सिर छाती पर ढलक आया और वे ऊँघने लगे।

सिर्फ़ नौकरों में एक ख़ामोश खलबली मची रही। वे बेआवाज़ क़दमों से चलते हुए कभी अन्दर के कमरों में झाँकते और कभी तवील ख़ाली बरामदे में देखते, जहाँ रौशन आग़ा अकेले सो रहे थे और उनका ख़ास मुलाज़िम ख़ामोश इशारों से उन चिड़ियों को उड़ा रहा था, जो बरामदे की बेलों और पाम के पत्तों में शोर करना चाहती थीं।

वह आग, जो बुड्ढे मछलीवाले ने अमृतसर में देखी थी, आहिस्ता-आहिस्ता मुल्क भर में फैल गई।

यह सारे महीने नईम और उसकी बीवी किसानों में फिरते रहे और उन्होंने एक बहुत बड़ी, बदलती हुई दुनिया देखी। सिर उठाते और कमर सीधी करते हुए किसानों की दुनिया, जो तेज़ी से बदल रही थी, और अपनी हैसियत और ताक़त का इल्म, जो छूत की बीमारी की तरह किसानों में फैलता चला जा रहा था। हालाँकि उनकी यह सारी कार्रवाई रौशन आग़ा के इल्म से बाहर थी और हालाँकि अज़रा के लिए किसानों और उनकी ज़िन्दगियों में कोई कशिश न थी, फिर भी अपने शौहर के साथ बहरहाल वह फिरती रही और अपने देहाती घर को मर्कज़[1] बनाकर उन्होंने चारों तरफ़ अपना काम जारी रखा।

हिन्दोस्तान के शदीद मौसमों में वे दूर-दूर के गाँव में पैदल चलकर पहुँचे और खेतों में काम करते हुए किसानों से बात की। किसान, जो नईम और उसकी तरह के हज़ारों कारकुनों[2] की कोशिशों से अब उनकी बातों का मतलब समझने लगे थे, उनके गिर्द जमा होते और उनकी अदम-तआवुन[3] की हिदायतों को ख़ामोशी और जज़्बे के साथ सुनते। पहले-पहल उनको यह बातें वहशतनाक मालूम हुईं, क्योंकि इन बातों में कोई फ़लसफ़ा न था और यह सीधी-सादी, नंगी बग़ावत की बातें थीं। अनपढ़ और पैदाइशी लाइल्म[4] किसानों के लिए यह क़बूल करना बड़ा मुश्किल काम था कि उनकी ज़मीनों का मालिक जागीरदार, उनका मुहसिन[5] नहीं, बल्कि दुश्मन था। जब पहले-पहल उन्होंने यह बातें सुनना शुरू कीं, तो टैक्स न देना और ज़मींदार को उसके वाजिबी हिस्से से ज़्यादा अनाज न देने के ख़याल से उनके दिल में ख़ौफ़, और हिरास के जज़्बात पैदा हुए और उन्होंने उन लोगों को कि जो वह सबक़ देते थे, मुजरिम समझा, पर उसके साथ ही दिल के चोर को यह सारी बातें भा गईं, और छोटी-बड़ी इनसानी ख़ुशियों और आसाइशों[6] की चाह ने, जिनसे वे अब तक महरूम[7] रहे थे, कीड़ों की तरह उन लोगों को अक़ीदत[8] की नज़रों से देखा। लेकिन ज़िन्दगी का ख़ौफ़, जो उनकी नस-नस में बस चुका था, उन पर छाया रहा था और उन्होंने उन लोगों को अपने से अलग और मुख़्तलिफ़ इनसान समझा और उनके क़रीब आने से घबराते रहे।

लेकिन उन्हीं लोगों ने जब भूक और प्यास का इज़हार किया, उनके पास बैठकर खाना खाया और पानी पीकर अल्लाह का शुक्र अदा किया, उनके खेतों और खलियानों में बैठकर हुक़्क़ा पिया और उनसे बातें कीं, उनकी फ़सलों और मवेशियों की बीमारियों के बारे में पूछा और मशविरे दिए, उनके साथ ज़मीन पर सोकर रातें गुज़ारीं और सबके साथ मिलकर गाया, और किसानों की सादा, बे-फ़न क़िस्से-कहानियाँ सुनीं और महज़ूज़[9] हुए। उनके खेतों में छोटे-मोटे काम करने में मदद की और वह सब कुछ किया, जो हर किसान करता है, तो उनका उमूमीपन[10] सब पर वाज़ेह हो गया और उन्होंने नए सिरे से उनकी बातें सुनीं, जिन्होंने उनके दिलों में घर कर लिया और वे उठ खड़े

---

1. केन्द्र, 2. कार्यकर्ताओं, 3. असहयोग, 4. अज्ञानी, 5. उपकारी, 6. सुख-सुविधाओं, 7. वंचित, 8. श्रद्धा, 9. आनन्दित, 10. साधारणपन।

हुए। उनके साथ मुल्क के लाखों खेतों में झुककर काम करनेवाले करोड़ों किसानों ने सिर उठाया और कमर सीधी की और ग़रूर से भवों पर उँगली थपकाकर पसीना ख़ुश्क किया। यह हिन्दोस्तान का बदनसीब किसान था, जिसने अनगिनत मुसीबतें बग़ैर एहसास के झेली थीं। उस चेहरे पर अनगिनत लकीरें और गहरी थकन थी और उसका जिस्म मौसमों की शिद्दत में नंगा रह-रहकर लाल, नीला और सियाह पड़ चुका था। उसके हिस्से का अनाज ज़मींदारों के घरों में था, और उसकी औरतों के ज़ेवर महाजनों के पास गिरवी रखे थे। उसके हाथ ख़ाली थे और वह ग़रीब था। उसकी मिल्कियत में एक दराँती और एक कुदाल थी और उसके हाथों में अपनी मेहनत थी। उस पर जो मुसीबतें आईं, उनमें सभी कुछ शामिल था : ज़मींदार और महाजन से लेकर बाढ़, सूखा, हैज़ा, प्लेग, मीआदी बुख़ार, और मवेशियों की वबाओं तक। लेकिन हिन्दोस्तानी किसान में सदमे बरदाश्त करने की हैरतनाक क़ुव्वत होती है। हर थपेड़े के साथ वह ज़रा और झुक जाता और गुज़र जाने पर फिर घुटने सीधे कर लेता है। लेकिन उसकी कमर सीधी करने और सिर उठाने के लिए एक बाहरी ताक़त की ज़रूरत थी, जो बरसों की मज़्लूमियत[1] का तूफ़ान उसके अन्दर से निकालती और उसे उन मुसीबतों से आगाह करती, जो कि वह बग़ैर एहसास और इल्म के झेल रहा था। यह वह तबक़ा था, जो मुल्क की तीन-चौथाई आबादी पर मुश्तमिल था और जिस पर मुल्क की तमाम ख़ुराक और बन्दोबस्त का इनहिसार[2] था। आख़िर जब हालात और वाक़िआत के ज़ोर से वह बाहरी ताक़त मिल गई, तो वे उठ खड़े हुए। मज़्लूमियत का एहसास ग़ुस्से और नफ़रत की ताक़त में तब्दील हो गया। उन्होंने अपने आलामज़दा[3] मुक़द्दर को महसूस किया और यह बड़ी बात थी। मुल्क की तारीख़ में पहली बार किसान ने अपनी हैसियत बैल से ऊँची समझी।

और इससे बड़ी बात यह कि उन्हें अपनी ताक़त का इल्म हुआ। एक गाँव में, जहाँ कुछ महीने पहले सैलाब ने तबाही मचा दी थी, और अनाज का एक-एक दाना तक खेतों में न मिला था, नईम को वहाँ रहते हुए पाँच रोज़ हो चुके थे। गाँव में क़हत-साली[4] का आलम था और मुट्ठी भर अनाज पर किसानों का पूरा-पूरा ख़ानदान गुज़ारा कर रहा था। उस वक़्त ज़मींदार के कारिन्दे पिछली फ़सल की मुक़र्ररा मिक़दार[5] न देने पर टैक्स वसूल करने और दूसरी सूरत में क़र्ज़े के इन्दिराज पर काश्तकारों के अँगूठे का निशान हासिल करने के लिए आए। वे सब घोड़ों पर सवार थे और हर एक दरवाज़े पर रुककर ऊँची, दुरुश्त आवाज़ों में मुतालबा कर रहे थे। उनसे ज़रा फ़ासिले पर एक खलियान में गाँव के ज़्यादातर मर्द जमा थे। ये वे किसान थे, जिसके हलक़ से दो या दो से ज़्यादा दिन से ठोस ख़ुराक की कोई मिक़दार न उतरी थी। वे सब खलियान के नंगे फ़र्श पर बैठे थे, जहाँ से घास और भूसे का आख़िरी तिनका तक उठाकर मवेशियों को डाल दिया गया था। नईम दरमियान में बैठा हुक़्क़ा पी रहा था और चारों तरफ़ वे सब ख़ामोश बैठे इधर-उधर देख रहे थे। वे भूक से बेहाल थे और वे ऐसे परिन्दों की तरह थे, जो आँधी और बारिश के तूफ़ान में घिर गए हों।

जब चिल्लाते हुए किसानों की आवाज़ें क़रीब आने लगीं,तो किसानों के चेहरों पर सारे जिस्म का बचा-खुचा लहू इकट्ठा होने लगा। आहिस्ता-आहिस्ता आवाज़ें खलियान की दीवार के पास आ गईं। दीवार के पीछे से एक औरत के रोने की आवाज़ आई, जो कह रही थी, "मेरा ख़ाविन्द घर पर नहीं है। हमारे पास कुछ नहीं है।" जवाब में वही दुरुश्त आवाज़ें गालियाँ देती हुई सुनाई दीं और एक शख़्स अन्दर दाख़िल होकर किसी भारी चीज़ से दीवारें ठोंकने लगा, जिससे उस घर और खलियान की मुश्तरका दीवार हिलने लगी। मिली-जुली आवाज़ों का शोर बढ़ गया, "टसवे मत बहा। तेरा ख़ाविन्द कहाँ है ?" "हमारे पास कुछ नहीं है...देख लो। मेरा ख़ाविन्द घर पर नहीं..." "चोर, बहानेबाज़...कुतिया की औलाद !"

एक किसान खलियान में से उठकर बाहर निकल आया। उसके पीछे-पीछे सारे किसान

1. उत्पीड़न, 2. निर्भर, 3. संकटपूर्ण, 4. अकाल, 5. निर्धारित मात्रा।

निकलकर दरवाज़े पर जमा हो गए। नईम खलियान में अकेला रह गया।

"यहाँ क्या कर रहे हो ? कामचोर..." एक घुड़सवार ने चिल्लाकर पूछा।

वे सब ख़ामोश खड़े, उबलते हुए ग़ुस्से से उन्हें देखते रहे।

"तुम्हारे मुँह में ज़बान नहीं है ? या तुम्हारा कोई अज़ीज़ मर गया है।" घुड़सवार दोबारा चिल्लाया। फिर कोई जवाब न पाकर वह कूदकर घोड़े से उतरा और चाबुक हवा में लहराकर चिल्लाया, "फ़सल का हिसाब दो !"

"हमारे पास कुछ नहीं है," पहले किसान ने कहा।

"क्यों नहीं है ?" ग़ुस्से से अन्धा होकर वह दोबारा कूदकर घोड़े पर सवार हुआ और चाबुक को पूरी ताक़त से हवा में पटख़ाने लगा। घोड़ा पिछली टाँगों पर उठ खड़ा हुआ।

इन्तिहाई नफ़रत और ग़ुस्से से किसान एक पल के लिए गुँग रह गया और थके हुए घोड़े की तरह साँस लेने लगा। फिर उसके गले से तेज़, फटी हुई आवाज़ निकाली, "क्यों नहीं है ? मैं ? यह देखो," उसने पास बँधे हुए बैल के पहलू में चारों उँगलियाँ उतार दीं, जो उसकी नंगी पसलियों में ग़ायब हो गईं। बैल डरी हुई आवाज़ में डकराया, "और यह..." उसने अपने पेट पर से कपड़ा उठाया।

और यह एक ख़ौफ़नाक नज़्ज़ारा था, जिसका हाल वही लोग जानते हैं, जिन्होंने भूक के मारे हुए इनसानी जिस्म देखे हैं। अपनी पसलियों में उसकी उँगलियाँ एक-एक पोर तक उतर गईं।

"सुअर..." वह उसी फटी हुई आवाज़ में चीख़ा, "भाग जाओ...जाओ...हम आग लगा देंगे खलियानों को...घरों को...सब को..."

किसानों में जानवरों के गल्ले की-सी बिलबिलाहट हुई और वे ख़ाली हाथ ऊपर उठाकर बढ़े। सवारों ने ठिठककर देखा और ख़ामोशी से घोड़े मोड़कर वापस चले गए। उसके बाद कोई उस फ़सल का हिसाब वसूल करने के लिए न आया और उस छोटी-मोटी बग़ावत को जान-बूझकर नज़रअन्दाज़ कर दिया गया।

जब मौसम में ज़रा शिद्दत आई, तो अज़रा ने, जो पहले ही देहात और देहातियों से मेलजोल रखने से उकता चुकी थी, अपने ख़ाविन्द के साथ जाना छोड़ दिया और रौशनपुर में बैठकर अपने दिल में शहरी ज़िन्दगी की चमक-दमक और शुहरत की ख़्वाहिशात के ज़हर को पालने लगी। जब भी नईम फ़िर-फिराकर और अज़रा की कशिश से मजबूर होकर घर आता, तो वह उससे कहती, "तुम गाँव-गाँव फिरा करते हो। पहले अपने किसानों को ज़मीन बाँटो !" इस पर वह जवाब देता, "सब रौशन आग़ा के किसान हैं। मेरे कोई किसान नहीं हैं। मेरी ज़मीनों पर मेरा भाई और मामूँ का लड़का काम करते हैं।" वह चुप हो जाती, लेकिन वह दिल्ली न जा सकती थी, क्योंकि अपने ख़ाविन्द से उसे इश्क़ था और वह मुहब्बत की अध-मिटी ख़्वाहिशों को लेकर अकेली रहती हुई, ख़लिश और जज़्बे के साथ उसका इन्तिज़ार करती रहती।

नईम अब मुकम्मल तौर पर किसानों में गुम हो चुका था। इनफ़िरादी[1] तौर पर किसी से उसके तअल्लुक़ात न थे, क्योंकि एक आदमी की हैसियत से किसान मोटे दिमाग़ का, अनपढ़ और ग़ैर-दिलचस्प शख़्स होता है, और इस सतह पर वह नईम का दोस्त न हो सकता था, लेकिन इज्तिमाई[2] तौर पर नईम ने उन्हें भरोसे के क़ाबिल और वफ़ादार पाया। उनकी अधनंगी, गूँगी, नासमझ आँखोंवाली भीड़ पालतू जानवरों की तरह बर्ताव करती और देखनेवाले के दिल में रहम के जज़्बात पैदा करती थी। इज्तिमाई शक्ल में वे एक ऐसी फटनेवाली क़ुव्वत का यक़ीन दिलाते थे, जिस पर मुकम्मल भरोसा किया जा सकता था। उस वक़्त उनका नारा सिर्फ़ एक था, "स्वराज" इस एक लफ़्ज़ में, जो कांग्रेस ने उन्हें दिया था, उनकी ज़िन्दगी की आसाइशों[4] के तमाम मुब्हम और ग़ैर-मुब्हम[5] तसव्वुरात[6] शामिल थे। नईम और उसके साथियों ने यह बहुत बड़ा, तेज़ी से बदलता

1. व्यक्तिगत, 2. सामूहिक, 3. अज्ञानी, 4. सुख-सुविधाओं, 5. अस्पष्ट और स्पष्ट, 6. कल्पनाएँ।

हुआ मंज़र देखा और महसूस किया और ख़ुद को इसमें शरीक पाकर ख़ुश हुए।

दिसम्बर के शुरू में "प्रिंस ऑफ़ वेल्ज़" के हिन्दोस्तानी दौरे के सिलसिले में हुकूमत ने तमाम सियासी पार्टियों को दबाना शुरू किया। जब इंडियन नेशनल कांग्रेस ने दौरे का बाईकॉट करने का एलान किया, तो इसे ख़िलाफ़े-क़ानून पार्टी क़रार दे दिया गया। इस पर भी वालंटियरों के नामों की फ़ेहरिस्तें छपती रहीं, और आम हड़ताल और शाही ख़ानदान के एक मेम्बर के आने के मौक़े पर हुकूमत की तरफ़ से जारी किए गए तमाम अहकामात की ख़िलाफ़वर्ज़ी[1] और तक़रीबात[2] के बाईकॉट की हिदायत के इश्तिहार लोगों में बाँटे जाते रहे। नतीजे के तौर पर हुकूमत ने परेशान होकर बड़े पैमाने पर गिरफ़्तारियाँ शुरू कर दीं।

रौशनपुर में जिस घर के दरवाज़े की तख़्ती पर लिखा था : "यहाँ नईम और उसकी बीवी रहते हैं !" वहाँ पिछले चन्द रोज़ से अज़रा मुस्तक़िल बेचैनी के साथ नईम का इन्तिज़ार कर रही थी। प्रिंस ऑफ़ वेल्ज़ के आने की उसे ख़बर हो चुकी थी और उसे देखने, उसके साथ बातें करने और उसके पास बैठने की ख़्वाहिश ने उसके दिल में दुख की शक्ल इख़्तियार कर ली थी। एक लम्बी मुद्दत तक वह उस दुनिया से दूर रही थी, जिसमें वह पैदा हुई थी, और उस दुनिया की कशिश को महसूस करके वह रातों को सो भी न सकती थी। पिछली कुछ एक लम्बी बे-ख़्वाब रातों ने उसे बड़ा दुख दिया था, जिनमें उसे नईम के जिस्म की हसरत और दिल्ली की ज़िन्दगी से अपनी दूरी का शिद्दत के साथ एहसास हुआ था।

आख़िर एक दिन तीसरे पहर नईम आ पहुँचा। उस रात के लिए वह सब कुछ भूल गई।...उस रात उसने अपने आपको सिर्फ़ यह यक़ीन दिलाया कि उसका महबूब जिस्म उसके क़ब्ज़े में है और अब कहीं नहीं जाएगा। पौ फटने के वक़्त नईम को हिलता हुआ पाकर वह कसमसाई और उसके साथ लगकर बोली, "हम दिल्ली जाएँगे, नईम। प्रिंस ऑफ़ वेल्ज़ आ रहे हैं। चलेंगे ना ?"

नईम ने, जो हलकी-हलकी थकान, बिस्तर की गर्मी और अज़रा के जिस्म की लज़्ज़त से मदहोश था, सिर्फ़ इतना कहा, "हाँ...हाँ !"

लेकिन दूसरी रात को, जब वे सोने के लिए लेटे, तो अज़रा के ज़ेहन में सिर्फ़ एक सवाल था, जो उसने छूटते ही किया, "हम दिल्ली जाएँगे, नईम ?"

वह यों चौंका, जैसे उसने पहली दफ़ा सुना हो, "क्यों ?"

"प्रिंस ऑफ़ वेल्ज़..."

"ओह !..." उसने उदासी से कहा, "इससे पहले ही शायद मैं गिरफ़्तार हो जाऊँ !"

"क्यों ?"

"हमने बाईकॉट किया है उसके दौरे का !"

"नहीं !" अज़रा ने बच्चों की तरह कहा, "लेकिन नहीं...तुम गिरफ़्तार मत होना ! हम दिल्ली जाएँगे, ऐं ?"

"दिल्ली में कुछ भी न होगा। वह जहाँ जाएगा, वहाँ हड़तालें कराई जाएँगी। उसके ख़िलाफ़ मुज़ाहिरे[3] होंगे !"

"मगर क्यों ?" अज़रा सटपटा गई, "वह शाही ख़ानदान का इतना शरीफ़ इनसान है...उसे सियासत से क्या मतलब ?"

"यह पार्टी का फ़ैसला है, अज़रा ! मैं इसमें क्या कर सकता हूँ !" नईम ने आहिस्ता से उसे साथ लगाते हुए कहा, "और तुम...तुम तो सब कुछ समझती हो, फिर पूछ रही हो ?"

वह सीधी लेटी बे-ख़्वाब आँखों से छत को घूरती रही। यह भूलकर कि वह अपने ख़ाविन्द के साथ लेटी थी। उसका जिस्म ठंडा था और उसका ख़ाविन्द उसके ज़िहन से बिलकुल निकल चुका

1. आदेशों का उल्लंघन, 2. समारोह, 3. प्रदर्शन।

था। अज़रा के जिस्म को आहिस्ता-आहिस्ता दबाते हुए नईम पर नींद छाने लगी।

"लेकिन नईम," अचानक अज़रा ने कहा, "फिर हम मुज़ाहिरा करेंगे...कर सकते हैं ना ?"

नईम अँधेरे में आँखें फाड़-फाड़कर उसकी बात समझने की कोशिश करता रहा, "हाँ।"

"हाँ। हम मुज़ाहिरा करेंगे...तुम गिरफ़्तार मत होना...बस।" अज़रा ख़ुशी से बोली।

"लेकिन...रौशन आग़ा तुम्हें ऐसा करने देंगे ?"

"रौशन आग़ा...?" वह उसके होंठों पर उँगली फेरते हुए सोचने लगी, "हाँ...अररर हम कलकत्ते चले जाएँगे...तुम्हारे चचा के यहाँ...ठीक है, ठीक है ना ?"

"हाँ, ठीक तो है," नईम ने कमज़ोर आवाज़ में कहा।

"हम कलकत्ते जाएँगे...तुम गिरफ़्तार मत होना। मैं तुम्हारे साथ रहना चाहती हूँ...तुम गिरफ़्तार मत होना...अच्छा।"

वह ख़ामोश रहा।

"तुम गिरफ़्तार नहीं होओगे ना, नईम ?" अज़रा ने उसकी ठोड़ी पर होंठ रगड़ते हुए कहा, "वादा करो ना ?"

नईम ने उसकी पुश्त पर हाथ रखकर दबाया, "अच्छा..." उसने जल्दी से कहा और अपनी बीवी के इरादे से बचने की कोशिश में उसके जिस्म का सहारा तलाश करने लगा।

कलकत्ते के सदर बाज़ार के फ़ुटपाथ पर वे एक घंटे से खड़े थे। बाज़ार में मुकम्मल हड़ताल थी, लेकिन तमाशाइयों की छोटी-सी भीड़ बन्द दुकानों के आगे-आगे घूम रही थी। बाज़ार के बीचों-बीच रास्ता साफ़ था और दोनों तरफ़ ग़ैर-मुल्की और मुक़ामी पुलिस के आदमी खड़े थे। वे अपनी तक़रीबी वर्दियाँ पहने, मुस्तैदी से सीधी क़तारों में खड़े ख़ूबसूरत दिखाई दे रहे थे। सड़क पर अंग्रेज़ फ़ौजी और पुलिस अफ़सर मोटर-साइकिलों पर घूम रहे थे। प्रिंस ऑफ़ वेल्ज़ का जुलूस गवर्नमेंट हाउस से रवाना हो चुका था।

शहर के तमाम बाज़ारों और गलियों में मुकम्मल हड़ताल थी। दुकानों और घरों के दरवाज़े बन्द थे और उन पर शनाख़्ती तख़्तियाँ उलटी लटक रही थीं। लोगों की चाल बेमसरफ़ और निगाहें कोरी थीं और चालीस लाख की आबादीवाले, एशिया के इस सबसे बड़े शहर में दुनिया का तमाम कारोबार बन्द था। फ़ुटपाथ पर फिरनेवालों में इनसानों की निस्बत मवेशियों और कुत्तों की तादाद ज़्यादा थी, लेकिन शहरियों के अदम-तआवुन[1] के बावजूद फ़ौज और पुलिस की भारी तादाद की मदद से शहर पर तक़रीबी रँग लाने की कोशिश की गई थी। शहज़ादे के जुलूस के रास्ते में रंग-बिरंग की झंडियाँ और ग़ुब्बारे उड़ रहे थे और थोड़ी-थोड़ी दूर पर पाम के पत्तों और सरो के नक़ली पौदों से बड़े-बड़े दरवाज़े खड़े किए गए थे।

नईम एक मुद्दत के बाद इस शहर में वापस आया था, जो सारी दुनिया में उसका महबूब शहर था। जिस तरह दुनिया में ग़रीब से ग़रीब आदमी को अपने बचपन का घर महबूब होता है और जिस तरह उन ज़मानों को याद करते वक़्त उसके चेहरे पर वह दमकता हुआ हुस्न पैदा हो जाता है, जो लड़कपन की उम्र के साथ मख़सूस है, उसी तरह नईम ने उन सारे ज़मानों को याद किया, जो गुज़र चुके थे, जब वह दरमियाने क़द का गोरा-सा लड़का था, और रोज़ाना इस रास्ते से, जहाँ पर इस वक़्त वह अपनी बीवी के साथ खड़ा था, स्कूल को जाया करता था, और उसके पास रंग-बिरंग पेंसिलों का एक डिब्बा था, जो वह हमेशा अपने बैग में रखता और सिर्फ़ अपने ख़ास-ख़ास दोस्तों को दिखाया करता था। उनमें ख़ूबी यह थी कि जिस रंग की पेंसिल थी, उसी रंग की उससे लिखाई भी होती थी, और उसकी नेकर की जेब में बहुत अरसे तक शीशे की एक ख़ाली दवात रखी रही थी—जिसमें उसने तितलियों के चमकदार पर जमा किए हुए थे और रात

1. असहयोग।

को सोने से पहले, जिसे वह अँधेरे में जेब से निकालकर तकिए के नीचे रख लिया करता था, क्योंकि उसमें इस क़दर क़ीमती, इस क़दर ख़ूबसूरत तितलियों के पर थे, जो हाथ लगाने से टूटते थे। फिर एक रोज़ समन्दर के साहिल पर रेत में खेलते हुए वह दवात कहीं गुम हो गई, और हमेशा के लिए उसे याद रह गई थी, जैसे खोई हुई महबूब चीज़ें हमेशा याद रहती हैं। उसे तलाश करते हुए उसने रेत पर से बहुत सारे चमकदार पत्थर और सीपियाँ चुनकर जेबों में भर ली थीं, लेकिन शीशे की वह दवात हमेशा उसके ज़ेहन में चमकती रही और उसके ज़ेहन में और भी बहुत कुछ था, जिसमें उसके स्कूल के दोस्त, नीली आँखों और भूरे बालोंवाले गोल-मटोल बच्चे, और इस रास्ते पर यही लोग, गन्दुमी और सियाह रंग, मोटे जिस्म और ठिगने क़द के यह लोग शामिल थे, जो आज भी इस तरह उसके इर्द-गिर्द घूम रहे थे। उनके जिस्मों पर उसी तरह सफ़ेद धोतियाँ लिपटी थीं और उनके साथ उनके लम्बे सियाह बालों और ख़ूबसूरत आँखोंवाली औरतें थीं, जिनके चेहरे गन्दुमी थे। यह और इसी तरह की हज़ारों छोटी-छोटी चीज़ें। उन सबको याद करके नईम ने दिल में पुरानी यादों की ख़लिश महसूस की। वह ख़लिश, जो हर शख़्स, चाहे वह किसान हो, या शहरी, मुहज़्ज़ब[1] हो या ग़ैर-तहज़ीबयाफ़्ता[2], ज़िन्दगी में कभी-न-कभी ज़रूर महसूस करता है।

सड़क पर अब फ़ौजी गाड़ियों और मोटर-साइकिलों का आना-जाना तेज़ हो गया था और क़तार में खड़े बावर्दी जवानों को फ़ौजी सलामी की हिदायात देनेवाले कड़क-कड़ककर बोल रहे थे। अज़रा नईम का बाज़ू थामे उसके साथ लगकर खड़ी थी और उसका चेहरा ज़र्द था। उनके इर्द-गिर्द भीड़ कम होती जा रही थी।

''काग़ज़ तुम्हारी साड़ी में है ?'' नईम ने पूछा।

''हाँ !'' अज़रा ने उसकी तरफ़ देखकर हौले से कहा। उसकी आवाज़ से उसकी घबराहट ज़ाहिर थी। कुछ देर तक वह ख़ामोश खड़ी नईम के बाज़ू पर काँपती हुई उँगलियाँ बजाती और एक टाँग हिलाती रही। फिर मुँह उसके कान के क़रीब ले जाकर आहिस्ता से बोली, ''किस तरह करेंगे ?''

नईम ने जवाब देने के लिए मुँह खोला ही था कि एक मोटी-सी औरत उसके साथ टकरा गई। वह दरमियानी उम्र की औरत थी, और उन लोगों में से दिखाई देती थी, जो बहुत ज़्यादा जिस्मानी आराम और मोटापे की वजह से ख़ुश-शक्ल से बद-शक्ल हो जाते हैं। वह पटरी पर टहलते हुए एक बैल से बचने के लिए उससे टकरा गई थी, हालाँकि नईम को उस मज़बूत औरत के बैल से डरने की कोई वजह दिखाई न दी। उसने औरत का गिरा हुआ पल्लू ज़मीन पर से उठाकर उसके सिर पर रखा और पिलपिले कन्धे को आहिस्ता से थपथपाया। औरत, जो थके हुए घोड़े की तरह हाँफ रही थी, तशक्कुर[3] से हँसी और जल्दी से गुज़र गई। नईम ने कुछ पल तक उन लोगों के गुज़रने का इन्तिज़ार किया, जिनका रास्ता औरत और बैल ने रोक रखा था, फिर अज़रा की तरफ़ झुककर बोला, ''हमारे पीछे दुकान का बोर्ड मेरी पहुँच में है, उस पर लगाएँगे !''

''अच्छा !'' अज़रा ने पीछे देखे बग़ैर बेख़याली से कहा और एक टाँग हिलाती रही। नईम ने तश्वीश से उसकी तरफ़ देखा।

''गिरिफ़्तार तो उसी वक़्त कर लिए जाएँगे। देखना यह है कि कहीं मुज़ाहिरे से पहले ही न पकड़ लिए जाएँ।'' उसने कहा। अज़रा ने सुना या नहीं, इसका उसे पता न चल सका। वह उसी तरह सड़क की तरफ़ मुँह किए, कहीं भी न देखती हुई, ख़ामोश खड़ी रही।

उसके बाद वे ज़्यादातर ख़ामोश रहे। कभी-कभी छिछलती हुई नज़रों से एक दूसरे को देख लेते। उनके सामने से गुज़रती हुई शहरियों की एक टोली ठिठककर रुक गई। वे सबके सब ख़ालिस बंगाली बाशिन्दे थे और बड़ी फ़ुरसत से सड़क का नज़्ज़ारा करते और आहिस्ता-आहिस्ता बातें करते

1. सभ्य, 2. असभ्य, 3. कृतज्ञता।

हुए गुज़र रहे थे। मगर अब वे अचानक ख़ामोश होकर एक शख़्स को देख रहे थे, जो उनके दरमियान आकर रुक गया था। उसने सफ़ेद खद्दर का लिबास पहन रखा था, और चेहरे से पढ़ा-लिखा बंगाली मालूम होता था।

"क्या देख रहे हो ? यहाँ क्यों जमा हो ?" वह चारों तरफ़ देखकर दबी हुई गुस्सैली आवाज़ में बोला, "दुकानें इसलिए बन्द की थीं कि उनका इस्तक़्बाल करो ? जाओ...चले जाओ...एक-एक आदमी... ख़ुदा के लिए।"

देखते-देखते वह टोली तितर-बितर हो गई। शायद उसकी तरह के और भी कई लोग वहाँ पहुँच चुके थे, जो उन्होंने जगह-जगह पर खड़ी हुई और हरकत करती हुई कई टोलियों को बिखरते और ग़ायब होते हुए देखा। हर तरफ़ से लोग गलियों में और बाज़ार के मोड़ों पर नज़रों से ओझल होने लगे। उनके देखते-देखते पटरियाँ वीरान हो गईं और शहरी लिबास में इनसान की शक्ल कहीं-कहीं नज़र आने लगी। उनके इर्द-गिर्द कुत्ते और बैल फिरने लगे। कुछ वक़्त इसी वीरानी के आलम में गुज़र गया...फिर उन्होंने एक फ़ौजी लॉरी मोड़ पर से आती और ज़न से गुज़रती हुई देखी, जिसके पीछे वही खद्दर के लिबासवाला शख़्स और उसके तीन साथी बैठे थे। उनके ऊपर दो हथियारबन्द गोरे सिपाही खड़े थे। खद्दरपोश ख़ामोश, मुत्मइन नज़रों से बाहर को देख रहे थे। नईम ने हौले से मुस्कराकर अज़रा को देखा। वह लॉरी पर से नज़रें हटाकर सामने देख रही थी—शर्मिन्दा और नर्वस। उसी वक़्त बाज़ार के दूसरे सिरे से प्रिंस ऑफ़ वेल्ज़ का जुलूस दाख़िल हुआ।

कॉशन देनेवालों की कड़कदार आवाज़ें सड़क की दोनों तरफ़ के एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैल गईं। इसके साथ ही फ़ौजी जवान, जो खड़े सुस्ता रहे थे, हथियार बजा-बजाकर सीधे, मुस्तैद फ़ौजी अन्दाज़ में खड़े होते गए। फ़ौजी बैंड की जोशीली धुन आहिस्ता-आहिस्ता क़रीब आ रही थी...पा पपा...पपा पपा...क़रीब और क़रीब...पा पपा...पपा पा...फ़ौजी जवानों का जज़्बा-ए-सरफ़रोशी[1] फटने की हद तक पहुँच चुका था। ख़ून को गरमानेवाली धुन के असर में उनके सख़्त, अकड़े हुए जिस्मों में बेपनाह ताक़त आ गई थी और उनका जी बेइख़्तियार अपने बादशाह पर फ़िदा हो जाने को चाह रहा था—पा पपा...पपप पपा...पपा पपा...

नईम ने फुर्ती से मुड़कर लटकता हुआ बोर्ड उतारना चाहा, लेकिन वह कीलों में उलझ गया। टीन के दीवार के साथ टकराने की आवाज़ पैदा हुई। बड़ी घबराहट में धीमे-धीमे कोसते हुए नईम ने उसे ज़ोर से खींचा, जिससे उसकी रस्सी टूट गई और वह उसके हाथ में आ गया। वह अपनी जगह पर आ खड़ा हुआ। उसका चेहरा लाल हो रहा था। बैंड के शोर में फ़ौज या पुलिस का कोई आदमी उसकी तरफ़ मुतवज्जेह न हुआ। उसकी छिछलती हुई निगाह ऊपर उठ गई, जहाँ उसने देखा कि दुकानों के चौबारों की खिड़कियों के पट अधखुले थे और उनमें से सैकड़ों चमकती हुई आँखें चोरों की तरह झाँक रही थीं। नईम ने कुहनी अज़रा के पहलू में चुभोई, और दबी हुई आवाज़ में बोला, "यह लो...काग़ज़..."

वह चुप खड़ी नज़दीक आते हुए जुलूस को देखती रही।

"क्या देख रही हो ? काग़ज़ कहाँ है ?" नईम ने सटपटाकर उसके कान में कहा।

उसी तरफ़ देखते-देखते अज़रा धीमी, खोई हुई आवाज़ में बोली, "ऐं ?...बोर्ड उतार लिया ?"

"हाँ...यह है..."

बैंड बजाते हुए शानदार वर्दियोंवाले फ़ौजी उनके सामने से गुज़र रहे थे। उनके पीछे मोटर-साइकिल सवारों का दस्ता था। फिर चार घोड़ोंवाली सुनहरे रंग की रथ, जिसमें अंग्रेज़ शहज़ादा गवर्नर साहिब बहादुर के हमराह बैठा था, उनके सामने की सीट पर आगे की तरफ़ पुश्त किए दो अंग्रेज़ औरतें बैठी थीं। वेल्ज़ का शहज़ादा अपनी जगह पर सीधा बैठा था। ख़ूबसूरत, मतीन[2], और

1. प्राण न्योछावर करने की भावना, 2. गम्भीर।

बा-वक़ार, जैसा कि शाही ख़ानदान के एक फ़र्द को होना चाहिए, लेकिन मुतरद्दिद[1] ! उसके दोनों जानिब रथ के पायदानों पर दो ग्रांडील हिन्दोस्तानी बॉडीगार्ड सुर्ख़ और सुनहरी लिबास में मुजस्समों[2] की तरह सीधे साकित[3] खड़े थे। एक बड़ी-सी सुनहरी छतरी उस पर साया किए हुए थी।

अचानक शहज़ादे ने नज़रें ऊपर उठाईं, और देखता रहा। फिर वह ज़रा-सा गवर्नर की तरफ़ झुका। गवर्नर ने भी उसी तरफ़ देखा और उसके चेहरे पर सख़्त नागवारी के आसार पैदा हुए। उसने मुड़कर पीछे की तरफ़ निगाह दौड़ाई, फिर सामने देखा। सरो के नक़ली दरख़्तों से बने हुए तक़रीबी गेट की लकड़ी पर बिजली की रौशनी से लिखे हुए अल्फ़ाज़ बार-बार ज़ाहिर और ग़ायब हो रहे थे :

Tell Your Mother, We are Unhappy

गवर्नर पीछे की तरफ़ देखता तो हुरूफ़ ग़ायब हो जाते, सामने देखता तो उभर आते। यह पता न चल सका कि पुर-असरार[4] रौशनी कहाँ से आ रही है।

रथ उनके नज़दीक आता जा रहा था। गवर्नर अपनी शर्मिन्दगी छुपाने के लिए नागवारी से हँस रहा था और कोई बात कर रहा था। शहज़ादा उसकी तरफ़ ध्यान दिए बग़ैर गहरी मुतरद्दिद नज़रों से बराबर उन अल्फ़ाज़ को तके जा रहा था, जो लकड़ी के तख़्ते पर बन रहे थे और मिट रहे थे। इसके अलावा उसने अपने चेहरे पर फ़िक्रमन्दी की कोई अलामत ज़ाहिर न होने दी।

उनको अपने सामने पाकर आख़िर नईम ने क़दम बढ़ाया, "काग़ज़ निकालो !" उसने कहा।

वह शहज़ादे पर नज़रें जमाए खड़ी रही। नईम उसका बाज़ू हिलाकर नीची आवाज़ में चीख़ा, "निकालो।"

"ऐं ?" वह सोई-सोई आवाज़ में बोली, "तुमने बोर्ड उतार लिया ?"

"हाँ...हाँ..."

नईम ने बोर्ड उसके हाथ में ठूँस दिया, जो उसने हाथ लटकाए-लटकाए पकड़ लिया और शहज़ादे पर से नज़रें हटाए बग़ैर, सिहरज़दा-सी[5] खड़ी रही। उन्हें गुज़रते हुए देखकर नईम ने सीधे हाथ के पूरे ज़ोर से उसका बाज़ू मरोड़ा और साँप की तरह ख़ामोशी से फुंकारा, "जल्दी करो।"

"ओह !" अज़रा के मुँह से निकला और बहुत दुख से उसने नईम के कन्धे पर सिर रखकर आँखें बन्द कर लीं। बोर्ड पाँव में गिर पड़ा।

अब उनके सामने से घुड़सवार फ़ौज के जरनैल, अंग्रेज़ी सरकार के "नाइट", वालियाने-रियासत[6] और उनके बाद दर्जा-ब-दर्जा सरकारी अफ़सरों की एक लम्बी क़तार अपनी-अपनी जगह पर घोड़ों, रथों और मोटरों पर गुज़र रही थी। दोनों तरफ़ फ़ौजी जवान सलामी देते हुए यूँ खड़े थे, जैसे गाड़ दिए गए हों। प्रिंस ऑफ़ वेल्ज़ उस दरवाज़े के नीचे से गुज़र रहा था, जिस पर से रौशनी के अल्फ़ाज़ को हटाकर अगले दरवाज़े पर "प्रोजेक्ट" किया जा रहा था। अचानक प्रिंस के बराबरवाली गली से चन्द लोगों का एक गिरोह निकला। उनके जिस्म नंगे और सियाह थे, और सिर मुँडे हुए थे, जिन पर लिखा था :

Tell Your Mother, We are Hungry

कुछ देर में वह टोली ग़ायब हो गई। थोड़ी देर के बाद उसी गली में से कुछ गायें बाहर हाँक दी गईं, जो फ़ौजियों के दरमियान से सिर निकालकर खड़ी हो गईं। उनके गलों में भी बोर्ड लटक रहे थे, जिन पर लिखा था :

Tell Your Mother, We are Dry

उन्हें भी फ़ौरन तितर-बितर कर दिया गया।

नईम अज़रा को थामकर वापस चलने लगा। अज़रा का सिर अभी तक उसके कन्धे पर लगा

1. चिन्तित, 2. मूर्तियों, 3. निश्चल, 4. रहस्यमय, 5. मन्त्रमुग्ध-सी, 6. रियासत के स्वामी।

हुआ था। चलते-चलते नईम ने उसके आहिस्ता-आहिस्ता बड़बड़ाने की आवाज़ सुनी। वह उसकी तरफ़ देख रही थी। उसकी आँखों में गहरा दुख था। नईम को अपनी तरफ़ देखता पाकर उसने नज़रें चुरा लीं।

"कोई बात नहीं ! कोई बात नहीं !" नईम ने फ़िक्रमन्दी से उसे देखते हुए कहा।

उलटे लटकते हुए बोर्डों के नीचे-नीचे, एक दूसरे को थामे वे चलते गए।

21

1924 के गर्मी के मौसम में नईम को एक और बलाख़ेज़[1] तजुर्बा हुआ। वह वाक़िआ अपनी जगह पर एक नया तजुर्बा होने के अलावा उसकी ज़िन्दगी में एक अनोखे, अनजाने दौर का पेशख़ैमा[2] साबित हुआ। यह वाक़िआ उस रोज़ पेश आया, जब चार दिन की मुसलसल बारिश के बाद धूप निकली थी और नईम ने पहली बार किसी ऊँची जगह से तक़रीर की थी।

वह यादगार दिन था। उस रोज़ हवा में बरसातीं परोंवाले मकोड़े उड़ रहे थे और कीकरों पर झींगुर बोल रहे थे। झींगुर जो एक साँस में इतने ज़ोर से चिल्लाए जाता है कि कहीं पर दिखाई नहीं देता। पेड़ों पर झींगुर और बरसाती नालों के किनारे के मेंडकों के शोर से कान पड़ी आवाज़ सुनाई न देती थी, और गाँव के बच्चे और कामचोर नौजवान सुतली के जाल कन्धों पर रखकर गप्पें मारते हुए मछलियाँ पकड़ने को चल दिए थे और अपनी तफ़रीह के हक़ में यह दलील दे रहे थे कि चार रोज़ से मुस्तक़िल[3] अन्दर बैठ-बैठकर वे औरतें बनते जा रहे थे, और मछलियाँ, मकोड़े खा-खाकर मोटे होते जा रहे थे। एक लिहाज़ से यह बात कुछ ऐसी ग़लत भी न थी।

कुछ दिन पहले नईम को जाटनगर में जलसा करने के सिलसिले में दिल्ली से हिदायात मिली थीं। चुनाँचे बारिश से भीगे हुए चारों खूँट में उसने अपने घुड़सवार दौड़ा दिए और ख़ुद भी रोज़ाना फ़ौजी बरसाती ओढ़कर जाटनगर जाने लगा। जाटनगर आस-पास के दो सौ गाँव में सबसे बड़ा गाँव था और अनाज और कपास की बड़ी भारी मंडी थी। उन्होंने मंडी के अहाते में जलसा करने का फ़ैसला किया। बारिश से बचाव की ख़ातिर कई सौ गज़ टाट जोड़कर बड़ी-सी तिरपाल बनाई गई, जिसे मोटे-मोटे रस्सों की मदद से बाँधकर साए का इन्तिज़ाम किया गया, मगर क़िस्मत से उस रोज़ धूप निकल आई और कीकरों पर झींगुर एक ताल से बोलने लगे।

सुबह दस बजे नईम गाँव में दाख़िल हुआ, तो पुलिसवालों को देखकर उसे कुछ इत्मीनान हुआ। इतने दिनों से जलसे की ख़बर उड़ने के बावजूद जाटनगर में पुलिस का कोई आदमी न देखकर वह बेचैन हो रहे थे। यह जलसे-जुलूसों की मुमानअत[4] का इलाक़ा था। उनके दस में से नौ जलसे क़ानून के ख़िलाफ़ होते थे और वे रोज़-रोज़ की पुलिस की मौजूदगी के इस हद तक आदी हो चुके थे कि इस मौक़े पर उनकी ग़ैर-मौजूदगी उन्हें खटकने लगी थी।

आख़िर उस रोज़ उन्हें मौजूद पाकर सबने इत्मीनान का साँस लिया। वे सब हिन्दोस्तानी पुलिस के लट्ठबन्द जवान थे और उनमें से सिवाय चन्द अफ़सरों के कोई भी हथियारबन्द न था। इन जलसों में, जो कि क़ानून के ख़िलाफ़ होते, बलवे का ज़्यादा इम्कान न होता, जिसकी वजह से हथियारबन्द गार्ड की ज़रूरत न समझी जाती और ज़्यादा-से-ज़्यादा लाठीचार्ज की नौबत आती।

लाठियाँ पटक-पटककर अक्खड़ अन्दाज़ में चलते और किसानों के दरवाज़ों पर खड़े होकर लस्सी पीते हुए पुलिस के जवानों के पास से गुज़रकर नईम मुक़र्ररा जगह पर पहुँचा, तो उसने देखा कि पुलिस की भारी तादाद ने मंडी को चारों तरफ़ से घेरे में ले रखा था। मंडी में दाख़िल होने का वाहिद रास्ता लकड़ी के लम्बे-लम्बे तख़्ते, जो रस्सों की मदद से एक दूसरे से बँधे थे, खड़े करके

1. कटु, 2. भूमिका, 3. निरन्तर, 4. निषेध।

बन्द कर दिया गया था। उसके आगे पहरा लगा था।

बड़ी देर तक इधर-उधर से अन्दर घुसने की नाकाम कोशिश करने के बाद नईम और उसके साथियों को लकड़ी के तख़्तों के सामने धरना मारकर बैठ रहने के सिवा कोई चारा नज़र न आया। चुनाँचे उन्होंने ऐसा ही किया। ज़मीन गीली और ऊँची थी, और जगह-जगह पर बारिश का पानी खड़ा था। ज्यूँ-ज्यूँ सूरज ऊपर आता जा रहा था, धूप तेज़ होती जा रही थी, और नम ज़मीन से भाप उठ-उठकर उमस पैदा कर रही थी। यह बरसात का मख़सूस, तकलीफ़देह मौसम था। इसके साथ ही जलसे में आनेवालों की तादाद में इज़ाफ़ा होता जा रहा था। जब तक सूरज सिर पर आया, मंडी के सामने का मैदान और उससे आगे का बाज़ार का एक हिस्सा खचाखच भर चुका था। यह जाटनगर के अलावा इर्द-गिर्द के कई गाँवों के लोग थे, जो जलसे की ख़बर पाकर पहुँचे थे। उस बौला देनेवाले मौसम में इन्तिज़ार करते-करते जब कुछ बन न आई, तो उन्होंने शोर मचाना शुरू कर दिया।

सबसे आगे नईम और उसके साथ कुछ लोग, जो जलसे में बोलने के लिए दिल्ली से आए थे, ज़मीन पर टाँगें फैलाए बैठे थे। थोड़ी-थोड़ी देर के बाद वे पीछे मुड़कर बेताब होती हुई भीड़ को देख लेते। उनसे कुछ क़दम के फ़ासिले पर पुलिस के सिपाही लापरवाही से लाठियाँ पटकाते हुए चल रहे थे। उनके पीछे लकड़ी के वे तख़्ते थे, जिनकी हिफ़ाज़त का ज़िम्मा उनके सिर था, लेकिन अब वे लोगों के ख़ामोश एहतिजाज[1] से इस हद तक उकता चुके थे कि तख़्तों के दरवाज़े को छोड़कर दूर-दूर तक चले जाते। कभी बैठनेवालों के पास आकर मसनूई ग़ुस्से के साथ उन्हें धमकाते और कभी उनका ठट्ठा उड़ाने लगते। कुछ देर पहले नईम की तवज्जुह उसके एक साथी ने एक तख़्ते की तरफ़ दिलाई थी, जो किसी वजह से टूट चुका था और एक पतले-से रस्से के सहारे लटक रहा था। रास्ता, जो तख़्ते के टूटने से बन गया था, एक आदमी के गुज़रने के लिए काफ़ी था।

वे बैठे इन्तिज़ार करते रहे और ज़मीन की गर्म भाप उनके सिरों में बढ़ती रही और बरसात की कड़ी धूप उनके भेजे पिघलाती रही और लम्बे, बेकार इन्तिज़ार ने उनके आसाब को झँझोड़कर रख दिया। नईम ने सिर उठाकर देखा। वह सिपाही, जिसने अभी-अभी उन्हें अपनी माँओं के साथ जाकर सोने का मशविरा दिया था, पन्द्रह गज़ के फ़ासिले पर परे जाता हुआ दिखाई दे रहा था। उसका कोई और साथी भी दस-दस गज़ के फ़ासिले पर नज़र न आ रहा था। अचानक नईम ने हवा में एक छलाँग लगाई और टूटे हुए तख़्ते के रास्ते से साफ़ गुज़र गया। साथ ही उसके तीन-चार साथियों ने छलाँग लगाई और उसी रास्ते से अन्दर दाख़िल हो गए। तक़रीबन उसी वक़्त सारे लोग बिलबिलाकर उठ खड़े हुए और दरवाज़े पर टूट पड़े। तीन-चार तख़्ते एक साथ टूट गए और उछलते-कूदते, रेलते-पेलते हुए मज़बूत, मेहनती किसानों की भीड़ एक दीवार की तरह हरकत करती हुई गुज़रने लगी। यह सारा वाक़िआ इस क़दर तेज़ी से और मैकानिकी तौर पर अमल में आया कि कुछ पलों के लिए पुलिस के सिपाही हैरान-परेशान अपनी-अपनी जगहों पर खड़े के खड़े रह गए। ऐसा पहले कभी देखने में न आया था। पहले कभी अगर किसी जगह रोक लगा दी जाती, तो लोग जहाँ इकट्ठे हो जाते, वहीं पर जलसा कर लिया करते, लेकिन यह तो साफ़-साफ़ सिविल-नाफ़रमानी थी। इससे पहले कि वे कुछ करते, पचास के लगभग किसान अन्दर पहुँच चुके थे। देखते-देखते लकड़ी के तख़्तों की बाड़ धड़ाम से ज़मीन पर आ गिरी और चन्द लोग उसके नीचे आकर ज़ख़्मी हो गए। अब पुलिस की बरसती हुई लाठियों के नीचे लोग दौड़ते हुए मंडी के अहाते में दाख़िल होने लगे।

नईम भागता हुआ कपास की गीली गाँठों के एक ढेर पर जा चढ़ा। सबसे ऊँची गाँठ पर खड़े

1. विरोध।

होकर उसने लोगों को ख़ामोश कराने के लिए सीधा बाज़ू उठाया। आगे-आगे के लोग ख़ामोश होकर क़रीब सरक आए और आँखें उठाकर उसकी तरफ़ देखने लगे। पीछे की तरफ़ लोग अभी तक दौड़-भाग रहे थे और पुलिस की लाठियाँ बरस रही थीं। नईम ने बोलना शुरू किया।

उसका जलसे में तक़रीर करने का कोई प्रोग्राम न था। इस काम के लिए दिल्ली के कुछ लोग आए थे, लेकिन उस वक़्त वे भीड़ में गुम हो चुके थे और नईम ऊपर जा चढ़ा था। उसके पास कहने को कोई ख़ास बात न थी, फिर भी उसने बोलना शुरू कर दिया और कई मिनट तक बे-थकान बोलता चला गया। उसका एक बाज़ू मुस्तक़िल हवा में उठा हुआ था। उस वक़्त उसे अजीब-सा एहसास हुआ। उसे यह ख़याल भी न रहा कि कब उसने बोलना शुरू किया था और कब ख़त्म किया, या यह कि उसने क्या किया...बाद में उसे सिर्फ़ इतना याद रहा कि वह उनसे अमन से रहने के सिलसिले में कुछ कह रहा था, लेकिन बेख़ुदी के उस पल में उसे किसी बात की ख़बर न रही। उसने एक अजीब कैफ़ियत अपने ऊपर तारी होती हुई महसूस की। उस कैफ़ियत के दौरान सिर्फ़ उसकी आँखें और उसका एहसास काम करता रहा। उसके सामने, बल्कि उसके नीचे, फैलती-सिकुड़ती, उठती-बैठती, और फटती, दहकती हुई भीड़, भीड़ न रही थी या आदमियों की भीड़ का ख़याल ग़ायब हो चुका था। अब यह महज़ एक ठाठें मारता हुआ समन्दर था, जो अपनी ही ताक़त के तहत फैल और सिकुड़, उठ और बैठ रहा था और जिसकी कमान उसके हाथ में थी, वह जो सबसे ऊपर अकेला खड़ा था, अकेला और ताक़तवर और छाया हुआ। आज़ादी के उस पल में अपने आपसे, उस सारे मंज़र से अलग होकर उसने यह सब देखा और महसूस किया, और उसे अपने आप पर एक ऐसी हस्ती-ए-मुतलक़[1] का गुमान हुआ। उस ठोस, उबलते हुए लावे के सैलाब की तमामतर नक़्लो-हरकत[2], जिसके क़ब्ज़े में थी, अपने उस इख़्तियार को अमल में लाने के लिए उसने बाज़ू से हवा में चन्द बेतुके इशारे भी किए। उस अनोखी कैफ़ियत को अल्फ़ाज़ में बयान करना तक़रीबन नामुमकिन है, लेकिन यह उन कुछ निजी तजुर्बों में से एक था, जिनसे कि उम्र भर उसे कभी गुज़रना पड़ा था।

जब वह उसे गिरफ़्तार करने के लिए आए, तो वह बाज़ू सिर से ऊपर उठाए, अधखुली, ख़ामोश आँखों से सामने देख रहा था। उन्होंने झटके से उसका बाज़ू नीचे किया और जब वे उसके दोनों हाथों में हथकड़ियाँ पहनाने लगे, तो हैरान रह गए।

उसी गर्मी के मौसम की एक चमकदार सुबह को रौशनपुर के बाहर बहुत-से बच्चे कंकरों की गोलियाँ खेल रहे थे कि अचानक उनमें फूट पड़ गई और वे लड़-भिड़कर तितर-बितर हो गए। लड़ाई की कोई ख़ास वजह न थी। कंकरों के लेन-देन पर होगी या धक्कमपेल में किसी के चोट आ गई और उसे ग़ुस्सा आ गया। बहरहाल एक मुख़्तसर-सी धींगामुश्ती के बाद सबने अपने-अपने क़ीमती पत्थर क़ब्ज़े में किए और छोटी-छोटी टोलियों में बँटकर इधर-उधर बिखर गए। देखते-ही-देखते वह जगह, जहाँ कुछ देर पहले चीख़ो-पुकार मची थी, वीरान हो गई। सिर्फ़ एक लड़का, जिसे कुछ लड़कों ने पकड़कर मारा-पीटा था, बैठा रोता रहा। आहिस्ता-आहिस्ता उसने रोना बन्द कर दिया और ग़ुस्से में भरा उँगली से मिट्टी में लकीरें खींचता रहा। लकीरें खींचते-खींचते उसे कुछ कंकर दिखाई दिए, जो मिट्टी में छुपे थे, और गड़बड़ में किसी के रह गए थे, उसने उन्हें उठाकर हथेली पर रखा। फूँक मारकर धूल उड़ाई। फिर कुरते के दामन से रगड़कर साफ़ किया और उन पर नज़रें जमाकर हँसने लगा। वे बड़े ख़ूबसूरत पत्थर थे, शीशे की तरह चमकदार और दूध की तरह सफ़ेद। लड़का उन्हें जेब में डालकर उठ खड़ा हुआ और धूल से अटा हुआ कुरता झाड़कर ख़ुशी-ख़ुशी एक तरफ़ को चल दिया।

इससे पहले बड़े लड़कों की जो भीड़ बिखरी थी, उसमें अली भी था। उसने आयशा के कन्धे

1. निरंकुश शक्ति, 2. गतिविधि।

पर हाथ रखा और घर की जानिब चल पड़ा। आयशा बहुत-से पीपल के पत्ते जेब में ठूँसे हुए थी और एक-एक पत्ता निकालकर उनकी पिपनियाँ बनाती जा रही थी, लेकिन पत्ते ख़स्ता और ख़ुश्क थे और गोलाने की कोशिश में टूटे जा रहे थे। झल्ला-झल्लाकर एक के बाद एक पत्ता फेंकते हुए वह हाथ की पुश्त से मुस्तक़िल बालों की लट को पीछे किए जा रही थी, जो हवा के ज़ोर से बार-बार उसकी आँखों पर आ गिरती थी। जब उसकी जेब का उभार नुमायाँ तौर पर कम होने लगा, तो उसे नुक़सान का डर हुआ और वह देर-देर के बाद पत्ते निकालने लगी। हर पत्ता निकालने के बाद वह हाथ की कश्ती-सी बनाकर जेब पर रखती और पत्तों की मिक़दार को जाँचती और हर बार घटती हुई तादाद का ख़याल करके उसका दिल दहल जाता। पत्तों के ख़त्म होने तक वह सिर्फ़ एक बार पिपनी की आवाज़ निकाल सकी थी और वह भी चन्द सैकेंड के लिए। फिर पत्ता तड़ख़ गया और हवा पहलू में से सरकने लगी। रुआँसी-सी होकर उसने आख़िरी पत्ता मुँह में डालकर चबाया और सब्ज़ रंग का थूक उगला। फिर वह उदास-सी होकर चलने लगी। अली एक दूसरे लड़के के साथ जो उनके साथ चला आ रहा था, बातें करने में लगा हुआ था।

"सुलेमान ने जिस बँटे पर झगड़ा किया है, उसका मैं उलटे हाथ से निशाना लगा सकता था।" अली कह रहा था।

अली की बात सुनकर दूसरा लड़का, जो छोटी उम्र का, मगर बहुत बड़े सिर और चेहरे का मालिक था, घमंड में आ गया और नथुने फैलाकर शेख़ी से बोला, "सुलेमान ? सुलेमान तो रोनेवाला है रोनेवाला...मैं उस बँटे का उलटे पाँव से निशाना कर सकता था। वह रोता है और झगड़ा करता है। जब धमकाओ, तो चूहा बन जाता है। तुमने देखा ?" बात ख़त्म करके वह घमंड से हँसा।

"मैं उसे जानता हूँ। घुड़दौड़ पर हमारी घोड़ी उसके पास से गुज़री थी, तो उसकी हवा से ही वह गिर पड़ा था और उसका पेशाब वहीं पर निकल गया था।" बात को ख़त्म करके अली ने भी अपने दोस्त के अन्दाज़ में घमंड से हँसने की कोशिश की, क्योंकि यही एक चीज़ थी, जिसकी वजह से वह उस बड़े सिरवाले बदसूरत लड़के को पसन्द करता था और उसे यह एहसास था कि इस बात में वह कभी ढंग से उसकी नक़ल न कर सकता था।

"तुम्हारी घोड़ी अच्छी थी। बेचारी बुख़ार से मर गई।" दूसरे लड़के ने कहा।

"लेकिन वह घास को सूँघती भी न थी, बस सब्ज़ चारा खाती थी।" अली ने कहा।

"सब्ज़ चारा पेट लटका देता है।"

"उसकी क़िस्मत ही ख़राब थी। जबसे मरी है, हमारा चारा ख़ूब हो रहा है।"

"यह चारे का मौसम है। काट-काटकर हाथों में गिल्टियाँ पड़ गई हैं।" उसने छोटा-सा सख़्त हाथ फैलाया, जिसकी उँगलियाँ तड़ख़ी हुई थीं।

"गिल्टियाँ अच्छी होती हैं। तुम घोड़ी को ख़ूब ठोंक सकते हो।" अली फिर उसी पसन्दीदा अन्दाज़ में हँसा।

"हाँ ! गिल्टियाँ अच्छी होती हैं। एक बार पड़ जाएँ, तो फिर नहीं टूटतीं।" उसी तरह रास्ता चलते हुए वे बच्चों के शेख़ीख़ोरे अन्दाज़ में बातें करते रहे। गाँव के बाहर एक टूटी-फूटी दीवारवाले मकान के क़रीब पहुँचकर दूसरे लड़के की चाल धीमी पड़ गई।

"मेरा घर आ गया है।" उसने कहा। फिर कोई और बात किए बग़ैर वह अपने-अपने रास्ते पर मुड़ गए।

जब वे दोनों अकेले रह गए, तो आयशा ने अली की आस्तीन पकड़कर खींची, "अली... अली..."

"हुँह !" वह अक्खड़ों की तरह बोला।

"हमें पीपल पर से पत्ते उतार दो।" लड़की ने गिड़गिड़ाकर कहा।

"क्यों ?"

"पिपनियाँ बनाएँगे !"

"कहाँ है ?" अली उस तरफ़ से, जिधर पीपल था, नज़र हटाकर दूसरी तरफ़ देखने लगा।

"वह है। वह है..." आयशा ने उसका बाज़ू खींचा, कन्धा खींचा, फिर ठोड़ी से पकड़कर चेहरा घुमाया और उँगली नाक की सीध में करके दरख़्त दिखाया, "वह है !"

"अच्छ...च् च् आ ?" वह आँखें सिकोड़कर देखते हुए बोला, यूँ जैसे बड़ी दिक़्क़त से पीपल को देखने में कामयाब हुआ हो।

पेड़ों पर चढ़ने का शौक़ीन था, लेकिन उस वक़्त आयशा को सता रहा था।

"चलो..." उसने आहिस्ता, लेकिन बाइख़्तियार लहजे में कहा।

पीपल से ज़रा फ़ासिले पर उसने बाज़ू आयशा के कन्धे पर से उठा लिया। दरख़्त की जड़ के पास पहुँचकर रुक गया और ऊँची-ऊँची नज़रों से इधर-उधर देखने लगा।

"यह...यहाँ से चढ़ो," आयशा ने तने के बड़े-बड़े सूराख़ों में इशारा करते हुए बताया। वह चुपका खड़ा रहा। लड़की तने पर हाथ रखकर तअज्जुब से उसे देखने लगी।

"तुम रावल के साथ क्यों खेलती हो ?" अली ने सख़्ती से पूछा।

"रावल ? वह भी मेरे साथ खेलता है !"

"हुँह !" उसने ग़ुस्से और तन्ज़ की मिली-जुली आवाज़ नाक में से निकाली, "वह इस पर नहीं चढ़ सकता !"

"अच्छा !" आयशा आँखें फैलाकर बोली, "पता नहीं !"

"पता नहीं, क्या हुआ ?" वह चीख़ा, "वह इस पर नहीं चढ़ सकता...बस !"

कुछ देर तक वह ग़ुस्से से आयशा की तरफ़ देखता रहा। फिर सामने से दरख़्त पर चढ़ना शुरू कर दिया, जहाँ पर कि चढ़ने का कोई रास्ता न था।

नन्ही-सी लड़की सहमी हुई ख़ामोश खड़ी उसकी बार-बार नाकाम होती हुई कोशिशों को देखती रही, फिर उससे न रहा गया, और तने के सूराख़ों की तरफ़ इशारा करके मरी हुई आवाज़ में बोली, "यह...इधर से चढ़ो !"

"तुम मेरे काम में दख़ल न दो," अली झिड़ककर बोला और पीपल के हाथी जैसे तने के साथ मुक़ाबला करता रहा। आख़िर वह ऊपर चढ़ने में कामयाब हो गया। बन्दर की तरह एक से दूसरी शाख़ पर फलाँगते हुए उसने सूखे-सूखे पत्ते नीचे फेंकने शुरू किए।

"हरे-हरे पत्ते फेंको," आयशा ने कहा।

"हरे-हरे पत्ते नहीं हैं..." वह बे-एतिनाई[1] से बोला।

आयशा भरी हुई खड़ी ख़ामोशी से गिरते हुए ख़ुश्क पत्तों को देखती रही। अली एक शाख़ को घोड़ी बनाकर बैठ गया।

"यहाँ कहीं रावल आ सकता है ?" उसने पूछा।

"नहीं !" सहमी हुई आवाज़ में नीचे से आयशा ने जवाब दिया। इस पर वह ख़ुश हो गया, लेकिन अपनी ख़ुशी का खुले-बन्दों इज़हार करने के बजाय चालाकी से होंठों में मुस्कराता हुआ शाख़ों में फिरने लगा। सिर्फ़ उसने इतना कहा, "यहाँ हरे पत्ते भी हैं !"

"आयशा दौड़-दौड़कर हरे और नर्म पत्ते उठाने लगी। जब उसकी जेब भर गई, तो ख़ुशी से मुँह उठाकर बोली, "अब आ जाओ !"

पीपल की फैली हुई जड़ों पर बैठकर वे दोनों पिपनियाँ बनाते और बजाते रहे। सूरज के उठने के साथ-साथ हवा गर्म होती जा रही थी और जेठ की कड़ी धूप खेतों और फ़सलों पर फैलती जा

1. उपेक्षा।

रही थी, यहाँ तक कि मवेशी और किसान हाँफते हुए जाकर साए में बैठ गए और गाँव की ज़मीनों और गलियों में एक आम देहाती वहशत फैल गई। मेहनत और गर्मी के इस वक़्त में अली और आयशा पीपल की जड़ों पर बैठे पिपनियाँ बजा रहे थे और गप्पें मार रहे थे। पीपल का साया घना और ठंडा था और गर्मी के मारे हुए कौए और चिड़ियाँ पत्तों में आकर बैठ गए थे और इधर-उधर बीटें कर रहे थे। दोनों बच्चों के क़रीब से ठंडे कुएँ के पानी में नाली हलके शोर के साथ बह रही थी। ऊपर से एक-एक दो-दो करके चिड़ियाँ आतीं, पानी में डुबकियाँ लगातीं और पर झटककर वापस चली जातीं। उनके परों से पानी की नन्ही-नन्ही बूँदें उड़तीं और हवा के ज़ोर से बच्चों के गालों और आँखों पर आ गिरतीं।

जब पत्ते ख़त्म हो गए, तो अली ने जेब में से पत्थर निकाले और पीपल के तने पर रगड़ने लगा।

"पीपल की छाल से बँटे चमक जाते हैं।" उसने कहा।

आयशा ने भी अपने कंकर निकालकर तने पर घिसने शुरू कर दिए। बीच-बीच में वह छोटी-छोटी बेतुकी बातें करते और ज़ोर-शोर से अपने-अपने पत्थर दरख़्त पर घिसते जा रहे थे। अली ने अपना पत्थर, हथेली पर रखकर उस पर थूका और कुरते से साफ़ किया।

"मेरा चमक गया है !"

आयशा ने भी उसकी नक़ल में अपना पत्थर थूक से साफ़ किया और दिखाकर बोली, "मेरा भी चमक गया है !"

अली चिढ़ गया और घुटनों के बल औंधा होकर उसे दरख़्त की जड़ पर ज़ोर-ज़ोर से घिसने लगा। लड़की ने भी वही तरीक़ा इख़्तियार किया। दोनों के चेहरे सुर्ख़ हो रहे थे।

फिर अली उठकर बैठ गया, "मेरा ज़्यादा चमकदार है।" उसने कहा।

"मेरा भी चमकदार है !"

"मेरा ज़्यादा है !"

"नहीं, मेरा !"

"मैंने पत्ते उतारकर नहीं दिए थे ?"

आयशा डरकर चुपकी हो गई। अली ग़ुस्से में भरा आहिस्ता-आहिस्ता पत्थर जड़ पर रगड़ता रहा।

"अगर ज़्यादा बातें करोगी, तो गाल की चुटकी भर लूँगा।" फिर उसने कहा और साथ ही उसके गाल की चुटकी भर ली। आयशा का मुँह लाल हो गया। उसने ग़ुस्सैली नज़रों से अली को देखा। ग़ुस्से के झटके से बालों की एक लट उसके भभूका चेहरे पर आ गिरी थी और वह बिफरी हुई उसे देखे जा रही थी, देखे जा रही थी। अली खिसियाना हो गया। बोला, "क्यों ? रावल ने तुम्हारे गाल की चुटकी नहीं ली थी कल ? मैंने देखा था।"

अचानक आयशा रोने लगी। अली के हाथ-पाँव फूल गए। लड़की की आवाज़ ऊँची होती जा रही थी।

"अच्छा...अब कुछ न कहूँगा। अब चुप हो जाओ..." उसने मुआमला रफ़ा-दफ़ा करने की कोशिश की, लेकिन वह रोती रही।

"अच्छा...तुम रावल के साथ जाकर खेलो बेशक ! जाओ..." उसने कहा। वह उसी तरह रूँ-रूँ करती रहीं।

"अच्छा, यह लो !" अली ने कंकर आगे बढ़ाया। उसकी चमक देखकर आयशा ललचा गई और आँसुओं से भीगा हुआ हाथ बढ़ाकर उसे पकड़ लिया, लेकिन रोना बन्द न किया।

"यह लो...मेरे पास और भी हैं। सब तुम ले लो..." अली ने सारे ख़ूबसूरत पत्थर उसके हवाले

कर दिए। आहिस्ता-आहिस्ता वह ख़ामोश हो गई। फिर वे उठ खड़े हुए। अली ने बाज़ू उसके कन्धे पर रखा और वे घर की तरफ़ चल पड़े।

अभी वे घर से ज़रा फ़ासिले पर थे कि अली ने बड़ी माँ को बाहर निकलते हुए देखा। वह दूसरी गली में ग़ायब हो गई, तो अली आयशा को खींचता हुआ भागने लगा। मवेशियों के अहाते में दाख़िल होकर वह बोला, "तुम यहाँ ठहरो ! मैं अभी आता हूँ !"

"कहाँ जा रहे हो ?"

"मुझे भूक लगी है। तुम यहाँ ठहरो !"

दबे पाँव आँगन में दाख़िल होकर उसने देखा कि गर्मियों की दोपहर तप रही थी और उसका जादू, जो ख़ामोशी और वीराने का जादू होता है, इनसान और हैवान पर यकसाँ चल चुका था। छोटी माँ के कमरे का किवाड़ खुला था और वह आयशा की माँ के साथ ज़मीन पर सोई हुई दिखाई दे रही थी। आँगन के कोने में जो ज़रा-साया था, वहाँ गाय और उसका बछड़ा आँखें मीचे बैठे थे और दोनों के सिरों पर एक-एक कौआ बैठा ख़ामोशी से ज़बान निकाले हाँफ रहा था। खुली और वीरान जगहों का एक ख़ामोश जादू था, जिसे महसूस करके वह दिल में ख़ुश हुआ। आँगन को पार करके वह बड़ी अम्माँ के बावर्चीख़ाने की तरफ़ बढ़ा। कोने में कच्ची दीवारों का डरबा-सा बना था। उसने आहिस्ता से उसका किवाड़ हटाया और अन्दर घुस गया। डरबे की चारों दीवारों में सूराख़ थे और धुआँ, जो सारे में भरा था, सूराख़ों के रास्ते आहिस्ता-आहिस्ता बाहर निकल रहा था। दरमियान में उपलों की आग पर दूध की भरी हुई हाँडी रखी थी। दूध पर सुर्ख़ रंग की मोटी मलाई की तह जम चुकी थी। अली धुएँ से अन्धा हो रहा था, लेकिन उसने हाथ बढ़ाकर जानी-पहचानी जगह पर से एक लम्बा-सा नाड़ उठाया और फूँक मारकर उसे साफ़ किया। फिर घुटनों के बल बैठकर मलाई को एहतियात से एक तरफ़ हटाया और नाड़ का सिरा दूध में डुबोकर दूसरे सिरे से पीने लगा। लाल मीठा गर्म रेशमी दूध उसके हलक़ में उतरने लगा। दूध बहुत गाढ़ा था, चुनाँचे चन्द घूँट से ही उसका पेट भर गया। नाड़ को दूध में से निकालकर कुरते के दामन से साफ़ करने के बाद उसने उसे वापस रखा। उँगली से मलाई को अपनी जगह पर फैलाया और बेआवाज़ क़दमों के साथ बाहर निकल आया। ताज़ा हवा में दो-चार लम्बे-लम्बे साँसों के साथ धुआँ, जो उसकी नाक और हलक़ में भर गया था, साफ़ करने के बाद उसने कहा, "चलो !"

आयशा के गले में बाज़ू डालकर वह चल पड़ा। आयशा चन्द क़दम धीरे-धीरे उसके साथ चली। फिर रुक गई।

"तुम कल जा रही हो ?" अली ने पूछा।

वह ख़ामोश खड़ी रही।

"क्या है ? चलो !"

"मुझे भूक लगी है !"

"जाओ, जाकर दूध पी आओ," अली ने उसके गले से बाज़ू निकालकर कहा, "हमारा मत पीना। बड़ी माँ का पीना, और सीधे हाथ के कोने में मेरा नाड़ पड़ा है, उससे पीना, और मलाई मत तोड़ना। पीकर बराबर कर देना, नहीं तो पता चल जाएगा !"

वह वहाँ खड़ी-खड़ी बिसूरती रही।

"जाओ ! मैं यहीं खड़ा हूँ।"

"मैं नहीं पीती दूध।"

"क्यों ?'

"मुझे उलटी होती है !"

"हुँह !" अली अपने पसन्दीदा अन्दाज़ में हँसा, "औरतें नख़रे करती हैं। मैं दो सेर दूध पी

सकता हूँ, पर मर्द तो नख़रे नहीं करते। अच्छा, ठहरो। तुम यहीं पर ठहरो।''

लोमड़ी की तरह चलता हुआ वह बड़ी माँ के दरवाज़े पर जाकर खड़ा हुआ। कुछ देर तक अकेले ही ज़ंग लगी कुंडी को खोलने की कोशिश करने के बाद वह बाहर आया और इशारे से आयशा को बुलाकर ले गया।

''घोड़ी बनो...यहाँ...आँ, बस...बैठना नहीं...चोंडी घुमाऊँगा नहीं तो...'' उसने आहिस्ता से उसके बालों की लट पकड़कर खींची। लड़की ग़ुस्से से सुर्ख़ हो गई, मगर चारों हाथों-पाँव पर घोड़ी बनी रही। अली ने उसके ऊपर खड़े होकर कुंडी खोली और वे अन्दर दाख़िल हुए।

''बँटा दो,'' उसने आयशा की जेब से एक पत्थर निकाला। उसे इस्तेमाल करने से पहले वह देर तक परछत्ती पर पड़ी हुई घड़िया का निशाना बाँधता रहा। पत्थर ठीक निशाने पर पड़ा और कच्ची घड़िया में बड़ा-सा सूराख़ हो गया, जिसमें से गुड़ की ढेलियाँ नीचे गिरने लगीं।

उन्हें जेबों में भरकर जब वे बाहर निकल रहे थे, तो बड़ी माँ आँगन में दाख़िल हुई। दोनों बच्चों के होश उड़ गए। बड़ी माँ वहीं से चिल्लाई, ''ठहर जाओ, चोरो ! आज तुम्हारी बोटियाँ करूँगी !''

वे दोनों आगे-आगे और बड़ी माँ ऊँची आवाज़ से कोसती हुई पीछे-पीछे भागने लगी। उसी तरह उन्होंने तपते हुए आँगन के तीन चक्कर लगाए। फिर वे दोनों बचपन की फुर्ती और ताक़त के बल पर बूढ़ी औरत की ज़द से निकल भागे।

जब वे अहाते से बाहर निकल रहे थे, तो आयशा रोने लगी।

''क्या है ?'' अली ने हाँफते हुए पूछा।

''मेरे पैर जल गए हैं !''

''हुँह ! यह औरतों के नख़रे हैं।'' वह सख़्ती से बोला, ''लो, यह गुड़ खाओ।''

आयशा उससे गुड़ लेकर खाने लगी।

''तुम कल जा रही हो ?''

''हाँ !''

बाहर सुनसान दोपहर उसी तरह तप रही थी। दोनों बातें करते हुए जोहड़ की तरफ़ चले गए, जिधर दरख़्तों का साया था।

अगले रोज़ आयशा और उसकी माँ विदा हुए। आयशा की माँ ने, जो अली की ख़ाला थी, उसे पास बुलाकर चूमा और सिर पर प्यार दिया। फिर दोनों माँ-बेटी घोड़ियों पर सवार हुईं। जब दोनों बहनें दुनिया भर की बातें कर चुकीं, तो घोड़ियाँ, जो विदा होते हुए मेहमानों को लेकर जाने की आदी थीं, बग़ैर इशारे के चल पड़ीं।

धूप ज़र्द हो रही थी और दोनों घोड़ियाँ जोहड़ के किनारे आगे-पीछे चल रही थीं। जोहड़ के पानी में उनके ज़र्द अक्स देखकर दूसरे किनारे पर चलते हुए किसानों को दिखाई दे रहे थे। वे पानी में उनका अक्स देखकर चौंकते और उनकी तरफ़ इंशारा करके कहते, ''नईम के जानवर अच्छी नस्ल के हैं। उसकी मौसी जा रही है !'' दो अधेड़ उम्र किसान उनको देखकर रुके। एक ने हाथ हवा में उठाकर ऊँची आवाज़ में कहा, ''नईम की मौसी, अल्लाह फ़ज़्ल करे !'' हालाँकि वह नईम के बजाय अली की ख़ाला थी, लेकिन गाँव के लोग ख़ुशामद के तौर पर यही कहकर बुलाते और उस घर का हर आदमी नईम का नाम अपने नाम के साथ जुड़ा देखकर ख़ुशी से फूला न समाता। किसान के जवाब में उसने दूसरे किनारे से हाथ हवा में उछाला और मुँह में कहा, ''अल्लाह, फ़ज़्ल करे !'' जिसकी आवाज़ दूसरे किनारे तक न पहुँच सकी। दोनों किसान थोड़ी देर तक खड़े सादा, शहवानी[1] नज़रों से उसे देखते रहे। फिर उसने कहा, ''ख़ूब औरत थी, अब तो ढल गई है !'' और

1. कामुक।

हँसकर अपने रास्ते पर हो लिए। इसी तरह उन्हें रास्ते में गाँव के सारे लोग मिले और जो उन्हें जानते थे, उन्होंने ऊँची आवाज़ में अलविदा कहा और जो न जानते थे, उन्होंने महज़ पसन्दीदगी की नज़रों से उसे और उसकी घोड़ी को देखा और घर जाकर अपनी औरतों को उनके बारे में बताया। और इस तरह सारे गाँव को पता चल गया कि गाँव से कौन बाहर गया है, सिवाए नईम और उसकी बीवी के जो गाँव से बाहर बड़े मकान में रहते थे।

अली जोहड़ के किनारे बड़े पत्थर पर बैठा था। आज दिन भर वह खेलता रहा था और एक बार भी खेतों पर न गया था। दोपहर होने तक वह एक सौ से ज़्यादा बार आयशा से पूछ चुका था, "आज तुम जा रही हो ?" और हर बार उसके 'हाँ' कहने पर एक सख़्त-सी 'हुँह' करके बचपन के घमंड में उसको टाल गया था, लेकिन दोपहर के बाद जब वे घोड़ियों पर सवार हुईं, तो वह अचानक ख़ामोश हो गया।

जब आयशा की घोड़ी उसके बराबर पहुँची, तो वह उठकर साथ-साथ चलने लगा।

"मैं तुम्हारे साथ जाऊँगा !" उसने कहा।

"क्यों ?" आयशा ने पूछा।

"रास्ता ख़तरनाक है। औरतों को अकेले नहीं जाना चाहिए।"

"क्या है ?"

"रास्ते में भेड़िए हैं...जंगल में..."

"हुँह...हमारे पास घोड़ियाँ हैं।" आयशा ने बद-दिमाग़ी से जवाब दिया।

"वे घोड़ियों को फाड़ खाते हैं और औरतों को उठाकर ले जाते हैं।"

"अरे बाप रे !" आयशा आँख फैलाकर डरकर बोली, "फिर ?"

"कोई फ़िक्र नहीं। मैं साथ जाता हूँ !"

आयशा एहसानमन्दी[1] से उसकी तरफ़ देखकर हँसी।

उन्होंने रौशनपुर के खेत पार कर लिए थे और अब दूसरे गाँव की ज़मीनों में चल रहे थे। आयशा की माँ की घोड़ी आगे निकल चुकी थी और अली सीने पर बाज़ू बाँधे आयशा की घोड़ी के साथ चल रहा था। मुख़्तलिफ़ खेतों और पगडंडियों पर चलते हुए वे इधर-उधर की छोटी-मोटी बातें करते रहे। आयशा, जो घुड़सवारी और घर जाने के ख़याल से काफ़ी ख़ुश थी, बड़े शौक़ से उसकी बातें सुन रही थी। इधर-उधर की छोटी-छोटी बातें, जैसे यह कि किस तरह वह एक दफ़ा तीन भेड़ियों को जुल देकर उनके पंजे से निकल आया था, और यह कि उस जंगल में जो एक अजीब-सा दरख़्त था, उसके नाम का किसी को पता न था, मगर उसके पत्तों की खाद बड़ी अच्छी बनती थी। और यह खेत जिनमें से वे गुज़र रहे थे, उनके नहीं, बल्कि दूसरे गाँव के थे और उनके खेतों की तरह ज़रख़ेज़[2] न थे, क्योंकि उस गाँव के लोग कामचोर और खिलंडरे थे और मेहनत से जी चुराते थे। और यह कि भेड़िए मर्दों की तरफ़ ज़्यादा ध्यान नहीं देते, बल्कि औरतों को दबोचते हैं। उनके ज़ेवरात और क़ीमती कपड़े उतारकर अपनी बीवियों को पहनाते हैं और औरतों को उनकी ख़िदमत पर लगा देते हैं। आयशा ने भेड़िए की बीवी की ख़िदमतगार बनने के ख़याल पर डर और हैरानी ज़ाहिर की। पक्की सड़क पर पहुँचते-पहुँचते उनको शाम हो गई।

घोड़ी सख़्त और हमवार ज़मीन को महसूस करके ख़ुशी से हिनहिनाई और तेज़ हो गई। अली साथ-साथ भागने लगा। आयशा ने, जो अच्छी-ख़ासी सवार थी, लेकिन घोड़ी की आदतों से वाकिफ़ न थी, उसे रोकने के लिए बागें खींचीं। घोड़ी ने अगले पाँव उठाकर हवा में चलाने शुरू कर दिए।

"मैं इसके साथ दौड़ सकता हूँ। इसे छोड़ दो।" अली ने कहा।

"अभी यह चारों पाँव पर आ जाएगी !"

---

1. कृतज्ञता, 2. उपजाऊ।

"तो क्या है। मैं ख़रगोश की तरह दौड़ता हूँ," वह तेज़ी से भागने लगा।

"तो लो..." आयशा बागें ढीली छोड़कर बोली और चिमटकर बैठ गई। ढील पाकर घोड़ी आसानी से दौड़ने लगी।

"मैं इससे भी तेज़ दौड़ सकता हूँ।" अली ने दाँत पीसकर कहा और सिर घोड़ी के सिर से आगे निकाल ले गया। आयशा ने आहिस्ता से एड़ियाँ घोड़ी की पसलियों पर मारी। घोड़ी चार पाँव पर दौड़ने लगी। अली अब पूरी रफ़्तार से भाग रहा था और तेज़ हवा की वजह से उसकी आँखों में पानी बह रहा था। पल के पल में घोड़ी फ़र्राटे भरती हुई उसके पास से निकलकर धूल के तूफ़ान में ग़ायब हो गई।

जब धूल ज़रा कम हुई, तो उसने देखा कि सवार और घोड़ी दोनों बहुत दूर जा चुके थे। अँधेरा बढ़ता जा रहा था। वह आहिस्ता-आहिस्ता चलता हुआ जाकर पुलिया पर बैठ गया। नीचे एक नन्हा-सा बरसाती नाला बह रहा था। वह ख़ामोश बैठा बहते हुए पानी को देखता रहा, जो अँधेरे में उसकी नज़रों से ग़ायब होता जा रहा था। उसने तबीअत में सख़्त बदमज़गी महसूस की। उसके दिल में एक महबूब दोस्त के बिछड़ने का रंज था, मगर अभी वह उस उम्र को न पहुँचा था कि इस रंजीदा जज़्बे को जान सकता, चुनाँचे वह पुलिया पर बैठा बेदिली से इधर-उधर देखता रहा। क़रीब की फ़सल में से एक गीदड़ कान खड़े करके निकला और नाले पर आकर पानी पीने लगा। अली वापस जाने के लिए उठ खड़ा हुआ।

अब उसे पता चला कि वह नंगे पाँव था। उसे याद आया कि जब वह पूरी ताक़त से भाग रहा था, तो जूते उसके पाँव से उतर गए थे। वह अँधेरे में सिर झुकाकर देखता हुआ उसी रास्ते पर चलने लगा। थोड़ी दूर जाकर एक जूता मिल गया, लेकिन बहुत तलाश करने के बाद भी दूसरा जूता न मिला। रात चारों तरफ़ फैल गई थी और वह अकेला अँधेरे रास्तों को देखता हुआ चल रहा था। रंज से मजबूर होकर वह रोने लगा।

जब वह घर पहुँचा, तो उसकी माँ ने झपटकर उसे गोद में ले लिया और उसका माथा चूमकर बोली, "क्यों रोता है मेरे लाल। ऐं ? बता..."

"मेरा जूता खो गया है," उसने बड़ी मुश्किल से कहा।

"फिर क्या है। चुप हो जा, मेरे लाल। वह पुराना और फटा हुआ जूता था। मत रो !"

लेकिन उस रात वह पुराने और फटे जूते के अलावा और बहुत-से अनजाने रंज की वजह से देर तक लेटा सिसकियाँ लेता रहा।

22

जेल जाने का ख़याल नईम के लिए अनोखा न था। इससे पहले उसके हज़ारों साथी जेल जा चुके थे। फिर भी जेल के बड़े दरवाज़े में दाख़िल होते वक़्त उसके जिस्म में अजीब-सी सनसनाहट दौड़ गई और दिल के धड़कने की आवाज़ उसने साफ़ तौर पर सुनी कि आख़िरकार यह एक अनसुनी और अनजानी दुनिया थी।

वह अपनी कोठरी में बैठा रात का खाना खा रहा था और आस्तीन से आँखें पोंछता जा रहा था। कोठरी में एक छोटा-सा सूराख़ रोशनदान के नाम का था, जिसमें सलाख़ें लगी हुई थीं। रौशनी के लिए एक मिट्टी का दीया था, जिसमें गाढ़ा, सियाह रंग का तेल जल रहा था, जो मिर्चों की तरह आँखों को लगता था, फ़र्श और दीवारें पत्थर की थीं, जिन पर मिट्टी की एक मोटी तह चढ़ चुकी थी, और उसमें कीड़े-मकोड़े और बिच्छुओं के चलने-से लकीरें बन गई थीं। एक कोने में चटाई बिछी थी, जो कि उसका बिस्तर था। सालन, नमक-मिर्च और दाल के चन्द दानों को पानी में

उबालकर बनाया गया था और रोटी के आटे में रेत और मिट्टी मिली हुई थी। इसके बावजूद सारे दिन की भूक के मारे उसने बकरी की तरह वह खाना खा लिया और खाने के दौरान दिल में परेशान होता रहा कि धुआँ, जो बादल की तरह उसके कमरे में भर गया था, किस तरह साफ़ होगा और वह ऐसे धुएँ में कैसे सो सकेगा। लेकिन जेल में पहला दिन गुज़ारने का तनाव खाना खाने के बाद जब ज़रा कम हुआ, तो उसे ख़ुद-ब-ख़ुद नींद आने लगी। उसने कोने में पड़े हुए एक पत्थर को उठाकर चटाई के सिरहाने की जगह पर रखा और उस पर सिर रखकर लेट गया, लेकिन थोड़ी-थोड़ी देर के बाद उसको धारियों में बहते हुए पसीने को ख़ुश्क करने के लिए उठना पड़ता। बरसात की उमस भरी रात थी और नईम के चारों तरफ़ धुआँ और पुरानी बसी हुई हवा भारी तहों में ठहरी हुई थी। एक दफ़ा पसीना पोंछते हुए आस्तीन लगने से दीवार की मिट्टी उड़ी, और उसकी नाक में जा घुसी। वह छींकता हुआ उठकर बैठ गया। उस वक़्त यह सोचकर दिल में उसे अफ़सोस हुआ कि उसके साथ निचले दर्जे के क़ैदियों का-सा सुलूक किया गया था।

वह बहुत दिन के बाद ज़मीन पर सोया था। रात में कई बार उसकी आँख खुली और उसे उन दिनों का ख़याल आया, जब वह जुनूबी[1] हिन्दोस्तान के गाँव और शहरियों में एक लम्बे अरसे तक ज़मीन पर सोता रहा था। सुबह जब वह जागा, तो आँखें बन्द किए, उसने आदतन[2] अपनी बीवी को पुकारा। कमरे में वही उदासी थी, लेकिन धुआँ ग़ायब हो चुका था और दिन का उजाला दरवाज़े में से अन्दर आ रहा था। आसमान का वही छोटा-सा हिस्सा दिखाई दे रहा था, जो उसने कल कोठरी में दाख़िल होने के बाद देखा था। सामने एक अजीब नज़्ज़ारा था। खुली जगह में लोहे की सलाख़ों का एक ऊँचा और गोल-सा जंगला बना था, जिसके अन्दर बहुत-से लोग लकड़ी के एक लट्ठे को खींचते हुए गोल दायरे में घूम रहे थे। ग़ौर से देखने पर मालूम हुआ कि वे कुएँ में से पानी खींचने के लिए बैलों की जगह पर काम कर रहे थे। एक भद्दे चेहरेवाला आदमी उनकी निगरानी पर खड़ा थोड़ी-थोड़ी देर में गालियाँ दे रहा था। चिड़ियाघर के-से उस मंज़र को दिलचस्पी से देखते हुए नईम ने गिनना शुरू किया। वे तादाद में अठारह थे और बराबर निगरानी करनेवाले को और एक दूसरे को कोस रहे थे और शोर मचा रहे थे। दरवाज़े की सलाख़ों पर हाथ रखे वह उनकी इस बेहिस[3] ख़ुशदिली पर महज़ूज़[4] होता रहा।

फिर अपने क़रीब ही एक करख़्त[5] इनसानी आवाज़ सुनकर वह चौंक पड़ा। यह एक उतने ही करख़्त नक़्शवाला शख़्स था, जो क़ैदियों के लिबास में था और बाज़ू पर डब्ल्यू. ओ. (वार्ड ओवरसियर) का बिल्ला लगाए हुए था। वह एक दूसरे क़ैदी को गर्दन से पकड़कर खींचता हुआ बड़े मामूली, रोज़मर्रा के अन्दाज़ में गालियाँ दे रहा था। जवाब में क़ैदी भी गालियाँ दे रहा था और क़समें खा रहा था। नईम के बराबर पहुँचकर वह रुका और कोरी-कोरी नज़रों से उसे तकने लगा।

"सूरज निकल आया है ?" नईम ने पूछा।

"हाँ ! अभी एक चील गुज़री थी।" उसने-करख़्त, और बेमानी लहजे में जवाब दिया।

(जल्द ही नईम क़ैदियों के इस तरीक़े से वाक़िफ़ हो गया। जब वह ख़ुद भी सिर उठाकर आसमान के उस हिस्से को, जो उनके सिरों पर था, देखने और परिन्दों पर पड़ती हुई धूप से सूरज के निकलने और डूबने का अन्दाज़ा लगाने लगा)

"रात भर तुम कुत्ते की तरह सोए रहे," वार्ड ओवरसियर फिर उसी भद्दी आवाज़ में बोला।

रात भर की परेशानी ने नईम के दिमाग़ में एकदम ग़ुस्से की शक्ल इख़्तियार कर ली। उसने सारे जिस्म के साथ दरवाज़े को धकेला, "कुत्ते !" उसने ग़ुस्से से कहा।

वार्ड-ओवरसियर बेहिस नज़रों से उसे देखता रहा। फिर वह मुंजमिद[6] चेहरे के साथ मुँह खोलकर हँसा, "मैं तीन बार यहाँ से गुज़रा, तुम्हें पता है ?"

1. दक्षिणी, 2. स्वभावतः, 3. भावहीन, 4. आनन्दित, 5. कठोर, 6. भावहीन।

"यहाँ आओ।" नईम ने ग़ुस्से को दबाकर कहा। वह बेशर्मी से चलता हुआ उसके क़रीब आ खड़ा हुआ। नईम ने सलाख़ों में से हाथ निकालकर ज़ोर से घूँसा उसकी नाक पर मारा, "सुअर !"

इस अचानक हमले से वह लड़खड़ा गया और नाक छूकर बोला, "क्यों ?...क्यों ?"

"गाली क्यों दी ?" नईम ने कहा।

"गाली ?" कुछ न समझते हुए उसने कई बार नाक छूकर देखा, "गाली ?"

"हाँ। मैंने चोरी नहीं की !"

"फिर क्या किया है ?" उसने पूछा।

"मैंने ? मैंने..." नईम ने बेख़याली से उसकी नाक को देखते हुए कहा, "कुछ नहीं किया।"

"क़त्ल किया है ?"

"नहीं !"

"ज़िना[1] किया है ?"

"नहीं !" नईम चीख़ा।

"फिर तुम्हारा दिमाग़ चल गया है।" वार्ड ओवरसियर ने कहा, "मुझ पर हाथ उठाने की सज़ा तुमको मिलेगी...कुत्ते के बच्चे !"

वह नफ़रत से उसे देखता हुआ चला गया। नईम का जी चाहा कि दरवाज़े की सलाख़ों को चबा डाले, लेकिन जब वह चला गया, तो अचानक वह अपनी पहल और उस दूसरे शख़्स की शदीद बेहिसी पर दिल में डर गया।

दिन की रोशनी तेज़ होती जा रही थी, लेकिन धूप कहीं दिखाई न दे रही थी। सामने जंगले के अन्दर क़ैदियों के पानी खींचने का नज़्ज़ारा करते-करते अचानक नईम के दिल में एक बेचैनी पैदा हुई। धूप कहाँ थी ? और परिन्दे ! आसमान का छोटा-सा हिस्सा उसकी नज़रों के सामने बेरंग और वीरान था।

वह क़ैदी, जिसे वार्ड ओवरसियर वहाँ छोड़ गया था, उसके क़रीब आया।

"मुझे मत मारना ! मैंने तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ा !" उसने नईम की ज़द से बाहर रहते हुए कहा। नईम ख़ामोशी से उसे देखता रहा। उसका चेहरा भी देखनेवाले में नफ़रत और नागवारी पैदा करता था, हालाँकि कभी वह ख़ूबसूरत रहा होगा, "तुम क्यों आए हो ?" उसने पूछा।

"मुझे कुछ पता नहीं," नईम ने एक पल तक सूजे हुए चेहरे के साथ देखते रहने के बाद कहा।

"यहाँ पर तुम कुछ नहीं छुपा सकते। दो दिन में तुम्हारी असलियत का पता चल जाएगा। शक्ल से तो कुछ ऐसे हरामी मालूम नहीं होते !"

"मैंने 'स्वराज' के लिए तक़रीर की थी," नईम ने जल्दी से कहा।

"स्वराज ?"

"आज़ादी के लिए !"

उसकी आँखों में उम्मीद की एक किरन ज़ाहिर हुई, "आज़ादी ? हम आज़ाद हो जाएँगे ?"

"नहीं ! मुल्क की आज़ादी के लिए !"

"मुल्क ?...ऐं...और हम ?"

"पहले तुम्हारे माँ-बाप और बीवी-बच्चे और ज़मीनें आज़ाद होंगी। फिर जब तुम्हारी सज़ा ख़त्म हो जाएगी, तो तुम भी आज़ाद हो जाओगे।"

"आहा हा हा !" वह दीवानों की तरह टकटकी बाँधकर हँसा। उसके चेहरे पर हँसी तक न बिखरी। नईम ने अपनी पुश्त पर ख़ौफ़ की सरसराहट महसूस की, "यह तो मैं भी जानता हूँ।

1. व्यभिचार।

तब मेरे माँ-बाप और बीवी-बच्चे और ज़मीनें सब मर चुकी होंगी।''

''मर चुकी होंगी ?''

''यह देखो।'' उसने कन्धा आगे बढ़ाया,'' जिस पर उसकी रिहाई की तारीख़ 1972 लिखी थी।''

''अड़तालीस साल और...''

''ऐं ?'' नईम का मुँह खुले का खुला रह गया।

वह दोबारा मुँह खोलकर हँसा, ''यह तक़रीरवाली बात तो तुम बकवास कर रहे हो, लेकिन तुम्हारे झूठ का हमें पता चल जाएगा। चरस पियोगे ?''

''नहीं ?''

''क्यों ? पैसे नहीं हैं। नवाब के बच्चे ! यूँ तो कुत्ते की गाली पर आग लग जाती है।''

''जाओ, अपना काम करो,'' नईम ने ख़ामोश ग़ुस्से से उसे देखते हुए कहा।

''दो दिन में ठीक हो जाओगे, बेटा !'' क़ैदी जाते-जाते मक्कारी से बोला, ''मैं तुम्हारा दोस्त हूँ। चरस की ज़रूरत पड़े, तो मुझसे कहना !''

ग़ुस्से के साथ-साथ नईम के दिल में उसके लिए दुख पैदा हुआ।

एक वार्डर ने आकर उसकी कोठरी का दरवाज़ा खोला और गन्दुम की आधी बोरी चक्की के पास ला रखी।

''आज शाम तक उसको ख़त्म करना है।'' उसने मख़सूस करख़्त आवाज़ में, जिससे नईम अब आशना होता जा रहा था, कहा। फिर जाते-जाते उसकी नज़र बिन-छुए खाने पर पड़ी और वह रुक गया, ''तुमने खाना नहीं खाया ?''

''यह ?...यह जानवरों का खाना ?'' नईम ने रुक-रुककर कहा।

''आहा..बैल के बच्चे ! तो तुम अपनी सास के घर आए हो ?'' फिर वह एकदम आँखें निकालकर चीख़ा, ''सुनो...अगले हफ़्ते तुम्हारा वज़न होगा। अगर एक तोला भी कम हुआ, तो तुम्हें मवेशियों का गोबर खिलाया जाएगा। सुना ?'' दरवाज़ा बन्द करते हुए वह सलाख़ों में नाक ठूँसकर फिर चीख़ा, ''तुमने बैलों को दवा पिलानेवाली नाल देखी है ? तुम जैसे कुत्तों को गोबर खिलाने के लिए हम उसका इस्तेमाल करते हैं !''

नईम ज़ख़्मी सुअर की तरह उसे देखता रहा।

दिन भर वह चक्की पीसता और बार-बार उठकर दरवाज़े की तरफ़ जाता रहा। कई बार उसने दरवाज़े को धकेलकर, बैठकर और लेटकर बाहर की दुनिया को ज़रा दूर तक देखना चाहा, लेकिन आसमान को दीवारों से बाँध दिया गया था और उस पर कोई परिन्दा न था। दोपहर के क़रीब एकाएकी गर्म सूरज दीवार के पीछे से उसके सामने आ गया और उसने घबराकर आँखें फेर लीं। धूप कड़ी और बेरंग थी। वह वापस चक्की की तरफ़ लौट आया और पेट में भूक महसूस करके खाने पर पिल पड़ा।

आसमान पर अभी उजाला था, जब जेल का एक अफ़सर और एक वार्डर उसकी कोठरी में दाख़िल हुए। वह चक्की पर सिर रखे ऊँघ रहा था। जेल के अफ़सर ने जूते की नोक पसली में चुभोई।

''तुमने डब्ल्यू.ओ. नम्बर 19 को मारा था आज सुबह ?''

''हाँ !'' गर्दन का पसीना पोंछते हुए नईम ने जवाब दिया।

यह कहते हुए कि उसने उसे गाली दी थी, नईम झिझक गया कि वह उन गालियों से मानूस हो चुका था। वह ख़ामोश रहा।

''उठो !'' जेल के अफ़सर ने उसके पहलू में जूते की नोक मारी, ''इसके लिए तुम्हें पानी

खींचना पड़ेगा !''

बाहर निकलकर उसने किसी बात पर, जो उसके निगरान आपस में या उसके साथ कर रहे थे, ध्यान न दिया और ख़ुशी से सिर उठाकर आसमान को देखा। तीसरे पहर की ज़र्द धूप में चन्द कबूतर उसके सिर पर से गुज़र रहे थे। उसने कुछ पल आज़ादी का हलका-सा नशा महसूस किया। लोहे के जंगले में पहुँचकर उसने तेज़ करख़्त आवाज़ों में ग़ुल मचाते, और पानी खींचते हुए क़ैदियों को क़रीब से देखा। चौबीस घंटे तक तनहाई में रहने के बाद उसने महसूस किया कि अब वह अपने दोस्तों और साथियों में आ गया है। वह बदनुमा शख़्स, जिसे उसने मारा था, उसे क़तार में खड़ा करके रस्सा पहनाने लगा।

''एक और बैल आ गया है,'' क़तार से आवाज़ आई।

''सुअर की तरह पला हुआ है।'' दूसरे ने कहा। क़तार में से ज़ोरदार हँसी की आवाज़ उठी। नईम का जी उस ख़ुशदिल गिरोह के साथ घुलने-मिलने और बातें करने को चाहने लगा। उसने अपने साथवाले से पूछा, ''तुम किसान हो ?''

''मैं बैल हूँ।'' उसने ऊँची आवाज़ में जवाब दिया। पसीने में भीगे हुए, हाँफते हुए, क़ैदियों की क़तार से फिर हँसी की आवाज़ उठी।

हर चक्कर पर वार्डर ओवरसियर उसकी पसलियों पर छड़ी मारता जा रहा था। पहले कुछ चक्कर तो बाहर आने की ख़ुशी में उसने आसानी से मुकम्मल कर दिया। फिर उसकी कमर और टाँगों में सख़्त दर्द होने लगा। उस वक़्त उसके दिल में अपनी और उस तरह की मेहनत करनेवाले दूसरे इनसानों की शदीद ज़िल्लत का एहसास पैदा हुआ। जिस्मानी तकलीफ़ और बेइज़्ज़ती के एहसास में उसने निगरान की गालियों और चाबुकों को नज़रअन्दाज़ कर दिया।

जब उन्हें खोला गया, तो चन्द मिनट तक वह आँखें बन्द किए खड़ा अपने जिस्म की बिखरती और बर्बाद होती हुई ताक़तों को इकट्ठा करता रहा। फिर उसने आँखें खोलकर वार्डर ओवरसियर नम्बर 19 को देखा।

''तुम्हारे पास सिगरेट हैं ?''

''क्यों ? नवाबी ख़त्म हो गई ?'' वार्ड ओवरसियर ने घमंड से कहा। नईम ख़िफ़्फ़त से हँसकर नाक खुजाने लगा।

''चलो।'' वार्ड ओवरसियर नईम को लेकर उसकी कोठरी की तरफ़ चल पड़ा, ''तुम अगर मुझसे सुलह रखो, तो मैं सिगरेट मुहैया कर सकता हूँ ?''

''मैं तुम्हारी तरह बाहर फिर सकता हूँ ?'' नईम ने पूछा।

''नहीं ! हम उम्र भर क़ैदवाले हैं। हमने अच्छा चाल-चलन दिखाया है, इसलिए हमें डब्ल्यू.ओ. बना दिया गया है। मैंने बारह साल काट दिए। बत्तीस साल और हैं। देखो।'' उसने अपना कन्धा दिखाया, जिस पर उसकी रिहाई की तारीख़ 1956 लिखी थी।

दरवाज़ा बन्द करके जाते हुए वह बोला, ''अब तुमने किसी पर हाथ उठाया, तो दुर्रे लगेंगे। सुना, हरामी ?''

शाम के वक़्त वह अँधेरे में बैठा था कि किसी ने दरवाज़ा खोला, 'अँधेरे में क्यों बैठे हो ?'' ज़ोर से कोई बोला।

''तुम्हारा बाप आँखों को लगता है धुआँ !'' नईम ने जलकर कहा।

''दीया जलाओ। यहाँ चालाकियाँ नहीं चलेंगी।'' चलनेवाले को चक्की की ठोकर लगी और अँधेरे में उसके कोसने की आवाज़ आई। दीया जलाने से धुएँ का बादल छत को चढ़ने लगा, ''मैं भागकर कहीं नहीं जाऊँगा। बेफ़िक्र रहो।'' नईम ने कहा।

''हुँह !'' दूसरा शख़्स बड़बड़ाया। यह वही ओवरसियर था, जिसने सुबह को उसे गोबर

खिलाकर उसका वज़न बढ़ाने की धमकी दी थी, "यह ? यह सारा ? कामचोर, गधे के बच्चे...हैं ?" वह अचानक चीख़ा।

"मैं इससे ज़्यादा नहीं पीस सकता !"

"क्यों ?' वह जारिहाना[1] अन्दाज़ में बढ़ा।

"मेरा एक हाथ है," नईम ने चीख़कर कहा और जल्दी से बाज़ू नंगा करके आगे बढ़ाया, "देखो...देखो !"

"हैं ! ?" हैरत के मारे उसका मुँह खुले का खुला रह गया। कँपकँपाती हुई उँगलियों के साथ नईम ने आस्तीन उतारकर उसे ढँक दिया।

"दो...मुझे दो..." ओवरसियर ने वहीं खड़े-खड़े हाथ बढ़ाया।

"तुम इसे नहीं रख सकते। यह क़ानून है, दो..." उसने लकड़ी की उँगलियों को पकड़कर झटका दिया, जिससे नाज़ुक कमानियाँ खुल गईं और लकड़ी का टुकड़ा बाज़ू से अलग हो गया।

नईम ने भेड़िए की तरह दाँत निकालकर झपट्टा मारा और लकड़ी का टुकड़ा उससे छीन लिया। एक पल के लिए उसने अपने आपको तोला और फिर हाथ उठाकर लपका। ओवरसियर तेज़ी से बाहर निकलकर ग़ायब हो गया। टुकड़ा हाथ में लटकाए-लटकाए नईम जंगली जानवर की तरह कमरे में चक्कर लगाता रहा। ग़ुस्से की हालत में उसके सोचने की ताक़त ख़त्म हो चुकी थी। जिबिल्ली[2] तौर पर ख़तरे को महसूस करके उसने उसे चक्की के नीचे छुपा दिया।

थोड़ी देर के बाद जेल सुपरिन्टेंडेंट, जेलर, ओवरसियर और एक सिपाही उसकी कोठरी में दाख़िल हुए।

"कहाँ है ?" सुपरिन्टेंडेंट ने पूछा।

"मेरा एक हाथ है ?" नईम ने आस्तीन चढ़ाकर उसे कटा हुआ बाज़ू दिखाया।

"लकड़ी का कहाँ है ?"

नईम ख़ामोश बैठा बाज़ू पर हाथ फेरता और बड़बड़ाता रहा, "मेरा एक हाथ है...एक है !"

चक्की के नीचे से उसे तलाश करने में उन्हें ज़्यादा देर न लगी। कुछ देर तक वे सब तअज्जुब और दिलचस्पी के साथ उसे देखते रहे और आँखों ही आँखों में उसकी कारीगरी की तारीफ़ करते रहे। फिर वे उसे लेकर बाहर निकल गए।

"जब तुम जाओगे, तो दे दिया जाएगा।" जाते-जाते सुपरिन्टेंडेंट ने कहा।

बरसात की उस बन्द रात में आधे बाज़ू को पकड़कर लेटे-लेटे उसके दिल में बेकराँ[3] तनहाई और अज़ीम नुक़सान का एहसास पैदा हुआ, जैसे उसके तमाम साथियों के कारवाँ उसे छोड़कर आगे निकल गए हों।

इसी तरह एक मुद्दत तक जेल में रहते-रहते वह वहाँ के माहौल और वहाँ के बाशिन्दों से मानूस हो गया, जिस तरह इनसान तक़रीबन हर चीज़ का आदी हो जाता है। उस पर भी एक चुभन, जो हर ज़हीन इनसान के दिल में पैदा होती है, उसकी रूह में चुभी रही। कभी-कभी वह चुभन बाहर निकलकर एक भारी दर्द की तरह उसके सारे जिस्म को जकड़ लेती और उन दिनों में वह बेहद उदास हो जाता। यही चीज़ थी, जो उसे वहाँ के मामूली वासियों से अलग करती थी और जिसने दूसरों को उसकी इज़्ज़त करने पर मजबूर किया।

उन क़ैदियों में मामूली अख़लाक़ी[4] क़ैदी थे, जिनकी सज़ाएँ निस्बतन[5] मुख़्तसर थीं। उसके बाद उम्र-क़ैदवालों का अजीबो-ग़रीब गिरोह था। उमूमन उम्र-क़ैद चौदह साल या बीस साल की होती है, लेकिन कभी-कभी उन्हें इससे कहीं ज़्यादा लम्बी सज़ाएँ भुगतनी पड़तीं। जैसे कई-कई जुर्मों का एक साथ मुक़दमा चलाया जाता, और सबकी सज़ाएँ जमा करके उन पर लागू कर दी जातीं। नईम

1. आक्रामक, 2. वृत्तिक, 3. असीम, 4. नैतिक, 5. अपेक्षाकृत।

के जेल में बहुत-से ऐसे लोग थे, जो कई-कई साल जेल में गुज़ारकर अधेड़ उम्र को पहुँच चुके थे और अभी उनकी सज़ा के बीस-बीस साल और तीस-तीस बरस बाक़ी थे। ये लोग, ज़ो अपनी उम्रों का बेहतरीन हिस्सा जेल में गुज़ारते हैं, सालहा-साल तक कोई औरत या बच्चा या मज़हबी रहनुमा नहीं देखते। वे बाहर की दुनिया से अलग और क़तई बेख़बर होते हैं और अपनी उम्रें हर क़िस्म के दोस्ताना इनसानी रिश्तों से दूर रहकर गुज़ारते हैं। वे अपने आपको नफ़रत और इन्तिक़ाम के मकरूह[1] इनसानी जज़्बात में लपेट लेते हैं और ज़िन्दगी की अच्छाइयों और मेहरबानियों को बिलकुल भूल जाते हैं, यहाँ तक कि आहिस्ता-आहिस्ता उनके यह नापाक जज़्बात भी ख़त्म हो जाते हैं और एक अज़ीयतनाक बेहिसी[2] उन पर छा जाती है। नईम को शुरू में इन्हीं लोगों से वास्ता पड़ा और यही लोग उसके दोस्त बने।

जेल की ज़िन्दगी में कोई तब्दीली, कोई नयापन न था, रोज़-ब-रोज़, साल-ब-साल वही कड़ी, बेरंग दीवारें और पुराने, ग़ैर-दिलचस्प चेहरे ! आसमान का बिलकुल वही हिस्सा, जो पहले रोज़ नज़र आया था, हमेशा नज़र आता रहा, और कभी-कभार उस पर से परिन्दे गुज़रा करते। आमतौर पर आसमान मटियाला, यक-रंग रहता। सिर्फ़ बरसात का मौसम नईम के लिए ख़ुशी का पैग़ाम लेकर आता, जब बादल आसमान पर चलते और यूँ लगता, जैसे आसमान चल रहा है। वह जान-बूझकर अपने आपको धोखा देते हुए घंटों लेटा आसमान पर आगे-पीछे दौड़ते हुए बादलों और सरकते हुए आसमान को देखा करता।

जेल की ज़िन्दगी में रंग नहीं होते, किसी तरफ़ हरियाली या सुर्ख़ी नहीं होती। किसी को घास या सब्ज़ियाँ उगाने की इजाज़त न थी। रंगीन लिबास बरसों नज़र नहीं आते। दोपहर के क़रीब सफ़ेद, गर्म सूरज अचानक सामने आ जाता है और क़ैदियों के आसमान को पार करके उसी सूरत में ग़ायब हो जाता है और सूरज के निकलने और डूबने के रंग क़ैदियों के ज़ेहन से निकल जाते हैं। गोल, बदरंग दीवारों में चक्कर लगा-लगाकर नज़रें कुन्द हो जाती हैं और रँगों की पहचान भूल जाते हैं। समझदारी से बात करनेवाला कोई नहीं होता। चारों तरफ़ वही गिने-चुने, पुराने भद्दे चेहरे जिन्हें देख-देखकर नज़रें थक जाती हैं। जेल वह जगह है, जहाँ पर इनसान के दिल में खुली, हरी-भरी जगहों और पहाड़ों और दरियाओं के लिए चाहत और आरज़ू पैदा होती है। दुनिया की इन मामूली-मामूली चीज़ों की ख़्वाहिश दिल और आँखों में ख़ालीपन पैदा कर देती है और सोचनेवाले ज़ेहनों में दीवानगी जन्म लेती है।

काफ़ी अरसे के बाद जेल की फ़िज़ा में कुछ तब्दीली पैदा हुई, जब अदम-तआवुन के सिलसिले में वालंटियरों ने क़ैद में आना शुरू किया। नईम की आँखों का ख़ालीपन भरने लगा और चारों तरफ़ अपने साथियों को देखकर वह वापस एहसास की दुनिया में चला आया। वे तरो-ताज़ा चेहरों और चमकती हुई आँखोंवाले लोग थे और पुराने बाशिन्दों से हर हालत में मुख़्तलिफ़ थे। उन्होंने आते ही जेल के माहौल को क़बूल करने से इनकार कर दिया और खुले बन्दों अफ़सरों और क़ानून से अदम-तआवुन का एलान किया। जिसका नतीजा यह निकला कि जेल का निज़ाम सख़्त कर दिया गया और ज़्यादा मेहनत और दुर्रेबाज़ी के वाक़िआत रोज़-ब-रोज़ बढ़ने लगे। एक वाक़िआ, जो नईम को बहुत अरसे तक याद रहा, एक सोलह साला लड़के का था। वह ज़हीन चेहरेवाला ख़ुशमिज़ाज और दिलेर लड़का था और उसके चेहरे पर लड़कपन का मख़सूस दमकता हुआ हुस्न और दिलरूबाई थी। अदम-तआवुन की तहरीक में स्कूल छोड़कर जेल चला आया था। आते ही उसने क़ानून-शिकनी शुरू कर दी। उसकी पेशक़दमियों से तंग आकर अफ़सरों ने उसके लिए दुर्रेबाज़ी की सज़ा तजवीज़ की। उसे मादर-ज़ाद नंगा करने के बाद दुर्रेबाज़ी के तिकोन के साथ बाँध दिया गया और जल्लादों ने, जो कि वार्ड ओवरसियरों में से ही चुने गए थे, कोड़े बरसाने शुरू किए। तेल पिलाए हुए ठोस

1 घृणित, 2. यातनाजनक संज्ञाहीनता।

चमड़े का कोड़ा उसके कुँआरे, बेदाग़ जिस्म पर पड़ता और काटता हुआ चला जाता। उसके सारे बदन में झुरझुरी पैदा होती और वह पूरी आवाज़ में चिल्लाता, ''इन्क़िलाब ज़िन्दाबाद'' यहाँ तक कि दर्द की शिद्दत से उसका चेहरा काग़ज़ की तरह सफ़ेद और जिस्म नीला पड़ गया और उसकी आवाज़ आहिस्ता होती हुई बिलकुल बैठ गई और वह गर्दन एक तरफ़ ढुलकाकर रोने लगा। ग्यारह कोड़ों के बाद वह बेहोश हो गया।

जेल के अमले ने अपनी ज़िन्दगियों में ऐसे क़ैदी कब देखे थे, जो अपनी मर्ज़ी से जेलों में दाख़िल हुए थे और जो इस क़दर ज़हीन, चुस्त, और ख़ुश थे और जिन्होंने उनका हर हुक्म मानने से इनकार कर दिया था। क़ैद से निकलना उनके लिए कोई मुश्किल काम न था। उसके लिए उन्हें सिर्फ़ एक मुआफ़ीनामा लिखना होता था और आइन्दा के लिए पुर-अम्न चाल-चलन का वादा करके वे बाहर जा सकते थे। उनके बारे में जेल के अमले को बड़े अफ़सरों की तरफ़ से ख़ास हिदायात मिली थीं। उन दिनों में उन जेलरों को ख़ास तरक़्क़ियाँ और ख़िताबात दिए गए, जिनका सुलूक क़ैदियों के साथ ख़ुसूसी तौर पर संगलदिलाना[1] था।

एक मर्तबा नईम की साथवाली कोठरी में कुछ देर के लिए चन्द ख़ातून क़ैदियों को रखा गया, जो अदम-तआवुन के सिलसिले में क़ैद हुई थीं। वे तालीमयाफ़्ता और मुहज़्ज़ब[2] तब्क़े की औरतें थीं, लेकिन उन्हें पुख़्ता और आदी मुजरिम औरतों की ज़बानी, जिनके साथ उन्हें ठहराया गया था, कुछ इस क़िस्म की बातें सुननी पड़ीं :

''तुम तो बड़ी ख़ूबसूरत हो !''

''जेलर के साथ सोओ, तो छूट जाओगी !''

''अफ़ीम लोगी ?''

''तुम्हारे ख़ाविन्द नामर्द हैं, जो यहाँ आ गई हो ?''

इसके अलावा गन्दे अल्फ़ाज़ और गालियों की भरमार थी, जो उस आफ़तख़ेज़[3] दौर में हिन्दोस्तान की हज़ारों मुहज़्ज़ुब औरतों को सहना पड़ा। नईम ने दिल में फ़ैसला कर लिया कि वह अपनी बीवी को कभी जेल में न आने देगा।

साल के आख़िरी दिनों में रौशन आग़ा के सियासी[1] दोस्तों की मजलिस हुई, जैसे पिछले कई वरसों से होती आ रही थी। वे लोग मुल्क की मुतवाज़ी[5] सियासी पार्टियों में एक से तअल्लुक़ रखते थे और अपने आपको ''लिबरल'' कहकर पुकारते थे। यह बा-रसूख़ और रौशन-ख़याल तअल्लुक़ादार तब्क़े से तअल्लुक़ रखनेवाले तक़रीबन सबके सब आला तालीमयाफ़्ता ज़हीन और तन-आसाँ लोग थे, जिनके पीछे शानदार ख़ानदानी रवायात[6] थीं। यह लोग सियासत में भी दिलचस्पी रखते थे।

दिसम्बर की वह सर्द सुबह रौशन महल में चहल-पहल लेकर आई थी। बड़े गेट पर बहलियाँ रुकी थीं और अन्दर बरामदे के सामने मोटरगाड़ियों की क़तार थी। यह दिल्ली के जाड़ों का ख़ूबसूरत-तरीन दिन था, जबकि रात भर पड़ी हुई शबनम ख़ुश्क हो चुकी थी, और मेहमान, जो ज़्यादातर सुबह के अंग्रेज़ी लिबास में थे, हलके रंग की टाइयाँ और शोख़ रंग स्कार्फ़ लगाए, हाथों में सिगरेट, सिगार और सन्तरे के रस के गिलास थामे बाहर सब्ज़े पर निकल आए थे। कई एक सब्ज़े पर बिछे हुए सफ़ेद बेद के मूँढ़ों पर बैठे सुस्ता रहे थे। एक अंग्रेज़ ख़ातून, जो हिन्दोस्तानी लिबास में थी, मूँढ़े की पुश्त पर छोटी-सी फूलदार छतरी लगाए तीन मर्दों के साथ बैठी फलों का रस पी रही थी। उसने आँखों पर धूप की ऐनक लगा रखी थी।

''ग्रेप-फ्रूट...'' ख़ातून के पास बैठे हुए एक मर्द ने क़रीब से गुज़रते हुए बैरे से कहा। बैरा मुस्तैदी से झुकने के बाद अन्दर की तरफ़ लपका और पल के पल में मुअज़्ज़ज़[7] मेहमान के लिए

1. निर्दयतापूर्ण, 2. सभ्य, शिष्ट, 3. संकटपूर्ण, 4. राजनीतिक, 5. समानान्तर, 6. परम्पराएँ, 7. सम्मानित।

ग्रेप-फ्रूट का रस ले आया।

वे सब दो-दो चार-चार की टोलियों में बँटे हुए धीमी, मुलायम आवाज़ों में गुफ़्तगू कर रहे थे। ख़िलाफ़े-मामूल आज इस्तिक़्बाल[1] के रस्मी फ़राइज़ अंजाम देने के लिए कोई नज़र न आ रहा था। ख़ाला बीमार थी। परवेज़ की तैनाती ज़िला में कहीं हो चुकी थी, और अज़रा उन दिनों रौशनपुर में थी। चुनाँचे आनेवाले मेहमानों के गाड़ियों से उतरते ही रौशन महल का एक मुलाज़िम अदब से झुककर इत्तिला देता कि रौशन आग़ा फ़लाँ मेहमानों के साथ अन्दर मजलिस के ख़सूसी निशस्त के कमरे में और बाक़ी मेहमान बाहर धूप में हैं। आनेवाला अपनी मर्ज़ी के मुताबिक़ अन्दर या बाहर की तरफ़ बढ़ जाता। लेकिन जाड़ों की उस सुबह को ताज़ा, चमकदार धूप आँखों को बहुत भली लग रही थी और सब्ज़े पर फैला हुआ उजला मज्मा आनेवालों को अपनी जानिब खींच रहा था।

रौशन आग़ा अपने अहम मेहमानों के साथ संजीदा गुफ़्तगू में महव[2] थे कि बाहर दो घोड़ोंवाली एक बहली आकर रुकी और उसमें से तीन मेहमान उतरे। तीनों अधेड़ उम्र के थे। एक ने कश्मीरी ब्राह्मणों का और दूसरे ने मराठोंवाला लिबास पहन रखा था। तीसरा दुबला-पतला, लम्बोतरे चेहरेवाला आदमी अंग्रेज़ी लिबास में था, और आँखों पर सुनहरी फ्रेम का चश्मा लगाए हुए था। तीनों सीधे अन्दर की जानिब बढ़े। उन्हें बरामदे में आता देखकर रौशन आग़ा अपनी जगह से उठ खड़े हुए।

"हम अन्दर आ सकते हैं ?" दरवाज़े में रुककर मराठे ने अपनाइयत और अधेड़ उम्र ख़ुश-तबई[3] के लहजे में कहा। रौशन आग़ा वहीं खड़े-खड़े दोनों बाज़ू फैलाकर बोले, "हर वह आली ज़र्फ़[4] रूह जो दुनिया में आई, इन दरवाज़ों पर इज़्ज़त और मुहब्बत से क़बूल की जाएगी।" फिर उन्होंने आगे बढ़कर तीनों का पुरजोश इस्तिक़्बाल किया। दूसरे मेहमान अपनी-अपनी जगह पर उठकर खड़े हो गए, और उनके मेज़बान ने नौ-वारिद मेहमानों का तआरुफ़ कराया। हिन्दोस्तानी लिबास में दोनों शख़्स पूना और बम्बई से आए हुए थे और "मजलिसे-ख़ुद्दामे-हिन्द" से तअल्लुक़ रखते थे। दुबले चेहरेवाला शख़्स लखनऊ के एक मशहूर अंग्रेज़ी अख़बार के अमले का मुम्ताज़ रुक्न[5] था। थोड़ी ही देर में तीनों मेहमान आराम से धँसकर सोफ़ों में बैठे हुए थे, और कॉफ़ी पी रहे थे, जिसकी ख़्वाहिश उन्होंने ख़ुद ही ज़ाहिर की थी। उन्हें देखकर बाहर के लोग भी अन्दर आ-आकर बैठ रहे थे। हर तरफ़ गर्मजोशी से हाथ मिलाने और इस्तिक़्बालिया[6] जुम्लों का शोर था। थोड़ी ही देर में निशस्त का कमरा लोगों से भर गया। लम्बे रेशमी परदे इकट्ठे कर दिए गए और खुले दरीचों में से सुबह की धूप अन्दर आने लगी।

बाहर जो ग्रुप बने हुए थे, टूटकर बिखर चुके थे। चुनाँचे नए-नए साथी मिल जाने पर गुफ़्तगू फिर ज़ोर-शोर से शुरू हो चुकी थी। दरीचों में सर्दी के मौसम के फूल धात के पुराने गुलदानों में सजाए गए थे। लोगों के सिरों के ऊपर-ऊपर मक्खियों की भनक की तरह शाइस्ता इनसानी आवाज़ों की गूँज तैर रही थी और तम्बाकू का धुआँ सूरज की किरनों में सफ़ेद, रेशमी चादर की तरह दिखाई दे रहा था।

"तारीख़ का मुतालआ[7] सियासी शऊर[8] पैदा करने के लिए बहुत ज़रूरी है।" डॉक्टर अम्बेडकर, जिनकी जागीरें अवध के इलाक़े में थीं, पाइप मुँह में डाले-डाले साथ बैठे हुए एक सफ़ेद-फ़ाम शख़्स से कह रहे थे, "हमें अनगिनत ऐसे वाक़िआत मिलते हैं, जब क़ौमें तारीख़ के इल्म की कमी की वजह से सियासी जिद्दोजहद[9] हार गईं। मैं नहीं जानता कि हिन्दोस्तान के अवाम को, जो नब्बे फ़ीसद अनपढ़ हैं, कैसे सियासी तालीम दी जा सकती है। यह जो बाज़ लोग अवामी तहरीकों की चर्चा कर रहे हैं, यह किस हद तक दानिशवरी[10] है, आप बता सकते हैं ? अज़ीम इन्क़िलाबे-फ्रांस, या

1. स्वागत, 2. मग्न, 3. हँसमुख स्वभाव, 4. बड़े दिलवाला, 5. मुख्य सदस्य, 6. स्वागतार्थ, 7. इतिहास का अध्ययन, 8. राजनैतिक चेतना, 9. पराक्रम और प्रयास, 10. बुद्धिमानी।

हाल की बात करें, तो रूसी इन्क़िलाब जो हुआ, तो मुख़्तलिफ़ हालात और तारीख़ी पस-मंज़र[1] और क़तई मुख़्तलिफ़ क़िस्म के उंसुर[2] के हाथों..."

"अवाम दानिशवरों[3] के हाथ में एक ख़तरनाक हथियार हैं।" सफ़ेद-फ़ाम ने 'Quote' किया। ख़ातून, जो मुस्तक़िल धूप की ऐनक लगाए हुए थीं, सियासत की बातों से उकताकर अब बच्चों के नफ़्सीयात[4] का ज़िक्र कर रही थीं, "एक अजीब बात जो मैं सोच-सोचकर थक जाती हूँ, यह है कि हिन्दोस्तानी बच्चों की नाक हर वक़्त क्यों बहती रहती है ? हालाँकि इस्तिवाई ख़ित्ता[5]..." उन्होंने राजा साहब करमाबाद से कहा, जो नरगिस का फूल सूँघते हुए अख़्लाक़ से मुस्कराए जा रहे थे।

प्रोफ़ेसर इक़्बाल सिंह, जिनकी करनाल में औसत दर्जे की जागीर थी, पर जो ये इंटलेक्चुएल आदमी, हमेशा की तरह अदब[6] का ज़िक्र कर रहे थे, "उसकी तो बहुत बाद की बात है भाई, आप टैगोर का मुक़ाबला आसानी के साथ "रोमां रोलां" से भी नहीं कर सकते हो जो कि उनका हमअस्र[7] था, मसलन रोमां रोलां में जो मआशी शऊर[8]..."

"मगर फ़्रांसीसी नक़्क़ाद[9]..." दाएँ पहलू से एक शख़्स ने बात करने की कोशिश की, जिस पर प्रोफ़ेसर इक़्बाल सिंह झल्ला गए, "मैं फ़्रांसीसी नक़्क़ादों को नहीं मानता ! फ़्रांसीसी शर-पसन्द[10] हैं क़तई तौर पर...फ़्रांसीसियों ने न शायरी अच्छी की है, न फ़लसफ़ादानी। वे सिर्फ़ अदब में और आर्ट में नई-नई तहरीकें[11] चलाने में माहिर हैं। वे भी दो-चार रोज़ में पुरानी होकर फ़र्सूदा[12] हो जाती हैं। सारे फ़्रांसीसी तख़्लीक़ी अदब[13] की बुनियाद घटिया अफ़वाहों और तुहमत-तराशी[14] पर है !"

"गौथिक तर्ज़े-तामीर[15] हिन्दोस्तान से ही एशिया और अफ़्रीक़ा में फैला," अगले सोफ़ों पर बात हो रही थी।

"अफ़्रीक़ा में ? लाहौल वला क़ूव्वत !" किसी ने कहा।

थोड़ी देर तक इसी तरह अलग-अलग ग्रुपों में ज़ाती पसन्द के मौज़ूआत पर गुफ़्तगू होती रही। धीरे-धीरे "टेम्पो" तेज़ होता गया। फिर अचानक तहरीक और तर्ग़ीब[16] के बग़ैर, भिनभिनाहट की वह यकसानीयत[17] एक तरफ़ से टूट गई, जब रौशन आग़ा के पास बैठे हुए "मजलिसे-ख़ुद्दामे-हिन्द" के नुमाइन्दे ने सबको मुख़ातिब करके बोलना शुरू किया :

"अंग्रेज़ी फ़ौजों के मुल्क से इन्ख़िला[18] का मुतालबा इस वक़्त में सख़्त ग़ैर-दानिशवराना[19] है। उसके सिपुर्द महज़ मुल्क को दिफ़ाअ[20] का काम है और उसने अपने फ़राइज़ ईमानदारी से सर-अंजाम दिए हैं। जंगे-अज़ीम में उन्होंने अपनी क़द्रो-क़ीमत वाज़ेह कर दी है। अपने मुल्क के साथ-साथ उन्होंने मुल्क को भी जंग की हौलनाकियों[21] से बचाया और मुल्क के तितर-बितर अवाम में से एक फ़ौज खड़ी की है। क्या हमारी फ़ौज हिन्दोस्तान को जंग से बचा सकती थी ? जबकि फ़ौज का मुल्क की अन्दरूनी पॉलिसी में कोई दख़ल नहीं है, तो मैं नहीं समझता कि उसकी मौजूदगी से इन्तिक़ाले-नज़्मो-नसूक़[22] में कौन-सी रुकावट पड़ सकती है ? अगर वह लोग हमारी फ़ौज की सरबराही[23] छोड़कर चले गए, तो...आप जानते हैं ? एक ग़ैर-मुनज़्ज़म[24], मुसल्लह फ़ौज...ओह..." उसने आँखें मीचकर उस ख़ौफ़नाक ख़याल पर हलकी-सी झुरझुरी ली।

प्रोफ़ेसर सिंह ने वहीं से उसकी बात उठाई, "हिन्दोस्तान में कौन-से हथियार बन रहे हैं ? अब हवाई जंग का ज़माना शुरू हो चुका है !"

"हम तरक़्क़ीयाफ़्ता[25] जंगों का अररर...तरक़्क़ीयाफ़्ता मुल्कों के हमलों का मुक़ाबला कर सकते हैं ?"

---

1. ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, 2. तत्त्व, 3. बुद्धिजीवियों, 4. मनोविज्ञान, 5. भूमध्यरेखा क्षेत्र, 6. साहित्य, 7. समकालीन, 8. सामाजिक चेतना, 9. समालोचक, 10. उपद्रव-प्रिय, 11. आन्दोलन, 12. शीर्ण, 13. सृजनात्मक साहित्य, 14. आरोप लगाने, 15. निर्माण-कला, 16. उत्तेजन और प्रलोभन, 17. एकरसता, 18. निकालने, 19. बुद्धिहीनता, 20. रक्षा, 21. भयंकरताओं, 22. व्यवस्था का परिवर्तन, 23. नेतृत्व, 24. अव्यवस्थित, 25. उन्नत।

लखनऊ के अंग्रेज़ी अख़बार के नुमाइन्दे ने अपने मटमैले गालों पर हाथ फेरा और चश्मा नाक पर ठीक करते हुए बोला, "नाज़ुक-तरीन मस्अला[1], जो इस वक़्त दरपेश है, "डिक्टेटर-इज़्म" का है ! वह आमिराना[2] पॉलिसी, जिसकी तरफ़ बाज़ इन्तिहापसन्द[3] जमाअतें मुल्क को ले जा रही हैं," यह अल्फ़ाज़ उसने नज़रें उठाए बग़ैर मुफ़क्किराना[4] लहजे में कहे और उसी तरह नीचे देखता हुआ बैठा रहा।

डॉक्टर अम्बेडकर ने पहली बार पाइप मुँह से निकाला, "अभी प्रोफ़ेसर सिंह ने..."

लेकिन उनकी बात ख़त्म होने से पहले कश्मीरी ब्राह्मण, जो सबसे पहले बोला था, बेख़याली में बोल उठा, "स्वराज, स्वराज क्या है ? क़ौमियत[5] ? क़ौमियत क्या है ? यह बैनलअक़्वामियत[6] का दौर है। इश्तिराकी[7] क़ौमें और यूरोपी अक़्वाम[8] इस क़ौमियत के ख़ब्त में अलाहिदगी में जा पड़ी हैं और अब मआशी तकलीफ़ात[9] में मुब्तला हैं। कोई क़ौम आज अकेली ज़िन्दा नहीं रह सकती। ख़ुदमुख़्तारी[10] और नेशनलिज़्म का नारा एक निहायत तंग-ख़याल मआशी और सियासी नज़रीये[11] का हासिल है। क्या हम तरक़्क़ीयाफ़्ता मुल्कों से तिजारती तअल्लुक़ात ख़त्म करके अपनी साख क़ायम रख सकते हैं ? ख़ुदमुख़्तारी ? और उसे हासिल करने का जो तरीक़ा-ए-कार बतलाया जाता है..." वह ख़ामोश हो गया।

अख़बार का नुमाइन्दा कानों पर हाथ फेरता और ऐनक ठीक करता हुआ सीधा होकर बैठ गया और अंग्रेज़ी में बोलने लगा, "यही तरीक़ा-ए-कार है, जो सरासर ग़लत है। "डाइरेक्ट एक्शन", जिसे बाज़ इन्तिहा-पसन्द जमाअतें उछाल रही हैं, क़तई तौर पर दहशतअंगेज़ी[12] है..."

तमाम मेहमान ख़ामोशी से बैठे सिगरेट पीते रहे। ख़ातून ने सियाह ऐनक उतारकर साफ़ की और दोबारा लगा ली। फिर मराठों के लिबासवाला शख़्स, जो इस तमाम दौरान में ख़ामोश बैठा रहा था, छड़ी को उँगलियों में घुमाकर पहली दफ़ा बोला, "दूसरों पर एतिराज़ात करने से पेश्तर बेहतर है कि अपना नुक़्ता-ए-नज़र वाज़ेह किया जाए। हर बात वक़्त और हालात के मुताबिक़ वुक़ूअ-पिज़ीर[13] होती है। अभी वह वक़्त नहीं आया कि हम मर्कज़ी हुकूमत की बागडोर सँभाल सकें। हमें दिफ़ाअ या ख़ारिजा-पॉलिसी[14] से तअल्लुक़ नहीं है, लेकिन विज़ारते-ख़ज़ाना[15] और मुल्क का आम बन्दोबस्त हमारे हाथों में होना चाहिए। इसका मतलब..." उसने छड़ी उठाकर एक पल को सवालिया नज़रों से चारों तरफ़ देखा। फिर फ़ैसलाकुन[16] अन्दाज़ में छड़ी ज़मीन पर टेकते हुए बोला, "डोमिनियन स्टेटस।"

इसके बावजूद सुबह का ज़्यादातर वक़्त दूसरों पर एतिराज़ात करने में सर्फ़ हुआ। दोपहर के क़रीब सब मेहमान इस कार्रवाई से उकता गए और ख़ाली-ख़ाली नज़रों से ख़िताब करनेवालों को देखने लगे। वाज़ेह तौर पर दोपहर के खाने का इन्तिज़ार हो रहा था। यह दावत उन दावतों में से थी, जिनके लिए रौशन महल मशहूर था।

खाने के बाद मुअज़्ज़ज़ मेहमानों की गिरानी-ए-तबअ[17] का ख़याल करते हुए जल्दी से एक रेज़ॉल्यूशन पास किया गया, जिसमें मुल्क की इन्तिहा-पसन्द[18] जमाअतों की दहशतअंगेज़[19] कार्रवाई की मज़म्मत[20] की गई और "डोमिनियन स्टेटस" का मुतालबा किया गया। ज़्यादातर मेहमान ग़ुनूदगी[21] की हालत में थे और बाज़ सोफ़ों पर दराज़ बाक़ायदा क़ैलूला[22] कर रहे थे।

---

1. गम्भीर समस्या, 2. तानाशाही, 3. उग्रवादी, 4. विचारकों जैसा, 5. राष्ट्रीयता, 6. अन्तर्राष्ट्रीयता, 7. साम्यवादी, 8. राष्ट्र, 9. आर्थिक कष्टों, 10. स्वतन्त्रता, 11. दृष्टिकोण, 12. आतंकवाद, 13. घटित, 14. विदेश नीति, 15. वित्त मन्त्रालय, 16. निश्चयात्मक, 17. पेट का भारीपन, 18. उग्रवादी, 19. हिंसात्मक कार्यों, 20. निन्दा, 21. ऊँघ, 22. भोजनोपरान्त विश्राम।

23

साइमन कमीशन के लखनऊ पहुँचने से दो रोज़ पहले अज़रा वहाँ पहुँची। लखनऊ में उसे दो काम करने थे : एक नईम से मिलना, दूसरा साइमन कमीशन का इस्तिक़बाल[1]।

इस सिलसिले में लाहौर के वाक़िआत और लाला लाजपत की मौत की वजह से मुल्क भर में साइमन कमीशन की बेपनाह तशहीर[2] हो चुकी थी और जिन शहरों में अभी उसे जाना था, वहाँ हफ़्तों पहले से सियाह झंडियों के साथ उसका इस्तिक़बाल करने की तैयारियाँ की जा रही थी। उससे मुतअल्लिक़ ख़बरों को इन्तिहाई अहमियत दी जा रही थी। मुल्क के बड़े-बड़े अख़बारों में उसकी नक़्लो-हरकत[3] और दूसरी मसरूफ़ियात[4] का हाल जली हरूफ़[5] में छापा जाता था और हर मजलिस, हर महफ़िल में उसका तज़्किरा था। अज़रा इस मौक़े को हाथ से न जाने देना चाहती थी। दिल्ली में रौशन आग़ा के डर से वह किसी मुज़ाहिरे में शरीक न हो सकती थी, चुनाँचे उसने लखनऊ जाने की ठान ली, जहाँ पर वह ज़िला जेल में नईम से भी मिल सकती थी। उस मुलाक़ात को बहरहाल उसने उस वक़्त तक मुल्तवी रखा, जब तक कि साइमन कमीशन का इस्तिक़्बाल न कर लिया।

लखनऊ की उस शफ़्फ़ाफ़ सुबह को वे कांग्रेस के दफ़्तर से रवाना हुए। शहर और आस-पास के देहात से आए हुए वे लोग हज़ारों की तादाद में थे। उनमें से ज़्यादातर तो शहर पहुँचने के लिए रात भर पैदल चलते रहे थे। धूल से अटे बालों और थके हुए चेहरोंवाले और जाहिल, नंगे और बेकस लोग एक-एक दो-दो करके जमा होते हुए अब एक महीब और मुहर्रिक क़ुव्वत[6] की शक्ल इख़्तियार कर चुके थे, जिस पर क़ाबू पाने का काम हुकूमत की मुसल्लह इन्तिज़ामी[7] मशीनरी के सिपुर्द था। मवेशियों के ग़ल्ले की तरह एक-दूसरे से भिड़ते, रेलते-पेलते और धूल उड़ाते हुए उन लोगों की आँखों में कोई तहैया[8], कोई बग़ावत न थी, सिर्फ़ लाइल्मी[9] और उम्मीद थी, जो भूके मवेशियों की आँखों में दूर से चारे का खेत देखकर पैदा होती है। उनका नज़्ज़ारा देखनेवाले के दिल में एक मजमूई[10] ताक़त के साथ-साथ बेअन्दाज़ रहम के जज़्बात पैदा करता था। अज़रा ने उन्हें देखा और सोचा।

"इनको कौन धोखा दे सकता है ? इन्हें कौन पीठ दिखा सकता है ?"

हज़ारों इनसानी सिरों के ऊपर जगह-जगह छोटे-बड़े सियाह झंडे लहरा रहे थे और हुजूम में बार-बार तीन अंग्रेज़ी अल्फ़ाज़ की पुकार उठ रही थी : "साइमन, गो बैक !" शायद यह अंग्रेज़ी ज़बान के सिर्फ़ तीन अल्फ़ाज़ थे, जो उनमें से बहुत-सों ने उम्र भर में सीखे थे, और इनका मतलब उनमें से किसी को न आता था, लेकिन वे उन्हें इस जज़्बे से दुहराए जा रहे थे, जैसे उनकी सैंकड़ों बरस की मेहनत और ग़रीबी का इनाम इन्हीं तीनों लफ़्ज़ों में छिपा हुआ था। मुख़्तलिफ़ सड़कों पर से गुज़रते हुए उनके साथ और भी जत्थे आकर मिलते गए और रेलवे-स्टेशन तक पहुँचते-पहुँचते उस लम्बे-चौड़े जुलूस में कई हज़ार का इज़ाफ़ा हो चुका था। रास्ते में सब सड़कों पर पुलिस और फ़ौज का पहरा था। पिछली शाम इसी तरह के एक जुलूस को लाठी-चार्ज के ज़रिए तितर-बितर किया जा चुका था।

रेलवे-स्टेशन के सामने एक मैदान में उन्हें रोक दिया गया। घुड़सवार पुलिस के जवान लोहे की ज़ंजीर की तरह उनके आगे खड़े हो गए। उनके चेहरों पर कोई जज़्बा न था। वे अपने सामने खड़े हुए लोगों की आँखों में देखने से कतरा रहे थे और हुजूम के सिरों के ऊपर-ऊपर देख रहे थे। पीछे मैदान में फ़ौज और पुलिस की एक भारी तादाद बे-तरतीबी से फैली हुई थी और उनसे परे ज़िले के तमाम हुक्काम, जिनमें ज़्यादा तादाद ग़ैर-मुल्कियों की थी, फैले हुए थे। उन्होंने अपनी

1. स्वागत, 2. प्रचार, 3. गतिविधियाँ, 4. व्यस्तताएँ, 5. बड़े-बड़े अक्षरों, 6. भयानक और उत्तेजक शक्ति, 7. सशस्त्र प्रबन्ध, 8. दृढ़ संकल्प, 9. अज्ञानता, 10. सामूहिक शक्ति।

टोपियाँ आँखों पर नीचे तक खींच रखी थीं और धूप में उनके चेहरे ज़र्द दिखाई दे रहे थे। कई लोग आगे बढ़ने का इम्कान न पाकर ज़मीन पर बैठने शुरू हो गए और जब वे सामने खड़े हुए मुसल्लह फ़ौजियों के सख़्त चेहरों को देख-देखकर उकता गए, तो आपस में बातें करने लगे। अज़रा ने अपने क़रीब चन्द किसानों को देखा। पहले उन्होंने क़तार को तोड़कर छोटा-सा दायरा बनाया, फिर एक ने सन का एक टुकड़ा जलाकर आग सुलगाई, दूसरे ने पगड़ी टटोलकर तम्बाकू और गुड़ निकाला, तीसरे ने हुक़्क़ा तैयार किया। फिर वे बैठकर बारी-बारी कश लगाने और दिलजमई[1] से बातें करने लगे। अज़रा ने सुना। वे गाँव की बातें कर रहे थे, और फ़सलों की और बैलों की, और तम्बाकू की तारीफ़, जो शराब से ज़्यादा कड़वा था, और जिन्स[2] की गिरानी[3] की शिकायत, और अपनी औरतों की, जो आठ-आठ माह की हामिला[4] थीं, और खेतों में काम न कर सकती थीं, और रोज़मर्रा की कितनी ही ऐसी बातें, जो हर शाम को चौपाल में बैठकर किया करते थे, और अज़रा ने ख़ामोशी से दिल में तअज्जुब किया कि ये मामूली-मामूली लोग किस क़दर आसानी के साथ वक़्त की गिरानी को क़बूल करके नज़रअन्दाज़ कर देने के क़ाबिल थे और इस लिहाज़ से वे सामने खड़े हुए और फिरते हुए उन लोगों से किस क़दर मुख़्तलिफ़ थे, जो अज़ीयतनाक तवज्जुह[5] और एहतियात के साथ अपने आपको सँभाले हुए थे।

अगली सफ़ में खड़े-खड़े उसने परवेज़ को देखा, जो घुड़सवारों की क़तार के पीछे मैदान को पार कर रहा था, और वह हैरान रह गई। उसके अन्दाज़े के मुताबिक़ उसे उस वक़्त दिल्ली में होना चाहिए था। एक पल के लिए उसे ख़याल हुआ कि परवेज़ ने उसे देख लिया है। वह घबरा गई। इस सारे अरसे में पहली बार उसे ख़याल आया कि वह किस क़दर ना-मुनासिब जगह पर खड़ी थी, कितने ना-मुनासिब माहौल में ! दुकानदारों और मज़दूरों और किसानों के दरमियान, और वह परवेज़ की बहन थी। ख़ान बहादुर ग़ुलाम मुहीउद्दीन ऑफ़ रौशनपुर की लड़की थी, और रौशन महल में चीफ़ कमिश्नर को मदऊ[6] किया जाता था, कि वह घुड़सवारों के दूसरी तरफ़ के गिरोह से तअल्लुक़ रखती थी और इस तरफ़ खड़ी थी—तनहा, ग़ैर-महफ़ूज़। उसे दिल में शर्म महसूस हुई। उसी वक़्त पुलिस के जवानों की क़तार बीच में टूटकर सामने से हट गई और सामने धूल का तूफ़ान दिखाई देने लगा। देखते ही देखते वे गर्द में से निकल आए। यह घुड़सवार फ़ौजियों की क़तार थी, जो मैदान में फैली हुई थी और तेज़ी से उनकी तरफ़ बढ़ रही थी।

पूरी रफ़्तार से हमलावर होते हुए घुड़सवारों का नज़्ज़ारा यक़ीनन हौसला-शिकन[7] होता है। हुजूम की पहली क़तारों में हलचल मच गई और लोग अपनी-अपनी जगह से उठने लगे। फिर अचानक किसी अनदेखी ताक़त के तहत मज्मा साकित[8] हो गया और फ़िज़ा पर मुकम्मल ख़ामोशी छा गई, जैसे इम्तिहान के कमरे में हज़ारों तालिबे-इल्मों[9] पर छा जाती है। सिर्फ़ घोड़ों की टापों की आवाज़ बाक़ी रह गई, जो बर्क़-रफ़्तारी के साथ लहज़ा-बा-लहज़ा[10] क़रीबतर होती जा रही थी। आख़िर पत्थर की तरह गड़े हुए मज्मे के साथ टकराकर उन्होंने बागें खींच लीं और घोड़े अगले पाँव उठाकर सीधे खड़े हो गए। अज़रा ने अपने सिर पर घोड़े के सुम हवा में काँपते हुए देखे और अपने आपको एक लम्बे क़द के मर्द के पीछे छुपाने की कोशिश की, मगर नीचे आते हुए घोड़े का सुम उसके माथे से टकरा गया, जिससे वहाँ पर हल्का-सा ज़ख़्म आ गया और क़तरा-क़तरा ख़ून बहने लगा।

उसके बाद लाठी-चार्ज शुरू हुआ। ख़ामोशी उसी तेज़ी के साथ टूट गई और चारों तरफ़ चीख़ो-पुकार मच गई। तेज़ी के साथ सरसराते और मार गिराते हुए मुगदर और लाठियाँ उनके सिरों पर से गुज़रने लगे। अचानक वह बेहद ख़ौफ़ज़द होकर वापस भागी। भागते-भागते उसने लाठियों की मार से गिरते, उठते और हासिदाना[11] जज़्बे के साथ अपनी जगह की हिफ़ाज़त करते हुए मर्द

---

1. एकाग्रता, 2. अनाज, 3. महँगाई, 4. गर्भिणी, 5. यातनाजनक, 6. आमन्त्रित, 7. हिम्मत तोड़नेवाला, 8. निश्चल, 9. विद्यार्थियों, 10. क्षण-प्रतिक्षण, 11. ईर्ष्यालु भावना।

देखे। उनके हाथ वापस मार गिराने के लिए बेचैन हो रहे थे और उनके चेहरे शदीद नफ़रत से सियाह हो गए थे। और ग़ुस्से, ज़िल्लत और जिस्मानी तकलीफ़ के मारे दाँत नंगे करके वे ज़मीन से उठ रहे थे। अज़रा ने पीछे मुड़कर देखा। उसे घुड़सवारों के चन्द चेहरे दिखाई दिए। उन पर भी वही शदीद नफ़रत और तनाव था। अचानक कुहराम और अफ़रा-तफ़री के उस वक़्त में अज़रा के दिमाग़ ने बेहद वाज़ेह तौर पर काम करना शुरू कर दिया। उसने सोचा, कि किस तरह इनसानों के दो गिरोह, बग़ैर किसी देरीना इनाद[1] और जान-पहचान के, नफ़रत और इन्तिक़ाम के जज़्बात लेकर अचानक आमने-सामने आ खड़े होते हैं कि हाकिम और महकूम[2] गिरोहों के दरमियान उस तीसरे गिरोह की, जो महकूम गिरोह में से चुना जाता और हथियारों के तौर पर इस्तेमाल होता था, किस क़दर ला-यानी[3] और मज़्हकाख़ेज़[4] पोज़ीशन है। कुछ ही पलों के अन्दर-अन्दर ख़याल की यह तेज़ी ग़ायब हो गई और वही कनफ़्यूज़न फैल गया। लेकिन यह वक़्त उसे बहुत देर तक याद रहा और इस वाक़िए के गुज़र जाने के बहुत अरसे के बाद उसने नईम से इसका ज़िक्र किया कि किस तरह ख़तरे और अबतरी[5] के वक़्त में उसका ज़ेहन हैरतनाक तौर पर वाज़ेह और तेज़ था।

हुजूम के पीछे उसने एक शख़्स को देखा, जो उलटे पाँव भागते हुए मज्मे की तस्वीरें ले रहा था। वह माथे के ज़ख़्म पर से कपड़ा हटाकर ऐन उसके सामने जा खड़ी हुई।

मुख़्तसर-सी मुज़ाहमत[6] के बाद लोग शदीद होती हुई ज़र्बों से बिलबिलाकर भाग उठे। हमलावरों ने कुछ देर तक उनका पीछा किया फिर रुक गए। मज्मा आगे जाकर ठहर गया और उस वक़्त तक रुका रहा, जब तक कि साइमन कमीशन के अरकान[7] गाड़ी से उतरे बग़ैर लखनऊ स्टेशन पर से ख़ामोशी के साथ गुज़र न गए।

नईम की मुशक़्क़त में नुमायाँ तौर पर कमी कर दी गई थी और अब वह क़ैदियों के फटे-पुराने कपड़े मरम्मत करने के काम पर मुक़र्रर था। आहिस्ता-आहिस्ता उसने सीने-सिलाने में काफ़ी महारत हासिल कर ली और इस काम से ख़ुश रहने लगा।

उस रोज़ वह लोहे के जंगले से टेक लगाए बैठा एक क़मीज़ सी रहा था कि सी.ओ. नम्बर 19 (Convict Overseer) उसके क़रीब आकर बैठ गया। उनके पीछे शोर मचाते हुए क़ैदी पानी खींच रहे थे और धूप सीधी उनके सिरों पर पड़ रही थी। सी.ओ. नम्बर 19 ने शीशे का एक छोटा-सा टुकड़ा जेब से निकाला और उसमें देख-देखकर दाढ़ी के सफ़ेद बाल नोचने लगा। नईम अपने काम में मसरूफ़ रहा। ओवरसियर ने दो-एक बार खाँसकर और पाँव ज़मीन पर रगड़कर हस्बे-मामूल अपने आने की ख़बर दी। जब नईम ने उसे कोई अहमियत न दी, तो उसने अपनी टाँगें, जो वह पहले ही पसारे हुए था, बढ़ाकर ऐन उसकी नाक के नीचे रख दीं।

"क्या कर रहे हो ?" उसने शीशे में देखते हुए पूछा।

"अन्धे हो ?" नईम ने जवाब दिया।

"मैंने किसी लुँजे को आज तक कपड़े सीते हुए नहीं देखा !"

"बेकार बातें मत करो !" नईम ने उकताकर कहा। ओवरसियर के पाँव में सुर्ख़, कच्ची खाल का नया जूता देखकर वह उसकी टाँगें पसारने का मतलब समझ गया। उसका जी चाहा कि नए ख़ूबसूरत जूते की तारीफ़ करे कि जेल में ऐसी चीज़ें कम देखने में आती थीं, मगर वह जूते के मालिक से इस हद तक उकता चुका था कि ख़ामोशी से क़मीज़ पर झुका रहा। ओवरसियर शीशे में देखकर बाल नोचता और पाँव हिलाता रहा।

"तुम कितने बरस के हो ?" नईम ने कपड़ा सीते-सीते पूछा।

"पैंतीस !"

"कितनी सज़ा बाक़ी है ?"

1. पुराने द्वेष, 2. पराधीन, 3. निरर्थक, 4. हास्यास्पद, 5. विनाश, 6. विरोध, 7. सदस्य।

"चालीस !"

"बाहर जाने से पहले मर जाओगे।"

"पता नहीं...शायद !"

"फिर दाढ़ी में से सफ़ेद बाल क्यों निकालते हो ?"

"ऐं ?" वह शीशा ज़मीन पर रखकर दाढ़ी खुजाता हुआ सोचने लगा। फिर क़हक़हा लगाकर हँसा, "सुअर...तुम क्या सोचते रहते हो ?" वह यक़ीनन अच्छे मूड में था, क्योंकि उसने पाँव आगे खिसकाया और बोला, "तुमने मेरा जूता देखा ?"

"नहीं !" नईम ने जलकर कहा।

"हा हा...लोमड़ी के बच्चे...देखो, कैसा ख़ूबसूरत है। पता है, मैंने कैसे लिया है ?"

नईम ख़ामोशी से कपड़ा सीता रहा। उसने जूता उतारा और उस पर बच्चे की तरह प्यार से हाथ फेरकर बोला, "दस महीने तक मैं इसकी राह देखता रहा। करम चन्द को जानते हो ? वह लम्बा शख़्स अफ़ीमची, जो पारसाल बाहर गया था, उसे साल भर तक मैं अफ़ीम खिलाता रहा। जब जाने लगा, तो बोला, "उस्ताद ! तुम्हें दुनिया से क्या चाहिए ?" मैंने कहा, "मेरे पीर की दरगाह पर सलाम पहुँचा आइयो !" फिर मैंने सोचा, मुद्दत हुई, मैंने नया जूता नहीं पहना। पीर को गोली मारो। तो उस दिन का गया हुआ कल वह हरामी लौटा और इसे बाहरवाली नाली में रख गया। रात भर मैं इसे निकालने में लगा रहा। जब निकला, तो भीगे हुए चूहे की तरह दिखाई दे रहा था, पर इसे मैंने निकालकर छोड़ा। तुम्हारा बाप भी इसे न निकाल सकता। देखा, अच्छा है न ?"

काफ़ी देर के बाद नईम ने तल्ख़ी से कहा, "हाँ !"

"तुम जलते हो, इसीलिए इसकी तारीफ़ नहीं करते। इसे निकालने में मेरी खोपड़ी पर तेरह ज़ख़्म आए हैं।"

"तुम्हारी शेख़ियाँ सुन-सुनकर मेरे कान पक गए हैं।"

"चुप रहो !" वह गुर्राया और शीशा उठाकर दाढ़ी साफ़ करने लगा। दोनों ख़ामोश बैठे अपना-अपना काम करते रहे, फिर ओवरसियर अचानक पुकार उठा, "हरामज़ादा।"

नईम ने सिर उठाकर देखा।

"पिस्सू है।" उसने पिस्सू को उँगलियों में मसला, जिससे ख़ून उसके पोरों पर फैल गया, "यह कमबख़्त दाढ़ी में भी घुस आते हैं," वह वहशियों की तरह नाख़ुनों से दाढ़ी खुजाने लगा, जिससे उसके गाल जगह-जगह से ज़ख़्मी हो गए और ख़ून रिसने लगा। नईम तम्सख़र[1] से हँसा।

"देखो !" ओवरसियर ने उँगली उठाई, "मैं चाहे मरूँ या ज़िन्दा दुनिया में चला जाऊँ, मेरी दाढ़ी मेरी अपनी है...मेरी..." उसने उँगली सीने पर बजाई, "तुमने इसमें दख़ल दिया, तो तुम्हारी दाढ़ी जला दूँगा।"

दोनों फिर अपने-अपने काम में लग गए। ज़रा देर बाद ओवरसियर ने शीशा जेब में डाला और उठ खड़ा हुआ, "आज मुलाक़ात है !"

"ऐं ? आज मुलाक़ात है ?" नईम चौंका।

"हाँ...तुम्हारी बीवी आएगी ?"

"पता नहीं...तुम्हारी ?"

"नहीं...मेरी बीवी अब दूसरे मर्द के साथ रहती है।" वह जाने के लिए मुड़ा। फिर रुककर बोला, "पहले हर साल आया करती थी। एक दफ़ा मैंने पूछा, "तुम्हारे ख़्वाहिश नहीं होती ?" कहने लगी, "होती है !" मैंने कहा, "जाओ। जिस मर्द के साथ जी चाहे, रहो ! मुझे इसकी परवाह नहीं ! उसके बाद वह नहीं आई।" कुछ देर तक वह वहीं खड़ा हथेली फैलाकर उसमें देखता रहा, "लेकिन

1. व्यंग्य, कटाक्ष।

कभी-कभी...मुझे याद आती है।"

नईम उसे जाते हुए देखता रहा। फिर उठकर दाढ़ी मूँडने और बाज़ू हासिल करने के लिए चला गया।

दोपहर के बाद मुलाक़ात शुरू हुई। हस्बे-मामूल क़ैदियों और मुलाक़ातियों को सात-सात की टोलियों में आमने-सामने दस गज़ के फ़ासिले पर खड़ा कर दिया गया। नईम ने दाढ़ी मूँड ली थी, लेकिन उस रोज़ वह अपना बाज़ू हासिल न कर सका, जिसे वह हमेशा मुलाक़ात से पहले चन्द मिनट के लिए हासिल कर लिया करता था। अज़रा बाएँ कोने में खड़ी थी। वह उसके सामनेवाली जगह पर जा खड़ा हुआ। इतने फ़ासिले पर से, और ऐसे जमघट में 'ख़ुशआमदीद'[1] के अल्फ़ाज़ अदा करना नामुमकिन था। चूनाँचे कुछ देर तक वे ख़ामोश खड़े रहे। फिर अज़रा ने जेब से अख़बार निकालकर लहराया : "हमने साइमन कमीशन के लिए मुज़ाहिरा किया था।"

नईम को एक लफ़्ज़ सुनाई न दिया। तमाम क़ैदी और मुलाक़ाती एक साथ चिल्ला-चिल्लाकर बातें कर रहे थे।

"हमने साइमन कमीशन का काली झंडियों से जुलूस निकाला।" वह दोबारा चिल्लाई, "यह देखो...यह तस्वीर...मेरी तस्वीर...लो," उसने अख़बार नईम की तरफ़ बढ़ाया, जिसे निगराने-मुलाक़ात ने आहिस्तगी से उसके हाथ से पकड़ लिया। वह चिल्लाती रही, "हमने उन्हें यहाँ पर उतरने न दिया। वे चोरों की तरह स्टेशन पर से ही चले गए। मुझे ज़ख़्म आ गया था। यह..." उसने माथे पर से कपड़ा उठाकर दिखाया।

नईम को यह सुनकर ख़िफ़्फ़त[2] हुई। वह ग़ैर-शुऊरी[3] तौर पर अपनी बीवी और उसके ख़ानदान पर मुतफ़ख़्ख़िर[4] था।

"तुम्हें घर पर रहना चाहिए।" उसने तल्ख़ी से कहा।

"ऐं ?"

"तुम्हें घर पर रहना चाहिए !" उसने दोबारा कहा। अज़रा ने कुछ न सुना।

"वहाँ परवेज़ भी था...वहाँ पर..." वह बोलती रही।

उस वक़्त नईम को खुले दरवाज़े में से बाहर का नज़्ज़ारा दिखाई दिया। एक औरत हाथ में सब्ज़ी का थैला लटकाए गुज़र रही थी। एक बच्चा उसका दामन थामे साथ-साथ चल रहा था। उसने मसहूर[5] होकर एड़ियाँ उठाई और अज़रा के कन्धे के ऊपर से बाहर देखने लगा। एक ख़्वाबनाक[6] क़ैफ़ियत उसके सारे वुजूद पर तारी हो गई, जिसमें उसके कान कभी-कभी काम करना शुरू कर देते और अज़रा की आवाज़ सुनाई देती। उसकी तमामतर क़ुव्वतें आँखों में मर्क़ूज़[7] हो चुकी थीं। सब्ज़ी से भरा हुआ एक ट्रक गुज़रा, जिसमें से चन्द शलग़म गिरकर सड़क पर बिखर गए। फूलदार छातेवाली एक औरत, ताँगे, बैल, कुत्ते। एक ख़ूबसूरत कुत्ते को देखते रहने की कोशिश में वह खिसकता-खिसकता साथवाले क़ैदी की बग़ल में घुस गया, जिसने धक्का देकर उसका तिलिस्म[8] तोड़ दिया। वह ख़ाली-ख़ाली नज़रों से इधर-उधर देखने लगा। उसके साथ वाले दो क़ैदी एक साथ पूरी आवाज़ से चिल्ला रहे थे।

"लाल गाय ने क्या दिया है ?" एक ने पूछा।

"दो रुपए !" उस औरत ने चिल्लाकर दूसरे की बात का जवाब दिया, जो अपने मुलाक़ाती से ज्वार का भाव पूछ रहा था, "दो रुपए मन !"

पहला क़ैदी झुँझला गया, "चुप रहो सुअर !" वह दूसरे की पसलियों में कुहनी मारकर ग़ुर्राया। नईम को हँसी आ गई। अज़रा ख़ामोशी से उसके बाज़ू को देख रही थी। उसने कई बार बारी-बारी अज़रा को और अपने बाज़ू को देखा।

1. शुभागमन, 2. लज्जा, 3. अवचेतन रूप में, 4. गर्वित, 5. मन्त्रमुग्ध, 6. स्वप्निल, 7. केन्द्रित, 8. माया।

"हाँ...वे ले गए हैं !"

"क्यों ?" अज़रा ने पूछा।

"मिल जाएगा। साफ़ करने को दिया है।" उसने झूठ बोला और लटकती हुई आस्तीन को मरोड़ने लगा।

"यह लो..." निगरान की आँख बचाकर अज़रा ने सिगरेटों का पैकेट उसकी तरफ़ उछाला।

चन्द मिनट के बाद मुलाक़ात ख़त्म हो गई और वह दिल में एक भारी कसक लेकर वहाँ से लौट आया।

उसने अज़रा की कमी को उस वक़्त महसूस किया, जबकि वह जा चुकी थी। वह अपनी कोठरी में आकर लेट गया और ख़्वाहिश की शिद्दत में उसके हलक़ से अधमरे जानवर की तरह एक ख़ुश्क दुख भरी कराह निकली। उसका जी चाहा कि वह उसके क़रीब बैठे। उसे छुए। उसे महसूस करे। उसकी जिल्द की हलकी-हलकी गर्मी, हलकी-हलकी ख़ुशबू को सूँघे और जज़्ब करे। उसके जिस्म की ढलानों पर हाथ फेरे। वह आहिस्ता-आहिस्ता पत्थर की दीवार पर हाथ फेरने लगा और जलती हुई ख़्वाहिश का धीमा, कुचलता हुआ दर्द उसके जिस्म में फैलता गया। थोड़ी-थोड़ी देर बाद वह मरते हुए जानवर की-सी ख़ुश्क, धीमी आवाज़ों में कराहने लगता।

चन्द घंटे तपते हुए जज़्बे में घुलने के बाद उसकी आँखें नुमायाँ तौर पर धँस गईं और गालों की हड्डियाँ बाहर निकल आईं।

अँधेरा होने से पहले सी.ओ. नम्बर 19 उसकी कोठरी में आया।

"उठो ! अन्धा जेबकतरा जा रहा है !"

"जा रहा है ?" नईम ने उठते हुए पूछा।

"हाँ ! दुनिया में !" फिर वह चौंक पड़ा, "ऐं ? तुम बीमार हो ?"

"नहीं !" नईम ने झूठ बोला, "मैंने खाना नहीं खाया।"

ओवरसियर जेलवालों को गालियाँ देने लगा, जो खाने में रेत मिलाकर देते थे। फिर वे दोनों अन्धे जेबकतरे की तरफ़ चल पड़े, जो छह माह गुज़ारकर बाहर जा रहा था।

उसके चारों तरफ़ सब पुराने क़ैदी, जिन्हें उस वक़्त बाहर फिरने की इजाज़त थी, जमा थे और उसके साथ ठट्ठा कर रहे थे। सी.ओ. नम्बर 19 ने जाते ही एक ज़ोरदार धप् उसकी कमर पर जमाया, जिससे उसका सिर ज़मीन से जा लगा। फिर वह उसकी दाढ़ी पकड़कर हिलाते हुए बोला, "अन्धे सुअर ! बड़े ख़ुश हो रहे हो ! दुनिया में जा रहे हो इसलिए ? अभी कोई दिन में फिर यहाँ आओगे।"

उसने पागलों की तरह हाथ-पाँव मारते हुए दाढ़ी को उससे छुड़ा लिया," अब के मैं इन हरामियों में तो नहीं आऊँगा। मेरी दाढ़ी का सत्यानास कर दिया है।"

चारों तरफ़ हँसी की एक लहर उठी।

"अन्धे ! तुम दुनिया में किसके पास जाओगे ?" एक ने पूछा।

"बाप की क़ब्र पर।"

"क्यों ?"

"वहाँ मैंने कुछ नक़्दी दबाकर रखी है। अभी कुछ रोज़ उस पर गुज़रान करूँगा, जब तक इनका आदमी मेरे पीछे लगा रहेगा। फिर अपना धन्धा शुरू करूँगा।"

"फिर तुम घर जाओगे ?"

"मेरा घर कोई नहीं।"

"बीवी ?"

"ऊँ हूँह !" उसने गूँगों की तरह सिर हिलाया।

"माँ ?"

"ऊँ हुँह।"

"बाप ?"

अन्धे ने बड़ी-सी गाली दी, "गधे के बच्चे ! उसी की क़ब्र पर तो जाऊँगा।"

"अन्धे ! अब तुम पहली जेब कब काटोगे ?" उसे तंग करने के लिए एक क़ैदी ने पूछा।

"हट जाओ...हट जाओ।" अचानक अन्धे ने चीख़कर कहा और धक्के मार-मारकर सबको पीछे हटा दिया, "खुजली शुरू हो गई।" फिर वह वहशियों की तरह नाखुनों से पाँव को खुरचने लगा। उसके पाँव गन्दे थे और उन पर जगह-जगह फटे हुए ज़ख़्म थे। खुरचने से ज़ख़्म छिल गए और उनसे ख़ून रिसने लगा। अन्धा बेदर्दी से खुरच रहा था और दर्द के मारे सी-सी करता जा रहा था। दूसरे क़ैदी चारों तरफ़ खड़े क़हक़हे लगाते रहे।

आख़िर ओवरसियर ने गालियाँ देकर सबको चुप कराया और वे उसे बड़े दरवाज़े तक छोड़ने के लिए गए। बहुत-सी अबाबीलें दूसरे आसमानों पर से उड़कर जेल के आसमान पर आ गई थीं। अन्धे के जाने का वक़्त हो चुका था। वे सब फ़ितरी तौर पर ख़ामोश और उदास हो गए। वह काँपती हुई टाँगों से लोहे के बड़े गेट की तरफ़ जा रहा था। शाम के धुँधलके में वे सब जंगली भूत-प्रेतों की तरह बेजान बाज़ू लटकाए लालची, बे-नूर निगाहों से उसे जाते हुए देख रहे थे। अचानक सी.ओ. नम्बर 19 उनमें से निकलकर भाग पड़ा। अन्धे जेबकतरे के पास आकर वह रुका और पाँव से जूता उतारने लगा।

"लो...यह ले लो...पहन लो।" वह जूता उसके हाथ में पकड़ाते हुए बोला।

अन्धे ने काँपते हुए हाथों से जूते को टटोला और बच्चों की तरह हँस पड़ा। जल्दी-जल्दी उसे पाँव में पहनकर उसने हाथ बढ़ाकर ओवरसियर के गाल में चुटकी भरी और बाहर निकल गया।

सी.ओ. नम्बर 19 हँसता हुआ नईम की तरफ़ आया, "मेरी खोपड़ी अभी तक ज़ख़्मी चूहे की तरह दुख रही है।" उसने सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, "लेकिन मैंने सोचा, वह दुनिया में जा रहा है और उसके पाँव में खुजली है।"

अँधेरा तेज़ी से चारों तरफ़ फैलता जा रहा था। वे ख़ामोशी से अपनी-अपनी कोठरियों की तरफ़ लौट आए।

जब अज़रा रौशन महल पहुँची, तो वहाँ सब नाराज़ थे। उसका इस्तक़बाल पुराने, मुहब्बत भरे तरीक़े पर न किया गया। उसकी माँ, जो पहले ही उससे दूर-दूर रहती थी, कुछ न बोली। ख़ाला ने उसे बताया कि परवेज़ उससे पहले पहुँच चुका था और वह और रौशन आग़ा सख़्त ख़फ़ा थे। परवेज़ की बीवी बज़ाहिर उस वाक़िए से बेख़बर अपने उसी सरपरस्ती और बरतरी के रवैये को बरक़रार रखते हुए उससे मिली। अज़रा ने छोटी बहन को उठाकर प्यार किया और उससे बातें करती रही। सिर्फ़ रौशन महल के तमाम मुलाज़िम और उनकी औरतें बारी-बारी सलाम के लिए हाज़िर हुईं।

फिर उसने मज़बूती से माथे पर कपड़ा जमाया और नाश्ता किए बग़ैर भारी दिल के साथ रौशन आग़ा को सलाम करने गई। वह अपनी स्टडी में चमड़े की लम्बी कुर्सी पर बैठे किताब पढ़ रहे थे। उनके सिर पर सब्ज़ रंग का फ़र्शी लैम्प जल रहा था। परवेज़ स्टूल पर चढ़कर बैठा हुआ धात की राखदानी को दरीचे के फ़र्श पर चला रहा था। उन्होंने उठकर उसका माथा न चूमा, सिर पर हाथ न रखा, कोई ऐसा इशारा न किया, जिससे उन्होंने कई बार परेशान-हाल मौक़ों पर अज़रा के दिल में सुकून और सलामती का एहसास पैदा किया था। वह दूसरे कोने में जाकर कुर्सी पर बैठ गई। परवेज़ जान-बूझकर उसकी मौजूदगी को नज़रअन्दाज़ करते हुए राखदानी के साथ मसरूफ़ रहा। अचानक अज़रा ने पहली दफ़ा रौशन आग़ा के कमरे में अपने आपको ग़ैर-महफ़ूज़[1] और कमज़ोर महसूस किया। वह जगह, जहाँ पर वह हमेशा मुहब्बत और सलामती की तलाश में आया करती थी।

1. असुरक्षित।

कमरे पर कड़ी ख़ामोशी छाई हुई थी। वह सहमी हुई नज़रों से इधर-उधर देखती रही। वही पुरानी कुर्सियाँ और सोफ़े, और परदे और किताबें...कैसी अजीब बात थी। अलमारियों में जाने कौन-कौन-सी किताबें भरी पड़ी थीं। उसने कभी उन्हें उठाकर न देखा था। इन अलमारियों में कौन-कौन-से कपड़े टँगे थे ? किसके ? उसने कभी उन पर ब्रश न किया था। सामने सब्ज़ लैम्प के नीचे उसका बाप बैठा था—तेज़ी से बूढ़ा होता हुआ...ज़र्द, दुखी, और पुर-वक़ार, जैसे एक शरीफ़ुन्नसब[1] इनसान को होना चाहिए। वह उसे न जानती थी। उसने कभी उसके मख़मली स्लीपर सीधे करके न रखे थे। वह कभी उस क़ालीन पर बिल्ली की तरह न लेटी थी। वह उन सब चीज़ों से इस क़दर अलग, इस क़दर अजनबी हो चुकी थी, पल के पले में ! कैसी अजीब बात थी।

रौशन आग़ा ने किताब बन्द करके बाज़ू की छोटी मेज़ पर रखी और सफ़ेद बालों पर हाथ फेरा। फिर सीधा उसकी तरफ़ देखकर उदास लेकिन मज़बूत लहजे में बोले, "आप लखनऊ में थीं, बीबी ?" अज़रा ने गूँगों की तरह सिर हिलाया। रौशन आग़ा ने चश्मा उतारकर किताब पर रखा और हथेलियों से आँखों को मला, "हमने सुना है, आपने वहाँ किसी हंगामे में शिरकत की ?"

"मैं नईम से मिलने गई थी !" अज़रा ने यकसाँ आवाज़ में कहा।

"तो आपका ख़याल है, हमने ग़लत सुना ?" उन्होंने ग़ुस्से को दबाकर कहा और अपने बेटे की तरफ़ देखने लगे।

"मुझे तुम्हारे कारनामे देखने के लिए चश्मे की ज़रूरत नहीं है।" परवेज़ ने तेज़ी से कहा। अज़रा ने ग़ुस्से से उसकी तरफ़ देखा और कोई सख़्त बात कहने के लिए उसके होंठ काँपे। परवेज़ ने घबरा के नज़रें हटा लीं और राखदानी में उँगली घुमाने लगा।

"नईम ने पहले ही अपनी हुब्बुल-वतनी[2] से हमारी इज़्ज़त बढ़ाई है। हमारे ख़ानदान में पिछले सौ बरसों से किसी ने ऐसे काम न किए थे।" रौशन आग़ा ख़फ़गी और तन्ज़ से हँसे। अज़रा अपनी आवाज़ पर क़ाबू पाने की कोशिश करती रही।

"मैंने तुम्हें रौशन आग़ा और रौशन महल का नाम बरक़रार रखने के लिए परवरिश किया था।" रौशन आग़ा वाज़ेह तौर पर तल्ख़ी से बोले, "आपसे उम्मीदें की थीं। यह नहीं कि छोटे लोगों की तरह आप हंगामे और क़ानून-शिकनी करें। अब आप भी जेल जाएँगी ?"

जवाब देने से पहले वह एक पल को दिल में काँपी। फिर सीधा अपने बाप की आँखों में देखते हुए बोली, "उसके साथ और भी कई बड़े-बड़े लोग जेल गए हैं। उन्होंने कोई घटिया जुर्म नहीं किया है !"

"मुझे पता है। जेल में उनके साथ अख़्लाक़ी मुजरिमों का-सा सुलूक किया जाता है।" परवेज़ राखदानी को देखते हुए बोला। टूटने से पहले वे कुछ पल बेख़याली के आते हैं, उनमें उसने बारी-बारी कई बार अपने बाप और भाई को देखा, लेकिन जवाब न दे सकी। बेकसी और ज़िल्लत के शदीद एहसास के साथ उसने दोनों हाथों से चेहरा छुपा लिया और रोने लगी। आहिस्ता-आहिस्ता दो बार उसने कहा, "बाबा...बाबा..."

कुछ देर तक दोनों मर्द पशेमानी[3] से उसकी तरफ़ देखते रहे। फिर परवेज़ स्टूल से उतरा और बाहर निकल गया। रौशन आग़ा ने चश्मा उतारकर वापस किताब पर रखा और बार-बार उँगलियों को खोलने और बन्द करने लगे। लैम्प की रौशनी में वह बेहद ज़र्द नज़र आ रहे थे और उनकी उँगलियों की पोरें कँपकँपा रही थीं। फिर वह उठे और आहिस्ता-आहिस्ता चलते अज़रा के सिर पर जा खड़े हुए। अज़रा ने रुक-रुककर कहा, "बाबा...मेरा शौहर जेल में है, और आप...आप..."

जेब से हाथ निकालकर उन्होंने आहिस्ता से अज़रा के सिर पर रखा और तेज़ी से बाहर निकल गए।

---

1. उत्तम कुल, 2. देशभक्ति, 3. लज्जा, पछतावा।

नाश्ता किए और किसी से मिले-जुले बग़ैर अज़रा ने जाकर अपने कमरे खुलवाए और सफ़ाई करवाई। फिर देर तक दरीचे में खड़ी हाथ बढ़ाकर यूकिलिप्टस के पत्तों को तोड़ती रही। दोपहर के क़रीब उसे भूक महसूस होने लगी। खाना उसने वहीं पर मँगवाया और ख़ाला से, जो उसे देखने आई थी, नर्मी से कहा, "मैं आराम करना चाहती हूँ!"

खाना खाकर वह फिर दरीचे में जा खड़ी हुई। खाना मुक़व्वी[1] और लज़ीज़ था और वह एक पुर-शिकम[2] तुवानाई[3] और फ़रहत[4] महसूस कर रही थी। वह एहसास, जो अक्सर बहुत सारा रोने के बाद भी होता है, यूकिलिप्टस के पत्ते तोड़ते हुए उसकी नज़र मैले नाखुनों और बाजुओं पर पड़ी, जिन पर सफ़र की तमाम गर्द जमी हुई थी। उसने नहाने का इरादा किया।

कपड़े उतारकर उसने ज़ैतून का तेल सारे बदन पर मला और हथेलियों की मदद से आहिस्ता-आहिस्ता उसे जिल्द में जज़्ब करने लगी। उसने रबड़ की तरह दबती और उभरती हुई अपनी गन्दुमी, तन्दुरुस्त जिल्द को देखा और उसके बदन में गहरा सुरूर और उमंग पैदा हुई। सुरूर, जिसमें प्यास छुपी हुई थी। वह दरवाज़ा खोलकर बाहर निकल आई और कमरों में फिरने लगी। क़दे-आदम आईने के सामने रुककर उसने जलती हुई आँखों से अपने जिस्म को हर ज़ाविए से देखा। उसका बदन कुँआरी लड़कियों की तरह कसा हुआ, लचकदार और मज़बूत था। देर तक वह ख़ाली दिमाग़ के साथ बन्द कमरों में चक्कर लगाती रही और उसके रोएँ-रोएँ में जलन पैदा हुई। जलन और प्यास, उस मर्द के लिए, जिससे मुहब्बत करती थी। हसरत और महरूमी[5] के अज़ीयतनाक लम्हे[6] एक-एक करके उस पर से गुज़रते रहे।

आख़िर बन्द दरीचे के पत्थर पर गाल रखे-रखे वह धीरे-धीरे वापस आ गई। उसने अपने आप पर नज़र डाली और लाल होकर गुस्लख़ाने में घुस गई। बड़ी देर नहाते रहने के बाद जब वह बालों को ब्रश कर रही थी, तो उसका जिस्म मुर्दों की तरह ठंडा हो चुका था और दिल में एक बेनाम-सी, बीमार कर देनेवाली थकान बाक़ी रह गई थी।

24

सी.ओ. नम्बर 19 का एक दूसरे ओवरसियर के साथ किसी बात पर झगड़ा हो गया और उसने लोहे के जंगले पर मारकर उसका सिर फाड़ दिया। सज़ा के तौर पर उसे दो माह के लिए कोठरी की क़ैद और सख़्त मुशक़्क़त का हुक्म सुनाया गया। सज़ा के दौरान वह बन्द दरवाज़े से टेक लगाकर बैठा रहता और हर आने-जानेवाले को गालियाँ दिया करता। उसके चेहरे पर दरिन्दों की-सी बेजान तेज़ी का असर नुमायाँ तौर पर बढ़ता जा रहा था।

यह बरसात का मौसम था। यह मौसम क़ैदियों के वास्ते सारे साल में दिलचस्प मौसम होता था। जब बारिश से दीवारों का रंग गहरा हो जाता और आसमान पर बादल एक दूसरे के पीछे भागते और बहुत-सी अबाबीलें सिरों पर उड़ा करतीं। बरसात का मौसम उनके लिए रौनक़ और तब्दीली का पैग़ाम लेकर आता।

बारिश सुबह से हो रही थी। जब कपड़े सी-सीकर नईम की आँखें और उँगलियाँ दर्द करने लगीं, तो उसने उन्हें एक तरफ़ रखा और उठकर टहलने लगा। थोड़ी-थोड़ी देर के बाद वह रुककर ख़ुशी से आसमान की तरफ़ देखता और फिर चलने लगता। चलता-चलता वह सी.ओ. नम्बर 19 कोठरी के आगे से गुज़रा। उसके दरवाज़े पर ताला लगा था और वह सलाख़ों के साथ टेक लगाए ख़ामोश बैठा था। नईम वहाँ से गुज़र गया। मौसम की वजह से वह दिल में अपने आपको इस क़दर ख़ुश और हलका-फुलका महसूस कर रहा था कि ओवरसियर का ख़ामोश, पथरीला चेहरा

1. पौष्टिक, 2. पेट भर, 3. शक्ति, 4. आनन्द, 5. निराशा और दूरी, 6. यातनाजनक क्षण।

देखकर उसे कोफ़्त हुई और वापसी पर उसने जेब से सिगरेट निकालकर उसकी तरफ़ बढ़ाया। क़ैदी ने पल भर को पथरीली नज़रों से सिगरेट की तरफ़ देखा, फिर हाथ बढ़ाकर पकड़ लिया।

"जब तुम नए-नए आए थे, तो मैंने भी तुम्हें सिगरेट दिए थे। उसका बदला उतारते हो ?" उसने कहा।

नईम ने सुनी-अनसुनी करके दोनों सिगरेट जलाए और दीवार से टेक लगाकर बैठ गया।

"तुम्हें बेहतरीन मौसम में क़ैद किया गया है।" उसने सिगरेट का कश लेकर कहा।

"मौसम ?" ओवरसियर ने बेख़याली में दुहराया, "अच्छा है ?"

"देख नहीं रहे हो ?"

उसने बाहर देखा, "हाँ, अच्छा है। अबाबीलें हैं ?"

"हाँ !" नईम ने कहा, "बहुत-सी हैं !"

ओवरसियर सिगरेट के लम्बे-लम्बे कश लेने लगा। नईम को उसके सवाल पर दिल में ख़ुशी हुई, क्योंकि उसने कभी इन चीज़ों, बादलों, मौसमों, परिन्दों वग़ैरह के मुतअल्लिक़ दिलचस्पी ज़ाहिर न की थी। दोनों ख़ामोश बैठे बरामदे की छत से टप-टप करती बूँदों को देखते रहे।

सिगरेट ख़त्म करके नईम ने उसकी तरफ़ देखा, "तुम्हारी दाढ़ी में फिर सफ़ेद बाल आ गए हैं !"

"ऐं ? दाढ़ी में ?" वह कुछ देर तक मुतफ़क्किराना[1] तौर पर दाढ़ी को खींच-खींचकर देखने की कोशिश करता रहा। फिर यकायक आँखें निकालकर चीख़ा, "मेरी दाढ़ी मेरी अपनी है। तुम इसमें क्यों दख़ल देते हो ? क्या तुम मेरी औरत हो ?"

नईम चालाकी से होंठों में हँसा। एक पल के लिए उसके दिल में अजीब-सा सुरूर पैदा हुआ। अपनी आज़ादी और दूसरे की क़ैद का सुरूर ! उसका जी चाहा कि ओवरसियर को, उस पत्थर के-से सख़्त और बेहिस शख़्स को, जिसने आज तक कभी कोई ख़्वाहिश, कोई एहसास, या कोई दिलचस्पी ज़ाहिर न की थी, अज़ीयत[2] दे। बरसों का बुग़्ज़[3] थोड़ी देर के लिए ऊपर आ गया। यह बुग़्ज़ बेवजह था, लेकिन एक लम्बे अरसे तक जेल के ग़ैर-मामूली माहौल में रहने के बाद ऐसे जज़्बात आम लोगों के दिलों में पैदा हो जाते हैं। उसने जेब से दूसरा सिगरेट निकाला और जब ओवरसियर ने लेने के लिए हाथ बढ़ाया, तो वापस खींच लिया।

"पहले वादा करो, आइन्दा मुझे गाली न दोगे !"

ओवरसियर वहशियों की तरह होंठ चबाने लगा। आख़िर जब सिगरेट पीने की ख़्वाहिश उस पर छा गई, तो वह ग़ुस्से और गालियों को ज़ब्त करके बोला, "नहीं दूँगा।" और लालचियों की तरह सिगरेट नईम के हाथ से झपट लिया।

नईम ने दोनों सिगरेट सुलगाए और ख़ामोशी से बारिश को देखने लगा। आहिस्ता-आहिस्ता बारिश बिलकुल थम गई और रहा-सहा पानी बरामदे की छत पर से बूँद-बूँद गिरने लगा।

"आज मैं उसका भेजा निकाल दूँगा !" ओवरसियर ने अपने आपसे कहा।

"किसका ?"

"नम्बर 17 का। उसने मुझसे अफ़ीम माँगी है और रिपोर्ट करने की धमकी दी है। नाजाइज़ बाप की नाजाइज़ औलाद !"

जब दूसरा सिगरेट भी ख़त्म हो गया, तो नईम ने उसे बारिश के पानी में उछाल दिया और धुएँ के नन्हे-से छल्ले को, जो बुझते हुए सिगरेट से उठा था, हवा में घुलते हुए देखता रहा।

"तुम्हारा नाम क्या है ?" फिर उसने पूछा।

"नाम ?" ओवरसियर ने दाढ़ी में उँगलियाँ घुमाईं। फिर बालों को दोहरा किया और दाँतों में लेकर चबाने लगा। फिर यकायक सोच-विचार को छोड़कर उसने क़हक़हा लगाया, "महिन्दर !"

1. चिन्तातुर, 2. यातना, 3. द्वेष भावना।

"क्यों हँसते हो ?"

"मादर चोद नाम भूल गया था," उसने हँसते हुए कहा, "महिन्दर..."

"महिन्दर...सिंह ?" नईम ने कुछ अपने आपसे, कुछ उससे पूछा।

"सिंह की माँ..." वह बोला, "ख़ाली महिन्दर..."

कुछ देर के लिए नईम को एक पुराने, खोए हुए दोस्त की तकलीफ़देह याद आई। लेकिन जेल की लम्बी ज़िन्दगी, जिसने उसके जज़्बात को कुन्द कर दिया था, आड़े आ गई।

"हाँ, तो महिन्दर..." उसने कहा, "तुमने क़त्ल किया था ?"

"सात..."

'सात ?" नईम चौंक उठा।

जवाब में ओवरसियर तल्ख़ी से हँसा।

"कैसे ?" नईम ने पूछा। वह नज़र जमाकर नईम को देखने लगा। उसके तेवर देखकर नईम को गाली या किसी सख़्त जवाब की उम्मीद हुई, लेकिन थोड़ी देर के बाद उसने ख़ुद-ब-ख़ुद कहना शुरू कर दिया : "हमारी सात माएँ थीं और हम ग्यारह भाई थे। बहुत-सी ज़मीन थी, जिसमें हम सब्ज़ियाँ और हर क़िस्म का अनाज बोया करते थे। दूसरी माएँ बदशक्ल और फूहड़ थीं। मेरी माँ सबसे कमउम्र और शक्लवाली थी, क्योंकि वह एक ऐसे शख़्स की बेटी थी, जिसके पास बेहतरीन कपास का बीज था और उसने अपनी बेटियों को खेतों में काम करने के लिए नहीं भेजा था, बल्कि वे घर में ही छोटा-मोटा काम करके पली थीं। दूसरी औरतें मेरी माँ से जलती थीं, क्योंकि मेरा बाप महीने में बीस रोज़ हमारे पास सोता और दस रोज़ बाक़ी सबके पास। तीसरी माँ, जो चुड़ैल से मिलती-जुलती थी, हमसे इसलिए भी जलती थी, कि हर साल कपास की फ़सल के मौक़े पर मेरी माँ अपने बाप के घर से सूत लाकर मेरे बाप के लिए कपड़े बनाया करती थी। उसका बेटा बड़ा बदमाश था। वह उसे हमारे ख़िलाफ़ भड़काती रहती थी। वह मुझसे उम्र में बड़ा और ताक़तवर था और मुझसे झगड़ने के बहाने ढूँढ़ता रहता था। कई दफ़ा उसने इधर-उधर के बहाने करके मुझे खेतों में पकड़कर मारा। मैं उस वक़्त चुप रहा, लेकिन दिल में इरादा कर लिया कि बड़ा होकर इसका बदला लूँगा। जब मेरा बाप मर गया, तो मेरी माँ ने दूसरी औरत से कहा, अब हमारा मर्द मर गया है और फ़साद की जड़ ही नहीं रही, इसलिए अब हमें सुलह से रहना चाहिए। चुनाँचे वे मिल-जुलकर रहने लगीं। लेकिन मेरे दिल में बैर बैठ चुका था, ज्यों-ज्यों बड़ा होता गया, उसे पालता रहा। मेरा भाई भी साथ-साथ बड़ा हो गया, और वह बड़ा बदमाश निकला। उसने गाँव में बदमाशों का गिरोह बना लिया, जो हर वक़्त उसके साथ रहते। वह लोगों के बैल चुराकर बेच देते और किसानों की औरतें उठाकर ले जाते और खड़ी फ़सलें काट लेते। गाँववाले उनसे ख़ौफ़ खाते थे। एक रोज़ मैं अपने खेत में खड़ा था कि वे दनदनाते हुए वहाँ से गुज़रे। मेरा भाई मुझसे बोला, "तुम्हारी माँ बदचलन औरत है। उसने हमारे बाप की इज़्ज़त मिट्टी में मिला दी है। वह मोचियों और कमीन लोगों के साथ सोती है," यह सुनकर मुझे दुख हुआ। मैंने कहा, "इस वक़्त मैं तुम्हारा कुछ नहीं कर सकता। तुम्हारे साथ तुम्हारे साथी हैं और मैं अकेला हूँ। लेकिन याद रखो, एक न एक दिन मैं तुम्हें क़त्ल कर दूँगा।" वह मेरी धमकी का ठट्ठा उड़ाकर चला गया।

उस रात मैंने अपनी माँ से पूछा, "मोचियों के साथ तुम्हारे तअल्लुक़ात कैसे हैं ?"

उसने कहा, "अच्छे हैं !" इस पर मैंने उसे भाई की बात बताई और उसे क़त्ल करने का इरादा ज़ाहिर किया। यह सुनकर मेरी माँ डर गई और दरवाज़े की कुंडी लगाकर बाहर चली गई। जब काफ़ी देर गुज़र गई, तो मैंने उठकर अन्दर से दरवाज़े के क़ब्ज़े उखाड़े और बाहर निकल आया। मेरी माँ की चारपाई ख़ाली थी। उसी वक़्त मैंने उसे घर में दाख़िल होते हुए देखा। मेरा शक मुकम्मल हो गया। मैंने उसका गला घोंटकर वहीं पर उसे ख़त्म कर दिया। उसी रात को मैंने बदमाश भाई

को भी क़त्ल कर दिया और जंगल में भाग गया। वहाँ पर मुझे कुछ ऐसे आदमी मिल गए, जो मेरी तरह भागे हुए थे और भूकों मर रहे थे। मैंने सलाह करके गिरोह बना लिया और डकैतियाँ शुरू कर दीं। एक रोज़ ख़्वाहिश के ज़ोर करने पर मैं छुप-छुपाकर अपनी बीवी से मिलने के लिए गाँव गया, तो देखा कि मेरे बच्चे को उस बदमाश के बेटे ने क़त्ल कर दिया है। मैं पागल हो गया। एक पहर के अन्दर-अन्दर मैंने उस बदमाश की बीवी और चारों बेटों को हलाक कर दिया और वापस आ गया। काफ़ी अरसे तक हम डाके मारकर और मुसाफ़िरों को लूटकर पेट पालते रहे। आख़िर एक रोज़ शराब पी रहे थे कि पकड़े गए। मेरे क़त्लों के ऐनी गवाह मौजूद न थे, चुनाँचे मुझ पर डकैतियों के मुक़दमे चले और अड़तालीस साल की सज़ा मिली। एक सिगरेट दो !''

''नहीं है।'' नईम ने कहा। वह ग़ुस्से में भरा हुआ बैठा रहा।

अब धीरे-धीरे दिन का उजाला ग़ायब हो रहा था। बारिश फिर शुरू हो चुकी थी। यकायक नईम ने महसूस किया कि महिन्दर ने बैठे-बैठे, भारी-भारी साँस लेने शुरू कर दिए हैं।

''उसके बाद मैंने इस जगह को अपना घर बना लिया। अब उन्होंने यहाँ पर ही मुझे क़ैद कर दिया...सुअर...कुत्ते...'' यहाँ आकर उसकी आवाज़ फैलकर फट गई और उसने दोनों हाथों में सलाख़ों को पकड़कर वहशियों की तरह दरवाज़े को झँझोड़ा। नईम ने घबराकर उसे देखा। उसे अपनी तरफ़ देखते हुए पाकर अचानक वह रोने लगा। बहुत ज़्यादा दुख से उसका चेहरा भद्दा हो गया और वह एक ऐसे आदमी की तरह रो रहा था, जो रोने से बिलकुल अनजान होता है, जैसे कुत्ता खाँसता हो।

''मेरी बीवी दूसरे मर्द के साथ सोती है। मैंने बरसों से...'' उसने फटी हुई आवाज़ में कहा।

उस उधेड़ उम्र के कठोर आदमी को जेल की सारी कंगाली, दुख और कोफ़्त के बोझ से टूटकर बच्चे की तरह रोते हुए देखकर नईम के दिल में एक ख़ौफ़नाक एहसास पैदा हुआ।

जिस तरह एकाएकी वह रोया था, उसी तरह चुप हो गया। ख़ामोश, भारी-भारी साँस लेते हुए, एक दूसरे से नज़रें बचाते हुए वे दोनों बैठे रहे। फिर ओवरसियर अपनी कठोर आवाज़ में बोला, ''तुम भेड़िए की तरह सख़्तदिल हो !''

उस दूसरे शख़्स के दुख और अपनी रुखाई पर नईम को अपने कमीनेपन का एहसास हुआ। वह नदामत से हँसा और उठ खड़ा हुआ। ''मैं मानता हूँ कि जेल रहने के लिए अच्छी जगह नहीं है,'' उसने सलाख़ों पर हाथ रखकर नर्मी से कहा, ''फ़िक्र न करो। मैंने भी कई बरस से कुछ नहीं देखा, जैसे बाग़, और बच्चे औ...र अंगूर !''

वह कोशिश करके दोबारा हँसा और अध-सिए कपड़ों का गट्ठा उठाकर अपनी कोठरी की तरफ़ चला गया।

25

जिस रोज़ नईम रिहा हुआ, उसके साथियों ने जेल के दरवाज़े पर उसका इस्तिक़्बाल किया और उसे फूलों से लाद दिया। जेल की उजाड़ दुनिया से निकलकर अचानक इतने सारे ख़ुशबूदार, रंग-रंग के फूल और पुराने साथी पाकर, वे लोग जिनके चेहरों पर मुहब्बत और एहसानमन्दी के अनगिनत जज़्बात थे, नईम के सीने का ख़ला[1] भर गया और उसकी आँखों में ज़िन्दगी की नर्मी और मुहब्बत उतर आई। उस थोड़े-से वक़्त में ही उसने अपने आपको फिर उसी पुरानी दुनिया का ख़ुश और सेहतमन्द इनसान महसूस किया। एक मक़्सद के लिए काम करनेवाले लोगों में ज़िन्दगी और दोस्ती की ऐसी बेपनाह क़ुव्वतें होती हैं !

1. शून्य।

अज़रा को ख़बर मिलने में देर हो गई थी। वह उसे दिल्ली के स्टेशन पर मिली।

"रौशन महल चलेंगे ?" नईम ने पूछा।

"नहीं ! रौशनपुर जाएँगे। मैंने टिकट ले लिए हैं !" अज़रा ने कहा।

सफ़र के दौरान नईम लोगों की निगाहों से बेख़बर उसके दोनों कन्धों पर बाज़ू रखे मह्वियत[1] से उसे देखता रहा। इन सारे सालों ने अज़रा में कोई तब्दीली पैदा न की थी। वह उसी तरह हसीन और शानदार थी। उसका बदन ज़िन्दा मछली की तरह सख़्त और चिकना था। सिर्फ़ उसके चेहरे पर ज़र्दी थी और आँखों के गिर्द की जिल्द सँवला गई थी, जिससे एक तवील, ख़ामोश अज़ीयत[2] का पता चलता था, लेकिन उसके होंठ उसी तरह भरे हुए और नम थे। नईम के ज़ेहन में एक पुराना, मज़्हक[3] ख़याल उभरा कि अगर इन होंठों को उँगलियों में पकड़कर आहिस्ता से दबाया जाए, तो यह फट जाएँगे और इनमें से रस बहने लगेगा। उसने चुपके से मुस्कराकर अज़रा को अपने साथ लगा लिया और उसका दिल एक ताक़तवर एहसास से भर गया, ताक़तवर इनसानी रिश्तों का एहसास, जिससे वह एक लम्बी मुद्दत तक अनजान रहा था।

शाम गहरी हो चली थी, जब वे रौशनपुर पहुँचे। लकड़ी के फाटक पर लटकती हुई तख़्ती को नईम ने आहिस्ता से छुआ। फिर वह दरवाज़ा खोलकर अन्दर दाख़िल हुआ। अँधेरे में उसने बहते हुए पानी के हलके शोर को सुना और रात के फूलों की ख़ुशबू को चारों तरफ़ फैलते हुए महसूस किया। दोनों रखवाले कुत्ते अज़रा के साथ एक अजनबी को देखकर चौंके और कान खड़े करके होशियारी से दुम हिलाने लगे। तनावर दरख़्तों के नीचे-नीचे अँधेरे, सर्द रास्तों पर से गुज़रते हुए नईम ने जिस्म पर ख़ुशगवार थकन और भूक महसूस की। दरख़्तों पर दिन के परिन्दे सोने से पहले शोर मचा रहे थे और रात के ख़ामोश परिन्दे फड़फड़ाकर उड़ रहे थे।

नेमतख़ाने में दाख़िल होकर नईम ने कहा, "हम यहाँ बैठकर खाएँगे !" और फ़र्श पर बैठ गया।

"अच्छा !" अज़रा ने ख़ुशी से जवाब दिया। वहाँ बैठकर उन्होंने जंगली परिन्दों का भुना हुआ गोश्त खाया, जो गर्म और क़ुव्वत-बख़्श[4] था। उसके बाद उन्होंने क़हवा पिया, जो रौशन महल की ख़ुशबूदार चाय की पत्तियों का था। क़हवे के दौरान अज़रा की नज़र नईम के बाज़ू पर पड़ी और वह चौंक उठी। फिर बग़ैर कुछ कहे, उसने दुख से लकड़ी की टूटी हुई उँगली को छुआ। नईम की ज़बान पर गन्दी-सी गाली आई, जिसे वह मुश्किल से रोक सका, "उन्होंने तोड़ दी है" उसने जल्दी से बात ख़त्म कर दी। ख़ुशी के उस वक़्त में, जबकि ख़ुश-ज़ाइक़ा[5] खाने से उसका पेट भरा हुआ था, और जिस्म में एक ख़ुशगवार थकान गुदगुदा रही थी, वह कोई ऐसी बात नहीं करना चाहता था, जो उसे नाख़ुश कर दे। खाने से फ़ारिग़ होकर उसने दूध माँगा।

"परिन्दे के गोश्त के साथ दूध नहीं पिया करते। भूल गए हो ?" अज़रा ने कहा।

नईम को याद आया कि यह उसके बाप की नसीहतों में एक थी, चुनाँचे वह कन्धे उचकाकर उठ खड़ा हुआ।

अँधेरे में कमरे में लेटकर उसने अपनी बीवी के भरे हुए होंठों को शौक़ और जज़्बे से चूमा, उसके जिस्म पर हाथ फेरा, अपने बासी होते हुए जिस्म को उसके सेहतमन्द और गदराए हुए बदन के साथ रगड़ा और देर तक उसकी हलकी-हलकी ख़ुशबू और गर्मी को जज़्ब करता रहा। फिर बाज़ू उसके गिर्द लपेटकर कस के अपने साथ चिमटा लिया, यहाँ तक कि उसे डर लगा, कहीं अज़रा का साँस न रुक जाए, मगर अज़रा भी उसे भींचे हुए थी। उसे अपनी बीवी की ज़िन्दगी और ख़्वाहिश का एहसास हुआ। उसने उसकी गर्दन में नर्मी से दाँत गाड़ दिए और थोड़ी-सी देर के लिए ख़ुद को उसके वुजूद का एक हिस्सा समझा। अगले पल अचानक उसके दिल में डर पैदा हुआ और उसकी पकड़ ढीली पड़ने लगी।

1. तल्लीनता, 2. वेदना, 3. हास्यास्पद, 4. शक्तिवर्धक, 5. स्वादिष्ट।

आहिस्ता-आहिस्ता वह उससे अलग हो गया। कुछ देर तक दोनों मुर्दों की तरह पड़े रहे। फिर अज़रा ने आहिस्ता-आहिस्ता उसके बालों पर हाथ फेरना शुरू किया। नईम सीधा लेटा-लेटा होंठ काटता रहा, यहाँ तक कि रिसते हुए ख़ून का नमकीन ज़ाइक़ा उसने अपनी ज़बान पर महसूस किया।

"जेल...की वजह से है।" उसने नाराज़गी से कहा।

"ठीक है, कोई बात नहीं।" अज़रा ने नर्मी से कहा और उसे छोटे-से बच्चे की तरह माथे पर चूमा, "तुम किस क़दर कमज़ोर दिखाई दे रहे हो !"

"जेल के ख़राब खाने की वजह से।" नईम की आवाज़ में अभी तक नाराज़गी और शर्मिन्दगी का असर था। उसने हवा में बड़ी-सी गाली दी, "मैं ठीक हो जाऊँगा। कल शिकार के लिए जाऊँगा। घोड़े की सवारी मर्द के लिए फ़ायदामन्द होती है !"

"मैं भी जाऊँगी !"

"तुम हर जगह मेरे साथ नहीं जा सकतीं !" नईम ने कहा।

"नईम ! आओ, बातें करे।" अज़रा ने आहिस्तगी के साथ उसका सिर लिहाफ़ से निकाला।

इसके बावजूद वह देर तक ख़ामोश लेटे रहे। फिर नईम ने पूछा, "क्रॉस की ज़मीन चली गई ?"

"हाँ, ज़ब्त हो गई !"

"अब मैं ग़रीब आदमी हूँ।" नईम ने कहा।

"हाँ ! हम अब ग़रीब लोग हैं," अज़रा ने दुहराया, "लेकिन हमारे पास सारी ज़मीनें हैं !"

"वह हमारी नहीं हैं !"

"अली तुम्हारी और रौशन आग़ा की ज़मीनें ख़राब कर रहा है !"

नईम चौंका, "क्यों ?"

"पता नहीं। लोग कहते हैं, अपनी माँ के कहने पर करता है। हमारी फ़सल का उसने बहुत नुक़सान किया !"

"हूँ !" वह देर तक सोचता रहा। फिर पूछने लगा, "रौशन आग़ा कैसे हैं ?"

अज़रा ख़ामोश रही।

"मुझसे ख़फ़ा हैं ?"

"पता नहीं !"

"तुमसे ?"

अज़रा ने उसकी छाती में मुँह छुपा लिया, "मुझे किसी की ज़रूरत नहीं है," वह रोकर बोली।

नईम उसकी गर्दन और पुश्त पर हाथ फेरने लगा, "मैं जल्द ही ठीक हो जाऊँगा। कल सुबह खेतों को जाऊँगा। इन चीज़ों से मैं एक मुद्दत से दूर रहा हूँ, और कोई वजह नहीं !"

उसकी आवाज़ में नाराज़गी या शर्मिन्दगी न थी। सच्चाई और दर्दमन्दी थी।

चन्द रोज़ गाँव में रहने और शिकार किए हुए तीतर और ख़रगोश का गोश्त खाने के बाद नईम बिलकुल तन्दुरुस्त हो गया। उसकी सोई क़ुव्वतें खुली ज़मीन और खुली हवा के छूने से जाग गईं और मियाँ-बीवी मुहब्बत और काम की पूरी ताक़त और मसरूफ़ियत के साथ रहने लगे।

कई दिन की कड़ी निगरानी के बाद नईम को पता चल गया कि अली शायद अपनी माँ के कहने पर उसकी ज़मींदारी और फ़सलों के साथ शरारत कर रहा था और गाँव के आवारा लोगों के साथ मिलकर बिगड़ता जा रहा था। उसने उसी दम उसे शहर भेज देने का फ़ैसला किया।

एक रोज़ सुबह सवेरे वह अपने बाप के घर में मिल गया, जहाँ नईम दोनों औरतों से मिलने के लिए गया था।

"मेरे साथ चलो।" उसने अली से कहा।

"कहाँ ?" अली ने नौजवान, बेख़ौफ़ नज़रों से उसकी तरफ़ देखकर पूछा।

"बाहर !"

घर से निकलकर वे खेतों के बीचों-बीच चलने लगे। टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडियों पर मुड़ते हुए कभी एक आगे निकल जाता, कभी दूसरा। धूप खेतों में फैल चुकी थी। हल जोतते हुए किसानों ने दोनों भाइयों को साथ-साथ चलते हुए तअज्जुब से देखा और उन पर अल्लाह की रहमतें भेजकर हाल पूछा। जबसे अली ने होश सँभाला था, वे पहली बार दोनों भाइयों को एक साथ देख रहे थे और वे अली के लच्छनों से भी वाक़िफ़ थे। जब वे बाहरवाली हवेली की दीवार के पास से गुज़र रहे थे, तो नईम ने पीछे चलते हुए पूछा, "तुम यहाँ क्यों नहीं आते ?"

"मुझे यहाँ आने की कोई ज़रूरत नहीं।" वह अक्खड़पन से बोला।

नईम ने कड़ी नज़रों से उसका जायज़ा लिया। वह सोलह साल का था, लेकिन पीछे से चलता हुआ पूरा जवान दिखाई पड़ता था। उसका क़द नईम से छोटा था, मगर हाथ-पाँव अपने बाप की तरह बड़े-बड़े और मज़बूत थे। उसका रंग सियाही-माइल सुर्ख़ था और गर्दन की जिल्द बैल की तरह मोटी और सख़्त थी। उसकी चाल में लापरवाही और फुर्ती थी। नईम ने महसूस किया कि वह उन लोगों में से था, जिनके साथ सख़्ती से काम लेना पड़ता है। क़ुदरती तौर पर उसने अपनी ताक़त का जायज़ा लिया। उसे अपने ऊपर भरोसा था, लेकिन अपने भाई के साथ मुआमला चुकाते हुए वह दिल में हिचकिचा रहा था।

"तुम हल में जुतते रहे हो ?" उसने मुस्कराकर पूछा।

"तुम मज़ाक़ करने के लिए मुझे यहाँ लाए हो ?"

नईम हँसा, "यूँ ही मुझे ख़याल आया। तुम्हारी गर्दन बैल की तरह है !"

अली का हाथ आपसे आप गर्दन की तरफ़ उठ गया। उसकी जिल्द झुरझुराई, लेकिन वह ख़ामोश चलता रहा।

जब वे हवेली से काफ़ी दूर निकल आए, तो नईम ने पूछा, "तुम काम क्यों नहीं करते ?"

"करता हूँ।" उसने लापरवाही से कहा।

"तुम्हारे दोस्त गाँव के सबसे निकम्मे लोग हैं !"

"तुम्हें क्या ?"

उनके पास ज़मीन का एक मरला और बैलों की जोड़ी तक नहीं और उनकी जवानी ढल रही है। उन्हें कोई पसन्द नहीं करता !"

"तुम्हें क्या ?" अली ने दुहराया।

नईम को बहुत ग़ुस्सा आया। वह तेज़ ग़ुस्सैली आवाज़ में बोला, "जाहिल किसान, मैं तुम्हारा भाई हूँ ! ठहरो, मेरी बात का जवाब दो !"

अली निडरता से पलटकर खड़ा हो गया। नईम आहिस्ता-आहिस्ता आगे बढ़ने लगा।

"तुमने मेरे बाद फ़सलों को क्यों तबाह किया ? और अब भी तुम डंडे बजाते फिरते हो और मेरे कामों में रोड़े अटकाते हो, क्यों ? तुम्हारे सिर में बैल की अक़्ल है ?"

"तुम तो हज को गए थे ना" अली ने निडर होकर ताना मारा, लेकिन बात ख़त्म करते-करते उसकी ज़बान लड़खड़ा गई, क्योंकि उसका बड़ा भाई, जिसे वह शुरू से बड़ा देखता आया था, दाँत पीसकर उसकी तरफ़ बढ़ रहा था।

"सुअर, मैं तुझे शहर छोड़कर आऊँगा।" नईम ने कहा और मज़बूती से उसके बाज़ू पर हाथ रखा। अगले पल एक ज़ोरदार झटके के साथ अली हाथ छुड़ाकर भाग खड़ा हुआ।

शिकारी कुत्तों की तरह झाड़ियों और पानी की नालियों पर से छलाँगें मारते वे देर तक एक

दूसरे के पीछे भागते रहे। दूर-दूर खेतों में काम करते हुए किसानों ने रुककर, आँखों पर साया करके उन्हें देखा, और हँसे : "छोटा लौंडा बड़े को वर्ज़िश करा रहा है।" उन्होंने एक दूसरे से कहा।

अली ख़रगोश की तरह आसानी और फुर्ती से भाग रहा था। वह झाड़ियों में और हल जुती हुई ज़मीन में भागने का आदी था, लेकिन नईम अपनी उम्र की वजह से सुस्त-रफ़्तारी और बेढंगेपन को कोसता हुआ भाग रहा था। कभी-कभी वह थककर रुक जाता, तो अली भी ठहर जाता और आँखों के कोनों में से उसे देखता रहता। साँस लेकर वे फिर भागने लगते। नईम घोड़े की तरह हाँफ रहा था और जानता था कि इस तरह वह इस कमउम्र लड़के को नहीं पकड़ सकता, मगर वह उसका पीछा शुरू कर चुका था और अब रुकने के ख़याल से शर्मिन्दगी महसूस कर रहा था। आस-पास दूर-दूर तक कोई आदमी न था और भागते हुए भाइयों के पास से कई ख़रगोश और गीदड़ झाड़ियों में निकल-निकलकर इधर-उधर दौड़ रहे थे। एक ख़रगोश नईम की टाँगों से टकराया और दूर तक क़लाबाज़ियाँ खाता हुआ चला गया।

"ख़रगोश को पकड़कर ले जाओ, उसका गोश्त दौड़ने के लिए मुफ़ीद होता है।" अली ने कहा।

वे भागते रहे।

आख़िर बहुत थककर नईम एक पत्थर पर टाँग रखकर हाँफने लगा। अली भी रुक गया, और कुछ देर के बाद ज़मीन पर बैठ गया। उसे बैठते देखकर नईम भी बैठने के लिए झुका ही था कि पत्थर के नीचे से एक ख़रगोश निकल भागा। वह उछल पड़ा।

"अब तुमने ख़रगोश पैदा करने शुरू कर दिए हैं।" अली ने पुकारकर कहा।

नईम शर्मिन्दगी से हँसता हुआ बैठ गया, "चुप रह जाहिल बातूनी ! आज तूने मुझे बड़ा ख़्वार किया," फिर वह बज़ाहिर अपने आप से, लेकिन ऊँची आवाज़ में बोला, "शुक्र है, मैंने जंग में टाँग तो नहीं खोई, वरना यह लौंडा कभी हाथ न आता !"

"घरवालों के दाँत नहीं गिना करते," अली ने कहा, "मैं जानता हूँ, तुम मुझे कभी नहीं पकड़ सकते !"

दोनों अपना-अपना साँस मिलाते रहे। दक्खिन की तरफ़ से बादल उठ रहा था।

"बारिश आएगी !" नईम ने कहा।

"बारिश अभी अच्छी नहीं है गेहूँ के लिए !" अली ने कहा।

जब दोनों के साँस मिल गए, तो बग़ैर कुछ कहे, उठकर फिर भागने लगे। अब अली ने गाँव का रुख़ कर लिया था। नईम को एक तदबीर सूझी। जब वे उसकी हवेली की दीवार के पास से गुज़र रहे थे, तो उसने अपनी मख़सूस सीटी बजाई। रखवाले कुत्ते घर की चारदीवारी फाँदकर अली पर टूट पड़े। वह लातों के ज़ोरदार झटकों की मदद से उनसे छुटकारा पाने की कोशिश करने लगा, लेकिन कुत्ते पले हुए और ख़ूँख़्वार थे, और इसी मक़सद के लिए रखे गए थे। इतने में नईम उसके ऊपर पहुँच गया। उसने उसे गर्दन से पकड़कर कुत्तों के पंजे से छुड़ाया। अली गर्दन छुड़ाने की लगातार कोशिश कर रहा था। नईम ने दाँत पीसकर उसकी रगों को उँगलियों में दबाया। दर्द की शिद्दत से वह बिलबिला उठा।

"एक हाथ से तुम्हें और तुम्हारे तीन दोस्तों को सँभाल सकता हूँ।" नईम ने कहा।

उसे गर्दन से पकड़े-पकड़े वह घोड़ी के पास लेकर आया। उछलकर उस पर सवार हुआ। कालर से पकड़कर अली को उठाया और अपने पीछे बिठा लिया। फिर घोड़ी की रस्सी उतारकर अपनी और अली की कमर के गिर्द फेंकी और कसकर बाँध दी। घोड़ी भागने लगी।

"मैं अब भी भाग सकता हूँ।" उसने ज़िद्दियों की तरह कहा। वह बराबर रस्सी तुड़ाकर भाग जाने की कोशिश कर रहा था।

नईम ने बागें खींच लीं। जब घोड़ी रुकी, तो वह कन्धे के ऊपर से पीछे देखकर कड़ी आवाज़

में बोला, "क्या मर्ज़ी है ? लड़ाई की ?"

"नहीं !"

"फिर चुपके बैठे रहो !"

"फिर आयशा से मेरा ब्याह कर दो।" अली ने निडरता से कहा।

नईम चौंका। गर्दन मोड़कर कनखियों से पीछे देखा। लम्बी-सी "हूँ" की, फिर सामने देखकर लम्बा-सा साँस छोड़ा और होंठों में मुस्कराया।

पूरी रफ़्तार से घोड़ी भगाते हुए वह बनावटी ग़ुस्से से बोला, "तो इसीलिए तुमने इतना ऊधम मचा रखा था ?"

अली ख़ामोश रहा।

"मैं समझा, तुम्हारी माँ तुम्हें सबक़ दे रही है !"

"मैं औरतों की बातों पर नहीं चलता।" अली ने कहा।

नहर के पुल पर कुछ किसानों ने दोनों भाइयों को उस हालत में देखा और मुस्कराकर उनका हाल पूछा। पुल पर से उतरकर नईम ने कहा, "लेकिन रावल ?"

"मैं उसे क़त्ल कर दूँगा !" अली ने फ़ैसलाकुन लहजे में कहा।

"बको मत !" मैं इन्तिज़ाम कर दूँगा !"

थोड़ी दूर जाकर अली कसमसाने लगा, "रस्सी ढीली करो। मेरा दम घुट रहा है।"

नईम ने घोड़ी रोककर रस्सी खोली और उसके गले में लपेट दी। अली चलती घोड़ी पर से छलाँग लगाकर उतरा और रकाब पर हाथ रखकर चलने लगा।

"रावल मुझसे बड़ा है, लेकिन मुझसे तेज़ नहीं दौड़ सकता ! मैंने पिछली फ़सल पर उसे कटाई में भी मात दी थी...और वह एक ख़रगोश भी नहीं पकड़ सकता।" वह बातें करता हुआ साथ-साथ दौड़ता रहा।

जब वे शहर पहुँचे, तो दोपहर ढल रही थी। वे सीधे कपड़े की मिल पर गए, जिसकी तामीर[1] का काम ज़ोरों पर था। कच्ची दीवारों और फूँस की छतवाले आरिज़ी[2] दफ़्तर में बैठा हुआ भर्ती का क्लर्क अधेड़ उम्र और ख़ाकस्तरी रंग का शख़्स था, जिसकी ऐनक के फ्रेम की एक तरफ़ से धागों की मदद से मरम्मत की गई थी। नईम ने अली को पेश किया।

"नौकरी के लिए है ?" क्लर्क ने ऐनक के ऊपर से देखते हुए तेज़, बारीक आवाज़ में पूछा।

"हाँ !"

"क्या उम्र के लौंडे की ?"

"सोलह साल !"

"उम्र कम है।" क्लर्क ने फ़ैसलाकुन लहजे में कहा।

"मैं सब काम कर सकता हूँ।" अली ने सादगी से कहा। क्लर्क ने चश्मा उतारकर उसकी तरफ़ देखा।

"फ़ैक्टरी एक्ट के तहत..." उसने बात शुरू की। नईम, जो ज़ब्त किए खड़ा था, आगे बढ़ा और चीख़कर बोला, "जब मैं सोलह साल का था, तो उन्होंने मेरे हाथ में संगीन दी थी और पकड़कर जंग पर ले गए थे।"

क्लर्क ने इस ग़ैर-मुतवक़्क़े तर्ज़े-अमल[3] से चकराकर कमर सीधी की और कुर्सी की पुश्त से टेक लगाकर बैठ गया।

अली को मिल में भर्ती करवाकर नईम उसी रोज़ गाँव लौट आया।

---

1. निर्माण, 2. अस्थायी, 3. अप्रत्याशित व्यवहार।

26

उस साल के आख़िरी दिन दिल्ली के एक इज्तिमाअ[1] में मुसलमानों की दो जमाअतों[2] को एक कर दिया गया और इस तरह एक वाहिद जमाअत ऑल इंडिया मुस्लिम लीग का क़ियाम अमल[3] में आया, जिसने धीरे-धीरे एक ज़बरदस्त मुतवाज़ी[4] और मुख़ालिफ़ सियासी क़ुव्वत[5] की हैसियत इख़्तियार कर ली और आगे चलकर वाक़िआत की तश्कील में अहम हिस्सा लिया। इस मौक़े पर सदारत करने के लिए फ्रांस से आग़ा ख़ाँ III तशरीफ़ लाए, जिनकी वजह से पूरे मुल्क में इस कॉन्फ्रेंस का चर्चा हो गया और वह मुसलमान भी, जो कि मुख़ालिफ़ सियासी नज़रियात[6] रखते थे, उसमें शरीक होने के लिए आने लगे।

इससे पहली रात नईम और अज़रा रौशन आग़ा को "शब-बख़ैर" कहने के बाद अपने कमरों को लौटे। अज़रा सेहतमन्द और मुत्मइन दिखाई दे रही थी। नईम सेहतमन्द और दिलकश दिखाई देने के बावजूद खोया-खोया-सा था और उसकी आँखों में वह ठहराव न था, जो उसकी बीवी की नज़रों में नुमायाँ तौर पर दिखाई देता था। बरसों की हलचल से भरपूर ज़िन्दगी ने उसके दिल में आरामदेह और पुर-आसाइश रिहाइश के लिए नफ़रत और बेज़ारी पैदा कर दी थी और वह उसी बेनाम ख़लिश का शिकार था, जो उस वक़्त मुल्क के करोड़ों दिलों में पैदा हो चुकी थी। वे रोज़ाना की तरह सोने के लिए बिस्तर पर लेटे, यह जाने बग़ैर कि वह रात उनके लिए क़यामत की रात थी।

आहिस्ता-आहिस्ता रौशन महल की तमाम ख़्वाबगाहों की रौशनियाँ गुल हो गईं, सिवाय दूसरी मंज़िल की एक ख़्वाबगाह के, जिसके सब्ज़ शीशोंवाले दरीचे थे और उनमें से फूटती हुई मद्धिम रौशनी में यूकिलिप्टस की चोटियाँ हिल रही थीं। जाड़ों की सुनसान रात चारों तरफ़ फैल चुकी थी और शीशों के दूसरी तरफ़ वे दोनों साथ-साथ लेटे हुए नींद से पहले की बातें कर रहे थे। रुई के नर्म गद्दों में कसमसाते हुए, दिन भर की छोटी-छोटी, ग़ैर-दिलचस्प, ख़्वाब-आवर[7] बातें।

बातें करते-करते अज़रा किसी ख़याल से चौंक पड़ी।

"कल आग़ा ख़ाँ की कॉन्फ्रेंस है ?" उसने पूछा।

"हूँ" नईम ने ऊँघते हुए सिर हिलाया। अज़रा ने ठोड़ी से पकड़कर उसका मुँह अपनी तरफ़ किया।

"रौशन आग़ा भी जा रहे हैं, पर मैं तुम्हारे साथ जाऊँगी। आग़ा ख़ाँ को बहुत साल हुए, मैंने बम्बई में देखा था। इस क़दर शानदार शख़्सियत है उनकी, अल्लाह...तुमने देखे हैं !"

"मैं बम्बई नहीं गया था," नईम जलकर बोला। अज़रा को पहले ही नींद आ रही थी, इस बात से बिलकुल ही दुबक गई। उसे ख़ामोश होते हुए देखकर नईम को अपने बर्ताव पर पछतावा हुआ। "तुम रौशन आग़ा के साथ चली जाना।" उसने कहा।

"क्यों ?"

"प्रिंस ऑफ़ वेल्ज़ से मिलकर हमें कोई ख़ास ख़ुशी न हुई थी।" उसने हँसते हुए कहा।

"ओह ! वह तो हम ऐसी ग़लत जगह पर थे..."

नईम ने करवट बदली और बाज़ू उसके जिस्म के गिर्द ले जाकर उसे चूमा, "मैं तो मज़ाक़ कर रहा था। तुम ख़फ़ा हो गईं ?" उसने दोबारा उसकी गर्दन का एक तवील, बेमज़ा बोसा[8] लिया।

"आओ, अब सो जाएँ।" उसने कहा, लेकिन अज़रा अपने महबूब होंठों के लम्स[9] से पूरी तरह जाग चुकी थी।

---

1. सम्मेलन, 2. दलों, 3. स्थापना हुई, 4. समानान्तर, 5. विरोधी राजनैतिक शक्ति, 6. दृष्टिकोण, 7. नींद लानेवाली, 8. चुम्बन, 9. स्पर्श।

"लेकिन आग़ा ख़ाँ...ओह !" उसने हथेली नईम के गाल पर रगड़ते हुए कहा, "वे ऐसी पुर-असरार शख़्सियत[1] के मालिक हैं...नहीं ?"

"हूँ !" नईम अब अपनी बीवी के तर्ज़े-अमल से पूरी तरह मायूस हो चुका था।

"मगर तुम...तो मुख़ालिफ़ पार्टी से हो।" अज़रा ने पूछा।

"मुस्लिम लीग कांग्रेस के ख़िलाफ़ नहीं है, और फिर वह मुसलमानों की जमाअत है। मैं देखना चाहता हूँ कि वे लोग क्या कहते हैं !"

"अच्छा !" अज़रा ने यकसाँ आवाज़ में कहा। उसके ज़ेहन में आनेवाले दिन की बातें इकट्ठी हो रही थीं।

"कल नए साल की रात है नईम। दो साल हुए, अरशद उस रात को हमारे साथ था। अगले रोज़ उसका हादसा हो गया।" नईम ख़ामोशी से कसमसाया।

"कल वहीद की पार्टी पर जाएँगे, ऐं नईम•? कल नए साल की रात है !"

"हूँ !"

"वहीद की बीवी बड़ा उम्दा रक़्स[2] करती है। ग्रेगसन कुनबा भी वहाँ आएगा। वे सब रक़्स के शैदाई हैं। कान्वेंट में हम सबने रक़्स सीखा है। लेकिन हम नहीं नाचेंगे, बैठकर तमाशा देखेंगे। अच्छा !"

"हूँ ऊँ !"

"तुम फ़ौजी तक़रीबी लिबास पहन सकते हो ?"

"पता नहीं !"

"क्रॉस तो चला गया।" कुछ देर तक वह चुपचाप लेटी रही। फिर उसने हाथ फैलाकर नईम के सीने पर रखा और उदासी से बोली, "कितना अच्छा होता, अगर तुम जेल न जाते, नईम..."

नईम की आँखें आप से आप खुल गईं, और वह बेख़याली से छत को घूरने लगा। आहिस्ता-आहिस्ता उसका ज़ेहन पूरी तरह जाग गया और नींद उसकी आँखों से हवा की तरह ग़ायब हो गई। उसके सीने में एक भारी, दर्द से भरी चीज़ कुलबुलाई। उसने आहिस्तगी से, उसे छुए बग़ैर, अपने आपको उसकी गिरफ़्त से आज़ाद किया और उठकर बैठ गया। दुख और तब्दीली के उस पल में उसके दिल में साथ लेटी हुई औरत के लिए शदीद नफ़रत पैदा हुई। उसका जिस्म धीरे-धीरे लगातार काँप रहा था। मैकानिकी तौर पर उसने गर्दन मोड़ी और बेशर्मी से उभरी हुई छातियों और मोटे शहवानी[3] होंठों को देखा। अचानक उसने महसूस किया कि उस नफ़्सानी[4] औरत में, उस नफ़्सानी चेहरे पर थोड़ा-सा भी हुस्न न था। उसके होंठों के फैले हुए किनारों और उभरे हुए गालों से सिर्फ़ शहवत[5] और बाज़ारीपन ज़ाहिर था। वह बिस्तर से उठा और आतशदान के पास जा खड़ा हुआ। अपने आपको सँभालने के लिए उसने कुहनियाँ आतशदान पर टेक दीं और सिर को हाथों में पकड़ लिया।

अज़रा बिस्तर पर हैरान बैठी रही।

"हिन्दोस्तान में बहुत लोगों के पास बहादुरी के तमग़े हैं। तुम उनके पास जा सकती हो !" वह उसी तरह खड़े-खड़े बोला।

अज़रा ने अजीब-सी आवाज़ में सिर्फ़ इतना कहा, "नईम, पागल हो गए हो ?"

फिर दोनों ख़ामोश हो गए। नईम की एक टाँग तेज़ी से कँपकँपा रही थी। धीरे-धीरे उसने जज़्बात के उबाल पर क़ाबू पा लिया। अब उसके दिल में एक सर्द और अटल जज़्बा था। हथेली पर सिर रखे-रखे उसने मुड़कर उस औरत को देखा।

"तुम्हारी वजह से मैदाने-जंग में मैंने एक साथी का क़त्ल किया था। तुम्हें पता है ?"

1. रहस्यमय व्यक्तित्व, 2. नृत्य, 3. कामुक, 4. कामुक, 5. कामवासना।

अज़रा अचम्भे से उसे देखती रही।

"वह मेरा दोस्त था। अपनी औरत की बात करता रहता था। मैंने उसे ख़त्म कर दिया !"

"मैं क़ुसूरवार थी ?" अज़रा ने उदासी से पूछा।

नईम ने सपाट, ग़ैर-जज़्बाती लहजे में अपनी बात जारी रखी, "मैंने ग़लती की। तुम नफ़रत के ही क़ाबिल हो !"

अज़रा का ऊपर का साँस ऊपर और नीचे का नीचे रह गया और वह कल की तरह बिस्तर से उठ खड़ी हुई। ग़ुस्से और रंज के आँसू उसकी आँखों में जमा होने शुरू हुए। तेज़-तेज़ साँस लेते हुए वह रुक-रुककर बोली, "तुम...तुमसे शादी करके मुझे क्या हासिल हुआ ? तुम...एक बच्चा तक नहीं...यह सारे साल...नफ़रत के क़ाबिल..."

"चुप रहो..." नईम ने वहशियों की तरह धात का गुलदान उठाकर उस पर फेंका। अज़रा फ़ितरी तौर पर उससे बचने के लिए एक तरफ़ को झुकी। धात का भारी वज़न फ़र्श से टकराया और कमरे की ख़ामोश फ़िज़ा में शोर पैदा करता हुआ दूर चला गया।

"निकल जाओ..." वह आगे बढ़कर दहाड़ा।

अज़रा का साँस धौंकनी की तरह चल रहा था। बरसों तक इकट्ठा रहने के बाद वह अचानक एक दूसरे के सामने आन खड़े हुए थे, अभी तक अजनबी और नफ़रत करनेवाले ! इन्तिहाई ज़िल्लत के एहसास से उसने चीख़ना चाहा, लेकिन वह सिर्फ़ इतना कह सकी, "तुम...तुम !" फिर उसने रोना चाहा, लेकिन सदमे की शिद्दत से रो भी न सकी। एक पल में जज़्बे की यह सारी वारदातें उस पर से गुज़र गईं। आख़िर उसकी आँखें आग बरसाने लगीं। तेज़, भद्दी आवाज़ में उसने कहा, "मेरे बाप का घर है। मेरे बाप की ज़मीनें हैं, जो तुम खाते हो...तुम..."

नईम की आँखों में मौत देखकर वह तेज़ी से मुड़ी और डरे हुए बच्चे की तरह भागती हुई बाहर निकल गई।

उसके जाने के बाद नईम ने उसके और अपने वुजूद के लिए अजीब-सी नफ़रत और बेइज़्ज़ती महसूस की। उस क़िस्म की नफ़रत जो ज़िना-बिलजब्र[1] के बाद इनसान को होती है। देर तक वह तअज्जुब करता रहा कि किस तरह इतने अरसे तक वह इस औरत से मुहब्बत करता रहा था।

जब तक जज़्बात एतिदाल[2] पर आए, वह अपने आपको बेहद कमज़ोर महसूस करने लगा था। फिर भी वह कहीं रात के पिछले पहर को जाकर सो सका और उजाला होने पर जाग गया।

बन्द दरीचे के शीशे पर उँगलियाँ फैलाए वह बेख़याली से खड़ा रहा। कई मर्तबा उसने रात के वाक़िए को याद करने की कोशिश की, लेकिन महज़ अपनी उँगलियों को और छनकर आती हुई धूप को और शीशे पर पड़ते हुए यूकिलिप्टस के पत्तों के साए और दरीचे के पत्थर को देखता और महसूस करता रहा। उसके ज़ेहन में बे-मानी ख़ला[3] और तअत्तुल[4] था। वह आसानी से अपने आपको सँभाले हुए खड़ा गूँगी, बेतअस्सुर[5] नज़रों से उस नई सुबह को देखता रहा, जो हर रोज़ की तरह दुनिया पर तुलूअ[6] हुई थी।

दरवाज़ा, जो रात भर खुला रहा था, हिला और ख़ाला बे-आवाज़ क़दमों से चलती हुई अन्दर दाख़िल हुई। उसके बूढ़े ख़ूबसूरत चेहरे पर बे-ख़्वाबी और रंज के आसार थे। कमरे के बीच में रुककर वह नईम की साकित, बेजान शबीह[7] को देखती रही। फिर मेज़ पर पड़ी हुई राखदानी के किनारों पर उँगली फेरने लगी। नईम मुड़ा और अनजान निगाहों से उसे घूरने लगा। वह हलके-फुलके क़दमों से चलती हुई उसके पास जा खड़ी हुई। एक दूसरे इनसान को सामने पाकर धीरे-धीरे नईम के हवास बजा हो गए। बिजली की-सी तेज़ी से सारा वाक़िआ, जो पिछली रात उसके और उसकी बीवी के दरमियान गुज़रा था, उसके ज़ेहन में कौंध गया और वह पशेमानी से इधर-उधर देखने लगा।

1. बलात्कार, 2. नार्मल, 3. अर्थहीन रिक्तता, 4. गत्यवरोध, डैडलाक, 5. प्रभावहीन, 6. उदय, 7. निश्चल, निर्जीव तस्वीर।

कमरे को पार करते हुए धात का गुलदान नईम के पैर से टकराया, और नाख़ुशगवार, मानूस, आवाज़ पैदा करता हुआ एक तरफ़ को लुढ़क गया। वे आकर आमने-सामने कुर्सियों पर बैठ गए।

"मुझे सारी बात का पता है," ख़ाला ने गुलदान क़रीब खींचकर बासी फूलों पर उँगलियाँ फेरते हुए कहना शुरू किया, "अज़रा रात भर मेरे पास बैठी रोती रही।"

"वह अपने बाप के पास नहीं गई।" नईम ने तल्ख़ी से कहा।

"आ आ आ...यह मामूली बातें हैं...मामूली...मियाँ-बीवी के लिए यह मामूली बातें हैं।"

नईम ने सिगरेट सुलगाया और कन्धे पर धुआँ छोड़ा, "ठीक है," उसने यकसाँ आवाज़ में, जिसमें हलकी-सी पशेमानी थी, कहा, "रौशन आग़ा को इसका पता नहीं होना चाहिए। तुम जानते हो, मुझे इन बच्चों से गहरा तअल्लुक़ है, और...और मुझे यहीं रहना है।"

नईम ने सिर उठाया। वह रंजीदा, मुतजस्सिस[1] नज़रों से उसको देख रही थी। नईम उसके सिर के ऊपर से शीशों पर देखने लगा, जहाँ सुबह की हवा में हिलते हुए पत्तों का साया लरज़ रहा था। गुलदान लुढ़कता हुआ जाकर दीवार के साथ लग गया, और उसके फूल जगह-जगह बिखरे हुए थे। बिस्तर पर शिकनें थीं। बन्द कमरे में सिगरेट का धुआँ बहुत धीरे-धीरे तहलील[2] हो रहा था। उसने आख़िरी कश लेकर सिगरेट राखदानी में मसला।

"ठीक है।" उसने थके हुए लहजे में कहा।

बूढ़ी औरत के चेहरे पर ख़ुशी की लहर दौड़ गई। जब नईम ने दूसरा सिगरेट सुलगाया, तो वह कुहनियाँ मेज़ पर रखकर हलकी-फुलकी, ख़ुशी से भरी आवाज़ में बातें करने लगी।

"काश ! तुम उसको ठीक तरह से समझ सको...अर ररर...तुम उसकी तबीअत से वाक़िफ़ नहीं हो सके, नईम ! तुम हमीं में से हो। तुमसे कुछ छुपा हुआ नहीं है। तुम उसके शौहर हो। उसे अपनी माँ की तरफ़ से ख़ुदसरी[3] और क़ुव्वत मिली है, लेकिन उसने रौशन आग़ा की तर्बियत, ज़ब्त, और मुहब्बत भी पाई है। उसे तुमसे बड़ी मुहब्बत है। इनसानों के साथ इतनी उम्र तक मेलजोल रखने के बाद उनकी फ़ितरत[4] के मुतअल्लिक़ में बहुत कुछ जान गई हूँ। वह तुमसे मुहब्बत करती है। तुम आज उसको अपने साथ ले जाओ, जहाँ भी तुम जा रहे हो। मुझे पता है, लेकिन...ठीक है ना ?"

"ठीक है।" नईम ने कन्धे झुकाकर कहा और उठ खड़ा हुआ।

जब वह बरामदे में उतरा, तो उसी वक़्त अज़रा दूसरे सिरे से ज़ाहिर हुई। वह बरामदे में इस तरह दाख़िल हुई थी, जैसे धकेल दी गई हो। ज़र्द और कमज़ोर। सफ़ेद लिबास में कलदार गुड़िया की-सी शान के साथ चलती हुई। दूर से एक दूसरे की तरफ़ देखकर उन्होंने नज़रें चुरा लीं। वे अजीब बेतअल्लुक़ नज़रें थीं, उनमें किसी पुरानी जान-पहचान का निशान तक न था। एक लफ़्ज़ बोले बग़ैर वे बरामदे की सीढ़ियाँ उतरकर गाड़ी में सवार हो गए।

जामा मस्जिद के सामने एक लम्बे-चौड़े मैदान में ख़ेमे और क़नातें लगी थीं और इनसानों की रेलपेल थी। यह हिन्दोस्तान की तमाम अहम और बाअसर मुस्लिम जमाअतों की कॉन्फ़्रेंस हो रही थी। चुनाँचे पेशावर से लेकर बम्बई तक के मुसलमान वहाँ पर जमा थे। यूँ दावतनामे मुल्क की हर सियासी जमाअत से तअल्लुक़ रखनेवाले लोगों को जारी किए गए थे। जलसे की कार्रवाई अभी शुरू नहीं हुई थी। पंडाल में और पंडाल के बाहर बेपनाह रश था। हर तबक़े और हर नस्ल के मुसलमान उन क़नातों के नीचे घूम रहे थे, और बैठे हुए थे। मुख़्तलिफ़ नक़ूश, मुख़्तलिफ़ लिबासों, और मुख़्तलिफ़ ज़बानोंवाले अनगिनत गिरोह बातों में मशग़ूल थे। लकड़ी के स्टेज पर, माइक्रोफ़ोन के पास, जलसे के चन्द मुंतज़िमीन[5] तेज़ी से इधर-उधर आ-जा रहे थे और उनकी बातचीत के कुछ हिस्से माइक्रोफ़ोन में सुनाई दे रहे थे। थोड़ी-थोड़ी देर बाद एक शख़्स उसमें नाक ठूँसकर पुकारता, "हैलो...हैलो...हैलो..." मिले-जुले शोर के ऊपर-ऊपर उसकी आवाज़ चारों तरफ़ गूँजती। कोई

1. दुखी और जिज्ञासु, 2. लोप, विलीन, 3. उद्दंडता, 4. स्वभाव, 5. प्रबन्धकगण।

उसकी तरफ़ ध्यान न देता।

स्टेज से लेकर जलसागाह के दरवाज़े तक क़ीमती सुर्ख़ क़ालीनों का रास्ता बनाया गया था, जिसके दोनों जानिब सफ़ेद फूलों की क़तारें थीं। जलसागाह के बाहर सरो और पाम के दरख़्तों का एक बहुत बड़ा तक़रीबी दरवाज़ा बनाया गया था, जिसके नीचे इस्तक़्बालिया[1] कमेटी के लोग खड़े थे और आ-जा रहे थे। अन्दर स्टेज पर और लकड़ी की सीढ़ियों पर क़िरमिज़ी रंग के क़ालीन बिछे थे और माइक्रोफ़ोन के पास एक मेज़ और सद्रे-जलसा[2] की ऊँची पुश्त और ज़रदोज़ी के काम वाली मख़मली कुर्सी रखी थी। स्टेज के दाएँ-बाएँ कॉन्फ्रेंस में शिरकत करनेवाले मंदूबीन[3] की निशस्तें[4] थीं, जो तक़रीबन तमाम की तमाम भर चुकी थीं। सामने मुस्लिम लीग की दोनों जमाअतें थीं, जिनके सरबराह, मुहम्मद अली जिनाह और सर मुहम्मद शफ़ी, नुमायाँ तौर पर दिखाई दे रहे थे। वहीं पर डॉक्टर इक़्बाल भी थे। दाईं तरफ़ ख़िलाफ़त कमेटी के अरकान[5] थे, जिनमें मौलाना शौकत अली और मौलाना मुहम्मद अली थे। बाईं तरफ़ जमीअतुल-उलमा-ए-हिन्द के बारीश, चुग़ापोश नुमाइन्दे[6] थे, जिनमें मौलाना हुसैन अहमद मदनी और शब्बीर अहमद उस्मानी शामिल थे। इन तीनों बड़ी जमाअतों के बीस-बीस चुने हुए नुमाइन्दे शिरकत की ग़रज़ से आए थे। इनके पीछे मुअज़्ज़ज़ और मुंतख़ब नुमाइन्दों की निशस्तें थीं। हिन्दोस्तानी मुसलमान रईस, जो अपनी शानो-शौकत की वजह से समन्दर पार तक मशहूर थे, अपने बेशक़ीमत आराइशी चुग़ों और तक़रीबी लिबासों और ख़िताबों के हमराह आए थे। उनके मख़मली लबादों पर क़ीमती धात के तारों की कशीदाकारी की हुई थी और उन्होंने चमकदार सितारोंवाली ख़ानदानी टोपियाँ पहन रखी थीं। चन्द एक ने सुबह का अंग्रेज़ी लिबास भी पहन रखा था। वे सादा, मगर बाइख़्तियार अन्दाज़ में टाँगें फैलाए आरामदेह निशस्तों पर फैले हुए थे। उनकी नज़रें नींद में डूबी और बे-मसरफ़ थीं। इनके पीछे नंगे सिरों और अध-नंगे जिस्मों का एक समन्दर था, जो दूर तक फैला हुआ था। यह वे अनगिनत, ग़ैर-अहम लोग थे, जो हर तहरीक[7] और तब्दीली के पीछे आख़िरी और असल क़ुव्वत होते हैं। वे तेज़, बेसब्र और मुश्ताक़[8] चेहरों के साथ कार्रवाई शुरू होने का इन्तिज़ार कर रहे थे। कांग्रेस के जलसों के बरअक्स इस जलसे में मुसलमान औरतों में परदे के रिवाज की सख़्ती की वजह से ख़वातीन[9] की तादाद न होने के बराबर थी। चुनाँचे जब नईम और अज़रा जलसागाह में दाख़िल हुए, तो बहुत-सी मुतजस्सिस[10] निगाहें उनकी तरफ़ उठ गईं। वे दोनों बेलोच चाल से चलते, हुजूम से अपने आपको अलग रखते हुए, आकर रईसों और अवाम की दरमियानी निशस्तों पर एक जगह बैठ गए। बैठते-बैठते नईम ने एक उचटती हुई नज़र अपनी बीवी पर डाली। उसके चेहरे पर कोई तअस्सुर[11] न था।

थोड़ी देर के बाद हिज़ हाईनेस सर आग़ा ख़ाँ अपने निजी अमले और इस्तिक़्बालिया कमेटी के अरकान में घिरे हुए दाख़िल हुए। तमाम लोग उठकर एहतिरामन[12] खड़े हो गए। आग़ा ख़ाँ सुबह के सफ़ेद अंग्रेज़ी लिबास में थे। उन्होंने छड़ीवाला हाथ उठाकर लोगों के सलाम को क़बूल किया और भारी, ठिगने जिस्म के साथ, धीमी पुर-वक़ार चाल से चलते हुए स्टेज की सीढ़ियाँ चढ़कर कुर्सी-ए-सदारत पर बैठ गए। भरे पंडाल में मौत की ख़ामोशी छा गई। उस सन्नाटे में अचानक नईम ने अपने आपको अनगिनत इनसानों में घिरा हुआ महसूस किया, अपनी बीवी की मौजूदगी को महसूस किया और आँखों के कोनों में उसकी तरफ़ देखा। उसके चेहरे पर रँग झलक आया था और बड़ी-बड़ी आँखों से जज़्बात ज़ाहिर थे। वह कुर्सी की पुश्त को छोड़कर सीधी बैठी हुई सद्र को देख रही थी, मुसख़्ख़र और मुज़्तरिब[13] आग़ा ख़ाँ ने सफ़ेद हैट उतारकर मेज़ पर रख दिया और छड़ी उसके साथ खड़ी कर दी। उन्होंने किसी झल्लाहट का इज़हार न किया। नईम के दिल में जलन से मिलता-जुलता एक जज़्बा पैदा हुआ। वह जान-बूझकर कसमसाया और सीधा अज़रा की आँखों में देखने लगा।

1. स्वागत, 2. सभापति, 3. प्रतिनिधियों, 4. सीटें, 5. सदस्य, 6. डाढ़ीवाले, चुग़ा पहने हुए प्रतिनिधि, 7. आन्दोलन और क्रान्ति, 8. उत्सुक, 9. महिलाओं, 10. जिज्ञासु, 11. भाव, 12. सम्मान में, 13. मुग्ध और वेचैन।

उसी पिघली हुई हालत में अज़रा ने उसके बाज़ू पर हाथ रखा और गर्म सरगोशी में, ख़यालात की शिद्दत से रुक-रुककर बोली, "अभी वे बोलेंगे, तो सुनना। वे बेहतरीन अंग्रेज़ी..."

नईम की आँखों में सर्द ग़ुस्सा देखकर वह ठिठक गई और उसका चेहरा ज़र्द पड़ गया। अगले पल वह कानों तक सुर्ख़ हो गई। उसने मज़बूती से होंठ बन्द कर लिए और नीचे देखने लगी।

काफ़ी देर के बाद जब नईम के ज़ेहन ने काम करना शुरू किया, तो स्टेज पर सर शफ़ी कह रहे थे : "...मैं पंजाब मुस्लिम लीग को ऑल इंडिया मुस्लिम लीग में मुदग़म[1] कर देने के रेज़ॉल्यूशन से इत्तिफ़ाक़[2] करता हूँ और उसे मुहम्मद अली जिनाह की क़ियादत[3] में देता हूँ और ख़ुद भी उनकी क़ियादत क़बूल करता हूँ।"

तालियों और नारों के शोर में सर शफ़ी और मुहम्मद अली जिनाह बढ़कर आपस में गले मिले और देर तक हाथ मिलाते रहे।

"आज हिन्दोस्तान की मुसलमान जमाअत एक..." सर शफ़ी ने कहना शुरू किया।

"जमाअत नहीं, 'क़ौम' कहो।" मुहम्मद अली जिनाह ख़फ़गी से अंग्रेज़ी में बोले।

"हिन्दोस्तान की मुसलमान क़ौम एक प्लेटफ़ॉर्म पर जमा हो गई है," उन्होंने कहा और उचटती हुई निगाह साहबे-सद्र पर डाली, जो बेहद उदास नज़र आ रहे थे।

इस मुक़ाम पर उसका ज़ेहन फिर तारीकी में चला गया और एहसास ऊपर आ गया। वह अकेला बैठा था, हज़ारों इनसानों में घिरा हुआ। उसके पास उसकी बीवी बैठी थी, जिसके लिए उसके दिल में कोई जज़्बा न था। वे बरसों तक साथ-साथ रहे थे, साथ सोए थे, और अभी तक अजनबी थे। वह बेशर्मी की हद तक नफ़्सानी[4] और ख़ूबसूरत थी, वह मुहब्बत करनेवाली थी, वह बेहूदा औरत थी, वह ऊँचे तबक़े की औरत थी, वह बरतर थी, वह तहज़ीबो- तमद्दुन[5] की औरत थी। वह एक निकम्मा मर्द था—निकम्मा और नादार, मामूली...बेहद मामूली...

"रेज़ॉल्यूशन पास किया जाता है," एक शख़्स, जो शक्लो-शबाहत से अहम दिखाई देता था, माइक्रोफ़ोन पर कह रहा था, "यह नतीजा वोटिंग के बाद निकाला..."

उसकी बात ख़त्म होने से पहले मौलाना मुहम्मद अली कूदकर स्टेज पर चढ़े और मख़सूस जोशीले अन्दाज़ में उसे परे धकेलकर माइक्रोफ़ोन पर क़ब्ज़ा जमा लिया।

"लेकिन इस तरह हम ज्वाइंट इलेक्ट्रेट को क़बूल नहीं कर सकते," उन्होंने कहना शुरू किया, "सियासत चन्द माद्दी फ़वाइद[6] का नाम है। वे अगर हमारी शराइत[7] मानने पर तैयार हैं, तो हम ज्वाइंट इलेक्ट्रेट क़बूल करते हैं, वरना नहीं। उसके लिए उन्हें हमको तस्फ़िया-ए-हुक़ूक़ (Reservation Seats) देना होगा। तीसरा हिस्सा मर्कज़ में और सूबों में भी वेटएज (Weightage)" उन्होंने सवालिया नज़रों से मज्मे की तरफ़ देखा। यह मौक़ा पाकर पहला शख़्स, जो रेज़ॉल्यूशन का एलान कर रहा था, फुर्ती से आगे बढ़ा और मौलाना से तेज़-तेज़ बातें करने लगा। उसके अन्दाज़ से इनकिसारी[8] और मिन्नत ज़ाहिर थी।

माइक्रोफ़ोन को ख़ाली देखकर एक शख़्स, जो आग़ा ख़ाँ के कान के पास झुका हुआ था, आगे बढ़ा और घबराई हुई आवाज़ में लंच के वक़्फ़े का एलान करने लगा।

"दूसरी निशस्त दोपहर के खाने के बाद होगी।" उसने कहा। मौलाना मुहम्मद अली ने तेज़ नज़रों से उसे देखा, लेकिन उसी वक़्त साहबे-सद्र उठ खड़े हुए। उन्होंने अपना हैट उठाकर सिर पर रखा और स्टेज से उतर आए। माइक्रोफ़ोन के पास से गुज़रते हुए उनका एक फ़िक़रा लोगों को सुनाई दिया। वह अंग्रेज़ी में कह रहे थे : "मुहम्मद अली को सँभाले रखो। लंच के वक़्फ़े में उसे मत बोलने दो !"

मौलाना के गिर्द बहुत-से लोग इकट्ठे हो रहे थे। स्टेज के बाईं तरफ़ बैठे हुए ख़िलाफ़त कमेटी

1. मिला देना, 2. सहमति, 3. नेतृत्व, 4. कामुक, 5. सभ्यता और संस्कृति, 6. भौतिक लाभों, 7. शर्तें, 8. नम्रता।

के अरकान बरअफ़रोख़्ता[1] चेहरों के साथ एक दूसरे की तरफ़ देख रहे थे।

वे दोनों अपनी जगह से उठे और एहतियात के साथ हुजूम से अपने आपको बचाते हुए जलसागाह से बाहर निकल आए। एक बार फिर बहुत-से सिर ज़र्द चेहरेवाली, बा-वक़ार ख़ातून की जानिब मुड़ गए। रौशन महल की सीढ़ियों पर वे उसी तरह जुदा हो गए। उन्होंने कोई जज़्बा, कोई शाइस्तगी महसूस न की। उन्हें इकट्ठा रखनेवाली कोई क़ुव्वत उनके दरमियान बाक़ी न रही थी। उसी शाम को नईम रौशनपुर लौट आया।

उसी साल छह अप्रैल को ''डंडी साहिल'' पर महात्मा गांधी ने नमक-साज़ी का क़ानून तोड़कर ''सिविल नाफ़रमानी'' शुरू की।

27

हिन्दोस्तानी मैदानों का बेहतरीन मौसम था। वह मौसम, जिसमें रौशनपुर के अंगूर की बेलें हरी हो जाती थीं और जंगली गुलाब जगह-जगह खिलने लगता था और ख़ुशहाल शहद की मक्खियाँ अपने-अपने छत्ते भरकर, ताज़ा शहद की ख़ुशबू से बदमस्त, शफ़्फ़ाफ़ और चमकदार फ़िज़ा में उड़ती फिरती थीं और खेतों में गेहूँ और चने की फ़सल तैयार खड़ी होती थी। ये बहार के आख़िरी दिन थे, जब हवाओं में ख़ुशगवार गर्मी पैदा होने लगती है। आसमान का रंग, जो जाड़ों में गहरा नीला था, गदला दूधिया हो जाता है और शाख़ों पर फूल मुरझाकर दिन भर गिरते रहते हैं और चिड़ियाँ, कौए दोपहर को आसमान पर ऊधम मचाने के बजाय सायादार दरख़्तों और मकानों की छतों में आराम करने के लिए चले आते हैं और बदलते हुए मौसम का मख़सूस, बहुत उदास कर देनेवाला शदीद हुस्न सारे दिनों में दूर-दूर तक फैला रहता है।

गाँव के बाहर नईम की हवेली में नमक बन रहा था। हवेली मुद्दत से बन्द पड़ी थी और बाग़ वीरान हो चुका था। पानी की नालियाँ सूखी पड़ी थीं और दो-एक जगह मुर्दा कौए गिरे पड़े थे और गर्मी के मौसम की उठती हुई हवाओं में ज़र्द पत्ते उन पर से उड़ते हुए गुज़र रहे थे। घर के मालिकों में से कोई भी वहाँ न था। शीशम के एक पुराने दरख़्त के नीचे गाँव के तमाम नौजवान जमा थे। उन्होंने बिजली से मरा हुआ एक दरख़्त काटकर आग जला रखी थी। आग पर गुड़ बनानेवाला कड़ाह धरा था, जिसमें पानी उबल रहा था। वे सब ख़ामोश चेहरों के साथ इधर-उधर फिर रहे थे और धड़ाधड़ आग जला रहे थे। दिन का तीसरा पहर जा रहा था। वे अब बातें कर-करके और आग जलाकर थक चुके थे। सुबह से दोपहर तक कई बार कड़ाह का पानी उबल-उबलकर ख़ुश्क हो चुका था, पर नमक कहीं पर भी दिखाई न दिया था। अब सारे किसान लौंडे झल्ला गए थे, और एक दूसरे से उलझ रहे थे।

''कुछ मुँह से बोल, कौओं के सरदार। बाप की हवेली में नम्बरदार बने बैठे हो !'' लम्बे गालोंवाले प्रतापे ने कहा। अली अपने सियाह रंग पर तंज़ सुनकर लाल हो गया, मगर ख़ुश बैठा रहा, क्योंकि नमक बनाने के सिलसिले में वह दूसरों से ज़्यादा कुछ न जानता था और सबसे ऊँची और चौधराहटवाली जगह पर बेकार इसलिए बैठा था कि वह उसके भाई का बाग़ था।

''इनको बताओ, पानी से गुड़ कैसे बनता है ?'' गंजे अली बख़्श ने कहा और अकेला हँसने लगा।

पैदाइशी गंजा अली बख़्श ख़ामोशी से चिलम में तम्बाकू जमाकर आग धरता रहा, फिर हुक़्क़ा लेकर दूसरों से हटकर जा बैठा। वह कंजूस आदमी था और अपने तम्बाकू में से किसी को हिस्सा नहीं देना चाहता था। उससे परे रावल और आटे की मशीनवाला सन्तोख सिंह बैठे बहस कर रहे

1. क्रोधित।

थे। रावल अपनी बालदार पिंडलियों पर से कपड़ा उठाकर उसे दिखाते हुए कह रहा था, कि यह टाँगें मर्द की टाँगें थीं और उसकी मुलायम और चिकनी टाँगों पर चूँकि बाल न थे, इसलिए वह औरत की टाँगें थीं। सन्तोख जवाब में कह रहा था कि रावल की टाँगें रीछ की टाँगों की तरह थीं। कुछ देर के बाद उनकी बहस ख़ामोशी पर ख़त्म हो गई और रावल की तरफ़ देखने लगा। गंजा अली बख़्श ख़तरा महसूस करके झगड़ने का कोई बहाना तलाश करने लगा।

"क्यों बे, ख़ामोश क्यों बना बैठा है ? आयशा का दुख लगा है ?" वह बोला।

"तेरी माँ का दुख लगा है," रावल ने अक्खड़पन से जवाब दिया। गंजा खी-खी करके हँसा, "तेरे सिर में भूसा भरा है। वह तो मेरी माँ से बड़ी जवान है।"

रावल लाल-पीला होकर उठा और उसके सिर पर आ खड़ा हुआ, "और बकबक की, तो तेरी टाँग तोड़ दूँगा, गंजे कंजूस !" वह आँखें निकालकर बोला। गंजा इस अचानक हमले से घबरा गया और दोनों हाथ ज़मीन पर रखकर उसकी तरफ़ देखने लगा। रावल कुछ देर तक उसी अन्दाज़ में आँखें निकालकर उस पर झुका रहा। फिर झटके के साथ हुक़्क़ा उठाकर नाराज़ी से मुड़-मुड़कर उसकी तरफ़ देखता हुआ अपनी जगह पर जा बैठा।

जब हुक़्क़ा पी-पीकर उसका ग़ुस्सा उतर गया, तो गंजा अली बख़्श हुक़्क़ा वापस लेने के लिए उसके पास जा बैठा और इधर-उधर की बातें करने लगा।

जब सारे कुँओं का पानी बारी-बारी उबाला जा चुका और कुछ भी न बना, तो अली को सूझा कि खारे कुएँ का पानी आज़माया जाए। चुनाँचे उसके मशविरे से खारे पानी के टीन गधों पर लादकर लाए गए और कड़ाह भर दिया गया। पानी उबलने लगा और सब ऐसी चमकती हुई नज़रों से उसे देखने लगे कि कभी फ़सल के फूटने को भी न देखा होगा। उबलते-उबलते जब पानी दो इंच नीचे चला गया और ख़ुश्क जगह पर सफ़ेद-सफ़ेद नमक छोड़ गया, तो बहुत-सों ने एक साथ कहा, "नमक !" और उस पर झपट पड़े। हर एक ने बारी-बारी उँगली मल-मलकर उसे चखा।

"नमक है...नमक..." प्रतापे ने पूरी आवाज़ से चिल्लाकर कहा।

"ठहर बे, खाना नहीं," सन्तोख सिंह उसका बाज़ू झटककर बोला, "क्या पता, क्या है ?"

"पर बन तो गया।"

"हाँ-हाँ, बन तो गया।"

सब नौजवान कड़ाह के गिर्द घेरा डालकर बैठ गए और बच्चों की तरह ख़ुश और मुश्ताक़[1] नज़रों से उबलते हुए पानी को देखने लगे। कुछ ही पलों में बिजली गिरा हुआ दरख़्त टुकड़े-टुकड़े करके आग में झोंक दिया गया और तीसरे पहर की धूप के बावजूद शोले, जो कड़ाह से ऊपर उठ रहे थे, किसानों के झुके हुए, मज़बूत हड्डियोंवाले चेहरों पर झिलमिलाने लगे।

पानी की सतह बराबर नीचे जा रही थी, और वह हरदम गाढ़ा और गदला हुआ जा रहा था। कुछ देर के लिए वे सब ख़ुशी के असर से गुँग हो गए। फिर एकाएकी उठकर अली पर टूट पड़े। सन्तोखे ने अली को कन्धों पर उठा लिया और नाचने लगा। उसके गिर्द तमाम लड़कों ने नाचना और गाना शुरू कर दिया। बीच-बीच में वे रुककर ख़ुशी से नारे लगाने लगते। उनमें से एक ने भी शराब न पी रखी थी, लेकिन एक अनजाना नशा था, जो उन पर छाया हुआ था। नाचते-नाचते उनमें से कई एक ने तहमद निकाल दिए थे। यह वह पागल ख़ुशी का मंज़र था, जो किसानों में कबड्डी के मुक़ाबलों या फ़सल के मौक़ों पर देखने में आता है। वे तमाम उस वक़्त किसानों के फ़ुहश[2], इश्क़िया गाने और बहादुरी की दास्तानें गा रहे थे। कोई लय या सुर न था, सिर्फ़ एक तरंग थी और किसानों का मिला-जुला शोर। अली लम्बे सिख के कन्धों पर बैठा था और उसका सियाह रंग ख़ून के जोश की वजह से रगड़े हुए ताँबे का-सा हो रहा था। उसकी आँखों में जीत की

1. उत्सुक, 2. अश्लील।

वहशियाना चमक थी और वह बाज़ू हवा में फेंककर चीखें मार रहा था। एक शख़्स, जो उस दीवाने गिरोह में शामिल न था, रावल था। वह सबसे अलग अपनी जगह पर बैठा ज़हरीली, बदनुमा नज़रों से अली को देखे जा रहा था...

जब वे नाच-नाचकर निढाल हो गए, तो बैठकर हाँफने लगे। पानी अब सूख चला था। उन्होंने कड़ाह उतारकर नीचे रखा और दो लौंडे गाँव को दौड़ा दिए। गाँव में यह ख़बर आग की तरह फैल गई। देखते ही देखते बूढ़े और अधेड़ उम्र किसान मुट्ठी-मुट्ठी भर अनाज लेकर अपने-अपने घरों से निकल पड़े। कटाई में अभी कुछ दिन बाक़ी थे, और किसी-किसी किसान के घर में कुछ पाव ही अनाज रह गया था, लेकिन इस वक़्त उन्होंने अनाजवालों से कहा, ''एक पाव अनाज दे दो, कटाई पर सेर भर ले लेना।''

''खाने को ?''

''नहीं ! नमक के लिए।''

''ले लो, ले लो। तुम बस पहर भर आकर कटाई करा देना।'' अमीर किसानों ने कहा।

और इस तरह मुट्ठी भर अनाज के बदले उन्होंने मेहनत का सौदा किया। अपना-अपना अनाज लाकर उन्होंने फैली हुई चादर पर डाला और चुटकी-चुटकी भर नमक लेकर घरों को लौट आए।

''चलो, अच्छा हुआ। घर में नमक भी न था।'' एक बूढ़े किसान ने नमक को पगड़ी के कोने में बाँधते हुए कहा।

''अच्छा क्या हुआ,'' पीछे आता हुआ सुर्ख़ दाढ़ीवाला किसान बोला, ''यह खाने के लिए नहीं है।''

''ऐं ?''

''मुझे प्रतापे ने बताया था।''

''क्या बताया था ?''

''सिर्फ़ क़ानून तोड़ने के लिए है,'' सुर्ख़ दाढ़ीवाले ने ज़मीन पर थूककर कहा, ''यह अच्छा नमक नहीं है।''

''सुअरों ने अच्छा सौदा किया है।'' पहले किसान ने हँसकर कहा और ज़ोर से ज़मीन पर थूका।

जल्द ही आस-पास के गाँव में ख़बर पहुँच गई और रात गए तक दूसरे क़स्बों से लोग आते रहे। वे मेलों में जाते हुए किसानों की तरह टोलियों में बँटकर आए और नमक की जमी हुई खुरदरी डलियों को सिरों के गिर्द घुमाते हुए वापस लौटे। जब सारा नमक ख़त्म हो गया और रात गहरी हो गई और वहाँ कोई भी न रहा, सिवाय उन लड़कों के, जिन्होंने नमक बनाया था, तो ख़ामोशी के उस वक़्फ़े में अचानक उन्हें क़ानून तोड़ने और जुर्म करने का एहसास हुआ। जल्दी से उठकर उन्होंने अनाज की गठरी, जिसमें गेहूँ, ज्वार, बाजरा, मकई, सभी कुछ था, बाँधी और उसे दौरा करती हुई पार्टी के लोगों के पास पहुँचा दिया, जो हवेली के पिछले बरामदे में दीया जलाए काम कर रहे थे। फिर उन्होंने कड़ाह को उठाकर चूल्हे में औंधा गिराया। ताज़ा मिट्टी में उसे दबाया और ऊपर ख़ुश्क मिट्टी डालकर ज़मीन बराबर कर दी। फिर वे उसी अनजाने डर के असर में ख़ामोशी से अपने-अपने घरों की तरफ़ चल पड़े।

रावल अँधेरे में दरख़्त की जड़ के पास बैठा रहा। उसने किसी काम में हिस्सा न लिया था। जब अली गिरोह को छोड़कर घर की तरफ़ जानेवाली पगडंडी पर मुड़ा, तो वह उठ खड़ा हुआ और तेज़ी से खेतों के बीचों-बीच उसकी तरफ़ बढ़ा।

गाँव का पहला घर अभी दो खेत दूर था, जब अली ने अपने पीछे तेज़-तेज़ क़दमों की आवाज़ सुनी। वह रुक गया। चाँद की मद्धिम रौशनी में आनेवाला जंगली बिल्ले की-सी फुर्ती के साथ उसके क़रीब आ खड़ा हुआ। कुछ देर तक वे ख़ामोश खड़े एक दूसरे को देखते रहे। फिर आनेवाले ने

ज़मीन पर थूका।

"तुम आज कुत्ते के बच्चे की तरह शोर मचा रह थे। हैं ?"

अली ने अँधेरे में रावल की आवाज़ पहचान ली।

"तुमने आज बहुत काम किया है। थक गए होगे। जाओ, जाकर आराम करो।" अली ने तंज़ से कहा।

"आज हममें से एक ही आराम करेगा।" रावल ने मिट्टी के ढेले को ठोकर मारी। ढेला टूट गया और काली मिट्टी उड़कर अली की टाँगों पर पड़ी। उसने हवा में गाली दी, "मैं बदला लेने आया हूँ।"

"मुझे तुमसे कोई बदला नहीं लेना।"

"बुज़दिल...हरामी।"

"मैं औरतों के लिए किसी से नहीं लड़ता," अली ने टालते हुए कहा।

"गाय के बच्चे। हरामी। अपनी माँ के लिए भी नहीं लड़ोगे ?"

अली की रगें आहिस्ता-आहिस्ता खिंचने लगी। कई पलों तक वे आमने-सामने खड़े अजनबी जानवरों की तरह एक दूसरे को देखते रहे। फिर उन्होंने कपड़े उतारे और एक दूसरे पर टूट पड़े।

वे उछल-उछलकर एक दूसरे पर वार करते रहे। दोनों ख़ाली हाथ थे, लेकिन अपनी बेहतरीन और मज़बूतरीन उँगली के जोड़ों से एक दूसरे पर चोट लगा रहे थे। उनके पाँव में से धूल उठ रही थी, और आहिस्ता-आहिस्ता उनको अपनी लपेट में ले रही थी। उस ख़ामोश और अँधेरी रात में वे देर तक रक़ाबत[1] और दीवानगी का नाच नाचते रहे, यहाँ तक कि उनके जिस्म धूल से अट गए और वे मुँह खोलकर हाँफने लगे। फिर धीरे-धीरे अली थकना शुरू हुआ। उसे हमेशा से रावल के बड़प्पन का एहसास था, लेकिन अब उसने साफ़ तौर पर अपनी ताक़त कम होती हुई महसूस की और पहली बार उसके दिल में नौ-उम्री के ख़ौफ़ ने सिर उठाया। अपने मुक़ाबिल[2] को सुस्त पाकर रावल ने सियाह दरिन्दे की तरह हवा में छलाँग लगाई और चारों हाथ-पाँव की भरपूर कोशिश से अली को दबोचकर नीचे गिरा लिया। फिर उसके ऊपर जमकर उसने उसकी बग़लों में घुटने दिए और गर्दन को मरोड़ना शुरू किया। अली बिलबिला उठा। उसकी लम्बी वहशियाना चीख़, जो ज़ख़्मी सुअर की चीख़ से मिलती-जुलती थी, ख़ामोश रात में दूर तक चली गई। साथवाले खेत में सुर्ख़ दाढ़ीवाला किसान सो रहा था। चीख़ सुनकर वह उठा और काहिली से चलता हुआ उनके सिर पर आ खड़ा हुआ। कुछ देर तक कमर पर हाथ रखे उन्हें देखते रहने के बाद धूल की वजह से खाँसने लगा और हलक़ साफ़ करता हुआ वापस लौट गया।

"जने कब पुलिस आ जाए...और लौंडों को मस्ती आई है।" वह बड़बड़ाया।

अब रावल थोड़ी-थोड़ी देर बाद उसकी गर्दन दबा रहा था, और अली गहरी-गहरी, दर्द में डूबी मुख़्तसर चीख़ें मार रहा था।

"मत चिल्लाओ...हरामी।"

अली डरकर ख़ामोश हो गया।

"मैं तुम्हें क़त्ल कर सकता हूँ।" रावल ने इत्मीनान से कहा।

"क्यों ?"

"उसको लेकर तुम माँ की टाँगों में नहीं बैठ सकते।"

"क्यों ?" अली ने उसे बातों में लगाना चाहा।

"तुम्हें पता नहीं ?" रावल ने सारा बोझ उसकी गर्दन पर डाल दिया। अली के हलक़ से चीख़ और गाली एक साथ निकली।

---

1. एक नायिका के दो प्रेमियों की प्रतिस्पर्द्धा, 2. विरोधी।

जब रावल गर्दन दबाते-दबाते थक गया, तो ख़ामोश उसके ऊपर बैठ गया। अली ज़रा देर के बाद होश में आकर गले की रगों को मलने लगा।

"तुम्हारे जिस्म से बू आ रही है...उठो।" फिर उसने चालाकी से कहा।

"क्यों ? मैं कुत्ता हूँ, बैल हूँ ?" रावल ने उसकी गर्दन पर बोझ डालते हुए कहा, "मैं कुत्ता ही था, बैल ही था, लो...मैं उसके क़ाबिल न था। मैं कुत्ता हूँ, बैल हूँ। लो..." अली तकलीफ़ की शिद्दत से फिर चीख़ने लगा। दूसरी दफ़ा जब रावल दम लेने को रुका, तो अली नीचे से रोकर बोला, "मेरी फ़सल खड़ी है और मेरा भाई यहाँ नहीं है और तुम..."

"मैं तेरी फ़सल की परवाह नहीं करता ! तेरी फ़सल की माँ..."

"तू क्या यहाँ रहेगा, सुअर ? तेरी फ़सल को भी चूहे खाएँगे !"

रावल की पकड़ ढीली पड़ गई। वार भरपूर पड़ता देखकर अली फिर बोला, "पुलिस यूँ भी आनेवाली है। वे तुझे पकड़कर ले जाएँगे और तेरी फ़सल का भी नुक़सान होगा। बात को कटाई तक रहने दो, फिर मैं ख़ुद तुमसे लड़ूँगा। मैं कोई बुज़दिल हूँ ?"

रावल ने जवाब देने के बजाय दोनों घुटनों का बोझ उसकी गर्दन पर डाल दिया। अली की चीख़ें पल-पल तेज़ होती गईं और वह बच्चों की तरह रोने लगा। आख़िर शदीद तकलीफ़ की वजह से वह बेहोश हो गया।

रावल ने अलग होकर कपड़े उठाए, पसीना ख़ुश्क किया और हलक़ साफ़ करके ज़ोर से अली की पीठ पर थूका, "अभी इतना ही काफ़ी है, फिर कटाई के बाद सही..."

आहिस्ता-आहिस्ता खेतों की धूल बैठ गई और फ़िज़ा में रात की साफ़ हवा चलने लगी, लेकिन चोटों की शिद्दत से अली सुबह तक वहीं पड़ा रहा।

इससे ठीक चौथे दिन नईम पेशावर स्टेशन पर जाकर उतरा। उस अजनबी धरती पर क़दम रखते ही सबसे पहला ख़याल, जो उसके दिल में आया, अमीर ख़ाँ का था। उसका लँगड़ा दोस्त, जो कई साल पहले एक साझे दुख में उसका साथी था, और जिससे दोबारा मिलने का उसने वादा किया था। उस वक़्त, मसरूफ़ियत के बावजूद अचानक पुरानी दोस्ती का एहसास उसके दिल में जागा और वह, कि मुहब्बत का मुहताज था, सबसे पहले उससे मिलने को रवाना हो गया।

अमीर ख़ाँ का गाँव पेशावर के क़रीब ही था, जो पत्थरों के एक बहुत बड़े टीले के पीछे छुपा हुआ था। जब नईम उस टीले पर पहुँचा, तो सारा गाँव उसके सामने आ गया। रात पड़नेवाली थी, और पथरीले मकानों के आँगनों में कहीं-कहीं दीये जल रहे थे। सिर्फ़ गाँव के एक कोने में बहुत-सी रौशनी सियाही-माइल फ़िज़ा में आसमान की तरफ़ उठ रही थी। वह गाँव एक दूसरे मख़रूती[1] शक्ल के टीले पर था। मकान टीले की ढलानों पर ऊपर-नीचे बने हुए थे और उनमें धुआँ उठ रहा था। शाम के धुँधलके में उसने टीले के दामन में फैले हुए सियाह पेड़ों के बाग़ देखे और उससे नीचे वादी में अध-कटी फ़सलों के खेत, और दूर से बहते हुए पानी का शोर सुना और ख़ामोश खड़ा रहा। उसने आगे बढ़ने की ख़्वाहिश महसूस न की। चारों तरफ़ फैलती हुई रात में वह अकेला टीले पर खड़ा देखता रहा। सफ़ेदी-माइल आसमान के मुक़ाबिल टीले की चोटी पर उसका सियाह, लम्बा साया एक बर्क़-ज़दा[2] दरख़्त की तरह साकित[3] दिखाई दे रहा था। उसे वह गाँव जाना-पहचाना और अच्छा लगा। उसने याद करना चाहा, लेकिन उसी दम उसके दिल में ख़तरे का एहसास पैदा हुआ। वह ऐसे देश में था, जहाँ आसमान के मुक़ाबिल काले सायों को देखकर गोली मार दी जाती है। वह आहिस्ता-आहिस्ता उतरने लगा।

रास्ता पत्थरों से अटा हुआ और ढलवान था। वह पत्थरों पर से फिसलता, फलाँगता और दिल

1. शुंडाकार, 2. जिस पर बिजली गिरी हो, 3. निश्चल।

में गाँववालों को कोसता हुआ उतरता रहा। वादी को पार करके सियाह बाग़ों में से गुज़रते हुए नमदार हरे पत्तों की ख़ुशबू उसकी नाक में दाख़िल हुई और उसे घने जंगलों की ठंडक और सन्नाटे का एहसास हुआ। बहते हुए पानी का मुसलसल शोर उसके कानों में आ रहा था, लेकिन पानी रास्ते में कहीं भी न मिला, हालाँकि उस सन्नाटे और ख़ामोशी के वक़्त बहते हुए पानी के किनारे खड़ा होना और उसे पार करना उसके जी को अच्छा लगता।

गाँव में दाख़िल होकर उसे इक्का-दुक्का आदमी गलियों और रास्ते पार करते हुए मिले। तक़रीबन सभी ने बड़ी-बड़ी घेरदार शलवारें पहनी हुई थीं और कन्धों पर राइफ़लें लटका रखी थीं। उनसे पूछगछ करता हुआ आख़िर वह गाँव के पच्छिमी कोने में उन मकानों के आगे जा खड़ा हुआ, जहाँ से नारंजी रौशनी की लपटें उठ रही थीं और अन्दर-बाहर शादी का हंगामा था। यही अमीर ख़ाँ का घर था। रंग-बिरंग भड़कीले लिबास पहने ऊँची आवाज़ में बातें करते हुए मर्द और औरतें अन्दर-बाहर आ-जा रहे थे। मकान का अहाता जलती हुई चिकनी लकड़ी की मशालों से रौशन था और लकड़ी में से तेल निकल-निकलकर ज़मीन पर टपक रहा था। जगह-जगह दारचीनी और लौंग की अँगीठियाँ सुलग रही थीं और उनका ख़ुशबूदार धुआँ मशालों के धुएँ से मिलकर सारी फ़िज़ा में फैला हुआ था। अहाते के बीच में बहुत-से लोग जमा थे और उनके दरमियान एक दुबला-पतला बुड्ढा कान पर हाथ रखे ऊँची आवाज़ में गा रहा था। इतनी सारी ख़ुशी और हंगामा देखकर नईम सहम गया।

"मैं ग़लत वक़्त पर आया हूँ," उसने सोचा, "मैं उसकी ख़ुशी में मुख़िल[1] हूँगा।" वह वहीं पर खड़ा रहा। वह अहाते में से गुज़र आया था और किसी ने उसकी तरफ़ ध्यान न दिया था। अब वह घर के अन्दर जानेवाले दरवाज़े के पास अँधेरे में अकेला खड़ा था। आने-जानेवाले उसकी तरफ़ ध्यान दिए बग़ैर गुज़र रहे थे। वह दीवार के साथ लगकर खड़ा गानेवाले की आवाज़ सुनता रहा। गीत के बोल अजनबी ज़बान में थे, लेकिन उसकी लय में वही मस्ती और तरंग थी, जो उसके अपने गाँव में मेलों और शादियों के मौक़ों पर गूँजा करती थी। फिर गानेवाले के गिर्द घेरे में लहर पैदा हुई और अमीर ख़ाँ एक बैसाखी की मदद से चलता हुआ आया। वह मुँह में तेज़-तेज़ बातें करता हुआ अन्दर की तरफ़ आ रहा था। मशाल के नीचे आकर रुका। चारों तरफ़ छिछलती हुई निगाह डाली और फिर चल पड़ा। वह उसी तरह सेहतमन्द था, जैसे बरसों पहले नईम ने उसे देखा था। आग की रौशनी में उसका चेहरा नारंजी और दाढ़ी के बाल सफ़ेद थे, सिर्फ़ उसकी आँखें धुँधला गई थीं। उसने सुर्ख़ रेशम का लम्बा कुरता और सुर्ख़ फूलोंवाली वास्कट पहन रखी थी और सिर पर तेज़ नारंजी रंग का साफ़ा बाँधा हुआ था। उसे अपनी तरफ़ बढ़ते देखकर नईम आहिस्ता-आहिस्ता चलता हुआ रौशनी में आ खड़ा हुआ।

"ऐं ?" अमीर ख़ाँ आँखों पर हाथ का साया करके बड़बड़ाया, "बोलो ! तुम बिलकुल उसकी तरह चलते हो।" फिर बैसाखी पर मेंडक की तरह फुदककर उसने दो छोटी-छोटी छलाँगें भरीं, यहाँ तक कि उसकी छाती नईम की छाती से आ लगी। क़रीब से देखकर अमीर ख़ाँ ने उसे पहचान लिया और उसका चेहरा एक सादा, बेइख़्तियार मुस्कराहट में फैल गया। उसने उचककर नईम के गाल में चुटकी भरी।

"आहा, नईम। मैं अन्धा हो रहा हूँ, मगर तुम्हें दस हज़ार इनसानों और मवेशियों के हुजूम में पहचान सकता हूँ।"

"पहचान लिया ?" नईम ने अपना मज़बूत बाज़ू उसके गिर्द ले जाते हुए कहा।

"अख़्ख़ाह ! हम कड़े वक़्तों के साथी हैं। मैं तुम्हें नहीं भूल सकता। हम बुरे वक़्तों के दोस्त हैं।" वह उसे दबा-दबाकर टटोलने के बाद खींचता हुआ गानेवाले के पंडाल की तरफ़ ले जा रहा

1. बाधक।

था। रास्ते में उसने उसके लकड़ी के सख़्त बाज़ू को हैरत से आँखों के क़रीब लाकर देखा। उँगलियों से दबा-दबाकर महसूस किया और उसी तरह बेइख़्तियार हँस पड़ा।

"अच्छा है। अच्छा है !" उसने तारीफ़ी अन्दाज़ में सिर हिलाकर कहा।

भीड़ में दाख़िल होते वक़्त उसने मुड़कर बताया, "मेरे बेटे की शादी है।"

"मुबारक हो !" नईम ने कहा। वे दोनों लोगों के सिरों को फलाँगते हुए घेरे के बीच में जा खड़े हुए।

"अबे ओ बुड्ढे मेंडक ! अब टर्राना बन्द कर," अमीर ख़ाँ ने गानेवाले से कहा। फिर पंडाल में लोगों को बताया, "हम बुरे वक़्तों के दोस्त हैं। सूबेदार नईम ख़ाँ. यह बहादुर आदमी है और मेरे बेटे की शादी में मेहमान हुआ है।"

तमाम लोग उठ खड़े हुए और मेहमान से झुक-झुककर हाथ मिलाने के बाद उसके लिए रास्ता छोड़ने लगे। बुड्ढा और उसका मेहमान सबसे ऊँची जगह पर जाकर बैठ गए। नईम पक्की उम्र के बावजूद लाल हो रहा था। अमीर ख़ाँ करख़्त आवाज़ में सुननेवालों से अपनी और उसकी पहली मुलाक़ात का क़िस्सा बयान कर रहा था।

गानेवाले ने फिर गाना शुरू कर दिया। दो-एक दफ़ा उसने नईम के सामने आकर गाने की कोशिश की, लेकिन अमीर ख़ाँ ने उसके सिर पर बैसाखी मारकर उसे भगा दिया। फिर उसने बैसाखी पास बैठे हुए एक नौजवान की पसलियों में चुभोई।

"यह मेरा बेटा है—वज़ीर ख़ाँ।"

नौजवान उठकर उसके सामने आ खड़ा हुआ। वह लम्बे क़द का दुबला-पतला नौ-उम्र लड़का था और बाप से ज़्यादा ख़ूबसूरत था। वह दूल्हों के रंगीन लिबास में था और हाथ में बहुत-से फूलों के हार लटकाए हुए था। वह अक्खड़पन से खड़ा अपनी बेबाक आँखें नईम की आँखों में डाले देखता रहा। उसके चेहरे पर नौ-उम्र और कुँआरपने की दमक थी। नईम ने उसे रश्क से देखा, जैसे एक अधेड़ उम्र का इनसान अपनी गुज़री हुई ख़ूबसूरत जवानी की झलक हर नौजवान में देखता है।

"क्या काम करता है ?" नईम ने पूछा।

"फ़ौज में है।"

"ख़ूबसूरत जवान है।"

"हाँ-हाँ।" अमीर ख़ाँ हँसा, "इसने अभी जंग नहीं देखी। अभी इसके गालों पर ख़ून है। तुम्हें क्रॉस मिला था ?"

नईम ख़ामोश रहा।

"तुमको उम्मीद थी ना ? तुमने बताया था।"

"नहीं," नईम ने झूठ बोला।

"आह...हा..." अमीर ख़ाँ ने दुख से हाथ फैलाकर कहा, "बहादुरों की कोई क़द्र नहीं। कोई क़द्र नहीं।"

"तुम अपने बेटे की शादी कहाँ कर रहे हो ?"

"साथवाले गाँव में। अपनी ही बिरादरी में। अभी इस मैदान में मुक़ाबला होगा।" उसने पच्छिम की तरफ़ इशारा करके बताया।

"मुक़ाबला ?"

"हाँ।"

कुछ देर तक वे वहीं बैठे बातें करते रहे। फिर अमीर ख़ाँ उठकर अन्दर चला गया। नईम को मेज़बानों ने जो तम्बाकू पिलाया, सख़्त कड़वा था, और उसने उसका हलक़ पकड़ लिया।

थोड़ी देर के बाद बारात रवाना हुई। आगे-आगे मशालों का जुलूस था। उसके पीछे दूल्हा घोड़े

की बाग थामे पैदल चल रहा था। फिर ख़ामोश बारातियों का हुजूम। उनके चेहरे तने हुए थे और उनके कन्धों पर राइफ़लें ख़ामोश थीं। सिर्फ़ एक अकेले ढोल की धमा-धम ख़ामोश रात में गूँज रही थी। सबसे आख़िर में अमीर ख़ाँ नईम का बाज़ू थामे बैसाखी पर उछलता हुआ चल रहा था और आहिस्ता-आहिस्ता बातें करता जा रहा था, ''मुक़ाबले से पहले हम कोई फ़ायर नहीं कर सकते, न बाजे बजा सकते हैं। मुक़ाबले से पहले दूल्हा घोड़े पर सवार भी नहीं हो सकता। अल्लाह रहम करे ! अल्लाह रहम करे !''

तंग पथरीले रास्तों पर चक्कर लगाते हुए जब वे गाँव में पच्छिम की तरफ़ निकले, तो यकायक उनके सामने एक बड़ा मैदान आ गया, जो उसी तरह की मशालों से रौशन हो रहा था और बहुत-से लोग ख़ामोशी से चल-फिर रहे थे। एक बहुत बड़ी मशाल के नीचे एक छोटा-सा ख़ेमा लगा हुआ था। उससे परे एक क़तार में आग के अलाव जल रहे थे, जिन पर मुसल्लम दुम्बे घुमाए जा रहे थे। भुने हुए गोश्त की ख़ूशबू सारे मैदान में फैली हुई थी और उसकी चर्बी पिघलकर आग में गिर रही थी और चरचराकर जल रही थी। मैदान के बीच में एक इकलौता ढोलची उसी लय पर ढोल बजा रहा था।

बारातियों को आते देखकर उनकी हरकत रुक गई और सब लोग ख़ेमे के गिर्द इकट्ठे होने लगे। दोनों ढोलची एक दूसरे को मुक़ाबिल पाकर जोश में आ गए और उनके हाथ मशीन की तरह चलने लगे। मैदान के तीन तरफ़ पहाड़ियाँ थीं और आसमान तारीक था। फ़िज़ा में कोई इनसानी आवाज़ न थी और ढोल की आवाज़ हरदम तेज़ होती जा रही थी। कुछ पल के लिए नईम को महसूस हुआ कि यह कटाई के ढोल की आवाज़ थी और ख़ामोशी से काम करते हुए किसान को उकसा रही थी। कड़े वक़्तों में ढोल की आवाज़ किस क़दर बेरहम और पागल कर देनेवाली होती है, उसने सोचा।

बाराती मैदान के उस किनारे पर रुक गए। अमीर ख़ाँ उसका बाज़ू छोड़कर आगे बढ़ा और उछलकर चलता हुआ मैदान के बीच में जाकर खड़ा हो गया। सामने से उसका हमउम्र, एक भारी जिस्मवाला बुड्ढा निकला और आकर उससे मिला। थोड़ी देर एक दूसरे से बातें करने के बाद दोनों अपनी-अपनी जगह पर लौट आए। अब दोनों मज्मे ख़ामोशी से आमने-सामने खड़े थे और मशालों की रौशनी उनके चेहरों पर पड़ रही थी। फिर ख़ेमे का पर्दा हिला और गोल चेहरे और मियाने क़द की एक लड़की सियाह रेशम का भारी लिबास पहने, सिर पर तेज़ सुर्ख़ रंग का रूमाल बाँधे निकली और आकर मशाल के नीचे खड़ी हो गई। सियाह लिबास और सुर्ख़ रूमाल में उसकी बेहद सफ़ेद रंगत चमक रही थी और उसका जिस्म थोड़ा भारी था। अमीर ख़ाँ के क़रीब से उसका बेटा बारातियों के मज्मे से अलग हुआ और जमे हुए क़दमों से जाकर लड़की से तीस क़दम के फ़ासिले पर खड़ा हो गया। नौजवान दूल्हा को सामने पाकर लड़की ने जल्द-जल्द कई बार अपनी सियाह आँखें झपकीं, फिर नज़रें झुका लीं। एक बहुत लम्बे क़द का पठान चार माह के पले हुए गाय के बछड़े को उठाए हुए लाया, और उसे लड़की के सामने खड़ा कर दिया। लड़की ख़ामोश खड़ी बछड़े को देखती रही। फिर उसने एक हाथ उठाकर बछड़े की पीठ पर रखा और रखे रही। उसके चेहरे का रंग बदल रहा था। अचानक उसने झिझककर चारों तरफ़ देखा और झुककर बछड़े की कमर के गिर्द बाज़ू डाले। बछड़े का पेट उसके बाज़ुओं के घेरे से बाहर था। फिर उसने उसकी टाँगों के गिर्द बाज़ू डालकर उसे उठाना चाहा, लेकिन चार माह का चौपाया उसके लिए बोझल साबित हुआ। वह सीधी खड़ी हो गई, और दोबारा झिझककर चारों तरफ़ देखा। उसकी आँखों में हलकी-सी वहशत थी। ढोल की धमक तेज़ हो गई। लड़की ने एक घुटना ज़मीन पर टेका और सिर निहुड़ाकर बछड़े के नीचे से दूसरी तरफ़ निकाला। इस तरह कि बछड़े का पेट उसकी गर्दन की पुश्त पर आ गया। फिर उसने दोनों हाथों से चौपाये की अगली और पिछली टाँगें पकड़ीं और उसे गर्दन और कन्धों पर लेकर

खड़ी हो गई। उसने निचला होंठ दाँतों में दाब रखा था और उसका चेहरा बीरबहूटी हो रहा था। उसके लिबास में हलकी-सी कँपकँपाहट थी।

एक अटल इरादे के साथ नौजवान ने राइफ़ल पुश्त पर से उतारी और बछड़े के सिर पर नज़रें जमाए आहिस्ता-आहिस्ता उसे कन्धे तक ले गया। कई पल तक वह निशाना बाँधे खड़ा रहा। नईम ने आँखें फाड़-फाड़कर देखा। निशाना बाँधे हुए वह एक पत्थर की मूरत नज़र आ रहा था, जिसमें ज़रा भी हरकत न थी, लेकिन उसने लबलबी को न छुआ। मैदान में मौजूद हर आदमी साँस रोके खड़ा था और फ़िज़ा में तनाव बढ़ रहा था। ढोल की ताल इन्तिहाई तेज़ी को जा पहुँची थी। अचानक उसने राइफ़ल नीची की, उसका दस्ता ज़मीन पर टिकाया और उँगली से माथे का पसीना पोंछने लगा। अमीर ख़ाँ के मुँह से एक गाली निकली और उसने बहुत ग़ुस्से की हालत में बैसाखी ज़मीन पर मारी। नौजवान ने मुड़कर देखा। उसकी आँखों में बेबसी और ग़ुस्सा था। फिर वह तेज़ी से मुड़ा। राइफ़ल उठाकर निशाना बाँधा और गोली चला दी। फ़ायर की ख़ुश्क, पटाख़ेदार आवाज़ दूर तक पहाड़ियों में गूँजती चली गई। बछड़ा लड़की के शानों पर तड़प रहा था और वह इन्तिहाई कोशिश के साथ उसकी टाँगों को बाज़ुओं में जकड़े उसे क़ाबू में किए हुए थी। अब सिर से पाँव तक उसके सारे लिबास की कँपकँपाहट बढ़ रही थी। उसी तरह कँपकँपाती हुई टाँगों पर उसने चलना शुरू किया, आहिस्ता-आहिस्ता, पैर जमा-जमाकर, मरते हुए, तड़पते हुए चौपाये को जकड़े हुए, उठाए हुए, आधे रास्ते तक पहुँचते-पहुँचते वह थककर रुक गई। उसके चेहरे से सुर्ख़ी ग़ायब होने लगी, लेकिन जल्द ही टाँगें चलाते हुए बछड़े की गर्दन लटक गई और वह उसके कन्धों पर ठंडा हो गया। उसके सिर में से ख़ून, जो अब तक पतली-सी धार की शक्ल में बह रहा था, बूँद-बूँद करके टपकने लगा। लड़की ने फिर चलना शुरू किया।

दूल्हा के सामने पहुँचकर उसने आहिस्ता से बछड़े को ज़मीन पर रखा और उसके नीचे से सिर निकालकर खड़ी हो गई। उसका चेहरा ज़र्द और पुर-जलाल था। माथों पर पसीने के क़तरे लिए दोनों निडर निगाहों से एक-दूसरे को तकते हुए आमने-सामने खड़े रहे। उन्होंने एक-दूसरे को जीत लिया था।

ख़ुशी के पुर-जोश नारों, राइफ़ल के अनगिनत फ़ायरों और आसमान पर बारूद की चमक के दरमियान नईम झल्लाकर मुँह में बोला, "बेचारी लड़की।" अमीर ख़ाँ ने ग़ुस्से से जवाब दिया, "हुँह, बेचारी लड़की ! अगर निशाना चूक जाता या इधर-उधर लग जाता, तो मेरे लड़के को वहीं ढेर कर देते...काफ़िर।"

"लाहौल वला क़ुव्वत !" नईम ने दुहराया।

निकाह के बाद दावत शुरू हुई। आग के अलाव के गिर्द दोनों क़बीले ज़मीन पर बैठ गए। राइफ़ल के इक्का-दुक्का फ़ायरों और नफ़ीरियों की आवाज़ चारों तरफ़ पहाड़ों में गूँज रही थी। ढोल ख़ामोश था। कड़ा वक़्त गुज़र चुका था। भारी जिस्मवाला बुड्ढा, जो लड़की का बाप था, तीन आदमियों की मदद से थाल में भुना हुआ मुसल्लम दुम्बा उठाए हुए लाया और अमीर ख़ाँ के सामने रख दिया। अमीर ख़ाँ ने थाल में से चमकती हुई छुरी उठाकर नईम की तरफ़ बढ़ा दी।

"मेरा मेहमान मेरी तरफ़ से पहल करेगा।" उसने कहा। दूसरा बुड्ढा ख़ुशदिली से हँसा।

नईम ने झिझकते हुए छुरी की नोक भुने हुए सुर्ख़, चिकने दुम्बे पर लगाई। गोश्त गल चुका था, लेकिन हड्डी सख़्त थी। वह लाल हो-होकर और दिल में कोस-कोसकर उसकी टाँग काटने की कोशिश कर रहा था कि अमीर ख़ाँ ने बातें करते-करते रुककर उसकी तरफ़ देखा।

"अररर...यह...यहाँ..." उसने नईम का हाथ पकड़कर छुरी ख़ुशबूदार जानवर के पेट से लगाई। नईम ने एक झटके से टाँके लगा हुआ पेट चीर दिया। लौंग, दारचीनी और इलायची में पके हुए

चावलों की मुक़व्वी[1], इश्तहाआवर[2] ख़ुशबू का झोंका आया और भूके मेहमानों के दिमाग़ों को तर कर गया। सफ़ेद, कुँआरी चर्बी में तरतराते हुए सुर्ख़ चावल तश्त में गिरने लगे। अमीर ख़ाँ छुरी पकड़कर माहिरे-फ़न[3] की तरह ख़स्ता गोश्त को हड्डियों से अलग करने लगा। जब वह इससे फ़ारिग़ हुआ, तो सब उँगलियाँ चावलों में डुबो-डुबोकर खाने लगे। अमीर ख़ाँ मज़े ले-लेकर चावल खा रहा था और अपने नए रिश्तेदार को अपनी और नईम की पहली मुलाक़ात का क़िस्सा सुना रहा था, जब उसके सिर पर भद्दी, बावली हँसी की आवाज़ गूँजी।

"हा हा हा...हा हा हा...हा हा हा..." यह एक लम्बे क़द का दुबला-पतला बुड्ढा था, जिसकी सुर्ख़ दाढ़ी बेतहाशा फैली हुई थी। वह दुम्बे की एक टाँग चबाता हुआ मुसलसल हँस रहा था। खाने के साथ-साथ हँसने से उसकी बाछों में राल बह रही थी, और गोश्त के रेज़े उसकी दाढ़ी में अटके हुए थे।

"अबे ओ बुड्ढे। बुड्ढे दूल्हा के जवान बाप...ओ..." वह चबाई हुई लम्बी हड्डी अमीर ख़ाँ की नाक में ठूँसकर बोला। अमीर ख़ाँ, जो किसी दूसरे मौक़े पर उसको बैसाखी के साथ पीटता, पीछे हटता हुआ ख़ुशदिली से हँसा। बुड्ढा नशे में था, "अररर हा हा हा...जवान दूल्हा के बुड्ढे बाप, जब तेरे लड़के का निकाह हो चुका, तो मैंने पूछा, 'दुम्बा, खाओगे ?' बोला, 'नहीं !' अरर...ही ही ही...बोला, 'नहीं'। मैंने कहा, 'चावल ?' कहने लगा, 'नहीं।' मैंने कहा, 'अरे ओ बेवक़ूफ़ बाप के बेटे...क़हवा तो पी ले'। ही ही ही हा हा हा...फिर वह दुल्हन को उड़ाकर ले गया। उड़ाकर ले गया...हा हा हा...ले गया...ले गया..."

अमीर ख़ाँ और उसका नया रिश्तेदार ख़ुश-अख़लाक़ी से हँसे। लम्बा बुड्ढा आसमान की तरफ़ मुँह उठाकर क़हक़हे लगाता और हड्डी को सिर के गिर्द घुमाता हुआ आगे निकल गया। जब वह उनकी आवाज़ की हद से बाहर चला गया, तो दोनों ने उसको बुरा-भला कहा, और नाकारा नशई के नाम से याद किया।

खाना ख़त्म करके वे क़हवा पीने लगे। क़हवा कसैला और ख़ुशबूदार था, लेकिन उसमें भुने हुए गोश्त को हज़्म करने की बेपनाह क़ुव्वत थी। अलाव में देर तक जलने वाली चिकनी लकड़ियाँ डाली जा रही थीं, ताकि शादी की आग तमाम रात रौशन रहे। जब क़हवे का दूसरा दौर शुरू हुआ, तो दो नौजवान उठकर अलाव के गिर्द नाचने लगे। उन्होंने शोख़ रंगों के लम्बे घेरदार कुरते और शलवारें पहन रखी थीं, और उनकी कमरों से कसकर पटके बँधे हुए थे, जिनसे नंगी तलवारें लटक रही थीं। वे आसमान की तरफ़ हाथ फेंककर और छलाँगें लगा-लगाकर नाच रहे थे। चन्द चक्करों के बाद वे सिर को एक तेज़ और हलका-सा झटका देते, जिससे उनके लम्बे सियाह बाल आँखों पर आ गिरते। फिर वे दोनों हाथों से तालियाँ बजाते और गोल दायरे में लहरा रहे थे। नफ़ीरियों की नाज़ुक और सुरूर-अंगेज़ मूसीक़ी[4] की धुन पर उनका नाच तेज़तर होता जा रहा था। आग की रौशनी में उनके चेहरे दहक रहे थे। यह क़बाइलियों का भौंडा नाच था, बेपनाह और वलवले का नाच, जिससे एक वहशियाना, बेबाक क़ुव्वत और जज़्बे का इज़हार होता था।

नाच की इन्तिहाई तेज़ी में आकर दोनों ने कमर से तलवारें खींच लीं। चमकदार धात आँखों को चौंधियाने लगी, और हवा में उनकी तेज़ काट से सायं-सायं की आवाज़ पैदा होने लगी। फ़िज़ा में वहशियाना तअस्सुर[5] बढ़ता जा रहा था। यह नंगी ताक़त और ख़ुशी का, बुनियादी इनसानी ख़्वाहिश का नाच था। इन्तिहाई तेज़ी से चारों तरफ़ हवा में बिजली की तरह कौंधती हुई तलवारें घुमाते हुए, ग़ैर-इनसानी[6] आवाज़ में लम्बी-लम्बी चीख़ें मारते हुए, ग़ुस्से की हालत में एक-दूसरे को ललकारते और मुक़ाबले की दावत देते हुए अचानक उनकी तलवारें टकराईं, और वे लड़ने लगे।

अब यह नाच न था, लड़ाई थी। दायरे में बैठे हुए लोगों की आवाज़ों का शोर एकदम थम

1. पौष्टिक, 2. भूक बढ़ानेवाली, 3. कलाकार, 4. मादक संगीत, 5. पागलों जैसा प्रभाव, 6. अमानुषिक।

गया। वह नज़्ज़ारा उनके लिए नया न था। नौजवान ख़ून के जोश में अकसर, बिला-वजह तौर पर, ऐसा हो जाता था। बूढ़ों के इशारों पर चन्द अधेड़ उम्र के मज़बूत पठानों ने उठकर नाचनेवालों को घेरे में ले लिया। वे अपनी पूरी क़ुव्वत और फ़न के साथ, दाँत पीस-पीसकर एक-दूसरे पर वार करने की कोशिश कर रहे थे और उनकी आँखों से नशे के शोले निकल रहे थे। घेरेवालों ने जब मौक़ा देखा, तो दोनों की कमरों में हाथ डालकर अलग-अलग करके ले गए और उनके हाथों से तलवारें छीन लीं। दूर तक वे दोनों पलट-पलटकर, उछल-उछलकर एक दूसरे पर झपटने की कोशिश करते रहे।

फिर दोनों क़बीले गले मिले और तहाइफ़[1] तक़सीम हुए। आधी रात के बाद दोनों क़बीले जुदा होकर ढोल, नफ़ीरियों और फ़ायरों के शोर में अपने-अपने गाँव को लौट गए।

कमरे में पहुँचकर नईम थकावट और अधपके गोश्त के नशे में जल्द ही सो गया। सुबह में अभी बहुत देर थी, जब उसकी आँख खुली। बाहर घुप अँधेरा था। मकान के अन्दर मद्धिम-सी रौशनी हो रही थी और इनसानी आवाज़ों और घोड़ों के हिनहिनाने का मिला-जुला शोर उठ रहा था। अमीर ख़ाँ की चारपाई ख़ाली थी। नईम उठकर बैठ गया। उसी वक़्त एक साया मकान में से उछलता हुआ निकला। अँधेरे में नईम ने अमीर ख़ाँ को पहचान लिया। वह चुपके से आकर बिस्तर पर लेट गया।

''क्या बात है ?'' नईम ने पूछा।

''वज़ीर ख़ाँ...उसे यूनिट से बुलावा आया है,'' अमीर ख़ाँ ने कमज़ोर आवाज़ में जवाब दिया।

''अभी ?''

''हाँ।''

''क्यों ?''

अमीर ख़ाँ ख़ामोश रहा। नईम को फ़ौज की मुलाज़िमत की पुरानी, तकलीफ़देह याद आई और उसने दिल में गाली दी।

''चला गया ?''

''पता नहीं ! मैं छोड़कर आ गया हूँ। शादी की रात मैं उसका जाना पसन्द नहीं करता।'' अपने दुख को छिपाने के लिए अमीर ख़ाँ ने सख़्ती से जवाब दिया।

नईम पर फिर हलका नशा छाने लगा, लेकिन थोड़ी देर के बाद जब पथरीली ढलानों पर घोड़े की टापों की आवाज़ पैदा हुई, और दूर तक चली गई, तो उसके दिल में जानेवाले के लिए अफ़सोस पैदा हुआ। वह आँखों से छत को तके जा रहा था।

बहुत देर के बाद अमीर ख़ाँ ने बिस्तर पर बाज़ू फैलाकर परेशान आवाज़ में दो दफ़ा पुकारा, ''नईम ! नईम !'' वह अन्दर से हिल चुका था। नईम पर नींद छाई हुई थी।

बहुत सफ़ेद रंगत और ब्राउन बालोंवाला एक शख़्स, जिसने हाथ के काते हुए खद्दर का लिबास पहन रखा था, बाज़ार के बीच में चबूतरे पर खड़ा खद्दर की एक सफ़ेद पट्टी को सिर के गिर्द घुमा रहा था।

''नमक-नमक-नमक...'' उसके चारों तरफ़ से आवाज़ें उठीं।

चबूतरा एक स्टेज की शक्ल का था, जो लकड़ी के क्रेटों और बक्सों को जोड़कर बनाया गया था और टाट से ढँका हुआ था। उस पर खड़ा हुआ शख़्स ऐसे लोगों में से था, जिनकी उम्र का अन्दाज़ा आसानी से नहीं लगाया जा सकता...फिर भी वह नौजवानों में शुमार न किया जा सकता था। उसका चेहरा थोड़ा लम्बोतरा और नक़्श बारीक थे। क़रीब से देखने पर उसकी जिल्द बेशुमार बारीक-बारीक तिलों से भरी हुई नज़र आती थी। उसकी आँखों का रंग बादामी था।

---

1. उपहार।

एक दफ़ा बोलते-बोलते उसने खद्दर की पट्टी तेज़ी से सिर के गिर्द घुमाई और नमक का नारा लगाया। उसके चारों तरफ़ खड़े हज़ारों लोगों का शोर उठा। यह नमक ख़ासियत में रौशनपुरवाले नमक से बेहतर और खाने के क़ाबिल था, लेकिन शायद ज़िन्दगी में एक दफ़ा, इतने अच्छे, इतने मामूली नमक को देखकर किसी के दिल में उसे खाने की ख़्वाहिश पैदा न हुई। वह मुक़द्दस[1] हाथों का तुह्फ़ा था।

रँगों के शैदाई वे लोग शादी के भड़कीले कपड़े पहने सड़कों पर और गलियों में एक ही तरफ़ जा रहे थे, जिधर वह खद्दरपोश चबूतरे पर खड़ा था। नौजवानों की आँखें सुरमई और मसूढ़े कड़वे दरख़्त की छाल से उन्नाबी हो रहे थे और बूढ़ों ने दाढ़ियों पर मक्खन मल रखा था। ऊँची, तीखी नाक, सफ़ेद रंगत और उक़ाबी[2] नज़रोंवाले उन मर्दों ने, जो कड़ी तर्बियतों[3] में से गुज़रकर आ रहे थे, आज आख़िरी एलान सुनकर अपने-अपने कारोबार बन्द कर दिए थे और इस वक़्त कानून तोड़ने का पुराना, जिबिल्ली[4] जज़्बा दिलों में लिए, रास्तों पर इधर-उधर थूकते और नसवार की डिब्बियों के शीशों में देखकर दाढ़ियाँ सँवारते हुए कानून तोड़ने के मंज़र की तरफ़ लौट रहे थे।

मर्कज़[5] के गिर्द पुलिस की भारी तादाद थी। जलसे में जानेवाले उनके पास से गुज़रते हुए ग़ुरूर और नफ़रत से उनकी तरफ़ देखते, और ऊँची, करख़्त आवाज़ों में क़हक़हे लगा रहे थे। पुलिसवाले उनकी नज़रों से बचने के लिए ऊपर-ऊपर देख रहे थे।

जब आख़िरी बार खद्दरपोश ने पट्टी को तेज़ी से घुमाया और एड़ियों पर चारों तरफ़ घूमा, तो हुजूम का दबा-दबा शोर अचानक फट पड़ा और सैंकड़ों राइफ़लें हवा में उछाली गईं, जिनकी धात ने धूप में चौंधिया देनेवाली चमक पैदा की। यकायक एक दूसरा खद्दरपोश नौजवान, जो बहुत लम्बे क़द और डील-डौल का आदमी था, कूदकर चबूतरे पर आ चढ़ा। उसने दोनों बाज़ू हवा में फैलाए और फिरकी की तरह पाँव पर घूमने लगा।

"एक फ़ायर न हो...एक भी फ़ायर..." वह चिल्लाया।

जब वह रुका, तो उसकी आँखों से मलामत[6] टपक रही थी और होंठ कुछ कहने के लिए बेताबी से काँप रहे थे। वह उसी तरह बाज़ू फैलाए भीड़ को देखता हुआ खड़ा रहा। राइफलें जहाँ थीं, वहीं पर रुक गईं और हज़ारों इनसानों की भीड़ पर ख़ामोशी छा गई। उसने आहिस्ता-आहिस्ता बाज़ू नीचे गिरा दिए।

"क्या है ? क्या मतलब है ?" वह चीख़ा, "इन्हें घर रख आओ। तुम्हें किसी ने नहीं बताया ? उन्हें देखो।" उसने हाथ लम्बा करके पुलिस की तरफ़ इशारा किया, "उनसे लड़ना चाहते हो ? वे तुम्हारे भाई हैं। तुम्हें किसी ने नहीं बताया। हैं ? एक भी जान न जाए...एक भी जान..." बहुत ग़ुस्से में रुक-रुककर बात मुकम्मल करने के बाद वह मलामत भरी नज़रों से देखता हुआ चबूतरे से उतर गया। खिसियाई हुई भीड़ में दबे ग़ुस्से की धीमी आवाज़ें एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैल गईं।

दूसरे खद्दरपोश ने पट्टी में बाँधी हुई नमक की डली को हाथ में पकड़ लिया था।

"कल शराब की दुकानों पर पिकेटिंग होगी।" उसने हाथ उठाकर एलान किया। भीड़ आहिस्ता-आहिस्ता तितर-बितर होना शुरू हुई।

उस रात पेशावर शहर में नमक बनानेवाले बहुत-से वालंटियरों को गिरफ़्तार कर लिया गया। नईम उस वक़्त अमीर ख़ाँ के गाँव में सो रहा था। अगली सुबह जब वह शहर आ रहा था, तो उसे पकड़ लिया गया। पुलिस की सियाह वैन बाज़ार क़िस्सा ख़्वानी में काबुली थाने के सामने आकर रुकी। थोड़ी देर के बाद नईम अपने चन्द साथियों के हमराह हवालात में बैठा था।

दोपहर से पहले क़िस्सा ख़्वानी बाज़ार शहरियों से खचाखच भर गया। वे सोते हुए उठकर चले

1. पवित्र, 2. गरुड़ जैसी, 3. प्रशिक्षणों, 4. प्राकृतिक, 5. केन्द्र, 6. निन्दा।

आए थे। उनकी दाढ़ियाँ बिखरी हुई और धूल से अटी हुई थीं और कपड़े मैले-कुचैले थे। उनकी आँखों में नींद और दिमाग़ों में ग़ुस्सा भरा हुआ था, क्योंकि वे अपनी बन्दूक़ें पीछे छोड़ आए थे और इस वक़्त अपने आपको बेबस महसूस कर रहे थे। आज भी वे बाज़ार के फ़र्श पर इधर-उधर थूक रहे थे और एक-दूसरे को धकेलते हुए थाने की तरफ़ बढ़ रहे थे।

थाने के चारों तरफ़ दूर-दूर तक पुलिस का पहरा था। वे ज़्यादातर पठान थे और पिछले दिन की तरह आज भी उनके साथ आँखें मिलाने से बच रहे थे, लेकिन मुस्तैदी से अपनी जगहों पर खड़े संगीनों और लोहे की ज़ंजीरों की मदद से भीड़ को रोके हुए थे। थोड़ी-थोड़ी देर बाद उछलते-कूदते और लड़खड़ाते हुए लोगों में से दबी-दबी ग़ुर्राहट उभरती, जो एक मुस्तक़िल ग़ुस्सैली चिंघाड़ की आवाज़ इख़्तियार कर लेती। कहीं-कहीं से इक्का-दुक्का आवाज़ें आतीं, "छोड़ दो...छोड़ दो," फिर ख़ामोशी छा जाती। बहुत आहिस्ता-आहिस्ता पुलिस का दायरा तंग होता जा रहा था। खुले मौसम के बावजूद अनगिनत इनसानी जिस्मों की रगड़ से दिन में गर्मी पैदा हो गई थी। दोपहर अभी दूर थी।

फिर भारी मशीनों की धीमी गड़गड़ाहट सुनाई दी। एक तरफ़ से चन्द आर्मर्ड कारें बाज़ार में दाख़िल हुईं। उनकी बत्तियों पर सियाह ग़िलाफ़ पड़े हुए थे और ज़िन्दगी का कोई निशान बाक़ी न छोड़ा गया था। सियाह लोहे के वे भयानक, अन्धे जानवर पूरी रफ़्तार से भीड़ के साथ टकराए और सुस्त-रफ़्तार पठानों को कुचलते हुए आगे निकल गए। डरे हुए शहरी बाज़ार छोड़कर गन्दे पानी की नालियों में और दुकानों के तख़्तों के नीचे घुसने लगे। जो इस पर भी बच गए, वे बन्द दुकानों के ताले तोड़कर अन्दर छिप गए। पल के पल में बाज़ार बेक़ाबू शहरियों की भीड़ से ख़ाली हो गया। बक्तरबन्द गाड़ियों ने थाने के सामने रुककर पोज़ीशन ले ली। उनके दरमियान सड़क ख़ाली थी और चन्द कुचले हुए इनसानी जिस्म दूर-दूर पड़े थे। वे पट्टियों पर से, टाँगों पर से, और सीनों पर से, जहाँ-जहाँ से बक्तरबन्द गाड़ियों के पहिए गुज़रे थे, तीन-तीन फ़ुट ज़मीन पर लेप हो चुके थे, और उनकी सफ़ेद आँखें और ज़बानें बाहर निकली हुई थीं। ज़रा-सी देर में मौत उनके चेहरों पर हैरानी का तअस्सुर छोड़ गई थी।

"मर चुका है ?" काली पगड़ीवाले पठान ने सिर नाली में नीचा करते हुए कहा।

वह जिस्म बहुत-सी निगाहों का मर्कज़ था। गाड़ी उसके पेट पर से गुज़रती चली गई थी, और बाहर पड़ी हुई रेज़ा-रेज़ा अँतड़ियों के ढेर में से दूधिया रंग का सय्याल[1] बह रहा था, जिसमें ख़ून की धारियाँ थीं और हलकी-हलकी भाप उठ रही थी। उसका चेहरा बेजान था, लेकिन आहिस्ता-आहिस्ता हिल रहा था और हलक़ से एक मुर्दा कराह निकल रही थी। दुकान के तख़्ते के नीचे नाली में छिपे हुए चन्द पठान कान लगाकर उसकी आवाज़ सुनने की कोशिश कर रहे थे।

"नहीं, हिल रहा है," दूसरे ने कहा।

"मर चुका है ?" पहला सख़्ती से बोला, "तुमने ज़िबह किया हुआ गोश्त देखा है, जो फड़कता है।"

"आवाज़ सुन रहे हो ?"

पहला सुनी अनसुनी करके अफ़सोस से सिर हिलाने लगा, "मर चुका है, कुत्ते की तरह...कुत्ते की तरह !"

"गोली मार दूँ ?" दूसरे ने कहा, "मेरे पास पिस्तौल है।"

पहले ने परेशान निगाहों से सामने देखा। फिर दूसरे ने देखा। कुछ देर तक दोनों नाली में से आँखें निकाले सामने से गुज़रते हुए फ़ौजियों को देखते रहे।

"अपने-आप मर जाएगा," पहले ने सिर हिलाते हुए कहा।

1. तरल पदार्थ।

"हाँ, अपने-आप मर जाएगा," कुछ देर के बाद दूसरे ने दुहराया।

सामने फ़ौजियों के दस्ते गुज़र रहे थे। वे मुख़्तलिफ़ जगहों पर रुककर पोज़ीशन ले रहे थे। पुलिसवाले अब पीछे हटकर थाने की दीवारों के साथ-साथ खड़े थे। बाज़ार ख़ाली था, लेकिन अनदेखी ताक़त से फटा पड़ रहा था, जैसे मुँह-बन्द केतली, जिसमें पानी आहिस्ता शोर के साथ उबलता है।

अचानक पच्छिमी सिरे पर एक ज़बरदस्त धमाका हुआ। एक बक्तरबन्द गाड़ी का पैट्रोल जल उठा, फिर उस पर पड़ा हुआ मैगज़ीन फटने लगा। कई धमाके हुए, गाड़ी की छत फट गई, उसमें बैठे हुए सिपाहियों के टुकड़े दूर-दूर तक उड़ गए और सियाह धुएँ के बादल आसमान को उठने लगे। बारूद और जलते हुए इनसानी गोश्त की बू बाज़ार में फैल गई।

गाड़ी के नीचे एक पठान का सिर दिखाई दिया और आहिस्ता-आहिस्ता बाहर आने लगा। उसका चेहरा मौत की तकलीफ़ से बिगड़ चुका था, लेकिन वह अन्धाधुँध ज़मीन पर बाज़ू चलाता हुआ सरक रहा था। काफ़ी देर के बाद वह बाहर आया। कमर से नीचे उसका धड़ ग़ायब था, उड़ चुका था।

"इलाही...अभी तक ज़िन्दा है," किसी ने डरी-डरी आवाज़ में कहा।

नालियों में, तख़्तों के नीचे और दुकानों-दरवाज़ों के पीछे छिपे हुए पठानों ने उस तरफ़ से नज़रें फेर लीं।

बारूद के धमाकों से शहरियों में खलबली मच गई। धक्कम-पेल में एक नंगे सिर का नौजवान पठान, जिसके पट्टे आँखों पर बिखरे हुए थे, बाहर उछल पड़ा। उसने वापस नाली में जाना चाहा, लेकिन वहाँ एक चूहे की जगह भी न थी। झुके-झुके उसने बाज़ार पार किया और तख़्ते के नीचे घुसना चाहा। उस तरफ़ से उसे एक ज़ोरदार धक्का पड़ा और साथ ही किसी ने करख़्त आवाज़ में ख़ुदा की क़सम खाकर गाली दी। वह पलट आया। बाज़ार के दरमियान एक लम्बे अंग्रेज़ी फ़ौजी ने दाँत पीसकर पहलू से रिवाल्वर नोचा और एक फ़ुट के फ़ासिले पर गोली चला दी। गोली उसकी गर्दन में लगी। गर्दन को दोनों हाथों में पकड़कर वह झुका, यहाँ तक कि उसके घुटने और माथा ज़मीन पर लग गए और उँगलियों के दरमियान से ख़ून बाहर आने लगा। कई लोग उछलकर पनाहगाहों में से निकल पड़े।

"फ़ायर !" एक आँखवाले कैप्टन वुड ने चीख़कर हुक्म दिया।

फ़ौजी दस्ते की पहली क़तार बे-हरकत खड़ी रही। काना कैप्टन एक पल को हैरान हुआ, फिर उसने आँखें सुकेड़ीं। "गढ़वाली राइफ़ल्ज़, रेजीमेंट, कम्पनी नम्बर...फ़ायर...फ़ायर" वे ग़ुस्से से लरज़ उठे। गढ़वाली राइफ़ल्ज़ का दस्ता उसी तरह खड़ा था। थोड़ी देर तक अफ़सर और मातहत एक-दूसरे की तरफ़ देखते रहे, फिर क़तार के आख़ीर पर एक सिपाही ने मुँह खोला। वह भारी साँवले चेहरेवाला शख़्स था, जिसने टोपी आँखों पर खींच रखी थी। उसने होंठ हिलाए बग़ैर, सामने देखते हुए ग़ैर-जज़्बाती आवाज़ में कहा, "वे निहत्थे हैं।"

"मैं हुक्म देता हूँ, गोली चलाओ," कैप्टन वुड पागलों की तरह चीख़ा, "फ़ायर।"

गढ़वाली दस्ते के हथियारों में हरकत हुई। उनके चेहरे बेरंग पत्थर के बने हुए थे। उनके होंठ सफ़ेद और भिंचे हुए थे और एक सिपाही के दिल में निहत्थी, बेबस भीड़ पर हमला करने से जो नफ़रत होती है, उनके चेहरों पर लिखी हुई थी। अंग्रेज़ अफ़सर ने उस अनलिखी बात को साफ़तौर पर पढ़ा। इन्तिहाई कोशिश से उसने अपने आप पर क़ाबू पाया। फिर उसने नज़रें उठाईं, और दबी हुई, गहरी आवाज़ में बोला, "जिन्होंने हुक्म नहीं माना है, बाहर आ जाएँ।"

क़तार में से चौदह सिपाही एक क़दम आगे निकल आए। एक सिरे पर भारी साँवले चेहरेवाला सिपाही और दूसरे सिरे पर लम्बे-दुबले, पतले जिस्मवाला ख़ूबसूरत वज़ीर ख़ाँ था।

"इन्हें गिरफ़्तार कर लो," कैप्टन ने हुक्म दिया। पिछले दस्ते ने बढ़कर उनके हथियार ले लिए और राइफ़लों के आगे लगाकर उन्हें बाहर ले आए। क़ैदियों के चेहरों पर रँग झलक आया था और वे क़दम मिलाए बग़ैर, लड़खड़ाते हुए चल रहे थे।

"फ़ायर...फ़ायर...फ़ायर..."

पिछले दस्ते आगे आए और गोली चलनी शुरू हो गई। अन्धाधुँध फ़ायरिंग में नालियों और तख़्तों के नीचे छुपे हुए शहरी चूहों की तरह निकलकर भागे और एक-एक करके गिरने लगे। देखते ही देखते बाज़ार मरते हुए, कँपकँपाते हुए और ज़मीन पर एड़ियाँ मारते हुए इनसानों से अट गया।

हवालात के दरवाज़े की सलाख़ों में से नईम ने बाज़ार के उस हिस्से में, जो उसे दिखाई दे रहा था, भागते और गिरते हुए लोगों को देखा। जज़्बे की इन्तिहा पर पहुँचकर कुछ पल जो तअत्तुल[1] के आते हैं, उनमें उसने सोचा; "इनकी फ़सलें तैयार खड़ी हैं।"

28

शान्ति नगर शहर से बाहर एक छोटी-सी साफ़-सुथरी बस्ती थी, जैसी हर एक मिल के साथ होती है। छोटे-छोटे, अलग-अलग बने हुए पक्की ईंटों के मकान, जिन पर चूने की सफ़ेदी की गई थी। बीच-बीच में बग़ैर सफ़ेदी किए हुए मकान भी थे, जो बारिश के मौक़े पर धुलकर गहरे सुर्ख़ हो जाते और ताज़ा पक्की हुई मिट्टी की ख़ुशबू छोड़ने लगते। उसी मौसम में सफ़ेदीवाले मकान पर बारिश की सियाह लकीरें पड़ जातीं, जो भद्दी लगतीं और दोबारा सफ़ेदी करनी पड़ती।

पानी के नल मकानों में से निकलकर दीवारों के साथ-साथ चले गए थे और आगे जाकर ज़मीन में धँस जाते थे। दीवारें ऊँची थीं और गली में गुज़रता हुआ लम्बे-से लम्बा आदमी भी आँगन में चलती-फिरती औरतों और बच्चों और अलगनी पर फैले हुए कपड़ों को न देख सकता था। सड़कें चौड़ी और सीधी थीं और एक-दूसरे को ज़ाविया-ए-क़ाइमा[2] पर काटती थीं। दो-एक जगह चौराहों पर फ़व्वारे लगाए गए थे, जिनके चारों तरफ़ सीमेंट के गहरे टेंक बने थे, लेकिन अभी पानी न चला था और उनमें कूड़ा-कर्कट, आमों की गुठलियाँ, काग़ज़ के पुरज़े, टूटे-फूटे खिलौने और ऐसी ही छोटी-छोटी बेकार चीज़ें भरी रहती थीं। शाम के वक़्त बस्ती के बच्चे उनकी सीढ़ियों पर एक-दूसरे की क़मीज़ें पकड़कर आगे-पीछे भागते और मुँह से गाड़ी के इंजन की आवाज़ निकालते जाते। जब वे थक जाते, तो सबसे ऊपर की सीढ़ी पर चढ़कर बैठ जाते और छोटी-छोटी बेकार चीज़ें, जिनसे वे तंग आ चुके होते, नीचे फेंकते रहते। कभी-कभी लड़का कुत्ते का पिल्ला पकड़कर ले आता और सब मिलकर उसकी कमर में रस्सी बाँधकर नीचे फ़व्वारे में लटका देते और उसकी चीख़ों का मज़ा लेते। उनकी माँएँ और बहनें दरवाज़ों से सिर निकालकर देखतीं और उन्हें इस काम से बाज़ रहने को कहतीं।

आस-पास दूर-दूर तक कोई दरख़्त या साया न था और सिलसिला-ए-कोह[3] की मद्धिम लकीर, जो बहुत दूर दिखाई देती है, नदारद थी, चुनाँचे सूरज ज़मीन पर से निकलता और यकायक धूप खुले दरवाज़ों में से गुज़रकर आँगनों और बरामदों में फैल जाती और मुर्ग़ियाँ और दूसरे पालतू परिन्दे दीवारों पर से कूद-कूदकर आँगन में फिरने और अपने मक्कार और मज़्हकाख़ेज़ तरीक़े से कीड़े-मकोड़ों के पीछे दौड़ने लगते। थोड़ी ही देर में कमरे धूप के सैलाब से भर जाते और अन्दर रखी हुई घरेलू इस्तेमाल की चीज़ों पर धूल के ज़र्रात[4] चमकने और साफ़ किए जाने की याद दिलाने लगते।

गलियाँ, जो अक्सर साफ़-सुथरी रहतीं, पक्की थीं और दोनों किनारों पर ढँकी हुई गन्दे पानी

1. गत्यावरोध, डैडलाक, 2. नव्वे का कोण, 3. पर्वतमाला, 4. कण।

की नालियाँ बहती थीं। सड़कों की मानिन्द यह भी सीधी थीं और एक दूसरे को अमूदन[1] काटती थीं। बस्ती को अगर ऊपर से देखा जाता, तो यूँ लगता, जैसे उक़्लीदिस[2] के बड़े-बड़े आलों से सीधी लकीरों, दायरों, चौकोरों और तिकोनों का ख़ाका बना दिया गया हो। उसमें गाँव की गन्दगी, घुलमिलाहट, बेढंगापन न था। कहीं-कहीं मकानों के आगे सब्ज़ा उगाने की कोशिश की गई थी, लेकिन पानी के ख़राब इन्तिज़ाम की वजह से ज़्यादातर कोशिशें नाकाम साबित हुई थीं।

फिर भी यह बस्ती हिन्दोस्तान की बेहतरीन सनूअती[3] बस्तियों में से थी और कभी-कभी हुकूमत के ज़िम्मेदार अरकान[4] निचले तबक़े[5] की ख़ुशहाली का नक़्शा देखने के लिए वहाँ लाए जाते थे।

उससे परे कपड़े की मिल थी, जो अभी ना-मुकम्मल थी और तेज़ी के साथ मुकम्मल की जा रही थी। मिल के दूसरी तरफ़ एक और छोटी-सी बस्ती थी, इस तरह कि मिल दरमियान में आ जाती थी और दोनों बस्तियों के रहनेवाले अपने-अपने घरों में से एक दूसरे के घरों को न देख सकते थे। सिर्फ़ उस वक़्त जब सब लोग मिल में काम करने जाते, वे एक दूसरे की बस्ती को देख सकते।

छोटी बस्ती में बड़े मकान थे और सब्ज़ा उगाने की कोशिशें ज़्यादा मुनज़्ज़म[6] तौर पर अमल में लाई गई थीं। चुनाँचे अक्सर मकानों के आगे छोटी-छोटी बाड़ें, इक्का-दुक्का मौसमी फूल, गमले और खुदरे-खुदरे घास के टुकड़े दिखाई देते थे। मकानात जदीद तर्ज़[7] पर बने हुए थे और बग़ैर सफ़ेदी के थे, जिससे रहनेवालों की सादगी और उम्दा मज़ाक़ का पता चलता था। चन्द एक बरामदों के सतूनों पर बेलें चढ़ना शुरू हो गई थीं।

मिल से सीमेन्ट की पक्की सड़क शुरू होती थी, जिस पर हर वक़्त मोटर के टायरों के निशान पड़े रहते थे। जहाँ पर सड़क ख़त्म होती थी, वहाँ से वह बस्ती शुरू होती थी। सबसे पहले आधे दायरे में बने हुए पन्द्रह-बीस कमरे आते थे। हर एक कमरे के सामने एक-एक गुस्लख़ाना था, जिसमें जदीद तर्ज़ का सामान मुहैया किया गया था। उन कमरों के सामने टेनिस खेलने का पक्का कोर्ट था, जिसमें हर वक्त जाली लटकी रहती थी। यहाँ पर नौजवान ग़ैर-शादीशुदा, तालीमयाफ़्ता अफ़सर रहते थे। अगले मकानों में बड़े अफ़सरों की रिहाइश थी, जो अधेड़ उम्र और बुड्ढे बीवी-बच्चोंवाले लोग थे।

हर एक घर के आगे बहुत-सी ख़ाली जगह बाग़ के लिए थी, जिस पर एकाध माली दिन भर काम करता रहता था। वह अक्सर एक छोटे क़द का, मखनी-सा बूढ़ा किसान होता, जो ख़ामोशी और उदासी के साथ रबड़ के लम्बे-लम्बे पाइप एक जगह से उठाकर दूसरी जगह रखता और घास को पानी देता रहता। झुककर और पाँव पर बैठकर काम करते रहने की वजह से उसकी टाँगें टेढ़ी और कमज़ोर हो चुकी होतीं, और खुरपा हाथ में पकड़े वह सब्ज़ा उगाने की अनथक कोशिश में मसरूफ़ रहता। बाहर के फाटक से लेकर बरामदे तक लम्बी ड्राइव थी, जिस पर बजरी बिछाकर रोलर से ज़मीन हमवार की गई थी। घर के बच्चे अक्सर खेलते हुए नज़र आते। वे सफ़ेद रंगत और सियाह आँखोंवाले गोल-मटोल बच्चे होते, जो गर्म मौसमों में सिर्फ़ जाँघिए पहने पानी की टोंटियों के गिर्द खेलते और जाड़ों में शोख़ रंग ऊनी बनियानें और पतलूनें पहने बरामदे के फ़र्श पर लकड़ी के घोड़े और मोटरें दौड़ाते फिरते। वे नीचेवाली बस्ती में कभी न जाते।

उन घरों के पिछवाड़े आम कोठियों के पिछवाड़ों की तरह थे। ऊँची-नीची बाड़ें, रस्सी पर फैले हुए छोटे-बड़े कपड़े, घड़ोंची पर मिट्टी के घड़े और लोहे के गिलास और लोटे, मुर्ग़ियाँ और उनके दरबे, पुदीने और टमाटर की क्यारियाँ। दिन के दौरान घर की मालिकाओं और मामाओं में बहुत कम इमतियाज़[8] किया जा सकता, सिवाय शाम के वक़्त के, जब घर की औरतें लिबास तब्दील करके मर्दों के हमराह सामनेवाले हिस्से में टहलतीं और कभी-कभार माली से पूछगछ कर लेतीं।

वहाँ तीन मुख़्तलिफ़ क़िस्मों के लोग रहते थे। बड़ी बस्ती में हाथ से काम करनेवाले कारीगर

1. लम्बवत्, 2. रेखागणित, 3. औद्योगिक, 4. सदस्य, 5. वर्ग, 6. व्यवस्थित, 7. आधुनिक ढंग, 8. अन्तर।

और छोटे-मोटे कामों में उनकी मदद करने और काम सीखनेवाले लोग थे। ये ज़्यादातर वे लोग थे, जो दर-हक़ीक़त किसान थे और सूखा और खेतों में मज़दूरी से तंग आकर शहर में मेहनत करने के लिए आ गए थे। उनमें बहुत कम ऐसे थे, जिनका आबाई[1] पेशा लोहार या तरखान का था। बाक़ी सब ज़मीन के बेटे थे और ज़िन्दगी के चक्कर में एक बिलकुल अनोखी दुनिया में निकले थे और अपने आपको वहाँ का बाशिन्दा बनाने की जानतोड़ कोशिश कर रहे थे।

वे सख़्त मेहनतकश मर्द थे और दिन-रात में दो वक़्त खाते थे। उनके खाने में ज़्यादा मिक़दार अनाजों की होती, जिनसे वे काम करने के लिए गर्मी और ताक़त हासिल करते। चने उनकी ख़ुराक में नुमायाँ हैसियत रखते थे, जिनको उनकी औरतें कई मुख़्तलिफ़ तरीक़ों पर पकातीं। गोश्त की कमी अंडे पूरी कर देते, जो तक़रीबन हर घर में पालतू मुर्ग़ियों और बत्तख़ों से हासिल किए जाते थे। गर्मी हो या जाड़ा, चूँकि हर काम करने के दिन उनका बहुत-सा पसीना निकल जाता, इसलिए वे हरदम निखरे–सुथरे रहते। उनकी औरतें और बच्चे दिन-रात में तीन दफ़ा खाते। यह उनकी जिस्मानी सेहत की हालत थी, जिसे क़ायम रखने के लिए वे पैसे कमा लेते थे।

लेकिन ज़िन्दगी जिस्मानी सेहत के अलावा भी बहुत कुछ है, और उसके लिए ख़ुश रहना निहायत ज़रूरी बात है। इसी बात के लिए वे दौड़-धूप कर रहे थे–बग़ैर जाने-बूझे हुए।

रूह की वह निखराहट और तरोताज़गी, जो इनसानी ज़िन्दगी में क़ुव्वत और सुकून पैदा करती है, जो मेहनत करनेवालों को इत्मीनान बख़्शती है, रोज़मर्रा की छोटी-छोटी, मामूली चीज़ें जो ख़ुशी देती हैं, जो निहायत ज़रूरी है, रोज़-रोज़ के मुक़ाबले, लड़ाई-झगड़े, कभी-कभी के मेले, त्योहार, दोस्त, दुश्मन, होली, दीवाली, आशूरा[2], ईद, बैल, शिकार, गप्पों में बेकार वक़्त ख़र्च करने का इत्मीनान, गीत, बाँसुरी, मवेशियों की मंडियाँ, दरख़्त, जो मौसमों के साथ रंग बदलते और हवा में झूमती नालियाँ, जिनमें पानी हलके शोर के साथ बहता। ये सब बेज़बान, जानदार चीज़ें, जो किसान की ज़िन्दगी में रस-बसकर उसका एक हिस्सा बन जाती हैं, पीछे रह गई थीं, अब सीधे-सीधे अकेले खड़े मकान थे, जिनकी अपनी हदबन्दी थी, वाज़ेह[3] और मुतऐयिन[4], अमूदी[5] लकीरें, और मुतवाज़ी[6] लकीरें, जो अलाहिदगी को ज़ाहिर करती थीं। बदरंग फ़िज़ा में, जहाँ दरख़्त नहीं थे, धूप चिलचिलाती और साफ़-सुथरे मकान उजाड़ मालूम होते, जिनकी अपनी-अपनी छतें थीं, अपने-अपने आँगन थे, अपनी-अपनी ज़िन्दगियाँ थीं, जब वे रास्ते में मिलते, तो किसानों के अक्खड़ दोस्ताना लहजे में एक-दूसरे का हाल पूछते, पर दिलों की हमसाएगी[7] ख़त्म हो चुकी थी। वे ख़ामोशी से अपने-अपने ख़ोल जैसे घरों में वापस आ जाते। अपनी-अपनी अकेली दुनिया में मुस्तक़िल बदलती हुई ज़िन्दगी के दुखों में रहने के लिए। गाँव की वह एक दूसरे से मिली हुई छतें और हदें, जहाँ हर किसी को अपनी-अपनी जायदाद पर फ़ख़्र होता था, पर जो ला-महदूद[8] थी, जिसमें ला-तअल्लुक़ी[9] न थी। साझे के आँगन और साझे की दीवारें, मुँडेरें, जिन पर हर कोई बैठ सकता था, और जिनकी हर कोई मरम्मत कर सकता था। टेढ़े-मेढ़े घर, जिनका पता न चलता था कि कहाँ से शुरू होते थे और कहाँ पे ख़त्म। मुड़ती-मुड़ाती बेतरतीब गलियाँ; कहीं से चौड़ी, कहीं से पतली और बीच में गन्दे पानी की नाली, चलते-चलते जिसमें पाँव फिसलकर जा पड़े और छींटें उड़कर टाँगों को ख़राब कर दें। चलते-चलते फिर एक गली अचानक ख़त्म हो जाए और आगे रास्ता बन्द हो और वहाँ एक छप्पर हो और एक कुनबा–अरे ! यह गली है या घर ? सलाम-लैकुम मासी ! अल्लाह करम करे। दिलों की हमसाएगी ख़त्म हो चुकी थी। अब मुक़र्ररा वक़्त पर लोहे के औज़ारों और सीमेंट के मसाले और तपे हुए सुर्ख़ लोहे के साथ मिलकर काम करते रहो–एक ताल, एक ताल...

और वह बैल के साथ मिलकर बातें करने की ख़ुशी, चमकती हुई सियाह, नमदार आँखोंवाला

---

1. पैतृक, 2. मुहर्रम की दसवीं तारीख़, 3. स्पष्ट, 4. निश्चित, 5. सीधी, 6. समानान्तर, 7. पड़ोस, 8. असीमित. 9. असम्बद्धता।

बैल, जो साथी भी था और नौकर भी, जो ख़ामोशी से सारी बातें सुनता था और ज़िद भी करता था। गोबर के ढेर और चाँदनी रातों में घंटियों की आवाज़। और जब कोई हमसाया गाय लेकर आता, तो सारी दुनिया की मर्दानगी और ग़ुरूर दिल में से लेकर बैल को उठाते और गाय के पास ले जाते। मिलावट के बाद गायवाला शुक्रिया अदा करता और बैलवाला अपने नर की कामयाबी पर उसका ठट्ठा करता और लुत्फ़ लेता। फिर खेतों में रोज़-ब-रोज़ बढ़ती हुई फ़सल थी, जिसमें जवान होती लड़की की ख़ूबसूरती और उठान होती थी। यह छोटी-छोटी ग़ैर-अहम चीज़ें थीं, जो ज़िन्दगी का हिस्सा थीं और जब ज़िन्दगी का वह हिस्सा गुम हो गया, तो उसकी तलाश एक घुला देनेवाली, बीमार कर देनेवाली बेचैनी बनकर उनके दिलों में बैठ गई थी। वह बीमार रूहों और मेहनती जिस्मोंवाले, ''तनहा'' लोगों का गिरोह था।

दूसरा गिरोह बड़े-बड़े मकानों में रहनेवालों का था। वे गुज़री हुई उम्रोंवाले, तजर्बेकार, ज़िम्मेदार अफ़सर थे, जो उस सारे मंज़र को कंट्रोल करते थे। उनमें से कुछ निचले तबक़े में से उठे थे, कुछ ऊँचे तबक़े में से। कुछ को मौजूदा पोज़ीशन तक पहुँचने के लिए सख़्त मेहनत करनी पड़ी थी, कुछ आसानी से ऊपर आ गए थे। लेकिन उस वक़्त वे सब वजीह[1] शख़्सियतों[2] और आसान रूहोंवाले लोग थे। उनके घर मज़बूत, जिन्दगियाँ महफ़ूज़, और चेहरे मुत्मइन थे। उनके तौर-तरीक़ों में बा-इख़्तियार लोगों का बाज़ारीपन था। ये लोग ला-तअल्लुक़ी के साथ अपना काम करते थे और अपने रोज़ाना के खाने-पीने, अपने बच्चों और घर के सामनेवाले बाग़ में ज़्यादा दिलचस्पी लेते थे। वे उम्र की उस मंज़िल में थे, जब मामूली सलाहियतों के इनसान की ज़िन्दगियों में ठहराव और क़नाअत[3] आ जाती है। वे सन् तीस के बाद के उस हिन्दोस्तान में रह रहे थे, जब अधेड़ उम्र और बुड्ढे हिन्दोस्तानी अफ़सरों के लिए सबसे इत्मीनानबख़्श ख़याल यह था कि ज़िन्दगी में उन्होंने एक बाइज़्ज़त मुक़ाम हासिल कर लिया है और उहदे में अपने कई साथियों से ज़्यादा तरक़्क़ी हासिल की है और उनके बच्चे अंग्रेज़ी स्कूलों में तालीम पा रहे हैं। वे ग़ैर-दिलचस्प और एक हद तक ख़ुदग़र्ज़ लोग थे, जो ऊँची ग़ैर-मुल्की सोसाइटी में, कभी-कभार एहसासे-कमतरी[4] के हमराह जा सकते थे। मातहत तबक़े के जलसे-जुलूसों और शादी-ब्याहों में शदीद एहसासे-बरतरी[5] के साथ शरीक होते थे। ब्रिज खेलते थे। ड्रेस-सूट पहनते थे और अपनी सेहत का ख़ास ख़याल रखते थे।

एक दरम्याना और सबसे ज़्यादा दिलचस्प गिरोह नौजवान अफ़सरों का था।

उनमें ज़्यादातर ग़ैर-शादीशुदा थे और नए-नए कॉलेजों से निकलकर आ रहे थे। सबके सब बेहद चुस्त, मुस्तैद और सेहतमन्द नौजवान थे। उनमें ज़्यादा ऐसे नौजवान थे, जो निचले मुतवस्सित[6] तब्क़े से तअल्लुक़ रखते थे। ऐसे घराने, जिनका कोई पस-मंज़र[7], कोई रवायात[8] नहीं होतीं, जो फ़क़त ज़िन्दा रहने और अपने कुनबों को पालने की जद्दोजहद ही में ज़िन्दगियाँ गुज़ार देते हैं, उन नौजवानों की रूहानी हालत ख़स्ता थी, लेकिन उनके पास कुछ ख़्वाब थे, जिनको पूरा करने की ख़ातिर वे जी-जान से मसरूफ़ रहते थे। उनमें से कुछ एक को महकमा-ए-सनअत[9] की तरफ़ से कुछ अरसे के लिए यूरोप भी भेजा जा चुका था और उनके ख़यालात ख़ासे तरक़्क़ीयाफ़्ता थे। ये ख़ुश-लिबास लोग थे और उनके कमरे साफ़-सुथरे थे। हर एक चीज़ ठीक जगह पर धरी थी और बाक़ायदा सफ़ाई की वजह से चमक रही थी। ड्रेसिंग-टेबल और किताबों की मेज़ सबसे नुमायाँ जगह पर थीं, जिन पर कमरे में दाख़िलहोनेवाले की नज़र सबसे पहले पड़ती थी। बिस्तर और मेज़ का लैम्प कम नुमायाँ जगह पर, जूते एक कोने में रखे हुए, जिनको रोज़ का आनेवाला या देर तक बैठा रहनेवाला देख सकता था। कपड़े कहीं नज़र नहीं आते थे, जो या तो बिस्तर के नीचे ट्रंक में बन्द थे या अलमारियों और ग़ुस्लख़ानों में टँगे हुए थे।

1. रोबदार, 2. व्यक्तित्व का बहुवचन, 3. तुष्टि, 4. हीनभावना, 5. उच्चभावना, 6. मध्यम वर्गीय, 7. पृष्ठभूमि, 8. परम्पराएँ, 9. उद्योग विभाग।

किताबों के कवर मज़बूत और ख़ुशनुमा थे और हर रोज़ झाड़-पोंछकर रखे जाते थे। उन्हें बेहद तरतीब के साथ साइज़-वार सजाया गया था। ड्रेसिंग-टेबल का क़द्दे-आदम आईना उस ज़ाविए पर मोड़ा गया था कि किताबों की क़तारें उसमें से दिखाई दें। किताबों की अन्दरूनी हालत ख़स्ता थी, क्योंकि उन्हें पढ़ने के लिए कोई वक़्त न था, कोई ख़्वाहिश न थी। कुछ किताबों को अन्दर से दीमक चाट चुकी थी और वे खोखली और हलकी हो गई थीं। यह महज़ इत्तिफ़ाक़ था कि उन नौजवानों और उनकी किताबों के वुजूद में दर्दनाक हद तक मुशाबहत[1] थी।

यह बात नहीं, कि उनके पास फ़ालतू वक़्त न था, लेकिन उनकी ज़िन्दगी में एक बहुत बड़ी तब्दीली हो रही थी। वे अपने माज़ी[2] के घटियापन से ख़ौफ़ज़दा थे और किसी सूरत भी उससे कोई तअल्लुक़ रखना नहीं चाहते थे। उम्र में पहली मर्तबा उन्होंने मआशी[3] आज़ादी हासिल की थी। मआशी सहूलत के साथ उन्हें जिस्मानी इत्मीनान मिला था और उसके साथ ही तलाश और बेचैनी ख़त्म हो गई थी। उनकी रूहें आसान हो रही थीं। ज़िन्दगी का रास्ता सीधा और बे-ख़तर था, जिस पर उनको बढ़े जाना था—बे-समझ लगन के साथ। उनकी नज़र में यह वे लोग थे, जो अपनी-अपनी पोज़ीशन के अहल[4] थे और ज़िन्दगी में कामयाब रहे थे। उनकी तक़लीद में यह नौजवान उनकी अमली कामयाबी, उनका एहसासे-कमतरी और एहसासे-बरतरी, उनका बाज़ारीपन और ख़ुदगर्ज़ी और उनकी दानाई[5] हासिल कर रहे थे। यह अपने वुजूद की उस सतह पर मुकम्मल तौर पर ख़ुश थे, जहाँ ज़िन्दगी के मुश्किलतर मराहिल[6] में से गुज़रे बग़ैर मंज़िल तक पहुँचा जा सकता था। वह ख़ुशबाश लोग थे।

उनकी मजलिसी[7] ज़िन्दगी में यकसर तब्दीली आ चुकी थी। उनमें से ज़्यादातर, जिन्होंने इब्तिदाई[8] उम्र में या कॉलेजों में घटिया आदतें और तर्बियत पाई थी, अब तहज़ीब्रयाफ़्ता[9] होते जा रहे थे। तहज़ीब और अख़्लाक़ का उनके पास एक बिलकुल नया तसव्वुर था, जो कि उनके लिए बेहद ख़ुशकुन था। एक छोटे-से क्लब में वे अक्सर शामों को इकट्ठे होते, ताश खेलते और गप्पें मारा करते। वहाँ पर वे कभी किसी मुल्की, सियासी या समाजी मसअले पर बहुत ज़्यादा संजीदगी या जोश के साथ बहस करते हुए न सुने गए थे। ज़ब्त और अख़्लाक़ का दामन हाथ से छोड़ना या ग़ैर-ज़रूरी तौर पर गर्मजोशी का इज़हार करना घटिया तर्बियत को ज़ाहिर करता था, चुनाँचे सख़्त नागवार था। वे यह कभी बरदाश्त न कर सकते थे कि ग़ैर-तहज़ीब-याफ़्ता[10] कहलाएँ, चाहे उसकी क़ीमत उनको नफ़रतों और लम्बी-लम्बी शख़्सी कुदूरतों की शक्ल में ही क्यों न अदा करनी पड़े। वे एक बेहतर ज़िन्दगी में दाख़िल हो रहे थे, जहाँ ख़ारिजी[11] ज़िन्दगी बेफ़िक्र और आसान थी। रास्ता बे-ख़तर और पुर-आसाइश[12] था, लेकिन शख़्सी ज़िन्दगी में क़दम-क़दम पर धचके और दिल-शिकन इंकिशाफ़ात[13] थे, ज़ब्त और किब्रे-नफ़्स[14] था। इसने उन नौजवानों को मग़रूर और ज़ूदरंज[15] बना दिया था। वे एक ऐसे नए चमकदार जूते की तरह थे, पहले ही रोज़ किसी हादसे की वजह से, जिसके टाँके ढीले हो जाते हैं, और पहननेवाले को हमेशा उसे एहतियात से इस्तेमाल करना पड़ता है।

मुल्क के हालात या आम आदमी के जज़्बात से किसी को दिलचस्पी न थी, कोई ख़्वाहिश न थी। उनका फ़ालतू वक़्त ज़्यादातर बातें करने में गुज़रता। हलकी, पुर-अख़्लाक़, ख़ुशकुन बातें, अफ़वाहें, पुर-मज़ाक़ गप्पें, जिनसे ख़ुद-इत्मीनानी[16] का एहसास पैदा होता। लड़कियों की बातें, जो निहायत ग़ैर-शख़्सी[17] और हलके तंज़िया अन्दाज़ में की जातीं। निजी बातें कोई न करता और निजी बातों में दिलचस्पी कोई न लेता। अगर कोई निजी मसअला पेश करना भी चाहता, तो इस ख़याल

---

1. समानता, 2. अतीत, 3. आर्थिक, 4. योग्य, 5. अनुसरण, 6. कठिनतर पड़ाव, 7. सभा सम्बन्धी, 8. प्रारम्भिक अवस्था, 9. सभ्य, 10. असभ्य, 11. बाहरी, 12. सुविधापूर्ण, 13. दिल तोड़नेवाले रहस्योद्घाटन, 14. घमंड, 15. आशुरोष, 16. आत्म-सन्तोष, 17. अव्यक्तिगत।

से रुक जाता कि कहीं सुननेवालों की तबीअत पर बोझ न पड़े। माहौल में एक हलका-फुलका, बेतअस्सुर वुजूद[1] था, जैसे बिजली के वे खम्बे, जिन पर अभी तार न लगाए गए हों, हरे-भरे खेतों के दरमियान इक्का-दुक्का चमकते हुए खड़े होते हैं—ख़ुश्क और बेजान।

अमली[2] ज़िन्दगी में ज़्यादा तसादुम[3] था। कारीगरों और मज़दूरों के मुक़ाबले में ज़ाहिर है कि उन्हें बरतरी हासिल थी, चुनाँचे उनसे अलग-थलग रहना ज़रूरी था। अफ़सरों की तरफ़ से उनकी बहुत कम हौसला-अफ़ज़ाई[4] की जाती थी। कभी-कभार रस्मी दावतों में घरों पर बुला लिए गए और बस...(उनके लिए सबसे ज़्यादा ख़ुशी का वह दिन होता, जिस रोज़ वह किसी अफ़सर के साथ चन्द मिनट के लिए निजी बात करने का मौक़ा निकाल लेते।) इस तरह वे एक दर्दनाक अलाहदगी में जा पड़ते थे, लेकिन यह अलाहदगी उनके लिए अज़ीयतनाक न थी, बल्कि उनकी ख़ुदपसन्द[5] और ज़ूदरंज तबीअत की ख़ूराक बन गई थी। आपस में भी उनके तअल्लुक़ात बड़े दिलचस्प थे। जिनको वे अपने से ज़्यादा क़ाबिल और होशियार समझते, उनके साथ दोस्ती करने से कतराते और हासिदाना एहतिराम[6] के साथ उनसे मिलते। ज़्यादातर उनसे बेतकल्लुफ़ होते, जिनको अपने से कम और बेवक़ूफ़ समझते। एक बेरूह[7] माद्दी[8] ज़िन्दगी के क़वाइद[9] ने उन्हें औरतों से ज़्यादा हासिद बना दिया था। यूँ हर छोटे-बड़े के साथ उनका बर्ताव बेहद पुर-अख़्लाक़ था।

तेज़ सफ़ेद धूप थी, जिससे आँखें दुखने लगती हैं और ज़मीन बेरंग और कमज़ोर हो जाती है और कौए पानी के नलों पर बैठे रहते हैं, बैठे रहते हैं, यहाँ तक कि लोग उनके क़रीब से गुज़र जाते हैं और मौसम की शिद्दत में परिन्दे और इनसान के क़ुदरती इनाद[10] का एहसास न होने के बराबर रह जाता है। यह मई का मौसम था—नंगे, बेरंग खेतों का मौसम।

लम्बे मैदान को पार करके अली नौ-तामीर[11] कमरे में दाख़िल हुआ। कड़ी धूप में से गुज़रकर आने के बाद ठंडी दीवारों और ताज़ा पलस्तर की बू उसे अच्छी मालूम हुई। उसने लम्बा पुर-सुकून साँस लिया और हवा की नमी को गले में महसूस किया। कमरे के बीच में खड़े-खड़े उसने ख़ुशी और सुकून के साथ बेमतलब चारों तरफ़ देखा। उसके पेट की जलन अब कम हो गई थी और वह आसानी के साथ अपने वज़न को सँभाले हुए खड़ा था। कमरे की दीवारों पर नर्म रौशनी थी, जो आँखों को अच्छी लगती थी। फ़र्श पर जगह-जगह टूटी हुई ईंटें, घुला हुआ पलस्तर, लकड़ी के छोटे-बड़े टुकड़े पड़े थे। दो-एक जगह तरखानों के औज़ार और लकड़ी का सामान बिखरा था। कमरे में सिवाय अली के और एक दूसरे शख़्स के, जो कोने में बैठा खा रहा था, और कोई न था। उसने कमरा पार करके औज़ार फ़र्श पर रखे और हाथ बढ़ाकर खिड़की खोल दी। लू और धूप के सैलाब के साथ खिड़की के रास्ते बाहर का सारा मंज़र कमरे में आ गया। लम्बा-चौड़ा और चटियल मैदान, और उसे तेज़-तेज़ पार करते हुए इक्का-दुक्का मज़दूर और कारीगर, जिनके सिरों और कन्धों पर सूरज चमक रहा था। परे फ़ैक्टरी की इमारत, जिसके बरामदों में बैठे वे खाना खा रहे थे, और पसीना पोंछ रहे थे। सारा काम एकदम थम गया था। यह खाने का और ख़ामोशी का वक़्त था।

"इसे बन्द कर दो।" दूसरे शख़्स ने बेतअल्लुक़, लेकिन क़तई लहजे में कहा।

अली ने खिड़की बन्द कर दी। बाहर का नज़्ज़ारा वापस चला गया। वह हथेलियों से आँखों को ढाँपकर फ़र्श पर बैठ गया। बन्द आँखों के सन्नाटे में देखते हुए थोड़ी देर के लिए उसने अपने आपको महफ़ूज़ और आसूदा[12] महसूस किया। फिर उसने हाथ हटाए और आँखें झपकने लगा।

वह उसकी तरफ़ आधी पुश्त मोड़कर बैठा हुआ काहिली से खा रहा था। पुश्त सियाह और चौड़ी थी और गोश्त की कमी की वजह से कन्धों की मज़बूत हड्डियाँ दिखाई दे रही थीं। उसका जबड़ा बहुत लम्बा और भारी था और जुगाली करते हुए बैल की तरह हिल रहा था। अली ख़ामोशी

1. प्रभावहीन अस्तित्व, 2. व्यावहारिक, 3. परस्पर टकराव, 4. प्रोत्साहन, 5. आत्मप्रिय, 6. ईर्ष्यालु सम्मान, 7. निष्प्राण, 8. भौतिक, 9. नियमों, 10. द्वेष, 11. नवनिर्मित, 12. सुरक्षित और सन्तुष्ट।

से बैठा उस ग़ैर-इनसानी जबड़े को काम करते हुए देखता रहा। उसे देखते हुए अली को क़ुव्वत का एहसास हुआ। सख़्त ख़ुराक टूटकर, पिसकर, ज़र्रात[1] में तब्दील होकर लुआब बनकर गले से उतर रही थी और जबड़ा काहिली से, लेकिन मशीनी अन्दाज़ और क़ुव्वत के साथ चल रहा था।

खाना ख़त्म करके वह मुड़ा, "लो !" उसने बची हुई रोटी अली की तरफ़ बढ़ाई।

"मुझे भूक नहीं।" अली ने कहा। वह तअज्जुब से हँसा और रोटी का टुकड़ा कुत्ते के आगे फेंक दिया।

"आदमी का हक़ पहले है, ख़ैर..." वह खाने की पोटली बाँधता हुआ बोला।

"क्यों ?" अली ने पूछा।

उसने सिर उठाया और एक सादा, अहमक़ाना हँसी उसके चेहरे पर फैल गई। अली ने उसे पहली दफ़ा देखा था, लेकिन उसका बेतकल्लुफ़ हमदर्दी का रवैया उसके जी को अच्छा लगा था। वह उठकर उसके पास जा बैठा। वह पोटली के साथ होंठ साफ़ कर रहा था। वह अधेड़ उम्र का मज़बूत चेहरे और सादा आँखोंवाला शख़्स था। उसके सियाह पट्ठेदार जिस्म से मशक़्क़त की आफ़तों का इज़हार होता था। अली दीवार से टेक लगाकर कमरे में देखने लगा। वह दिल में ख़ुश था।

"मैं हर रोज़ नए बने कमरों में आ जाता हूँ।" उसने कहा।

"क्यों ?"

"गर्मी से बचने के लिए।"

"आह...आहा हा..." अधेड़ उम्र शख़्स के होंठों से मुख़्तसर और बेइख़्तियार, उबलती हुई हँसी निकली, "बड़ी अजीब बात है, अजीब !"

अली उसको देखता रहा।

"आहा हा..." वह फिर हँसा, "जब कमरे बनने बन्द हो जाएँगे, फिर ?"

"फिर ?" अली सोचने लगा, "फिर तो जाड़े आ जाएँगे।"

उसके मुँह से फिर वही मुख़्तसर, उबलती हुई हँसी पैदा हुई। ऐसी हँसी पक्की उम्र के जाहिल, मेहनतकश लोगों के लिए ग़ैर-मामूली बात थी। "यह अच्छे दिल का आदमी है।" अली ने सोचा।

"बड़ी अजीब बात है–बड़ी अजीब !" उसने दुहराया।

"क्या ?"

"इस पिल्ले को मैं रोज़ रोटी देता हूँ, पर एक रोज़ मैं चला जाऊँगा, तो फिर ?"

"कहाँ ?"

"घर !"

"घर ?" अली ने हैरानी से दुहराया। फिर उसने दीवार के सथ सिर टेककर आँखें बन्द कर लीं और धीरे से बड़बड़ाया, "मैं घर नहीं गया...इस बार..."

पिल्ला आकर उसका पाँव चाटने लगा था। उसने आँखें बन्द रखीं और याद किया कि इस दफ़ा फ़सल के मौक़े पर उसको छुट्टी न मिली थी और घर पर कोई मर्द न था और उसे ख़बर मिली थी कि फ़सल काटनेवालों ने उनकी माँओं को बहुत कम हिस्सा दिया था। उसके पेट में फिर हलचल उठी।

अधेड़ उम्र का शख़्स ग़ौर से उस नौजवान आदमी को देख रहा था, जिसकी आँखों के नीचे गढ़े पड़े हुए थे और गालों की हड्डियाँ नुमायाँ हो गई थीं, मगर जिसके चेहरे पर अभी तक नौजवानी का बाँकपन था। उसने आहिस्ता से अली को कन्धे से छुआ।

"तुम बीमार हो ?"

1. कणों।

"मैं ? नहीं !" अली ने घबराकर आँखें खोल दीं।

"मैंने बहुत-से किसानों को बीमार देखा है, आजकल।"

"मैं किसान नहीं हूँ।" अली ने कहा।

"किसान बीमार नहीं होता। उसे बीमारी रास नहीं आती। जब वह बीमार होता है, तो मर जाता है, पर पता नहीं..." उसने फ़िक्रमन्दी से हाथ फैलाए, "इतनी ज़्यादा मुर्दनी शक्ल से तो तुम किसान ही दिखाई देते हो।"

"मैं मिस्त्री हूँ।"

वह बे-यक़ीनी से हँसा, "फिर भी...फिर भी...तुम्हारी उम्र में यह सोच ?"

अली बाहर देखने लगा। धूप की सफ़ेद चादर मैदान में फैली हुई थी। उसने आँखों पर हाथ का साया कर लिया।

"तुम सूरज में नहीं देख सकते ?" दूसरे शख़्स ने पूछा।

"तुम कहाँ काम कर रहे हो ?" अली ने पूछा।

"पच्छिमी दरवाज़े पर।"

"क्या कर रहे हो ?"

"खोद रहे हैं...बिजली के लिए।"

"तुम्हारा जिस्म खोदने के लिए अच्छा है।" अली ने उसे तारीफ़ी नज़रों से देखते हुए कहा।

उसने मुँह में हँसकर कोई जवाब न दिया, लेकिन अली बाहर धूप में, और अन्दर कमरे में लकड़ी और ईंटों के बिखरे हुए टुकड़ों को देख रहा था। थोड़ी देर के बाद दूसरे शख़्स ने टाँगें समेटीं और बेलचा कन्धे पर रखकर उठ खड़ा हुआ।

"फिर भी...इस उम्र में यह सोच। ख़ुराक़ ज़्यादा कर दो....ख़ुराक..." उसने बेलचे के दस्ते के सिरे पर पोटली बाँधी और बाहर निकल गया।

उसकी पुश्त चौड़ी थी और उसमें हलका-सा ख़म था। वह थके हुए क़दमों से चल रहा था और बेलचे के सिरे पर ख़ाली पोटली हिल रही थी। कुत्ता कुछ दूर तक उसके पीछे-पीछे गया, फिर वापस आ गया। जब मैदान के सिरे पर वह मुड़कर ओझल हो गया, तो अली, जो ख़ाली-ख़ाली नज़रों से उसे तक रहा था, अचानक बेचैन हो गया। वह अब पूरे तौर पर उसके ज़ेहन में आ गया था। झुकी हुई चौड़ी पुश्त पर उसकी सादा ख़ुशकुन मुस्कराहट फैली हुई थी। उसका जी चाहा कि फिर उसको देखे। वह उठकर खिड़की के सामने जा खड़ा हुआ, जो लू के ज़ोर से खुल गई थी। वह अब भी जा रहा था अपनी भारी, थकी हुई चाल के साथ। बेलचे का सिरा और ख़ाली पोटली सिर से ऊपर निकले हुए थे। अली देर तक खोजती हुई नज़रों से देखता रहा, लेकिन उसका चेहरा दूसरी तरफ़ था और सूरज उसके कन्धों पर चमक रहा था। दूर से उसकी धीमी, मुस्तक़िल चाल का नज़्ज़ारा देखनेवाले में थकन पैदा करता था। अली खिड़की से हट आया। वह इस क़दर अकेला था—तन्हा ! यह हैरानकुन ख़याल पहली दफ़ा उसके दिल में पैदा हुआ।

अब मैदान बहुत-से लोगों से भर गया था, जो इधर-उधर से आ-जा रहें थे। उनमें से किसी को काम की जल्दी न थी। वे महज़ सूरज की वजह से तेज़-तेज़ चल रहे थे। जब वे ठंडे कमरों और सायादार जगहों में अपने-अपने काम पर पहुँचते, तो बेमतलब ख़ला[1] में घूरते। औज़ारों को बेदिली से उठाते और रखते और काम शुरू करने के बहाने ढूँढते रहते। दोपहर के खाने के बाद जो काहिली और सुस्ताने की ख़्वाहिश जिस्म पर कब्ज़ा पा लेती थी, उसके असर से वे थोड़ी देर के लिए बेकार हो जाते।

कमरे में और कमरे के बाहर ख़ामोशी और ख़ला का जादू टूट चुका था। अली के चारों तरफ़

1. शून्य।

लोग घूम रहे थे और ऊँची सुस्त आवाज़ों में बातें कर रहे थे। खिड़की के क़रीब खड़े-खड़े उसने बारी-बारी सबको देखा। साफ़तौर पर सबकी मौजूदगी को अलग-अलग महसूस किया, ख़ुद उनके वुजूद से बेतअल्लुक़ रहा। खिड़की से बाहर देखते हुए उसने महसूस किया कि वह ख़ुद बाहर के नज़्ज़ारे में शामिल था और खिड़की के बाहर खड़ा कमरे में देख रहा था। यह हैरान कर देनेवाले महसूसात[1] का दिन था। वुजूद और एहसासात का यह आलम उसकी समझ से बाहर था।

"बन्द कर दो। इसे बन्द कर दो।" कुछ आवाज़ें आईं। अली ने झुककर औज़ार उठाए और बाहर निकल गया। पीछे कमरे में किसी ने गाली दी और पटाख़ से खिड़की बन्द कर दी।

मैदान में सूरज की चमक के साथ-साथ ख़्वाब का वह आलम तेज़ी से गुज़र गया। आहिस्ता-आहिस्ता उसके पेट की जलन बढ़नी शुरू हुई। वह उस बड़े हॉल में दाख़िल हुआ, जहाँ वे काम कर रहे थे। हॉल ख़ुश्क और तपा हुआ था और बे-किवाड़ खिड़कियों में से धूप अन्दर आ रही थी। लम्बाई के रुख़ छोटे-छोटे चबूतरों पर तकलों की मोटरें लगाई जा रही थीं। वह अपने चबूतरे के पास रुककर अध-कसे काबले को देखने लगा, जिसको वह छोड़कर गया था। उसके आगे और पीछे तमाम लोग काम शुरू कर चुके थे। धात के टकराने और एक साथ मिलकर ज़ोर लगाते हुए ख़लासियों की आवाज़ें आ रही थीं। वह चबूतरे पर बैठकर काबला कसने लगा। चाबी घुमाते-घुमाते उसने कसे हुए काबलों को गिना। सिर्फ़ पन्द्रह थे। यह उसका उस वक़्त तक का काम था। शाम से पहले-पहले उसे चालीस काबले कसना थे। वह तेज़ी से चाबी घुमाने लगा।

फ़िटर ने दूर से अली को काम करते हुए देखा और मोटे-मोटे खुरदरे हाथ लटकाकर चलता हुआ उसके सिर पर आ खड़ा हुआ।

"कितने हुए ?"

अली उस करख़्त आवाज़ से मानूस था। "पन्द्रह, उस्ताद।" उसने कहा।

"ऐं ? पन्द्रह ?" फ़िटर चीख़ा।

"पन्द्रह !" अली ने ढिठाई से दुहराया।

"आ...आ..." फ़िटर ने मायूसी से हाथ फैलाए। उसका बनावटी ग़ुस्सा ग़ायब हो चुका था, "तू लाहौर का लौंडा है। हैं ? लानत है। तू अपने बाप को बदनाम कर रहा है। तुझसे तो यह चमार का लौंडा अच्छा है, जिसने अपने ख़ानदान का नाम ऊँचा किया है।" वह अगले चबूतरे के पास से गुज़रते हुए चमार लौंडे की पसलियों में अँगूठा चुभोकर बोला। लड़का, जो नया-नया आया था, सुर्ख़ हो गया और दाँत निकालकर हँसने लगा।

अली मशीन की-सी तेज़ी और बाक़ायदगी से काबले कसता रहा और आहिस्ता-आहिस्ता उसके सीने की जलन बढ़ती गई। जब बत्तीस काबले हो गए, तो उसने सिर उठाया। चार मोटरें छोड़कर एक लौंडा फ़िटर की टाँगों से चिमटा हुआ था। उस वक़्त वह उस्ताद की पतलून उतारने की फ़िक्र में था, जो कि उन सबका मन भाता काम था। वे किसी-न-किसी बहाने उसकी टाँगों पर हाथ रखे रहते और फ़िटर, सब कुछ जानते-बूझते हुए, आगे-आगे चलने की कोशिश करता रहता। इस तरह वे उसकी पतलून नीचे गिराने में कामयाब हो जाते। उस वक़्त वह लड़का बहाने से मासूम-सी शक्ल बनाए मिन्नतें कर रहा था और उस्ताद उससे टाँगें छुड़ाने की कोशिश कर रहा था। देखते ही देखते उसकी पतलून लौंडे के हाथों में आ गई, जिसे वह नीचे गिराकर सरपट भागा। फ़िटर ऊँची आवाज़ में गालियाँ देने और पतलून कसने लगा। सब अपने-अपने मुँह क़मीज़ों में छुपाकर हँसने लगे। अली को अपनी हँसी की आवाज़ सीने की दीवारों के साथ बजती हुई महसूस हुई। जब फ़िटर चक्कर लगाता हुआ वहाँ से गुज़रा, तो वह चाबी छोड़कर उठ खड़ा हुआ।

"मैं चाय पीने जा रहा हूँ।" उसने कहा।

---

1. अनुभूतियाँ।

"ऐं, अभी तो आए हो ?"

"मैंने कुछ नहीं खाया।"

फ़िटर ने शायद पहली दफ़ा उसे ग़ौर से देखा और चौंक पड़ा, "अली !" उसने आहिस्ता से उसे कन्धे पर छुआ, "क्या बात है ?"

"मुझे भूक लगी है।"

"तुम रात को सोए नहीं ?"

"मुझे भूक लगी है।" अली ने दुहराया।

"जाओ," उसने दोबारा बेचैनी से अली के कन्धे को छुआ, "आराम करो। जाओ।"

बाहर निकलते ही उसकी भूक ग़ायब हो गई। मैदान में धूप का रंग फीका पड़ रहा था और अन्दर से उठनेवाले शोर के बावजूद बाहर गर्मी की दोपहर का सन्नाटा था। लोहे के पाइपों और बन्द मशीनरी के क्रेटों के पास से गुज़रकर वह कैंटीन की सीढ़ियाँ चढ़ा।

"एक चाय दो।" उसने कंक्रीट के काउंटर पर झुककर कहा।

"बैठ जाओ, अली। बाहर गर्मी पड़ रही है।" कैंटीनवाले अधेड़ उम्र कमज़ोर शख़्स ने कहा।

"हाँ।" वह बेंच पर बैठ गया।

"कैसा चल रहा है ?"

"ठीक चल रहा है।" अली ने चाय की सुड़की ली।

"इतने साल हो गए," कैंटीनवाले ने मायूसी से कहा, "कब तक चलेगा ?"

"क्या ?"

"फ़ैक्टरी बन ही नहीं पाती।"

गर्मी से घबराई हुई कुछ चिड़ियाँ कमरे में चक्कर लगा रही थीं। वह फिर बोला, "तुम्हारे कोई बच्चा है ?"

अली ने इनकार में सिर हिलाया।

"कै साल हुए ?"

"पता नहीं।"

"पता नहीं," अधेड़ उम्र का कमज़ोर शख़्स मुँह खोलकर हँसा। उसने लाल-लाल आँखें निकालकर उसे देखा और चाय का आख़िरी घूँट हलक़ में उतारकर बाहर निकल आया।

"यह गँवार लोग, जो भूके मरते हुए काम की तलाश में आते हैं..." कैंटीनवाले ने अली के पीछे देखते हुए एक और गाहक से कहना शुरू किसा।

लोहे के पाइपों और मशीनरी के क्रेटों के पास से गुज़रते हुए उसके कान में दूर से ख़लासियों के गिरोह की धीमी आवाज़ें आनी शुरू हुईं—हई सा...हई सा...बेदिली से क़दम रखता हुआ वह अपने चबूतरे के पास आ खड़ा हुआ। ज़्यादातर लोग काम छोड़कर चबूतरों के पीछे छुपकर बैठे हुए गप्पें मार रहे थे। उस्ताद दूसरी लाइन के फ़िटर के पास बैठा छोटा-सा जेबी हुक़्क़ा पी रहा था। कुछ लोग सिर्फ़ आवाज़ पैदा करने को धात-से-धात टकरा रहे थे और बातें करते जा रहे थे। ख़लासियों का गिरोह एक भारी मोटर को रस्से से बाँधकर अन्दर ला रहा था...हई सा...हई सा...बोली देनेवाले की आवाज़ नींद में डूबी हुई थी।

फिर ख़लासियों की आवाज़ें अचानक तेज़ हो गईं। दोनों फ़िटर घबराकर उठे और हुक़्क़ा जेब में डालकर क़तारों के बीच दौड़ने लगे। मज़दूर और कारीगर अपने-अपने औज़ारों की तरफ़ लपके। काम का शोर एकदम बढ़ गया। दरवाज़े में से सुर्ख़ चेहरेवाला बुड्ढा अंग्रेज़ चीफ़ इंजीनियर दाख़िल हुआ। वह हर वक़्त आग बगूला रहता था। उसके साथ-साथ ठिगना फ़ोरमैन था। छोटा-सा गंजा सिर साँप की तरह तेज़ी से चारों तरफ़ घुमाकर चलता हुआ वह अन्दर आया। "हे...हे..." करके

फ़िटरों को पास बुलाया और हॉल के बीच में रुककर काम का जायज़ा लेने लगा। फिर फ़ोरमैन को मुख़ातिब करके उसने फ़िटरों के सिरों के ऊपर बाज़ू चलाए और अधूरे काम की तरफ़ इशारा करके पाँच मिनट तक तेज़, ख़ुश्क आवाज़ में चीख़ता और ग़ुस्से से नाचता रहा। मोटरों के पास से गुज़रते हुए उसने एक लड़के के चूतड़ों पर बूट की ठोकर मारी और चीख़ा, "है जालडी करो..." लड़के ने चबूतरे का सहारा लेकर आहिस्ता से गाली दी। अली बाज़ू लटकाए अपनी जगह पर खड़ा रहा, खड़ा रहा, यहाँ तक कि बुड्ढा अंग्रेज़ उसी तरह चीख़ता हुआ उसके पास से गुज़र गया। उसने ख़ामोशी से दाँत पीसे।

कुछ देर तक काम तेज़ी से होता रहा। फिर नौजवान इंजीनियर मजीद दाख़िल हुआ। उसका क़द लम्बा और रंग साँवला था। अंग्रेज़ी लहजे में "हे-हे" करके उसने फ़िटरों को बुलाया। चन्द मिनट तक बाज़ुओं को तेज़ी से हवा में हरकत देता और चीख़ता रहा। फिर कुहनियाँ बाहर निकालकर चलता हुआ निकल गया। उसके होंठों पर हलकी-सी इत्मीनान-बख़्श, फ़ातिहाना[1] मुस्कराहट थी। कुछ देर के बाद दोनों फ़िटर फिर हुक़्क़ा पी रहे थे और लौंडे चबूतरों के पीछे-पीछे गप्पें मार रहे थे।

औज़ारों को वहीं छोड़कर अली बाहर निकल आया। पेट की जलन की जगह अब एक धीमी, मुस्तक़िल, शदीद बेदिली और बदमज़गी ने ले ली थी। एक ऐसी कैफ़ियत, जो आसानी से सहारी न जा सकने के अलावा आसानी से बताई भी नहीं की जा सकती थी। मैदान को पार करते हुए उसे एक अजीबो-ग़रीब ख़याल आया कि जैसे वह खड़े हुए नौजवान दरख़्तों के साए में सुस्ता रहा है और दरख़्त रोज़-ब-रोज़ ख़ुश्क होते जा रहे हैं।

धूप में सिर झुकाकर वह अकेला चलता रहा। दोपहर ज़र्द पड़ चुकी थी, लेकिन आसमान अभी गर्म और मटियाला था। चीलें ऊपर चली गई थीं और दूर से उनकी चीख़ों की आवाज़ दोपहर के आख़िरी सन्नाटे को ज़्यादा सुनसान बना रही थी। कौए, जो दरख़्तों और दीवारों के परिन्दे हैं, साए में पानी की टोंटियों के गिर्द चौकस बैठे थे, जबकि अली कड़ी, मुस्तक़िल चाल से उनके क़रीब से गुज़रता रहा। कहीं-कहीं बच्चे, जिनके माँ-बाप मसरूफ़ और लापरवाह थे, कौओं की तरह दीवारों के साए में बैठे आहिस्ता-आहिस्ता खेल रहे थे। कभी-कभी कोई बच्चा उस अकेले जाते हुए शख़्स को पहचानकर उँगली से इशारा करता, "वह अली है।" और फिर खेलने लगता।

दरवाज़े और खिड़कियाँ बन्द करके आयशा सो रही थी। उसके गाल और छातियाँ पसीने से भीगी हुई थीं और ज़रा-से खुले हुए मुँह में से ख़र्राटों की आवाज़ आ रही थी। अली दरवाज़े में खड़ा आशना[2] ला-तअल्लुक़[3] नज़रों से उसको देखता रहा। फिर उसने ज़ोर से दरवाज़ा बन्द किया। आयशा जाग उठी।

"आज तुम दोपहर को नहीं आए ?" वह आँखें मलती हुई उठ खड़ी हुई। वह छरहरे बदन की लम्बी-सी लड़की थी, जिसका रंग गन्दुमी और जिल्द सेहतमन्द थी। "मैं बैठी इन्तिज़ार करती रही। फिर पता नहीं कब सो गई। बड़ी गर्मी लग रही थी। तुमने खाना खा लिया ? सब तो आए थे। आज तुमको बड़ा काम था ? मैंने रहीम से पूछा, तो उसने कहा कि उसने तुम्हें इधर आते देखा था, फिर तुम कहाँ चले गए ? एक मुर्ग़ी को कालू उठाकर ले गया है। कालू का बच्चा...बिल्ला, तुम उसे मार क्यों नहीं देते ? पता है उन गर्मियों में हमने एक बिल्ला मारा था, गाँव में, जब रौशन आग़ा के कुत्ते..."

"मुझे खाना दो।" अली ने झल्लाकर कहा।

वह बातें करती हुई कमरे से निकल गई, "तुम नहा लो, तो अच्छा है। खाकर नहाओगे, तो गर्म-सर्द हो जाओगे। खाना तो मैंने तैयार कर दिया था, जब एक पहर दिन..." आहिस्ता-आहिस्ता

1. विजयपूर्ण, 2. परिचित, 3. असम्बद्ध।

उसकी आवाज़ भिनभिनाहट में तब्दील हो गई। अली ख़ाली नज़रों से दीवारों को देखता हुआ चारपाई पर बैठा रहा। जब वह खाना ले आई, तो उसने पाँव ऊपर खींचकर टाँगें समेटीं और खाने लगा।

"मक्खियाँ टिड्डी की तरह आती हैं," आयशा उड़ाते हुए बोली, "टिड्डी यहाँ कभी नहीं देखी। शादी से पहले साल जब मैं रौशनपुर आई थी, तो कितनी टिड्डी आई थी। गाँव की सारी लड़कियाँ टिड्डी पकड़ने को निकल आई थीं और सारे मर्द फ़सलों में घुसकर शोर मचा रहे थे और हमें देखकर तुम खेत से निकल आए थे, और तुमने मुझसे कहा था, "टिड्डी मत खाना। औरतों के लिए अच्छी नहीं होती। बस मर्द के लिए अच्छी होती है। उस वक़्त मैं रावल की माँग थी। उसने हमें बातें करते हुए देख लिया था। रावल आजकल कहाँ है ? आज बारिश आएगी...आसमान तप रहा है...और चीलों की आवाज़ तुमने सुनी है ? पानी माँग रही हैं...दूर, ऊपर...वह देखो। आज करेले अच्छे नहीं हैं ? आज पुदीना नहीं था। रहीम के बेटे के पेट में मरोड़ उठा था, वह सारा तोड़कर ले गए। तुमने ही कहा था, रहीम के घर से जो कुछ माँगें, दे दिया करो। आज मक्खियाँ भी ज़्यादा हैं। सवेरे कुछ लोग आए थे, जो मस्जिद के लिए चन्दा जमा कर रहे थे। मैंने अन्दर से कुंडी लगाकर मकर कर लिया। (अली ने खाना खाते हुए दिल में उसे गन्दी-सी गाली दी) देर तक वे दरवाज़ा तोड़ते रहे और फिर चले गए। हम कोई मस्जिद में जाते हैं, जो चन्दा दें। कालू के पीछे मैं भागी थी, मगर वह तेज़ निकला। मैं कितना तेज़ भागती थी, तुम्हें याद है ? मेरा जी गाँव जाने को करता है। यहाँ पर चिड़ियाँ नहीं होतीं, ऐं ?"

अली को भूक न थी, मगर खाए जा रहा था। हर एक निवाले को चबाकर, बारीक लुआब बनाकर निगल रहा था। जब उसने पानी पीकर बर्तन आयशा को पकड़ाए, तो भी वह बातें कर रही थी। वह एक बे-तमीज़ किसान लड़की थी, जिसकी ज़िन्दगी की एक ही ख़्वाहिश होती है कि अपने मर्द को ख़ुश रखे। इस ख़्वाहिश को पूरा करने के लिए उसे बातें करने के सिवा कुछ न आता था। जब वह दोबारा कमरे में दाख़िल हुई, तो अली चारपाई पर लेटा छत को तक रहा था। वह फिर बातें करने लगी।

"दरवाज़ा बन्द कर दे। यह रौशनी..." अली ने आँखों पर हाथ रखा।

बोलते-बोलते उसने दरवाज़ा बन्द किया।

"बकबक न कर। इधर आ..." अली ने कहा।

वह गँवार औरतों की तरह आकर उसके पास बेसुध लेट गई। अली उसकी लम्बी, गोल रान पर हाथ रखे लेटा रहा, लेटा रहा, इन्तिज़ार करता रहा। फिर यकायक अँधेरे में हँसा और उस पर झुक गया। हँसी की आवाज़ बनावटी और खोखली थी।

बाद में वह देर तक बेदम लेटा हुआ छत को घूरता रहा और नींद आहिस्ता-आहिस्ता उस पर छाती चली गई। उसे सुकून मिल गया था, लेकिन रूह की जलन दब जाने के बावजूद क़ायम थी। आज का दिन तेज़ जलन का दिन था। ऐसे दिन कभी-कभी आया करते थे।

29

"ए लड़को...लड़कियाँ हैं।" फ़िटर अहमद ने दरवाज़े में रुककर कहा। फिर वह मुड़ा और एक आँख भींचकर मुस्कराया।

"कुछ लड़कियाँ हैं," उसने दोबारा कहा।

सारे 'स्पिनिंग-रूम' में एक ख़ामोश बेचैनी फैल गई। बेज़ार चेहरों पर रँग आ गया और

मुश्ताक़[1] नज़रें दरवाज़े पर लग गईं। बाहर फ़ैक्टरी की फ़िज़ा हमेशा की तरह बे-मौसम और धूल से अटी हुई थी। एक मज़दूर औज़ार बजाता हुआ तेज़-तेज़ मैदान पार कर रहा था। अन्दर क़तार-दर-क़तार चलते हुए तकलों पर खड़े हुए मज़दूरों में यह ख़बर आहिस्ता-आहिस्ता फैलने लगी।

फ़ज़ल ने हिम्मत करके अपना तकला छोड़ा और दरवाज़े में जाकर सिर बाहर निकाला। फ़ैक्टरी की धूल से भरी फ़िज़ा साफ़ हो गई थी, और उसमें मौसम के रंग निखर आए थे। शोख़ रंगों के ऊनी लबादे और शालें ओढ़े तालिबे-इल्म[2] लड़कियों का गिरोह लापरवाही से चलता हुआ 'स्पिनिंग-रूम' की तरफ़ आ रहा था। जाड़े की तेज़ हवा में उनके लबादे उड़ रहे थे और सिर पर बँधे हुए रंगीन रूमालों में से निकली हुई घने सियाह बालों की लटें उनके माथों पर फड़फड़ा रही थीं। वे सब नौ-उम्र, सेहतमन्द लड़कियाँ थीं और खिलखिलाकर हँस रही थीं। कुछ पल तक वे दोनों दरवाज़े में खड़े ख़ुशगवार हैरत के साथ उन्हें देखते रहे, फिर जल्दी से हट आए। वापसी पर फ़ज़ल अली के पास रुका, उसके एक ज़ोरदार धप् से अली उछलकर सीधा हो गया।

"क्या है ?" उसने गाली देकर कहा।

"लड़कियाँ आई हैं।"

"हुँह।"

फ़ज़ल मक्कारी से हँसता और उसके कन्धे पर हाथ मारता हुआ आगे चला गया। अली ने दोबारा गाली दी।

उनके साथ एक नौजवान इंजीनियर, जिसने बढ़िया लिबास पहन रखा था, बेहद अख़्लाक़ के साथ आगे-आगे चल रहा था। ग्रुप के आख़ीर में दो लड़कियाँ नौजवान की चाल-ढाल की नक़ल उतार रही थीं।

"ये तकले हैं। यहाँ कपड़ा बुना जाता है।"

"चरख़े ?"

"हाँ ! मशीनी चरख़े।" इंजीनियर ने फ़ख़्र से मुस्कराकर कहा।

"चरख़ा।" शरारती लड़कियों में से एक ने इंजीनियर की तरफ़ इशारा करके अपनी साथी से कहा।

"मशीनी चरख़ा।" दूसरी ने धीरे से दुहराया और होंठ दबाकर हँसी।

"यह क्या है ऐ ऐ ?"

"अररर...आ आ..." इंजीनियर ने झपटकर बड़ी लड़की की शाल तकले में से छुड़ा ली। वह लड़की, जो ग्रुप की लीडर मालूम होती थी, और गम्भीरता से इंजीनियर के साथ-साथ चलती हुई सब चीज़ें देख रही थी, अब घबराई हुई खड़ी फटी हुई शाल को हाथ में मरोड़ रही थी।

"चालू मशीनरी।" इंजीनियर तंबीहन[3] हाथ हवा में हिलाकर पुकारा, "चालू मशीनरी के पास कोई मत जाए, यह बहुत ख़तरनाक है और अपने-अपने लबादों को ढीला मत छोड़िए, यह बहुत ख़तरनाक है...और...यह बहुत ख़तरनाक है...बहरहाल..."

"उफ़ अल्लाह, कितना शोर है।" एक लड़की ने कानों पर हाथ रखकर कहा।

"चरख़े के पास मत जाओ।" पहली शरारती लड़की ने कहा।

"चरख़े को हाथ मत लगाओ।" दूसरी शरारती लड़की ने कहा। मशीनरी के शोर में उनकी आवाज़ ज़्यादा दूर तक न जा सकी। दोनों तरफ़ हैरान और सादा, झिझक भरी नज़रों से देखते हुए मज़दूरों के बीच-बीच यह ख़ूबसूरत मज्मा आगे बढ़ता गया।

"ए..." एक मज़दूर के पास रुककर इंजीनियर बनावटी ग़ुस्से से चिल्लाया, "तकला इधर नहीं, उधर है।"

---

1. उत्सुक, 2. विद्यार्थी, 3. चेतावनी के रूप में।

मज़दूर खिसियाना होकर मशीन को घूरने लगा।

"चरख़ा इधर नहीं, उधर है।" दोनों शरारती लड़कियों ने कहा। मुस्तक़िल बातें करता और नकटाई को छूता हुआ नौजवान इंजीनियर गिरोह के आगे-आगे बाहर निकल गया।

मज़दूरों में आहिस्ता-आहिस्ता बेचैनी फैलने लगी। पहले वे अपनी-अपनी जगहों पर पैर घसीटते रहे, फिर दरवाज़े की तरफ़ बढ़ना शुरू हुए। पहले फ़िटर, फिर असिस्टेंट फ़िटर, फिर तकलोंवाले। छोटे-से दरवाज़े पर दस-बारह सिर इकट्ठे हो गए और एक-दूसरे को धकेलने लगे। अब सारी हैरानी मिट चुकी थी और उनके जिस्मों में ख़ुशी की लहर दौड़ गई थी। वे वहशियाना तौर पर हँस रहे थे, बेधड़क गालियाँ दे रहे थे और एक दूसरे की बग़लों में सिर देकर उछालने की कोशिश कर रहे थे। खिलखिलाकर हँसती हुई लड़कियों का गिरोह आहिस्ता-आहिस्ता मैदान पार कर रहा था। तेज़ ठंडी हवा में उनके चेहरे सुर्ख़ हो रहे थे और उन्होंने अपने लबादे कसकर लपेट रखे थे, जिनमें से उनके सेहतमन्द जिस्मों का एक-एक अंग थिरकता हुआ दिखाई दे रहा था। रुई के कमरे, सफ़ाई के कमरे और खड्डियों के कमरे के दरवाज़े इनसानी सिरों से खचाखच भरे हुए थे।

छोटा-सा गंजा फ़ोरमैन पिछले दरवाज़े से दाख़िल हुआ और बहुत-सी मशीनों को ख़ाली पाकर उसे ग़ुस्सा आ गया। भागता हुआ दूसरे दरवाज़े पर पहुँचा और पिछले दो मज़दूरों के कन्धों पर हाथ रखकर उछला।

"क्या है ? क्या है ? क्या हो रहा है ?" वह गरजा।

पहले दो मज़दूर तेज़ी से अपनी-अपनी जगह पर वापस पहुँच गए। अगले दोनों की पुश्त पर हाथ रखकर फ़ोरमैन ने दोबारा ऊँची छलाँग लगाई और ज़मीन पर आ रहा।

"सुअरो, यह क्या हो रहा है ? मशीनों को क्यों छोड़ा ? हैं ? यह क्या तमाशा हो रहा है ? हैं ?"

मज़दूर खिसियाकर वहाँ से खिसकने लगे। फ़ोरमैन उनके दरमियान उछलता रहा। जब फ़िटर उसकी नज़र बचाकर गुज़रने लगा, तो उसने उसे कालर से पकड़ लिया और उँगली हिला-हिलाकर डाँटने लगा। फ़िटर अहमक़ों की तरह हँसता रहा।

जब फ़ोरमैन चला गया, तो मशीनों पर खड़े हुए इनसानों की शोख़ी फिर ऊपर आ गई।

"सीधा उनके पीछे जा रहा है, गंजा सुअर।" एक मज़दूर ने कहा। अली ने उसकी हाँ में हाँ मिलाई।

"जाओ, अपनी जगह पर जाओ।" फ़िटर उनके क़रीब आकर चीख़ा, "अब उनको पकाकर खाना चाहते हो ?"

दोनों बुज़दिली से हँसते हुए वापस आ गए। फ़िटर जाकर दरवाज़े में खड़ा हो गया।

"उसे नाचते हुए देखा था, गंजे मसख़रे को ?"

"हाँ !" अली हँसा, "मेरे कन्धे तक भी न पहुँचता था।"

"गंजे बौने को ?" फ़ज़ल ने ठट्ठा मारकर पूछा, "वह और उसका बाप ऊपर तले खड़े हो जाएँ, तो पार कर जाऊँ।"

"चुप रह शेख़ीख़ोरे।" पहला मज़दूर जलकर बोला।

"हैं ?" फ़ज़ल ललकारा, "तुम खड़े घोड़े को पार कर सकते हो ?"

"हुँह।" दूसरे ने हिक़ारत से कहा, "न होगा घोड़ा, न तुम करोगे पार।"

"तो, आ जाओ।" फ़ज़ल ने चारों तरफ़ दीवारों पर ऊँची-ऊँची नज़रें घुमाईं, "उस पर...उस पर..." उसने एक ऊँची खिड़की की तरफ़ इशारा किया।

"आ जाओ।"

दोनों ने हँसते और गालियाँ देते हुए लँगोट कसने शुरू कर दिए। साथ-साथ वे दरवाज़े से बाहर भी देखते जा रहे थे। मैदान के दूसरे सिरेवाले हॉल की खिड़कियों में से लड़कियों के सिर नज़र

आ रहे थे।

"चलो।" एक ने कहा।

"पहले तुम जाओ," दूसरे ने जवाब दिया।

फ़ज़ल ने एक छिछलती हुई निगाह बाहर की तरफ़ दौड़ाई और तेज़ी से भागा। जब दीवार चन्द क़दम पर रह गई, तो उसने रफ़्तार तेज़ कर दी और दीवार पर पाँव मारकर उछला और खिड़की पर हाथ टिका दिया। अब वह बाज़ुओं के सहारे लटक रहा था।

"शाबाश।" खिड़की के क़रीब की मशीनवाला रान पर मुक्का मारकर चिल्लाया।

फ़ज़ल बाज़ुओं के ज़ोर पर आहिस्ता-आहिस्ता उठना शुरू हुआ। ज़रा-सा उठकर रुका और नीचे आ गया। चन्द सैकेंड के बाद उठा और नाकाम रहा। इस दफ़ा वह पहले से ज़्यादा उठ गया था, और ज़्यादा देर तक रुका रहा था। नीचे खड़े हुए मज़दूर जोश से चिल्लाए। तीसरी दफ़ा उसने दाँत पीसकर ज़ोर लगाया और उसकी ठोड़ी खिड़की के ज़ीने तक पहुँच गई। वह रुका रहा। रुका रहा। उसके दाँत नंगे होकर एक-दूसरे पर जमे हुए थे और कन्धे बुरी तरह कँपकँपा रहे थे। उसने घुटने और पाँव चलाए, लेकिन दीवार सीधी और हमवार थी, और उस पर कोई सहारा न था। एक आख़िरी कोशिश में उसने हाथ उठाकर सलाख़ों को पकड़ना चाहा, मगर दूसरा हाथ बोझ को न सँभाल सका और फिसल गया। उसकी ठोड़ी खिड़की के पत्थर से टकराई और वह धड़ाम से नीचे आ गिरा। नीचेवाले मज्मे में से मायूसी की कराह उठी। थोड़ी देर के बाद वह उठा और लँगड़ाता हुआ दीवार के साथ-साथ चलने लगा। उसका इन्तिज़ार किए बग़ैर दूसरा मज़दूर पूरी ताक़त से भागा और दीवार पर पाँव मारकर बहुत ऊँचा उछला। पहली ही कोशिश में उसने मज़बूती से हाथ सलाख़ों पर जमा लिए, लेकिन उसके बाज़ू कमज़ोर थे। दो-एक बार थोड़ा-सा ऊपर उठने के बाद उसने हाथ छोड़ दिए और बिल्ली की तरह पाँव पर गिरा। मज़दूर, जो अब खिड़की के नीचे इकट्ठे हो गए थे, ठट्ठा मारकर हँसे। नाकाम छलाँगिए ने ढिठाई से उन्हें गाली दी और बिला-वजह हँसने लगा।

फ़िटर जो मज्मे के सिर पर आ गया था, पहले तो भिन्नाया, फिर मज़दूरों का जोशो-ख़रोश देखकर ठंडा पड़ गया और उनमें दिलचस्पी लेने लगा। दो-तीन और जवान फलाँगने के लिए तैयार हो रहे थे।

"एक-एक करके, एक-एक करके..." फ़िटर पुकारा, "मशीनों को ख़ाली मत छोड़ो। जो छलाँग लगाएगा, उसकी मशीन का दूसरा ध्यान रखेगा...एक-एक..."

एक-एक करके सब जवाँ मर्दों ने छलाँग लगानी शुरू की। काफ़ी देर तक वे ज़ोर-आज़माई करते रहे, मगर दीवार सर्द और अटूट थी। उसने सारे नौजवानों का ग़रूर तोड़ दिया। दाँत पीस-पीसकर, पट्ठे खींच-खींचकर और रगें फुला-फुलाकर उन्होंने अपनी सारी ताक़तें लगा दीं। एक मसख़रा मज़दूर देर तक जो सलाख़ों से लटका रहा, तो उसके हाथ वहीं पर जकड़ गए और उसको नीम-बेहोशी की हालत में सीढ़ी की मदद से नीचे उतारा गया। उसके बाद सबने एक दूसरे को गालियाँ देते हुए यह खेल बन्द कर दिया।

एक घंटे के बाद हालात मामूल पर आ गए। सब मज़दूर अपनी-अपनी जगहों पर बैठे हुए मशीनों की यकसाँ, बेज़ार कर देनेवाली आवाज़ को सुन रहे थे। बाहर फ़ैक्टरी की फ़िज़ा बे-मौसम और धूल से अटी हुई थी और हवा का ज़ोर टूट चुका था।

30

ऊपर की मंज़िल से, जो लकड़ी का ज़ीना बरामदे में उतरता था, मुसलसल इस्तेमाल की वजह से घिस चुका था, मगर उसकी लकड़ी सियाह, ठोस और उम्दा थी। नजमी ने बरामदे में उतरते ही

नाक उठाकर सूँघा। हवा में बारिश और गीले पत्तों की महक थी। उसने ख़ुशी से कपड़ों पर हाथ फेरा और पायँचे उठाकर एहतियात से चलने लगी। बरामदे का फ़र्श गीला और फिसलवाँ था। अन्दर से ख़ाला ने उसे देखा और पुकारी, "बीबी, नंगे पाँव !"

उसने चोट्टों की तरह गर्दन कन्धों में छुपा ली और दीवार की ओट में होकर चलने लगी। बरामदा ख़ाली और लम्बा था और भीगी हुई चिड़ियाँ बेलों में बैठी पर झटक रही थीं। उसने पायँचे छोड़ दिए। ढीले-ढाले पाजामे में उसके पाँव और पायँचे गीले होने लगे। बरामदे के बीच में कुछ पल रुककर उसने बे-मुद्दआ, इत्मीनान के साथ आस-पास की बेरंगी और बेज़ार कर देनेवाले मौसम को देखा। फिर उसने पायँचे उठा लिए। उसके पाँव ज़र्दी-माइल और दुबले थे। चलते-चलते उसने एक पाँव पलटकर देखा, तलवा गुलाबी और धुला हुआ था और उसमें फ़र्श की नमदार, ख़ुशगवार ठंडक जज़्ब हो रही थी। बरामदे के मोड़ तक पहुँचते-पहुँचते उसने फिर पायँचे छोड़ दिए और बाँहें हिलाती हुई लापरवाही से चलने लगी। अगले बाज़ू में बहुत-सी ऊट-पटाँग चीज़ें बिखरी पड़ी थीं। वह पिंग-पाँग की मेज़ के कोने पर बैठकर टाँगें हिलाने लगी। दूसरे कोने में इमरान दीवार से टेक लगाए उकड़ूँ बैठा था। उसने एक सरसरी, सुस्त निगाह अपनी नौ-उम्र फूफी पर डाली और बाहर देखने लगा।

वह काफ़ी देर तक ख़ामोश बैठी पाँव हिलाती रही, फिर मुड़कर बोली, "हैलो मास्टर डल।"

इमरान ने ठहरी हुई, सुस्त नज़रों से, जिनसे बेवक़ूफ़ी ज़ाहिर होती थी, उसे देखा।

"मौसम ने सारा मज़ा ख़राब कर दिया।" वह फिर बोली।

"हाँ।" इमरान ने सिर हिलाया। वह एक सुस्त-दिमाग़ और भीगी-भीगी उदास आँखोंवाला नौजवान लड़का था, जिसके चेहरे पर कोई तअस्सुर शायद ही पैदा होता था। नजमी बेज़ारी के बावजूद उसी तरह बैठी टाँगें हिलाती और फ़र्श पर बिखरी हुई चीज़ों को देखती रही। बारिश लगातार हो रही थी। एक भटकी हुई ज़र्द तितली बरामदे में से गुज़री।

"ज़र्द गुलाब की पंखड़ी।" वह बोली, "तुमने वह नज़्म सुनी है, जो मैंने जाड़ों में लिखी थी ?"

इमरान ने अपनी अनजान नज़रों से देखा, "जाड़ों में ? ओह...हाँ...जाड़ों में..."

"सारी चिड़ियाँ भीग गई हैं। तितलियाँ ग़ायब हो गई हैं। बरसात आ गई है।" वह गाती हुई बोली।

"तितलियाँ जाड़ों में होती हैं ?" इमरान ने बेहद अहम लहजे में, जैसे कि वह हर मामूली बात को अदा किया करता था, कहा।

"जब दिन में बाहर बैठते हैं और धूप में ऐसी चमक होती है और हर तरफ़ तितलियाँ उड़ती फिरती हैं रंग-बिरंग और शहद की मक्खियाँ रंग-बिरंग, रंग-बिरंग...और तार...है नईं ? ओह !" उसने मुट्ठियाँ कसकर छाती में भींच लीं और आँखें मींचकर हँसी, "है नईं ?"

"मैंने परवेज़ भाई को सुनाई थी। ज़र्द गुलाब की पंखड़ी।" उसने पाँव फैलाकर बारिश की फुहार को महसूस किया और गुनगुनाई, "गुलाब जो पतझड़ की बारिश में फूलता है।"

"पप्पा अभी तक नहीं आए।" नौजवान लड़के ने बच्चों की तरह भीगी-भीगी उदास आँखें उठाकर कहा।

"परवेज़ भाई कभी नहीं आते। पिछली बार भी आधी रात को पहुँचे थे। आज भी नहीं आए।"

"उन्होंने तुह्फ़ा तो दिया था।"

"तुह्फ़ों का क्या है ?" वह दुख से चीख़कर बोली।

इमरान हैरान बैठा उसकी आँखों में आँसुओं को जमा होते हुए देखता रहा। वह पाँव लटकाए, दोनों हाथ गोद में रखे ख़ामोश बैठी बारिश के शोर को सुनती रही। आस-पास गहरी ख़ामोशी थी। बेरंग, बारिश से भीगी तीसरे पहर की ख़ामोशी, जिसमें गीली चिड़ियाँ बरामदे की बेल में छुपी सुस्त,

मुन्नी-मुन्नी आवाज़ों में बातें कर रही थीं, और बादल बहुत नीचे झुक आए थे और यूकिलिप्टस की चोटियों में फिर रहे थे। यह बरसात के मौसम की पहली बारिश थी, जिसने आज नजमी की सालगिरह का सत्यानास कर दिया था।

इमरान अपने कोने पर बैठा काहिली से पिंगपाँग की जाली को खोलता और लपेटता रहा। कभी-कभी वह सहमी हुई नज़र नजमी पर भी डाल लेता, जो एक बड़े-से सिरवाली दुबली-पतली और सीधे-सादे, थोड़े सपाट जिस्म की लड़की थी। वह ऐसे लोगों में से थी, जिनकी सेहत का अन्दाज़ा लगाने में हमेशा मुश्किल पेश आती है, जो हर रोज़ मिज़ाज के मुताबिक़ रंग बदलते रहते हैं। उसका क़द छोटा था, मगर जिस्म के तंग चौखटे की वजह से छोटे क़द की न लगती थी। उसके चेहरे पर कोई ख़ास कशिश न थी। सिर्फ़ उसके थोड़े बड़े साइज़ के सिर ने उसमें मुस्तक़िल कमउम्री की दिलकशी पैदा कर दी थी, और फिर उसकी आँखें थीं–सियाह और बड़ी-बड़ी और गहरी और बेहद रौशन। उसकी सारी शख़्सियत में सिर्फ़ आँखें थीं, जो देखनेवाले को मुतअस्सिर[1] और हैरान करती थीं। नाज़ुक जिस्म और फीके चेहरे पर वह इस क़दर ज़हीन और जानदार आँखें थीं, और उसके बाल थे, जो सीधे और सियाह थे और उसकी आँखों से मेल खाते हुए। उसकी ग़ैर-मामूली हस्सास तबीअत[2] ने उसे घर भर के लिए दर्दे-सिर बना रखा था। इस वक़्त वह बरामदे में बैठी जल्द-जल्द आँखें झपकती हुई दूर-दूर तक गिरती हुई बारिश को देख रही थी। बादलों के नीचे आने से दिन की रौशनी घटती जा रही थी।

"हैलो मास्टर डल।" ख़ामोश बैठे-बैठे उसने दोबारा मुड़कर शिगुफ़्तगी से कहा।

"हैलो !" इमरान ने रुखाई से जवाब दिया। वह फिर अपनी मख़सूस बेख़याली में जा चुकी थी। उसकी यह ऊट-पटाँग ज़ेहनी ग़ैर-हाज़िरी[3] इमरान को परेशान कर देती थी।

फिर वह टाँगें ऊपर समेटकर बैठ गई। "मैं बारिश देखने के लिए आई हूँ। बारिश इत्ती दूर-दूर तक हो रही है। ऐसा अजीब लगता है।"

लड़के ने इस्बात[4] में सिर हिलाया।

"मास्टर, यह बारिश जो है, यह तुमको बेज़ार करती है कि तुमको अच्छी लगती है ? बताओ।"

"मुझे... !" वह तेज़-तेज़ जाली लपेटने लगा, "बेज़ार नहीं करती।"

"अच्छा।" नजमी ने आँखें फैलाकर कहा। फिर दोनों हाथों की मुट्ठियाँ कानों पर रखकर दबाईं। "ओह ख़ुदाया। पता नहीं, मुझे कुछ पता नहीं चलता। बस ऐसा अजीब लगता है। हाऊ सिली।" थोड़ी देर के बाद उसने दोनों हाथ गोद में रख लिए और आँखें खोलकर धीरे-धीरे कहने लगी, "यह मुझे बेज़ार भी करती है, और मैं इसको देखने के लिए भी आती हूँ, पता नहीं क्यों ?"

लेकिन इमरान ने महसूस किया कि वह वहाँ पर न थी। वह उसे देख भी न रही थी। वह उस पर नज़रें जमाए कुछ भी न देख रही थी। बारिश का शोर बढ़ गया और बेलों में भीगती हुई चिड़ियाँ घबराकर उड़ने लगीं।

"बारिश तेज़ हो गई है।" इमरान ने अहम लहजे में ख़बर दी। वह चौंक पड़ी। "बारिश की आवाज़ को तुम सुन रहे हो ?"

लड़के ने दुब्धा की हालत में सिर हिलाया।

"ओ स्वीट।" नजमी ने मुट्ठियाँ हवा में चलाईं। "ईमी डियर! यह इस क़दर बस अररर... बिलकुल बेहोश कर देनेवाली आवाज़ है। बारिश की ना ? (उसने पूछा) हाँ...जैसे म्यूज़िक...रात के वक़्त में एक़दम बज उठे। मुकम्मल म्यूज़िक...आर्केस्ट्रा या डांस की ताल जैसे एकदम तेज़ हो जाए। घुँघरू...या फिर...अरे नहीं भई..." उसने हाथ झटककर गोद में रख लिए और आसमान में देखने लगी। लड़के ने इत्मीनान का साँस लिया और जाली मेज़ पर रखकर उकड़ूँ बैठ गया। वह फिर बोल

1. प्रभावित, 2. असाधारण भावुक स्वभाव, 3. अन्यमनस्कता, 4. स्वीकारात्मक।

उठी, "अरे हाँ, जैसे म्यूज़िक बजते-बजते एकदम थम जाए, या नाचते-नाचते कोई एकदम रुक जाए, एकदम तो फिर जो शोर पैदा होता है कानों में तेज़, बिलकुल बेहोश कर देनेवाला पैदा होता है न सारे में ? तुम्हें पता है भई, घुँघरू जब एकदम थम जाएँ, तो उसके बाद..." उसने आँखें फैलाकर समझाने की कोशिश की।

दीवार के साथ बैठे हुए लड़के ने फिर इस्बात में सिर हिलाया।

"हाय स्वीट ईमी डियर। म्यूज़िक क्लास में इतनी दफ़ा मैंने महसूस किया...और आज भी इस वक़्त मुझे याद आया है कि यह बिलकुल वैसा है, पर मास्टर, यह कहाँ से आता है ? बताओ, यह बारिश तो तुम्हें पता है, कहाँ से गिरती है–रास्तों पर, छतों पर, दरख़्तों पर, पत्तों पर..." उसने हाथ फैलाया, "सारी बे-आवाज़ जगहों पर...फिर यह म्यूज़िक कहाँ से आता है, बताओ ?"

लड़का अपनी जगह पर कसमसाकर ख़ामोश रहा।

"तुमने सुना है तो ज़रूर पता होगा। ईमी, बताओ ना।"

वह आदी, बेज़ार नज़रों से बैठा उसे देखता रहा। अचानक नजमी ने कानों को दोनों हाथों में ढाँप लिया और उसकी आँखों में आँसू आ गए।

"तुम्हें कुछ पता नहीं।" चीख़ी, "कुछ भी नहीं डल, डल मास्टर।"

वह फिर पलटकर बैठ गई। बारिश का शोर आहिस्ता-आहिस्ता कम हो गया और बादलों के उठ जाने से उजाला बढ़ने लगा। जब वह बैठी-बैठी उकता गई, तो मेज़ से उतरकर बरामदे की सीढ़ियों तक गई और बारिश में हाथ फैलाकर खड़ी रही। बारिश बदस्तूर कभी तेज़ी, कभी आहिस्तगी से होती रही।

बरामदे के कोने से एक महरी घाघरा उठाए तेज़-तेज़ चलती हुई आई और पास आकर चाय के लिए बोली।

"हम यहीं पर चाय पीएँगे।" इमरान ने कहा।

"हाँ। हम यहीं पर चाय पीएँगे।" नजमी ने ख़ुशी से कहा।

"आज लैला बड़ा उम्दा नाची थी।" इमरान ने कहा।

"ओह, वंडरफ़ुल ईमी। उससे अच्छी राधा तो वह ड्रामे में भी नहीं बनी थी," वह खिसककर उसके क़रीब हो बैठी। "और उसकी बहन ने मास्क क्या शानदार बनाए थे। अरे ! कुछ भी पता नहीं चलता था। ओ, वह सेंट ज़ेवियर्ज़ में है।"

"तुमने मेरे घोड़े की टाँग तोड़ दी।" इमरान ने मुँह लटकाकर नीचे देखा, जहाँ उसका तीन टाँगोंवाला घोड़ा औंधा पड़ा बारिश में भीग रहा था।

"मुझे इतना अफ़सोस है, ईमी डियर, पर मैं क्या करती। तुम ख़ुद ही मेरे ऊपर चढ़ आए थे। रेस में कोई घोड़ा अपनी लेन भी छोड़ता है ? मेरे घोड़े ने दुलत्ती लगाई, तुम्हारे घोड़े की टाँग टूट गई।"

"घोड़े ने लगाई या तुमने लगाई !" लड़का जलकर बोला।

वह खिलखिलाकर हँस पड़ी और उसका हाथ अपने हाथ में लेकर बोली, "लेकिन मुझे अफ़सोस है ईमी, हम इतने गहरे दोस्त हैं आपस में, नईं ?"

दोनों एक साथ हँस पड़े। आमने-सामने बैठे मेज़ की हमवार चमकदार सतह पर चाय के क़तरे टपकाते हुए वह ख़ुशी से दिन भर की बातें करते रहे।

"फ़रहत क्यों नहीं आई ?"

"उसे इन्फ़्लूएन्ज़ा हो गया। रियाज़ ने हमें बताया। उसे देखने को हम कल सुबह जा रहे हैं।"

"हाँ...कल सुबह..."

"पिछली बार जो हमने मुबारकबाद का गीत गाया था..."

"यह तुम्हारी इंग्लिश टीचर ग्रेगसन मुझे ज़रा अच्छी नहीं लगती !"

"अरे ! आहिस्ता बोलो, भई !" नजमी ने होंठों पर उँगली रखकर कहा, "अज़रा आपा की बड़ी पक्की दोस्त है, लेकिन ईमी, यह ज़रा अच्छी बात नहीं। तुम्हें उससे बात तो करनी चाहिए कम-से-कम, वह इतनी स्वीट है। अच्छा तो इसीलिए मुबारकबाद के गीत में तुम बिल्ले की तरह मुँह फुलाकर बैठे रहे !"

"पप्पा भी कहते थे, वह स्वीट है।" वह फूले हुए मुँह से बोला।

"वह तो हई।" नजमी ने सटपटाकर कहा, "गीत नूरी ने भी अच्छा गाया था।"

"तुम उसके साथ लड़ी क्यों थीं ?"

"अरे नहीं, बात कर रही थी !"

"अरे वाह। तुम तो गरज-गरजकर बहस कर रही थीं।"

"मैंने पूछा था, आँखें बन्द करके झूला झूलने से जो तारे नज़र आते हैं, उनका रंग कैसा होता है ? वह कह रही थी, कि उसको नहीं आते नज़र।"

"उसे ख़्वाब में नज़र आते होंगे।" इमरान हँसा।

"अरे हाय, ईमी ! कल मैंने ख़्वाब देखा," वह इस बार नज़रें जमाए-जमाए बेख़याली में चली गई और रुक-रुककर बोलने लगी, "ख़्वाब देखा कि जंगल है और मैं घोड़े पर सवार जा रही हूँ, जा रही हूँ और जंगल गहरा होता जा रहा है, गहरा होता जा रहा है। फिर घोड़ा भाग गया। हैं ? फिर घोड़ा मुझे गिराकर कहीं भाग गया। मैंने उठकर उसे आवाज़ें दीं, 'पोनी, पोनी डियर... पोनी...पोनी...' यहाँ तक कि डर के मारे मेरी आवाज़ बैठ गई और पोनी ने कोई जवाब न दिया। फिर मैं चलने लगी। बीच रास्ते से हटकर, किनारे-किनारे...दरख़्तों के नीचे-नीचे, मेरे ऊपर कुहरे से भरे हुए दरख़्त थे और जब कोई पत्ता मेरे बालों पर गिरता, तो मैं चौंक पड़ती। फिर पत्तों की बारिश होने लगी। हर तरफ़ और देखते-देखते रास्ता पत्तों में ग़ायब हो गया। मैं भागने लगी, बहुत तेज़...पत्ते ज़र्द और ख़ुश्क थे और मेरे पाँव के नीचे उनके टूटने की आवाज़ आ रही थी। मैं भागती गई और घोड़े के मिलने की दुआएँ माँगती रही कि एक खुली जगह आ गई। यह एक झील थी, जो ख़ुश्क हो चुकी थी। तह में थोड़ा-सा पानी था, जिस पर कुहरा जमा हुआ था। वहाँ पर कोई भी न था सिवाय एक परिन्दे के, जो झील के किनारे एक टाँग पर खड़ा था। मैंने डरते-डरते उसके क़रीब जाकर कुछ पूछा। उस नन्हे-से परिन्दे ने सिर उठाकर मुझे देखा और मुँह खोलकर क़हक़हा लगाया (इमरान खिलखिलाकर हँसा। वह उसकी तरफ़ तवज्जुह दिए बग़ैर बोलती रही) फिर उसने सिर से मुझे आगे जाने का इशारा किया। मैंने देखा, आगे पहाड़ियाँ थीं, जिन पर बर्फ़ गिर रही थी। गिर रही थी या गिर चुकी थी, याद नहीं रहा, लेकिन वे बर्फ़ से ढकी थीं। मैं फिर भागने लगी। अब मेरे दिल में डर न था। मैं ख़ुशी से भाग रही थी–ख़ुशी से...बहुत तेज़..." वह ठिठककर रुक गई, "कैसा है यह...बताओ !"

"अच्छा है।" इमरान ने ख़ुशदिली से कहा। वह एकदम सुर्ख़ हो गई।

"क्योंकर है ? क्यों है ?" उसने तक़रीबन चीख़कर कहा।

"क्यों ?" लड़के ने सहमकर दुहराया, "पता नहीं। ख़्वाबों का कोई मतलब नहीं होता।"

"ओह !" बहुत दुखी होकर वह उसकी तरफ़ से मुँह फेरकर बैठ गई। उसका घुटना लगने से प्याली औंधी हो गई और उसमें बची हुई चाय मेज़ पर फैल गई। आँसुओं को रोकने के लिए वह तेज़-तेज़ आँखें झपकने और पाँव हिलाने लगी। कुछ देर बाद उसने पूछा, "तुम ख़्वाब नहीं देखते ?"

"नहीं...कभी-कभी।"

"क्या ?"

"क्या ?" लड़के ने दुहराया, "कुछ नहीं। यही कि...जैसे आज देखा कि हमने बरामदे में चाय पी।"

वह कानों तक सुर्ख़ हो गई। इमरान ने जाली उठाई और उसे खोलने और लपेटने लगा। बेहद गीली हवा उनके चेहरों से टकरा रही थी। बेल पर से बारिश की बूँदें सीढ़ियों पर गिर रही थीं। अब शाम पड़ रही थी।

"तुमने अपना काम ख़त्म कर लिया ?" देर के बाद नजमी ने मुड़कर पूछा।

"क्या ?"

नजमी ने बरामदे के फ़र्श की तरफ़ देखा। इमरान झुँझलाकर उठा और उसके सामने से गुज़रकर बिखरी हुई चीज़ें समेटने लगा। लकड़ी के घोड़े, मास्क, रेलगाड़ी लाइन समेत, क्रैकर, काग़ज़ की टोपियाँ, गुब्बारे और इसी तरह का कितना ही अल्लम-ग़ल्लम। वह उदास नज़रों से बैठी देखती रही।

"बाक़ी तुम उठाओगी।" आधी चीज़ों का ढेर लगाते हुए वह फूले हुए मुँह से बोला।

"यह मेरा काम नहीं।"

"मुझे नहीं पता।"

"मैं ख़ाला से कहूँगी कि तुमने अपना काम नहीं किया।"

"मैं भी कहूँगा।"

"क्या ?"

"कि तुमने फिर मेज़ पर चाय गिराई है।" उसने दोनों बाज़ुओं में चीज़ें भरते हुए कहा।

"तुम...मेरी शिकायत करोगे" वह रंज से चीख़ी।

लड़के ने बेज़ारी से उसकी तरफ़ देखा और चीज़ें सँभालकर चल पड़ा। "मैं तुम्हारी परवाह नहीं करता।" उसने कहा। वह उसे बरामदे में ग़ायब होते देखती रही। फिर कूदकर उतरी और पायँचे उठाकर बरामदों में भागने लगी। अज़रा के कमरे में रौशनी न जली थी। वह अभी-अभी सोकर उठी थी और पलंग पर ख़ामोश बैठी थी। नजमी ने क़ालीन पर गिरकर उसकी गोद में मुँह छुपा लिया।

"अज़रा आपा।" वह सिसककर बोली, "मैं उसके साथ नहीं रह सकती।"

"क्या है बीबी ? किसके साथ ?" अज़रा ने घबराकर पूछा।

"मास्टर डल !"

"तो कौन कहता है, आप उसके साथ रहें बिटिया। क्या कहता है ?"

"वह कहता है...कहता है कि ख़्वाब में वह चाय पीता है और..."

अज़रा हँसी, "तो ठीक है। आप अलग रहें। वह अलग रहेगा।"

नजमी ने उसकी गोद में से मुँह उठाया और ग़ुस्से से बोली, "डल मास्टर..."

"डल मास्टर नहीं कहते, बिटिया...इमरान कहते हैं। वह आपसे बड़ा है !" अज़रा ने उसके बाल सँवारे। आँखें ख़ुश्क कीं और झुककर उसके माथे को चूमा, "अब आप जाकर जूते पहनें।"

वह बारिश का दिन ख़त्म हो रहा था और अज़रा अकेली दरीचे में खड़ी दूर तक गिरती हुई बारिश और झिलमिलाती हुई रौशनियों को देख रही थी।

"यह रात के साथ ही होती हैं।" उसने बिजली की रौशनियों को देखकर सोचा।

भूरे रंग की घनी लट उसके माथे पर फड़फड़ाए जा रही थी। उसने काहिली से उसे बालों में उड़सा और दोबारा उसके गिरने का इन्तिज़ार करने लगी।

"यह रात के साथ जलती हैं !" उसने दोबारा सोचा।

लेकिन यह कोई सोच न थी। यह उन छोटे-छोटे बेकार ख़यालों में से एक था, जो इनसान के दिमाग़ में आपसे आप चले आते हैं। वह अपनी काहिली और बेख़याली पर झुँझला गई।

लेकिन वह अकेली थी और अँधेरा उसके चारों तरफ़ फैल चुका था और बारिश सुबह से हो रही थी, दूर-दूर, झिलमिलाती हुई रौशनियों पर और उससे परे अँधेरे खेतों और मैदानों और दरख़्तों पर...लगातार...

"जब यह नहीं थी, बारिश जब भी हो रही थी," उसने फिर सोचा, और दिल में ख़याल की नारसाई[1] और बेतुकेपन पर झुँझलाई।

मुसलसल बारिश ने उसके हवास[2] को कुन्द कर दिया था और वह बेज़ार हो चुकी थी। नमदार हवा उसके सर्द, बेजान चेहरे से टकरा रही थी और स्टूल पर पाँव लटकाए, दरीचे के पत्थर पर दोनों कुहनियाँ रखकर बैठी, वह इतनी बेहिस[3] और काहिल हो गई थी कि उठ भी न सकती थी। उसने गीले, ठंडे चेहरे को छूना चाहा, मगर हाथ उठाने का इरादा न कर सकी। फिर उसने ऊपर का होंठ फैलाकर साँस को महसूस किया। साँस गर्म थी और वह ख़ुश हुई। उस बेनाम ख़ुशी और बनावटी इत्मीनान के साथ बैठी वह लट के गिरने का इन्तिज़ार करने लगी, जो लापरवाही से बालों में उलझ गई थी।

छोटे-छोटे, बेकार ख़याल आपसे आप आते और जाते रहे। अँधेरे में उसका वुजूद और एहसास दोनों ग़ायब हो गए।

"सारे वक़्त बारिश हो रही है।" उसने दिल में कहा।

रात की मख़सूस, धीमी और मुसलसल बारिश सारे ही वक़्त होती रही थी। दरीचे के छज्जे पर, यूकिलिप्टस के पत्तों पर, नीचे बाग़ के रास्तों पर, तरप-तरप-तरप। उसकी ख़ामोश आवाज़ों का संगीत सारे में फैला हुआ था। एक-एक करके बन्द होते हुए दरीचों पर, झुके हुए शीशों पर, एक-एक करके सोते हुए मर्दों-औरतों के कानों पर बज रही थी। रात का समय, जो भारी और महफ़ूज़ समय था, जानदारों के लिए आराम का समय था, लेकिन हवा, जो दिन भर से गीली और बेचैन थी, चले जा रही थी। आख़िरकार यह रात ग़ैर-आबाद न थी। बन्द दरीचों के बाहर होती हुई बारिश ख़्वाबआलूद और पुर-असरार[4] थी।

"बारिश सारे वक़्त होगी।" उसने दिल में दुहराया।

लट अभी तक न गिरी थी और वह झुँझला रही थी, ज़ेहन की नारसाई और इन्तिज़ार की कोफ़्त पर ! उसने दोबारा होंठ फैलाकर सूँघा। सिर्फ़ एक साँस था, जिसे वह महसूस कर रही थी, गर्म और जारी इनसानी साँस। बाक़ी सब चीज़ों को, बारिश को, और चेहरे की गीली बेजान जिल्द को और ख़ुशबूदार दरख़्त के पत्तों को और अँधेरे में बाज़ुओं की मद्धिम लकीरों को और दूर झिलमिलाती हुई गीली और इकलौती रौशनियों को उसने फ़र्ज़[5] कर लिया था।

"फिर ?" उसने सपाट लहजे में दिल में कहा।

सड़क के पार दूसरे मकान के शीशों पर रौशनी गुल हो गई। किसी ने दरीचा खोलकर ख़ामोशी से बाहर झाँका। कोई सोने की तैयारी कर रहा था। यह भी उसने फ़र्ज़ कर लिया (कि सभी लोग तो सोते हैं।)

फिर उसने बेज़ारी से दिल में दुहराया।

बरामदे में किसी नौकर के गुज़रने की चाप सुनाई दी, "बिटिया सो रही हैं।" उन्होंने एक दूसरे से कहा और गुज़र गए। बाग़ की बाड़ के पीछे एक बैलगाड़ी भीगती हुई गुज़र रही थी। उसके नीचे लालटेन लटक रही थी और गीली सड़क पर उसकी धुँधली छाया दूर तक चली गई थी। फूँस की छत के नीचे बैठे हुए चन्द किसान मोटी, उदास आवाज़ों में बातें कर रहे थे और बैलों को चला रहे थे।

लेकिन उस दूसरे मकान के शीशों पर रौशनी गुल हो गई थी, और उनके पीछे रात का अव्वलीन बोसा[6] लिया जा रहा था, या शायद लिया जा चुका था, क्योंकि वे दो थे और जब कमरा अभी

1. पहुँच का न होना, 2. इन्द्रियाँ, 3. चेतना शून्य, 4. रहस्यपूर्ण, 5. कल्पित, 6. प्रथम चुम्बन।

रौशन था, तो उनके साए शीशों पर लरज़ रहे थे और वे एक दूसरे के कन्धों पर हाथ रखे बातें कर रहे थे। बेआवाज़ बातें, जिनको सिर्फ़ वही जानते थे। फिर जब मर्द ने सिगरेट दरीचे में मसला और रौशनी गुल कर दी, तो किसी ने पल के पल को दरीचा खोलकर बाहर झाँका। किसी ने मुख़्तसर-सा क़हक़हा लगाया और दरीचा बन्द कर दिया। अब कमरा गर्म और तारीक था और बाहर बारिश हो रही थी। और अब कमरा गर्म और तारीक था और सड़क पर रात के इक्का-दुक्का मुसाफ़िर भीगते हुए गुज़र रहे थे और अब कमरा गर्म और तारीक था, और अब कमरा...

"लाहौल वला क़ुव्वत !" उसने पहली दफ़ा शुऊरी तौर पर सोचा और स्टूल से उतर आई। कमरा पार करके उसने बत्ती जलानी चाही, लेकिन दीवार पर हाथ रखे खड़ी रही। एक बहुत पुराना ख़ौफ़ था, जिसने उसे रोक रखा था। लम्हों के बहाव को, वक़्त के जादू को तोड़ देने का ख़ौफ़ और लम्हों के बहाव में एक दिन और गुज़र गया। एक साल और...अभी जब दिन रुख़सत नहीं हुआ था, तो बहुत-से बच्चे किसी की सालगिरह मना रहे थे। बारिश की वजह से वे महल के पिछवाड़े घास पर न जा सके थे और घुड़दौड़ के मुक़ाबले कर रहे थे। पिछवाड़े की तरफ़ सब्ज़े पर क्या उम्दा पार्टियाँ हुआ करती थीं। अल्लाह, क्या यादगार ज़माना था। वे लोग अब कहाँ गए ? वे लोग। "आहिस्ता बर्गे-गुल बफ़िशाँ बर मज़ारे-मा।"[2] कोई बेहद दिलकश अन्दाज़ में झुककर कह रहा है। अरे...यह तो एक बहुत पुराना, बहुत भूला हुआ मंज़र है। हिश्त। और घुड़दौड़ के मुक़ाबले कर रहे हैं। कोई रेस के दौरान बैठकर अपने घोड़े की टूटी हुई टाँग जोड़ रहा है। कोई जब पीछे रह जाता है, तो घोड़े को बग़ल में दबाकर भाग उठता है। फिर वे अपनी हमजोली को तंग करने लगे कि वह उन्हें अपनी सालगिरह की नज़्म[3] सुनाए। अरे। यह तो नजमी है। यह प्यारी-सी अजीबोग़रीब लड़की, जो नज़्म सुना रही है। फिर राधा नाची और मास्क डांस हुआ।

"फ़रहत की सेहत के मुतअल्लिक़ कोई ताज़ा बुलेटिन शाए[4] हुआ ?" वे रियाज़ से पूछ रहे हैं, "सेंट जोज़फ़्ज़ के कैबिनेट में केक चुराने का 'पोर्टफ़ोलियो' रियाज़ के पास है ?" वे रियाज़ को तंग कर रहे हैं। रियाज़ जो गोल-मटोल सीधा-सादा लड़का है। ग्रेगसन उन्हें सख़्ती से मना कर रही है। ग्रेगसन, जो मिशन पर चली गई है, ..."ओह ! शरीफ़ ख़ातून...तो गोया आप नन बन गईं ? थ...थ...थ..." अब केक पर मोमबत्तियाँ जल रही हैं और सब मिलकर मुबारकबाद का गीत गा रहे हैं। ग्रेगसन, जिसे लीड कर रही है : "चौदहवाँ साल जो ख़त्म हुआ। इसके बाद पन्द्रहवाँ आएगा और फिर सोलहवाँ और हम फिर-फिर गाएँगे...पिछला साल तो ख़त्म हुआ...चौदहवाँ साल जो..."

सालगिरह का यह अनोखा गीत एलिस ग्रेगसन के वतन आयरलैंड का है। एलिस, जो एक बहुत पुरानी, बहुत प्यारी साथी है, लेकिन अब वह कुछ नहीं बताती। बात भी नहीं करती। अब वह इस क़दर कमीनेपन पर उतर आई है, कि मिलती भी है, तो अजनबियों की तरह। बस बच्चों में मग्न रहती है और बालों को सफ़ेद रूमाल में कसकर बाँधती है और हर रोज़ गिरजा के प्यानो पर बैठकर गाती है और अपनी आवाज़ में डूब जाना चाहती है। धोखेबाज़ लड़की। तूने दिल का चैन पा लिया है ? मैं उससे पूछना चाहती हूँ।

"हैलो अज़रा।" वह अपने कमीनेपन के ठंडे, अनजान लहजे में कहती है।

"हैलो।" मेरे हलक़ में कुछ अटक जाता है, जैसे मैंने कभी उसे "एली" के नाम से नहीं पुकारा, जैसे कभी उसने रौशन महल के तोशाख़ाने के फ़र्श पर बैठकर पकवान तैयार नहीं किए, जैसे कभी उसने फ़व्वारे पर, पीपल की जड़ पर, बाग़ के कोने-कोने में बैठकर पहरों अरशद से बातें नहीं कीं। "क्या हमने कभी सोचा था ?" मैं पूछना चाहती हूँ। "यह सब जो बीता।" ख़ुदाया, वह कुछ भी नहीं बताती। इसके बावजूद वह इस क़दर अज़ीज़ दोस्त है। दिन रुख़सत हो गया और रौशन महल में लोग अब सोने की तैयारी कर रहे हैं। रात का खाना कब का ख़त्म हो चुका। अब वे दरमियानी

---

1. क्षणों, 2. मेरी क़ब्र पर फूल की पत्तियाँ धीरे-धीरे बिखेरो, 3. कविता, 4. प्रकाशित।

कमरे में बैठे क़हवा पी रहे होंगे या पी चुके होंगे और उसे कोई बुलाने नहीं आया। उसे कोई बुलाने नहीं आएगा कि यह उसका हुक्म है।

"लम्हों के बहाव को मैं रोक सकती हूँ ?" अँधेरे में आँखें फाड़कर देखते हुए उसने सवाल किया।

बारिश थोड़ी देर के लिए रुक गई थी। वह बिजली के बटन पर से हाथ उठाकर बाहर निकल आई। नीम-रौशन गैलरियाँ लम्बी-लम्बी और ख़ाली थीं। रौशन आग़ा के सिवा सबके रिहाइशी कमरे दूसरी मंज़िल पर थे। ऊँचे, तंग मेहराबी दरवाज़े बन्द थे और शीशों पर रौशनियाँ जल रही थीं।

रौशनियाँ बुझ रही थीं। यह मम्मी का कमरा है, जिसमें अभी-अभी रौशनी गुल की गई है। मेरी माँ, जिसका मेरी ज़िन्दगी से कभी कोई तअल्लुक़ नहीं रहा। बस जैसे यह बन्द कमरा है, और मैं इसके आगे से गुज़र रही हूँ, और मम्मी अन्दर अकेली रह गई हैं। तनहा और महफ़ूज़, बेहद शानो-शौकत के साथ। लेकिन मैं अज़रा हूँ, मम्मी। मैंने आपका क्या बिगाड़ा है। ख़ुदा के लिए बतलाइए। गैलरी ख़ामोश और अँधेरी है और मैं अकेली यहाँ से गुज़र जाती हूँ। यह नजमी का कमरा है, मेरी प्यारी बहन, जिसको इस घर में सिर्फ़ मैं समझती हूँ, और इसीलिए उससे मुहब्बत करती हूँ।

वह आहिस्ता से दरवाज़ा खोलकर अन्दर दाख़िल हुई। नजमी कम्बलों में लिपटी, दीवार से टेक लगाए बिस्तर पर बैठी थी।

"अज़रा आपा...रौशन आग़ा खाने पर आपको पूछ रहे थे।"

"मुझे वह नज़्म सुनाओ," उसने बिस्तर पर बैठते हुए कहा, "जो आज सबको सुना रही थीं।"

"एक शहज़ादा और उसका दोस्त मेंढा...अज़रा आपा ?" उसने आँखें झपकते हुए पूछा।

"नहीं भई, अकेला शहज़ादा।"

"नहीं अज़रा आपा। उसका दोस्त मेंढा भी।" नजमी ने दोनों हाथ उसके कन्धों पर रखकर समझाने की कोशिश की।

"अरे नहीं भई," अज़रा ने सटपटाकर कहा, "अकेले शहज़ादे की नज़्म सुनाओ।"

"अकेला ?" वह आँखें झपकने लगी।

"अच्छा, कल सुनेंगे," वह उठ खड़ी हुई। उसने नजमी का लिटाया, कुशन ठीक किए और झुककर उसके माथे को चूमा, "शब-बख़ैर बीबी, अब आप सो जाओ।"

बत्ती बुझाकर वह बाहर निकल आई। गैलरी उसी तरह लम्बी और ख़ाली थी। दूसरे सिरे पर एक महरी ने साए की तरह लपककर गैलरी पार की और ज़ीने पर ग़ायब हो गई। बारिश फिर शुरू हो चुकी थी।

यह परवेज़ का कमरा है और उसकी बीवी का। उस दूसरी अजनबी औरत का, जो मुझे नहीं जानती। बस जैसे हम रौशन महल में सो रहे हैं और सड़क पर से कोई मुसाफ़िर भीगता हुआ गुज़र जाए। लेकिन फिर भी यह उसका कमरा है, और इसमें उसका सामान रखा है, जिस पर धूल जम रही है और जिसे उसकी इजाज़त के बग़ैर कोई नहीं खोल सकता, और परवेज़...मेरा भाई, जो मेरा दोस्त भी था, उसके साथ चलता हुआ दूर निकल गया है, और मैं ?...वहीं पर आ गई हूँ जहाँ से चली थी। काश मेरा भाई मुझसे, मेरी दुनिया से सुलह कर लेने पर आमादा हो सकता, काश ! लेकिन मैं उसकी परवाह नहीं करती, क्योंकि अब मैं अपने कमरे के सामने आ गई हूँ। आख़िरकार यह मेरा कमरा है। इस जगह मैं बचपन से रहती आई हूँ। यहाँ मैंने कैसे-कैसे ख़्वाब देखे हैं। मुझे इस कमरे से नफ़रत है। इसके दरीचे के शीशों पर यूकिलिप्टस के पत्तों का अक्स पड़ता है, जो मुझे नापसन्द है। बारिश जब तेज़ हो जाती है, तो बेपनाह शोर अन्दर आता है, क्योंकि यह गैलरी के आख़िरी सिरे पर है। यह भी मुझे नापसन्द है। इस कमरे में मैंने क्या-क्या सोचा है ? कैसे-कैसे

प्रोग्राम बनाए हैं ?" इन तीस सालों में जो मुझे याद है, कितने ही ख़ुशी के, कितने ही दुख के पल गुज़रे हैं। उन पलों के बहाव को मैं कभी भूल सकती हूँ ? और इस कमरे को, जिसकी कार्निस पर कितने ही फूल सूख गए और कितने ही ताज़ा फूल उनकी जगह रखे गए। फूल जो सिर्फ़ मेरी ख़ातिर, इस कमरे की ख़ातिर उगाए गए, और कितने ही...अरे ! यह ख़ामोशी क्यों एकदम हो गई सारे में ? मेरे साज़, मेरे साज़ों पर मिट्टी जम रही है, और बरामदों में इतनी वीरानी सिमट आई है। मैं उनको यहाँ लाकर रखूँगी, ताकि वे धुल जाएँ और यह ख़ामोशी टूट जाए।

उसने सारे साज़ों के ग़िलाफ़ उतारे और एक-एक करके उन्हें बाहर ले आई। लम्बी, अँधेरी गैलरी में थोड़े-थोड़े फ़ासिले पर तानपुरा, सितार, वायोलिन, तबला, हारमोनियम, कोई एक दीवार के साथ, कोई दूसरी दीवार के साथ, कोई दरवाज़े के पास, कोई रेलिंग के साथ। फिर देर तक वह उनके दरमियान फिरती और एहतियात से उन पर उँगलियाँ फेरती रही। उन्हें ख़ामोश और बे-असर पाकर उसे ख़ुशी हुई। अँधेरे में भद्दी, सियाह शक्लें, वे दीवार के साए में सोए हुए फ़क़ीरों की तरह दिखाई दे रहे थे।

जब वह बहुत थक गई, तो जाकर लिखने की मेज़ पर बैठ गई।

"अब ? अब मैं ख़त लिखूँगी।" लैम्प जलाते हुए उसने फ़ैसला किया, "किसको ? क्या फ़र्क़ पड़ता है।" सिर को हलका-सा झटका देकर उसने लिखना शुरू किया :

"प्यारी शीरीं !

सुबह से बारिश हो रही है। तबीअत सख़्त ऊब गई है। आज नजमी की सालगिरह थी। तुम्हें सबने बहुत याद किया, मैंने, नजमी ने, सबने। एलिस भी आई थी, लेकिन वह किसी को याद नहीं करती। वह मुझे भी कुछ नहीं बताती। भला बताओ, किस क़दर मसख़रेपन की बात है। इसमें किसी का क्या क़ुसूर था। पर शीरीं, वह तो अंग्रेज़ लड़की है। कहते हैं, यूरोपी अक़्वाम[1] समझदार होती हैं इस मुआमले में, और फिर मौत पर किसी का क्या बस। अल्लाह !

शीरीं ! आज मैंने शाम के समय को अपने इर्द-गिर्द फैलते हुए देखा, महसूस किया। तुमने कभी किया है ? जब ज़रा-ज़रा बारिश हो रही हो और शाम हर तरफ़ धुआँधार हो और नीली हो, और बढ़ती जाए, बढ़ती जाए। तो तुमने कभी महसूस किया है ? अरे यह ऐसी ख़ूबसूरत शै है शीरीं, नर्म और ख़ूबसूरत, अव्वलीन बोसा[2] या अव्वलीन सरगोशी[3] या...अरे मैं कैसे बताऊँ भई !

और कॉरीडोर...लम्बा और ख़ाली कॉरीडोर...ज़िन्दगी से इस क़दर क़रीब हैं। आज मैं उनमें इस तरह फिरती रही, जैसे कि वे मेरे बेहतरीन दोस्तों में से थे। एक गैलरी में मुझे चन्द साज़ पड़े हुए मिले, जो सबके सब ख़ामोश थे। एक सितार अभी तक रेलिंग पर झुका हुआ है। जब उस पर बारिश पड़ेगी, तो वह ट्यून होगा ? मैं सोचती हूँ।

आज इमरान बेहद उदास था। परवेज़ अभी तक नहीं आया। मेरे ख़याल में बच्चों को वालिदैन के पास रहना चाहिए। नजमी आज सारा दिन नंगे पाँव बारिश में फिरती रही। मुझे डर है, उसे ज़ुकाम न हो जाए। तुम्हारे बच्चे कैसे हैं ? मुन्नू और गुड्डू। हामिद भाई की सेहत कैसी है ? शीरीं। हम इस क़द्र तेज़ी से बूढ़े होते जा रहे हैं, हम और तुम और सब...एक बात बताओ, शीरीं। मुहब्बत क्या इतना ही दुख देती है ? क्या इनसानों की यही ख़ता है कि वे मुहब्बत करते हैं ?"

आख़िरी सतरें घसीटकर वह कुर्सी की पुश्त पर गिर गई। "यह फ़र्ख़ुन्दा के गीले पाँव के निशान हैं, जो क़ालीन पर पड़ गए हैं।" वह हथेली पर ठोड़ी रखकर बैठी देखती रही। बाहर बारिश तेज़ी से हो रही थी।

बारिश के शोर से ख़ाला की आँख खुल गई। रात आधी से ज़्यादा गुज़र चुकी थी। उन्होंने सिर उठाकर कमज़ोर आवाज़ में महरी को पुकारा, जो उन्हीं के कमरे में सोती थी। वह नींद में

1. जातियाँ, 2. पहला चुम्बन, 3. कानाफूसी।

बड़बड़ाकर ख़ामोश हो रही। ख़ाला बिस्तर में पड़ी सुनती रहीं। बारिश अजीब आवाज़ से हो रही थी। फिर उन्होंने उठकर बाहर झाँका। अज़रा के कमरे के खुले दरवाज़े में से रौशनी निकल रही थी। वह ख़ामोशी से बाहर निकल आईं। बरामदे में बढ़ते हुए वह किसी चीज़ से ठोकर खाकर गिरते-गिरते बचीं। तारों में हलकी-सी झनझनाहट पैदा हुई। "मुर्दार।" उन्होंने अपने आपको सँभाला।

अज़रा के दरवाज़े में वह खड़ी की खड़ी रह गईं। खुले दरीचे में से हवा और बारिश अन्दर आ रही थी।

"बीबी, पागल हो गई हो।" उन्होंने तेज़ी से जाकर दरीचा बन्द किया। कम्बल उठाकर अज़रा के कन्धों पर डाला और क़ालीन को देखा, जो आधे से ज़्यादा भीग चुका था। "इतना पानी पड़ रहा है और आप बैठी भीग रही हैं, इतनी रात गए।" अज़रा कुर्सी से उठी और कम्बल को कन्धों पर ठीक करके बैठ गई। "मैं बिलकुल ठीक हूँ।" उसने परेशान लहजे में कहा। फिर ख़ाला को अजीब नज़रों से अपनी तरफ़ देखते हुए पाकर वह घबरा गई।

"बैठ जाइए।" उसने परेशानतर लहजे में कहा और काग़ज़ात उलटने-पुलटने लगी। ख़ाला ने उसके चेहरे पर बहुत कुछ पढ़ लिया। "अज़रा ! तुम एक बच्चे की तरह हो, जो चोरी करता हुआ पकड़ा जाता है। हालाँकि तुम न बच्चा हो, न तुमने चोरी की है," ख़ाला ने धीमी आवाज़ में कहा, "ऐसा क्यों है ?"

अज़रा सिर्फ़ ख़ामोश, ज़ख़्मी नज़रों से उन्हें देखती रही। ख़ाला ने मेज़ का कोना मज़बूती से पकड़ लिया और खड़ी रहीं। लम्बी बीमारी ने उन्हें कमज़ोर कर दिया था। सफ़ेद बालों की लटें उनके कानों पर बे-तरतीबी से लटक रही थीं और मेज़ का सहारा लिए खड़ी वह बेबसी की तस्वीर नज़र आती थी। बारिश दरीचे के शीशों पर सिर मार रही थी। अचानक वह बहुत दुख से बोलीं, "तुम्हारी उम्र ढल रही है, और तुम अभी नादान हो।"

अज़रा ने दहलकर उन्हें देखा। उसका रंग सँवला गया और ढलते हुए चेहरे की लकीरें काँपने लगीं। वह आहिस्ता-आहिस्ता उठ खड़ी हुई। "आप...अपने कमरे में जाएँ। आप यहाँ क्यों आई हैं ?"

ख़ाला बुढ़ापे के बावजूद जज़्बे की शिद्दत से काँपने लगीं। ज़िन्दगी में पहली मर्तबा वह एक दूसरे के मुक़ाबिल आन खड़ी हुई थीं। उस मुक़ाम पर, जहाँ वे महज़ दो औरतें थीं, एक दूसरे के लिए हक़ारत[1] और तरहहुम[2] के जज़्बात लिए हुए।

चन्द लम्हों तक वह गुस्ताख़ी से एक दूसरे की तरफ़ देखती रहीं। फिर अज़रा की बहुत दुखी नज़रों के सामने ख़ाला टूट गईं। मेज़ का कोना पकड़े-पकड़े वह फ़र्श पर बैठ गईं और रोने लगीं। अज़रा कुर्सी पर बैठकर काग़ज़ों को देखने लगी। दरीचे की दर्ज़ों में से पानी अन्दर आ रहा था। ख़ाला की बिल्ली उनकी क़मीज़ के दामन से खेल रही थी।

जब ख़ाला ने आँखों पर से हाथ उठाया, तो अपने आपको उसी तरह तनहा बैठे हुए पाया। अज़रा कुर्सी पर बुत बनी बैठी थी। अचानक उस वक़्त ख़ाला को अपने और अज़रा के, अपने और उस दूसरी औरत के दरमियानी फ़ासिले का एहसास हुआ। दूरी जो उनके दरमियान पैदा हो गई थी।

"तुम...क्या तुम चाहती हो कि रौशन आग़ा इस ग़म में हलाक हो जाएँ और..." ख़ाला ने कहा, "और मैं यहाँ से चली जाऊँ ?"

"ख़ाला..." अज़रा ने तक़रीबन चीख़कर कहा और उठकर खड़ी हो गई। ख़ाला ने दहशत से देखा कि वह दूसरी औरत उनसे ज़्यादा जवान, ज़्यादा मज़बूत और ज़्यादा सर्द थी। उसकी कुचलती

1. तिरस्कार, 2. दया।

हुई सर्द नज़रों के सामने ख़ाला लौटने पर मजबूर हो गईं। एक अनजाने पछतावे के मारे उन्होंने झुककर बिल्ली को उठाया और तेज़-तेज़ क़दम उठाती हुई कमरे से निकल आईं। जब वह बाहर आ रही थीं, तो उन्होंने महसूस किया कि वह अज़रा की ज़िन्दगी से दूर होती जा रही हैं। आख़िरकार वह उनसे अलग, एक बिलकुल दूसरी औरत थी।

जब वह अकेली रह गई, तो बिस्तर पर जा लेटी। उसके दिमाग़ में मुकम्मल सन्नाटा था। घबराहट के बावजूद उसका चेहरा पत्थर जैसा था। एक ऐसा गूँगा सपाट चेहरा, जिसका बोझ सिर्फ़ महसूस किया जा सकता है। लेटे-लेटे उसने महसूस किया कि कमरे में हवा की शदीद कमी थी। उसने उठकर दरीचा खोल दिया और खड़े-खड़े उसका चेहरा भीग गया। वह दोबारा बिस्तर पर लौट आई। अब थोड़ी-थोड़ी देर बाद सन्नाटा उसके दिमाग़ में दाख़िल होने लगा, लेकिन हवा फिर भी न थी। थोड़ी-सी भी हवा उसके फेफड़ों में न थी। एकदम बहुत ज़्यादा घबराकर उसने लम्बे-लम्बे साँस लेने शुरू किए। उसके हलक़ में से गर्मी निकल रही थी और ज़बान अकड़ गई थी। उसने ज़बान को तालू पर फेरा। हर साँस के लिए उसे मशक़्क़त करनी पड़ रही थी। मायूस होकर उसने चीख़ना चाहा, लेकिन आवाज़ कहीं दूर रह गई थी। अब उसके कानों में शोर मच रहा था। कानों में और दिमाग़ में और सारी दुनिया में। उसके फेफड़े बन्द हो रहे थे। यह क्या है ? यह कौन-सा वक़्त है ? उसने कोशिश करके सोचा और मुश्किल-मुश्किल साँस लेती रही। उसने रोने की एक बेकार कोशिश की। सिर्फ़ साँस को जारी रखना उस वक़्त का, उस लम्हे का अहमतरीन काम था। साँस जो ज़िन्दगी का आख़िरी निशान है। उसे जान निकलने का ख़याल आया और बहुत ज़्यादा डरकर उसने साँस लेना जारी रखा। लेकिन इस कोशिश में उसके सिर में से पसीना निकलने लगा, सिर में से और माथे और गर्दन और छाती में से और कमर और टाँगों में से। वह पसीने में भीग गई। बहुत तकलीफ़ की हालत में उसने सिर और कन्धों को दाएँ-बाएँ हिलाना और कराहना शुरू किया।

देर तक वह अधमरे साँप की तरह बिस्तर पर तिलमिलाती रही। जब तकलीफ़ ख़त्म हुई, तो उसके चेहरे पर राख के रंग की लकीरें गहरी हो चुकी थीं और उसके अन्दर कोई चीज़, सरकश और ज़ोरावर, टूट चुकी थी।

बारिश थोड़ी देर के लिए रुक गई थी और कमरे में गीले क़ालीन की बू फैल रही थी।

31

सर्दियों का मौसम गुज़र रहा था, जब अली को नईम के रिहा होकर गाँव पहुँचने की ख़बर मिली। उसी रात को अपनी बीवी से मशविरा करने के बाद वह गाँव के लिए रवाना हो पड़ा। वह अब वहाँ नहीं रहना चाहता था। वह गाँव वापस जाकर खेतीबाड़ी करना चाहता था। लेकिन उसकी माँ, एक साल हुआ, मर चुकी थी और ज़मीनों पर बड़ी माँ (नईम की माँ) का क़ब्ज़ा था। इसलिए उसे नईम की वापसी तक रुकना पड़ा था।

नईम और अज़रा का बड़ा मकान बरसों से बन्द पड़ा था। उसका बाग़ वीरान हो चुका था और रास्ते गले-सड़े पत्तों और आँधी से टूटी हुई टहनियों से ढँके पड़े थे। घास में जगह-जगह बूढ़े परिन्दों की लाशें पड़ी हुई मिलती थीं। एक बूढ़ा रखवाला रह गया था, जो दिन भर धूप में बैठा हुक़्क़ा पीता और सब्र से अपने इर्द-गिर्द की मरती हुई दुनिया को देखता और नज़रअन्दाज़ करता रहता था। उस रोज़ भी उसने आँखों पर हाथ का साया करके दीवार के साथ-साथ गुज़रते हुए अली को देखा और पहचानकर ध्यान हटा लिया। वह नईम का पुराना नौकर था, लेकिन अली को पसन्द न करता था। अली ने आम और अमरूद के बेहतरीन दरख़्तों को देखा, जो बर्बाद हो चुके थे और

उसके दिल में अफ़सोस पैदा हुआ। ऊपर की मंज़िल की खिड़कियों के चन्द शीशे भी टूट चुके थे। गाँव के चारों तरफ़ तेज़ी से पकती हुई फ़सल खड़ी थी। अली ने लम्बा रास्ता पकड़ा, जो मुख़्तलिफ़ खेतों का चक्कर काटकर गाँव में दाख़िल होता था। खेतों में से गुज़रते हुए वह दोनों हाथ फ़सल पर फेरता रहा, यूँ जैसे कि वह गाय का नौमौलूद[1] बछड़ा हो।

मवेशियों के अहाते में अली की बूढ़ी भैंस उसे देखकर ख़ुशी के डकराने लगी। अली ने प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरा और जुगाली का झाग उसके मुँह से साफ़ करते हुए सोचा, "जानवर नहीं भूलते।"

अन्दर नईम अपनी माँ के पास बैठा खाना खा रहा था। वह उठकर गर्मजोशी से अपने भाई के साथ गले मिला।

"मैं ख़ुद आने का इरादा कर रहा था।" उसने कहा और उसे अपने पास बिठाकर मक्खन और रोटी खाने को दी, जिसे अली ग़ैर-मामूली इश्तिहा[2] के साथ खाने लगा। बूढ़ी उसे देखकर हमदर्दी से रोने लगी।

मगर जब दोबारा नईम ने उसे देखा, तो उसे दुख हुआ।

"तुम बहुत कमज़ोर हो गए हो।" उसने पूछा।

अली ने झेंपकर उसे देखा और बोला, "तुम भी तो बूढ़े दिखाई दे रहे हो।"

"बूढ़े तो सब हो जाते हैं, पर जवान आदमी...वहाँ खाने को नहीं मिलता ?"

"ख़ालिस नहीं मिलता।" अली ने कहा।

खाने के बाद वे बाहर निकल आए। देर तक वे मवेशियों के दरमियान फिरते और बातें करते रहे। नईम के कहने पर रखवाला अली को हर एक मवेशी की पिछली पाँच साला ज़िन्दगी के हालात, जिनमें उसकी बीमारियों, उसकी ख़ुराक और उसका काम शामिल था, मुख़्तसरन[3] बताता जा रहा था। उनसे फ़ारिग़ होकर वे खेतों में निकल गए। एक पहर तक वे फ़सलों में घूमते रहे। रास्ते में उनको कई पुराने दोस्त मिले, जिन्होंने रुककर दोनों भाइयों की ख़ैरियत पूछी और उन्हें फिर से इकट्ठा देखने पर ख़ुशी का इज़हार किया। नईम ने जान-बूझकर अपने बड़े घर की तरफ़ जाने से गुरेज़ किया, हालाँकि अली ने दो-एक बार दबी ज़बान से ख़्वाहिश ज़ाहिर की कि उन्हें वहाँ जाकर कम-से-कम फलदार दरख़्तों की हालत को देख आना चाहिए।

वापसी पर नईम ने पूछा, "आयशा कैसी है ?"

"ठीक है," अली ने बताया।

तीसरे पहर के वक़्त अली सो गया। जब उठा, तो शाम पड़ रही थी और नईम खाने की तैयारी कर रहा था। उसकी माँ ने दोनों के आगे भुने हुए परिन्दे और गोभी के सालन का खाना लाकर रखा। इससे पहले कि वे खाना शुरू करते, नईम बोला, "मैंने कहा न कि मैं ख़ुद आनेवाला था !"

अली सालन की प्लेट को आहिस्ता-आहिस्ता घुमाने लगा।

"छुट्टी लेकर आए हो ?"

अली फिर ख़ामोश रहा।

"बोलते क्यों नहीं ?"

"मैं वहाँ नहीं रहना चाहता। मैं घर आना चाहता हूँ।" अली ने कहा।

नईम ने हाथ में पकड़ी हुई रोटी बर्तन में रख दी। "लेकिन...हाँ, मैं समझता हूँ, पर अभी कुछ देर तक तो तुम्हें वहीं पर रहना पड़ेगा। मैं तुम्हारे साथ रहूँगा। हमें मज़दूरों में काम करना है। मज़दूरों की जमाअत इस वक़्त हिन्दोस्तान की बहुत बड़ी ताक़त है। तुम्हें पता है ?"

अली के हाथ, जो शोरबे की प्लेट को घुमा रहे थे, रुक गए।

---

1. नवजात, 2. असाधारण भूक, 3. संक्षेप में।

"तो अब...मैं भी ?" वह गुस्से से बोला, "तुमने हमेशा मेरे साथ दुश्मनी की है। तुमने यहाँ से मुझे निकाला। अब मुझे जेल भेजना चाहते हो ? तुम ख़ुद जाकर जो मर्ज़ी हो, करो।"

नईम उठ खड़ा हुआ और पुश्त पर हाथ बाँधकर कमरे में चक्कर लगाने लगा। एक लोहे का बर्तन उसके पाँव की ठोकर से उड़कर शोर मचाता हुआ दीवार से जा टकराया। उसकी माँ आग जलाना छोड़कर चुप बैठी थी। धुआँ चूल्हे में से निकल-निकलकर कमरे में भर गया था और आँखों को लग रहा था।

एक बार अली के सिर पर रुककर उसने कहा, "लेकिन तुम हमारी मदद कर सकते हो। ख़ुद अपनी ख़ातिर...अहमक़..." और जवाब न पाकर चल पड़ा। अली ने क़मीज़ के दामन से आँखें पोंछीं और दबी ज़बान से धुएँ को गाली दी।

अचानक नईम ग़ुस्से से बोला, "फिर तुम यहाँ नहीं आ सकते। इधर का रुख़ भी नहीं कर सकते।"

"मैं वहाँ भी नहीं रह सकता। मैं तंग आ चुका हूँ।"

"जाओ..." नईम गरजा, "जहन्नुम में जाओ, अभी निकल जाओ...जाओ..."

"जाता हूँ।" अली आधे क़द से उठकर फिर बैठ गया।

"अभी निकल जाओ।" नईम फिर गरजा।

"जाता हूँ। जाता हूँ। खाना तो खाने दो।"

"भाग जाओ, सुअर। जहाँ मर्ज़ी हो, जाओ।" उसने दरवाज़े की तरफ़ बाज़ू लम्बा करके कहा।

"अच्छा...अच्छा..." अली ने इन्तिहाई ग़ुस्से में कहा और भागता हुआ बाहर निकल गया।

रवानगी की तेज़ी में उसने अपनी बूढ़ी भैंस की लगावट को भी न देखा, जिसने उसे देखकर कान खड़े कर लिए थे। गाँव को एक नीले रंग के देहाती कुहरे ने लपेट में ले रखा था। वह जोहड़ के किनारे रुककर पानी में चमकते हुए तारों और दरख़्तों की छाया को देखने लगा। ग़ुस्से के साथ-साथ उसके दिल में एक ज़बरदस्त दुख था, जिसने उसके दिल को मुर्दा परिन्दे की तरह कर दिया था, ख़ामोश और ना-ताक़त। थोड़ी-थोड़ी देर बाद उसने कुछ पत्थर उठाकर पानी में फेंके। फिर वह क़दमों की आवाज़ पर चौंक पड़ा। अँधेरे में एक साया कमज़ोर चाल से उसकी तरफ़ बढ़ रहा था।

"अली !" शाम के सन्नाटे में नईम की आवाज़ आई, जिसमें नर्मी थी।

"सुअरनी का जना...सौतेला..." उसने दाँत पीसकर कहा और भाग खड़ा हुआ।

घर पहुँचकर जब उसने खाना खाया और आयशा को हरदम बकबक करते रहने पर पीटा, तो उसके दिल पर मौत का साया गहरा हो गया। सुबह सवेरे काम पर जाते हुए उसे अजीब एहसास हुआ। वही गलियाँ, मकान, नल, वही फ़ैक्टरी, मशीनें, दीवारें, वही जगह, वही मंज़र, वही लोग, जिनसे वह हर रोज़ मिलता था, हर चीज़ इस क़दर हौसला-शिकन[1] और यकसाँ और ठहरी हुई और ग़ैर-मुबद्दल[2]। अचानक उस जगह की तंगी और ख़ौफ़नाक हदबन्दी का एहसास बोझ बनकर उसके दिल पर बैठने लगा। वह फ़ैक्टरी के दरवाज़े से लौट आया।

32

वह कई घंटे तक रेल के स्टेशन पर आते-जाते मुसाफ़िरों, रेलगाड़ियों और गड्डमड्ड होती हुई लाइनों को देखता फिरा। आख़िर तंग आकर उत्तर की तरफ़ जानेवाली एक रेलगाड़ी में सवार हो गया।

सारा रास्ता वह डिब्बे में बैठा रहा। रास्ते में कई बार लोगों ने किसान जानकर उसे निशस्त

1. हिम्मत तोड़नेवाली, 2. अपरिवर्तित।

से नीचे धकेल दिया और ख़्वाहमख़्वाह झगड़ा करने लगे। और दूर के मुसाफ़िर उसे भगोड़ा समझकर हक़ारत से उसको देखते हुए आपस में बातें करते रहे, लेकिन वह ख़ामोश बैठा अपने दिल में ताज़ा-ताज़ा पाई हुई आज़ादी के ख़ौफ़ को पालता रहा, यहाँ तक कि क़रीब तीस घंटे के सफ़र के बाद, एक बड़े-से ढँके हुए स्टेशन पर पहुँचकर गाड़ी ख़ाली होना शुरू हुई। टिकट देखने कोई न आया। उसने जूता पहना और बाहर निकल आया। यह लाहौर का स्टेशन था। वह हैरान रह गया।

देर तक वह बैंच पर बैठा आते-जाते मुसाफ़िरों को देखता रहा। फिर भूक महसूस करके उठा और चाय के ठेलेवाले के पास पहुँचा।

"यहाँ कैसे आए हो ?" चायवाले ने पूछा।

"वैसे ही !" अली ने चाय की प्याली ख़ाली करके उसे पकड़ाते हुए कहा।

"नौकरी की तलाश में ?"

"हाँ।"

"मिल जाएगी...मिल जाएगी।" चायवाले ने दिलासा दिया, "जब तक तुम मेरे पास रुक सकते हो, रुको। मैं भी दिल्ली से नौकरी की तलाश में आया था। यहाँ आकर काम शुरू कर दिया। फिर यहीं पर झोंपड़ा डाल लिया। मेरी माँ और मैं हूँ। बस पंजाब रोज़गार के लिए अच्छा है। जब तक काम न मिले, जो मर्ज़ी आए, दे देना। जब काम मिल जाएगा, तब जो मर्ज़ी आए करना। अलग हो जाना या जो मर्ज़ी आए। क्या कहा कि कहाँ के रहनेवाले हो, ऐं ?"

थोड़ी देर के बाद वह चायवाले की तजवीज़ पर शहर देखने की ग़रज़ से चल पड़ा। यह शहर उसे अच्छा लगा। यहाँ के लोग मोटे-ताज़े थे और देहातियों की तरह ऊँची करख़्त आवाज़ों में बातें करते थे। वह उम्र में पहली मर्तबा इतने बड़े शहर में आया था। रास्ते में कई जगह पर वह दिलचस्पी की छोटी-मोटी चीज़ों के पास रुका। एक कैमरेवाला सड़क के किनारे एक देहाती की तस्वीर उतार रहा था। एक जगह सर्कस लगा था। वह कितनी ही देर तक गन्ने खाते हुए हाथी के पास खड़ा रहा। फिर एक बैलगाड़ी गुज़री, जिसे एक किसान और उसकी बीवी हाँक रहे थे और लापरवाही से सड़क के बीचों-बीच चले जा रहे थे। अली ने हाथ बढ़ाकर एक बैल का सिर थपथपाया।

एक बाज़ार में दाख़िल होते हुए उसका माथा ठनका। वहाँ पर लोगों की भीड़ में वह बद-नज़्मी[1] और लापरवाही न थी, जो मुनज़्ज़म[2] शहरी ज़िन्दगी की अलामत होती है। कारोबार बन्द था और लोग छोटी-छोटी टोलियों में खड़े सहमी-सहमी आवाज़ों में बातें कर रहे थे। उनके दरमियान पुलिस की एक ग़ैर-मामूली तादाद नज़र आ रही थी। एक दुकान पर एक आवारा बैल खड़ा कपड़े के थान को चबा रहा था। लोगों के चेहरों से रौनक़ ग़ायब थी। देखने में वे पुर-अम्न तरीक़े से खड़े थे, मगर ऐसा हिरासाँ और चुपचाप अम्न, जिससे बद-अम्नी का डर होता था। अली जल्द-जल्द उनके दरमियान से गुज़र गया। सिर्फ़ बैल के क़रीब से गुज़रते हुए यह देखकर कि वह ख़सी[3] जानवर था, उसे दुख हुआ और उसने उन लोगों को, जो इस हरकत के ज़िम्मेदार थे, दिल में गाली दी। वह हमेशा से उन ख़ुदग़र्ज़ लोगों के ख़िलाफ़ था, जो ज़्यादा काम लेने की ख़ातिर बैलों को ख़सी करवा देते थे।

अगले बाज़ार में भी उसे इस आफ़त से छुटकारा न मिला। यह बाज़ार तो जैसे सारी चीज़ों का मर्कज़ था। लोग वहाँ बाक़ायदा जुलूस की शक्ल में दोनों तरफ़ जमा थे। उनके बीचों-बीच कुछ वर्दी पहने लोग, जो रज़ाकार[4] मालूम होते थे। एक शख़्स ख़ाकी वर्दी पहने, हाथ में बेलचा उठाए उन क़तारों के सिरे पर यूँ खड़ा था, जैसे अभी-अभी तक़रीर कर चुका है। हुजूम से दबे-दबे नारों की आवाज़ें उठ रही थीं। अली ने ख़तरा महसूस करके वहाँ से गुज़र जाना चाहा। जब वह हुजूम में से गुज़र रहा था, तो चन्द पुलिस की लारियाँ आकर रुकीं और उनमें से कुछ अंग्रेज़ अफ़सर

1. अव्यवस्था, 2. व्यवस्थित, 3. बधिया, 4. स्वयंसेवक।

और हथियारबन्द गोरे सिपाही कूद-कूदकर बाहर निकले। उसके देखते-देखते एक अंग्रेज़ अफ़सर ने आगे बढ़कर सिरे वाले बेलचा-बरदार से कोई बात की। उसने जवाब में अंग्रेज़ अफ़सर के मुँह पर ज़ोरदार तमाचा मारा। अंग्रेज़ ने पीछे कूदकर रिवाल्वर निकाला और एक फ़ुट के फ़ासिले से गोली चला दी। गोली उसे आँखों के दरमियान लगी और वह गिर पड़ा, लेकिन इससे पहले कि अफ़सर सँभलता, पीछे से किसी ने उसके पहलू में बल्लम चुभो दी। वह रिवाल्वर फेंककर बल्लम के दस्ते पर झुक गया। पीछे दूसरा अंग्रेज़ अफ़सर, जो भागा आ रहा था, रुक गया और रिवाल्वर हवा में लहराकर चिल्लाया, ''फ़ायर...फ़ायर।''

भीड़ में भगदड़ मच गई। देखते-देखते बाज़ार गोलियों के ख़ुश्क धमाकों और बारूद की बू से भर गया। मुनज़्ज़म रज़ाकार, जिनमें भगदड़ कुछ कम थी, कूद-कूदकर और चक्कर खा-खाकर गिर रहे थे। अली खड़ा का खड़ा रह गया। फिर भागती हुई भीड़ के धक्कों के साथ वह भी भागने लगा। फिर एक ज़ख़्मी से ठोकर लगने पर दूर तक लुढ़कता हुआ चला गया, फिर चिल्लाकर उसे कोसा और छलाँग लगाकर एक ज़ीने पर चढ़ गया और बेतहाशा दरवाज़ा पीटने लगा। पल के पल को मुड़कर उसने तेज़ी से गुज़रती हुई ज़र्द, सहमी हुई शक्लों और मौत का नाच नाचते हुए लोगों को देखा। फिर ऊँची रोती हुई आवाज़ और शोर के साथ-साथ दरवाज़ा पीटने लगा। दरवाज़ा खुल गया। अली के धक्के से दरवाज़ा खोलनेवाली सूरत लड़खड़ाकर ज़ीने पर जा पड़ी।

वह एक मामूली शक्लो-सूरत की औरत थी, जिसकी जवानी ढल रही थी। अली घबराहट में काफ़ी देर तक चटख़नी बन्द करने की कोशिश करता और मुँह में बड़बड़ाता रहा। अचानक औरत ने बड़े लापरवाह अन्दाज़ में गाली दी और उसका हाथ झटककर चटख़नी बन्द कर दी।

''चलो।'' उसने उसी बेज़ार लहजे में कहा और अली को आस्तीन से पकड़कर ज़ीने में धकेल दिया।

आगे-पीछे सीढ़ियाँ चढ़ते हुए दोनों ऊपर आ गए। छोटे-से कमरे में पहुँचते ही अली चारपाई पर बैठ गया। औरत खिड़की की दर्ज़ में से नीचे देखने लगी। इनसानी चीख़ों और गोलियों के चलने की आवाज़ें लगातार आ रही थीं। थोड़ी-थोड़ी देर के बाद वह हाथ पुश्त पर बाँधकर कमरे में चक्कर लगाने लगती। उसका चेहरा ज़र्द, मगर निडर था।

''चूहों की तरह मर रहे हैं।'' एक दफ़ा रुककर उसने धीरे से कहा और हक़ारत से अली को देखा। उसके चलने के अन्दाज़ से बेहयाई और मर्दानापन ज़ाहिर था। अली ख़ामोश बैठा हैरत और ख़ौफ़ के मिले-जुले एहसास के साथ उसे देखता रहा। आहिस्ता-आहिस्ता गोलियों की आवाज़ें आना बन्द हो गईं। कभी-कभी दूर या क़रीब से एकाध फ़ायर होता और फिर सन्नाटा छा जाता। सन्नाटा, जो ज़ख़्मियों की कराहों की वजह से शदीद होता जा रहा था। औरत मुड़ी और बाहर की तरफ़ इशारा करते हुए कुछ तमस्ख़ुर, हक़ारत से बोली, ''तुम वहाँ पर मरे हुए पड़े होते। अब उल्लू की तरह मस्त बैठे हो। आकर देखो, आओ...''

अली झेंपकर हँसता हुआ उसके पास जा खड़ा हुआ। अचानक औरत ने धक्का देकर उसे पीछे हटाया और खिड़की बन्द कर दी। नीचे कोई दरवाज़ा पीट रहा था। फिर एकदम बहुत-से हाथ दरवाज़े पर पड़ने लगे। औरत अली को बाज़ू से पकड़कर घसीटती हुई दूसरे कमरे में ले गई और पिछली तरफ़ की गली में उतरनेवाले अँधेरे ज़ीने में ग़ायब हो गई। आधे रास्ते में रुककर उसने दीवार में से एक तख़्ता हटाया और अली को दोनों टाँगों से पकड़कर उसमें धकेल दिया। ''जाओ, अन्दर जाओ...चलो।''

जब वह अन्दर घुसकर बैठ गया, तो औरत ने तख़्ता अपनी जगह पर बराबर किया और वापस आकर ज़ीने के दरवाज़े की कुंडी लगा दी। फिर उसने जाकर बाज़ारवाला दरवाज़ा खोल दिया। पुलिस और फ़ौज के सिपाही राइफ़लों के दस्ते बजाते ऊपर चढ़ आए।

"कहाँ है ?" एक पंजाबी सिपाही ने पूछा।

"कौन ?"

"तेरी माँ का यार।"

"यहाँ कोई नहीं है।"

एक सिख सिपाही ने डंडा घुमाकर औरत के चूतड़ों पर मारा। उसने बिलबिलाकर गाली दी।

"बता, कहाँ गया ?"

"यहाँ बस मैं रहती हूँ। मुझे पता नहीं।" औरत चूतड़ मलते हुए बोली।

"बता।" पंजाबी सिपाही ख़ौफ़नाक गालियाँ बकता हुआ झपटा और उसे बालों से पकड़कर घसीटता हुआ दूसरी दीवार तक ले गया। औरत हवा में हाथ चलाने लगी।

"बता रंडी," सिपाही ने उसके बाल बाज़ू पर लपेटते हुए कहा। औरत ने चीख़ मारकर नाखुन सिपाही की रान में गाड़ दिए। सिपाही ने टाँगें झाड़कर फ़ौजी बूटों की एक ज़ोरदार ठोकर औरत की कमर में मारी, "बोल, रंडी।"

औरत ने तड़पकर सिर उठाया और गालियों की बौछार उसके मुँह से निकली, "हाँ, मैं रंडी हूँ। मैं हूँ, ठीक है। यहाँ हर कोई आ सकता है। मुझे पता नहीं, यहाँ कौन-कौन है। यहाँ कोई नहीं है।"

गोरा सिपाही बुरा-सा मुँह बनाकर पीछे हट गया, फिर उसके पीछे-पीछे आधे सिपाही दूसरे कमरे में दाख़िल हुए। वहाँ वे अलमारियों और सन्दूक़ खोल-खोलकर देखते रहे। फिर चारपाइयों के नीचे, खिड़कियों के बाहर और छत बजा-बजाकर देखने के बाद ज़ीने का दरवाज़ा खोलकर अँधेरे में उतर गए। नीचे पहुँचकर उन्होंने गली का दरवाज़ा खोलकर देखा, उसे बन्द किया और लौट आए।

जब वे पहले कमरे में पहुँचे, तो सिपाही औरत के बालों को साँप की तरह बाज़ू पर लपेटे उसकी छातियाँ मरोड़ रहा था। औरत का चेहरा काग़ज़ की तरह सफ़ेद था।

"नई हाए ?" गोरे ने उकताकर पूछा।

"नहीं ए ए ए ए।"

उसकी कलाई में औरत ने दाँत गाड़ दिए थे। सिपाही ने दोनों हाथ छुड़ाए और पीछे कूदकर पूरी ताक़त से उसके कन्धों के दरमियान बूट की ठोकर मारी। उसकी कलाई से ख़ून बह रहा था। फिर उन्होंने मारना शुरू किया।

जब तक वह अपने पाँव पर खड़ी रही, वे घूँसों, बूटों और राइफ़लों से उसे एक से दूसरी दीवार की तरफ़ उछालते रहे। जब वह फ़र्श पर ढेर हो गई, तो उन्होंने उसका लिबास फाड़ डाला और पीठ और छाती पर डंडे मारने लगे। थोड़ी देर के बाद थककर उन्होंने पीटना बन्द कर दिया और उस मुर्दा ढेर के इर्द-गिर्द ख़ामोश खड़े होकर ख़ाली-ख़ाली नज़रों से कमरे में देखने लगे। वे अचानक पशेमान हो गए थे और उस बेजान इनसानी जिस्म को, जिससे उन्हें कुछ भी हासिल न हुआ था, देखना नहीं चाह रहे थे।

"बेकार है।" आख़िर गोरे सिपाही ने बेहद उकताकर कहा और सीढ़ियों की तरफ़ लपका। उसके पीछे-पीछे सब उतर गए।

जब अली को दीवार से कान लगाए बैठे-बैठे काफ़ी देर हो गई, और कोई आवाज़ न आई, तो उसने एहतियात से तख़्ता हटाया और सीढ़ियों पर कूद गया। मकान में गहरा सन्नाटा था। ऊपरवाले दरवाज़े में एक बिल्ली खड़ी थी, जो उसे देखते ही भाग गई। पहला कमरा ख़ाली था। दूसरे कमरे के फ़र्श पर उसका नंगा जिस्म पड़ा था और टाँगें बेशर्मी से फैली हुई थीं। वह हैरान खड़ा देखता रहा। फिर भाग-भागकर दरवाज़े और खिड़कियाँ बन्द करने लगा। नंगे जिस्म पर चोटों के निशान थे। अली ने उसे उठाकर दीवार के सहारे बिठाया, लेकिन वह लुढ़क गई। काफ़ी देर

तक वह उसे होश में लाने की बेकार कोशिशें करता रहा। आहिस्ता-आहिस्ता वह ख़ुद-ब-ख़ुद होश में आ गई।

सबसे पहली नज़र उसने अपने आप पर डाली और जिस्म को बाजुओं में छुपा लिया। अली ने बिस्तर पर से चादर खींचकर उसे ओढ़ा दी। वह ख़ामोशी से चादर लपेटती और इर्द-गिर्द देखती रही। फिर उसने ख़ून से लुथड़े होंठों पर ज़बान फेरकर अली की तरफ़ देखा। अली ने भोंडेपन से उसके कन्धे पर हाथ रखा। अचानक वह उससे लिपटकर फूट-फूटकर रोने लगी। वह उसके आँसू पोंछता और प्यार से सारे जिस्म पर हाथ फेरता रहा। फिर उसने उसके गालों और आँखों को चूमा।

थोड़ी देर के बाद अली ने एहतियात से बाजुओं में भरकर उसको उठाया और ले जाकर चारपाई पर लिटा दिया। बाज़ू पर सिर रखे वह दीवार को देखती-देखती कमज़ोरी के मारे ऊँघने लगी। जब उसने आँख खोली, तो अली दीवार के साथ बैठा उसे तके जा रहा था। वह उठकर बैठ गई।

"अब मैं ठीक हूँ।" वह उदासी से मुस्कराई।

"तुम लेटी रहो।"

"अच्छा हुआ, तुम नहीं आए। वे तुम्हें क़त्ल कर देते।"

अली चारपाई के पाए पर हाथ रखकर उसकी तरफ़ झुका, "तुम समझती हो, मैं बुज़दिल हूँ ?"

"ओह, नहीं !" वह हँसी।

"गाँव में लोग कहते थे कि शहर में रह-रहकर मैं बुज़दिल हो गया हूँ।" अली ने उदासी से कहा।

"अरे नहीं पगले।" वह प्यार से उसके बालों में उँगलियाँ डालकर हँसी, "तुमने खाना नहीं खाया।"

"नहीं-नहीं, तुम बैठी रहो !"

"अब मैं बिलकुल ठीक हूँ।" उसने कहा और चादर लपेटती हुई दूसरे कमरे में चली गई। जब वह उस कमरे से बाहर आई, तो उसने सफ़ेद रेशम का लिबास पहन रखा था। उसका मुँह धुला हुआ और बाल सँवरे हुए थे। वह ख़ामोशी से मुस्कराती हुई जाकर सब्ज़ियाँ निकालने लगी।

"मैं आग जलाऊँ ?" अली ने पूछा।

"तुम बैठे रहो। मैं सब काम कर लूँगी।"

वह कमरे में फिरने लगा। बाज़ारवाली खिड़की ज़रा-सी खुली थी। बाहर मौत का सन्नाटा था और चन्द आवारा कुत्ते इधर-उधर पड़ी हुई लाशों को सूँघ रहे थे। वह वहाँ से हट आया। अलमारी में बची-खुची सब्ज़ियाँ और कुछ खाने की बासी चीज़ें पड़ी थीं। उसने कनखियों से उसकी तरफ़ देखा, जो चूल्हे के आगे सिमटी-सिमटाई बैठी खाना पका रही थी। वह उसे बड़ी प्यारी लगी।

"तुम्हारा नाम क्या है ?"

"ज़ुहरा...ज़ुहरा बेगम।"

"अच्छा, अच्छा !" वह ख़ुशी से सिर हिलाकर बोला, "मेरा नाम अली है।"

दोनों ने वहीं बैठकर खाना खाया। खाने के बाद अली चारपाई पर लेट गया।

"यहाँ आ जाओ।"

वह उठकर उसके पास जा बैठी।

"तुम बड़ी मज़बूत हो," अली ने उसका जिस्म टटोलते हुए कहा, "चोटों ने तुम्हें कोई नुक़सान नहीं पहुँचाया।"

"हाँ।" वह हँसी, "मज़बूत तो तुम भी हो, सिर्फ़ ज़रा बुज़दिल हो।"

"ऐं ?" अली ने उसकी कमर में हाथ डालकर अपनी तरफ़ खींचना चाहा।

"अरर..." वह कड़ी नज़रों से उसे देखती हुई सिमटकर परे हो बैठी।

अली खिसियाना होकर उसकी पुश्त पर हाथ फेरने लगा, "तुम्हारा लिबास बड़ा शानदार है।"

"तुम गाँव में रहते हो ?" औरत ने पूछा।

"हाँ।"

"हम भी गाँव में रहते थे।"

"अच्छा ? कहाँ ?"

"हमारा गाँव अमृतसर के क़रीब था।"

"अब कहाँ गया ?"

"अब भी है, लेकिन मैं वहाँ नहीं जाती।"

"क्यों ?"

"जब मेरा बाप मर गया, तो हमने गाँव छोड़ दिया।"

"तुम्हारी ज़मीन भी थी ?"

"पता नहीं ! तब मैं बहुत छोटी थी। मुझे ज़रा-ज़रा याद है बस इतना कि मैं भैंस की पूँछ पकड़कर जोहड़ में तैरा करती थी। और एक दफ़ा जब मेरा बाप धूल में अटा हुआ शहर से लौटा और मुझे घोड़े की रस्सी पकड़ाकर घर के अन्दर चला गया, तो घोड़ा मेरे आधे बाल खा गया और मैं सारी रात रोती रही थी। और मेरा बाप था, जो बड़ा जवान, बड़ा नर्मदिल और बड़ा ख़ूबसूरत था। उसके बाद मैंने कोई ख़ूबसूरत आदमी नहीं देखा।" अली को उसकी आवाज़ डूबती हुई मालूम हुई, "तुम्हें भी बहुत बचपन की कोई बात याद आती है ?"

"हाँ।" वह हँसा, "अरर...सबसे पहली बात यह याद आती है कि मेरे बाप के पास तीन दूध देनेवाली भैंसें थीं और सवेरे-सवेरे जब मेरी माँ मक्खन निकाल लेती थी, तो हमसायों के बच्चे अपने-अपने बर्तन लेकर लस्सी लेने आया करते और दरवाज़े में खड़े होकर दाँत निकोसा करते थे। मेरी माँ एक-एक को बुलाकर छाछ देती थी। उनमें ज़्यादातर लड़कियाँ होती थीं और जब वे भरे हुए बर्तन उठाए मवेशियोंवाले अहाते में से गुज़रतीं, तो मैं बिला-वजह उनको मारा और उनकी चोटियाँ खींचा करता था।"

"कमीने।" वह चिल्लाई। दोनों खिलखिलाकर हँस पड़े।

इतनी परेशानी के बाद पेट भर खाने और थोड़े-से सुकून से अली को नींद आने लगी और वह औरत की गोद में हाथ रखे-रखे सो गया। वह मुहब्बत से उसे देखती और लम्बे-लम्बे गहरे-गहरे साँस लेती रही। फिर उसने धीरे से अली का हाथ बिस्तर पर रखा और कमरे के बीच में खड़े होकर एक लम्बी अंगड़ाई ली। अंगड़ाई के दरमियान वह चौंककर रुक गई और बाँहें लटकाकर परेशानी से चारों तरफ़ देखने लगी, यूँ जैसे मेहरबान दोस्तों में बैठकर क़हक़हे लगाते-लगाते ज़ेहन पर से किसी नाख़ुशगवार ख़याल का साया गुज़र जाए।

जब अली उठा, तो वह एक बच्चे से खेल रही थी।

"यह कौन है ?"

"मेरी सहेली का बच्चा है।"

"तुम्हारा बच्चा नहीं है ?"

"यह सब का बच्चा है।"

"सब का ?"

बच्चा सेहतमन्द और चुलबुला था। अली ने हाथ बढ़ाकर उसे पकड़ने की कोशिश की, लेकिन वह भागकर औरत के कन्धों पर जा चढ़ा।

"अब घोड़ा बनो। मुझे बुलाया क्यों था ? अब घोड़ा बनो।" बच्चे ने रट लगाई। वह हँसते-हँसते दोहरी हुई जा रही थी।

"यह देखो...तुम्हारा घोड़ा वह बनेगा।" औरत ने अली की तरफ़ इशारा करके कहा।

"यह कौन है ?" बच्चे ने पूछा।

"बूझो।"

"अब्बा...अब्बा...अब्बा..." वह तालियाँ बजाता हुआ चिल्लाने लगा।

अली को बच्चे पर बेहद प्यार आया। वह चारपाई से उतरकर फ़र्श पर घोड़ा बन गया।

"आओ, आओ।"

बच्चा डरते-डरते जाकर उसकी पीठ पर सवार हो गया। अब वह दीवारों के साथ-साथ सारे कमरे में चल रहा था और औरत हँसते-हँसते बीरबहूटी बनती जा रही थी। कभी-कभी वह उछलने और घोड़े की बोली बोलने लगता, तो बच्चा ख़ुशी से तालियाँ बजाता। आख़िरकार औरत ने खींचकर उसे अली की पीठ से उतारा और गोद में लेकर बैठ गई। वह बातें करने लगे, गाँव की बातें, शहर की बातें। अली ने उसे अपने काम के बारे में बताया कि बाज़ार के आख़ीर पर ज़मीन का एक टुकड़ा था जो मस्जिद (शहीदगंज) के लिए वक़्फ़ था और जिस पर सिख अपना हक़ जताकर गुरुद्वारा बनाना चाहते थे। इस तरह वह जो मुद्दत से झगड़े का सबब बना हुआ था, आज सुबह के सानिहे[1] पर ख़त्म हुआ। फिर उन्होंने घर-बाहर की बातें कीं, मामूली-मामूली ज़ाती बातें, जो एक ही घर के लोग या क़रीबी दोस्त आपस में करते हैं। बातों के दौरान दो-एक मर्तबा अली ने उसे अपनी तरफ़ खींचना चाहा, लेकिन उसने हाथ झटककर उसे रोक दिया। बातें करते-करते शाम पड़ गई। बच्चा उनके पास से उठकर जा चुका था।

उस वक़्त दूसरे कमरे के दरवाज़े पर दस्तक हुई। औरत दरवाज़े में खड़ी होकर दस्तक देनेवाले से, जो किवाड़ की ओट में था, बातें करने लगी। देर तक धीरे-धीरे तू-तू मैं-मैं करते रहने के बाद वह ऊँची आवाज़ में गाली देकर बोली, "इस आफ़त के वक़्त में भी..." और दरवाज़ा बन्द करके अली के पास आ खड़ी हुई।

"अब तुम जाओ।"

अली हैरत से उसे देखता रहा।

उसने नदामत से कपड़े झाड़े और इधर-उधर देखती हुई बोली, "अब तुम जाओ। कल फिर आना।"

"कहाँ ? कहाँ जाऊँ ?"

"कहीं भी जाओ। चलो, उठो।" उसने उसे बाज़ू से पकड़कर उठाया और सीढ़ियाँ उतरने लगी।

आधे रास्ते में अली ने उसे रोका, "लेकिन...पिछली तरफ़ से निकालो। इधर पुलिस है !"

"इस वक़्त अँधेरा है। कोई नहीं देखेगा, चलो !"

आख़िरी सीढ़ी पर रुककर उसने दोनों हाथ अली के कन्धों पर रख दिए और धीरे से बोली, "कल फिर आना !"

"मेरा यहाँ कोई नहीं, मुझे यहीं रहने दो !"

"ऊँ...हुँह।"

"मैं तुम्हारे साथ नहीं सोऊँगा," अली ने मिन्नत की, "फ़िक्र न करो !"

"नहीं ! अब तुम कल आना ! फिर परसों आना ! फिर हर रोज़ आया करना। फिर..." वह हँसी।

अँधेरे में उसके गहरे, जज़्बाती क़हक़हे की आवाज़ अली को भली मालूम हुई।

"अब जाओ।" उसने दरवाज़ा खोलकर अली को बाहर धकेल दिया।

वह अँधेरे में खड़ा उसकी चमकती हुई आँखों को देखता रहा।

---

1. दुर्घटना।

"जाओ !"

"तो ठीक है। अब मैं नहीं आऊँगा।"

"नहीं भई, ज़रूर आना। तुम्हारी मिन्नत करती हूँ।"

"कुतिया," अली ने कहा, "अब थूकने भी नहीं आऊँगा।"

कई लम्हों तक वह अँधेरे में चुपचाप खड़े एक दूसरे को देखते रहे। फिर औरत की बिफरी हुई आवाज़ आई, जिसमें वही पहलेवाली लापरवाही और फक्कड़पन था, "हरामी। तुम इस वक़्त चूहे की तरह मरे पड़े होते...वहाँ।" उसने गाली देकर दरवाज़ा बन्द कर दिया।

अली ने बहुत ग़ुस्से में दो-तीन लातें बन्द दरवाज़े पर जमाईं और साँप की तरह फुँकारा, "रंडी !"

बाज़ार में सिपाहियों के भारी बूटों की आहट पैदा हुई। वह कूदकर एक दुकान के नीचे घुस गया। उस वक़्त उसने दहलकर देखा कि वह एक मरे हुए आदमी पर बैठा था। सिपाही ख़ामोशी से गुज़र गए।

बाहर निकलकर वह कुछ देर काँपती हुई टाँगों पर वहीं खड़ा रहा। उसका दिल सुन्न हो चुका था।

33

सर्दियों के शुरू में नईम पर फ़ालिज का हमला हुआ। हमला ज़्यादा शदीद न था। गाँव के हकीम ने यक़ीन दिलाया कि कोई बात नहीं, सर्दियों में घोड़े भी अक्सर जुड़ जाया करते हैं और दो-एक गीदड़ पकाकर खाने पर भले-चंगे हो जाते हैं। इसके बावजूद वह चारपाई से जा लगा।

दो हफ़्ते बाद यह ख़बर अज़रा ने मुंशी की ज़बानी सुनी, जो लगान के सिलसिले में रौशन महल गया हुआ था। दिन भर वह कमरे में पड़ी रही। तीसरे पहर के वक़्त बाग़ में उतर आई। पतझड़ की ज़र्द हवाएँ चल रही थीं और रविशों पर गिरे हुए पत्ते धूप में चमक रहे थे। वह बरगद की जड़ पर चढ़कर बैठ गई और ख़ुश्क पत्तों की ढेरी बनाने लगी। कभी-कभी अचानक बेचैन होकर कानों पर हाथ रख लेती। फिर उस कनफ़्यूज़न से घबराकर उठी और अगले दरख़्त की जड़ पर जा बैठी। वहाँ भी वह आसानी के साथ बैठी पत्तों को हवा में उड़ाती रही। उसने मौसम के शदीद हुस्न को भी महसूस न किया।

अगले रोज़ वह रौशनपुर पहुँची। गाँव उसी तरह पुराना और धूल से भरा था। वही दीवारें और दरख़्त और गलियाँ, वही खेत, जिनमें इक्का-दुक्का किसान हल जोत रहे थे। यह बियाई का मौसम है। उसने ज़ेहन पर ज़ोर देकर सोचा। उस बरसों पुराने मंज़र को देखकर बे-तरह उदास हो गई। अपने घर में दाख़िल होकर उसने बूढ़े रखवाले का हाल पूछा। बुड्ढा चाबियों के गुच्छे को टटोलता हुआ उसके अचानक आ जाने पर ख़ुशी और दुख के मिले-जुले जज़्बात के मारे रोने लगा। नौकरों को मकान खोलने का हुक्म देकर वह बावर्चीख़ाने में जा बैठी। मकान में से दरवाज़ों-खिड़कियों के खुलने और झाड़ने-फटकने की आवाज़ें आ रही थीं। फ़र्नीचर घसीटा जा रहा था। कभी-कभी एकाध शीशा टूटता और नौकरों के बातें करने की आवाज़ें आतीं। वह पतझड़ के मौसम का एक शफ़्फ़ाफ़ दिन था और बावर्चीख़ाने में धूप भरी हुई थी। अज़रा खिड़की में खड़ी धूल के उस छोटे-से बादल को देखती रही, जो कमरों में से निकलकर धूप में आ गया था। वह कोई फ़ैसला न कर पा रही थी। अब जबकि वह यहाँ पहुँच चुकी थी, यहाँ से बाहर क़दम रखते हुए डर रही थी।

"अब ?" उजाड़ बाग़ के टूटे-फूटे रास्तों पर चलते हुए उसने हज़ारवीं बार दिल में सवाल किया। वही उलझन, वही बे-इत्मीनानी हर जगह उसका पीछा कर रही थी।

जब अँधेरा चारों तरफ़ फैल गया, तो वह चोरों की तरह नईम के घर में दाख़िल हुई। मवेशियों के अहाते में नईम की माँ लकड़ी की बाल्टी में दूध दुहकर अन्दर ले जा रही थी, और कच्ची मुँडेर पर शाम का सितारा झिलमिला रहा था। वह इस घर में पहली बार दाख़िल हो रही थी। वह यहाँ कभी न आई थी। उसने नईम की माँ को सिर्फ़ एक बार दूर से देखा था। यह घर उसके ख़्वाबों के जज़ीरे[1] पर कहीं भी न था। यहाँ आने के बारे में उसने कभी न सोचा था। आज अजनबियों की तरह इस घर में क़दम धरते हुए उसके दिल में अलाहदगी[2], उस पुरानी बेगानगी का एहसास तक पैदा न हुआ कि लाशुऊरी कुव्वतें[3] इस क़दर ताक़तवर होती हैं। बे-आवाज़ क़दमों से अहाता पार करके उसने अन्दर झाँका। खाते-पीते किसानों के घरों की तरह एक मकान था। बावर्चीख़ाने में बुढ़िया काम कर रही थी। जब वह खिड़की के सामने से गुज़रती, तो उसका साया आँगन में पड़ता। कमरे के दरवाज़े का एक पट खुला था, और चारपाई पर लेटे हुए मर्द की टाँगें नज़र आ रही थीं।

"नईम।" अज़रा ने कँपकँपाकर सोचा। वह अंगूर की बेल के नीचे अँधेरे में धड़कते हुए दिल पर हाथ रखे खड़ी रही, जैसे ग़रीब लोग खाने की उम्मीद में शाम से ही अमीर किसानों के दरवाज़ों पर चुपचाप आ खड़े होते हैं।

फिर उसने बिल्ली की तरह चलकर आँगन पार किया। नईम चेहरे के आगे किताब रखे लैम्प की रौशनी में पढ़ रहा था। आहट सुनकर बच्चों की तरह बोला, "माँ, मुझे भूक लगी है। मालिश फिर कराऊँगा।"

कोई जवाब न पाकर उसने किताब हटाई। उसका मुँह खुले का खुला रह गया और किताब नीचे गिर पड़ी। उसने उठने की कोशिश की, लेकिन कुहनी के बल सिर्फ़ आधा उठ सका। उसका माथा आधे सिर तक जा चुका था और कनपटियों पर सफ़ेद बालों के गुच्छे लटक रहे थे। जिस्म भारी हो गया था। अज़रा दरवाज़े को थामे खड़ी रही। उसने देखा कि नईम की आँखों में बेपनाह मज़लूमियत[4] थी। उसकी टाँगें काँपने लगीं और वह उसकी चारपाई के पास जाकर बैठ गई।

"अज़रा..." आख़िरकार नईम बड़बड़ाया और धम् से तकिए पर गिर पड़ा। कुछ देर तक वह सीधा लेटा आँख झपके बग़ैर ख़ला[5] में देखता रहा। फिर यकायक उसने करवट बदली और बाज़ू अज़रा की गर्दन में डालकर अपनी तरफ़ खींचा। वह उसके कन्धे पर सिर रखकर रोने लगी। महबूब आँखों में बेकराँ[6] मज़लूमियत की झलक और एक पल के लम्स[7] ने बरसों के ग़ुरूर को हक़ीर[8] बना दिया था।

नईम ने उसे माथे पर चूमा और आँखों पर और गालों पर और होंठों पर। एक लफ़्ज़ कहे बग़ैर वह बेताबी से और गर्मजोशी से उसे सारी जगहों पर चूमता रहा, यहाँ तक कि आँसुओं का नमकीन मज़ा उसे अपनी ज़बान पर महसूस हुआ।

"तुम बीमार हो?" उसने दुख से पूछा।

"अब ठीक हूँ।" उसने कहा और उसे छातियों के ऊपर चूमा, जहाँ से गला खुला हुआ था। एक उम्र गुज़र जाने पर भी उसके सीने की जिल्द मज़बूत और सेहतमन्द थी। अज़रा ने उसके बालों में उँगलियाँ डालकर पहली बार उसे चूमा और जज़्बे की शिद्दत से दोबारा रोने लगी।

"मत रोओ।" नईम ने उसकी पुश्त पर हाथ फेरते हुए दुहराया।

मुश्किल से अपने आप पर क़ाबू पाकर उसने आँसू पोंछ डाले। नईम की माँ हाथ में सुर्ख़ रंग के तेल का बर्तन लिए दरवाज़े में खड़ी हैरत से अजनबी, जवान औरत को देख रही थी। फिर यकायक उसने उसे पहचान लिया और सादा, और पुरमानी[9] हँसी उसके चेहरे पर फैल गई। वह एहतियात से आकर चारपाई पर बैठ गई और बेटे की टाँग पर मालिश करने लगी। उसके आने

1. द्वीप, 2. पृथकता, 3. अवचेतन की शक्तियाँ, 4. उत्पीड़न, 5. शून्य, 6. असीम, 7. स्पर्श, 8. तुच्छ, 9. अर्थपूर्ण।

को किसी ने महसूस न किया।

"तुम फिर जेल गए थे ?" अज़रा ने कहा।

"हाँ।"

"कितनी देर ?"

"बहुत देर ?" वह नज़रें जमाए उसे देखता रहा, "कई साल !"

"तुम्हारे बाल गिर रहे हैं।"

"हाँ।" उसने संजीदगी से कहा।

अज़रा हौले से हँसी। नईम भी उसके साथ हँसा। वह कुछ भी न समझ रहा था। वह सिर्फ़ उस बरसों की गुमशुदा महबूब आवाज़ को सुनने में मगन था, जो आहिस्ता-आहिस्ता क़रीब आ रही थी, उसे वापस मिल रही थी, जैसे आधी रात के मल्लाहों का गीत, जो अभी क़रीब आता है, और अभी दूर चला जाता है, और कहीं नज़र नहीं आता, लेकिन मुसाफ़िरों की हिम्मत बढ़ाता है, और तूफ़ानी रातों में उन्हें ज़िन्दगी की मेहनत और ख़ुशी का यक़ीन दिलाता है।

फिर अज़रा ने नईम की माँ को देखा और बुरी तरह झेंप गई, "मैं तेल मलती हूँ।"

"नहीं।" नईम ने उसे पकड़े रखा, "तुम बातें करो।"

"बातें भी करेंगे।" वह हँसी और उठकर पायँती बैठ गई।

"अच्छा, अच्छा। नईम की माँ बे-फ़न, मानीख़ेज़ अन्दाज़ में हँसती हुई बाहर निकल गई। फिर आँगन में से लौटी और आकर दरवाज़ा बन्द कर दिया। उसका सफ़ेद सिर तेज़ी से हिल रहा था।

अज़रा उसकी पिंडली पर तेल मलती रही और हौले-हौले बातें करती रहीं। अपनी बातें, उसकी बातें, उसकी बाईं टाँग की बातें, जिस पर फ़ालिज[1] का असर था। नईम बड़े ध्यान से सुनता और उसके कहने पर अपने जिस्म के अधमरे हिस्से को हिलाने की कोशिश करता रहा। आहिस्ता-आहिस्ता वह इस सिह्र[2] में से निकल आया।

कमरे के बीच में बुझती हुई आग का आख़िरी शोला कमज़ोरी से भड़क रहा था।

"और लकड़ियाँ डाल दो।" उसने कहा।

अज़रा ने उठकर ख़ुश्क लकड़ी आग पर फेंकी। लकड़ी ने धुआँ छोड़ा, और भड़ककर जल उठी। अज़रा के माथे पर पसीने के क़तरे उभर आए। कमरे में लकड़ी के जलने और मालिश के तेल की मिली-जुली बू फैल रही थी और दीवार पर अज़रा का साया नाच रहा था।

"चचा मर गए।" नईम ने भारी आवाज़ में कहा।

'ऐं...चचा ?"

"हाँ।"

दोनों ख़ामोश हो गए।

"मैं जेल में था, जब मुझे ख़बर मिली। वह मेरे जेल जाने पर सख़्त ख़फ़ा थे। कई बार मैंने पैग़ाम भेजा कि आकर मिल जाएँ, लेकिन न आए। उन्होंने कहा, "नईम से जाकर कह दो, मेरा उसका कोई तअल्लुक़ नहीं रहा। मैं उसके बग़ैर आसानी से रह सकता हूँ !" मुझे इस बात का दुख हुआ। उसके बाद मैंने कोई पैग़ाम न भेजा। फिर वह बीमार पड़ गए। मुझे लोगों ने आकर बताया कि उनका इलाज होता रहा। शदीद तकलीफ़ के बावजूद वह बीमारी को सब्र से बर्दाश्त करते रहे। उन्होंने किसी का नाम न लिया। किसी से मिलने की ख़्वाहिश ज़ाहिर न की। फिर एक रोज़ अचानक उन्होंने मुलाज़िम को अपने पास बुलाया और बोले, "तुम समझते हो मुझे किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं रही ? तुम ग़लत समझते हो। कल हम अल्मोड़े जा रहे हैं।" फिर उन्होंने दुख से कहा, "मुझे कभी ख़याल न आया था, कि मौत हमारे बस में नहीं है। ज़िन्दगी में इतनी कम मुहलत मिलती

1. पक्षाघात, 2. सम्मोहन।

है और हम इतनी ग़लतियाँ करते हैं। नईम भी और मैं भी, उम्र भर हम एक दूसरे से बच्चों का-सा सुलूक करते रहे हैं, ज़िद्दी और जाहिल बच्चों का-सा।''

''लेकिन उस रात वह मर गए,'' नईम ने सिर उठाया, ''सुनो ! उसके चन्द रोज़ बाद मैंने ख़्वाब देखा कि मैं दरिया के किनारे-किनारे जा रहा हूँ और मैं चलता गया, चलता गया कि एक जगह पर वह दरिया की सतह पर उभरे और बोले, ''आगे जाओ।'' मैं फिर चलने लगा। वह डुबकी लगाकर ग़ायब हो गए। फिर थोड़े-थोड़े फ़ासिले पर वह पानी में से बाहर निकलते और मुझे आगे जाने का इशारा करते रहे। फिर दरिया ख़त्म हो गया और वहाँ वह रेत पर खड़े थे। धूप बड़ी चमकीली थी और उनके सफ़ेद बाल हवा में उड़ रहे थे और वह अपना दिलपसन्द सफ़ेद सूट पहने हुए छड़ी हाथ में लिए जैसे मेरा इन्तिज़ार कर रहे थे। कहने लगे, 'मैं अकेला चल रहा था। अच्छा हुआ, तुम आ गए।' हम रेत पर चलने लगे और हमें रास्ते में पानी के परिन्दों के ग़ोल के ग़ोल मिले, जो उड़ते हुए समन्दर की तरफ़ जा रहे थे। चलते-चलते हम एक मकान में दाख़िल हुए। वह जगह, हालाँकि मैं कभी वहाँ नहीं गया हूँ, मुझे बेहद जानी-पहचानी मालूम हुई। हम सीढ़ियाँ चढ़ने लगे और चढ़ते गए, चढ़ते गए, यहाँ तक कि मैं हाँफने लगा। वे अनगिनत थीं। आख़िर में एक ज़ीना आया और एक लोहे का जंगला, जो मकान के गिर्दागिर्द चला गया था। वहाँ रेलिंग के सहारे एक ग़रीब आदमी बैठा था। उसने ख़ामोशी से हमारी तरफ़ देखा। चचा ने अपनी चाँदी की छड़ी मेरे हाथ में पकड़ाई और कहने लगे, ''इसे दे दो !'' उसने छड़ी मेरे हाथ से ले ली और उसके उदास चेहरे पर मासूम-सी मुस्कराहट फैल गई। वह ख़ामोशी और एहसानमन्दी से हमें देखकर हँसता रहा। फिर छड़ी के सहारे उठा और रेलिंग के साथ-साथ चलने लगा। उसे हँसते हुए देखकर मैं बहुत ख़ुश हुआ। अब तक याद है कि मेरे दिल की बेचैनी अचानक ख़त्म हो गई थी। चचा ने मेरे कन्धे पर हाथ रखा और हम वापस लौटे। मेरे दिल में मुकम्मल इत्मीनान था, और ख़ुशी, जो इत्मीनान से पैदा होती है। लेकिन सीढ़ियाँ उतरते-उतरते वह कहीं ग़ायब हो गए। मैंने परवाह न की और अकेला उतरता रहा। फिर एक जगह रुककर झरोखे से बाहर देखने लगा। बाहर हर तरफ़ ज़र्द धूप फैली हुई थी, रेत पर और समन्दर पर और आसमान पर ज़र्द, बहुत ज़र्द...'' उसने बोलते-बोलते अज़रा का हाथ दबाया, ''और सुनो ! अब जो मैं बतानेवाला हूँ, बेहद अजीब है। उस वक़्त झरोखे से बाहर देखते हुए मेरे दिल में अजीब-सी उदासी पैदा हुई, बड़ी गहरी और ख़ामोश ग़मनाक उदासी, लेकिन अजीब बात है कि उससे मेरी पहली ख़ुशी और इत्मीनान को कोई ठेस न पहुँची। मेरे दिल में वह बीमार कर देनेवाली बेचैनी पैदा न हुई। यह कोई दुख से भरा जज़्बा न था, बल्कि एक धीमा और छा जानेवाला ग़म था, जैसे मैं, जैसे पता नहीं...लेकिन आज तक मैंने ख़्वाब में कोई जज़्बा, इतनी शिद्दत से महसूस नहीं किया। तब मुझे एहसास हुआ कि चचा से मुझे कितनी गहरी मुहब्बत थी, कि उनसे मैं अपने बाप की निस्बत कहीं ज़्यादा वाबस्ता था, कि ज़िन्दगी में इत्मीनान हासिल कर लेने के बाद हमारे लिए कुछ भी नहीं रह जाता, सिवाय ग़म के...तुम्हें पता है, अज़रा, कि चचा दुनिया में किस क़दर तनहा थे, किस क़दर मेहनती, किस क़दर दुखी और किस क़दर नेक थे। उन्होंने इतने प्यार से मुझे पाला। ज़िन्दगी में इतनी लम्बी तन्हाई का दुख उठाया...'' एक साँस बोलते रहने से उसका चेहरा सुर्ख़ हो रहा था और माथे की रग उभर आई थी। अज़रा ने महसूस किया कि उसकी आँखें बड़ी अजीबो-ग़रीब थीं।

''ख़ाला भी फ़ौत हो गईं।'' उसने चुपके से कहा।

''हाँ, सुना था।''

''ऐसा हुआ नईम कि ओह...उस रात मैं देर तक जागती रही थी। मेरी ज़ेहनी हालत कुछ अच्छी न थी। आधी रात गुज़र जाने पर वह मेरे कमरे में आईं और मुझे देर तक जागने और बारिश में बैठे रहने पर डाँटने लगीं। मुझे ग़ुस्सा आ गया। मैंने उन्हें वापस चले जाने को कहा। इस बात का

उन्हें बहुत दुख हुआ। वह रोने लगीं। फिर अपनी बिल्ली को उठाकर बाहर निकल गईं। सुबह जब हम जागे, तो वह मर चुकी थीं। आज तीन साल से ऊपर हो गए।"

नईम के चेहरे पर उदासी झलकने लगी। काफ़ी देर की कशमकश के बाद उसने अपने आप पर क़ाबू पाया और आहिस्ता से बोला, "लेकिन अब वह मर चुकी हैं। अल्लाह-तआला उन्हें मुआफ़ करे।"

अज़रा ने महसूस किया कि ख़ाला के मुतअल्लिक़ नईम के दिल में कोई शदीद ग़लतफ़हमी मौजूद थी। फिर उसने चुपके से दिल में कहा, "क्या फ़र्क़ पड़ता है।"

आग फिर बुझ रही थी। अज़रा ने उठकर चन्द ख़ुश्क लकड़ियाँ आग पर डालीं और दरवाज़ा खोल दिया। जब सारा धुआँ निकल गया, और कमरा ताज़ा, ख़ुश्क हवा से भर गया, तो उसने दरवाज़ा बन्द कर दिया और दोनों हाथ नईम के सीने पर रखकर बैठ गई। कमरे में रौशनी और गर्मी आहिस्ता-आहिस्ता बढ़ने लगी और दो-एक जलती हुई चिकनी लकड़ियाँ सूँ-सूँ की आवाज़ पैदा करने लगीं।

"तुम मुझे याद करते थे ?"

"बहुत।" नईम ने सपाट लहजे में कहा, "तुम्हारे बग़ैर दुनिया की मुश्किल-तरीन चीज़ जो आई, वह रात थी। जेल में भी, बाहर भी। दिन भर तो मैं काम में मसरूफ़ रहता, लेकिन रात के वक़्त जब मैं अकेला और थका हुआ होता, तो नींद कहीं ग़ायब हो जाती। उस वक़्त बड़ी ख़तरनाक बातें मेरे ज़ेहन में आतीं और मुझे ख़याल होता कि दिल और दिमाग़ की सारी बीमारियाँ मुझको हो गई हैं। मेरी आँखों में से आग निकलने लगती और जिस्म पुराने बीमारों की तरह घुलने लगता। ऐसी हज़ारों रातें मैंने गुज़ारी हैं। कई बार यह सोचकर मैं डर जाता था कि तुम्हारे बग़ैर शायद मैं मर जाऊँगा।" वह हँसा।

अज़रा ने बेताबी से उसका गला खोलकर भेड़ की तरह मुँह उसके सीने पर रगड़ा, "तुम इतना याद करते होगे, मैंने कभी न सोचा था।" वह दोबारा रोने लगी।

"चुप रहो।" नईम ग़ुर्राया।

उसने नईम के कन्धे पर रगड़कर आँखें ख़ुश्क कीं, "देखते ही मुझे पता चल गया था कि यह सब कुछ गुज़रा है। तुमने यह सब झेला है। तुमने मुझे याद रखा है। तुम्हारी आँखें बूढ़ी हो गई हैं। मुझे मुआफ़ कर दो।"

वह दुख से मुस्कराया।

अज़रा फिर बोली, "पर इसके बावजूद तुम्हारी आँखें ख़ूबसूरत रही हैं। यह ऐसा अजब लगता है, नईम। तुम्हारी आँखें, बूढ़ी और नर्म और नाज़ुक।"

"यह इसलिए है," नईम ने बेताबी से कहना शुरू किया, "कि जब मैं उस दुख में घिरा हुआ था, तो मुझे पता चला कि दुनिया में इतनी अच्छी-अच्छी चीज़ें भी हैं। बड़ी-बड़ी ख़ुशियों के अलावा छोटी-छोटी ख़ुशियाँ भी हैं, जिनके हम अपनी मसरूफ़ियतों में भूल जाते हैं, लेकिन जो दुख में हमारे काम आती हैं, जो हर-दम हमारे आस-पास रहती हैं—इतनी क़रीब कि हम हाथ बढ़ाकर उन्हें पकड़ सकते हैं। पुरानी-पुरानी बातें। जैसे ज़ेहन से मिटता हुआ वह चेहरा, जो उस बूढ़ी औरत का था, जिसने बचपन में मेरी देखभाल की थी। और पहाड़ की ढलान पर हमारा घर था, जिसकी टीन की छत पर बारिश शोर मचाती थी और लकड़ी के बरामदे में बिल्ली ने बच्चे दे रखे थे। और मेरा पुराना जूता, जो एक दफ़ा मैंने चलती गाड़ी में से बाहर फेंक दिया था और फिर उसके सूखे चमड़े पर, जिसमें कीड़ा भी लगा हुआ था, आख़िरी नज़र डालने के लिए बेताब होकर खिड़की में से झाँकने लगा था। और जंगली कबूतर, जो हमारे घर में रहा करते थे, और वह बूढ़ा कंगाल आदमी, जिसको मैंने अपनी पुरानी ऊनी जुराबें दे दी थीं, और जब वह शुक्रिए के अल्फ़ाज़ बड़बड़ा रहा था, तो राल

बहकर उसकी दाढ़ी पर अटक गई थी और धूप में चमकने लगी थी। और रास्ते के किनारे उगा हुआ वह इकलौता फूल, जिसके पास से गुज़र जाने के बाद मैं दूर से वापस लौटा था, जिसे हाथ लगाते ही सारी पत्तियाँ ख़ामोशी से झड़ गई थीं। ये और कितनी ही ऐसी बातें। दुनिया में इतनी हसीन जगहें हैं। दार्जिलिंग में मैंने वह मंज़र देखा था, जब टाइगर हिल पर से सूरज निकलता है..."

"अरे हाँ। इतना बड़ा तवे का तवा...मैंने देखा है," अज़रा ने कहा, "तुमने भी देखा है ?"

"नारंजी रंग का, कभी ज़र्द रंग का, कभी सुर्ख़ रंग का चमचमाता हुआ इतना बड़ा, ऐसी शान, ऐसे वक़ार के साथ कि इनसान के दिल में उमंग पैदा होती है और कोई हसरत बाक़ी नहीं रहती।" वह रुका, "और फिर मैदाने-जंग की वह रात थी, वह परिस्तान की रात अभी तक मेरी आँखों के सामने है, जब मुसलसल बर्फ़बारी के बाद चाँद निकल आया था, और हम ख़न्दक़ों में बैठे थे। बर्फ़ तमाम रात तिरपालों पर गिरती रही थी, जो हमने अपने बचाव के लिए ख़न्दक़ों पर फैला रखी थीं और थोड़ी-थोड़ी देर के बाद कोई एक उठकर बाहर देखता और दूसरे उससे पूछते, "बर्फ़बारी रुक गई ?" और वह मायूसी से सिर हिलाता हुआ आग के क़रीब आकर बैठ जाता, जो हमने अकड़कर मर जाने के डर से जला रखी थी, यहाँ तक कि सब एक-एक करके सो गए, पर मैं तिरपाल उठाकर ख़न्दक़ की दीवार के साथ खड़ा रहा। बर्फ़ नन्हे-नन्हे फोहों में गिर रही थी और बादलों में छुपे हुए चाँद का मद्धिम उजाला और सन्नाटा रात में फैला हुआ था और बर्फ़ ने दुश्मन इनसानों के उस समन्दर को ढँक दिया कि अचानक चाँद निकल आया। बर्फ़बारी थम गई। दुश्मन के मोर्चों में कोई गिटार बजाने लगा और मैंने देखा कि रात इस क़दर सफ़ेद, इस क़दर हसीन थी। दाएँ बाज़ू का सारा जंगल बर्फ़ से ढँका हुआ था और ऊँची-नीची ज़मीन पर और दूर-दूर पहाड़ियों पर चारों तरफ़ बर्फ़ थी और वह इस क़दर पुर-अमन और आसमानी रात थी कि जंग का शुब्हा तक न गुज़रता था। साज़ की आवाज़ सुनकर मुझे ख़याल आया कि वहाँ पर भी एक शख़्स जाग रहा है और मेरी तरह बचपन की बातें, अपना घर और अपना गाँव याद कर रहा है और मुझसे बदगुमान और छिपा हुआ होने के बावजूद उस वक़्त जंग का ख़याल उसके ज़ेहन से निकल गया है। यह इस क़दर सिहर-आलूद[1] मंज़र था कि ज़माना-ए-हाल[2] का हिस्सा होने के बजाय भूली-बिसरी बात मालूम होती थी। मेरे दिल पर वह रात नक़्श होकर रह गई और हालाँकि उस वक़्त गन्दा और थका-माँदा और मुसीबत का मारा था और मेरे बालों में कीड़े थे और हालाँकि थोड़ी ही देर बाद मैं सारी दुनिया से बदगुमान हो गया था, लेकिन उस समय मैं मासूम था और हैरत से चारों तरफ़ देख रहा था। सन्नाटे में साज़ के एक ही तार के मुसलसल बजने की आवाज़ आ रही थी, जैसे वह बार-बार अपने बचपन को याद कर रहा है और गाँव की बर्फ़ को याद कर रहा है !" उसने खींचकर अज़रा को अपने साथ लगा लिया, "और एक वह नज़्ज़ारा था, जो मैंने ख़्वाब में देखा था कि चचा रेत पर खड़े हैं। अपना पसन्दीदा सफ़ेद लिबास पहने हुए हैं। मौसम इस क़दर साफ़ और शानदार है। आसमान का रंग गहरा नीला है। पानी के परिन्दों के झुंड के झुंड हैं। चचा के बर्फ़ की तरह सफ़ेद बाल हवा में उड़ रहे हैं और वहाँ पर मेरे इन्तिज़ार में खड़े हुए वह इतने गम्भीर, इतने ख़ूबसूरत नज़र आ रहे हैं। यह मेरी ज़िन्दगी का सबसे ख़ूबसूरत मंज़र है, और...और दुनिया में क्या कुछ नहीं है। बहार का मौसम है, और पतझड़ की सिह-पहरें हैं और शहद की मक्खियों के छत्ते हैं और मेरा घर है, जहाँ मेरी माँ सारी दुनिया में सिर्फ़ मेरा इन्तिज़ार करती है, और तुम हो, तुम्हारी आवाज़ है, जो तुम्हारी ग़ैर-मौजूदगी में मेरे कानों में महफ़ूज़ रही है। तुम्हारी आवाज़ का यह जादू, जो ज़िन्दगी और ज़िन्दगी की सारी तूफ़ाँ-ख़ेज़ियों का एहसास पैदा करता है।" क़रीब आओ अज़रा। मेरे साथ लगकर मेरी बातें सुनो। "मेरे दोस्त हैं, तुम्हें पता है, उनमें से कई हैं, जो झूठ

1. सम्मोहक, 2. वर्तमान।

बोलते हैं और बड़ हाँकते हैं और जब मैं बड़े ध्यान से उनकी बातें सुन रहा होता हूँ, तो सारा वक़्त मुझे पता होता है कि वह बड़ हाँक रहे हैं...और दूसरे हैं, जो शराबी हैं और अपने बीवी-बच्चों की परवाह नहीं करते। और दूसरे हैं, जो इससे भी बुरे हैं। अगर कोई दुनिया का अख़्लाक़ी जायज़ा[1] लेने निकले, तो उनकी बुराइयों की फ़ेहरिस्त[2] बना डाले, लेकिन उन्होंने मेरे साथ हमदर्दी की है और मुझे प्यारे हैं। दुनिया के सारे अच्छे लोग तो हमारे दोस्त नहीं हो सकते ना।''

अज़रा, जो उसके साथ लगी ध्यान से सुनती रही थी, सिर उठाकर बोली, ''एक बात बताऊँ, नईम। जब मैं दिल्ली में थी, तो सोचती थी, कि यहाँ कैसे आऊँगी ? वह सब कुछ, जो गुज़रा, ऐसा ख़ौफ़नाक था, यहाँ तक कि आज सुबह मैं यहाँ पहुँची, जब भी, बल्कि अंगूर की बेल के नीचे खड़ी जब मैं तुम्हारे पाँव देख रही थी, उस वक़्त भी मेरी समझ में कुछ न आ रहा था, पर अब...मैं यहाँ बैठी हूँ, तो महसूस करती हूँ कि यह तो कुछ भी नहीं। वह बच्चों की-सी ज़िद और ख़ौफ़, जिसने इतना अरसा हमें रोके रखा, कुछ भी न था। यह ऐसी मामूली, आसान, और क़ुदरती बात थी, यह सारी बात...यहाँ आना...''

''अज़रा, हम कुछ भी नहीं...हम बहुत छोटे-छोटे और मामूली लोग हैं। क़ुदरत के हाथों में हमारी ज़िन्दगियाँ बेबस और कमज़ोर हैं। सिर्फ़ हमारी मशक़्क़त इन्हें मज़बूत बनाती है, और हमारी क़ुव्वते-बरदाश्त[3] इन्हें मज़बूत बनाती है और हमारी दोस्ती इन्हें मज़बूत बनाती है, और मुहब्बत...इसके बग़ैर हम कमज़ोर और नादार हैं...'' उसकी आवाज़ भर्रा गई।

''तुमने बहुत सोचना शुरू कर दिया है।'' अज़रा ने उसके माथे पर हाथ फेरते हुए कहा।

पतझड़ की ठंडी रात आहिस्ता-आहिस्ता बढ़ रही थी और नईम की माँ की नींद ग़ायब हो चुकी थी। वह बार-बार आँगन पार करके दरवाज़े तक जाती। दर्ज़ों में से झाँककर देखती और इत्मीनान से सिर हिलाती हुई वापस आ जाती, यहाँ तक कि उसका बेटा और बहू उसी तरह बातें करते-करते सो गए। वह देर तक जागती रही।

कुछ रोज़ के बाद अज़रा उसे दिल्ली ले आई और रौशन महल में उसका बाक़ायदा इलाज होने लगा।

अज़रा ने ठीक कहा था। नईम ने वाक़ई सोचना शुरू कर दिया था, हालाँकि उसमें उसकी शऊरी कोशिश का दख़ल कम ही था। यह ज़्यादातर उसकी बीमारी और तबई हरकत[4] के रुक जाने का क़ुदरती नतीजा था। उसने कभी इतनी बे-अमल[5] ज़िन्दगी न गुज़ारी थी, जेल के तवील सालों में भी नहीं। जिस्मानी माज़ूरी[6] और दिल की हमदर्दी की वजह से उसके पास ज़िन्दगी का एक राज़ी-ब-रज़ा[7] नज़रीया[8] था। उसने कभी सोचने की ज़रूरत ही महसूस न की थी। ज़िन्दगी में वाक़िआत इतनी तेज़ी से और इस क़दर बेइख़्तियारी तौर पर रुनुमा हुए थे और उन्होंने उसे आगे-आगे चलाया था कि नज़रीया क़ायम करने की उसको मुहलत ही न मिली थी। लाशऊरी तौर पर उसने ज़िन्दगी के ख़ारिजी असरात[9] को, इत्तिफ़ाक़ात[10] और हादसात को क़ुदरत की बरतर ताक़तें मानकर अपने आपको उनके हवाले कर दिया था। ज़ेहनी बेचारगी[11] के इस आलम को उसने महसूस ही न किया था। उसने तो ज़ेहन के बाहर रहकर उम्र गुज़ारी और दुनिया देखी थी और यह अमल उसे ख़ासा दिलचस्प और आसान लग रहा था। सोच से वह हमेशा घबराता रहा था। वह उस ज़िन्दगी का, जिसके आगे-आगे वह भागा जा रहा था, हालाँकि यह माद्दी[12] बल्कि जिबिल्ली[13] ज़िन्दगी, जो वह गुज़ार रहा था, उसे कुछ रास न आई थी। इसने उसे अज़ीम जिस्मानी और दिली रोग दिए थे, और शदीद हमदर्दी ने उसे खोखला कर दिया था, लेकिन इतनी सितमगीरी[14] के बाद नामालूम[15]

1. नैतिक निरीक्षण, 2. सूची, 3. सहनशक्ति, 4. स्वाभाविक, 5. निष्क्रिय, 6. शारीरिक असमर्थता, 7. किसी की भी मर्ज़ी पर राज़ी, 8. दृष्टिकोण, 9. बाहरी प्रभावों, 10. संयोग का बहुवचन, 11. मानसिक दीनता, 12. भौतिक, 13. प्राकृतिक, 14. अत्याचार, 15. अज्ञात।

का ख़ौफ़ इन्तिहा को पहुँच चुका था, और वह किसी भी सूरत कोई नया रास्ता तलाश करने की हिम्मत अपने में न पाता था। चन्द एक बार वाक़िआत की ज़द में आकर जो वह सोचने पर मजबूर हुआ था, तो उसने एक अजीब-सी ज़ेहनी कोफ़्त महसूस की थी, जिसने उसके लाशुऊर[1] में सोच का और तब्दीली का ख़ौफ़ बिठा दिया था। एक मेहनती जिस्म के सहारे, अपनी लाइल्मी[2] में वह यही समझे किया कि यह ज़िन्दगी जो वह बसर कर रहा था, असल आरामदेह और पुर-सुकून ज़िन्दगी थी और यह कि कभी-कभार आफ़तें तो आया ही करती हैं, और असल आफ़त वह है, जो ज़ेहन और रूह पर आती है और जिससे दिल का सुकून ग़ायब हो जाता है और डर के मारे आदमी नींद में उठ बैठता है।

लेकिन जिस तरह चलते हुए इंजन के अचानक रोक दिए जाने पर ज़्यादा भाप को निकालने के लिए ''सेफ़्टी वाल्व'' खुल जाता है, उसी तरह चारपाई के साथ लग जाने से उसके ज़ेहन की खिड़की, जो नामालूम पर खुलती थी, खुल गई। पहले वह खिड़की के अँधेरे में देखने से हिचकिचाया, फिर जब कोई चारा न मिला, तो सटपटाकर आँखें मिलाईं, जैसे एक बच्चे को लाकर अँधेरे में छोड़ दिया जाए, तो आँखें बन्द करके रोने लगता है, फिर आहिस्ता-आहिस्ता चुप हो जाता है और हिचकिचाता हुआ आँखें खोलता है, बन्द कर लेता है; खोलता है, बन्द कर लेता है। आख़िर जब अँधेरे में देखने के क़ाबिल हो जाता है तो मिट्टी में हाथ मारकर खेलने लगता है। फिर जब उसको अपनी मौजूदगी का यक़ीन हो जाता है, तो उठ खड़ा होता है और दोस्ती के अन्दाज़ में हाथ बढ़ाकर चलने लगता है। इसी तरह सोचने के अमल ने नईम के ज़ेहन पर काम किया था। जब उसने पहली बार यक़ीन के साथ उसके अन्दर झाँका, तो यह देखकर उसे तअज्जुब हुआ कि उसका ज़ेहन कुँआरी ज़मीन की तरह था। उन ग़ैर-आबाद जज़ीरों की तरह था, जहाँ सिर्फ़ अपने आप उगनेवाले फूल और पौदे उगते हैं। उन अजनबी समन्दरों की तरह था, जिनमें कभी जहाज़रानी न की गई थी। जब वह पूरे यक़ीन के साथ सोचने लगा, तो ज़ेहनी कोफ़्त के साथ-साथ उसे इत्मीनान भी नसीब हुआ। अँधेरे में जगह-जगह रौशनियाँ फूटने लगीं। उस उजाले में उसने बहुत-सी छोटी-छोटी ख़ुश करनेवाली बातें देखीं। उसकी हालत बिल्ली के उस नौ-मौलूद[3] बच्चे की तरह थी, जो कई रोज़ तक आहिस्ता-आहिस्ता बढ़ते हुए उजाले को जज़्ब करता रहता है, और जब उसकी आँखें खुलती हैं, तो बहुत ख़ुश होता है।

इसके बावजूद चन्द हठीली शक्लें थीं, जो उस खिड़की के अँधेरे-उजाले में दूर-दूर बिखरी हुई थीं। कभी-कभी वह ख़ौफ़नाक हद तक क़रीब आ जातीं। एक वह ढलकी हुई मूँछोंवाला गन्दा, सुता हुआ मुर्दा चेहरा था, जिस पर मद्धिम चाँदनी फैली हुई थी। एक वह बूढ़े बैल की तरह झूलकर चलता हुआ साया था, जो अँधेरे क़ब्रिस्तान में उसके साथ-साथ चल रहा था, जबकि ख़ूबानी की सफ़ेद कलियाँ उनके सिरों पर गिर रही थीं, और उसे अजीब-सा एहसास हुआ था कि वह मरे हुए आदमी के साथ चल रहा है। एक उस ग़ैर-मुल्की[4] का चेहरा था, जिसकी सादा, बे-फ़न आँखें थीं, जो एक छोटे-से जर्मन गाँव में लकड़ी का काम करता था और जिसने अपनी मासूमियत में उस पर दोस्ती का एहसाने-अज़ीम[5] किया था और उसे एहसास हुआ था कि अगर वह अजनबी सब कुछ जानता होता, तो भी यही करता कि आख़िर इससे क्या फ़र्क़ पड़ता है...और एक अज़रा थी, जिसके लिए मुहब्बत का जज़्बा क़रीब-क़रीब नापैद[6] था, लेकिन जिसने उसे एहसासे-शिकस्त[7] बख़्शा था। यह अज़रा का नया रूप था।

---

1. अवचेतन, 2. अज्ञानता, 3. नवजात, 4. विदेशी, 5. महान उपकार, 6. लुप्त, दुर्लभ, 7. पराजय भावना।

34

अपनी हफ़्तावार सरसरी जाँच के बाद डॉक्टर अंसारी ने हस्बे-मामूल ''स्टेथिस्कोप'' बैग में रखा और शीशे के जग में से पानी उँडेलने लगे। दो घूँट पानी पीने के बाद पिछले हफ़्ते की डॉक्टरी रिपोर्ट देने के बजाय वह गिलास को हाथ में फिराते रहे। फिर गहरी नज़रों से नईम को देखकर बोले, ''तुम्हें मज़हब पर यक़ीन है ?''

नईम के चेहरे का रंग हलका-सा बदल गया। वह उदासी से हँसा, ''यह आपने क्यों पूछा ?''

गिलास को हाथ में फिराते हुए वह पलंग की पट्टी पर बैठ गए और बोले, ''मज़हब आज भी हमारी मदद कर सकता है। साइंस की हैरतअंगेज़ तरक़्क़ी के इस दौर में भी मज़हब सबसे बड़ी ताक़त है। एक डॉक्टर की ज़बान से यह सुनकर तुम्हें तअज्जुब होगा, लेकिन यह हक़ीक़त है कि रूहानी तमानीयत[1] 'ब्लडप्रेशर' को नॉर्मल पर लाने में मददगार साबित हो सकती है।''

नईम दोबारा बेचैनी से हँसा।

''बीमारी एक नागहानी आफ़त[2] है। यह कभी मंसूबा बनाकर नहीं आती और न किसी मंसूबाबन्दी के साथ इसका मुक़ाबला ही किया जा सकता है। इसका मुक़ाबला करना हमारे प्रोग्राम में शामिल नहीं होता, जैसे एकाएकी यह आती है, उसी तरह एकाएकी अपनी क़ुव्वते-मुदाफ़अत[3] को काम में लाना पड़ता है। यह क़ुव्वत किसी बैरूनी इदारे[4] या डॉक्टर या अस्पताल से नहीं आती, हमारे और आपके अन्दर मौजूद होती है। हममें से कुछ इसके बारे में जानते हैं और कुछ अनजान होते हैं। आज तक कोई आला-ए-जराही[5] या कोई दवा ऐसी ईजाद नहीं की गई, जिसमें इबादत[6] से बढ़कर 'हीलिंग-पॉवर' हो। मज़हब...''

''आपकी मुराद कौन-से मज़हब से है ?'' नईम ने बात काटकर पूछा।

''इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता,'' डॉक्टर अंसारी हाथ हिलाकर बोले, ''हालाँकि हमारे माँ-बाप का मज़हब हमें अज़ीज़ होता है, और हममें से अक्सर तनदिही[7] से उसके साथ चिमटे रहते हैं और दूसरे के मुतअल्लिक़ सोचने की कभी ज़रूरत महसूस नहीं करते, लेकिन मज़हब किसी के लिए बुराई की वजह नहीं बनता। मज़हब एक भी और दूसरा भी और तीसरा भी, सब हमारी रहनुमाई करते हैं। एक के माँ-बाप का मज़हब और दूसरे के माँ-बाप का मज़हब दोनों उनकी भलाई के लिए बनाए गए हैं और उनके बच्चों की भलाई के लिए, और यही क़द्रे-मुश्तरक[8] सारे मज़हबों में मौजूद है। बेहतरी की तरफ़ जाने का एक ही रास्ता है, जो सारे मज़हबों में मौजूद है। इबादत, जो रूह की रहनुमाई करती है, जो इनसान की सबसे बड़ी ईजाद[9], सबसे बड़ी क़ुव्वत है। मैं क्या मसीहाई कर सकता हूँ...मेरी क़लई उस वक़्त खुलती है, जब मैं बीमार पड़ता हूँ। उस वक़्त अगर तुम मुझे देख लो, तो मुझ पर लानत भेजो...''

नईम लेटा-लेटा कसमसाया, ''मज़हब पर ईमान[10] लाने के लिए, डॉक्टर साहब, मैं ज़रा बूढ़ा नहीं हो चुका हूँ ?'' उसने अपने मुख़ातब[11] को, जो बीच में बोलना चाहता था, हाथ से चुप रहने का इशारा किया, ''जो कुछ मैंने खोया है, उसे हासिल कर सकता हूँ ?''

''तुम इस तौर पर नहीं सोच सकते। तुमने क्या खोया ? इस बीमारी पर तुम यक़ीनन क़ाबू पा सकते हो।'' डॉक्टर ने कहा। नईम ने एक फिसलती हुई निगाह अपने बाज़ू पर डाली। डॉक्टर उसके सवाल की नौईयत[12] को महसूस करके एक पल को दिल में काँप गया, लेकिन नईम ने गहरा साँस छोड़कर सिर हिलाया, ''सारी उम्र ! ज़िन्दगी में मैंने क्या पाया है ? सारी उम्र...मैं नए सिरे से ज़िन्दगी बसर कर सकता हूँ ?''

---

1. आत्मिक सन्तोष, 2. आकस्मिक संकट, 3. प्रतिरोध शक्ति, 4. बाहरी संस्था, 5. शल्य यन्त्र, 6. उपासना, 7. तन्मयता, 8. साझा मूल्य, 9. आविष्कार, 10. धर्म पर दृढ़ विश्वास, 11. सम्बोधित, 12. विशेषता, प्रकार।

"यक़ीनन...सिर्फ़ तुम यह नहीं कर सकते कि 1910 में वापस चले जाओ या दुनिया में जो वाक़िआत पेश आए, उनको बदल दो। लेकिन तुम इस साल, बल्कि इस दिन और इस पल को नया पल बना सकते हो–एक नए इनसान..."

"दुनिया के वाक़िआत ? हुँह...मैं अपनी ज़िन्दगी के वाक़िआत की बात करता हूँ।"

डॉक्टर अंसारी ने बेचैनी से पहलू बदला और हाथ की हलकी-सी जुम्बिश दी, "तुम वक़्त को बहरतौर तस्ख़ीर[1] नहीं कर सकते। यह एक माबादुत्तबीआती[2] अमल है। मज़हब जादू या ऐसी कोई चीज़ नहीं, यह तो एक सीधी, साफ़ और मुस्बत क़ुव्वत[3] है, जो हमेशा आगे की तरफ़ बढ़ाती है, बनाती और सँवारती है। बिगाड़ने या नफ़ी[4] करने की इसमें सलाहीयत[5] नहीं। तुम अपनी ज़िन्दगी को आज ही से एक नए ढब से शुरू कर सकते हो, अगर तुम माज़ी[6] को भुला देने पर अपने आपको आमादा कर सको, तो यह ऐसा ही होगा, जैसे तुम अभी पैदा हुए हो। तुम्हारा दिल, दिमाग़ और तख़य्युल[7] जवान हो सकते हैं और ज़िन्दगी..."

"तो फिर मज़हब की क्या ज़रूरत है ?" नईम ने चिढ़कर पूछा।

"मज़हब ? उफ़्फ़ोह...नया इनसान बनने के लिए एक नज़रिए की ज़रूरत होती है, मज़हब हमें वह नज़रिया मुहैया करता है। ठहरो, मुझे बताओ, अब तुम्हारे पास क्या है ?" वह रुके, "तास्सुफ़[8] और एहसासे-जुर्म[9] और पशेमानी[10] ? असासे[11] के बल पर तुम क्या कर सकते हो ? कहाँ तक जा सकते हो ? इस बीमारी ही का मुक़ाबला कर सकते हो ? तुम अपनी पिछली ज़िन्दगी के मुतअल्लिक़ सोचते हो और इसे बर्बाद करने की फ़िक्र में हो, हालाँकि यह तुम्हारे बस से बाहर है। यह तभी मुमकिन है, जब तुम अपना ज़ेहन खो दो। तुम यह सब जानते हो और माफ़ौक़लफ़ितरत[12] बातें सोचते हो, और ख़तरनाक हद तक तख़य्युलपरस्त[13] होते जा रहे हो। तुम क़तई लाहासिल[14] तौर पर, आहिस्ता-आहिस्ता अपने आपको ख़त्म कर रहे हो। अपने वुजूद को बे-मसरफ़ बना रहे हो, अपने लिए और दूसरों के लिए। इस वक़्त तुम्हें एक मुस्बत नज़रिए की ज़रूरत है। ऐसी क़ुव्वत, जो तुम्हें इतनी तेज़ी से आगे की तरफ़ चलाए कि तमाम पशेमानी और एहसासे-ज़ियाँ[15] और सारे ग़ैर-ज़रूरी जज़्बात पीछे रह जाएँ, जो तुम्हें गुज़रे हुए वक़्त से आज़ाद कर दे, जो तुम्हारे मुसीबतज़दा ज़ेहन को झटक दे। मैं जानता हूँ, तुम्हारे दिमाग़ पर तुम्हारी सोच का बोझ है, जो तुम्हें ख़त्म कर रहा है और तुम्हारे दिल में कसक है, जो नुक़साने-अज़ीम के एहसास से पैदा होती है। इस तरह तुम ज़्यादा दूर तक नहीं जा सकते।"

"अपने आपको धोखा ही देना है, डॉक्टर," नईम ने बेहद उकताकर कहा, "तो मज़हब को बीच में क्यों लाते हैं ? अगर अपने आपको यही कुछ बतलाना है कि 'देखो, भाई। अब तक जो कुछ हुआ, उसे तो भूल जाओ, और नए सिरे से प्रोग्राम शुरू करो। ज़िन्दगी सेहतमन्द नज़रिए की मदद से ही ख़ुशगवार बन सकती है। चुनाँचे सबसे पहले तो नज़रिया हासिल करने की कोशिश करो।' तो जनाब, इसमें मज़हब कहाँ से आ गया ? यह तो हम महज़ तख़य्युल के बल पर या थोड़े से फ़लसफ़े की मदद से भी कर सकते हो। मेरा मतलब है कि...चन्द माद्दी फ़वाइद[16] के लिए मज़हब को इस्तेमाल करना तो मेरे ख़याल में..."

डॉक्टर अंसारी ख़ामोश बैठे सुर्ख़ होते रहे, मगर बोलने से पहले उन्होंने अपने आप पर क़ाबू पा लिया, "मैं मज़हब की उस ज़ाविए से तशरीह[17] कर रहा था, जिस ज़ाविए से तुमने उसे देखा। यह मज़हब की हमागीरी[18] है कि हम इससे माद्दी फ़वाइद भी हासिल कर सकते हैं, वरना मज़हब तो हमें उस दुनिया में ले जाता है, जहाँ उसका तसव्वुर[19] भी मुहाल[20] है। यूँ माद्दी फ़वाइद से कोई

---

1. वशीभूत, 2. अतिभौतिक क्रिया, 3. सकारात्मक शक्ति, 4. नकारना, 5. योग्यता, 6. अतीत, 7. कल्पना, 8. खेद, 9. अपराध-भावना, 10. पश्चाताप, 11. सामान, 12. अलौकिक, अप्राकृतिक, 13. कल्पनावादी, 14. व्यर्थ रूप, 15. अनिष्ट भावना, 16. भौतिक लाभ, 17. व्याख्या, 18. सर्वव्यापित, 19. कल्पना, 20. असम्भव।

मज़हब किसी को मना नहीं करता, लेकिन अगर आप उसे महज़ रूहानी रहनुमाई की ख़ातिर इस्तेमाल करना चाहें, तो आपकी ख़ुशनसीबी है। मज़हब का सबसे बड़ा आला इबादत है। इबादत, जो इनसान की शख़्सियत के साथ मिलकर एक जज़्बा बन जाती है, जो इनसान को अपने अन्दर झाँकने की ताक़त देती है। आज तक जिस किसी ने अपने आपको जाना और पहचाना है, उसकी बिसात इबादत ने उसमें पैदा की है। यह वह रास्ता है, जिस पर चलता हुआ आदमी सारी दुनिया में घूम-घूमकर फिर अपने आप तक आ पहुँचता है। यह ख़ुफ़िया और तंग रास्ता जो इनसान की अपनी ज़ात पर आकर ख़त्म होता है, और फिर अन्दर उतर जाता है और जब आदमी डरता हुआ, झिझकता हुआ अपनी ज़ात में दाख़िल होता है, तो रास्ता रौशन और कुशादा होता जाता है और उस मुक़द्दस रौशनी तक पहुँचने का जज़्बा, जो रास्ते के इख़्तिताम[1] पर नज़र आती है, उसे पा लेने की दीवानी ख़्वाहिश इनसान को आगे चलाती जाती है और उसे एक मक़सद अता करती है, और जब वह मक़सद शख़्सियत के साथ मिल जाता है, तो इनसान अपनी ज़ात में गुम हो जाता है। पहले शुऊर के परदे उठते हैं, फिर आहिस्ता-आहिस्ता लाशुऊर के दरवाज़े खुलते हैं और जब वह आफ़ाक़ी[2] सतह पर पहुँच जाता है, तो मावरा[3] में देखने और उसे जानने लगता है। फिर वह सुलेमानी टोपी पहनकर बाज़ारों में फिरता है। दुनिया के हंगामों में मंज़िल-मंज़िल घूमता है और लोग सिर्फ़ एक गुमनाम और क़नाअतपसन्द[4] आदमी को जानते हैं, क्योंकि जो कुछ वह देखता है, और कोई नहीं देखता और जो कुछ वह जानता है, और कोई नहीं जानता। इस तरह चुपके-चुपके वह ज़िन्दगी की बुनियादी सच्चाई और अस्लीयत की खोज में लगा रहता है और इसी खोज में उसे सुकून मिल जाता है। सुकून, जो दुनिया की तमाम आफ़तों के मुक़ाबले में ढाल है।''

''तख़य्युल और फ़लसफ़ा के मुतअल्लिक़ तुम क्या कह रहे थे ? तुम तख़य्युल की बुनियाद किस पर रखते हो ? तख़य्युल को तुम बग़ैर किसी वजह के अमल में नहीं ला सकते। ज़ेहन को और ख़यालात को मरने से बचाने के लिए तुम्हारे पास कोई वजह, कोई दलील होनी चाहिए और तभी उसके जवाज़[5] के तौर पर तुम सोच सकते हो और अपने दिमाग़ को तबाही से बचा सकते हो। ख़यालात की बुनियाद तुम ''नथिंगनेस'' (Nothingness) पर नहीं रख सकते। ऐसा अगर कभी करोगे, तो किसी ख़ास सम्त[6] में बढ़ने के बजाय तुम्हारे ख़यालात तेज़ी से इधर-उधर बिखर जाएँगे और दिमाग़ के टुकड़े-टुकड़े कर देंगे। सम्त जो ख़यालात को मिलती है, इसी तलाश से आती है। जो आदमी अपने वुजूद को अस्लीयत मालूम करने के लिए जारी करता है, इसके बग़ैर तख़य्युल बेकार है। यही हाल फ़लसफ़े का है। फ़लसफ़ियों को आज तक मालूम नहीं हो सका कि माद्दे[7] की असल माहीयत[8] क्या है ? और उसका कोई अपना, अलग वजूद भी है या महज़ हमारे दिमाग़ की इख़तिराअ[9] है। दुनिया के तमाम फ़लसफ़ियों में से अगर ख़ुदा के तसव्वुर को निकाल लिया जाए, या उस क़ुव्वत को, जो कि काइनात[10] और इनसानी ज़िन्दगी में हम-आहंगी[11] पैदा करती है, तो यह सब के सब एक दूसरे को काटते हुए मालूम होते हैं और सोचनेवाले को पागल कर देते हैं।''

आवाज़ को क़ाबू में रखने की कोशिश में उनका चेहरा सुर्ख़ हो रहा था, और पेशानी पर पसीने के क़तरे उभर आए थे। थोड़ी देर के बाद उन्होंने बोलना चाहा, जैसे अपनी बात को जारी रखना चाहते हों। फिर इस इरादे को मुल्तवी कर दिया और गिलास में बचे हुए पानी को गले में उँडेलकर कुर्सी की पुश्त से टेक लगा ली और खिड़की से बाहर देखने लगे। नईम आराम से लेटा डॉक्टर को देखे जा रहा था कि वह अन्दर से हिल चुका था। अज़रा ने बेध्यानी से सब कुछ सुना था, लेकिन अब जो भारी पुर-असरार फ़िज़ा कमरे में छा गई थी, उसके बिखर जाने के ख़दशे से हिलते

1. अन्त, 2. सांसारिक, 3. परे, अतिरिक्त, 4. भाग्यतुष्ट, 5. औचित्य, 6. दिशा, 7. मूल तत्त्व, 8. वास्तविकता, 9. आविष्कार, 10. सृष्टि, 11. समानता, समन्वय।

हुए डर रही थी। वह बेचैनी से आँखें इधर-उधर घुमाती हुई दोनों मर्दों को देख रही थी और उनके जज़्बात की हलचल से डरी हुई थी।

डॉक्टर अंसारी उठकर खिड़की में जा खड़े हुए और हाथ बढ़ाकर यूकिलिप्टस के पत्तों को आहिस्ता से छुआ, "यह सुबह देख रहे हो ?" वह बाहर देखते हुए ख़ुशी से बोले, "अल्लाह तआला की दुनिया पर हर एक सुबह बेहद दिलकशी और अनोखेपन के साथ तुलूअ[1] होती है।"

उन्होंने मुस्कराकर नईम को देखा। फिर क़रीब आकर आहिस्ता से उसका कन्धा थपथपाया और बैग उठाकर बाहर निकल गए। बरामदे में वह प्यार से अज़रा के, जो उनके पीछे-पीछे निकल आई थी, कन्धे पर झुककर बोले, "इसे अकेला छोड़ दो !"

अन्दर वह एक बेजान, साबिर[2] बच्चे की तरह बज़ाहिर सुकून से लेटा था। उसके होंठों पर अभी तक वह उदास, अलविदाई मुस्कराहट थी, जो डॉक्टर को जाते हुए देखकर पैदा हुई थी, लेकिन उसकी बड़ी-बड़ी, काहिली से हरकत करती हुई मुतलाशी आँखों में से धीमा, सुलगता हुआ, मुस्तक़िल कर्ब[3] ज़ाहिर था। धूप हर रोज़ की तरह उसके बिस्तर को छूने के बाद अब वापस जा रही थी। कभी-कभी हवा का झोंका आता, तो यूकिलिप्टस की बू उसकी नाक में दाख़िल होती, जिससे वह तंग आ चुका था। शाख़ पर एक नन्ही-सी बेआवाज़ चिड़िया आकर बैठ गई। आख़िरकार यह ख़ुदा की एक ख़ूबसूरत और अनोखी सुबह थी, जो हर रोज़ की तरह दुनिया पर तुलूअ हुई थी। उस सुबह की तलाश में हम कहीं नहीं जा सकते ? क्या हम यहीं अपने छोटे-छोटे घरों में बैठकर बाहर तुलूअ होते हुए दिन को देखते रहेंगे ? क्या हम इसे कभी नहीं छू सकते ? क्यों ? क्यों ?

रहबरी[4] के लिए यह बेनज़ीर[5] शै है या जैसे एक अक़्लमन्द दोस्त मुफ़ीद मशविरा देता है, या क्या उसकी जगह इससे भी अहम है ? अच्छा रुको। पहले यह बताओ कि मज़हब के बग़ैर हम क्या नहीं कर सकते ? खाना खा सकते हैं ? सो सकते हैं ? हल चला सकते हैं ? फूल उगा सकते हैं ? सफ़र कर सकते हैं...अररर...यह तो बकवास है। अच्छा तो लो। मज़हब के बग़ैर बारिश भी होती है। सैलाब भी आते हैं। वबा भी फैलती है। यह भी फ़ुज़ूल है, अलबत्ता शादी नहीं कर सकते। मुर्दे को नहीं दफ़ना सकते और...कुछ भी हो, भाई, कुछ भी हो...दो बातें तो नहीं हो सकतीं। एक साथ तो बहरहाल नहीं हो सकतीं। यानी एक बात सच भी है और झूठ भी, यह तो क़तई नामुमकिन है। या आप ख़ुदापरस्त[6] हो सकते हैं या दहरिए[7] हो सकते हैं या गँवार हो सकते हैं, पर सब एक साथ तो नहीं हो सकते। एक बात सच है और दूसरी बात झूठ। सफ़ा झूठ ! लेकिन सच...सच क्या है ? कुछ तो है, जिसका पता नहीं चलता। कुछ...कुछ न कुछ ! लानत है। क्यों मैंने इतनी देर तलक अहमक़ों की तरह कुछ सोचा ही नहीं ? कभी सोच ही नहीं आई ! हद है, भई ! कैसे-कैसे नालायक़ लोग भरे पड़े हैं दुनिया में, यानी सच को जानने के लिए लोगों ने उमरें गँवा दीं और मैं क्या कुछ देर के लिए इत्मीनान से लेटकर सोच भी नहीं सकता था ? सख़्त अफ़सोस की बात है। अब मुझे और डॉक्टर को ही ले लीजिए। मुझे रूहानियत की कोई सूझ-बूझ ही नहीं और वह हुआ कट्टर मज़हबी आदमी। हम दोनों का उसलूबे-ख़याल[8], नुक़्ता-ए-नज़र[9] और ज़िन्दगी बसर करने के तरीक़े एक दूसरे से बिलकुल मुख़्तलिफ़ हैं और हम कैसी ख़ूबसूरती और इत्मीनान से एक दूसरे से तअल्लुक़ात क़ायम किए हुए हैं। बज़ाहिर एक ही सम्त में बढ़ते रहे, सेहत और कामयाबी की तरफ़, सिवाय आज के...तो...वह क्या है, जो इस मुख़ालिफ़ाना[10] रवैए के बावजूद महज़ दो इनसानों की हैसियत में हमें एक दूसरे का एतिमाद[11] हासिल करने की तौफ़ीक़[12] देता है, जो हमें महज़ सूझ-बूझ की बिना पर यह समझने की ताक़त देता है कि यह दूसरा शख़्स भी उतना ही सादा-दिल और मुहब्बत और दोस्ती के क़ाबिल है, जितने कि हम हैं ? क्या यह ख़ुदा है ?

1. उदय, 2. सहनशील, 3. स्थायी दुख, 4. मार्गदर्शन, 5. अनुपम वस्तु, 6. आस्तिक, 7. नास्तिक, 8. विचार-पद्धति, 9. दृष्टिकोण, 10. विरोधी, 11. विश्वास, 12. सामर्थ्य।

मगर सवाल यह है भाई कि फ़ायदा क्या हुआ ? जब तक हमें इसका पता न था, क्या हो गया था ? डॉक्टर और मरीज़ या मियाँ और बीवी से तअल्लुक़ात में ख़ुदा कहाँ आता है ? इस सुहानी सुबह के हुस्न को महसूस करने और इसकी तारीफ़ करने में किसी और चीज़ की क्या ज़रूरत है ? हम क्यों ख़्वाहमख़्वाह साथी इनसानों की क़ुदरती ज़िन्दगियों के नीचे देखने की कोशिश करें, जबकि हमारा उससे कोई तअल्लुक़ ही नहीं ? क्यों ? क्यों ? अज़रा अभी तक क्या कर रही है ? मैं उससे बात करूँगा। वह नीचेवाले बरामदे में डॉक्टर से बहस कर रही होगी। वह यक़ीनन कुछ ही देर में डॉक्टर को क़ायल कर लेगी। वह बेहद अक़्लमन्द है। वह अपने बेबस, मगर पुरअसर[1] अन्दाज़ में अपना नज़रिया उसकी राय पर सब्त[2] कर देगी। उसका नज़रिया ? उसका नज़रिया हमें क्या फ़ायदा पहुँचा सकता है ? जो कुछ मैंने खोया है, जो कुछ मैंने...अभी-अभी नजमी हलके-फुलके क़दमों से चलती हुई गुज़री है। काश ! वह कुछ देर तक रुककर मुझसे बात करे। लेकिन वह तो मुझे यूँ देखती है, जैसे माउंट एवरेस्ट को देखते हैं या बुद्ध के मन्दिर को (वह हँसा) अभी-अभी जो गाड़ी सड़क पर से गुज़री है, मैं बता सकता हूँ कि राय बहादुर केदारनाथ की ओपल है। इसी तरह बग़ैर देखे हुए मैं सबकी गाड़ियाँ अलग-अलग बता सकता हूँ...कि वह ठाकुर बलबीर सिंह की फोर्ड है, और यह डॉज है, और यह फ़लाँ है और यह फ़लाँ...यहाँ पर लेटे-लेटे मैं उनके इंजनों से उसी तरह वाक़िफ़ हो चुका हूँ, जैसे घोड़ा अपने ताँगे से हो जाता है। मैं उनसे तंग आ चुका हूँ। सिर्फ़ मैं ऐसी चमकदार शफ़्फ़ाफ़ सुबहों को पसन्द करता हूँ, और नन्हें बे-आवाज़ परिन्दों को जो कुछ देर बैठकर उड़ जाते हैं, लेकिन सच आख़िरकार सच है और उसके बग़ैर...मुझे कुछ ऐसा ख़याल होता है कि हम कुछ भी नहीं कर सकते, बावजूद इन सब चीज़ों के...

लेकिन सच की तलाश में जो वक़्त हम बर्बाद करते हैं, जो क़ुव्वत और दिलचस्पी हम खोते हैं, उसके बदले में क्या मिलता है ? आज अगर मैं मान लूँ कि काइनात[3] के तमाम ज़वाहिर[4] को चलानेवाली एक बरतर हस्ती है, जो सबकी ख़ालिक़[5] भी है, तो क्या फ़र्क़ पड़ेगा ? यह भी मान लिया कि मज़हब ही एक रास्ता है, जिसके ज़रिए हम उस हस्ती को महसूस और तस्लीम करते हैं, फिर ? फिर क्या है ? कुछ भी नहीं...मैं इसी तरह लेटा हुआ हूँ और एक मक्खी मुझे तंग कर रही है। अभी अज़रा आएगी और पास बैठकर मुहब्बत से मुझे देखेगी या किताब पढ़ने लगेगी और मुझे क्यों नदामत[6]-सी होगी ? और डॉक्टर हर रोज़ आएगा और उस वक़्त तक, जब तक कि फिर बातें करने की ख़्वाहिश उस पर छा नहीं जाती, दवा देकर चला जाया करेगा और उसका नज़रिया और मेरा नज़रिया कहीं बीच में न आएगा। मैं हिल भी नहीं सकता। मैं यूकिलिप्टस के पत्तों की बू से भी छुटकारा नहीं पा सकता, जिससे मैं तंग आ चुका हूँ। फिर क्या फ़ायदा ? क्या यह ऐसा है कि ख़ुदा वाक़ई है और मुझसे नाराज़ है कि अब तक मैं नासमझ रहा। हुँह, मैं तो नासमझ ही पैदा हुआ था। मेरी तो समझ में आता है कि मज़हब के रास्ते पर चलकर हम पहले नज़रिया बना लेते हैं, फिर अक़ीदा[7] आप ही आप आ जाता है। सच पर आए, चाहे झूठ पर...(वह दोबारा हँसा)

खिड़की में चन्द चिड़ियाँ शोर मचा रही थीं। नईम ने काहिली से सीधे हाथ की मदद से उन्हें उड़ाया और उदासी से बाहर देखता रहा। तबई लिहाज़[8] से वह मिस्कीन[9] था, रूहानी[10] तौर पर पुर-निख़वत[11]। ख़ुदा की इस निखरी हुई ख़ुशगवार सुबह को देर तक उसका ज़ेहन इस तकलीफ़देह जुस्तजू[12] में खोया रहा और उसके सिर पर मुसीबत और दुख के साए मँडलाते रहे।

---

1. प्रभावपूर्ण, 2. अंकित, 3. सृष्टि, 4. प्रकट वस्तुएँ, 5. सृजक, रचयिता, 6. पछतावा, 7. विश्वास, 8. स्वाभाविक रूप से, 9. विनम्र, 10. आत्मिक, 11. स्वाभिमानी, 12. कष्टदायी जिज्ञासा।

उस सुबह को सबसे पहली आवाज़, जो नजमी ने सुनी, राजहंस के जोड़े की थी, जो बरामदे के आगे से गुज़र रहा था। वह आँखें बन्द किए-किए बिस्तर पर कसमसाई। रात भर बादल गरजता रहा था और बारिश दरीचे के शीशों पर बरसती रही थी। गहरी ग़ुनूदगी[1] की हालत में उसने रात भर की बे-आरामी के मुतअल्लिक़ सोचा और दोबारा सोचने की कोशिश की, लेकिन दोनों पुर-वक़ार और कम-गो[2] राजहंस आज ख़िलाफ़े-मामूल बोले जा रहे थे। वह उसी तरह नींद से भरा सिर नर्म तकियों पर रखे राजहंसों की बोली और उससे परे शुरू होते हुए दिन की धीमी, ख़्वाबनाक आवाज़ों को सुनती रही। थोड़ी-थोड़ी देर के लिए वह गहरी नींद में जाती और छोटे-बड़े ऊट-पटाँग ख़्वाब देखती रही। चाय की प्याली तिपाई पर रखी-रखी ठंडी हो गई।

आख़िर जब धूप शीशों में से छनकर उसके मुँह पर पड़ने लगी, तो वह आँखें मलती हुई उठी। बैठे-बैठे दो जम्हाइयाँ लीं और उठकर दरीचे के पट खोल दिए। अंगड़ाई के लिए उठे हुए उसके बाज़ू हवा में ही रुक गए और वह ठिठककर खड़ी की खड़ी रह गई।

सामने बेहद ख़ूबसूरत दिन था। ज़मीन और आसमान जैसे अभी-अभी धोकर फैलाए गए थे। फ़िज़ा में कोई धूल, कोई धुन्ध न थी। बादल का हलका-सा साया भी न था। आसमान गहरा नीला और ज़मीन सर-सब्ज़ थी और फ़िज़ा में धूप के रँग थे। सब्ज़े पर से नमी की भाप आहिस्ता-आहिस्ता उठ रही थी। दरख़्तों के पत्तों पर रुका हुआ बारिश का पानी हवा के साथ बूँद-बूँद गिर रहा था। चमकदार धूप सारे दिन में चारों तरफ़ फैली हुई थी और दरख़्तों के बीच-बीच परिन्दे एक दूसरे का पीछा करते उड़ रहे थे। परिन्दे हर क़िस्म के थे और एक साथ बोल रहे थे और पता नहीं चलता था कि कौन-कौन-सी आवाज़ किस-किस की थी, मगर आवाज़ों का वह सैलाब सुननेवाले पर यकबारगी एक बेहद वाज़ेह तअस्सुर छोड़ता था, मर्सरत का तास्सुर[3] ! कि वे ख़ुश थे और ख़ुशी में बोल रहे थे। गीले सुर्ख़ रास्ते, नीलगूँ सड़क, मटियाली पगडंडियाँ, एक सुर्ख़ घोड़ा और उसकी रंगीन गाड़ी, ब्राउन स्पेनियल कुत्ता, जो मसख़रों की तरह तितलियों के पीछे भाग रहा था और सैकड़ों रंगों की तितलियाँ, जो शराबियों की तरह लड़खड़ाती हुई उड़ रही थीं, और चमकता हुआ सफ़ेद आँखों को चुँधिया देनेवाला राजहंसों का जोड़ा, जो शाहाना वक़ार से चला जा रहा था, जिनके परों पर पानी की बूँदें रुकी हुई थीं, जिनमें धूप के रँग झिलमिला रहे थे। नजमी ने उस चमकदार रौशन दिन के हुस्न को हैरान होकर देखा और दो-चार लम्बे साँस लिए।

यह नजमी थी, जो हाल ही में इंटर के इम्तिहान से फ़ारिग़ हुई थी, और आजकल बक़ौल इमरान के, ऐश कर रही थी, लेकिन इमरान की ज़ेहनी सतह से ज़रा ऊपर उठकर देखा जाता, तो नजमी ऐसे लोगों में से थी, जिनके लिए ऐश का लफ़्ज़ बेमानी और घटिया होता है। वह एहसास की ऊपरी सतह पर ज़िन्दा थी। इमरान और उसकी तरह के दूसरे लोगों के लिए उसके दिल में महज़ एक दाइमी,[4] ख़ामोश हक़ारत[5] का जज़्बा था। वह उन सबको ऐसे लोगों में शुमार करती थी, जो मुस्तक़िल ज़िन्दगी की निचली सतह पर कमीनेपन के सुकून और क़नाअत के साथ रहे चले जाते हैं। जो छोटी-बड़ी आसाइशों[6] के लिए अनगिनत अन्देशे[7] दिल में इकट्ठा कर लेते हैं और उसे खोखला कर देते हैं, जो ज़ेहन और रूह से कोई वास्ता नहीं रखते, और आख़िरकार फ़क़त उमूमीपन[8] के सिवा किसी चीज़ के क़ाबिल नहीं रहते, जो दाइमी, गुमनाम उमूमियत[9] को ज़िन्दगी की तमाम काविशों[10] पर तरजीह[11] देते हैं।

वह ख़ुद मुख़्तलिफ़ तौर पर सोचती और महसूस करती थी। अब वह चन्द साल पहले की

1. ऊँघ, 2. मितभाषी, 3. ख़ुशी का प्रभाव, 4. स्थायी, 5. तिरस्कार, 6. सुख-सुविधाओं, 7. शंकाएँ, 8. साधारणपन, 9. साधारणता, 10. जिज्ञासा का बहुवचन, 11. प्रधानता।

छोटी-सी लड़की न थी, जो अपने इर्द-गिर्द की तक़रीबन हर जानदार और बेजान चीज़ को महसूस करके हैरान हो जाया करती थी और जिसकी मुतग़ैयिर[1] तबीअत के हाथों सारे घरवाले नालां[2] थे। अब भी कभी-कभी कोई दिलफ़रेब मंज़र या अनोखा वाक़िआ देखकर उसकी आँखों में वही कुँआरी, अछूती हैरत झलकने लगती थी, लेकिन यह महज़ उसका एहसास था, जिसमें से कि अब लाइल्मी[3] और सदमे का तअस्सुर निकल चुका था। उसका इन्तिहाई हस्सास[4] ज़ेहन बार-बार झटके खा-खाकर अब ठहर चुका था और आहिस्ता-आहिस्ता फैल रहा था। अब उसने अपने आस-पास की हर जानदार और बेजान चीज़ के रद्दे-अमल[5] को देखकर और जानकर क़बूल कर लिया था और महज़ उसी की बिना पर अपने आपको बड़ा समझने लगी थी। वह अपनी उम्र से ज़्यादा संजीदा और कम-गो थी।

और दुख की बात यह थी कि वह यह सब जानती थी। यह इस क़दर साफ़तौर पर वह जानती थी कि वह उन सबसे अलग है, कि उसकी ज़िन्दगी उन सबकी ज़िन्दगियों से अलग है, कि उसकी दुनिया उनकी दुनियाओं से मुख़्तलिफ़ सतह पर आबाद है, और यह सब कुछ उसने इतनी मायूसी,[6] इतनी दुखी होने के बाद माना था। वह सारी दोस्तियाँ जो उसने लगाईं और ख़त्म हो गईं, वे तमाम अच्छे और प्यारे लोग, जिन्होंने उसे सख़्त मायूस किया, जो इस क़दर मामूली और नालायक़ थे, और उसे छोड़ गए। उसके ज़ेहन के आस-पास दूर-दूर तक इनसानी आबादी, किसी हमसाएगी[7] का निशान तक न था, हालाँकि वह अब भी उन सबसे बग़ैर किसी तअस्सुब[8] के मिलती-जुलती थी कि हक़ीक़त में वह किसी ताक़तवर मनफ़ी[9] जज़्बे की अह्ल न थी, लेकिन वह जानती थी कि उनके साथ कभी न रह सकती थी कि वह दो मुख़्तलिफ़ इकाइयाँ थीं, जो मुख़्तलिफ़ सतह पर तख़्लीक़[10] की गई थीं। अपनी ग़ैर-आबाद ज़ेहनी बुलन्दी पर से वह उनको हसरत, प्यार, शफ़क़त और हिक़ारत से देखती हुई शदीद एहसासे-तनहाई के साथ रह रही थी। उसको तनहा और ख़ामोश देखकर उदासी का नहीं, बुज़ुर्गी का एहसास होता था, और उसके बाद उसका बड़ा-सा सिर, नौ-उम्र आँखें, और नाज़ुक ख़ूबसूरत जिस्म देखकर हँसी आती थी। रौशन आग़ा उससे वैसी ही मुहब्बत करते थे, जैसी अज़रा से। उसकी माँ उससे उतना ही दूर थी, जितना अपने दूसरे बच्चों से। घर भर में बस अज़रा ही एक थी, जिससे वह मुकम्मल ज़ेहनी इत्मीनान और फ़ितरीपन के साथ मिलती थी, क्योंकि उसने कभी उससे उन तमाम ग़ैर-मामूली सिफ़ात[11] की उम्मीद न रखी थी, जिनकी वह दूसरे सब लोगों से उम्मीद करती थी। वह उसके लिए शफ़क़त और मेहरबानी का ऐसा दरिया थी, जो गदला और कटा-फटा होने के बावजूद माहीगीरों, मछलियों और लाखों फ़सलों की ज़िन्दगी का सबब बनता है। कभी-कभी जब अचानक उसका जी मर जाने को चाहता, तो वह अज़रा की गोद में मुँह छुपाकर सिसकियाँ लेने लगती थी।

कॉलेज में वह तारीख़[12] और मआशियात[13] के अलावा मूसीक़ी[14] और आर्ट पढ़ती थी। पेंटिंग एक जज़्बे की तरह उसके साथ लगी हुई थी। रौशन महल में हर तीसरे महीने वह कमरा तब्दील करती थी। बैठे-बैठे अचानक एक रोज़ उसे ख़याल आता कि अब वह इस कमरे में नहीं रह सकती, कि वह इस मंज़र से तंग आ चुकी है, और बग़ैर कोई चीज़ छुए वह सिर्फ़ अपने कैनवस उठाकर बरामदे में निकल आती, और रौशन महल का सारा अमला उसके लिए नया कमरा सजाने में मसरूफ़ हो जाता।

उस ख़ूबसूरत सुबह को वह बरामदे के कोने में स्टूल पर बैठी बेहद इन्हिमाक[15] से पेंटिंग बनाने में लगी हुई थी कि उसकी इकलौती अज़ीज़ दोस्त फ़े भागती हुई आकर सीढ़ियों पर बैठ गई।

''ओह...हाह...किस क़दर गर्मी है।'' उसने दुपट्टे के पल्लू से हवा करते हुए कहा और अपने

---

1. परिवर्तनशील, 2. क्षुब्ध, 3. अज्ञानता, 4. संवेदनशील, 5. प्रतिक्रिया, 6. निराशा, 7. पड़ोस, 8. पक्षपात, 9. नकारात्मक, 10. रचना, 11. गुणों, 12. इतिहास, 13. अर्थ-शास्त्र, 14. संगीत, 15. तल्लीनता।

कीचड़ से लतपत जूते उतारने लगी।

"ओहो...हो...कितनी उमस हो रही है।" उसने दोबारा कनखियों से नजमी को देखा, जो तस्वीर में डूबी हुई थी, "फ़ोह...फ़ोह..."

नजमी ने कोई ध्यान न दिया।

"अल्लाह तौबा ! क्या चक्कर में हैं यह लड़कियाँ।" फ़े जलकर बोली, "अ-र-र कुमारी नजमी बेगम चट्टोपाध्याय साहिब, अगर आपने मेरी तरफ़ तवज्जुह न दी, तो मैं जूते लेकर ऊपर आ जाऊँगी और आपके आर्ट में हरज..."

नजमी बौखला गई, "अ-र-र-र ओह...अरे हाय फ़े, तुम कब से..."

"ठीक-ठीक तो याद नहीं, कमोबेश बीस साल से हूँ।"

नजमी बेख़याली में उसे देखती रही।

"और इस वक़्त कुछ मौसम के बारे में अर्ज़ कर रही थी।"

"ओह हाऊ सिली फ़े डियर !" नजमी ने कहा, "अच्छा, मुआफ़-कर दो। तुमने कोई नज़्म लिखी ?"

"इस गर्मी में ?"

नजमी खिलखिलाकर हँस पड़ी, "गर्मी पर ही लिख दो। ऐसा ख़ूबसूरत दिन है।"

"अच्छा, तो सुनो..."

"अ-र-र जूता...जूता..." नजमी चिल्लाई। फ़े ने जल्दी से जाकर एक जूता, जो पाँव में ही रह गया था, उतार लिया।

"सुनो..." फिर उसके पास फ़र्श पर बैठकर उसने आहिस्ता-आहिस्ता कहना शुरू किया, "हवा, जो दरख़्तों की साँस थी, पिछली रात की बारिश में घुल गई। अब दरख़्त क़ब्रिस्तान के कत्बों की तरह साकित खड़े हैं, और मैं अपनी साँसों से उन्हें ज़िन्दा करने की कोशिश कर रही हूँ। मैं अपनी तमाम साँसों से एक पत्ता भी नहीं हिला सकती, क्योंकि मैं डरती हूँ और मेरी ज़िन्दगी का ज़ोर टूट चुका है..."

"च-च-चोप करो," नजमी बेइख़्तियार हँसते हुए बोली, "यह तो सफ़ा नस्र[1] है।"

"यह तो ख़यालात हैं," फ़े गर्म होकर बोली, "और क्या अभी से शायरी हो गई ? यह नक़्क़ाशी थोड़ाई है कि ईज़ल और ब्रश लिए और तस्वीर बना के रख दी। शायरी की बड़ी मंज़िलें हैं, कुमारी जी।"

"अच्छा भाई, माना कि तुम बड़ी मंज़िल में हो," नजमी ने कहा, "यह तस्वीर देखो।"

फ़े ने आँखें सुकेड़कर, हाथ का साया करके कई बार मसख़रेपन से ऊपर-नीचे देखा और कन्धे उचकाकर बोली, "मामूली है।"

"सामनेवाला मंज़र है।" नजमी ने बताया।

"अच्छा ?" फ़े ने बेहद अचम्भे से आँखें फैलाकर पूछा।

"भई, मसख़रापन मत करो," नजमी ने संजीदगी से कहा, "आज सवेरे-सवेरे मुझे ऐसा लगा कि यह दुनिया का सबसे हसीन दिन है, जो निकला है। पता नहीं, फ़े, पहले भी दिन ऐसे निकलता होगा, लेकिन आज रात भर बारिश का शोर सुन-सुनकर मैं ऐसे दिन की उम्मीद नहीं कर रही थी। सवेरे-सवेरे राजहंसों ने बोल-बोलकर मुझे जगा दिया और जब मैंने खिड़की खोली, तो क्या बताऊँ फ़े डियर, कि दरख़्तों पर सारे परिन्दे बोल रहे थे, और उनकी आवाज़ें और सामने का सारा मंज़र मेरी आँखों में खुब गया। पता है, बरमन जी कहते हैं, कि अगर आप आँखें बन्द करके मंज़र की एक-एक चीज़ को वाज़ेह तौर पर देख सकते हों, तो जान लें कि वह तस्वीर बनाने के क़ाबिल है।

1. गद्य।

और फ़े डियर, मानो कि जब मैंने आँखें बन्द कीं, तो सब्ज़े पर से भाप को उठते हुए देखा, और पत्तों पर रुके हुए क़तरों को हवा के साथ नीचे गिरते हुए और परिन्दों को एक दूसरों के पीछे उड़ते हुए और...हाय, फ़े, अब भी हालाँकि सुबह गुज़र चुकी है...अब भी..."

"अच्छा ?" फ़े ने सचमुच हैरत से आँखें फैलाकर कहा, "तब तो जल्दी से इसे बना डालो।"

"हाँ, और तुम नज़्म लिखो। यह तख़्लीक़[1] का दिन है।"

"मुझे भूक लगी है," फ़े ने मुँह लटकाकर कहा।

गीली बजरी पर क़दमों की आवाज़ सुनकर वे चौंक पड़ीं। इमरान ड्रेसिंग-गाउन पहने जम्हाइयाँ ले रहा था और उसके साथ ख़ालिद हस्बे-मामूल फ़े को तंग करने के मंसूबे बनाता हुआ चला आ रहा था।

"मुझे जापानी नामों से इश्क़ है," वह कह रहा था, जैसे फ़े गी माशा या फ़े सी गोशा या फ़े...अरे बाप रे ! यहाँ तो फ़े और नजमी तशरीफ़ रखती हैं। सुबह बख़ैर[2] बीबियो। हम आपके आराम में मुख़िल[3] तो नहीं हुए ?"

फ़े ने झगड़े से डरते-डरते बड़े अख़्लाक़ से सलाम का जवाब दिया।

"ख़ैर, कोई हरज नहीं। मैं ईमी को यही बता रहा था," ख़ालिद ने कहा, "कि मुझे जापानी नामों से बेहद अक़ीदत[4] है, और जापानी शायरी से..."

"यहाँ कोई जापानी शायरी नहीं करता।"

"कई लोग करते हैं, मिसाल के तौर पर आप..."

"मैं क़तई जापानी शायरी नहीं करती।" फ़े ने कहा।

"आप यक़ीनन करती हैं।"

वह सटापटा गई, "अरे हाय नजमी, मैं कब जापानी शायरी करती हूँ ?"

"भई, ख़ालिद, अब फ़े को तंग मत करो।" नजमी ने कहा।

"लेकिन यह हक़ीक़त है नजमी कि मुझे जापानी शायरी से इश्क़ है। जैसे वही वाली नज़्म, जो ख़िज़ाँ[5] के बारे में फ़े ने लिखी थी, एकदम जापानी थी।"

"कब जापानी थी ?" फ़े जोश में आकर बोली, "वह तो बरमन जी की भी राय है कि बेहद ओरिजनल थी।"

"जापानी शायरी भी ओरिजनल है, बल्कि ओरियंटल है" ख़ालिद ने कहा।

"बस यही पता है आपको ?" फ़े ने हाथ नचाकर कहा, "चीनी शायरी ओरियंटल है, और चीनी से ज़्यादा हिन्दोस्तानी।"

"नहीं फ़े डियर, हिन्दोस्तानी से ज़्यादा चीनी," नजमी ने कहा।

"हैं ? यानी हिन्दोस्तानी शायरी।" वह लड़ाई पर आमादा थी।

"भई, मेरा मतलब है कि जहाँ तक तारीख़ का तअल्लुक़ है, चीनी शायरी ज़्यादा पुरानी है। वैसे ख़याल तुम्हारी नज़्म का भी ओरियंटल हो सकता है।"

"वह तो हई।" फ़े ने बहस करते हुए कहा, "बहरहाल जापानी शायरी क़तई ओरियंटल नहीं, बल्कि बकवास है।"

"अरे रे देखो भई फ़े, तुम्हारी नज़्म ओरियंटल थी, चाहे कांटीनेंटल थी," ख़ालिद ने उँगली उठाकर कहा, "पर जापानी शायरी के मुतअल्लिक़ कुछ कहा, तो लड़ाई हो जाएगी।"

"तो हो जाए लड़ाई।"

"थ...थ...थ यानी किस क़दर अन लेडी लाइक रवैया है आपका फ़हमीदा बेगम। थ थ थ...हद है भई।"

1. सृजन, रचना, 2. शुभ-प्रभात, 3. बाधक, 4. श्रद्धा, 5. पतझड़ का मौसम।

"दुरुस्त है बिलकुल। आपको शायरी का क्या पता ?"

जम्हाइयाँ लेते-लेते उकताकर इमरान ने पूछा, "आप नाश्ते पर नहीं आईं बीबी। पप्पा पूछ रहे थे।"

"अरे क्या बताऊँ ईमी, यह तस्वीर सवेरे से मेरे ऊपर सवार है। कुछ भी नहीं किया। रौशन आग़ा भी थे ?"

"हाँ।"

आख़िर जब लड़ाई शिद्दत इख़्तियार कर गई, तो नजमी और इमरान ने डपटकर ख़ालिद से चुप रहने को कहा।

"आप बीच में मत आएँ। यह हमारा ज़ाती मुआमला है।" ख़ालिद ने कहा।

"कोई ज़ाती मुआमला किसी का नहीं है," फ़े चीखकर बोली, "साफ़-साफ़ मसख़रापन है।"

ले-देकर दोनों में सुलह-सफ़ाई करवाई गई। दोपहर के खाने तक वे चारों बरामदे की सीढ़ियों पर बैठे काहिली से बातें करते रहे। कभी-कभी ख़ालिद कोई लतीफ़ा सुनाकर उनको हँसा देता या फ़े को मनाने की कोशिश में संजीदा और दर्दनाक लहजे में उसकी कोई नज़्म गुनगुनाने लगता।

खाने की मेज़ पर परवेज़ ने फ़े का फूला हुआ मुँह देखकर पूछा, "आज फिर फ़हमीदा बेगम और ख़ालिद में लड़ाई हो गई।" वह हमेशा फ़े का पूरा नाम लिया करता था।

"हाँ पप्पा।" इमरान ने प्लेट में चावल इकट्ठे करते हुए कहा।

ख़ालिद बौखला गया, "नहीं अंकल, मैं तो कह रहा था कि जापानी शायरी में क़ुनूतियत[1] ज़रा भी नहीं है, इसलिए मुझे पसन्द है, और फ़े की शायरी में इस क़दर..."

"फिर तुम ऐसी दर्दनाक आवाज़ में उसकी नज़्म क्यों गा रहे थे ?" नजमी ने जल्दी से कहा।

वह और ज़्यादा बौखला गया, "अ-र-र...मेरा मतलब है कि फ़े की शायरी में भी नहीं है, यानी मुझे पसन्द है," सब क़हक़हा लगाकर हँस पड़े।

खाने के बाद जाने कैसे मज़हब और कल्चर पर बहस चल निकली, जो कि ख़ालिद का पसन्दीदा मौज़ूअ[2] था। उसका पुराना नज़रीया था कि मज़हब और कल्चर का आपस में कोई रिश्ता नहीं, जिस नज़रिए से बाक़ी सबको इख़्तिलाफ़े-राय[3] थी। फ़े, जो उसकी मुख़ालफ़त का ठेका लिए बैठी थी, बढ़-चढ़कर बहस में हिस्सा ले रही थी : "ख़ालिद ने महज़ किताबें पढ़-पढ़कर अपने नज़रीयात बना लिए हैं, हालाँकि यह ऐसा मौज़ूअ है, जिसके लिए क़ौमों, बल्कि तब्क़ों का मुतालआ[4] करना पड़ता है।

"झगड़ो नहीं भई !" परवेज़ ने सोच-सोचकर कहना शुरू किया, "आप दोनों का ज़ाती इख़्तिलाफ़ होगा, लेकिन यह हक़ीक़त है ख़ालिद कि क़ौमों की तहज़ीब[5] उनके मज़हब से बराहे-रास्त[6] असर लेती है। दुनिया की तमाम बड़ी-बड़ी तहज़ीबें बड़े-बड़े मज़हबों पर क़ायम हैं। यूरोप में देखो..."

"जी हाँ...यूरोप को ही ले लीजिए," ख़ालिद ने बात काटकर कहा, "यूरोप के ईसाई क्या इसी तरह रहते हैं, जैसे हिन्दोस्तान या चीन के ? यहाँ पर ज़्यादातर ईसाई गलियाँ साफ़ करते हैं। क्या उनकी तहज़ीब वही है, जो इंगलिस्तान के बादशाह की है।"

"इसका मतलब है कि आपकी तहज़ीब का दारोमदार महज़ तब्क़ाती तक़सीम[7] पर है," मैंने कहा।

"महज़ तब्क़ाती तक़सीम पर नहीं है, लेकिन तहज़ीब की तश्कील[8] में किसी जमाअत[9] के मआशी[10] हालात और वसाइल[11] का बड़ा हिस्सा होता है..."

---

1. निराशावाद, 2. विषय, 3. मतभेद, 4. अध्ययन, 5. सभ्यता, 6. सीधा, 7. वर्गीय विभाजन, 8. रूप देना, 9. वर्ग, 10. आर्थिक, 11. साधनों।

"यह दुरुस्त है," अज़रा ने, जो नईम के साथ खाना खाकर उनके पास आ बैठी थी, कहा, "हर एक मुआशरे[1] का क़ियाम सोसाइटी पर होता है, कि वहाँ के लोग कैसे आपस में मिलते हैं और कब मिलते हैं और एक-दूसरे के साथ कैसा सुलूक करते हैं। इसके अलावा मज़हब एक दाइमी शै[2] है, और तहज़ीब जो हर ज़माने में बदलती रहती है, उस पर क़ायम नहीं की जा सकती।"

नजमी ने परवेज़ की हिमायत में बोलना चाहा, लेकिन अज़रा के ख़याल से सिर को हल्की-सी ग़ैर-यक़ीनी जुम्बिश देकर रह गई। इस पर फ़े तेज़ होकर बोली, "क्या आप मज़हब को एक मुकम्मल ज़ाबिता-ए-हयात[3] नहीं मानते ? बताइए, जब शुरू में इनसानों की गिरोहबन्दी हुई थी, तो मज़हब की बिना पर नहीं हुई थी ? और फिर आप तहज़ीब और तमद्दुन[4] और सब चीज़ को मिला-जुलाकर सरासर कनफ़्यूज़न फैला रहे हैं। आपके पास कोई वाज़ेह तसव्वुर[5] ही नहीं है। कल्चर बिलकुल दूसरी बात है।"

"जी नहीं," ख़ालिद ने कहा, नौए-इनसानी[6] की गिरोहबन्दी इलाक़ाई हदूद[7] की बिना पर हुई थी।"

"वह तो जब थी, लोग गुफाओं में रहा करते थे। जब तहज़ीब की रौशनी फैली, तो मुनज़्ज़म[8] गिरोहबन्दी महज़ मज़हब की बुनियाद पर हुई। जब इलाक़ाई हदबन्दी का तसव्वुर ख़त्म हो गया। जब दो मुख़्तलिफ़ गाँव में रहनेवाले दो शख़्स भाई-भाई थे, महज़ इस वजह से कि एक मज़हब से तअल्लुक़ रखते थे।"

"यही तो फ़र्क़ है भई, कि आपके पास कल्चर का बड़ा ग़लत तसव्वुर है," अज़रा ने जल्दी-जल्दी कहना शुरू किया, "यह भी हो सकता है कि वे दो आदमी, जिनका आपने ज़िक्र किया है, जब मिलें, तो एक-दूसरे के रहन-सहन के तरीक़े को पसन्द न करें या एक-दूसरे की ख़ुराक़ और पोशाक को अहमियत न दें या एक-दूसरे की मूसीक़ी को महज़ ख़ुश-ख़ुल्क़ी[9] की बिना पर बरदाश्त करें।"

"और यह सरासर इलाक़ाई हदूद पर मुन्हसिर[10] है," ख़ालिद ने कहा, "हिन्दोस्तान ही को लीजिए। उत्तर के लोग ऊँचे क़द के और गोरे-चिट्टे हैं। उनकी सोसाइटी में बहादुरी और जवाँमर्दी का बोलबाला है। उनके मशाग़िल घुड़सवारी और निशानाबाज़ी हैं और ख़ुराक गोश्त है। ज्यूँ-ज्यूँ आप दक्खिन की तरफ़ आते हैं, लोगों के क़द छोटे और जिल्द साँवली होती जाती है। उनकी ख़ुराक मिर्चों का सालन और सब्ज़ियाँ होती हैं और वे मिज़ाज के तेज़, बुज़दिल, और ज़हीन होते जाते हैं। उत्तर-पच्छिमी सूबों का एक मुसलमान बम्बई के मुसलमान के घर जाकर अपने आपको अजनबी पाता है। क्यों ? इंगलिस्तान को देखें। उन्होंने रियासत को मज़हब से अलग कर दिया है। क्योंकि रियासत में उनका कल्चर है।"

"वे माद्द-परस्ती[11] की तरफ़ बढ़ रहे हैं। उनके पास इसके सिवा कोई चारा ही नहीं।" फ़े ने कहा।

"चारा क्यों नहीं...हाँ, क्यों नहीं ?"

परवेज़ ने बोलना चाहा, लेकिन उसकी आवाज़ तीन-चार आवाज़ों में दबकर रह गई। थोड़ी देर के बाद वह और उसकी बीवी उकताकर उठ गए। अज़रा ने जब देखा कि बहस-वहस कोई करना नहीं चाहता, सब धाँधली कर रहे हैं, तो वह भी उठकर नईम के पास चली गई। उसके बाद जो बहस का सत्यानास हुआ और जो ग़दर मचा, तो किसी को होश न रहा कि वह क्या कहना चाहता है, और क्या कह रहा है और ख़ुश-ख़ुल्क़ी किस बला का नाम है। एक-दूसरे पर

---

1. समाज, 2. स्थायी चीज़, 3. जीवन का नियम, 4. संस्कृति, 5. स्पष्ट विचार, 6. मानवजाति, 7. क्षेत्रीय सीमाओं, 8. व्यवस्थित, 9. सुशीलता, 10. निर्भर, 11. भौतिकवाद।

कुंद-ज़ेहनी[1] और मसख़रेपन के इल्ज़ामात लगाने के बाद जो बातों का सिलसिला शुरू हुआ, तो कल्चर से मआशियात[2] और फ़लसफ़ा और तारीख़ और आर्ट और मूसीक़ी और फ़िल्मी गाने और फ़िल्में और एक्टर-एक्ट्रेस और उनकी ज़ाती ज़िन्दगी के वाक़िआत पर जाकर ख़त्म हुआ। जब तीसरे पहर की चाय के लिए सब इकट्ठे हुए, तो बातें कर-कर के थक चुके थे। ख़ामोशी से ऊँघते हुए उन्होंने चाय ख़त्म की। फिर ख़ालिद और इमरान उठकर बाहर जाने की तैयारी करने लगे और नजमी और फ़े नामुकम्मल तस्वीर की तरफ़ बढ़ीं।

"फ़े तुमको घर जाना हो, तो हम उसी तरफ़ जा रहे हैं।" ख़ालिद ने सीढ़ियाँ उतरते हुए कहा।

"अरे नहीं भई, शुक्रिया। मैं बाद में जाऊँगी।" फ़े ने अख़्लाक़ से जवाब दिया।

"आज आप सारे दिन के लिए रौशन महल में मदऊ[3] हैं ?"

फ़े ने सुनी अनसुनी कर दी। दोनों लड़के बजरी की गीली सड़क पर गेट की तरफ़ बढ़े।

"ख़ालिद, इस फ़ॉल में हम दार्जिलिंग जा रहे हैं।" नजमी ने बरामदे में से चिल्लाकर बताया।

"क्यों ईमी... ?"

"अमाँ गोली मारो यार फ़ॉल को..." इमरान ने झल्लाकर कहा।

"मुबारक हो।" ख़ालिद गेट पर से हाथ हिलाकर चिल्लाया, "अब कहाँ चलें ?"

"बिलियर्ड।"

दोनों लम्बे-लम्बे क़दम रखते यूनिवर्सिटी क्लब की तरफ़ चले गए।

जब फ़े उसके पास से उठकर गई, तो वह अभी तस्वीर बना रही थी। कैनवस पर काम करते-करते अचानक उसको पुराने जाने-पहचाने एहसासे-तनहाई[4] ने घेर लिया। उसने सोचा कि सुबह से लेकर शाम तक वह अजनबी लोगों में घिरी रही थी, कि वह बेकार उनके साथ सिर खपाती रही थी, वह उनमें से नहीं थी। उसने ब्रश एक तरफ़ रखकर पूरब की तरफ़ देखा, जहाँ पर रात शुरू हो रही थी। फिर उसने इन्तिहाई मायूसी से तस्वीर को देखा और उसका जी चाहा कि ज़ोर-ज़ोर से रोए। सारे दिन में उसने महज़ चन्द लकीरें खींची थीं। रौशन महल के तमाम नौकर एक-एक दफ़ा आकर उसको देख गए। वह देर तक लोहे की रेलिंग पर झुकी रही और तन्हाई और यास[5] के साए उसके इर्द-गिर्द फैलते गए।

36

वह एक ग़ैर-मामूली गर्म शाम थी, जब वे सब घास पर कुर्सियाँ बिछाए ताश खेल रहे थे। ब्रिज का मिह्वर[6] परवेज़ था, जो दो माह की छुट्टी पर था। जिस रोज़ उसकी बीवी उसे क्लब न जाने देती, वह रौशन महल में हर एक ब्रिज खेलनेवाले को इकट्ठा करके रात तक खेलता रहता। सिर्फ़ ब्रिज ही एक ऐसी साज़िश[7] थी, जिसमें वह अपने से कम उम्रवाले को शामिल करता, रौशन आग़ा से छुपाकर हारे हुए खिलाड़ियों से पैसे वुसूल करता और फिर उन्हें क्लब ले जाकर आइस-क्रीम खिलाता या पिक्चर्ज़ ले जाता।

दिन की आख़िरी ज़र्द धूप दरख़्तों की चोटियों पर पड़ रही थी, जब ख़ालिद ने खेलते- खेलते थककर अंगड़ाई ली और उठ खड़ा हुआ। रियाज़ जो उसके पीछे बैठा था, लपककर उसकी जगह पर जा बैठा।

"हिसाब चुका के जाओ, मियाँ।" परवेज़ ने कहा, "लैला, ज़रा स्कोर-बोर्ड दिखाना।"

"जा कब रहा हूँ, अंकल।" ख़ालिद ने उकताकर कहा, और मेज़ पर से शर्बत का गिलास उठाकर मुँह से लगा लिया। एक साँस में शर्बत ख़त्म करके उसने हाथ की पुश्त से मुँह पोंछा और

1. मन्दबुद्धि, 2. शास्त्र, 3. आमन्त्रित, 4. एकाकीपन, 5. निराशा, 6. धुरी, 7. षड्यन्त्र।

सब्ज़े में से उठते हुए गर्म, नम भाप को टाँगों पर महसूस किया। वहाँ खड़े-खड़े ख़ाली गिलास को उँगली से घुमाते हुए अचानक उसने महसूस किया कि नजमी वहाँ नहीं थी।

"नजमी ! नजमी !!" उसने मुड़कर सब पर नज़र डाली और सब्ज़े के किनारे-किनारे चलने लगा।

वह रौशन महल के पिछवाड़े यूकिलिप्टस के छोटे-से बनावटी जंगल में दरख़्त से टेक लगाए बैठी थी। ख़ालिद को देखकर चौंक पड़ी।

"डूबता हुआ सूरज देखा जा रहा है ?" ख़ालिद ने कहा। उसने एक पल ख़ालिद के संजीदा चेहरे को देखा और मुस्करा पड़ी।

"शाम का इन्तिज़ार कर रही हूँ। कभी-कभी गर्मियों की शामें बड़ी ख़ूबसूरत होती हैं।"

वह ख़ामोश रहा।

"खेल ख़त्म हो गया ?"

"नहीं।"

"तुम आज मुस्तक़िल हारे ?" वह हँसी।

"हाँ।"

उसने परेशानी से ख़ालिद के ख़ामोश, बेताब चेहरे को देखा, "बैठो।"

वह एक पत्थर पर बैठकर उँगलियाँ बजाने लगा। उसको इतना ख़ामोश पाकर वह अचानक परेशान हो गई।

"कितनी गर्मी है।" उसने स्कार्फ़ से माथे का पसीना जज़्ब करते हुए कहा।

"तुम पहाड़ पर क्यों नहीं गए ख़ालिद ?"

"आप लोग जो नहीं गए।"

"अरे हाँ, चन्द बरस हुए एक फ़ॉल में मैं रौशन आग़ा के साथ दार्जिलिंग से गुज़री थी। मैं तुम्हें क्या बताऊँ ख़ालिद, कि वहाँ पर ख़िज़ाँ का मौसम कैसा दिलकश होता है, इस क़दर रंगीन। मैंने देखा कि सैंकड़ों क़िस्म के दरख़्त हैं और हर एक दरख़्त पर मुख़्तलिफ़ रंग के पत्ते हैं, कहीं सुर्ख़, कहीं ज़र्द और कहीं हरे। एक झुंड में तो आग लगी हुई मालूम होती थी, पत्तों का रंग क़िरमिज़ी था और उन पर शाम की धूप पड़ रही थी और वे लगातार गिर रहे थे और ज़मीन पत्तों में छुपी हुई थी। ज्यूँ-ज्यूँ हम आगे बढ़ते गए, रंग तब्दील होते गए, रंग ही रंग, मैं तस्वीरें बनाना चाहती थी, लेकिन हम शिलांग जा रहे थे, जहाँ रौशन आग़ा को एक कॉन्फरेंस में शिरकत करना था। उसके बाद ऐसा हुआ कि हम कई साल तक जा ही न सके। अब के रौशन आग़ा ने कहा कि या आप गर्मियों में मसूरी जाइए या फ़ॉल में दार्जिलिंग। सारा वक़्त आप दिल्ली से बाहर नहीं रह सकतीं। अब सोचती हूँ कि ग़लती की। यहाँ गर्मी में मर रहे हैं।"

वह ख़ामोश बैठा पत्थर पर उँगलियाँ बजाता रहा।

"अरे ! तुम मुँह फुलाए क्यों बैठे हो ?" नजमी ने बनावटी हैरत से देखा।

ख़ालिद ने एक लम्बा "हूँ ?" किया।

"सिगरेट के लिए पैसे नहीं हैं ?"

"हैं।" उसने ग़ुर्राकर कहा और सिगरेट निकालकर जलाने लगा। नजमी खिलखिलाकर हँस पड़ी।

उसने फिर अपना अफ़ीमचियोंवाला रवैया जारी रखना चाहा, मगर नजमी को भौंएँ उठाए अपनी तरफ़ देखते हुए पाकर घबरा गया।

"ओह ! नहीं तो...मैं..." उसने कोशिश करके अपने आप पर क़ाबू पाया, "मैं समझा, अब आप पेंटिंग पर एक लैक्चर देंगी।"

नजमी की भौंएँ काँपी, "मैं तो ख़ुद उस मौज़ूअ से दूर रहती हूँ, जिसके मुतअल्लिक़ लोग कुछ न जानते हों।"

ख़ालिद उसी तरह बैठा ख़ामोश चेहरे से उसे देखता रहा। वह ख़ामोश हो गई थी और दुखी जज़्बात उसके दिल को ज़ख़्मी कर रहे थे। शाम की गर्म सीली हवा उनके सिरों पर ठहरी हुई थी, जिसमें गीली मिट्टी और यूकिलिप्टस के पत्तों की बू थी।

आख़िर उसने सिगरेट की राख झाड़ी और झुककर बैठ गया, "यह सच है, नजमी कि मैं पेंटिंग के मुतअल्लिक़ कुछ नहीं जानता, लेकिन...मैं महज़ तुम्हारी वजह से पहाड़ पर नहीं गया।"

"मेरी वजह से ?" नजमी ने साँस रोककर पूछा।

"हाँ, तुम जो नहीं गईं।" उसने उसी उदास, क़तई लहजे में कहा।

नजमी आँखें फैलाए उसे देखती रही। ख़ालिद की आँखों में बेहद नर्मी और उदासी देखकर एक पल के लिए उसके दिल में नौ-उम्री[1] के जज़्बात मचले, जिन्होंने उसे परेशान कर दिया। नौ-उम्र, कुँआरे जज़्बात, जो मुहब्बत के ख़ालिस तसव्वुराती जज़्बे[2] को पहली दफ़ा अपने सामने पाकर ठिठक जाते हैं और रोएँ-रोएँ में बेसाख़्तगी[3] पैदा कर देते हैं। नजमी ने घबराकर नज़रें उस पर से हटा लीं और इधर-उधर देखने लगी। ख़ालिद उसके पास जाकर खड़ा हुआ।

"क्या यह काफ़ी नहीं है, नजमी ?" उसने जज़्बात से उबलती हुई आवाज़ में पूछा।

वह सँभलकर बैठ गई, "बैठ जाओ। तुम मुझे परेशान कर रहे हो।"

उसके क़रीब ज़मीन पर बैठकर वह पत्तों को मुट्ठी में लेकर मसलने लगा।

"तुम...क्या कहना चाहते हो ?" नजमी ने दूसरी तरफ़ देखते हुए पूछा। अगले पल वह दिल में अपने सवाल के कमीनेपन पर हँसी।

"मैं शायरी नहीं कर सकता नजमी, तस्वीरें नहीं बना सकता, लेकिन मैं तुमसे मुहब्बत करता हूँ। क्या यह काफ़ी नहीं है ?"

"मुहब्बत ?" नजमी ने ठिठककर दुहराया। पच्छिम की सुर्ख़ी, जहाँ सूरज डूब चुका था, उनके चेहरों पर पड़ रही थी, और वह तूफ़ान में घिरे हुए दो परिन्दों की तरह पास-पास बैठे थे। बड़ी देर के बाद हवा का एक झोंका कहीं से आया और उनके सिरों पर ठहरी हुई भारी हवा को उड़ाकर ले गया। एक गिलहरी दोनों अगले पंजे उठाए ग़ौर से उन्हें देख रही थी, यूकिलिप्टस का एक पत्ता उसके सिर पर गिरा और वह छलाँग लगाकर भाग गई।

नजमी ने एक लम्बा साँस लिया और सादगी से हँसी। उसकी बे-राज़ हँसी और पुरानी बेतकल्लुफ़ आँखें देखकर ख़ालिद का दिल सर्द पड़ गया।

"तुम मुहब्बत को क्या समझते हो ?" आख़िर उसने पूछा।

"मैं कुछ नहीं समझता। मुझे कुछ पता नहीं नजमी, सिर्फ़ इतना पता है कि तुम मुझे बेचैन कर देती हो। तुम्हें देखकर ऐसा लगता है कि मैं...कि जैसे मैं पागल हो जाऊँगा या क्या..."

"तो इसका इलाज है कि देखना ही बन्द कर दो।"

"देखना ही ?" ख़ालिद ने साँस रोककर पूछा।

"अरे हाय ख़ालिद, तुम्हें क्या हो गया है ?"

"क्या हो गया है ? क्या हो गया है ?" वह उसे कन्धों से पकड़कर झँझोड़ते हुए चीख़ा, "तुम्हें पता नहीं ? तुम कुछ महसूस नहीं करतीं ? तुम इतनी अनजान हो ? इतनी...मैं..." हवा तेज़ी से दरख़्तों में चलने लगी...सायं...सायं...सायं !

अचानक वह अपनी आवाज़ और जज़्बे की शिद्दत से डर गया। उसने उसके कन्धे छोड़ दिए और हैरत से देखने लगा। नजमी पुश्त और दोनों बाज़ू दरख़्त से चिमटाए पंजों के बल बैठी थी।

1. किशोरायु, 2. काल्पनिक भावना, 3. सहजता।

उसके चेहरे से लगता था कि हवा का झोंका भी आया, तो चीख़ मारकर रोने लगेगी।

"ओह नो...नो..." ख़ालिद बेहद खोई-खोई और ख़ुश्क आवाज़ में पुकारा।

हवा फिर दरख़्तों में रुक गई थी और यूकिलिप्टस के जंगल पर शाम आहिस्ता-आहिस्ता उतर रही थी। रात का एक सियाह, ख़ामोश परिन्दा आकर दरख़्त पर बैठ गया। एक गिलहरी दौड़ती हुई नीचे उतरी। नजमी आवाज़ पैदा किए बग़ैर दरख़्त के साथ खड़ी हो गई।

"जाओ !" वह भर्राई हुई, डरी हुई आवाज़ में बोली।

"ख़ालिद...अब तुम जाओ।" उसने पुर-सुकून आवाज़ में कहा।

"मैं कभी इतना बेक़ाबू नहीं हुआ। तुम जानती हो नजमी।"

वह ख़ामोश बैठी अँधेरे में चलती हुई हवा के हलके शोर को सुनती रही। एक पल को उसे ख़याल हुआ कि वह पहली दफ़ा इस जंगल में आई है, लेकिन वह आराम से घुटने पर ठोड़ी रखे वहीं बैठी रही, क्योंकि वह एक तूफ़ान-खेज़[1] जज़्बे में से गुज़री थी और उसके दिल में शदीद उदासी थी, और तनहाई और बेचैनी। अपने सामने बैठे हुए उस सियाह कुबड़े साए पर उसे तरस आने लगा और उसने वह सब कुछ कह देना चाहा, जो कि उसने महसूस किया था।

"तुम मुहब्बत का ज़िक्र कर रहे थे ख़ालिद। मैं तुम्हें बताऊँ कि मुहब्बत के बारे में क्या महसूस करती हूँ ?" वह रुकी, "मैं समझती हूँ कि यह एक ऐसी चीज़ है, जो अकसर इनसानों को धोका देती है। अकसर इनसान मुहब्बत का मतलब समझ लेते हैं, बहुत कम हक़ीक़त में उसे पाते हैं। मुहब्बत हमारे समझदार हो जाने के साथ ही साथ नहीं आ जाती, यह किसी वक़्त भी आ सकती है और एक जज़्बे की सूरत में आती है। हम लोगों से मिलते हैं और मिलते रहते हैं, और कई एक को पसन्द भी करते हैं, मगर यह मुहब्बत नहीं होती। महज़ हमारा दिमाग़, जो मुहब्बत के नाम से वाक़िफ़ है, और इसकी ज़रूरत महसूस करता है, इस कमज़ोर-सी कशिश का बाइस[2] होता है। जब वे लोग आँखों से ओझल होते हैं, तो हम भूल जाते हैं। हम हर किसी से मुहब्बत करने के क़ाबिल नहीं हैं। मुहब्बत जो सादगी और सच्चाई का जज़्बा है, जब आता है, तो हमें ज़ेहन की दुनिया से ऊपर ले जाता है। यह एक ऐसा तजर्बा है, जो हम किसी ज़ेहनी या जिस्मानी क़ुव्वत की मदद से हासिल नहीं कर सकते। जो रूह की तमामतर क़ुव्वतें लेकर आता है, जिसमें से मज़हबी राहनुमा गुज़रते हैं। यह हमारे सबसे सच्चे जज़्बों में से है...मैं...जज़्बे का इन्तिज़ार करती हूँ।" अपनी आवाज़ के अलावा उसने साफ़तौर पर अपने सिर पर हवा के हलके शोर को सुना और ख़ामोश हो गई। उनके गिर्द अँधेरा था और सियाह, गर्म हवाएँ कभी आहिस्तगी, कभी तेज़ी से चल रही थीं। रौशन महल की रौशनियाँ देर हुई जल चुकी थीं और अन्दर चलते-फिरते लोगों की छाया शीशों पर पड़ रही थी। बूढ़ा माली रबड़ का पाइप उठाए साए की तरह जंगल के किनारे-किनारे गुज़र गया।

"तुम पचास बरस तक जज़्बे का इन्तिज़ार करती रहोगी ?" ख़ालिद ने कहा।

"बेवक़ूफ़ मत बनो। मैं सच्ची बात करती हूँ। हम इसके क़ाबिल नहीं हैं। इस क़दर सच्चाई, इस क़दर ख़ुलूस के हम क़ाबिल नहीं हैं। मैं तुम्हें बताऊँ ख़ालिद, मेरी कई एक दोस्त हैं, जो इतने इत्मीनान से ज़िन्दगी बसर कर रही हैं, जैसे सचमुच ख़ुश हैं। उन्होंने ख़ूबसूरत, तन्दुरुस्त नौजवानों को देखा और उनसे शादियाँ कर लीं। अब वे अगर तस्वीरें बनाने के लिए बैठती हैं, तो वे अलग बैठकर तम्बाकू पीते हैं, और दिल में अपनी बीवी का कोसते हैं। वे अगर प्यानो पर बैठती हैं, तो वे ख़्वाबगाह का दरवाज़ा बन्द करके सो जाते हैं या ओवलटीन के लिए चिल्लाते हैं। वे अपनी नज़्म सुनाती हैं, तो वे उल्लुओं की तरह मुँह देखते हैं, और गला फाड़-फाड़कर हँसते हैं। वे असल ज़िन्दगी को आहिस्ता-आहिस्ता भूल जाती हैं और फिर छोटे-छोटे सुखों के लिए अपने ख़ाविन्दों की तरफ़

1. तूफ़ान उठाने वाला, 2. कारण।

राग़िब[1] होती हैं। वे उनसे मुहब्बत करती हैं, क्योंकि वे उन्हें उम्दा-उम्दा लिबास ख़रीदकर देते हैं या दूर-दराज़ मुक़ामात पर तफ़रीह के लिए ले जाते हैं या हर साल नई कार ख़रीदते हैं या हिल-स्टेशनों पर मकान बनाते हैं। उनकी ज़िन्दगी की सबसे बड़ी ख़ुशियाँ वे आसाइशें[2] हैं, जो उनके शौहर उनके लिए ख़रीद सकते हैं और जिनकी वे उनसे उम्मीद रखती हैं। वे ख़ुश हैं, कि उनके बच्चे हैं और एक शख़्स है, जो उनके बच्चों का बाप है और उनका एक मुकम्मल, मुत्मइन[3] ख़ानदान है। वे ख़ुश हैं, क्योंकि वे जानती ही नहीं कि किसी और के साथ वे इससे कहीं बेहतर तरीक़े पर ज़िन्दगी गुज़ार सकती थीं। वे उन बिल्लियों और ख़रगोशों और दूसरे पालतू जानवरों की तरह हैं, जो हर उस शख़्स से मुहब्बत करने लगते हैं, जो उनको खाना खिलाता और नहलाता है। तुमने देखा, मुहब्बत कैसे धोका देती है।'' उसने अपनी आवाज़ के लफ़्ज़ों को अँधेरे में ग़ायब होते हुए सुना।

''यह भी तो हो सकता है, कि उस शख़्स से, जिससे हम मुहब्बत कर सकें, हम कभी मिलें ही नहीं।'' ख़ालिद ने मायूस-कुन[4] लहजे में कहा।

''नहीं ! यह महज़ बेसब्री के ख़यालात हैं, बेसब्री और बे-यक़ीनी के। एक-न-एक इनसान ज़रूर आता है, हमेशा, हर जगह, जो हमें मुहब्बत की सच्चाई का यक़ीन दिलाता है, जिसको देखते ही हम पहचान लेते हैं कि यह वही है, जिसको पहचानकर हम दिल में कहते हैं, ''मुझे पता था, तुम आओगे। मुझे तुम्हारा इन्तिज़ार था। देखो, यह मैं हूँ। मुझे जानते हो ?'' और हमें देखकर उसकी आँखों में पुरानी पहचान की चमक पैदा होती है। वह हँसता है और उसकी हँसी हमें ज़िन्दगी की मासूमियत का यक़ीन दिलाती है। वह कभी नहीं कहता कि वह मुहब्बत करता है, लेकिन अपनी आँखों में मुहब्बत के दीवट लिए फिरता है, हमारे आगे, हमारे पीछे, हमेशा-हमेशा। वह हमारे लिए दुनिया का सबसे मेहरबान और नर्म-दिल इनसान होता है। उसके जिस्म से हमें मुहब्बत की बू आती है। मुहब्बत जो हमें ज़िन्दगी की नेकी और अच्छाई का यक़ीन दिलाती है, जो उस वक़्त जब हम तूफ़ानों से घिरे होते हैं, हमें बताती है, कि दुनिया में कोई दूसरा महज़ हमारे लिए ज़िन्दा है, जो हमारे ज़िन्दा रहने की एक बड़ी वजह है। कम-से-कम ज़िन्दगी में एक दफ़ा मुहब्बत हमें धोका नहीं देती, कम-से-कम एक दफ़ा वह हमें ज़िन्दा रहने का जज़्बा देती है।'' ख़ुद-एतिमादी[5] की ख़ुशी में डूबकर उसने मुट्ठियाँ हवा में हिलाईं। घुप अँधेरे में उसे एहसास हुआ कि वह वहाँ अकेली बैठी अपने आप से बातें करती रही है।

फिर ख़ुश्क पत्तों के चरचराने की आवाज़ आई और ख़ालिद उठ खड़ा हुआ, ''हाँ शायद, चलो चलें।''

वह उसके पीछे-पीछे चलने लगी। पत्थरों पर उनके क़दमों की आवाज़ सुनकर रात का परिन्दा फड़फड़ाकर उड़ गया।

''सितारे भी नहीं निकले।'' अँधेरे से घबराकर वह अपने आप से बोली।

''जाने किस अहमक़ ने कहा था, हम इतनी रात तक वहाँ बैठे रहें।'' ख़ालिद पत्थरों को फलाँगते हुए ग़ुर्राया।

''ख़ालिद...'' उसके पीछे-पीछे पत्थर फलाँगते हुए वह हलके-से परेशान लहजे में बोली, ''मैंने ऐसी हमाक़त की बातें की हैं...हैं...न ?''

जवाब में ख़ालिद ने सिर्फ़ गले से नाराज़ बिल्ले की-सी आवाज़ निकाली।

बरामदे के पास नजमी ने उसे खाने की दावत देना चाही, लेकिन वह अलविदा कहे बग़ैर, सिर झुकाए, हाथ पतलून की जेबों में ठूँसे गेट की तरफ़ बढ़ गया। उसके सुस्त, मुस्तक़िल क़दमों के नीचे बजरी की चरचराहट दूर होती गई। वह सीढ़ियों पर खड़ी प्यार और दुख से उसे गेट से बाहर

1. प्रवृत्त, 2. सुख-सुविधाएँ, 3. सन्तुष्ट, 4. निराशाजनक, 5. आत्मविश्वास।

जाते हुए देखती रही। अन्दर वे सब खाने की मेज़ के गिर्द जमा उसका इन्तिज़ार कर रहे थे। वह सीढ़ियाँ चढ़ रही थी, तो उसने देखा कि अज़रा नईम को सहारा देकर आहिस्ता-आहिस्ता चलाती हुई उसके कमरे की तरफ़ ले जा रही थी, "अब रोज़-ब-रोज़ वह अच्छे हो रहे हैं।" उसने ख़ुशी से सोचा। फिर उसने कई दिन से उसको देखने के लिए न जा सकने पर अपने आपको मलामत की और फैसला किया कि सुबह-सवेरे वह उसकी ख़ैरियत पूछने जाएगी।

रौशन आग़ा के बाद शायद नईम ही एक ऐसा शख़्स था, जिससे वह इस दर्जा मरऊब,[1] किसी हद तक डरी हुई रहती थी। उसके बारे में उसका फ़ैसला था कि वह कभी उसके क़रीब न हो सकती थी, कि वह बेहद मुख़्तलिफ़ क़िस्म का पुर-असरार[2] इनसान था, लेकिन इस असरार ने नजमी के दिल में उसके लिए अक़ीदत[3] और एहतिराम[4] पैदा कर दिया था। वह उसके लिए पुर-कशिश[5] और रंगीन माज़ी[6] लिए, ख़ूबसूरत और ज़हीन, किसी हद तक लावारिस अज़ीज़ था। अजीब बात थी कि आज तक नजमी ने नईम के बारे में अज़रा के वास्ते से कभी न सोचा था। अज़रा की अपनी अलग, बेहद मुख़्तलिफ़, तन्हा शख़्सियत थी।

तेज़ हवा के साथ बारिश के पहले क़तरे उसके माथे पर गिरे और वह तेज़ी से सीढ़ियाँ चढ़ने लगी। अन्दर परवेज़ के पूछने पर उसने बताया कि वह बाहर ख़ालिद के साथ गप्पें मार रही थी।

"गप्पें या गपबाज़ी...तफ़सील[7] के साथ बताओ।" लैला ने काँटा लहराकर कहा।

"ख़ालिद, ख़ालिद।" कई लोगों ने एक साथ कहा। ख़ालिद को बुलाने के लिए कई आदमी दौड़ाए गए, लेकिन वह न मिला। फिर उसकी ख़ुदसरी[8] और नालायक़ी पर अफ़सोस का इज़हार करते हुए उन्होंने खाना शुरू किया।

37

वह एक ग़ैर-मामूली गर्म शाम थी, जब वह नईम को लेकर सब्ज़े पर उतर आई और आहिस्ता-आहिस्ता उसे चलाने लगी। बराबर के लॉन में वे सब ताश के खेल से उकताकर अब काहिली से टाँगें मेज़ों पर रखे गप्पें मार रहे थे और बीच-बीच में ज़ोर-ज़ोर से हँसे जा रहे थे। हवा थम गई थी और उनके इर्द-गिर्द घास की गर्म, गीली ख़ुशबू रुकी हुई थी।

"कई बार कहा है, निचली मंज़िल में आ जाएँ। हर बार सीढ़ियाँ तय करनी पड़ती हैं।" नईम ने हाँफते हुए झुककर अज़रा का सहारा लिया।

लॉन के बीच में रुककर नईम ने पसीना ख़ुश्क किया और हाथ उठाकर परवेज़ को जवाब दिया, जो कुर्सी पर लेटा हाथ हिला रहा था। अज़रा ने मुँह फेर लिया।

"परवेज़ ख़ुश-अख़्लाक[9] होता जा रहा है।" उसने हक़ारत[10] से कहा।

अब वे सब उनकी तरफ़ मुतवज्जेह होकर ज़ोर-ज़ोर से हाथ हिला रहे थे। नईम ने छड़ीवाला हाथ उठाकर सबको जवाब दिया, "नहीं, अज़रा ! अच्छे लोग हैं।" उसने कहा।

वह ख़ामोशी से उसको सहारा दिए चलती रही।

"परवेज़ कल मेरे पास बैठा रहा था। कह रहा था, जंग फिर छिड़ गई है। हिन्दोस्तान पर मुसीबत आएगी।"

"कब आया था ? पारसाल ?" अज़रा ने तन्ज़[11] से पूछा।

"बेवकूफ़ मत बनो। जंग छिड़े हुए एक हफ़्ता हुआ है। मुझे पूछने आया था।"

"मेरे सामने क्यों नहीं आता ?" अज़रा ने गुर्राकर कहा, "वह औरत...उसकी बीवी ?"

---

1. प्रभावित, 2. रहस्यपूर्ण, 3. श्रद्धा, 4. सम्मान, 5. आकर्षक, 6. अतीत, 7. विस्तार, 8. उद्दंडता, 9. सुशील, 10. तिरस्कार, 11. व्यंग्य।

नईम ने उस बाज़ू से, जो अज़रा के कन्धों पर था, उसे अपने साथ लगा लिया और मुड़कर चलने लगा। अज़रा ने ज़िल्लत[1] के आँसू छुपाने के लिए उसके नक़ली बाज़ू को हाथों में लेकर दबाया। यहाँ तक कि उसे डर महसूस होने लगा कि वह टूट जाएगा।

"डॉक्टर ने कहा है, सीढ़ियाँ चढ़ने की वर्ज़िश तुम्हारे लिए मुफ़ीद है !"

नईम ने बेहद उकता कर एक लम्बा-सा "ओह" कहा। "डॉक्टर...डॉक्टर...डॉक्टर...मुझे डॉक्टर की ज़रूरत नहीं।" उसने रुककर अज़रा को प्यार और उदासी से देखा, "मुझे सिर्फ़ तुम्हारी ज़रूरत है।"

"पता नहीं, नईम ! पर यह कुछ अजीब-सा लगता है मुझे। एक दफ़ा जब तुम नहीं थे, तो मैंने कमरा तब्दील करने का इरादा किया, लेकिन जब उन्होंने मेरा सामान बाहर निकाला, तो मुझे यूँ लगा, जैसे मैं बाहर जा रही हूँ। इस घर से बाहर, हमेशा की जला वतनी[2] पे या कहाँ ? मुझे अजीब-सा ग़रीबुलवतनी[3] का एहसास हुआ। अपने सामान को बाहर पड़ा देखकर मेरा जी चाहा, कि चीख़-चीख़कर रोऊँ। मैं आख़िरी बार ख़ाली कमरे में दाख़िल हुई और अपने क़दमों की चाप सुनी, जो दीवारों में से आ रही थी, जहाँ से सारी तस्वीरें उतार ली गई थीं, और आतशदान नंगा था, ठंडा और ठोस और बेहिस[4]। मैंने उसे छुआ...और दरीचा ? सिर्फ़ दरीचा था, जिसने मुझे सोचने पर मजबूर किया। पता है नईम, कमरा ख़ाली हो चुका था, अजनबी और वीरान, लेकिन दरीचे में यूकिलिप्टस के पत्ते झूम रहे थे, सब्ज़ और ख़ुशबूदार, जिनके साथ मैं हमेशा से रहती आई थी, जिनसे मैं इतनी अच्छी तरह वाक़िफ़ थी, जिनको मैंने ग़ुस्से में आकर नोचा भी था और प्यार से थपका भी था, वे बेजान नहीं थे।" उसने बे-यक़ीनी से नईम की तरफ़ देखा, "वे बेजान नहीं थे। मैंने हाथ बढ़ाकर उन्हें छुआ और मुझे पुरानी दोस्ती और अपनाइयत का एहसास हुआ। वे ज़ोर-ज़ोर से हिलने लगे। मैंने फ़ैसला किया कि कोई मुझे यहाँ से नहीं निकाल सकता। मैं यहीं रहूँगी, हमेशा-हमेशा...हम यहीं रहेंगे नईम, ऐं ?"

"हाँ-हाँ," वह हँसा, "हम यहीं रहेंगे, हालाँकि मैं यूकिलिप्टस की बू से तंग आ चुका हूँ।"

हवा अचानक तेज़ी से चलने लगी और फ़व्वारे की फुहार से बचने के लिए वे वहाँ से हट आए। दूसरे लॉन में वे सब शोर मचा-मचाकर उड़े हुए ताश के पत्तों को इकट्ठा कर रहे थे। दिन ख़त्म हो चुका था और आसमान पर बादल जमा हो रहे थे।

"आज फिर बारिश आएगी।" नईम ने आसमान की तरफ़ देखते हुए कहा, "बारिश के लिए हमारा कमरा अच्छा नहीं है।"

"बारिशों से तंग आकर ही मैंने बदलने का इरादा किया था।"

दिन की घटती हुई रौशनी में सब्ज़े के किनारे-किनारे चलते हुए अज़रा की नज़र अपने हाथ पर पड़ी, जिससे वह नईम को सहारा दिए हुए थी। उसके हाथ पर बेशुमार झुर्रियाँ पड़ चुकी थीं, और जिल्द जगह-जगह से इकट्ठी होकर लटकने लगी थी। अचानक डरकर उसने सोचा कि वह बूढ़ी हो रही है। उसने शक भरी नज़रों से अपने ख़ाविन्द को देखा। नईम का तन्दुरुस्त हाथ उसी तरह मज़बूत और फूला हुआ था। उसका जिस्म बीमार था, लेकिन उसकी आँखों में जवानी थी, और बला की कशिश थी और वह उसी तरह सिर ऊँचा उठाकर चलता था। उसने अज़रा की अजनबी नज़रों को महसूस करके आहिस्ता से उसे अपने साथ लगा लिया। लेकिन उस बदबख़्त[5] लम्हे में अज़रा के दिल पर से एक बे-नाम हसद[6] का साया गुज़र गया। उसने जल्दी से अपना हाथ खींच लिया। नईम लड़खड़ाकर सँभला। सहारे के लिए उसने दो-एक बार हवा में हाथ फैलाया। अज़रा उससे अलग दोनों बाज़ू लटकाए ख़ामोश खड़ी रही।

आख़िर वह छड़ी के सहारे उछलकर उसके क़रीब आया, "क्या बात है अज़रा ?"

1. अपमान, 2. देश-निकाला, 3. प्रवास, 4. निर्जीव, 5. अभागा पल, 6. ईर्ष्या।

अज़रा ने, जो डरी हुई नज़रों से अँधेरे में देख रही थी, चौंककर उसकी तरफ़ देखा। उसके बड़े-से, उदास, परेशान चेहरे को देखते हुए अचानक उसे उस महबूब इनसान की बेपनाह बेकसी का एहसास हुआ। एक बेदर्द तरहुम[1] ने उसके दिल को झँझोड़कर रख दिया। वह सीने पर हाथ रखकर झुकी और रोने लगी।

''मैं सोच रही थी।'' उसने दुख से बेताब होकर कहा।

''मत सोचो...मत सोचो।'' नईम ने जल्दी से उसे बाज़ू में समेट लिया, ''सोच हमें ख़त्म कर देती है। हम सोचे बग़ैर भी रह सकते हैं।''

फिर वह एक साथ उसका सहारा लिए और उसे बाज़ू में समेटे चलने लगा। उसके माथे पर अभी तक त्योरी थी।

''मैं सोच रही थी, वे किस क़दर ख़ुश हो रहे हैं।'' देर के बाद अज़रा ने ज़हरीले जज़्बात का रुख़ मोड़ा। नईम ने सिर उठाकर सामनेवाले गिरोह को देखा। वे अब एक-दूसरे के पीछे भागते हुए अन्दर की तरफ़ जा रहे थे।

''चलो, हम भी वहाँ चलें।'' नईम ने हँसकर कहा।

अज़रा ने दहलकर उसकी तरफ़ देखा, ''नहीं...नहीं...'' उसने बेख़याली से सिर हिलाया, ''वे इस क़दर कमीने हैं, परवेज़ और उसकी बीवी और उसका लड़का और नजमी और सब...सब...'' उसने चीख़कर कहा और नईम की बग़ल में मुँह छुपाकर सिसकी ली।

''मत सोचो...मत सोचो।'' नईम ने नाराज़गी से दुहराया।

''तुम नहीं समझते। वे हमें अपने आप में से नहीं जानते। वे जब तुम्हें देखकर हाथ हिलाते हैं, तो मुझे महसूस होता है कि वे तुम पर तरस खा रहे हैं, कि वे किसी बात पर पछता रहे हैं। वे हमें नापसन्द करते हैं। तुमने देखा है, वे किस क़दर एहतियात के साथ, किस क़दर अख़्लाक़ से तुम्हारी ख़ैरियत पूछते हैं। कैसे कमीनेपन के एहसासे-बरतरी के साथ, ग़ैर-मामूली नर्मी के साथ, जैसे उनको सिखाया गया है।'' उसने वहशत से नईम की तरफ़ देखा, ''जैसे हम सबको सिखाया गया था। छोटे-मोटे ज़मींदार, सरकारी अहलकार, मुंशी, मुज़ारे। 'बाबा हम इसका घोड़ा बनाएँगे...' 'नहीं बीबी, पहले इनको बाबा बोलो। फिर यह घोड़ा बनेंगे।' 'ही-ही-ही रानी बीबी। आइए, हम आपका घोड़ा बनें।' यह हमारी तर्बियत[2] थी। वे अपनी तर्बियत को नहीं भूल सकते...मैं भूल गई हूँ। मैं तुमसे मुहब्बत करती हूँ। मैं जानती हूँ कि मुहब्बत में आन कर हमारी तर्बियत के वे सारे साल कुछ भी नहीं रह जाते, लेकिन वे उसके क़ाबिल नहीं हैं। वे महज़ अपने-अपने ग़ुरूर को सम्भाले ज़िन्दगी गुज़ार रहे हैं और मुझे उन सारी चीज़ों की याद दिलाते हैं, जो तकलीफ़देह हैं। मैं यहाँ नहीं रहना चाहती। हम यहाँ से चले जाएँगे। नईम, मैं अपने घर में कैसी जलावतनी की ज़िन्दगी गुज़ार रही हूँ। तुम्हें पता है ?'' वह रोकर बोली।

''पागल हुई हो ?'' नईम ने सिर्फ़ इतना कहा, ''पागल हुई हो ?'' और उसका हाथ पकड़कर दबाया। अँधेरा होने के बावजूद किसी लाशुऊरी ख़ौफ़ के असर से अज़रा ने अपने हाथ की तरफ़ देखा और उसे नईम के हाथ में छुपाने की कोशिश की। एक बेवजह रंज ने उसकी आँखों को धुँधला दिया। थोड़ी देर के बाद उसने अपने आप पर क़ाबू पा लिया।

''मैं रोऊँगी नहीं, फ़िक्र मत करो। मैं रो सकती ही नहीं, सिर्फ़ रोने की नक़ल कर सकती हूँ। नईम, मुझे ख़याल होता है कि रोने के लिए जवानी चाहिए और दिल में ज़ोर होना चाहिए और सच्चाई ? एक बूढ़ा होता हुआ पशेमान[3] शख़्स अज़ीयत[4] सहता है, मज़लूमियत[5] और ख़ामोशी के साथ। आख़िरकार ज़िन्दगी में इस क़दर कड़ी पशेमानी है।'' उसने सपाट आवाज़ में कहा। नईम कुछ कहे बग़ैर उसके साथ-साथ चलता रहा।

1. दया, 2. प्रशिक्षण, 3. लज्जित, 4. यातना, 5. उत्पीड़न।

खट्टे की बाड़ के पीछे सड़क पर से ख़ानाबदोशों का एक कारवाँ गुज़र रहा था। उनकी बैलगाड़ियाँ और उनके ऊँट और उनकी औरतें और मर्द सुस्त-रफ़्तारी और आज़ादी से अँधेरे में सफ़र तय कर रहे थे। कहीं-कहीं मद्धिम लालटेनें लटक रही थीं। एक नौ-उम्र लड़का ऊँट की पुश्त पर बैठा बाँसुरी बजा रहा था। बारिश से पहले की तेज़ हवा में बे-फ़न बाँसुरी की आवाज़ कभी दूर चली जाती, कभी पास आ जाती और मूसीक़ी का असर पैदा करती। "हवा ने उसे फ़नकार बना दिया है।" बहुत-से गडमड ख़यालात के दरमियान नईम ने सोचा, "हवा ने और आज़ादी ने...और उसमें शामिल बैलों के क़दमों की आवाज़ और बैलगाड़ियों के पहियों की और इक्का-दुक्का मर्दों और औरतों की बातों की आवाज़ है, और उसमें शामिल रात है..." उसके ज़ेहन में वह मख़सूस कनफ़्यूज़न था, जो किसी तेज़ एहसास का पेश-ख़ैमा[1] होता है, जिससे पहले हज़ारों छोटे-छोटे बेतुके ख़यालात तेज़ी से आए चले जाते हैं। "रात जो हमारे और तुम्हारे दरमियान आज़ादी और सफ़र और हज़ीमत[2] लेकर आती है, कितने फ़ासिले लेकर आती है।" उसने सोचा और माथे पर बारिश के पहले क़तरे महसूस करके बरामदे की तरफ़ मुड़ा। "तुम सूरज की तपिश से बचने के लिए रात को सफ़र करते हो और फिर बारिश आ जाती है। ख़ुदा हाफ़िज़ ! तुम्हारा घर कहाँ है ? अब तुम अपने लिए बारिश का एक घर बनाओ।" उसने सोचा कि शायद अब वह हँसेगा, लेकिन दरअसल वह बेहद संजीदा और उदास था, "यह कौन है ? यह अँधेरे में सीढ़ियों पर कौन खड़ा है ?"

"यह कौन है ?" उसने बेख़याली से ऊँची आवाज़ में पूछा।

"नजमी..." अज़रा हक़ारत से बोली, "जाने अपने आपको क्या समझती है ?"

बरामदे में से गुज़रते हुए अज़रा रुक गई। रौशन आग़ा अपनी स्टडी में बैठे हुए नज़र आ रहे थे। उनका चेहरा ज़र्द था और जिस्म बूढ़ा हो चुका था। लैम्प की रौशनी में वह बेहिसो-हरकत[3] किताब पर झुके हुए थे।

"नईम, बाबा दुनिया के बेहतरीन इनसानों में से हैं।" वह चमकती हुई आँखों से नईम को देखती हुई बोली, "वह दुनिया की तमाम अच्छी बातों के अहल हैं। मैं सिर्फ़ उनसे मुहब्बत करती हूँ।"

नईम चल पड़ा। "वह वाहिद शख़्स है, जिससे मुझे नफ़रत है। मैं क्या कर सकता हूँ ?" उसने सोचा।

अगले कमरे में वे सब खाने की मेज़ पर बैठे थे और नजमी हाथ हिला-हिलाकर कोई बात सुना रही थी।

"और नजमी बेहद नफ़ीस लड़की है।" बेद की आरामकुर्सी में बैठते हुए उसने सोचा।

बाहर बारिश शुरू हो चुकी थी, मगर कमरे में दिन भर की गर्म हवा रुकी हुई थी। जब अज़रा ने खिड़की खोली, तो बारिश की गीली ठंडी हवा अन्दर दाख़िल हुई। वह नईम की तरफ़ पीठ किए खिड़की में ख़ड़ी रही। निचली मंज़िल में उनके हँसने और प्लेटों और चमचों के बजने की आवाज़ें आ रही थीं। वह उकताकर खिड़की में से हट आई। चलते-चलते रुककर उसने नईम का और अपना बिस्तर ठीक किया और दवाई की बोतलों और गिलासों को तरतीब से रखा। बाहर तूफ़ान तेज़ होता जा रहा था। बिजली की कड़क से सहमकर जब वह खिड़की बन्द करने के लिए बढ़ी, तो उसने देखा कि यह अजीब क़िस्म का तूफ़ान था, जिसके साथ हवा का नामो-निशान न था और बारिश पत्थरों के-से भारीपन के साथ सीधी गिर रही थी। उसने दहलकर खिड़की बन्द कर दी। बिजली के ख़ौफ़नाक धमाके के साथ शीशों के कड़कड़ाने की आवाज़ आई। वह बिस्तर की चादर को फिर से फैलाने लगी।

"तुम उनको यह काम क्यों नहीं करने देतीं।" नईम ने रौशन महल के इतने सारे नौकरों के

1. पूर्वाभास, 2. हार, पराजय, 3. निश्चेष्ट।

मुतअल्लिक़ सोचते हुए कहा।

"वे हमारे नौकर नहीं हैं।" अज़रा ने यह कहकर सिरहाने को उठाकर फिर से रखा और दवाइयोंवाली मेज़ को खिसकाया और क़ालीन के कोने को पाँव से पहले उलटा, फिर सीधा किया और ठिठककर नईम को देखा और देखती रही। उस लम्बे, सुस्त-रफ़्तार पल में उसकी परेशानी थोड़ी-सी नदामत[1] में तब्दील हो गई।

"यानी हम तो चले ही जाएँगे...उनसे हमारा तअल्लुक़ क्या...क्यों ?" उसने कहा। इस कोशिश में नाकाम होकर वह फिर परेशान हो गई और पहले से ज़्यादा बेतुकेपन के साथ कमरे में फिरने लगी।

"हम कब जाएँगे ? अगले महीने ? शायद तुम ठीक हो जाओ।" उसने बेचैनी से जल्द-जल्द कहा।

अब वे सब आहिस्ता-आहिस्ता बातें करते हुए ऊपर आ रहे थे। बादल की गरज के साथ उनकी आवाज़ दब जाती और फिर आने लगती। वह पेट-भरे और ख़ुश घरेलू इनसानों की आवाज़ें थीं, जो ज़िन्दगी से मुकम्मल तौर पर मुत्मइन और महफ़ूज़ थे। उन्हें तूफ़ानी रात की कोई ख़बर न थी। उनकी बातचीत में गहरी, बेतकल्लुफ़ अपनाइयत थी, जो क़तई तौर पर रचे-मचे हुए मानूस घरेलू तअल्लुक़ात से पैदा होती है। उनमें कोई खिंचाव, कोई रख-रखाव न था। बिजली की कड़क के साथ-साथ वे हँस रहे थे। अचानक नईम को अपने और अज़रा के ग़ैर-फ़ितरी,[2] तकलीफ़देह, तअल्लुक़ का एहसास हुआ और उसने महसूस किया कि उन दोनों के आस-पास एक बे-नाम, बे-वजह ख़ौफ़ रेंग रहा था, जिसने उनकी ज़िन्दगियों को कमज़ोर बना दिया था, कि वे दो एक-दूसरे से अलग, तन्हा और बेहक़ीक़त[3] वुजूद थे, जो एक मुकम्मल, सेहतमन्द जिस्म से टूटकर जुदा हो चुके थे और आहिस्ता-आहिस्ता मर रहे थे। दुनिया की तमाम बुराइयों को एक-एक करके जमा कर रहे थे।

उसने घबराकर आँखें खोल दीं।

"खिड़की खोल दो।" उसने भारी, ख़ुश्क गले से कहा।

अज़रा वहीं खड़ी शीशों पर मुसलसल चमकती हुई बिजली को देखती रही। नईम ने उसे तेज़ चीरती हुई नज़रों से देखा, जिन्हें रहम और बेबसी ने आहिस्ता-आहिस्ता नर्म बना दिया। गैलरी में से हँसने की आवाज़ आई। यह लापरवाह, बेतकल्लुफ़ हँसी थी, जिसमें आवारगी और सारी दुनिया के लिए हक़ारत का तअस्सुर[4] था। यह एक क़ाबिले-नफ़रत हँसी थी।

"तुमने सुना ? वह हमेशा इसी तरह हँसती है...वह औरत" अज़रा ने कहा।

परवेज़ और उसकी बीवी की आवाज़ आहिस्ता-आहिस्ता दूर चली गई। वे अभी तक हँस रहे थे। नजमी ने रात का नन्हा-सा बल्ब कमरे में जलता हुआ देखा और दबे पाँव दरवाज़े के आगे से गुज़र गई।

"आओ...यहाँ आओ।" नईम ने तेज़ी से कहा। अज़रा ने देखा कि वह बेहद घबरा गया है। वह जाकर कुर्सी के बाज़ू पर बैठ गई। नईम ने उसकी कमर के गिर्द बाज़ू डालकर अपनी तरफ़ खींचा।

"तुम ठीक हो ?"

"मैं बिलकुल ठीक हूँ। क्या, क्या बात है ?"

"कुछ नहीं," नईम ने लम्बा साँस लेकर दूसरी तरफ़ देखा, "मैंने सोचा, शायद तुम उससे डरती हो।"

"डरना..." अज़रा फुँकारी, "उससे...उससे..."

---

1. पछतावे, 2. अस्वाभाविक, 3. निराधार, 4. तिरस्कार का भाव।

"नहीं अज़रा..." वह उसकी छाती पर सिर रगड़कर पुकारा, "तुम बस यहाँ बैठी रहो, ख़ामोश। कुछ मत कहो, कुछ मत सोचो। मैं ज़िन्दा रहना चाहता हूँ...ख़ुशी से। मुझे तुम्हारी ज़रूरत है। मैं कमज़ोर महसूस कर रहा हूँ, यहाँ..." उसने सीने की तरफ़ इशारा किया।

"नईम, हाँ, मैं यहाँ बैठी हूँ।" अज़रा ने परेशान होकर उसके सीने पर हाथ रखा, "मैं ख़ामोशी से बैठी हूँ। हम यहाँ से चलें..."

"ओह नहीं...नहीं..." नईम ने उसकी कमर से हाथ निकालकर माथे पर रख लिया, "नहीं, नहीं...तुम नहीं समझतीं। तुम ख़ामोश रहो। हम यहीं रहेंगे। वे हमारे दोस्त हैं, रिश्तेदार हैं, हमदर्द हैं। मैं मरना नहीं चाहता, काम करना चाहता हूँ। मैं सरकारी मुलाज़िमत कर लूँगा या जो तुम कहोगी, करूँगा। जो रौशन आग़ा कहेंगे, करूँगा। यह हमारा घर है। मैं तंग आ चुका हूँ।"

अज़रा घबराकर फ़र्श पर बैठ गई। फिर आहिस्ता-आहिस्ता वह उस परेशानी की धुँध में से बाहर निकल आई। उसने कई बार दिल में नईम के अल्फ़ाज़ दुहराए। उसे यक़ीन नहीं आ रहा था। ज़िन्दगी में पहली बार नईम के मुँह से मुवाफ़क़त[1] की बातें सुनकर वह भौंचक्की रह गई, क्योंकि वह ख़ुद नईम के साथ चलने की कोशिश में उन ख़यालात को दफ़न कर चुकी थी, भूल चुकी थी, मुआफ़ कर चुकी थी। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या कहे, क्या करे ?

"अच्छा ? अच्छा ?" नईम के बाज़ू पर हाथ फेरते हुए उसने धीरे-धीरे से दुहराया। बरसों की दबी हुई, ज़ंग लगी ख़्वाहिशात ज़िन्दा हो रही थीं और नईम के अल्फ़ाज़ उसके ज़ेहन में शोर मचा रहे थे। वह कोई फ़ैसला न कर सकी कि अब वह क्या करनेवाली है ? क़हक़हा लगाकर हँसनेवाली है या चीख़-चीख़कर रोनेवाली है। वह दोनों बातें एक-सी आसानी और ख़ुशी के साथ कर सकती थी, लेकिन जज़्बात के तहलके में उसने यह भी सोचा कि इन बातों के लिए अब वह बूढ़ी हो चुकी थी। कहीं क़रीब ही ख़ौफ़नाक धमाके के साथ बिजली गिरी। नईम चौंककर उठ बैठा, लेकिन अज़रा के ख़्वाबों और ख़्वाहिशों के जज़ीरे में मौसम बेहद चमकदार और ख़ामोश और समन्दर पुर-सुकून था। उसने कुछ भी न किया। महज़ नईम को खो देने के डर से उसका हाथ मज़बूती से पकड़े बैठी रही। जिस तेज़ी के साथ उसकी सोच में तब्दीली हुई, वह हैरतअंगेज़ थी।

"मैंने तुम्हारे लिए क्या किया है ! तुम्हें अपने बहन-भाइयों का, माँ-बाप का, सारे घर का दुश्मन बना दिया है। ओह..." उसने अज़रा का हाथ मज़बूती और रंज से दबाया, "मैंने तुम्हारे दिल में नफ़रत और ख़ौफ़ का बीज बोया है। मैंने तुम्हें ज़लील किया है, सबके सामने। मैंने तुम्हें एक हारी हुई ज़िन्दगी दी है। तुम एक अज़ीम औरत हो। मैंने तुम्हें तबाह कर दिया है, मुहब्बत के बदले में, अब ख़ुद तबाह हो रहा हूँ। मैं क्या कर सकता हूँ ? तुमने कहा था, आख़िरकार ज़िन्दगी में इतना कड़ा पछतावा है। अज़रा, मैं तंग आ चुका हूँ। मैं बाहर जाना चाहता हूँ। काम करना चाहता हूँ, कोई भी, कुछ भी। क्या फ़र्क़ पड़ता है, जब मैं मर रहा हूँ। मैं अब लेट नहीं सकता, ओह..." उसने अपना गला बन्द होता हुआ महसूस किया। वह ज़ोर से खाँसा और देर तक खाँसता रहा। पुराने कमज़ोर मरीज़ की तरह उसकी आँखों से पानी बहने लगा। "अज़रा, डॉक्टर को मत आने दो। मैं अपने आपको हलका कर लूँगा...मैं और नहीं लेट सकता...क़रीब आओ...मैं कमज़ोर... ओह...अज़रा, मैं रोना नहीं चाहता..."

आख़िरकार वह कुछ भी न कर सका और बरसों की जिस्मानी और रूहानी अज़ीयत से टूटकर रोने लगा, एक मग़रूर और लाचार बुड्ढे की तरह, जो रो नहीं सकता, लेकिन ज़िन्दगी की इन्तिहाई बेबसी पर पहुँचकर आँसू भोंडेपन से, बन्द होते हुए गले में से निकलती हुई मुख़्तसर झटकेदार आवाज़ के साथ आने लगते हैं और चेहरे का रूप इतना भोंडा हो जाता है, जिसे देखकर छोटी उम्र के नादान लोग हँसने लगते हैं।

---

1. अनुकूलता।

अज़रा ने इत्मीनान के साथ उसे सहारा देकर बिस्तर पर लिटा दिया। देर के बाद जब नईम रग़बत के साथ खाना खा रहा था, वह आहिस्ता से मुस्कराई। उस रात वह लिपटकर उसके साथ सोई रही और अपनी गर्म, ख़ुश्क हथेलियाँ उसके नीम-मुर्दा जिस्म पर फेरती रही और बाहर के तूफ़ान से उतनी ही बेख़बर रही, जितने दूसरे लोग, हालाँकि वह बेहद तूफ़ानी रात थी।

बँटवारा

व इज़ा क़ीला लहुम ला तुफ़्सिदू फ़िलअर्ज़े क़ालू इन्नमा नह्नु मुस्लिहून (और जब उनको कहिए मुल्क में फ़साद न डालो, तो कहें कि हमारा काम तो सँवार है)

अल क़ुर्आन

38

मुन्ना लाल सीमेंट फ़ैक्टरी में दोपहर का घंटा हुआ, तो वे सब खाने की पोटलियाँ खोलकर अपनी-अपनी जगह पर बैठ गए। उनको एक जगह पर जमा होकर खाने की इजाज़त न थी, क्योंकि फ़ैक्टरी चौबीस घंटे चलती थी और मज़दूर और कारीगर आठ-आठ घंटे की तीन शिफ़्टों में काम करते थे। उनमें से हर एक को आठ घंटे मुसलसल काम करना पड़ता था। जहाँ तक खाने का तअल्लुक़ था, क़ानून में कोई ऐसा शिक़[1] न थी, जिससे ज़ाहिर होता कि ये लोग खाने की अहलियत भी रखते थे। यह फ़ैक्टरी एक्ट था, जिसके बनानेवाले, कि जानते थे कि मशीनरी के बग़ैर दुनिया भर के आदमी मिलकर भी सीमेंट नहीं बना सकते, मशीनरी की अहमीयत का ख़ूब इल्म रखते थे। कहा जाता है कि जब 'एक्ट' बनाया जा रहा था, तो एकाध मर्तबा खाने का ज़िक्र आने पर किसी तरफ़ से मज़ाक़ में कहा गया कि हर क़िस्म के खाने का ज़िक्र हमारी मज़हबी और आसमानी किताबों में बहुत पहले ही आ चुका है, अलबत्ता सीमेंट की अहमीयत को वहाँ पर ख़ौफ़नाक हद तक नज़रअन्दाज़ कर दिया गया है।

चुनाँचे 'फ़ैक्टरी एक्ट' में खाने का कोई ज़िक्र नहीं।

लेकिन खाने पर चूँकि आम लोगों की ज़िन्दगी का दारोमदार होता है इसलिए जब अफ़सरों के लिए दोपहर के वक़्फ़े का घंटा बजता तो वे लोग भी मशीनों पर नज़र रखे हुए, अपने-अपने काम पर चौकस बैठे जल्दी-जल्दी खाना खा लिया करते और उनके फ़ोरमैन, कि ख़ुद भी खाना खाते थे, उनकी इन छोटी-छोटी बेपरवाइयों पर ध्यान न देते। वे सब अपना खाना साथ लेकर आते और काम पर पहुँचकर अपनी पोटलियों को तख़्तों पर या मशीनों के ग़ैर-मुहर्रिक[2] पुरज़ों पर रख देते। इस तरह खाने के वक़्फ़े तक वह पोटली मशीन का एक साकिन[3] हिस्सा बन जाती, लेकिन उसके अन्दर कोई पुरज़ा, दूसरे पोशीदा[4] पुरज़ों की तरह, लगातार चलता रहता, और अपने साथ एक इनसान को भी मुस्तक़िल चलाए रखता। उसे तरोताज़ा रखता और दूसरे पुरज़ों से उसका ध्यान हटाए रखता। खाने के बाद वे छोटे-से कपड़े को झाड़ते, उसमें रची हुई पुरानी, सियाह चिकनाई से अपने ख़ुश्क चेहरों और गर्दनों को चिकना करते और कसकर सिरों पर बाँध लेते। फिर वे दीवार के सहारे बैठकर एक-एक सिगरेट पीते और मशीनरी की भारी, नींद लानेवाली, मुस्तक़िल ताल के नीचे जागते रहने की कोशिश करते हुए छुट्टी के वक़्त का इन्तिज़ार करते रहते। दूसरे पुरज़ों से उन्हें कभी भी दिलचस्पी न हुई थी।

इसके बावजूद, कभी-कभी वे अपनी जगह से खिसकने में कामयाब हो जाते। इस सिलसिले में पेशाब का बहाना सबसे ज़्यादा कामयाब रहता। कभी-कभी तो वे दिन में कई-कई बार बीमारी का बहाना करके जाते और टीन की बनी हुई छोटी-छोटी टट्टियों में दीवार के सहारे खड़े होकर सिगरेट पीते, ऊँची आवाज़ में एक-दूसरे से बातें करते और अकेले होते, तो दीवार पर फ़ोरमैन के

---

1. धारा, 2. गतिहीन, 3. निश्चल, 4. छिपा हुआ।

ख़िलाफ़ बुरी-बुरी बातें लिखते और नफ़रत से होंठ सुकेड़कर मुस्कराते। फिर सिगरेट को कूड़े में फेंककर इन्तिहाई सुस्त-रफ़्तारी के साथ वापस अपनी जगह तक आते। ऐसे में अगर कोई फ़ोरमैन उन्हें देख लेता, तो गालियों से भरपूर ज़बान में उन्हें काम पर पहुँचने को कहता। जवाब में वे ढिठाई से हँसते और गालियाँ बड़बड़ाते हुए चाल को हलका-सा तेज़ कर देते। मशीनरी ने उन्हें बिलकुल निकम्मा कर दिया था।

बातें करने का उन्हें यूँ भी मौक़ा कम ही मिलता। मशीनों का शोर इतना ज़्यादा था कि जब कभी वे ख़ामोश बैठे-बैठे उकता जाते, तो साथवाले से बात करने के लिए उन्हें पूरी आवाज़ से चीख़ना पड़ता, चुनाँचे दो-एक बातों में ही उनके गले की तसल्ली हो जाती। वे उन गूँगे, कुन्द-ज़ेहन और सदा थके-माँदे गधों की तरह थे, जिन्हें चलाने के लिए क़दम-क़दम पर डंडे मारने की ज़रूरत पड़ती है।

वह मई के महीने का एक बेहद गर्म दिन था और बाहर लू चल रही थी। अन्दर वे अपनी-अपनी पोटलियाँ खोले खाने में मसरूफ़ थे। सिर्फ़ अली हस्बे-मामूल ख़ामोश बैठा ख़ाली-ख़ाली नज़रों से मशीन को तके जा रहा था। उसकी बीवी बीमार रहते-रहते अब चारपाई से जा लगी थी और वह दिन में सिर्फ़ एक बार खाना खाता था। कभी-कभी ख़ुशक़िस्मती से उसकी आँख ज़रा सवेरे खुल जाती, तो वह जल्द-जल्द रोटी पकाकर खा लेता। लेकिन वह शुरू-शुरू की बात थी। अब वह इस सारे झमेले से इतना बेज़ार और बेपरवाह हो गया था कि सोने-जागने, खाने-पीने और काम पर जाने से बहुत कम दिलचस्पी उसको रह गई थी और वह भूका रहने का आदी हो चुका था। सुबह सवेरे जब उसकी आँख खुलती, तो वह ख़ामोशी से बिस्तर पर पड़ा आयशा की गहरी साँसों, मुँह अँधेरे के परिन्दों और सुबह सवेरे की नींद से भरी आवाज़ों को सुनता रहता। फिर वक़्ते-मुक़र्ररा पर उठकर ठंडे पानी के छींटे मारता, चन्द घूँट पीता और आयशा पर एक आख़िरी नज़र डालकर काम पर चला जाता। शाम को आकर आग जलाता और पानी में सब्ज़ियाँ उबालता, गेहूँ या मकई की मोटी-मोटी रोटियाँ पकाता और पहले आयशा को खिलाता, फिर ख़ुद खाता। आयशा ज़्यादातर उबली हुई सब्ज़ी खाती। कभी-कभार वे चावल और गोश्त भी खाते। ख़ामोशी से खाना खाकर वे अपनी जगह पर लेट जाते और थोड़ी देर के बाद आवारा बिल्लियाँ आकर जूठे बर्तन चाटने लगतीं। बातें करने की हफ़्तों नौबत न आती।

हर तीन माह के बाद जब उसके पास कुछ पैसे जमा हो जाते, तो वह डॉक्टर को लेकर आता, जो उसकी बीवी के लिए कई क़िस्म की दवाइयाँ तजवीज़ करके चला जाता। उनमें जितनी वह ख़रीदकर ला सकता था, ले आता और बाक़ाइदगी से आयशा को पिलाने लगता। सिर्फ़ एक बाक़ाइदगी और एक क़ानून, जो उसकी ज़िन्दगी में रह गया था, आयशा की दवा का था। जितना वक़्त वह उसके पास रहता, एक डॉक्टर की-सी सख़्ती के साथ वक़्त पर दवा पिलाता रहता बग़ैर किसी जज़्बे के, जैसे मशीन को तेल देते हैं। बीवी के साथ उसकी वफ़ादारी, भूके पेट काम करने की अहलियत और दुनिया के दूसरे कामों से उसके इस्तिग़ना[1] को देखकर उसके साथी उसे 'अली साईं' या सिर्फ़ 'साईं' के नाम से पुकारने लगे थे।

इसके बावजूद यह दोपहर का वक़्त उसके लिए सबसे मुश्किल होता। पहले-पहल उसका कोई-न- कोई साथी उसे खाने की दावत दे देता और वह कुछ-न-कुछ खा लिया करता, लेकिन कोई किसी को कब तक खिला सकता था। अब उसको कोई भी न पूछता। सब जानते थे कि यह उसका मम्मूल[2] बन चुका था और इसके अलावा उनमें से हर एक अपने दिल में मुत्मइन था कि अपनी दोस्ती की हद तक वह काफ़ी अरसे तक उसको खिला चुका था। यह बात न थी कि अली सख़्त भूक महसूस किया करता, बल्कि उसकी खाने की ख़्वाहिश ही रोज़-ब-रोज़ कम होती जा रही थी।

1. निस्पृहता, 2. नित्य नियम।

लेकिन वह महसूस करता था कि दोपहर के वक़्त जब वे सब अपने-अपने खाने की पोटलियाँ अपने सामने रखकर बैठते, तो कम-से-कम एक दफ़ा ज़रूर उसकी तरफ़ देख लेते, और खाने के दौरान बराबर नज़रें चुरा-चुराकर उसकी जानिब देखते जाते थे (हालाँकि इसमें ज़्यादातर उसकी सोच शामिल थी) इस सारे वक़्त में वह ख़ाली-ख़ाली नज़रें मशीन पर जमाए बैठा रहता था।

सिर्फ़ एक बिशन था, जो बाक़ाइदगी के साथ दोस्ती निभाए जा रहा था। वह एक बेहद ख़ुश-मिज़ाज नौजवान आदमी था, जो अभी काम सीख रहा था और अपनी माँ के साथ अकेला एक कोठरी में रहता था। उसकी माँ साथवाली क़पड़े की मिल में काम करती थी। किसी ने कभी उसको दुखी न देखा था। वह हमेशा हँसता और हँसाता रहता। अपने साथियों में वह 'कुमारी' के नाम से मशहूर था। इसकी वजह यह थी कि अपने बाज़ू पर उसने एक हसीन औरत की तस्वीर खुदवा रखी थी और जब वह अपनी कलाई और उँगलियों को घुमाता-फिराता, तो बाज़ू के पट्ठों को हरकत देने की वजह से देखनेवालों को खुदी हुई औरत नाचती हुई नज़र आने लगती। हर पहले आदमी की ख़्वाहिश पर वह उसे नचाने लगता, क्योंकि उस पर उसका कुछ भी ख़र्च न होता था। सिर्फ़ अपनी माँ के सामने वह कभी बाज़ू नंगा न किया करता।

वह बारह महीने जौ की रोटी लेकर आता, जिसको वह कच्चे-पक्के बेरों के साथ, जिन्हें वह रास्ते में उगी हुई बेरियों से पत्थर मार-मारकर गिराता, खाया करता। बेरों की ख़ातिर उसको मुँह-अँधेरे घर से चलना पड़ता था। किसी ने उसको कभी कुछ और खाते हुए न देखा था, हालाँकि उसका कहना था कि दीवाली के मौक़े पर घर में वह चावल और गोश्त और गेहूँ की रोटी खाया करते थे। वह बाक़ाइदगी से हर दूसरे-तीसरे दिन अली को बेर दिया करता था और कभी-कभार रोटी का एक टुकड़ा भी दे देता। अली बग़ैर शुक्रिया अदा किए उससे खाने की चीज़ें क़बूल कर लिया करता, क्योंकि वह जानता था कि बिशन अपनी ज़रूरत से ज़्यादा बेर लेकर आता था और रोटी वह उसको सिर्फ़ उसी हालत में देता, जबकि वह ख़ुद पेट भरकर खा चुकता, लेकिन यह दोस्ती सब देखनेवालों की बातें थीं। उन दोनों के दरमियान ऐसी कोई बात न थी। वे उन दो गँवार भाइयों की तरह थे, जो एक मुद्दत तक साथ-साथ रहने के बाद उस उम्र को पहुँच जाते हैं, जब उनमें बग़ैर शुक्रिए के एक-दूसरे की ख़ुशी से बज़ाहिर कोई सरोकार नहीं होता। या फिर उन दो बूढ़े जानवरों की तरह, जो एक जंगल में तन्हा रहते हैं और जिनके दिल में एक-दूसरे के लिए हमदर्दी, रहम और दोस्ती के जज़्बे के सिवा कुछ नहीं होता। जो एक-दूसरे की कमी को महसूस भी करते हैं और मुस्तक़िल नज़रअन्दाज़ भी करते रहते हैं।

इधर कुछ रोज़ से, जब से मज़दूर यूनियन ने हड़ताल का नोटिस दिया था, अली पर बहुत लोगों को नज़रे-करम[1] थी। हर कोई दोपहर के वक़्त उसे खाने की दावत देता और उसके इनकार करने पर इत्मीनान का साँस लेता, क्योंकि दिल से कोई भी न चाहता था कि वह उनकी दावत क़बूल करे। अली भी जानता था, कि नोटिस चूँकि भूक-हड़ताल का था, चुनाँचे यूनियन की नज़र में वह चोटी का आदमी था। लेकिन उसे इससे दिलचस्पी न थी। उसे अपनी बीवी से मुहब्बत थी और वह उसे अकेला नहीं छोड़ सकता था।

वह नोटिस का आख़िरी दिन था। उस दिन भी अली ने बिशन से चन्द बेर लिए और सबकी तरफ़ पीठ करके खाने लगा। वह एक-एक बेर को आहिस्ता-आहिस्ता चबा-चबाकर खा रहा था, जब रहीम दूसरी दफ़ा उसके पास आया।

"कुछ रोटी बच गई है। खा लो।" उसने रोटी बढ़ाते हुए कहा।

अली ने ख़ाली-ख़ाली नज़रें उस पर जमाईं और बेर की गुठली को बार-बार चबाने लगा।

"यहाँ बैठो।" आख़िर उसने कहा, "मैं ज़रा देर के लिए बाहर जा रहा हूँ।"

1. कृपादृष्टि।

रहीम ने ख़ुशी से उसकी जगह बैठना मंज़ूर कर लिया और वह उठकर बाहर निकल आया। बाहर लू चल रही थी।

कुछ देर तक वह दरवाज़े पर रुका, आँखें सुकेड़े, धूप की सफ़ेद जलती हुई चादर को देखता रहा, जो मैदान में बिछी थी। फिर उसने आहिस्ता-आहिस्ता मैदान पार किया और 'वर्कशॉप' के सामने जा रुका। अन्दर ख़रादिए और तरखान और पेंटर और सारे 'हैल्पर' खाना ख़त्म करके दायरे में खड़े सिगरेट पी रहे थे। आनेवाला तूफ़ान सबके सिर पर सवार था, लेकिन सुबह से किसी ने उसका ज़िक्र न किया था। चन्द महीनों से उससे मुतअल्लिक़ तमाम सरगर्मी उनकी ज़िन्दगी का हिस्सा बन चुकी थी, लेकिन आज जबकि वक़्त सिर पर आन पहुँचा था, वह उससे कतरा रहे थे। उसे भुलाने के लिए इधर-उधर की छोटी-छोटी बातें कर रहे थे और बिला-वजह ज़ोर-ज़ोर से हँस रहे थे। अली को देखकर एक साथ सबके ज़ेहन में वह शदीद ख़याल उभर आया। वह फ़ैक्टरी भर में भूक-हड़ताल के लिए मौज़ूँ-तरीन[1] शख़्स था और बहुत ग़रीब। इसके बावजूद किसी को हड़ताल में उसके बैठने के मुतअल्लिक़ यक़ीन न था। किसी को किसी के मुतअल्लिक़ यक़ीन न था। यह इस फ़ैक्टरी की पहली हड़ताल थी।

अली उनके पास जा खड़ा हुआ। हैड फ़िटर ने अली की तरफ़ देखते हुए बात जारी रखी : "तुम नहीं जानते, साईं, पर ये सब जानते हैं। ये यहाँ काम करते हैं। यह सारा उस गंजे का क़ुसूर था (उसने फ़ोरमैन की ख़ाली कुर्सी की तरफ़ इशारा किया) सरासर[2]। उसके गोरों की माँ...कहता है, गोरों से काम सीखकर आया है। क्यों ओए, बोलते क्यों नहीं ?"

"सरासर उस्ताद, सरासर!" एक फ़िटर ने हाथ फैलाकर यक़ीन दिलाया, "यह तो सब मानते हैं। बेचारा करीम। क्या जीदार मर्द था। टूटी हुई टाँग के साथ बातें करता रहा। हाय..."

"और आख़िरी दम तक कहता रहा कि उसको कुछ भी नहीं हुआ।" एक ख़रादिए ने कहा।

"उस वक़्त, अल्लाह गवाह है, मैंने गंजे को एक तरफ़ ले जाकर कान में कहा कि यह गाँठ जो वह दे रहा है, पक्की नहीं। एक टन से ज़्यादा वज़न के लिए यह गाँठ काम दे ही नहीं सकती। पर उसने इस कान से सुना, उससे उड़ा दिया। और तड़ाख़...सबने तो देखा ही कि क्या हुआ। अब ?"

"उसकी भी टाँग तोड़ देनी चाहिए।" किसी ने तजवीज़ किया। सब हँसने लगे।

"सुअर !" हैड फ़िटर गुर्राया, "उसको जेल में फेंका जा सकता था। लेकिन अफ़सर ? जिसको चाहें बचा लें, जिसको चाहें, भूका मार दें। कौन सुनता है ?"

'इलेक्ट्रिक शॉप' से चन्द इलेक्ट्रीशियन निकलकर आ खड़े हुए और सिगरेट पीने लगे। अब हैड फ़िटर अपना और गंजे फ़ोरमैन का मुक़ाबला कर रहा था और काम में अपनी अच्छाई साबित करने की कोशिश कर रहा था। फ़ोरमैन के ख़िलाफ़ तो सब ख़ुशी से सुनते रहे, लेकिन अब उनकी दिलचस्पी ख़त्म हो गई, क्योंकि उनमें ज़्यादातर कारीगर थे और हैड फ़िटर की अच्छाई मानने पर तैयार न थे। चुनाँचे सब आपस में बातें करने लगे, जिससे हैड फ़िटर को ग़ुस्सा आ गया और चिल्ला-चिल्लाकर बोलने लगा। कुछ देर के बाद अगर कोई वहाँ से गुज़रता, तो देखता कि मुक़र्रिर[3] और सामिईन[4] में गला फाड़ने का मुक़ाबला हो रहा है। जल्द ही दोपहर के वक़्फ़े के ख़ातिमे का भोंपू हुआ और वे वहाँ से तितर-बितर होने लगे। अली को जाते हुए देखकर हैड फ़िटर ने बढ़कर उसके कन्धे पर हाथ रखा, "साईं, तुम दिल से ग़रीब हो, मगर अब ज़्यादा अरसे ग़रीब नहीं रह सकते। बैठोगे ? (हड़ताल में)"

1. सबसे ज़्यादा योग्य, 2. नितान्त, 3. वक्ता, 4. श्रोतागण।

"पता नहीं।" अली ने कन्धे उचकाकर कहा और बाहर निकल आया। बाहर अभी तक लू चल रही थी।

उसने उस भयानक इमारत पर, जहाँ वह काम करता था, एक नज़र डाली और दूसरी तरफ़ चल पड़ा। एक और खुली जगह पार करने के बाद वह 'मोटर-वर्कशॉप' में निकल आया। वहाँ पर चन्द मैकेनिक एक ट्रक के खुले हुए इंजन पर झुके बातें कर रहे थे। उनके ग्रीस और तेल लगे चेहरों पर से सियाह पसीने के क़तरे इंजन में टपक रहे थे, और वे बिला-वजह इंजन में हाथ मार रहे थे। दो फ़िटर इंजन के नीचे सीधे लेटे गा रहे थे और ऊपरवालों से बातें कर रहे थे। मशीन उनके दरमियान कोई रुकावट न डाल रही थी। ऊपरवालों ने ख़ामोशी से सिर उठाकर अली को देखा। उसको महसूस हुआ कि वे लोग, जो सिर्फ़ उस इंजन की वजह से वहाँ पर मौजूद थे, असल में उससे इस क़दर अलग थे, कि उनको इस बदसूरत बिगड़ी हुई मशीन से कोई सरोकार न था और वे एक-दूसरे के लिए बे-हक़ीक़त थे, और इसके बावजूद वे सिर्फ़ उस मशीन की ख़ातिर जमा थे। अपने ख़याल के बेतुकेपन पर वह दिल में हँसा और थकी हुई, कड़ी, मुस्तक़िल चाल से वहाँ से गुज़र गया। आगे रेल की पटरियाँ थीं, जिन पर मालगाड़ी के चन्द ख़ाली डिब्बे इधर-उधर खड़े थे। एक डिब्बे के साए में रुककर चन्द मिनट तक उस पर उँगलियाँ बजाने के बाद वह आगे चल पड़ा। 'लोडिंग प्लेटफ़ॉर्म' पर लम्बी मालगाड़ी खड़ी थी और उसमें चीख़ते-चिल्लाते हुए मज़दूर बोरियाँ लाद रहे थे। उसके पीछे बोरियाँ भरने की मशीनों की इमारत थी और सीमेंट की धुआँधार धूल में लिपटे हुए थे, जो गर्मी बढ़ा रही थी। इमारत के पीछे अली के दो पड़ोसी बिजली की ज़मीनदोज़[1] लाइन की मरम्मत करने की ख़ातिर खुदाई कर रहे थे। जब अली उनके पास रुका, तो वे कमर तक गहरे, ताज़ा खुदे हुए गढ़े में खड़े, कुहनियाँ ज़मीन पर टिकाए एक-दूसरे की कलाई मोड़ने की कोशिश कर रहे थे। थोड़ी देर तक ज़ोर लगाने के बाद उन्होंने हाथ छोड़ दिए। यूनुस अली को देखकर हँसा : "कहता है, छोटे सिरवाले मर्द को औरतें पसन्द नहीं करतीं। उसमें मर्दुमी[2] कम होती है। मैंने कहा, आओ तुम्हें मर्दुमी दिखाऊँ। मर्दों के ये तरीक़े हैं।" उसने पंजा फैलाया, "तुम्हारे सिर पर तो दो मन बाल और मन भर पगड़ी है, और जुएँ अलग..." उसने करम सिंह की पगड़ी में उँगली चुभोते हुए कहा। अली मुँह खोलकर हँसा और आगे चल पड़ा। ज़रा दूर पर चन्द बिजलीवाले साए में बैठे खुदाई ख़त्म होने का इन्तिज़ार कर रहे थे। आगे कोयले का गोदाम था जहाँ कोयला मालगाड़ियों पर से उतारा जा रहा था। सियाह काले मज़दूर और गधे कोयला ढो रहे थे। अली ने एक नौ-उम्र लड़के को देखा, जो एक मोटी-सी मूली खा रहा था और साथ-साथ गधे को हाँक रहा था। हर चन्द क़दम पर जब उसका गधा रुक जाता तो वह एक हाथ से उसकी पूँछ उठाता और मूली मुँह से निकालकर उसकी दुम के नीचे दे देता। गधा उछलकर चलने लगता। आगे वह नाली थी, जिससे फ़ैक्टरी का फ़ालतू पानी बाहर जाता था। नाली के किनारे-किनारे कोयला ढोनेवाले वे मज़दूर, जिन्होंने अभी-अभी छुट्टी की थी, नंग-धड़ंग नहा रहे थे। उनके जिस्म कोयले के बने हुए दिखाई दे रहे थे, और वे सफ़ेद-सफ़ेद आँखें और दाँत निकाले बातें कर रहे थे, हँस रहे थे, खड़े होकर पेशाब कर रहे थे और बेशर्मी से बड़े-बड़े बालों में उँगलियाँ डाले खुजा रहे थे। अली ने हवा में गाली दी और नज़र चुराकर वहाँ से गुज़र गया।

39

चार बजेवाली शिफ़्ट ख़त्म हुई, तो सब मज़दूर काम छोड़कर बाहर निकल आए। अगली शिफ़्टवालों को दरवाज़े पर ही रोक लिया गया। मशीनें बहरहाल चलती रहीं, फ़ोरमैनों और सुपरवाइज़रों के

---

1. भूमिगत, 2. पुरुषत्व।

सहारे, जिन्होंने भाग-दौड़कर काम सँभाल लिया था, या चन्द एक मज़दूर थे, जो टोडी बनकर मुंतज़िमीन[1] का साथ देने पर राज़ी हो गए थे।

गेट के बाहर लकड़ी के दो क्रेटों पर चढ़कर यूनियन के प्रेज़ीडेंट ने, जो शहर का एक मामूली वकील था, तक़रीर शुरू की : "मेहनतकशो ! आख़िर वह वक़्त आ पहुँचा है, जब अपनी मेहनतों का पूरा-पूरा सिला[2] हासिल करने के लिए तुम्हें क़ुरबानी देनी होगी। आज तुम्हारी अपनी मेहनत, तुम्हारी मशक़्क़त तुम्हारा ख़ून माँगती है। आज तक तुमने अपनी मेहनत को अपना पसीना दिया है। आज तक तुम्हारे पट्ठों से निचुड़े हुए हज़ारों क़तरे इस ज़मीन में जज़्ब होते रहे हैं। आज अगर यह ज़मीन बोल सकती, तो तुम्हारे नाम पर और तुम्हारी मेहनत पर शाबाशी देती, लेकिन मेहनत के इन सारे सालों में न ज़मीन बोली और न हमारे मालिक सेराब[3] हुए। और इसके बावजूद यह बड़ी-बड़ी इमारतें और यह भारी मशीनरी हज़ारों मज़दूरों और हज़ारों गधों ने देखते-देखते खड़ी कर दी। मज़दूरों और गधों का पसीना एक जगह गिरा और हमारे मालिकों ने समझा कि इन दोनों में कोई फ़र्क़ नहीं है और आज तक यही समझते आ रहे हैं, आज तक, मेरे मज़दूर हमवतनो। उस ज़मीन की तरह जिसमें तुम रहते हो, जिसमें तुम सोते-जागते और काम करते हो, जिसकी मिट्टी से तुम उठे हो और जिसकी ख़ुशबू से तुम इतनी अच्छी तरह वाक़िफ़ हो, आज तक उस ज़मीन की तरह तुम बेज़बान और मुसीबतज़दा रहे और अपने बेहतरीन साथी गधे की तरह बुद्धू रहे और इसके बावजूद तुमने बड़े-बड़े काम किए। तुमने हज़ारों मन वज़नी लोहे की मशीनरी कहाँ-से-कहाँ पहुँचा दी और एक नया शहर आबाद किया। इधर से तुमने ख़ुश्क बेकार पत्थर डाले, और उधर से सीमेंट निकाला। तुमने बंजर, बे-फल पत्थर में से सोना पैदा किया। फिर..." वह रुख़ फ़ेरकर दूसरे गिरोह से मुख़ातिब हुआ, "तुमने इधर से मेहनतकश किसानों की उगाई हुई कपास डाली और उधर से कपड़ा निकाला। वह ख़ूबसूरत, मुलाइम और मज़बूत कपड़ा, जिसने मंडियों में बहार लगा दी है, जिसने मालिकों के जिस्मों को ख़ुशनुमा बना दिया है, और तुम्हारे बच्चे आज तक गलियों में नंगे फिरते हैं और तुम्हारी बीवियों ने बरसों से नया लिबास नहीं देखा। क्या तुम्हारे बग़ैर यह सब कुछ किया जा सकता था ? क्या अपनी सारी दौलत के बावजूद वे कपास के एक तार को भी कपड़े में तब्दील कर सकते थे ? अगर कपास के एक ढेर को रुपयों के एक ढेर के साथ मिला दिया जाए, तो सिर्फ़ उसका वज़न बढ़ जाता है, और कुछ नहीं बनता..."

भीड़ में से कोई हँसा, जिस पर मुक़र्रिर ने ग़ुस्सैली नज़रों से उसकी तरफ़ देखा, "तुम कहाँ से आए हो ? अपनी ज़मीनें और मकान और मवेशी छोड़कर यहाँ जमा हुए हो। तुमने अपने पसीने, अपनी मेहनत और अपनी कारीगरी की बिना पर एक-दूसरे को जाना और एक-दूसरे के दर्द को पहचाना है। किसलिए ? इसलिए कि तुम्हारे साथ और तुम्हारे बोझ ढोनेवाले जानवरों के साथ एक-सा सुलूक किया जाए ? नहीं...आज वह अमर वक़्त आ गया है, जब बरसों की अन्धी और गूँगी मेहनत के बाद आख़िरकार तुमने महसूस किया है कि तुम इनसान हो कि तुम ज़मीन पर बसनेवाले सारे जानदारों में से बरतर हो, कि तुम बेहतर सुलूक के हक़दार हो। तुम सोचते और समझते हो, तुम्हें गेहूँ और चने की रोटी का फ़र्क़ मालूम है। तुम्हारे जिस्म नर्म और सख़्त कपड़े को अलग-अलग महसूस करते हैं, कि तुम्हारी आँखें सफ़ाई और गन्दगी को परखने के क़ाबिल हैं, कि तुम ख़ुशबुओं और ख़ूबसूरत चीज़ों को पसन्द करते हो, कि तुममें वह सारी ख़सूसियात[4] मौजूद हैं, जो तुम्हें जानवरों से अलग और अफ़ज़ल[5] बनाती हैं, लेकिन इस पुरानी हक़ीक़त और नई आगाही[6] को उन तक पहुँचाने के लिए तुम्हारे ख़ून की ज़रूरत है, क्योंकि अब तुम्हारा पसीना ख़त्म हो चुका है। इन मुर्दा इनसानी रूहों को हरकत में लाने के लिए तुम्हारा ख़ून चाहिए, और जब यह ख़त्म हो गया, तो तुम्हारी हड्डियों पर इस आगाही को क़ायम रखा जाएगा..."

1. प्रबन्धकों, 2. फल, 3. तृप्त, 4. गुण, विशेषताएँ, 5. उत्तम, 6. जानकारी, ज्ञान।

मज़दूरों की भीड़ में से बिलबिलाहट उठी, जो आहिस्ता-आहिस्ता नारों में तब्दील हो गई। फिर उन्होंने एक के बाद दूसरे कई क़ौमी और मज़हबी क़िस्म के नारे लगाए, जिनका मौज़ूअ[1] से कोई तअल्लुक़ न था। इस मौक़े पर कपड़े की मिल से औरतों का जुलूस आकर उनके क़रीब रुक गया। यह सब मज़दूर औरतें थीं, जो कपास से बिनौला अलग करने का काम करती थीं। उनकी रहनुमाई एक गन्दुमी रंग की ढलती हुई उम्रवाली औरत कर रही थी, जो क़रीब से देखने पर तक़रीबन ख़ूबसूरत नज़र आती थी। उन्होंने सोंटियों पर रंग-बिरंगे कपड़ों के टुकड़े टाँगकर झंडे बना रखे थे, जिनसे कुछ ज़ाहिर न होता था। जब वे नारे लगाती-लगाती उनके क़रीब आकर रुक गईं, तो मज़दूरों में जोश फैलने लगा। एक छोटा-सा कमज़ोर मज़दूर, जिसको कम लोग फ़ैक्टरी में जानते थे, छलाँग लगाकर क्रेट पर चढ़ा। प्रेज़ीडेंट कुछ देर तक सँभलने की कोशिश करता रहा फिर नीचे कूद गया। लोगों ने उस नौजवान के कमज़ोर जिस्म में से निकलती हुई ताक़तवर आवाज़ को हैरत से सुना : ''भाइयो ! हम ग़रीब और अनपढ़ लोग हैं, लेकिन काम करते हैं और हक़-हलाल[2] की रोज़ी कमाते हैं। हममें से ज़्यादातर कुन्द-ज़ेहन[3] भी होंगे, लेकिन हम काहिल[4] नहीं हैं। पिछले बरस हमने पाँच लाख गज़ कपड़ा बुना है। क्या हमें एक के बजाय दो डाँगरियाँ नहीं दी जा सकतीं ? सब जानते हैं कि छह माह में एक डाँगरी का तार-तार अलग हो जाता है। कहते हैं कि दौलत के साथ अक़्ल भी आ जाती है। क्या वे नहीं जानते कि छह महीने में डाँगरी का फट जाना हमारी मेहनत की निशानी है। वे हमारे नंगे जिस्मों को क्यों नापसन्द नहीं करते ? वे लोग, जो ख़ूबसूरत घरों में रहते हैं, और ख़ूबसूरत तस्वीरें दीवारें पर लटकाते हैं, हमारे सियाह, बदनुमा जिस्मों को क्यों नज़रअन्दाज़ कर देते हैं। पिछले साल में हमने साठ हज़ार टन सीमेंट बनाया है, जिससे कम्पनी को दस लाख रुपए का फ़ायदा हुआ है। क्या हमारी मज़दूरी आठ आने रोज़ के हिसाब से भी नहीं बढ़ाई जा सकती ? हम लाखों में देते और सिर्फ़ सैकड़ों में अपना हक़ माँगते हैं। हमें रहने के लिए मकान चाहिए। हमारे मकानों में पानी होना चाहिए, क्योंकि पानी के बग़ैर हम ज़िन्दा नहीं रह सकते। आँगन में एकाध पेड़ होना चाहिए, जिसकी छाँव में हम बैठ सकें। हमारे बीवी-बच्चों को सस्ते दामों कपड़ा मिलना चाहिए, ताकि वे साफ़-सुथरे रह सकें। क्या वे नहीं जानते कि हम मैले कपड़ों को उसी तरह नापसन्द करते हैं, जैसे वे करते हैं ? हमारी तनख़्वाहों में इज़ाफ़ा होना चाहिए, ताकि हम ज़रा ज़्यादा आसानी के साथ रह सकें। हमारे घरों में बिजली लगनी चाहिए। कारख़ाने में हम दिन भर बिजली पैदा करते रहते हैं, और जब घरों को लौटते हैं, तो हमारी दीवारें अँधेरे में खड़ी होती हैं और तेल का धुआँ आँखों में भर जाता है। कैसी शर्म की बात है ! हमें और हमारे बच्चों को मिल के दवाख़ाने से मुफ़्त मशविरा और दवा मिलनी चाहिए। हमारी छुट्टियों में इज़ाफ़ा होना चाहिए। मशीनों को भी तेल की ज़रूरत होती है ? क्या हमें आराम की ज़रूरत नहीं ? क्या हम इस थोड़ी-सी सहूलत के हक़दार नहीं हैं ? क्या यह बहुत ज़्यादा है ? हमने अट्ठाईस दिन तक नोटिस के जवाब का इन्तिज़ार किया है। अब इसकी गुंजाइश नहीं रही। आज तक हमने मालिकों के पेट के लिए मेहनत की है। आज हम अपने बच्चों के पेट के लिए काम शुरू करते हैं...''

हर तरफ़ से नारे बुलन्द होने लगे।

''वह...वह...'' बिशन ने अली का बाज़ू खींचते हुए कहा, ''मेरी माँ है।''

अली ने कुछ न सुना। वह ख़ला[5] में उस जगह को घूर रहा था, जहाँ से कमज़ोर नौजवान छलाँग लगाकर ग़ायब हो चुका था। यूनियन प्रेज़ीडेंट की तैयारशुदा बुलन्द आहंग[6] तक़रीर के मुक़ाबले में उस नौजवान के सीधे-सादे अल्फ़ाज़ तीर की तरह उसके दिल को लगे थे। जब वह बोल रहा था, तो अली ने महसूस किया था कि प्रेज़ीडेंट की तक़रीर के मुक़ाबले में, जो कि उसके

1. विषय, 2. विहित, 3. मन्दबुद्धि, 4. आलसी, 5. शून्य, 6. ऊँची आवाज़।

आलिम-फ़ाज़िल[1] दिमाग़ से निकली थी, ये अल्फ़ाज़ सीधे उस नौजवान के दिल से, सीधे उसकी ज़िन्दगी से निकलकर चले आ रहे थे, कि यह नौजवान मज़दूर उनका भाई था और सब कुछ जानता था। थोड़ी देर के बाद वह भी नारे लगानेवालों में शामिल हो गया।

फिर जाने कैसे हुआ कि थोड़ी-सी देर में अली ने अपने आपको फ़ैक्टरी के अन्दर पाया। उसे इतना याद रहा कि मालिकान के चन्द नुमाइन्दे आए और गेट के पास खड़े हुए मज़दूरों को वरग़लाने लगे और वह जो पहले ही दुविधा में था, उनके आगे लगकर अन्दर चला गया। जलसेवालों को जब पता चला, तो गेट बन्द हो चुका था। वे सब पलटकर गेट पर जमा हो गए और ग़ुस्सैली आवाज़ों से उन्हें वापस बुलाने लगे। कुछ एक ने 'टोडी...टोडी...' की आवाज़ें भी लगाईं। बिशन, जो अन्दर चला आया था, अली के पास से निकल भागा और देखते-दखत लपककर गेट पर जा चढ़ा और बाहर कूद गया। बाहरवाले मज़दूरों ने उसे हाथों-थाम लिया। बाक़ियों को अन्दर की तरफ़ जाते हुए देखकर वे गालियाँ देने लगे। अली ने औरतों के जुलूसवाली लीडर को देखा, जो गेट की सलाख़ों में से नाक निकाले उसका मुँह चिड़ा रही थी और 'टोडी-टोडी' की रट लगाए हुए थी। अली ने ऊँची आवाज़ से गाली दी और मुक्का हवा में लहराया। वह उस औरत को जानता था। वह शीला माथुर नाम की हिन्दू औरत थी और अब एक मुसलमान के साथ रहती थी, जिसने उसका नाम बानो रख दिया था।

रात होने तक कई बार उसने घर जाने की इजाज़त चाही, लेकिन उसे बताया गया कि जो लोग अन्दर आ चुके थे, अब हड़ताल ख़त्म होने तक बाहर नहीं जा सकते थे, और उनके खाने-पीने और सोने-जागने का बन्दोबस्त अन्दर ही कर दिया गया था। इसके अलावा उसको यक़ीन दिलाया गया कि वे, जो हड़ताल में शामिल नहीं थे, मालिकान की नज़र में ऊँची हैसियत रखते थे, चुनाँचे उनके घरवालों की देखभाल का ज़िम्मा मालिकान के सिर था और उसका मनचाहा इन्तिज़ाम कर दिया गया था, लेकिन आयशा बीमार थी और वह उसके पास जाना चाहता था, क्योंकि दो रोज़ पहले वह डॉक्टर से उसकी दवाई लेकर आया था, जो वह अपने-आप कभी न पीती थी, और अलावा और सब बातों के उसे अपनी बीवी से मुहब्बत थी। दो-एक बार उसने आप-से-आप बाहर जाने की कोशिश की, लेकिन गेट बन्द था और उस पर पुलिस के सिपाही तैनात किए गए थे, जिन्होंने उसे वापस भेज दिया था। अब रात पड़ रही थी और वह मायूस हो चुका था और अपनी कमअक़्ली पर पछता रहा था। उसे इस बात का भी पता था कि अगर उस वक़्त वह बाहर रह जाता, तो उसे ज़बरदस्ती पकड़कर भूक हड़ताल करनेवालों की टोली में बिठा दिया जाता और वह दो-एक रोज़ में ही मर जाता। फ़ैक्टरी को बहरहाल हड़तालियों की हिम्मत पस्त करने की ख़ातिर चलते रहना था।

अब रात पड़ चुकी थी और कुल सत्रह आदमी फ़ैक्टरी को चला रहे थे। तीन इंजीनियर, पाँच फ़ोरमैन, चार सुपरवाइज़र, दो फ़िटर, और तीन मज़दूर। इंजीनियर और फ़ोरमैन तो मज़दूर-यूनियन में शामिल न थे, चुनाँचे बड़े साफ़ ज़मीर के साथ काम कर रहे थे कि यह उनकी ड्यूटी थी। बाक़ी सुपरवाइज़र और फ़िटर और मज़दूर उन लोगों में से थे, जिन्होंने अपनी मर्ज़ी से यूनियन का साथ छोड़कर फ़ैक्टरी में काम करने को चुना था।

अली की ड्यूटी मिल-हाउस में थी। यहाँ पर दो मिलें थीं। एक मिल में पत्थर पीसा जाता था। दूसरी मिल मशीन वही पिसा हुआ पत्थर जलाए जाने के बाद जब 'क्लिंकर' बनता था, तो पीसकर सीमेंट बनाया जाता था। दोनों मिलें सिर्फ़ पीसने का काम करती थीं। जलाने के लिए एक अलग प्लांट था, जो 'किल्न्' (भट्टी) कहलाता था। मिल हाउस में पाँच आदमी एक वक़्त में काम करते थे, मगर उस वक़्त सिर्फ़ दो आदमी थे। एक फ़ोरमैन था, जो भाग-दौड़कर मिलों को चला रहा था

1. विद्वान।

और अली था, जो उनके 'बेयरिंग' का तेल वग़ैरह देख रहा था और छोटे-छोटे पम्पों को, जिनके ज़रिए पिसा हुआ माल अगली मंज़िल तक पम्प किया जाता था, चला रहा था। काम बराए नाम ही था, क्योंकि तक़रीबन सारी मशीनरी अपने आप चलनेवाली थी, सिर्फ़ निगरानी की ज़रूरत थी। इसके अलावा फ़ोरमैन के पास चन्द एक दूसरे प्लांटों का छोटा-मोटा काम भी था। अली उस काम से बख़ूबी वाक़िफ़ था और आसानी से कर रहा था।

एक घंटे से उसका फ़ोरमैन ग़ायब था और वह दरवाज़े के साथ टेक लगाए खड़ा जागते रहने की कोशिश कर रहा था। रात आधी के क़रीब हो चली थी, लेकिन लू अभी तक चलनी बन्द न हुई थी और पसीना पानी की तरह निकल रहा था। मिलें मुस्तक़िल चल रही थीं और उनकी गड़गड़ाहट, जो पहले पहल आनेवाले के दिल में जोश और बदन में चुस्ती पैदा करती है, वक़्त के गुज़रने के साथ-साथ भारी नींद और उदासी और कड़ी यकसानियत[1] में तब्दील हो जाती थी। जागने की कोशिश में वह सिर उठाकर बिजली की रौशनियों को देखने लगा।

उसके सामने दूर और क़रीब इक्का-दुक्का जाने-पहचाने लोग दिखावटी जोश और फुर्ती के साथ इधर-उधर गुज़र रहे थे। उन सबके चेहरे ज़्यादा देर तक काम करते रहने की वजह से तमतमाए हुए थे और वे ऊँची आवाज़ों में बातें कर रहे थे। बरसों की पुरानी जानी-पहचानी फ़ैक्टरी आज एक अजीबोग़रीब अनोखी दुनिया में तब्दील हो चुकी थी। एक नौजवान इंजीनियर क्रेन को चला रहा था। क्रेन...जिसको अली का एक साथी चलाया करता था, जिसको वह अक्सर सीटी मार-मारकर मिलों में माल डालने की हिदायात दिया करता था। नौजवान इंजीनियर को क्रेन चलाने का मामूली तजर्बा था और उसे काफ़ी दिक़्क़त हो रही थी और अली, कि उसे नापसन्द करता था, यह देखकर अजीब-सा इत्मीनान महसूस कर रहा था। उसी इत्मीनान के एहसास को मुकम्मल करने के लिए अली अब तक तीन बार जाकर मुँह में उँगलियाँ डालकर सीटियाँ बजा-बजाकर और बाज़ू हवा में लहरा-लहराकर उसको मिलों में माल डालने की हिदायात दे चुका था। एक बार क्रेन के शीशे में से इंजीनियर का ग़ुस्से से तमतमाता हुआ चेहरा देखकर वह ज़ब्त न कर सका और भागता हुआ अपनी जगह पर आकर हँसी के मारे दोहरा हो गया। एक इंजीनियर और दो फ़ोरमैन 'किलून्' को चला रहे थे। कोयला, जो कि 'किलून्' में जलाया जाता था, कहीं से बाहर निकल-निकलकर उड़ रहा था, और तीनों 'किलून्' चलानेवाले सिर से पाँव तक काले हो रहे थे। दो घंटे हुए, उसी 'किलून्' के प्लेटफ़ॉर्म पर जमा होकर उन सबने रात का खाना खाया था, जो कैंटीन से पककर आया था और सूजी के तर-ब-तर हलवे और भुने हुए गोश्त पर मुश्तमिल था। उस खाने में सारे सुपरवाइज़र, फ़ोरमैन, इंजीनियर, और अली के अलावा चीफ़ इंजीनियर और मिल का मालिक भी आकर शामिल हुए थे और उनके साथ ऐसे बातें कर रहे थे, जैसे पुराने दोस्तों के साथ की जाती हैं। दो-चार लुक़्मे लेने के बाद मिल के मालिक ने बेतकल्लुफ़ी से अली के कन्धे पर हाथ रखकर कहा था, "शाबाश नौजवान ! तुम हैड-फ़िटर की असामी के क़ाबिल हो। क्या नाम है तुम्हारा ?" ज़िन्दगी में पहली बार अली से मिल के मालिक ने बात की थी। उसके सारे बदन में अजीब-सी सनसनी दौड़ गई और अगले कुछ घंटों के लिए वह अपनी बीवी को क़तई तौर पर भूल गया। उसके बाद मालिक ने दुबले-पतले कमज़ोर चेहरेवाले सुपरवाइज़र सलीम से उसका नाम पूछा, और उसे बताया कि उसने आज सबसे ज़्यादा काम किया था और यह कि उसे तो जनरल फ़ोरमैन होना चाहिए। मालिक की तरफ़ से इतना साफ़ इशारा तरक़्क़ी मिलने के सिलसिले में काफ़ी से ज़्यादा था। आनेवाले अच्छे दिनों के ख़यालों के अचानक रश की वजह से सलीम शरमाकर हँसा और जल्दी-जल्दी हलवा खाने लगा और जनरल फ़ोरमैन का मुँह लटक गया और उसकी ज़बान पर पड़ा हुआ हलवा सबको नज़र आने लगा, जिस पर अंग्रेज़ इंजीनियर ने नज़रें फेरकर बुरा-सा मुँह बनाया। उसके बाद जल्द ही

1. नीरसता।

मालिक और चीफ़ इंजीनियर ने बड़ी अपनाइयत के साथ उन्हें बताया कि वे यूनियन के लीडरों के साथ बातचीत कर रहे हैं और उम्मीद है और जल्द ही कोई फ़ैसला हो जाएगा। जाते-जाते मालिक ने रुककर पचासवीं बार दुहराया, "धुआँ निकलता रहे। शाबाश ! धुआँ बन्द न हो।"

उनके जाने के बाद बाक़ियों ने आपस में बिलकुल पुराने साथियों की तरह बातें कीं। एक दूसरे को काम के मुतअल्लिक़ हिदायात दीं और अपनी जगह वापस जाने से पेश्तर हँसी-मज़ाक़ भी किया। जब वह मिल हाउस की तरफ़ वापस आ रहा था, तो अली का दिल उन सब फ़ोरमैनों और इंजीनियरों की तरफ़ से, जिनसे वह हमेशा नफ़रत करता आया था, मुकम्मल तौर पर साफ़ हो चुका था, और मिल के मालिक के लिए तो उसके दिल में ऐसे मुहब्बत के जज़्बात मौजें मार रहे थे कि अगर मौक़ा होता, तो वे बे-सोचे-समझे उस पर फ़िदा हो जाता। अपनी जगह पर पहुँचकर उसने सारी मिलों का चक्कर लगाया और दिल में हड़तालियों को कोसता और उनकी नाकामी की दुआएँ माँगता रहा।

लेकिन अब रात आधी से ज़्यादा गुज़र चुकी थी, और वह इस सारे क़िस्से से उकताता जा रहा था। सामने वही समाँ था : फुर्ती से आते-जाते हुए इक्का-दुक्का लोग, जो एक प्लांट से दूसरे प्लांट को जा रहे थे। बीच-बीच में पुलिस के सिपाही, जो मुँह उठाए गश्त कर रहे थे। तेज़ी से कार पर गुज़रता हुआ चीफ़ इंजीनियर, वे लोग, जिन्होंने कभी यह छोटे-छोटे (मगर बहुत ज़रूरी) हाथ से काम करनेवाले काम न किए थे, अब कर रहे थे। बिलकुल उसी तरह, जैसे वह कर रहा था, करता आया था। वे लोग, जो कभी रातों को फ़ैक्टरी में न आए थे, जो इतने दूर, इतने ऊँचे, इतने बड़े नज़र आते थे, अब उसके साथ मिल-जुलकर काम कर रहे थे, ग़प्पें मार रहे थे, खाना खा रहे थे, उसकी सीटी की आवाज़ पर चौंक उठते थे और उसकी हिदायात पर अमल कर रहे थे। शुरू रात में यह सब बातें उसे बड़ी सनसनीख़ेज़ मालूम हुई थीं। यह बिलकुल नया तजर्बा था। फ़ैक्टरी पर एक बेहद अनोखा, अजीबोग़रीब, तहलका-ख़ेज़ समाँ छाया हुआ था, जैसे मेलों पर जानेवाली रात में हुआ करता है, मसनूई[1], फ़िलवक़्ती ख़ुशी[2] और जोशो-ख़रोश का, मिल-जुलकर उठने-बैठने का, शादी-ब्याहोंवाली रातों का, एक अज़ीम और वसीअ[3] भाईचारे का (हालाँकि वे कुल तेरह आदमी थे)...शुरू में, जिन मशीनों के दरमियान अकेले फिरते हुए उसे अज़ीम मिल्कीयत, आज़ादी और क़ुव्वत का एहसास हुआ था। रात के बढ़ने के साथ-साथ उन्हीं बड़ी-बड़ी, गड़गड़ाती हुई मशीनों के दरमियान खड़े-खड़े उसी शिद्दत के साथ वह एहसास ख़ौफ़नाक, खोखली तन्हाई और बेचैनी में तब्दील हो गया। चलती हुई मशीनों और इनसानों की आपसी दोस्ती की अजीब कहानी है। जब वह पहले-पहल उनके दरमियान पहुँचता है, तो उसकी सारी क़ुव्वतें कहीं दब जाती हैं, सिवाय सुनने की क़ुव्वत के, जो अकेली उनकी भयानक गड़गड़ाहट को जज़्ब करती है और इनसान की अपनी आवाज़ को कहीं दूर गुम कर देती है। इस चैलेंज को क़बूल करके इनसान जिबिल्ली[4] तौर पर मशीनों के मुक़ाबले में अपनी बरतरी[5] को साबित करने के लिए (या कम-से-कम उनकी बराबरी करने के लिए) जोशो-ख़रोश से काम शुरू कर देता है। फिर वक़्त गुज़रने के साथ-साथ आहिस्ता- आहिस्ता उसे मशीनों की माद्दी[6] बरतरी का एहसास होने लगता है। उनकी माद्दी बरतरी और उनकी सर्द बेहिसी[7] का और उनकी पागल कर देनेवाली यकसानियत का और उनकी पाबन्दी-ए-वक़्त का और उनकी इनसान दुश्मनी और उनकी पैदावारी क़ुव्वत[8] का और उनकी ला-तअल्लुक़ी[9] का और उनकी कमीनगी का, और इन सारे इन्किशाफ़ात[10] में से मशीनें एक बरतर दुश्मन की शक्ल में ज़ाहिर होती है। इस नई मायूसी में से एक नया एहसासे-तन्हाई जन्म लेता है और इनसान की अपनी अन्दरूनी खोई हुई आवाज़ उभरना शुरू होती है और उठती-उठती इतनी बुलन्द हो जाती है कि सारी मशीनों

1. कृत्रिम, 2. क्षणिक प्रसन्नता, 3. व्यापक, 4. स्वाभाविक, 5. श्रेष्ठता, उच्चता, 6. भौतिक, 7. भावहीनता, 8. उत्पादन शक्ति, 9. असम्बद्धता, 10. रहस्योद्घाटन।

की आवाज़ को दबा देती है और इनसान को अचानक डरा देती है।

दरवाज़े के साथ खड़े-खड़े अली ने आँखें बन्द करके सोचा कि इस सारी दुनिया में उसका हाल पूछनेवाला कोई नहीं रहा, कि वह दूर-दूर तक भुला दिया गया है।

''सब ठीक है ?''

उसने घबराकर आँखें खोल दीं, ''सब ठीक है !'' उसने मैकेनिकी तौर पर दुहराया।

''शाबाश !'' फ़ोरमैन ने कहा।

''उस्ताद, मैं ज़रा...थोड़ी देर के लिए कैंटीन से चाय पी आऊँ ?''

फ़ोरमैन ने उसे ख़ुशी से जाने की इजाज़त दे दी। मिल हाउस से निकलकर वह चार सौ फ़ुट लम्बी 'किलून्' के साथ-साथ चलने लगा। मैदान के बीच में बिजली का फ़ोरमैन हाथ पीछे बाँधे खड़ा अहमक़ों की तरह मुँह उठाकर बिजली की रौशनियों को तक रहा था। एक सुपरवाइज़र भागता हुआ उसके पास से गुज़रा। एक कुत्ता आगे बढ़कर अली के पाँव में लोटने लगा। फिर वह चुप खड़ा रह गया।

चारों तरफ़ भागदौड़ मच गई। 'किलून्' रुक गया था। चिमनी से धुआँ निकलना बन्द हो चुका था। धुआँ, जो बाहरवालों के लिए फ़ैक्टरी की ज़िन्दगी का वाहिद निशान था। उस एक धुएँ को जारी रखने के लिए यह सारी कोशिशें की गई थीं और वह अब थम चुका था।

'किलून्' के सबसे गर्म हिस्से के नीचे बिजली की मोटर, जो 'किलून्' को घुमाती थी, रुक गई थी। दो फ़ोरमैन और दो सुपरवाइज़र औज़ार उठाए भागते हुए मोटर के प्लेटफ़ॉर्म पर चढ़े और पिछले पाँव नीचे उतर आए। वहाँ पर खड़ा न हुआ जा सकता था। उस जगह पर 'किलून्' के अन्दर चौदह सौ डिग्री सेंटीग्रेड टेम्प्रेचर था। बाहर...मई के आख़िरी दिन थे। चन्द सैकेंड तक वे चारों नीचे खड़े ख़ाली-ख़ाली नज़रों से मुर्दा 'किलून्' को देखते रहे। फिर चीफ़ इंजीनियर की कार आँधी की तरह आकर उनके पास रुकी। उसमें से कार के मालिक के साथ-साथ मिल का मालिक भी निकला। चीफ़ इंजीनियर ने एक पल के लिए रुककर ग़ुस्सैली नज़रों से चारों कारीगरों को देखा और मोटर की तरफ़ बढ़ा। उसके पीछे चारों कारीगर सीढ़ियाँ चढ़ गए। जल्द-जल्द मुआयना करके चीफ़ इंजीनियर अपनी ज़बान में गालियाँ बड़बड़ाता हुआ नीचे उतर आया। मामूली-सी ख़राबी थी। उसने मालिक को बताया। चन्द मिनटों का काम था, लेकिन वहाँ पर क़ियामत की गर्मी थी। दोनों ने कार के पास खड़े होकर चारों कारीगरों पर नज़र दौड़ाई। चीफ़ इंजीनियर ने धीरे-से गाली दी। जब मालिक की निगाह सलीम पर से गुज़री, तो उसने झपटकर फ़ोरमैन से औज़ार लिए और मोटर के पास जा पहुँचा। उसके पीछे-पीछे तीनों आदमी भी वहाँ पहुँच गए।

अब सलीम तेज़-तेज़ औज़ार चला रहा था। फ़ैक्टरी का मालिक माथे से पसीना पोंछता हुआ बार-बार चिमनी की तरफ़ देखता जा रहा था। सलीम के सिर पर बला की गर्मी थी और उसकी जिल्द जल रही थी। पसीना निकलना बन्द हो चुका था। फ़ोरमैन उसके सिर पर खड़े उसे मुख़्तलिफ़ हिदायतें देते और एक-एक करके औज़ार पकड़ाते जा रहे थे। मालिक की नज़रों और 'किलून्' की गर्मी के नीचे सलीम के हाथ मशीन की तरह चल रहे थे और साँस धौंकनी की तरह चल रहा था। मालिक सोच रहा था कि 'किलून्' का धुआँ बन्द होते देखकर यूनियनवालों ने सुलह की बातचीत बन्द कर दी थी। दोबारा धुआँ निकलने लगे, तो शायद उनकी हिम्मतें पस्त हो जाएँ और वे फिर से उसे जारी कर दें। उसने एक सुपरवाइज़र को सन की बोरी भिगोकर लाने के लिए दौड़ा दिया था, ताकि वह काम करनेवाले शख़्स के सिर पर रख दी जाए, जिससे कुछ बचाव हो सके। जब वह सुपरवाइज़र गीली बोरी लेकर सीढ़ियाँ चढ़ रहा था, तो सलीम ने अचानक रुककर पेट पर हाथ रखा और ज़मीन से जा लगा।

उसे उठाकर नीचे लाया गया और चीफ़ इंजीनियर लगातार गालियाँ बड़बड़ाता हुआ अपनी कार

में डालकर फ़ैक्टरी की डिस्पेंसरी की तरफ़ ले गया। उसकी जगह एक फ़ोरमैन ने ले ली और चन्द मिनट के अन्दर-अन्दर काम ख़त्म करके 'किलून्' चला दिया गया। मालिक ने इत्मीनान का लम्बा साँस लिया और उसके चेहरे पर मुस्कराहट बिखर गई। वहीं खड़े-खड़े उसने उन तीनों के कन्धों पर ख़ुशी के धप लगाए और उन्हें मुबारकबाद देता और हँसता हुआ बाहर चला गया।

'किलून्' के पीअर (PIER) की ओट में खड़े-खड़े अली ने सलीम को, जब वह उसे कार में लाद रहे थे, साफ़तौर पर मरते हुए देखा और कैंटीन की तरफ़ चल पड़ा। कैंटीन में वह देर तक आगे रखी हुई चाय को पीने का इरादा करता रहा, फिर उसे उसी तरह छोड़कर चला आया। गेट की तरफ़ से हड़तालियों के हलके-हलके नारों की आवाज़ें आ रही थीं। मई का आसमान साफ़ और रौशन था और चिमनी का धुआँ चाँद के सामने से गुज़र रहा था। उसने चीफ़ इंजीनियर की कार को आकर रुकते, फ़ैक्टरी के मालिक को निकलकर 'किलून्' के प्लेटफ़ॉर्म पर चढ़ते, 'किलून्' चलाते हुए फ़ोरमैनों और इंजीनियरों से दो मिनट तक बातें करते और फिर उसकी पीठ ठोंककर क़हक़हा लगाते और जाते हुए देखा और वहीं खड़ा रहा। सामने 'किलून्' की मोटर थी, जिसको बहुत अच्छे तरीक़े से ठीक कर दिया गया था और जो अब बख़ूबी चल रही थी। उसे ठीक करनेवाले फ़ोरमैन फ़ख्र से अकड़-अकड़कर मालिक से बातें कर रहे थे और मालिक उनकी कामयाबी पर इत्मीनान से मुस्करा रहा था और धुएँ की तरफ़ देख रहा था। बाक़ी सारे फ़ोरमैन और इंजीनियर भी धुएँ की तरफ़ देख रहे थे और सब अपनी कामयाबी पर मुकम्मल तौर पर ख़ुश थे। गेट के बाहर हड़ताली भी धुएँ की तरफ़ देख रहे थे और मायूसी से नारे लगा रहे थे। सिर्फ़ सलीम वहाँ नहीं था। उसे भुला दिया गया था। वह जो टी.बी. का मरीज़ होने के बावजूद बड़ा उम्दा कारीगर था।

अचानक वहाँ खड़े-खड़े अली के गँवार ज़ेहन ने अजीबोग़रीब तरीक़े से काम करना शुरू कर दिया। उसने ऐसा ख़याली मंज़र देखा, जो इस तरह के ग़ैर-तर्बियत-याफ़्ता[1] ज़ेहन उम्र भर में एकाध मर्तबा ही देखते हैं। उस मंज़र में यह सब कुछ शामिल था : बहुत अच्छी तरह से चलती हुई बिजली की मोटर, बड़ी ख़ामोशी और सफ़ाई के साथ घूमती हुई 'किलून्', शोर मचाकर चलती हुई मशीन, चाँद के सामने से गुज़रता हुआ चिमनी का धुआँ, बार-बार माथे से पसीना पोंछता हुआ और फ़तहमन्दी लगाता हुआ सियाह-फ़ाम[2] आदमी, ग़ैर-ज़बान में कोसने देता हुआ सफ़ेद-फ़ाम आदमी, फ़ख्र से अकड़-अकड़कर बातें करते और सफ़ेद-सफ़ेद दाँत निकालकर हँसते हुए कई आदमी...ठंडी, ठोस, लाइक़[3] और लातअल्लुक़ मशीनें; ठंडे, ठोस, लाइक़ और लातअल्लुक़ इनसान...उसने खोजती हुई नज़रों से चारों तरफ़ देखा। वह ख़ुद था ? वह ख़ुद ? उसने सोचा, "मैं इसमें कहाँ आता हूँ ?" उसने ऊँची आवाज़ में कहा।

वह आहिस्ता-आहिस्ता गेट की तरफ़ चल पड़ा। अभी वह गेट से चन्द क़दम के फ़ासिले पर था कि बाहर से शोर उठा। फिर अचानक गेट खुल गया और हड़ताली नारे लगाते हुए अन्दर दाख़िल होना शुरू हुए। जुलूस के आगे-आगे फ़ैक्टरी का मालिक, चीफ़ इंजीनियर और यूनियन के प्रेज़ीडेंट चल रहे थे। तीनों के गलों में हार पड़े हुए थे और मज़दूर तीनों का नाम ले-लेकर ज़िन्दाबाद के नारे लगा रहे थे। अली अपनी मख़सूस थकी हुई, मुस्तक़िल चाल से उनके पास से गुज़रता गया। जुलूस के बीच में किसी ने तन्ज़ भरे लहजे में कहा, "साईं टोडी।" एक नफ़रत से भरा क़हक़हा बुलन्द हुआ। जुलूस के आख़ीर में किसी ने रुककर उसके कन्धे पर हाथ रखा : "साईं, तुम दिल से ग़रीब हो, पर अब ज़्यादा देर तक ग़रीब नहीं रह सकते। हमारी कुछ शर्तें मान ली गई हैं। हमारे साथ आओ। हम जानते हैं, वे तुम्हें खींचकर अन्दर ले गए थे। तुम्हारा कोई क़ुसूर न था।" उसने अजनबी, अनजानी नज़रों से मुख़ातिब को देखकर धीरे से कहा, "मैं इसमें कहाँ आता हूँ ?" और आगे चल पड़ा।

1. अप्रशिक्षित, 2. काले रंग का, 3. योग्य।

अपने घर के दरवाज़े पर उसने मुड़कर एक थकी हुई निगाह फ़ैक्टरी पर डाली। लोग अपनी-अपनी जगहों पर पहुँच चुके थे। चिमनी का धुआँ चमकते आसमान पर लम्बी सफ़ेद लकीर बनाता हुआ पच्छिम की तरफ़ जा रहा था। मई के आख़िर की रातें गर्म और ख़ामोश थीं।

40

आम सतह पर ज़िन्दगी जिस तेज़ी और शिद्दत के साथ अपनी तरफ़ खींचती है, उसी तेज़ी और शिद्दत के साथ मायूस भी करती है। ज़िन्दगी एक अज़ीम और मुसलसल लालच है, और हर छोटे-बड़े लालच की तरह इनसानों पर ख़ौफ़नाक पाबन्दियाँ लगाती है और फिर एकदम अपनी कशिश खो देती है। यही वजह है कि हम जिस आसानी और तेज़ी से उसकी तरफ़ झुकते हैं, उसी आसानी के साथ उसे बुरा-भला कहने पर भी तैयार हो जाते हैं। फ़र्क़ सिर्फ़ इतना है कि कुछ लोग अपनी कोशिश से एक बेकार तजर्बे में दाख़िल होते हैं और अपनी कोशिश से ही, मायूस होकर या महज़ उकताकर, बाहर निकल आते हैं (महज़ एक दूसरे बेकार तजर्बे में दाख़िल होने के लिए) और कुछ, जिनकी बहुत बड़ी अक्सरियत[1] है, ख़ामोश रज़ामन्दी के साथ रोज़-ब-रोज़, लम्हा-ब-लम्हा, रहे चले जाते हैं, और कभी-कभार जब शदीद ज़ेहनी और रूहानी कर्ब[2] की वजह से ठिठक जाते हैं, तो यह कहकर अपने आपको तसल्ली देने की कोशिश करते हैं कि मुख़्तलिफ़ क़िस्म के तजर्बात की बदौलत उन्होंने अपनी अक़्ल और दानिश[3] में बेश-बहा इज़ाफ़े[4] किए हैं। हममें से बहुत कम कभी इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि वह गूँगी रज़ामन्दी का रवैया एक बीमारी है, जिसने हम सबको अपनी लपेट में ले रखा है और कि इस बीमारी का नाम है "काहिलियत,"[5] दूसरे लफ़्ज़ों में उसे साफ़-साफ़ इनसानी बेअक़्ली भी कह सकते हैं।

हमारे दूसरे ला-हासिल जज़्बों[6] की तरह दुनियावी अक़्ल और दानिश भी बेहद थका देनेवाली शै है।

रौशन महल के पूरबी हिस्से में, जिसमें बैठक, सोने का कमरा और एक स्टडी शामिल थी, नईम और अज़रा रहते थे। रौशन महल के नौकर-चाकर ही उनकी ख़िदमत करते थे। पार्लियामेंट हाउस से आने के बाद नईम ज़्यादातर वक़्त स्टडी में गुज़ारता। अज़रा उसके प्रोग्राम में कभी मुख़िल[7] न होती थी। पिछले चन्द बरस से वह इन्तिहाई सुकून और क़नाअत[8] के साथ ज़िन्दा थी और नईम के अलावा रौशन महल और अपने इर्द-गिर्द ज़िन्दगी की हर बात में बेहद लगन और दिलचस्पी के साथ हिस्सा ले रही थी। इस दौरान में उसे देखने पर आसानी के साथ कहा जा सकता था कि अधेड़ उम्र की यह ख़ूबसूरत, सेहतमन्द औरत अपने तब्क़े की ख़ास-उल-ख़ास नुमाइन्दा[9] थी और ज़िन्दगी में उसने मुहब्बत, नेकी और मेहरबानी के अलावा कुछ नहीं देखा। इस क़दर हैरतअंगेज़ सलाहियत उसमें वक़्त के सदमों को बरदाश्त और नज़रअन्दाज़ कर देने की थी।

नईम विज़ारते-तालीम[10] में अंडर पार्लियामेंटरी सेक्रेटरी था। इस उहदे पर वह क्यों कर मामूर[11] हुआ था, ठीक तौर पर इसका किसी को पता न था। बहरहाल, यह सब जानते थे कि उसमें रौशन आग़ा के ज़ाती सियासी रुसूख़[12] का बड़ा हिस्सा था। दफ़्तरी काम का उसको कोई तजर्बा न था, चुनाँचे शुरू-शुरू में काफ़ी मेहनत से उसे काम सीखना पड़ा। यहाँ तक कि आहिस्ता-आहिस्ता वह इस क़ाबिल हो गया कि दिन भर का काम वक़्ते-मुक़र्ररा के अन्दर ख़त्म कर लेता। इससे बहरहाल उसे कोई तसल्ली न हुई और उस काम में वह अपने लिए कोई दिलचस्पी पैदा न कर सका। सबसे ज़्यादा एहसासे-नाकामी उसे यह था कि बावजूद हज़ार कोशिश के अपनी शख़्सियत में वह भारी-

1. बहुसंख्या, 2. मानसिक और आत्मिक दुख, 3. बुद्धिमानी, 4. अमूल्य वृद्धि, 5. आलस्य, 6. निष्फल भावनाओं, 7. बाधक, 8. भाग्यतुष्टि, 9. मुख्य प्रतिनिधि, 10. शिक्षा मन्त्रालय, 11. नियुक्त, 12. व्यक्तिगत राजनैतिक मेलजोल।

भरकम, क़नाअत, शाइस्तगी, मक्कारी, ख़ुदग़र्ज़ी, और बेग़र्ज़ी का मिला-जुला अन्दाज़ पैदा न कर सका, जो अक्सर पहले और दूसरे दर्जे के सरकारी अहलकारों में पाया जाता है। अब आ के पहली मर्तबा शिद्दत के साथ उसे एहसास हुआ था कि अव्वल और आख़िर वह किसान था और किसान का बेटा था, और अपने पाँव और ज़मीनों की तरफ़ लौट जाने की ख़्वाहिश ने उसके अन्दर मुस्तक़िल ख़ालिश की सूरत इख़्तियार कर ली थी। नई शख़्सियत को अपनाने की कोशिश में उसने अपनी क़ुदरती शख़्सियत भी खो दी थी, और अजीब मज़्हकाख़ेज़[1] किरदार बनकर रह गया था। उसका चेहरा भोले-भाले देहातियों की तरह बे-तास्सुर[2] और सेहतमन्द था और आँखों से सिवाय बेकसी और बेवक़ूफ़ी के कुछ ज़ाहिर न होता था, जैसे आम मवेशियों की आँखें होती हैं। उस ज़माने में तेज़ी से सफ़ेद होते हुए सिर और सीधे, मज़बूत, जिस्मवाले उस शख़्स का उम्दा लिबास, ग़ैर-मुतवाज़िन[3] चाल-ढाल, बेवक़ूफ़ों का-सा चेहरा और काम करने का गूँगा, बे-असर रवैया देखनेवाले के दिल में रहम के जज़्बात पैदा करता था। यूँ उसकी हालत कुछ ऐसी क़ाबिले-रहम न थी।

घर में सिवाय पढ़ने के उसे कोई काम न था। उम्र भर का बाग़बानी का शौक़ आहिस्ता-आहिस्ता बिलकुल ख़त्म हो चुका था। हालाँकि अज़रा अब भी उसी जोशो-ख़रोश से उसे अपने लगाए हुए पौदे दिखाती और क्यारियाँ, जो उसने तैयार की होतीं। और वह उसके साथ उसी बेकसी और वफ़ादारी के साथ फिरता, जिस तरह दफ़्तर में काम किया करता था। लेकिन सारे दिन में असल फ़राग़त[4] और आसूदगी वह उस वक़्त महसूस करता, जब अपने पढ़ने के कमरे में बन्द होकर किताबें टटोलना शुरू करता। उसकी लाइब्रेरी में उर्दू और अंग्रेज़ी ज़बान की कई सौ किताबें थीं, जिसके बनाने में उससे ज़्यादा अज़रा ने दिलचस्पी ली थी। ख़ुद अज़रा को पढ़ने की न फ़ुरसत थी (कि रोज़मर्रा के छोटे-छोटे कामों में वह इस दर्जा डूबी रहती थी) न दिलचस्पी, लेकिन नईम की ख़ातिर उसने अपने मुक़र्ररा वज़ीफ़े की मदद से, जो उसे रौशन आग़ा की तरफ़ से मिलता था, हर क़िस्म की किताबें फ़राहम की थीं। लम्बी बीमारी के दौरान नईम को जो बहुत ज़्यादा सोने की आदत पड़ चुकी थी, उससे छुटकारा पाने में उसे काफ़ी वक़्त लगा। अब वह बहुत कम सोता था। शाम से ही कमरे में बन्द होकर जो वह पढ़ना और तम्बाकू पीना शुरू करता तो रात का खाना भी अक्सर वहीं खाता और आधी रात गुज़रने पर सोने के लिए जाता। उसको अपने क़रीब लेटता हुआ महसूस करके बहुत थोड़ी देर के लिए अज़रा की आँख खुलती और एक हलकी-सी बासी ख़ुशी की लहर उसके बदन में दौड़ जाती, लेकिन जल्द ही वह सो जाती। क्योंकि जिस शख़्स से उसे गहरी मुहब्बत थी, उसकी तरफ़ से अब वह मुत्मइन और लापरवाह होती जा रही थी। बहुत कम ऐसा होता कि रात के उस समय उसकी नींद उड़ जाती और फिर वह सो न सकती। थोड़ी देर तक अँधेरे में इन्तिज़ार करते रहने के बाद वह एक सुबकी लेकर उसके साथ लिपट जाती और देर तक जागती रहती। कभी-कभी ऐसा भी होता कि सवेरे जब अज़रा उठती, तो नईम को कुर्सी पर सोया हुआ पाती। जगाने से पहले वह देर तक दरवाज़े में खड़ी मुहब्बत, उदासी और हलके-से ग़ुस्से और नफ़रत के साथ उसे देखती रहती। लेकिन नईम के लिए जो डॉक्टर की तरफ़ से सुबह-सवेरे लम्बी सैर और ख़ास क़िस्म की वर्ज़िश की हिदायात थीं, उन पर सख़्ती से अमल करती।

सुबह सवेरे सैर पर जानेवालों को सड़क के किनारे-किनारे नईम छड़ी के सहारे आहिस्ता-आहिस्ता लँगड़ाकर चलता हुआ मिलता। उसका बाज़ू थामे साथ-साथ उसकी बीवी चल रही होती और नीची आवाज़ में कोई बात करती जाती। फिर जब रौशन महलवालों के जागने का वक़्त होता तो अक्सर जो मंज़र सबसे पहले देखते, वह नईम का होता, जो अज़रा की मदद से मुख़्तलिफ़ क़िस्म की वर्ज़िशें भौंडेपन के साथ कर रहा होता। सिवाय नजमी के, यह नज़्ज़ारा उनमें से किसी के लिए कुछ ज़्यादा ख़ुशकुन न था। उनमें से कुछ ने तो अब सुबह सवेरे पूरबी लॉन की तरफ़ देखना छोड़ दिया था।

1. हास्यास्पद, 2. प्रभावहीन, 3. असन्तुलित, 4. फ़ुरसत।

पढ़ने का शौक़ नईम को उन दिनों हुआ, जब वह बीमार था और करने को उसके पास कुछ न था। सबसे पहले उसने मज़हबी किताबें पढ़ना शुरू कीं। क़ुर्आन के अलावा उसने बाइबल और गीता भी पढ़ी। फिर वह तारीख़[1] की तरफ़ मुतवज्जेह हुआ। यह तब्दीली किसी तयशुदा प्रोग्राम के तहत न हुई, बल्कि बिलकुल लाशुऊरी तौर पर अमल में आई। एक रोज़ लेटे-लेटे यूँ ही उसका जी चाहा कि तारीख़ की कोई किताब पढ़े। साथ ही उसने सोचा कि वह जो मज़हब का मुतालआ[2] इतने रोज़ से कर रहा था, उससे उसको क्या हासिल हुआ था। उसका ज़ेहन और रूह जिस दुख में मुब्तला थे, उसमें ज़र्रा बराबर कमी न हुई थी और इतना सारा वक़्त उसने महज़ बूढ़ा होने में बर्बाद कर दिया था। अज़ीम नुक़सान का एहसास, जो मुस्तक़िल उसके साथ लगा हुआ था, शदीद हो गया और उसने पिछली तमाम किताबों को बिलकुल भुला दिया। इस तरह थोड़े-थोड़े वक़्फ़े पर वह एक मौज़ूअ से मायूस होकर दूसरे की तरफ़ जाता रहा और पूरी तरह से कुछ भी न पढ़ सका। हिन्दोस्तान और बाक़ी दुनिया की तारीख़ पढ़ने के बाद उसे साइंस में दिलचस्पी पैदा हुई। उसमें उसे हिसाब, तबीआत[3] और साइंस की ताज़ातरीन ईजादात[4] ने बहुत मुतअस्सिर किया। कुछ अरसे तक वह बड़ी लगन से आसान ज़बान में लिखी हुई अंग्रेज़ी की किताबें पढ़ता रहा, लेकिन साइंस का मज़मून दिलचस्प और हैरतअंगेज़ होने के बावजूद उसे खोखला-सा लगा। जितना ज़्यादा वह उसे पढ़ता गया, उतना ही ज़्यादा उलझता गया। साइंस के पढ़ने ने उसमें एहसासे-कमतरी[5] पैदा किया और हर नई चीज़ पढ़ने पर उसे लगता कि जैसे अब तक वह कुछ भी न था और महज़ उस एक चीज़ के जानने पर अब वह सब कुछ जान गया है। उसके दूसरे दिन ही वह नए सिरे से ख़ला में भटकना शुरू कर देता। हर नए बाब[6] के साथ उसकी बेचैनी और ज़ेहनी और रूहानी नादारी[7] का एहसास बढ़ता गया और साथ ही साइंस के मज़मून से उसकी गहरी बेज़ारी बढ़ती गई। इसके बावजूद कितने ही अरसे तक वह उसे छोड़ने की कोई शुऊरी कोशिश न कर सका, क्योंकि उस मज़मून में एक वक़्ती दिलचस्पी और आन-बान का एहसास था, जिससे वह नजात[8] हासिल न कर सका। हर इनसान, न चाहने के बावजूद, कई एक चीज़ों में उनकी ख़ालिसतन ख़ुशकुन ख़ुसूसियात की वजह से फँसकर रह जाता है। आख़िर एक रोज़ ग़ैर-शऊरी तौर पर, जैसा कि अक्सर होता है, बेहद उकताकर उसने उस मज़मून को हमेशा के लिए छोड़ दिया। उसके काफ़ी अरसे बाद उसने एक रोज़ सोचा कि जो कुछ उसने किया, या हुआ, बिलकुल ठीक था, क्योंकि उसे किसी बात का भी जवाब न मिल सका था, कि जो सवालात और उलझनें उसके दिलो-दिमाग़ को घेरे हुए थीं, उनका जवाब वहाँ पर था ही नहीं, कि साइंस किसी बुनियादी सवाल का जवाब नहीं देती, कि इस तमाम अरसे में जो एक धीमी और मुसलसल आवाज़ ज़िद्दी लहजे में पुकारती रही थी : क्यों ? क्यों ? क्यों ? इसका जवाब वहाँ नहीं था। किसी हद तक उसका जवाब उसे फ़लसफ़े में मिल गया, जिसकी तरफ़ अब उसने रुजूअ[9] किया था या कम-से-कम उसने यह समझा कि फ़लसफ़ा उसका जवाब है। फ़लसफ़े की दुनिया ने उसे तेज़ी से मस्हूर[10] किया और वह इब्तिदाई[11] आसान फ़लसफ़ा पढ़ते-पढ़ते हक़ीक़ी जदीद फ़लसफ़े[12] तक आ पहुँचा। फ़लसफ़ा साइंस की तरह दिलचस्प और हैरतअंगेज़ न था, लेकिन वह गहरा, देर-पा, सुकून-बख़्श मौज़ूअ था। साइंस पढ़ने के दौरान उसमें जो जल्दी का अन्दाज़ पैदा हो गया था, अब जाता रहा था। फ़लसफ़े का एक पन्ना पढ़कर उसे कोई ख़्वाहिश बाक़ी न रहती और उसकी तबीअत की उदासी और ठहराव और बढ़ जाता। साइंस के जादू में जो जकड़े जाने का एहसास था, उससे अब वह आज़ाद हो गया था। कभी-कभी वह किताब खोलकर एक लाइन पढ़ता और आँखें बन्द करके तम्बाकू पीने लगता। वक़्ती तौर पर उसे गहरे इत्मीनान का एहसास होता और उसके दिल में कुछ भी करने की ख़्वाहिश बाक़ी

1. इतिहास, 2. अध्ययन, 3. भौतिकी, 4. आविष्कार, 5. हीनभावना, 6. विषय, 7. कंगाली, 8. मुक्ति, 9. प्रवृत्त, 10. मन्त्रमुग्ध, 11. प्रारम्भिक, 12. वास्तविक आधुनिक दर्शन।

न रहती। थोड़ी-थोड़ी देर बाद वह आँखें खोलता और बन्द कर लेता और उसे महसूस होता कि ज़िन्दगी में कुछ भी नहीं है; कोई काम, कोई जज़्बा, कोई मसरूफ़ियत, कोई इन्तिज़ार, कुछ भी नहीं। सिर्फ़ "वह" है और उसका तम्बाकू का पाइप है और लम्बी आरामदेह कुर्सी है और किताबों से भरी हुई अलमारियाँ हैं और गहरा इत्मीनान, गहरे अमन का एहसास है। आख़िरकार उस जगह, उस कमरे में हर चीज़ का ख़ातिमा है और आज़ादी है और वह ख़ुशी से सारी उम्र बिता सकता है। कभी-कभी वह छड़ी के सहारे चलता हुआ निशस्त के कमरे में जाकर अज़रा के सामने, जो बैठी मोज़े बुन रही होती, दीवार की तरह खड़ा हो जाता। अज़रा को महसूस होता कि वह उसको यूँ देख रहा है जैसे कि वह कोई अहमक़ हो, या कोई बेजान चीज़ हो, जैसे मेज़ या कुर्सी या शायद कहीं भी नहीं देख रहा, बल्कि सोते में चल रहा है...काफ़ी देर के बाद वह चन्द बार आहिस्ता-आहिस्ता दुहराता : "तुम जानती हो ? तुम जानती हो ?" उसका लहजा हैरतनाक तौर पर उदास, सर्द और पुर-सुकून होता। अज़रा, जो उसके साथ रहने की आदी हो चुकी थी, मामूली अन्दाज़ में हँसती और कोई बात करने लगती, जिस पर वह उसके पास बैठ जाता या उसकी बात अधूरी छोड़कर वापस चला जाता।

आहिस्ता-आहिस्ता फ़लसफ़े का असर भी ख़त्म हो गया, जैसे कि तमाम दुनियावी उलूम[1] का असर इनसान की ज़िन्दगी में जल्द या देर से कभी-न-कभी ज़रूर ख़त्म हो जाता है। अब वह आहिस्ता-आहिस्ता पन्ने पलटता है और ख़ामोशी से, बग़ैर जाने हुए, दिलो-दिमाग़ के ख़ाली हो जाने का मातम करता रहता। लेकिन तम्बाकू के धुएँ और किताबों से भरे हुए उस कमरे से निकलना अब उसके लिए बहुत मुश्किल हो चुका था। यहाँ आकर उसको महसूस होता कि उसे किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं रही; उन किताबों की, लैम्प की, मेज़ और कुर्सी की, तम्बाकू के डिब्बे की, किसी भी चीज़ की नहीं। यहाँ पर वह अपने हक़ीक़ी नंगे वुजूद में आ जाता और अपने आस-पास की हर चीज़ के साथ पुराने सादा-दिल दोस्तों की तरह मिलता, जिनके साथ आप मुकम्मल बेनियाज़ और बे-राज़ तौर पर रह सकते हैं। यह छोटा-सा कमरा उसके लिए हर क़िस्म की आज़ादी की, हर चीज़ के ख़ातिमे की एक नई अलामत बन चुका था।

यही वजह थी कि घर से बाहर वह हमेशा किसी-न-किसी सहारे की तलाश में रहता, मगर चूँकि वह एक बूढ़े होते हुए, उकताए हुए आदमी की तरह रूहानी तौर पर मुन्कसिर[2], लेकिन ज़ेहनी तौर पर पुर-तकब्बुर[3] था, इसलिए बहुत कम लोगों से मरऊब[4] होता। और जो लोग उसे मरऊब करते, एक हासिदाना जज़्बे[5] के ज़ेरे-असर वह कभी-कभार ही उनके क़रीब हो सकता। उन दिनों उस तनहा सूरत इनसान पर इब्तिला[6] का यह वक़्त आया था।

सिर्फ़ पार्लियामेंटरी सेक्रेटरी अनीसुर्रहमान एक ऐसा शख़्स था दफ़्तर भर में, जिनके साथ नईम को दिलचस्पी थी। वह उम्र में नईम से चन्द बरस बड़ा, छोटे क़द का तन्दुरुस्त आदमी था। उसके गाल अगर इतने फूले हुए, गर्दन इतनी मोटी और बाल माथे पर बहुत नीचे तक उगे हुए न होते, तो ख़ूबसूरत कहलाया जा सकता था। पचास बरस के लगभग होने के बावजूद उसके बाल बेहद सियाह और खुरदरे थे और तेज़, ज़हीन और आँखें गोश्त ज़्यादा होने की वजह से अन्दर को धँसी हुई थीं, जिन पर वह सुनहरे फ़्रेम का नाज़ुक-सा चश्मा लगाए रखता था। वह जंगली भैंसे की-सी फुर्ती और क़ुव्वत के साथ चलता-फिरता था और जब होश में होता तो उसके बाज़ुओं और गर्दन के बाल खड़े हो जाया करते। किसी ने उसे कभी सुस्त या बेकार बैठे हुए न देखा था। दफ़्तर का काम वह पलक झपकते में ख़त्म कर लेता और फिर दोस्तों को ख़त लिखता या फ़ोन पर अपनी बीवी से बातें करता रहता। जब कोई काम न होता तो उठकर दफ़्तर में चक्कर लगाने लगता और हर एक से एक साथ बातें करता। उसके अन्दाज़ से ज़ाहिर था कि उसकी किसी से शख़्सी दिलचस्पी न थी। वह किसी की ख़ैरियत पूछता या किसी से हमदर्दी की बातें करता तो महज़ अपने आपको

1. विद्याएँ, 2. नम्र, 3. अहंकारी, 4. प्रभावित, 5. ईर्ष्यालु भावना, 6. परीक्षा, दुख।

मसरूफ़ रखने या फ़ालतू वक़्त को सर्फ़ करने की ख़ातिर करता। ज़रूरी नहीं कि यह बात सही हो, लेकिन कोई ऐसी बात ज़रूर थी जिससे दूसरों को ऐसा ख़याल होता था। उसके साथ काम करनेवाले उससे डरते थे, शायद हासिदाना इज़्ज़त भी करते थे, पर मुहब्बत न कर सकते थे। इसका सबको पता था। इसके बावजूद, नुमायाँ तौर पर कोशिश किए बग़ैर वह शख़्स जिस हलक़े[1] में घूमता, जिस महफ़िल में मौजूद होता, सब पर छाया रहता। यूँ लगता था कि उसके पास हर बात का, हर वाक़िए का निहायत दानिशमन्दाना[2] और सही जवाब मौजूद था। उसके अन्दाज़ के ग़ैर-शख़्सीपन[3] के बावजूद एक अजीब तरह की गर्मी और मिठास थी जो लोगों को उससे डरने, उसकी इज़्ज़त करने और उससे मरऊब होने पर मजबूर करती थी। जब वह बातें कर रहा होता, तो उसकी तेज़ आँखों और हाथों की हरकत से एक जादू-सा पैदा हो जाता, जो वक़्ती तौर पर बहुत ताक़तवर होता। वह उन लोगों में से न था, जिनके जाने के बाद देर तक आप उनके मुतअल्लिक़ सोचते रहते हैं, मगर वह जितना अरसा मौजूद रहता, आप उसके जादू के असर में रहते थे और उसके मुक़ाबले में अपनी कमतर हैसियत को मानने पर मजबूर हो जाते थे।

दो-एक बार नईम उसके घर पर भी गया, जहाँ उसकी बीवी उसकी पहली बीवियों के दो बच्चों की देखभाल करती थी। बिलक़ीस मुश्किल से पच्चीस बरस की सेहतमन्द और ख़ुशमिज़ाज लड़की थी और उसकी तीसरी बीवी थी। पहली मुलाक़ात में ही नईम को मालूम हो गया कि वह मामूली पढ़ी-लिखी ख़ुशहाल लड़की उम्र के फ़र्क़ के बावजूद अपने शौहर से पूरी तरह मुत्मइन थी और बहुत सलीक़े से घर और बच्चों को साफ़-सुथरा रखती थी। ज़िन्दगी की तरफ़ उसका एक सेहतमन्दाना, आमियाना[4] रवैया था। वह बहरहाल ऐसी औरत न थी, जिससे नईम मुतअस्सिर हो सकता, चुनाँचे उसने उसे नज़रअन्दाज कर दिया। बिलक़ीस ने भी उस सफ़ेद बालोंवाले, अध-गंजे, और छड़ी के सहारे लँगड़ाकर चलते हुए ग़ैर-दिलचस्प आदमी को कोई ज़्यादा अहमियत न दी।

41

शुरू जाड़ों के दिन थे, जब नईम अनीसुर्रहमान और उसके घरवालों के साथ मछली के शिकार को गया। अनीसुर्रहमान बाक़ाइदगी के साथ हर दूसरे हफ़्ते बीवी-बच्चों को लेकर शहर से बीस मील दूर मछली के शिकार को जाता, जहाँ दरिया के किनारे उसकी एक छोटी-सी कोठी और एक मोटर-बोट थी। आमों के बाग़ में खड़ी हुई वह छोटी-सी कोठी ठंडी और पुर-सुकून थी। यहाँ पहुँचकर नईम के दिल में हलकी-सी बेचैनी पैदा हुई, वह बेनाम-सी कसक जो खोए हुए सुकून का पता देती है और जिसके मिटे हुए निशान कभी-कभार दिल पर उभरकर इनसानी तलाश की अलामत बन जाते हैं। उसका गाँव और बड़े-बड़े घने पेड़ोंवाला बाग़ और गीली सियाह ज़मीन, जिसकी ठंडक में खोजती हुई आँखों और थके हुए दिलों के सारे जज़्बे फलते-फूलते और परवरिश पाते हैं, जैसे फूल और पौदे और हरी-भरी घास, और जहाँ पर हर इन्तिज़ार और हर तलाश ख़त्म हो जाती है...हफ़्ते की शाम को जब वे वहाँ पहुँचे, तो खाना खाने से पहले अनीसुर्रहमान नईम को कोठी दिखाने की ग़रज़ से बाहर ले गया। आमों के पेड़ों के अलावा घास के एक टुकड़े में, जो बैठने के लिए मख़सूस था, सरो का दरख़्त अकेला खड़ा था, जिसके नीचे कोठी के रखवाले का घर था। दरख़्त के साथ अनीसुर्रहमान का घोड़ा बँधा था, जो उन्हें देखकर हिनहिनाया। नईम ने पसन्दीदगी से असीलुन्नस्ल[5] जानवर की पीठ पर हाथ फेरा और उसकी तारीफ़ की। वापस आते हुए वह खोए हुए लहजे में बोला, "मुझे यक़ीन था, यहाँ आकर मुझे ख़ुशी होगी, इसीलिए...मैं इसीलिए..." उसने चौंककर अनीस की तरफ़ देखा। फिर हाथ उठाकर हथेली पर देखते हुए आहिस्ता से कहा, "अकेला ही आया।"

1. मंडली, 2. बुद्धिपूर्ण, 3. अवैयक्तिक, 4. आम लोगों जैसा, 5. कुलीन।

अनीसुर्रहमान अपने तनदिही[1] के अन्दाज़ में हँसा, जिससे उसकी नाजुक सुनहरी ऐनक नाक से ऊपर उठ गई, "यहाँ आकर मुझे सुकून मिलता है। मैं जब पहली बार लारंस के साथ यहाँ आया, तो उसी रोज़ मैंने फ़ैसला कर लिया कि एक न एक रोज़ मैं इस जगह को ज़रूर ख़रीदूँगा। मुझे मालूम था कि तुम यहाँ आकर ख़ुश होगे। तुम शहर के वासी नहीं हो। मैं जानता हूँ।"

"हाँ !" नईम ने कहा।

सुबह सवेरे वह और उसका मेज़बान मछली के शिकार का सामान उठाकर दरिया की तरफ़ रवाना हुए। पतझड़ का मौसम था और सुबह की हवा में शीशम के दरख़्तों के ख़ुश्क पत्ते खड़खड़ाकर गिर रहे थे। रास्ते में उन्हें साथवाले गाँव के कुछ लोग सुबह की सैर और रफ़ए-हाजत[2] के लिए जाते हुए मिले। आगे चन्द झोंपड़ियाँ आईं, जिनमें क़हतज़दा[3] बंगाली कुनबे, जो रोटी की तलाश में वतन छोड़कर आए थे, पनाह-गुज़ीं[4] थे। इक्का-दुक्का किसान बैलों की जोड़ियाँ लिए हल चलाने के वास्ते जा रहे थे। दोनों शिकारी मुक़र्ररा जगह पर पहुँचकर रुक गए। उस जगह शीशम के दरख़्तों का बहुत बड़ा झुंड था और नीचे दरिया के किनारे के पत्थर ज़र्द और क़िरमिज़ी रंग के पत्तों से ढँके हुए थे। उन्होंने कन्धों पर से थैले उतारकर नीचे रखे और डोरियाँ और छड़ियाँ तैयार करने लगे।

"मछली का शिकार तुम्हारे लिए बहुत मौज़ूँ[5] है," अनीसुर्रहमान ने कहा और उसको उस जगह की ख़ुसूसियात बताने लगा। उसने बताया कि उस जगह पर दरख़्त इस तौर से उगे थे कि सारा दिन उन पर धूप न पड़ सकती थी, और किनारे के मख़सूस कटाव की वजह से उस जगह दरिया एक छोटे-से तालाब की शक्ल इख़्तियार कर गया था, जिसमें मछलियाँ बहुत ज़्यादा मिलती थीं। फिर जब उन्होंने छड़ियाँ और डोरियाँ तैयार कर लीं, तो वह देर तक नईम को डोरी फेंकने और खींचने का सही तरीक़ा समझाता और मश्क़ कराता रहा। जब सूरज एक नेज़े पर आ गया, तो वह अपनी-अपनी डोरियाँ फेंककर सुकून से बैठ चुके थे और अनीस नईम को एक फ़ालतू कुंडी पर केकड़ा फँसाकर सही बेट (BAIT) लगाने का तरीक़ा बता रहा था। जब यह मौज़ूअ भी ख़त्म हो गया, तो वह नीची आवाज़ में जो कि मछलियों तक न पहुँच सकती थी, उसे उस दरिया में पाई जानेवाली तरह-तरह की मछलियों के बारे में बताने लगा।

अब दरिया की सतह पर धूप उनके क़रीब आ रही थी। कभी-कभी कोई चमकीली मछली हवा में छोटी-सी छलाँग लगाकर ग़ायब हो जाती। दरियाई हवा के ज़ोर से शीशम के पत्ते उनके सिरों पर और आस-पास सारी जगहों पर गिर रहे थे और शोर मचा रहे थे। उसके साथ हवा, दरिया के बहने का और आबी परिन्दों की आवाज़ों का शोर था। दोनों मर्दों की डोरियों के नाड़ पानी की सतह पर डोल रहे थे। कभी-कभी कोई छोटी-छोटी शरारती मछली रास्ता गुज़रती हुई कुंडी पर मुँह मार जाती। बड़ी मछली अभी तक कोई न लगी थी।

नईम ने पाइप होंठों से जुदा किया और पानी की सतह पर से नज़र उठाकर पहली बार बात की, "तुमने उन्हें देखा। वहाँ..." उसने सिर से पीछे की तरफ़ इशारा किया।

अनीस ने ग़ौर से उसे देखा और कन्धे उचकाकर बोला, "ओह...बंगाल...तुम्हें पता ही है... बंगाल..."

नईम फिर पानी की सतह पर देख रहा था। अनीस एड़ियाँ उठाकर अपने बीवी-बच्चों की राह देखने लगा, जो अभी तक नहीं पहुँचे थे। फिर वह नईम को दूसरी डोरी का ख़याल रखने के लिए कहकर किनारे-किनारे चलता हुआ दूर तक चला गया।

जब वह वापस आया, तो नईम उसी तरह बैठा था और एक कौआ केकड़ों के डिब्बे में चोंच मार रहा था। अनीस को अपने क़रीब खड़ा पाकर नज़र उठाए बग़ैर वह बोला, "अनीस, मुसीबतें क्यों आती हैं ?"

---

1. तल्लीनता, 2. शौचनिवृत्ति, 3. अकालग्रस्त, 4. शरणार्थी, 5. उपयुक्त।

अनीस उदासी से मुस्कराकर ख़ामोश हो रहा।

"इनसानों पर जुल्म क्यों होते हैं ?" नईम तेज़ी से बोल उठा, "इंसाफ़ क्यों नहीं होता ? इंसाफ़ किधर गया ?"

कुछ पल तक एक दूसरे की तरफ़ देखने के बाद दोनों ने एक साथ नज़रें फेर लीं। नईम का नाड़ ग़ायब हो चुका था। उसने डोरी खींचकर बाहर निकाला। वह एक फ़ुट लम्बी पतली-सी राख के रंग की मछली थी। नईम को एक हाथ की मदद से कुंडी से मछली छुड़ाने की कोशिश करते हुए देखकर अनीसुर्रहमान ने डोरी उसके हाथ से ले ली और आहिस्ता से मछली को अलग कर दिया। फिर कुंडी पर नया केकड़ा लगाकर उसे पानी में फेंकते हुए वह ला-तअल्लुक़[1] अन्दाज़ में बंगाल के क़हत की बातें करने लगा।

नईम ने हाथ उठाकर उसे ख़ामोश किया, "मुसीबतें क्यों आती हैं ?" उसने ज़िद्दी लहजे में कहा। एक पल रुकने के बाद अनीसुर्रहमान तेज़ी से, लगन से, जज़्बे से बोलने लगा :

"मैं भी इसी तरह सोचता हूँ...इसी तरह...एक वक़्त था, जब मेरा ख़याल था कि मुसीबतें बुरे आदमियों की वजह से आती हैं और एक सादा-से उसूल के मुताबिक़ गेहूँ के साथ घुन भी पिस जाता है। मगर उसूल ? उसूल क्या चीज़ है ? मुझे पता चला कि वह अक़्लमन्दी की बातें, जो मैंने लड़कपन और जवानी में सीखीं, वे सारे ज़र्रीं अक़्वाल[2]...कुछ भी नहीं हैं। अगर हमें बँधे-टिके उसूलों के मुताबिक़ ही ज़िन्दगी बसर करना है, तो फिर ख़ुदा बीच में कहाँ से आता है ? फिर उसमें वह "कहाँ आता है ?..." वह रुका, "नईम, तुम वहाँ नहीं थे। तुमने सिर्फ़ उनको देखा है, जो ज़िन्दा हैं। उनको नहीं देखा, जो मर रहे हैं। मैं अभी वहाँ से लौटा हूँ। तुम्हें पता है, वहाँ क्या हो रहा है ? जवान और बूढ़े और बच्चे, छोटे और बड़े भीख माँग रहे हैं। अच्छे और बुरे सब शिकारी हो गए हैं। हर कोई खाने के लिए ज़िन्दा है या खाने के लिए मर रहा है। मुट्ठी भर चावलों के लिए या चावलों के पानी के लिए...वे इतने-से चावलों की वजह से या मर रहे हैं या अमीर हो रहे हैं। यह वह वक़्त आया है, जब शदीद इनसानी हालात ज़िन्दगी में दाख़िल होकर आम हालात का दर्जा इख़्तियार कर लेते हैं। अगर तुम्हारे पास कुछ नहीं है, तो भीख माँगोगे। अगर कुछ है, तो उसे बेचकर अमीर बन जाओगे ! ज़िन्दगी बहरहाल थोड़े-से अनाज पर मुनहसिर[3] होकर रह गई है। अब यहाँ से एक सादा-सा उसूल बना लेना निहायत आसान है कि 'ज़िन्दगी मुख़्तलिफ़ और मुतज़ाद[4] हालात के पेशे-नज़र बेहद अज़ीज़ और बा-मानी[5] और फिर बेहद सस्ती और बे-मानी[6] हो सकती है। अल्लाह- अल्लाह, ख़ैर सल्ला !' आपने उसूल बना लिया और मुत्मइन हो गए, पर मैं नहीं। मैं पूछता हूँ, इंसाफ़ कहाँ गया ? इंसाफ़ ? जो हमने सदियों से उलट-फेर से सीखा है। जंगों और वबाओं और क़हतों और ज़लज़लों और दूसरी आसमानी बलाओं के बाद सीखा है। क्या आप इससे कोई ख़ास उसूल बना सकते हैं ? कोई ज़ाबिता ? कोई "पैटर्न" ? या गुज़रे हुए ज़मानों से हासिल किए हुए तमाम इनसानी इल्म, तमाम इनसानी दुख का कोई "पैटर्न" ? हमें आज इस बात का पता है कि यह लम्बी-चौड़ी और इन्तिहाई मुतज़ाद और बिखरी हुई आफ़तें थीं, जो हम पर और हमारे पुरखों पर आईं। हमने उनसे सिवाय ज़र्रीं अक़्वाल के क्या हासिल किया ? सुनहरी उसूल ?" वह तन्ज़ से हँसा, "जो इनसानी मुशाहिदे[7] की एक बेहद सतही काविश[8] हैं, किसी चीज़ से भी हासिल किए जा सकते हैं; दूध के गिलासों से, या टूटी-फूटी मोटरगाड़ियों से या आदमी और भैंस की लड़ाई से भी...जैसे यह कि 'ऐ इंसानो...भैंसों से मत लड़ो।'...दूसरे लफ़्ज़ों में सुनहरी उसूल इन्तिहाई मुतज़ाद वाक़िआत[9] से भी लिए जा सकते हैं। लेकिन क्या हम तज़ाद[10] से इंसाफ़ हासिल कर सकते हैं ? या इंसाफ़ की कोई सूरत ही ? जबकि उसूल जो कि

1. असम्बद्ध, 2. सुनहरे प्रवचन, 3. निर्भर, 4. प्रतिकूल, 5. अर्थपूर्ण, 6. अर्थहीन, 7. तजर्बा, निरीक्षण, 8. वह खोज जो बिना ग़ौर किए हुई हो, 9. घटनाओं, 10. प्रतिकूलता।

एक सतही और बेबस मुशाहिदे का नतीजा है, मुतज़ाद और बिखरे हुए होने के बावजूद एक ही उन्वान के तहत तरतीब दिए जा सकते हैं। इंसाफ़ के साथ ऐसा नहीं किया जा सकता। इसका असर सीधा और गहरा है। उसूल एक बेबसी का इल्म है, जिनका हमारी ज़िन्दगियों से कोई तअल्लुक़ नहीं, एक किताब की तरह...आपके इख़्तियार में है कि पढ़कर उससे फ़ायदा उठाएँ या उसे उठाकर शुरू से आख़िर तक पढ़ें और भूल जाएँ या फिर उसे हाथ तक न लगाएँ और मेज़ पर सिर्फ़ धूल में दबने और गलने-सड़ने के लिए छोड़ दें...इंसाफ़ के साथ ही आप ऐसा बर्ताव कर सकते हैं ? नहीं...यह मेरे या आपके इन्तिख़ाब[1] की बात नहीं है। यह मेरी या आपकी मर्ज़ी पर मुनहसिर नहीं है। इंसाफ़ दूसरी आसमानी आफ़तों की तरह हम पर लागू किया जाता है और हमारा मुक़द्दर बन जाता है। यह तमाम इनसानी तारीख़, तमाम इनसान दुख पर हावी है। फिर क्यों, मैं पूछता हूँ, क्यों ? जबकि आसमानी इंसाफ़ का कोई "पैटर्न" नहीं है तो क्यों हम इनसानों के इंसाफ़ की ताईद[2] करें ? जंगों और क़हतों और वबाओं में इंसाफ़ कहाँ था ? हम कैसे इनसानों की "ज़िन्दगियों" पर हुकूमत करने के लिए उसूल बना सकते हैं जबकि इनसानों के "मुक़द्दर" के लिए कोई उसूल नहीं हैं। यह कैसे मुमकिन है कि चन्द बे-रूह, मुर्दा-दिल, या यासियतपरस्त[3] और बीमार पढ़े-लिखे लोगों का एक गिरोह दूसरे इनसानों की ज़िन्दगियों का फ़ैसला करने बैठ जाए, जबकि वे ख़ुद अपने मुस्तक़्बिल[4] और अपने अंजाम[5] के मुतअल्लिक़ बेख़बर और बेबस हैं और उन क़ुव्वतों से मुतअल्लिक़ कुछ नहीं जानते, जिनके हाथ में उनका ख़ातिमा है। तुमने उन लोगों की बेबसी देखी है, जब वे लोग जंग या क़हत के दौरान अपने क़ानून चलाने की कोशिश करते हैं। वे एक शख़्स को भी मरने से, ख़त्म होने से नहीं बचा सकते, मगर अपनी बदनुमा शानो-शौकत के साथ, चेहरों पर मसनूई सुकून तारी किए, काग़ज़ों और दफ़्तर की मेज़ों के साथ अपना पेशा जारी रखते हैं। जब वे मासूम इनसानों को मौत से नहीं बचा सकते, तो अपने क़लम, काग़ज़ और दफ़्तर के फ़र्नीचर को बचाने की जान-तोड़ कोशिश करने लगते हैं। तुम समझते हो कि वे नालायक़ हैं ? नहीं...उस सारे वक़्त में उन्हें मुस्तक़िल अपने काम की बे-असर और नफ़रत-अंगेज़[6] नौईयत[7] का पता रहता है। वे नालायक़ नहीं हैं, नाअह्ल[8] हैं, साफ़-साफ़ नाअह्ल।" वह चश्मा उतारकर शीशे साफ़ करने लगा। बिलक़ीस इस दौरान में उसके क़रीब आ खड़ी हुई थी। अनीस अजीब-सी सवालिया नज़रों से उसे देखने लगा। उसे इस तरह अपनी तरफ़ तकते हुए पाकर वह ख़ामोशी से मुड़कर उस तरफ़ को चली गई, जिधर उसके दोनों बच्चे उथले पानी में खड़े मलमल का दुपट्टा डुबो-डुबोकर मछलियाँ पकड़ रहे थे। जब दोबारा चश्मा चढ़ाकर वह बोला, तो उसकी आवाज़ गहरी और उदास थी : "या शायद नाअह्ल भी नहीं है, सिर्फ़ अहमक़ है, अहमक़...क्योंकि फिर मैंने उन्हीं आदमियों को मज़्हकाख़ेज़ तौर पर मरते हुए देखा, वबाओं में और...वे अपने इंसाफ़ के क़ानून यहीं पर छोड़कर बेबस, बेकस लोगों की तरह मर गए। उस क़ुव्वत के ज़ेरे-असर, जो उनके इंसाफ़ के क़ानूनों की कोई परवाह नहीं करती। उसका अपना इंसाफ़ है। यह वही बे-मानी मौत थी, जो हर किसी को आती है। वही बेकसी की मौत जो कुत्ते को आती है। क़ानून दो बार मरते हैं। बेहतर मौत उनके लिए वह है जब वे ग़लत साबित होते हैं और बदल दिए जाते हैं हर ज़माने में, और बेहतर मौत उनके लिए वह होती है जबकि वे अभी लागू होते हैं और उनको माना नहीं जाता है, ज़लज़लों, वबाओं, जंगों की मदद से। जब आफ़तें आकर मुकम्मल तौर पर उनकी नफ़ी करती और तमाम इनसानी ज़िन्दगी को अबदी तौर पर बेमानी साबित करती हैं। वबा के बाद अगर एक शहर में सौ या दो सौ आदमी बच जाते हैं तो क्या तुम समझते हो कि वह ज़िन्दगी की निशानी है ? यह मौत है। एक इनसान की मौत सबकी मौत है क्योंकि ज़िन्दगी यकसाँ है और मौत बहरहाल मौजूद, तुम्हारी या मेरी या मेरे बच्चों की, इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। अगर

1. चयन, 2. समर्थन, 3. निराशावादी, 4. भविष्य, 5. अन्त, 6. घृणा पैदा करनेवाला, 7. प्रकार, 8. अयोग्य।

में तुम्हें क़त्ल करता हूँ, तो फाँसी पर चढूँगा। नहीं करता तो क़हत[1] में मरूँगा या जंग में या किसी गली या अस्पताल में ही मर जाऊँगा। क्या फ़र्क़ पड़ता है ?"

नईम ने बेख़ुद होकर नफ़ी में सिर हिलाया। अनीसुर्रहमान की आँखों में एक अजीब-सी चमक पैदा हुई और वह नईम की तरफ़ झुककर बोला, "यही तो मैं पूछता हूँ। अगर कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता तो इंसाफ़ कहाँ गया ? यही तो मैं पूछता हूँ...तुमने इंसाफ़ के मुतअल्लिक़ पूछा था न ? यही तो मैं पूछता हूँ...यही तो..."

वह शोर सुनकर रुक गया। बिलक़ीस और बच्चों ने, जो घुटनों-घुटनों पानी में खड़े थे, कपड़े की मदद से एक ख़ासी बड़ी मछली पकड़ ली थी। बिलक़ीस पूँछ की तरफ़ से तड़पती हुई मछली को पकड़े खड़ी थी और बच्चे तालियाँ बजा रहे थे। उसने जब दोनों मर्दों का ध्यान अपनी तरफ़ देखा, तो बच्चों की तरह खिलखिलाकर हँसी और मछली उन्हें दिखाकर तालियाँ बजाने लगी। अनीसुर्रहमान उठा और नईम को अपने साथ आने का इशारा करके कश्ती की तरफ़ चल पड़ा। अभी वे थोड़ी दूर ही गए होंगे कि अनीस की डोरी के साथ मछली लगी, लेकिन वहाँ अब कोई न था। बिलक़ीस कमर पर हाथ रखे ग़ुस्से से उन्हें जाते हुए देख रही थी।

कश्ती में बैठकर अनीस ने इंजन चलाया और रुख़ बहाव की मुख़ालिफ़ सम्त[2] का कर लिया। इंजन की आवाज़ से दरिया में बैठे हुए पतली-पतली टाँगोंवाले हलके-फुलके सफ़ेद परिन्दे मछलियों का नाश्ता छोड़कर उड़े और आबी आवाज़ों में शोर मचाने लगे। पानी बारिशों की वजह से गन्दला हो रहा था और उस पर धूप फैल चुकी थी। पानी को काटते और छींटे उड़ाते हुए वे तेज़ी के साथ कुछ दूसरी कश्तियों के क़रीब से गुज़रे, जिनमें सियाह बदन मछेरे खड़े ख़ामोशी से जाल फेंक रहे थे। दूर से कश्ती के इंजन की आवाज़ सुनकर उन्होंने नागवारी से सिर उठाया, लेकिन जब वे पास से गुज़रे तो अनीस को पहचानकर झुककर सलाम करने लगे, जिसे उसने न देखा, सिर्फ़ नईम ने हाथ उठाकर जवाब दिया। उनकी मछलियाँ भाग गई थीं, मगर वह मरऊब[3] हो चुके थे। सालहा-साल की मुसीबत ने इसी सूरत में उन्हें ज़िन्दा रहने के क़ाबिल बना दिया था।

कुछ मील ऊपर जाकर उसने इंजन बन्द कर दिया और कश्ती धारे के साथ बहने के लिए छोड़ दी। फिर वह उठकर नईम के क़रीब आ बैठा।

"दरअसल 'वह' कहीं भी नहीं है। वह सिर्फ़ हमारे यहाँ पर है..." उसने चारों उँगलियों से अपने सिर को ठोंका, "यहाँ...और यहाँ पर और कुछ भी नहीं है, हालाँकि यहाँ अक़्ल को होना चाहिए !"

नईम हैरत और उदासी से उसे देखता रहा।

"जानते हो, हमने ख़ुदा को क्यों ईजाद किया है ? अपने आराम की ख़ातिर। क्योंकि हम सोचना नहीं चाहते और सच्चाई की तलाश में सोचना दुनिया का मुश्किल-तरीन काम है, क्योंकि हम इसी तरह पैदा हुए हैं। इसका नतीजा जानते हो, क्या है ? हम अहमक़ हैं, अहमक़ ! दुनिया भर की किताबें पढ़ के तुम समझते हो कि आलिम[4] बन गए हो। ठीक है कि तुमने अफ़लातून[5] के बराबर इल्म हासिल किया और जाहिल नहीं रहे, लेकिन क्या यह काफ़ी है ? दुनिया के ज़्यादातर आलिमों ने किताबें पढ़ते और लिखते हुए ज़िन्दगियाँ गुज़ारीं। उनमें और उस तोते में, जो 'मियाँ मिट्ठू, मियाँ मिट्ठू' कहकर ज़िन्दगी बसर करता है, कोई फ़र्क़ नहीं, क्योंकि आम तोतों में वह भी आलिम तोता होता है। मुझे तोतों के मुतअल्लिक़ ज़्यादा इल्म नहीं, लेकिन मैं यह जानता हूँ कि कुछ लोग आएँगे। आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों, जो इन सब लोगों का बेज़ारी और हक़ारत के साथ ज़िक्र करेंगे और अपने ज़माने के लोगों को सिर्फ़ सोचने की तल्क़ीन[6] करेंगे, सिर्फ़ समझने की। तुम कुछ भी नहीं 'समझ' सकते इसलिए कि तुम आलिम हो, कि तुम जाहिल नहीं हो, कि तुम अहमक़ हो। हममें एक बहुत बड़ी तादाद[7] ऐसी ही है। तुम भी और मैं भी।" वह उठकर इंजन

1. अकाल, 2. विपरीत दिशा, 3. प्रभावित, आतंकित, 4. विद्वान, 5. प्लेटो, 6. नसीहत, उपदेश, 7. संख्या।

के पास गया और झुककर उसे स्टार्ट करने लगा। फिर गियर में डाले बग़ैर उसे चलता रहने दिया। एक आबी-परिन्दा पत्थर की तरह पानी की सतह पर गिरा और मछली दबोचकर इस तरह भागा जैसे कि कोई उसके पीछे लगा हुआ हो।

"इसकी आवाज़ सुन रहे हो ?" अनीस ने इंजन की तरफ़ इशारा करके कहा, "क्या तुम्हें किसी और शख़्स की ज़रूरत है जो आकर यह बताए कि इंजन चल रहा है, या इस कश्ती के पेंदे में छेद हो जाए और पानी अन्दर आने लगे तो क्या तुम बैठकर इन्तिज़ार करते रहोगे कि कोई दूसरा तुम्हें आकर बताए कि तुम डूब रहे हो ?" वह रुका, "नहीं ? ठीक। तो फिर 'उस' की क्या ज़रूरत है ? 'उस' ने जो मदरिसा[1] जारी किया है मज़हब, इससे क्या हासिल ? दुनिया के तमाम मज़हब मुहब्बत का प्रचार करते हैं। हुँह ! पर होता क्या है। ज्यूँही आप एक मज़हब को अपना लेते हैं, आपके दिल में नफ़रत का, तअस्सुब[2] का बीज बोया जाता है; दूसरे मज़हब के ख़िलाफ़, दूसरे तमाम मज़हबों के ख़िलाफ़। उन तमाम अनगिनत फ़िरक़ों[3] के ख़िलाफ़ जिनमें आप शामिल नहीं हैं। मुहब्बत के तमाम प्रचार के बावजूद उस वक़्त ख़ुद-ब-ख़ुद हमारी अक़्ल सल्ब[4] हो जाती है और हम दुनिया के सबसे मुत्मइन इनसान बन जाते हैं। तुम्हें पता है, ज़िन्दगी की बुनियादी ज़रूरत के मुतअल्लिक़ सोचना छोड़कर हम इतना इत्मीनान हासिल करते हैं, जितना मालकौस राग सुनकर भी नहीं करते। मगर इत्मीनान कहाँ है ? इसे कौन जानता है ? ज़ेहने-इनसानी के सबसे बड़े दुख भरे सवाल का जवाब हम अपने बड़े-बूढ़ों से हासिल कर लेते हैं। क्यों ? सिर्फ़ इसलिए कि वे हम सबसे ज़्यादा उम्र-रसीदा हैं ? हाँ, सिर्फ़ इसलिए ! 'सिर्फ़' इसलिए !! हम बड़े-बूढ़ों को अपना राहनुमा बना लेते हैं और उनके नक़्शेक़दम पर चलते हैं, सिर्फ़ इसलिए कि वे बड़े-बूढ़े हैं, या इसलिए कि वे हमें अक़्ल के इस्तेमाल से नजात दिलाते हैं। हमने कभी यह नहीं सोचा कि वे क्या हैं ? वे हमसे बड़े अहमक़ हैं क्योंकि उन्होंने ज़िन्दगी भर हमाक़त की है और इसका इल्म रखते हैं और इसे मानने पर तैयार नहीं हैं, क्योंकि वे बूढ़े हो चुके हैं और बुढ़ापा हमें मायूस कर देता है और मायूस इनसान कट्टर और कंगाल होता है। मैंने मौत की आमद को महसूस किया है, और मैं सच कहता हूँ, नईम। अपने आपको मौत की तरफ़ पाबजौलाँ[5] बढ़ते हुए पाकर इनसान अपने आपको अज़हद अहमक़ और बुद्धू महसूस करता है क्योंकि मौत उसकी हार है और उससे पहले वह अपने आपको सच्चा साबित करने की जानतोड़ कोशिश करता है।

"वह जानता है लेकिन मानता नहीं। वह कभी नहीं मानता।" उसने मायूसी से सिर हिलाया, "क्या सिर्फ़ मुहब्बत काफ़ी नहीं है, नईम ? इस गिरोहबन्दी के बग़ैर, सिर्फ़ मुहब्बत, जो एक आफ़ाक़ी जज़्बा[6] है ! क्या हमारी रूह को इसके अलावा किसी और चीज़ की भी ज़रूरत है ? नहीं। हम जो सैकड़ों बरसों से एक दूसरे के मज़हब को कोसते आए हैं, एक दूसरे के ख़ुदाओं को नालायक़ कहते आए हैं और उसी साँस में मुहब्बत का प्रचार करते रहे हैं, क्या यह हमारी कम-अक़्ली है ? नहीं ! हम सब जानते हैं कि वे बूढ़े और नाकारा और बेअसर हो चुके हैं लेकिन अपनी ग़लतियों के साथ चिमटे रहते हैं, क्योंकि हमने एक ज़िन्दगी गुज़ारी है, और उसका कोई जवाज़[7] पेश नहीं कर सकते, और जब उसे उसी तरह अपने बच्चों के लिए छोड़ जाते हैं तो हमारी आख़िरी हार में भी इत्मीनान की अच्छी-ख़ासी सूरत निकल आती है।" वह फिर ख़ामोशी से जाल फेंकते हुए मल्लाहों के क़रीब से गुज़र रहे थे। कुछ पल रुकने के बाद अनीसुर्रहमान ने फिर अपने मख़सूस अन्दाज़ में तेज़ी और जोश के साथ बोलना शुरू कर दिया, "तुम्हें पता है, जबसे मुनज़्ज़म[8] मज़हब की बुनियाद पड़ी है, उसे कितनी बार नाजाइज़ तौर पर इस्तेमाल किया गया है ? मज़हब हमारी अक़्ल के रास्ते से दिल तक पहुँचता है और वहाँ अपना क़ब्ज़ा जमा लेता है। उसे कितनी आसानी

1. मतवाद, विद्यालय, 2. धार्मिक पक्षपात, 3. सम्प्रदायों, 4. जड़वत, 5. जिसके पाँव में बेड़ी पड़ी हो, 6. सार्वलौकिक की भावना, 7. औचित्य, 8. संघटित।

के साथ भड़काया जा सकता है। आज तक कितनी जंगें मज़हब के नाम पर हुई हैं ? कितने क़हत पड़े हैं ? क्या सिर्फ़ इसलिए कि मज़हब हमें मुहब्बत करना सिखाता है ? हुँह !" वह नईम की तरफ़ झुका, "एक चीज़ है अक़्ले-सलीम[1]! क्या उसे भी भड़काया जा सकता है ? क्या हम ऐसी सोसाइटी नहीं बना सकते, जिसकी बुनियाद अक़्ले-सलीम पर रखी गई हो, जिसमें हम अपने हर अच्छे-बुरे काम के लिए सोचें और फ़ैसला करें और उसके ज़िम्मेदार हों ? अच्छाई और बुराई, ग़लत और सही का एक आलमी मेयार[2] है, जो इनसानी अक़्ल के मुताबिक़ एक-सा है। एक काम, एक क़दम, एक बात अगर अच्छी है तो वह पूरब और पच्छिम और उत्तर और दक्खिन में हर जगह अच्छी और दुरुस्त है, क्योंकि अक़्ले-सलीम ने इसका फ़ैसला किया है और अक़्ले-सलीम हम सबमें एक-सी है। ज़रूरतमन्द की मदद करना दुरुस्त है, मेरे लिए और तुम्हारे लिए और सबके लिए, तुम इससे इनकार कर सकते हो ? मेरे मज़हब में हमसाए से मुहब्बत करना दुरुस्त है, मेरे हमसाए के मज़हब में ऐसा करना ग़लत है। लेकिन मेरी और तुम्हारी और मेरे हमसाए की अक़्ले-सलीम के मुताबिक़ यह दुरुस्त है और बिलकुल दुरुस्त है। जब हर कोई अपने-अपने लिए सोचेगा तो दुरुस्त, दुरुस्त होगा और ग़लत, ग़लत...'हम सब' और 'हम सब' यह जानते हैं कि बाग़बानी करना दुरुस्त है और काहिली और आराम-तलबी ना-दुरुस्त। क्या सही काम के लिए हमें किसी और चीज़ की ज़रूरत है ? क्या हम सबके लिए मीठा, मीठा और कड़वा, कड़वा नहीं है ? है तो क्यों ? इसलिए कि हमारी हिस[3] पर कोई बन्दिश नहीं है। जब हमारी अक़्ल सही-सालिम होगी और उसे काम में लाया जाएगा तो एक काम की नौईयत[4] हम सबके लिए यकसाँ होगी, उसमें कोई तज़ाद न होगा और उससे कभी नाजाइज़ फ़ायदा न उठाया जा सकेगा, उस पर कोई जंग न होगी। आज हमारी सोसाइटी में यही ख़ला[5] काफ़ी है कि हम सोचने से माज़ूर[6] हैं। जब हर कोई अपने लिए सोचेगा तो मजलिस भरपूर होगी। तब कोई हमाक़त बाक़ी न रहेगी, कोई हार बाक़ी न रहेगी... तब..." वह अल्फ़ाज़ की तलाश में हारकर ख़ामोश हो गया।

"लेकिन इससे...फ़ायदा क्या होगा ?" नईम ने ध्यान से सुनते हुए सवाल किया।

अनीसुर्रहमान की आँखों में क़दीम, क़ुदरती ज़हानत की चमक लौट आई, "यही तो हमारी हार है, अज़ीज़ दोस्त। बरसों, बल्कि सदियों की नाकारा तर्बियत[7] ने हमारे अन्दर नफ़ा और नुक़सान का एक तबाहकुन एहसास पैदा कर दिया है और इससे भी ज़्यादा ख़ौफ़नाक बात यह है कि यह एहसास अनजाने तौर पर हमारे ख़ुदा के साथ और क़ुदरत और क़िस्मत के साथ वाबस्ता है। मुझे तुमसे इस सवाल की उम्मीद थी। मैं भी यही सवाल करता हूँ। मैं तुममें से ही हूँ, फ़र्क़ सिर्फ़ इतना है कि मैं जवाब देने की कोशिश भी करता हूँ। सुनो...सही काम अपना फ़ायदा आप है। सही क़दम उठाने से हम माज़ी[8] और मुस्तक़्बिल[9] दोनों की क़ैद से आज़ाद हो जाते हैं और इस आज़ादी से हमें वह इत्मीनान मिलता है जो बड़े-से-बड़े फ़ायदे से भी हासिल नहीं होता। और सबसे ख़ुशगवार बात यह है कि हम इंसाफ़ की उम्मीद से भी रिहाई पा लेते हैं। इंसाफ़ हमारे यहाँ पर है," उसने फिर दो उँगलियों से सिर को ठोंका, "और हमारा ख़ुदा भी यहाँ पर है और सब कुछ यहीं पर है और यही कुछ है। इसके बाहर कुछ भी नहीं है। सही फ़ैसला...सही क़दम...सिर्फ़ इसी काम में हमारी नजात[10] है। यह पल, जिसमें हम ज़िन्दा हैं, इससे हम इत्मीनान हासिल करते हैं और मुकम्मल आज़ादी से ज़िन्दा हैं। मुस्तक़्बिल, इंसाफ़, फ़ायदा, नुक़सान, ये सब एक तवील इन्तिज़ार में शामिल हैं जो हम पे एक अज़ीम और ला-हासिल[11] ख़ौफ़ तारी करके हमें अहमक़ और निकम्मा बना देता है। जब कोई इन्तिज़ार नहीं रहता, कोई हार भी नहीं रहती...कोई भी।"

दोनों काफ़ी देर तक ग़ैर-यक़ीनी नज़रों से एक दूसरे की तरफ़ देखते रहे। फिर अनीस ने इंजन

1. सद्‌बुद्धि, 2. विश्व कसौटी, 3. इन्द्रिय, 4. प्रतिकूलता, 5. शून्य, 6. असमर्थ, 7. प्रशिक्षण, 8. अतीत, 9. भविष्य, 10. मुक्ति, 11. महान् और व्यर्थ।

को गियर में डाला और किनारे की तरफ़ रुख़ कर लिया।

जब वे ख़ामोशी से पत्थरों पर चलते हुए उस जगह पर पहुँचे जहाँ से उठकर गए थे तो दोनों बच्चे भागकर अनीस की टाँगों से लिपट गए और बिलक़ीस जल्दी-जल्दी उसे बताने लगी कि किस तरह उनके जाने के बाद दोनों कुंडियों को एक साथ मछलियाँ लग गई थीं और नौकर को आवाज़ देते-देते नईम की छड़ी को मछली खींचकर ले गई और वह सिर्फ़ अनीस की छड़ी को बचा सकी थी।

42

"हम दूर-दराज़ के सफ़र करते हैं और हज़ारों लोगों से मिलते हैं और उनसे तबादला-ए-ख़यालात[1] करते हैं और हर एक से करते हैं और किए जाते हैं...यहाँ तक कि एक दिन अचानक हमें एहसास होता है, यह सब इस क़दर बे-सूद[2] है..." अनीसुर्रहमान ने थकी हुई आवाज़ में बात ख़त्म की और हुक़्क़े की नै मुँह में रखी जिसे उसने इधर कुछ अरसे से शुरू कर रखा था। नईम ने ख़ामोशी से उसकी बात सुनी और दीवार पर लटकी हुई पुरानी पेंटिंग को घूरता रहा।

यह जमुना के किनारे वही आमों के बाग़ में घिरी हुई ठंडी पुर-सुकून कोठी थी जिसके एक आरामदेह रौशन कमरे में वे दोनों बैठे थे। बाहर रात पड़ चुकी थी लेकिन दरिया के रुख़ चलनेवाली हवा अभी तक गर्म थी। कोठी की हदूद से परे फ़सलें कई रोज़ हुए काटी जा चुकी थीं और खेतों में ताज़ा-ताज़ा हल चला हुआ था। एक-दो बारिशें भी हो चुकी थीं जिनसे खेतों की मिट्टी सियाह और चिकनी हो गई थी और असाढ़ की धूप में उनमें से ज़मीन की मख़्सूस गीली बू लिए हुए भारी, गर्म भाप निकलती रहती थी। कोठी के बाग़ में आम पककर एक-एक करके रात भर गिरते रहते थे और सुबह सवेरे टपके के ख़ुशबूदार शहद ऐसे मीठे आमों का बरामदे में ढेर लगाया जाता था जिस पर अनीस और नईम ने कभी शौक़ से निगाह भी न डाली थी। वे दो उकताए हुए चेहरों और मुतजस्सिस[3] आँखोंवाले बुड्ढे जो उम्र के एक अजीब इत्तिफ़ाक़ से दोस्त बन गए थे, इन जिस्मानी लज़्ज़तों[4] से आगे चले आए थे और जब ख़ामोशी से एक-दूसरे के सहारे पर बैठे ज़िन्दगी को अपने क़रीब से बड़ी आज़ादी और लापरवाही के साथ गुज़रता हुआ देख रहे थे। ज़िन्दगी की बेवक़अती[5] और इनसान के ला-हासिल[6] जज़्बों का जितना तकलीफ़देह एहसास उन दो मर्दों को था, और उम्र ने अपने पीछे जो ख़ला छोड़ा था उसकी वुसअत[7] का अन्दाज़ा उनको था; गए-गुज़रे ज़मानों में जब पैग़म्बर आते थे, शायद किसी को रहा हो। उनमें से कोई एक जब ज़िन्दगी का ठट्ठा बरदाश्त न कर सकता तो कोई बेमानी-सी[8] बात करने लगता, फिर उसके ग़ैर-ज़रूरीपन को महसूस करके ख़ुद ही ख़ामोश हो जाता। ज़िन्दगी एक कम-अक़्ल और आवारा नौजवान की तरह थी, जो बुड्ढे कमज़ोर लोगों के पास से लापरवाही और हक़ारत का क़हक़हा लगाता हुआ गुज़र जाता है।

उसी तरह अनीसुर्रहमान ने फिर कोई बात करने को नै अलग की, लेकिन बोले बग़ैर मुँह में रख ली।

पहली बार जब नईम यहाँ आया था, इस वाक़िए को कई बरस गुज़र चुके थे। अब वह उस बाग़ के चप्पे-चप्पे से वाक़िफ़ और कोठी के कमरों से मानूस हो चुका था। दीवारों पर लटकी हुई पुराने इंगलिस्तान की तस्वीरें जिनमें रंग-बिरंगे कपड़े पहने घुड़सवार दर्जनों शिकारी कुत्तों के हमराह लोमड़ के शिकार को जाते हुए दिखाए गए थे। और पुराने गिरजाघर और हिन्दोस्तानी राजाओं की तस्वीरें, जो अपने अंग्रेज़ मेहमानों के हमराह हाथी पर सवार होकर शेर के शिकार को जा रहे थे।

---

१. विचार-विमर्श, २. निष्फल, ३. उत्सुक, जिज्ञासापूर्ण, ४. शारीरिक सुखों, ५. तुच्छता, ६. व्यर्थ, ७. व्यापकता, ८. निरर्थक।

और अलमारियों में रखी हुई शेर, लोमड़ और मछली के शिकार के मुतअल्लिक़ बीसियों किताबें जिन्हें अब कोई न पढ़ता था और आतशदान पर रखे हुए पत्थर और चीनी के पुराने मुजस्समे[1] और एक ताँबे का महात्मा बुद्ध...इन तमाम चीज़ों के दरमियान वह पुराने बासियों की तरह फिरता था और अनीसुर्रहमान का घोड़ा उसे देखकर ख़ुशी से हिनहिनाता था। इन तमाम बरसों में रूहानी तौर पर वह शायद अनीसुर्रहमान से उतना ही दूर रहा था जितना पहले रोज़ था। लेकिन इस दौरान में आहिस्ता-आहिस्ता अनीस उसके लिए एक क़िस्म का माद्दी[2] सहारा बन चुका था जो उम्र के इस दौर में थोड़े-बहुत इत्मीनान की वजह ज़रूर था। वह उसके लिए अक़्ल, अक़्ले-असूल[3] और अक़्ले-महज़[4] की अलामत बन चुका था जिसके साथ नईम अपनी मायूसी में बेतरह चिमटा हुआ था। उससे मरऊब और किसी हद तक ख़ौफ़ज़दा होकर चुप रहना इस दर्जा नईम की आदत में दाख़िल हो चुका था कि अब उसने उसकी बातों को ध्यान से सुनना भी छोड़ दिया था। रूहानी अबतरी[5] के इस दौर में उसे कभी यह ख़याल न आया था कि जहाँ डरने और मरऊब होने की अह्लियत[6] हो, वहाँ मुहब्बत करने की अहलियत नहीं रहती, सच्चाई को जानने का सवाल ही नहीं उठता। वह अब महज़ उस अलामत के सहारे पर रह रहा था, जिसका कि अनीसुर्रहमान हामिल[7] था।

अनीसुर्रहमान में इन चन्द बरसों ने बुनियादी तब्दीली पैदा कर दी थी। उसमें एकदम बुढ़ापे के आसार नुमायाँ होने शुरू हो गए थे। उसके बाल ज़्यादातर सफ़ेद हो चुके थे और उसकी मख़सूस आसाबी क़ुव्वत[8] जिसने इतना अरसा उसे जवान बनाए रखा था, तेज़ी से ज़वाल-पिज़ीर[9] थी। अब उसने बातें करना कम कर दी थीं और ज़्यादा-से-ज़्यादा वक़्त अपने घरवालों से अलग इस कोठी में अकेला बसर करने लगा था। पहले उसके बीवी-बच्चे हर दूसरे हफ़्ते बाक़ाइदगी के साथ उसके हमराह आया करते, फिर महीने, दो महीने के वक़्फ़े पड़ने लगे, अब कई-कई महीने गुज़र जाते और वह अकेला या सिर्फ़ नईम के साथ आकर पड़ा रहता। इसके बावजूद दफ़्तर में और घर के अन्दर उसकी कारगुज़ारी में कोई फ़र्क़ न आया था। वह उसी मशीन की-सी फुर्ती और बाक़ाइदगी के साथ दफ़्तर का काम करता और घर की सफ़ाई, बच्चों की तालीमो-तर्बियत[10] और बीवी की ज़रूरियात के सिलसिले में उसी एहतियात और ज़ोर-शोर से हिस्सा लेता। उसकी ज़िन्दगी में जो मायूसी का रँग आ गया था, उसे कभी नईम ने शिद्दत से महसूस न किया था क्योंकि उसके नज़रियात[11] उसके लिए मज़बूत आदत बन चुके थे जिनके साथ चिमटा रहना उसके लिए आसान और क़ुदरती अमल था। यह उसकी रोज़मर्रा ज़िन्दगी से उसी तरह ज़ाहिर होता था जैसे कोल्हू के गिर्द मुस्तक़िल घूमते रहने के नज़रिए से बैलों की अक़ीदत ज़ाहिर होती है, जो कि हक़ीक़त में सिर्फ़ एक आदत है। यह भी एक अजीब इत्तिफ़ाक़ था कि नईम ने अपनी और उसकी तबीअतों के तज़ाद को कभी महसूस न किया था। वह अपनी रूह की इन्किसारी[12] और ज़ेहन के तकब्बुर[13] के मुक़ाबले में अनीसुर्रहमान के ज़ेहन और रूह दोनों की रुऊनत[14] को कभी न पहचान सका था, यहाँ तक कि एक बार जब अनीस ने बैठे-बैठे चौंककर कहा था : "नईम, ज़िन्दगी हमें किस बेदर्दी से बर्बाद कर देती है ?" तो भी नईम की सोच हरकत में न आ सकी और उसने उसे महज़ अनीस की अक़्लमन्दी की एक बात के तौर पर लिया था कि वे आदतें जिनसे हम ज़िन्दगी की तश्कील[15] करते हैं, और अलामतें जिनसे उसे क़ायम रखने की कोशिश करते हैं, इस क़दर पुर-फ़रेब[16] और बे-हक़ीक़त होती हैं।

जब बादलों के आने के साथ हवा तेज़ हो गई और खिड़कियों के परदे उड़ने लगे तो अनीस ने हुक़्क़े की नै एक तरफ़ रख दी।

---

1. मूर्तियाँ, 2. भौतिक, 3. मूल बुद्धि, 4. मात्र बुद्धि, 5. आत्मिक संकट, 6. योग्यता, 7. धारक, 8. विशिष्ट स्नायविक शक्ति, 9. पतनशील, 10. शिक्षा-दीक्षा, 11. दृष्टिकोण, 12. विनम्रता, 13. घमंड, 14. अहंकार, 15. आकार देना, 16. छली।

"हम बातें करते हैं और बातें और बातें, यहाँ तक कि एक रोज़ बैठे-बिठाए हमें एहसास होता है कि यह इस क़दर बे-सूद है और यह एहसास बड़ा ख़ौफ़नाक होता है। तुम्हें कभी हुआ है ? इसके बावजूद हम चलते जाते हैं मंज़िल से मंज़िल की तरफ़, चेहरे से चेहरे की तरफ़, बात से बात की तरफ़, यहाँ तक कि हम थक जाते हैं और उदास हो जाते हैं और हमारे दिल से अम्न ग़ायब हो जाता है। फिर ख़ामोश जंगलों की आरज़ू पैदा होती है। तुम्हें पता है, दिल में किसी आरज़ू का पैदा होना सुकून के खो जाने की निशानी है ? आरज़ू जो कभी-न-कभी हसरत बन जाती है। ख़ामोश जंगल और साथी के तौर पर एक घोड़ा या कुत्ता और चमकदार मौसम और ख़याल-आराई[1] ताकि हम चले जाएँ, चले जाएँ और बड़ी-बड़ी अज़ीम मुक़द्दस बातों के बारे में सोचें। उस वक़्त इन बेशुमार छोटी-छोटी ग़ैर-ज़रूरी बातों के लिए हमारे दिल में नफ़रत पैदा होती है जिनमें हम उम्र भर मसरूफ़ रहे और हम अज़ीम फ़िक्र[2] के लिए तड़पते हैं, जो कभी हमारे ज़ेहन में पैदा न हुई। एक वक़्त आता है जब माज़ी की छोटी-से-छोटी बात हमें उदास कर देती है। कोई चेहरा, कोई नाम, कोई लफ़्ज़, कोई नज़र, कोई पुरानी धुन, जो हमने किसी सुनसान गली में से गुज़रते हुए दूर से सुनी थी। हम उस बच्चे की तरह महसूस करते हैं जो हर वक़्त रोने के लिए तैयार रहता है।

"दरअसल हम थक चुके होते हैं, उस मुस्तक़िल उज्लत[3] से जो हमारी ज़िन्दगी में राह पा जाती है, जो मुसलसल हमें एक जगह से दूसरी जगह जाने पर मजबूर करती है, उन जगहों पर ले जाती है जहाँ जाकर हम कभी ख़ुश नहीं होते। दरअसल हम महज़ उकता चुके होते हैं, उम्र भर से जो हमने जहालत में बसर की, वे गए-गुज़रे ज़माने जो हमने बर्बाद कर दिए। हमारे ख़ौफ़, हमारे जज़्बे, हमारी अपनी जवानी और बुढ़ापा जो हमने बच्चों की तरह गुज़ारा, या अहमक़ों की तरह, उस वक़्त सड़क पर जाती हुई एक बस भी हमारा सारा वक़्त याद दिला देती है कि हम एक गाड़ी की तरह चलते रहे जो अपनी लाइनों पर चले जाती है, चले जाती है। लाइनें, जो उसे लिए जाती हैं पूछे बग़ैर, जाने बग़ैर, पहचाने बग़ैर, हमें हाँका जाता है, हम हँके जाते हैं अपनी ख़ुराक, अपनी बातों और अपने जज़्बों का बोझ उठाए हुए। हमारी किताबें, डिग्रियाँ, बेहतरीन दरज़ियों के यहाँ सिले हुए सूट जिनका ज़िक्र करने से हम कभी नहीं चूकते, ख़ुशनुमा रंगों की टाइयाँ, टोपियाँ और ख़ुशबुएँ, जो हमने आला दर्जे की दुकानों से ख़रीदीं, सबको कन्धे पर लादे, अपनी सारी अमीरी को उठाए, हर क़िस्म के ख़याल को क़बूल करते हुए...ख़याल जो पड़ाव से पड़ाव तक ग़ायब हो जाता है... खाते, पीते और खाते हुए और बातें करते हुए...बातें ? उन जगहों की जो हमने देखीं, उन चीज़ों की जो हमारी मिल्कियत हैं। हमारी रायें और अन्दाज़े जिनका कोई वुजूद नहीं होता, जो किसी के लिए अहमियत नहीं रखतीं, हमारे अपने लिए भी नहीं। इसके बावजूद उन्हें अख़्लाक़ और तवज्जुह के साथ सुना जाता है और जवाब में कुछ कहा जाता है उसे हम तवज्जुह और अख़्लाक़ के साथ नोट करते हैं, उन्हें अहमियत दिए बग़ैर, उनकी परवाह किए बग़ैर। तुम्हें पता है दुनिया में हम कितनी नर्मी, कितने अख़्लाक़, कितनी मक्कारी से एक दूसरे के साथ पेश आते हैं। हम दुनिया भर का सफ़र करते हैं और रायें क्या होती हैं ? यही कि ताजमहल ख़ूबसूरत इमारत है और चीन के मजलिसी हालात बेहतर हो रहे हैं या नहीं हो रहे हैं और दुनिया में अच्छे शायर पैदा होने बन्द हो गए हैं। हम उन्हें बार-बार दुहराते हैं, यहाँ तक कि अपनी तक़रीर में माहिर हो जाते हैं, टूरिस्ट गाइड की तरह, फिर हम उसका इस्तेमाल शुरू करते हैं। हर एक के पास अपना-अपना सिक्काबन्द तरीक़ा है, बरसों के तजर्बे और मश्क़ के बाद अपनाया हुआ ज़रीआ[4], ग़ैर-शख़्सी सरसरीपन या मुहतात शख़्सी[5] और मुन्हमिक[6] रवैया। हम बहरहाल हर मंज़िल पर, हर तरीक़े से अपने आस-पास के लोगों को हमख़याल बनाने की, दूसरे लफ़्ज़ों में उन्हें मरऊब करने की इन्तिहाई कोशिश करते हैं, उनकी कोई परवाह किए बग़ैर और मुस्तक़िल यह जानते हुए कि हमारी ज़रा-सी भी परवाह उनको नहीं

1. कल्पनाएँ, 2. महान् विचार, 3. उतावली, जल्दबाज़ी, 4. साधन, 5. अवैयक्तिक, 6. तन्मय।

है। हम अपनी ज़िन्दगी के ख़ालीपन को छोटी-मोटी बातों से भरने की कोशिश करते हैं। बातचीत जो उतनी ही तसल्ली देनेवाली होती है, जितनी कि रास्ते से भटकानेवाली और फिर वह वक़्त आता है जब हम थक जाते हैं, और पीछे रह जाते हैं और बस का तेल ख़त्म हो जाता है और हमारा सारा बोझ सड़क के किनारे बिखर जाता है, कुछ मुर्दा कुछ नीम-मुर्दा और अचानक हक़ीक़त हमारे सामने आ जाती है कि यह सब इस क़दर बे-सूद था, सब कि आख़िरकार हम वहाँ पहुँच गए हैं जहाँ सुकून नहीं है और हम वापस नहीं जा सकते, कि जहाँ पर सिर्फ़ भारी नुक़सान का एहसास है कि हम पुरानी बस की तरह बदसूरत और बेकार हैं और अनचाहे, अनजाने सड़क के किनारे खड़े हैं। क़िस्मतवाले हैं तो तोड़-फोड़कर दोबारा ढाले जाएँगे। बदक़िस्मत हैं तो महज़ नज़रअन्दाज़ कर दिए जाएँगे।

"अब हम परेशान हैं, तनहाई के ख़ौफ़ से हिरासाँ[1] हैं, तनहा हैं, बेहद तनहा हैं। क्यों ? क्या हम सिर्फ़ इस दिन के लिए इतनी मुद्दत से रहते आ रहे थे ? हमारा मक़सद, हमारे अल्फ़ाज़, एहसासात, जज़्बात, वे काम, बरसहा-बरस की मश्क़ से जिनमें से हमने महारत हासिल की। दूर-दराज़ के सफ़र, दोस्त, समझ जो हमने तक़रीर और मेलजोल के ज़रिए तेज़ की, हमारी हरदिलअज़ीज़ी[2] जो हमारे इर्द-गिर्द और साथ-साथ चलती थी, सब ख़त्म हो गई ? क्यों ? क्यों अब हम सोचने से क़ासिर[3] हैं कि कभी सोच ही नहीं पाते। अब हम जानते हैं, जैसा कि हम कई और बातें जानते हैं कि हमने जिस चीज़ की तलाश की, उसे पाया और जिसके लिए अब हैरान और परेशान खड़े हैं, उसकी तलाश ही में कभी न निकले। साफ़ सीधी बात है...चुनाँचे अब तुम चैन की बाँसुरी बजाओ और क़नाअत[4] से बैठकर ख़ातिमा-बिल-ख़ैर[5] का इन्तिज़ार करो, इन्तिज़ार करो और निचले बैठो, निचले बैठो कि यही असल मुक़ाम है...पर चैन की बाँसुरी बजाए नहीं बजती और हम इन्तिज़ार नहीं कर सकते। हम जानते हैं कि जितने भी इन्हिमाक और लापरवाही और सब्र के साथ इन्तिज़ार करें, जब मौत आएगी तो हमें परेशान कर देगी, जैसे कि यह हर किसी को कर देती है, बावजूद सारी बातों के, जब यह आती है तो ख़ौफ़ज़दा कर देती है। ज़िन्दगी में पहली बार हम सोचने पर मजबूर हो जाते हैं...एक चमकीली ख़ुशगवार सुबह को मैं अपने बाग़ में खड़ा ख़रगोशों और मुर्ग़ियों को नाश्ता खिला रहा हूँ...पुराना कड़वा तम्बाकू पी रहा हूँ और अपने पोते-पोतियों को घास पर खेलते-कूदते हुए देख रहा हूँ। मेरी तबीअत में ठहराव आ चुका है और मैं सँभल-सँभलकर इत्मीनान से चलता-फिरता हूँ। नौजवान आदमी काम पर जाते हुए पास से गुज़रते हैं और झुककर सलाम करते हैं...'काबिले-इज़्ज़त[6] बुज़ुर्ग...सलीक़े से बसर की हुई ज़िन्दगी' वे एक-दूसरे से कहते हैं। फिर सामने से एक और चला जाता है, एक सफ़ेद सिरवाला अक़्लमन्द शख़्स, छड़ी के सहारे अपने आपको सँभाले, वक़ार[7] और इत्मीनान के साथ चलता हुआ। नौजवान आदमी झुककर सलाम करते हैं और पहली बात आपस में दुहराते हैं। वह अख़्लाक़ से मुस्कराकर जवाब देता है और मेरे सामने आकर चन्द मिनट के लिए रुक जाता है। हम एक-दूसरे को सलाम करते हैं और मौसम के मुतअल्लिक़ बात करते हैं और एक-दूसरे की सेहत के मुतअल्लिक़ पूछगछ करते हैं, फिर ख़ामोश हो जाते हैं। अब कहने के लिए कुछ नहीं है। सारी बातें इतनी ग़ैर-ज़रूरी मालूम होती हैं। ख़रगोशों का नाश्ता और चमकदार मौसम और दो ख़ुशनुमा सजे-सजाए बुड्ढे, ख़ालीउज़्ज़ेहन[8] और मुत्मइन। एक-दूसरे के ढोंग को जानते हुए और छुपाए हुए, बिला वजह नादिम[9] और ख़ुशमिज़ाज...फिर वह बात करने के अन्दाज़ में खँकारता है और महज़ हाथ से सलाम करके चला जाता है। मैं पीछे मुड़कर नहीं देखता लेकिन मैं जानता हूँ और ज़ेहन की आँखों से उसे देख रहा हूँ। निहायत सलीक़े से ख़ाली की हुई एक ज़िन्दगी, बेवजह, बे-जवाज़[10]। जानता हूँ कि वह भी मुझे देख रहा है। हम दोनों

1. भयभीत, 2. लोकप्रियता, 3. असमर्थ, 4. भाग्यतुष्टि, 5. मोक्ष-प्राप्ति, 6. पूज्य, 7. गम्भीरता, 8. शून्य मस्तिष्क, 9. संकुचित, 10. अनुचित।

एक-दूसरे को अच्छी तरह से जानते हैं पर कभी मानते नहीं। इस तरह हम भुगतते हैं...इस तरह..."

बाहर बारिश तेज़ी से शुरू हो चुकी थी और हवा के ज़ोर से अन्दर आ रही थी। नईम उठा और एक-एक करके दरवाज़े और खिड़कियाँ बन्द करने लगा। उसने अब छड़ी का इस्तेमाल छोड़ दिया था और चलते हुए लड़खड़ाता नहीं था। उसके सिर के पिछले हिस्से पर बाल घने और बर्फ़ की तरह सफ़ेद थे और उसके कानों की खाल लटकती जा रही थी। आख़िरी खिड़की बन्द करने से पहले वह कई पल तक बाहर बाग़ के अँधेरे में देखता रहा जहाँ बार-बार बिजली चमक रही थी।

"आज बहुत सारे कच्चे आम गिरेंगे।" उसने कहा।

बिजली की चमक बेहद साफ़ थी और उसमें सारा बाग़, तूफ़ान में झूलते हुए दरख़्त और बारिश की बूँदें एक पल के लिए जाग उठते थे। सारबानों[1] का एक छोटा-सा ख़ानदान अभी-अभी कोठी में दाख़िल हुआ। उन्होंने बरामदे के खम्भों से अपने ऊँट बाँध दिए और अब कोने में दुबककर आहिस्ता-आहिस्ता बातें कर रहे थे। उनके सिरों पर परिन्दे, जो दरख़्तों पर से जान बचाकर भाग आए थे, चूँ-चूँ कर रहे थे। नईम को एक बहुत पुरानी बात, जो एक मर्तबा उसके ज़ेहन में से गुज़री थी, याद आई और वह आहिस्ता से मुस्कराया। "तुम सूरज की तपिश से बचने के लिए रातों को सफ़र करते हो और फिर बारिश आ जाती है। ख़ुदा हाफ़िज़। रात के आबादकारी[2]। तुम्हारा घर कहाँ है ? अब तुम अपने लिए बारिश का एक घर बनाओ !" वह दोबारा मुस्कराया। हवा सीटियाँ बजाती हुई दर्ज़ों में दाख़िल हो रही थी और बारिश की बूँदें शीशों पर सिर मार रही थीं। "रात के बाशिन्दो। अब तुम अपने लिए..." उसने दुहराया।

दीवार पर नश्अते-सानिया[3] की यादगार रंगीन मेडोना, जो बड़ी देर से एक कील के सहारे झूल रही थी, खटाक से गिरी और टूट गई। शीशों पर बारिश ज़्यादा ज़ोर से होने लगी। अनीसुर्रहमान ने फिर बोलना शुरू कर दिया : "वे अज़ीम शख़्सियतें, जो जन्म न ले सकीं, जिन्हें घर-बाहर के, रोज़मर्रा के छोटे-बड़े काम करने पड़े, जिनका वक़्त इसी तरह बर्बाद हो गया। हम यह सोचने पर मजबूर हो जाते हैं कि यह ज़ाबिता[4], जो हमने अपने ऊपर लागू कर लिया है और जिसके तहत हम ज़िन्दगी बसर करते हैं, किसी काम का है। ख़ुशी हासिल करने का यह मियार जो हमने क़ायम किया है या जो क़ायम किया-कराया हमें मिला है, किस हद तक सही है। हम जो इतना दुख सहते हैं, इतनी मेहनत करते हैं, इतने झूठ बोलते हैं, इतनी चाहतें, इतनी हसरतें दिल में दबाए रखते हैं, इतनी ताक़तवर ख़्वाहिशें पूरी नहीं कर सकते कि दिलो-दिमाग़ के रोगी हो जाते हैं। वक़्त की कमी की वजह से उन लोगों से नहीं मिल सकते, जिनसे बहुत मिलना चाहते हैं, दोस्ती करना चाहते हैं या हमदर्दी की उम्मीद रखते हैं या ऐसे लोगों को नहीं मिल पाते जिनको हम नहीं जानते लेकिन जिनसे मिल लेते तो बहुत ख़ुश होते। उन जगहों पर नहीं जा सकते जिनका सिर्फ़ नाम सुन रखा है, जो कुछ सोचते हैं, कह नहीं सकते, जो कहते हैं कर नहीं सकते। क़तई तौर पर बुरे आदमी से तअल्लुक़ ख़त्म नहीं कर सकते और अच्छे आदमी से दोस्ती नहीं कर सकते, ग़रज़ यह कि किसी ढंग से भी ज़िन्दगी को बेहतर तौर पर बसर नहीं कर सकते। हालाँकि हममें से कितने ही हैं जो वह सब करना चाहते हैं, जो नहीं कर सकते और वह सब कुछ नहीं करना चाहते जो कर रहे हैं तो चाहने और करने में ये तज़ाद[5], यह फ़ासिला क्यों है ? और इससे क्या हासिल है और यह दिखावटी है या अस्ली है ? क्या यह सब कुछ जो हम भुगतते हैं सिर्फ़ इसलिए है कि हम अपने घर को या अपने ख़ानदान को, जिसमें कुछ लोग होते हैं, इकट्ठा रखना चाहते हैं या अपनी जायदाद को, जिसमें खाना पकाने के बर्तन, कपड़े और चन्द आसाइश[6] की चीज़ें होती हैं, क़ब्ज़े में रखना

1. ऊँटवालों, 2. वे जो किसी निर्जन स्थान को बसाएँ, 3. पुनर्जागरण युग, 4. नियम, 5. विरोधाभास, प्रतिकूलता, 6. सुविधा।

चाहते हैं ? क्या हम अपनी शख़्सियत को सिर्फ़ इसलिए नज़रअन्दाज़ कर देते हैं कि बुनियादी ज़रूरतों को पूरा कर सकें। अपनी अलाहदगी[1], अपनी इन्फ़िरादीयत[2] को सिर्फ़ इसलिए बर्बाद कर देते हैं कि कमतर इनसानी जज़्बों की तस्कीन[3] कर सकें ! क्या हमें छोटे और बड़े का फ़र्क़ मालूम है ? क्या हम ख़ुशी का मतलब जानते हैं ? इल्म और जहालत में क्या हम तमीज़ कर सकते हैं ? क्या सिर्फ़ इसलिए इस पुराने इनसान को मार डालनेवाले ज़ाबिते को बरक़रार रखे हुए हैं कि इससे शख़्सी ग़ुरूर को जिला[4] मिलती है ? कि हम अपने हक़ीर घरों और ख़ानदानों में एक खोखली, मग़रूर और मुहतात ज़िन्दगी बसर करते रहें...या वे नौजवान, जो अभी ज़िन्दगी में क़दम रख रहे हैं, एक ऐसे ही मुस्तक़्बिल की उम्मीद में उम्र भर ख़ुद अपने ज़ुल्म सहते रहें, अपने मकान को गिरने से बचाने और कुनबे को ख़ुराक मुहैया करने की ख़ातिर रोज़ाना के छोटे-मोटे काम करते रहें और ख़ुशी के बजाय ग़ुरूर और नफ़रत हासिल करें और फिर हममें से चन्द एक उन कामों में कमाल हासिल कर लें और नुमायाँ मुक़ाम पर पहुँचें और हासिदाना इज़्ज़त की निगाह से देखे जाएँ और इस तरह ज़्यादा मग़रूर और ज़्यादा नाख़ुश हो जाएँ और अपने साथी लोगों में घुलने-मिलने के बजाय उन्हें मरऊब करने की कोशिश करें और बदले में उनसे हक़ारत[5] हासिल करें। अवामी ज़िन्दगी के यह नुमायाँ लोग, सियासतदाँ और तालीमी अदारों के सरबराह[6] और बड़ी अदालतों के मुंसिफ़[7], उनकी ज़िन्दगी भर की कमाई क्या है ? हक़ारत और उमूमियत[8]। उमूमियत और हक़ारत। क्या वे बस इन दो चीज़ों के लिए एक इन्तिहाई मुर्दा-दिल और दुख-भरी ज़िन्दगी बसर करते हैं ?

''अगर हम एक ऊँची चट्टान पर अकेले बैठकर सोचें तो हमें पता चलेगा कि ख़ुशी तो एक मामूली चीज़ है और उसे हासिल करना तो बड़ा आसान है यानी आप उसे महज़ चट्टान पर चढ़कर भी हासिल कर सकते हैं जबकि आप तनहा हैं और आपके साथ आपकी सारी शख़्सियत है, सारी इनूफ़िरादियत है, आपकी अज़मत[9] और नेकी और अक़्ल है और आप हर लिहाज़ से मुकम्मल हैं और ख़ुशक़िस्मत हैं और आपको भूक नहीं लग रही है, इसलिए आप अभी कुछ देर और यहाँ रुक सकते हैं और ज़िन्दगी के अज़ीम मुक़द्दस मसाइल[10] पर, मुहब्बत और मौत पर ग़ौर कर सकते हैं और ईमानदारी से अपनी राय बना सकते हैं। उस वक़्त आपके पास वह बेश-बहा आज़ादी का एहसास होता है जिसके लिए, मुझे ऐसा मालूम होता है कि हम पैदा किए गए हैं और हम सोचते हैं कि थोड़ी देर में नीचे जाएँगे और फ़लाँ-फ़लाँ काम करेंगे या नहीं करेंगे कि उनका करना, न करना हमारे इख़्तियार में है...मगर ख़ौफ़नाक बात यह है कि जब हम नीचे जाते हैं तो एक-एक करके सारी चीज़ें साथ छोड़ जाती हैं और आख़ीर में हमारी वही पुरानी, कमज़ोर, गुमनाम शख़्सियत रह जाती है जिसके सामने रोज़ाना मामूल के ऐसे काम होते हैं जो हर हालत में करने होते हैं और जो अपने मामूलीपन के बावजूद हमारे इख़्तियार से बाहर होते हैं। इस तरह हम फ़ौरन उमूमियत के उस समन्दर में गुम हो जाते हैं जो कुछ देर पहले हमने क़ायम किया था और एक दूसरी क़िस्म की ख़ुशी, जो तक़ाबुल[11] और किब्रे-नफ़्स[12] से फूटती है, हम पर क़ब्ज़ा कर लेती है। यह ज़िन्दगी की सफ़्फ़ाकी[13] का एक मंज़र है कि हम जाने-बूझे और महसूस किए बग़ैर तेज़ी के साथ ऊँचाई से नीचे की तरफ़ सफ़र करते हैं।

''तो क्या इत्मीनान और अक़्ल की यह क़ुर्बानी जो दी जाती है, हक़-बजानिब[14] है ? वे बेपनाह जुर्म और सितम जो हम झेलते हैं, क्या हमारी ज़िन्दगी, सारी ज़िन्दगी इस क़ाबिल है कि उसके लिए इतने दुख उठाए जाएँ ? बताओ, क्या सारी इनसानी ज़िन्दगी की कोई वजह है ?''

वह देर तक यूँ ही बातें करता रहा और बारिश रात भर दरीचों और रौशनदानों के शीशों पर सिर मारती रही।

---

1. पृथकता, 2. एकत्व, 3. तृप्त, 4. बल, 5. तिरस्कार, 6. शिक्षा संस्थाओं के प्रमुख, 7. न्यायाधीश, 8. साधारणता, 9. महानता, 10. समस्याओं, 11. साक्षात्कार, 12. अस्तित्व की महानता, 13. निष्ठुरता, 14. सत्य के पक्ष में।

43

उस इतवार को अनीस और नईम शहर लौट आए। नईम को रौशन महल के पुराने दरवाज़े पर उतारते वक़्त अनीस ने गर्मजोशी से हाथ मिलाया और उसकी तरफ़ झुककर हँसा। नईम ने उसकी आँखों की हैवानियत और तेज़ हँसी को हलकी-सी बेचैनी के साथ महसूस किया, लेकिन अब वह उसकी तबीअत के मैलान[1] से तक़रीबन वाक़िफ़ हो चुका था। उसने हाथ मिलाते हुए उसका शुक्रिया अदा किया और अँधेरे में दूर तक उसकी गाड़ी को बढ़ते हुए देखता रहा। शाम पड़ चुकी थी। गेट के अन्दर दाख़िल होकर नईम ने देखा कि बड़े लॉन में नजमी के दोस्तों का हुजूम मेज़ों, कुर्सियों और घास पर बैठा था। यूकिलिप्टस की शाख़ों में सब्ज़ रंग का बल्ब जल रहा था और घास पर हस्बे-मामूल कई जगह पर एक साथ बातें हो रही थीं। एक तरफ़ दो लड़कियाँ तेज़ रौशनियाँ जलाए बैडमिंटन खेल रही थीं। लॉन के कोने में रखवाले ने गिरे हुए पत्तों को इकट्ठा करके जो ढेर लगाया था, रात की बारिश में भीग गया था और उस पर चढ़ा बादामी रंग का एक छोटा-सा नफ़ीस कुत्ता बैठा था। उस वक़्त वहाँ से गुज़रते हुए बरमन जी की निगाह उस तनहाई-पसन्द कुत्ते पर पड़ी, और वह झुककर उससे बातें करने लगे। ख़लीक़[2] जानवर शाइस्तगी[3] और उकताहट से मुँह उठाकर उनकी बातें सुनने लगा। कोठी में दाख़िल होते हुए नईम को किसी ने न देखा और वह ख़ालिद, फ़े, बरमन जी और कैप्टन मसऊद को पहचानता हुआ अपने कमरों की तरफ़ चला गया। उसके बरामदों में किसी ने रौशनी न जलाई थी। कुछ पलों तक बजली के बटन पर हाथ रखे खड़े रहने के बाद वह अँधेरे में पड़ी हुई आराम-कुर्सी पर बैठ गया। वहाँ से सामने का मंज़र दिखाई दे रहा था। वे नौजवान लोग थे, ज़िन्दगी और हुस्न से भरपूर। सारे वक़्तों, सारे जज़्बों से जी भरकर लुत्फ़-अन्दोज़ होनेवाले। उसने बैठे-बैठे सोचा। इन्तिज़ार और उम्मीद रखनेवाले, फ़िक्रों से दूर...अभी फ़िक्रें आएँगी कि उनका भी वक़्त मुक़र्रर है। उसने झुँझलाकर ख़यालात का सिलसिला तोड़ दिया। फिर उसे वे मुर्दा परिन्दे याद आए जो उसने अनीस के बाग़ में देखे थे, जो रात के तूफ़ान में मरे थे, जिन्हें रखवाले ने झोंपड़े के पिछवाड़े में इकट्ठा कर दिया था। उसने इस ख़याल को भी ज़ेहन से निकाल दिया। मौसम में बरसात की उमस थी और सामने वे सब आम खा रहे थे और बातें कर रहे थे। बातें ! सिर्फ़ नजमी ख़ामोशी से अपना कैनवस सँभाल रही थी।

नजमी ! नजमी !! उसने चुपके से दुहराया। अचानक सन्नाटा चारों तरफ़ फैल गया और फ़िज़ा में ख़ामोशी गूँजने लगी और बे-आवाज़ ख़याली परिन्दे इधर-से-उधर आने-जाने लगे, इधर-से-उधर।

उसने सुरबाला के अध-बने पोर्ट्रेट को ईज़ल पर से उतारा और लपेटकर एक तरफ़ रख दिया। फिर वह मेज़ से उतरकर ख़ालिद और फ़े के पास घास पर बैठ गई जो पिछले दो घंटे से उलझ रहे थे। दुनिया भर की शायरी पर बहस हो रही थी।

"ईलियट...ईलियट...ईलियट..." फ़े ने बुरा-सा मुँह बनाकर कहा, "दीवाना तश्बीह-निगार[4]... वह तो नक़्क़ाद[5] कुछ-कुछ ढंग का है, शायर-वायर कुछ भी नहीं है और उसका वह दोस्त, क्या नाम है उसका भला-सा..."

"पाउंड ? एज़रा पाउंड ?"

"हाँ वह। अरे भई, वाह, क्या एक-से-एक बढ़िया आदमियों को शायर बना रखा है अल्लाह मियाँ ने। जने बैठे-बैठे क्या लिखते रहते हैं ?"

"शायद एक-दूसरे को ख़त लिखते हैं," नजमी ने तजवीज़ पेश की, "अरे हाँ, और बाद में उनकी ज़ाती ख़तो-किताबत[6] को शाए[7] कर दिया जाता है और शायरी समझकर पढ़ा जाता है। अजी अल्लाह, दक़ीक़[8] सिम्बलिज़्म है आला दर्जे की इन दोनों हज़रात की, जिस पर ख़ालिद साहिब सिर

1. प्रवृत्ति, 2. सुशील, 3. शिष्टता, 4. उपमा देनेवाला, 5. समीक्षक, 6. व्यक्तिगत पत्र-व्यवहार, 7. प्रकाशित, 8. गूढ़।

धुनते हैं।"

फ़े और नजमी खिलखिलाकर हँस पड़ीं।

"यह तो नतीजा निकलता है संजीदा मौज़ुआत[1] पर लड़कियों के साथ बहस करने का," ख़ालिद ने कहा, "फब्ती पे उतर आती हैं। यह तो औक़ात[2] है।"

"दरअसल ख़ालिद को शायरी-वायरी का क्या पता, फ़े डियर।" नजमी ने राज़दाराना तौर पर कहा, "यह शरारत सारी सिपाही शायर की है। वह जिस शायर को गुरु मानता है, ख़ालिद साहब भी बड़ी सआदतमन्दी[3] से उसके चेले बन जाते हैं।"

"भई वाह, क्या रूहानियत[4] है। सिपाही शायर कहता है..." फ़े ने बात जारी रखी।

लेकिन नजमी ने देखा कि सिपाही शायर उनसे दूर घास के किनारे-किनारे अकेला चल रहा था, अपने मग़रूर सिर को ऊँचा किए, ऊपर-ऊपर देखते हुए, अपने उस मख़सूस अन्दाज़ में जिसकी वजह से वह उससे इतना जलती थी। फिर उसने अपने इर्द-गिर्द बैठे हुए, बातें करते हुए ख़ुश-बाश लोगों पर निगाह डाली और उसे किसी चीज़ का तकलीफ़देह एहसास हुआ। किसी ऐसी चीज़ का जो आज ही उनके दरमियान पैदा हुई थी कि वह हक़ीक़त में ख़ुश नहीं थे कि वह गहरी मुहब्बत और घुलावट, जो पुराने दोस्तों में होती है, उनके दरमियान से उठ चुकी थी और उसकी जगह दबी-दबी बेएतिमादी[5] थी, अन्देशा था कि वह उस ख़तरनाक एहसास को, जो आपसे आप पैदा हो गया था, छुपाने की इन्तिहाई कोशिश कर रहे थे और जान-बूझकर चेहरों पर ख़ुशी पैदा किए बैठे थे। अचानक वहाँ बैठे-बैठे उसने अपने आपको बेहद ग़ैर-महफ़ूज़[6] ख़याल किया और घबराकर उठ खड़ी हुई।

उसकी तरफ़ बढ़ते हुए नजमी ने सोचा : बावजूद इसके, जने कैसी दिलकशी है इस शे'र में।

"हलो कप्तान साहब..." उसने कहा।

"हूँ ?" वह चौंक पड़ा।

"हलो।" नजमी ने भरी हुई आवाज़ में दुहराया।

"ओह...हलो।" उसने झेंपकर कहा। दोनों साथ-साथ चलने लगे।

"टेलीफ़ोन का इन्तिज़ार कर रहा था।"

"रोज़ टेलीफ़ोन का इन्तिज़ार करते हैं ?" नजमी ने उकताकर सवाल किया।

"हूँ ? हाँ ! मुझे यूनिट छोड़ने का हुक्म नहीं है। लेकिन मैं यहाँ आ जाता हूँ और इन्तिज़ार करता रहता हूँ। इन्हीं दिनों में शायद फ़साद हो जाए, हालात का तुम्हें पता ही है। मेरे अर्दली को मालूम है नम्बर..."

बरसात की गर्म भीगी हवा उनके बाल उड़ाती रही।

"इसके बावजूद यहाँ घास ठंडी है और ख़ामोश। यहाँ पर सुकून है।" उसने आहिस्ता से कहा।

सुकून...सुकून...सुकून...सुकून कहाँ पर है ? नजमी ने उदासी से सोचा। उसने ख़ुशी पैदा करने की कोशिश जारी रखी, "कुछ नए शे'र हुए ?"

वह ख़ामोश रहा।

"कुछ भी नहीं ?" उसने पूछा, "कोई ऊट-पटाँग नज़्म या शे'र या दोहा या..."

वह ख़ामोश हो गई। उसने महसूस किया कि वह कुछ भी नहीं सुन रहा, शायद कुछ भी नहीं देख रहा। सिर्फ़ आँखें खोले उसके साथ-साथ चल रहा है। उसने दुख के मारे मुँह फेर लिया।

"मैं नाश्ता करता हूँ, परेड देखता हूँ, दोपहर का खाना खाता हूँ, सो जाता हूँ। तीसरे पहर की चाय पीता हूँ, अख़बार पढ़ता हूँ, यहाँ आ जाता हूँ और टेलीफ़ोन का इन्तिज़ार करता हूँ। मैं उन सबसे वाक़िफ़ हूँ। पिछली बहुत-सी ज़िन्दगी ऐसा होता आया है। कल भी ठीक ऐसा ही होगा और

1. गम्भीर विषयों, 2. मान-मर्यादा, 3. आज्ञाकारिता, 4. आत्मवाद, 5. अविश्वास, 6. असुरक्षित।

बहुत-सी ज़िन्दगी ऐसा होता आया है। कल भी ठीक ऐसा ही होगा और परसों और अतरसों भी...मैं उन सबसे अच्छी तरह वाक़िफ़ हूँ। आप लोग ईलियट की बात कर रहे थे ?''

''मैंने अपनी ज़िन्दगी कॉफ़ी के चमचों से मापकर रखी है।''

''हा हा...तुम मेरे दिल की बात कैसी आसानी से जान लेती हो।''

''बरमन जी कह रहे थे कि वह जो बड़े आर्टिस्टों में सच्चाई को जानने की जिबिल्ली[1] क़ुव्वत होती है ना, मुझमें पूरी तरह मौजूद है।'' नजमी ने राज़दाराना लहजे में कहा।

''बरमन जी ?'' मसऊद बेख़याली से हाथ उठाकर उसकी पुश्त पर देखने लगा, ''यह मैं हूँ। मैं हक़ीक़त हूँ।'' वह धीरे से गुनगुनाया। फिर चलता-चलता रुक गया।

''तुम तस्वीरों में दिलचस्पी क्यों लेती हो ?'' उसने तक़रीबन दुरुश्ती[2] से पूछा।

''क्यों लेती हूँ ?''

''हाँ, इनसानों से ज़्यादा। बताओ, इनसानों से ज़्यादा क्यों लेती हो तुम तस्वीरों में दिलचस्पी, ऐं ?''

वे परेशानी से उसे देखती रही। वह ज़रा नर्म पड़ गया।

''दुनिया में और कुछ भी नहीं है जैसे...क्यों...कुछ है ?''

''जैसे...''

''जैसे मैं।'' वह जेबों में हाथ डालकर उसके सामने जा खड़ा हुआ। वह उसके लम्बे-तड़ंगे साए में छुप गई।

''तुम ?''

''हाँ मैं। और मैं एक हक़ीक़त हूँ। मैं कोई कहानी या रोमांस नहीं हूँ। तुमने कभी मेरी मौजूदगी को महसूस किया है ? तुमने कभी सोचा कि मैं यहाँ सिर्फ़ तुम्हारे लिए आता हूँ...और टेलीफ़ोन का इन्तिज़ार करता रहता हूँ। तुम जो तस्वीरें बनाती रहती हो, और...'' उसने ग़ुस्से से हाथ हिलाया।

कुछ लम्बे पल ख़ामोशी में गुज़र गए।

''ओह...'' फिर नजमी ने गहरा साँस छोड़ा, ''बस यह बात है ? इतनी बार बता चुके हो, फिर...फिर क्या ज़रूरत ?''

''तो फिर ?'' वह ज़िद्दी लहजे में बोला।

''अरे, भई कोई और बात करो,'' नजमी ने उकताकर कन्धे ढीले छोड़ दिए, ''तुम तो इतने दिलचस्प आदमी हो सकते हो, अगर चाहो तो...मसऊद।''

उसने जेबों से हाथ निकालकर पीछे बाँध लिए और उसके साथ चलने लगा। बरामदे तक जाकर वे पलट आए। मसऊद तेज़, लेकिन मामूली लहजे में, जिसमें हलका-सा अफ़सोस का रँग था, बातें करने लगा।

''यह सब बकवास है, नजमी। यह सारा आर्ट और अदब[3] तुम्हारी दुनिया में फ़ैशन की तरह इस्तेमाल होता है। न तुम आर्टिस्ट हो न मैं शायर हूँ। तुम्हारा वह बुड्ढा उस्ताद भी सिर्फ़ पेशावर[4] कारीगर है जो ऐसे घरानों में ड्राइंग के उसूल पढ़ाकर रोज़ी कमाता है। हम सब छोटे-छोटे मामूली आदमी हैं जो कुछ भी नहीं कर सकते। लतीफ़[5] जज़्बात का सवाल ही पैदा नहीं होता...और मुहब्बत ? हुँह, हम सिर्फ़ अपने आपको सँभाले एहतियात से ज़िन्दगी बसर कर रहे हैं...सिर्फ़...''

नजमी ने डरते-डरते उसकी तरफ़ देखा। उस वक़्त, न चाहने के बावजूद, उसके दिल में मसऊद के ख़िलाफ़ पुराना तअस्सुब[6] जागा कि वह उनमें से नहीं था कि सारे लोगों, सारी चीज़ों के बारे में उसका रवैया, उसकी सारी तर्बियत[7] बिलकुल अलग थी, कि वह निचले तबक़ों से तअल्लुक़ रखता था।

1. स्वाभाविक, 2. कठोरता, 3. साहित्य, 4. व्यावसायिक, 5. कोमल, 6. वंश का पक्षपात, 7. प्रशिक्षण।

"मेरा जी चाहता है नजमी कि एक किताब लिखूँ, जिसमें किरदार[1] अपनी बातचीत के दौरान पुराने आर्टिस्टों, पुराने अदीबों[2] का ज़िक्र करें जैसे, जैसे दोस्तोवस्की के किरदार गोगोल का ज़िक्र करते हैं या...लेकिन हम किसका ज़िक्र करेंगे ?" उसने ग़ौर से हथेली में देखते हुए कहा, "हमारे पास क्या है ?"

"चलो वहाँ चलें।" नजमी ने कहा। फिर वह उसे घास के किनारे टहलता हुआ छोड़कर बाक़ी सब लोगों के पास लौट आई।

बरमन जी ने उसका कैनवस लपेटकर अपनी जगह वापस रख दिया, "सुर नहीं आई ?" उन्होंने आहिस्ता से सवाल किया।

यह सवाल सबके सिरों पर एकदम फट पड़ा और वे ख़ामोश हो गए। उन्हें ख़याल हुआ कि वे उस वक़्त का शाम से ही इन्तिज़ार कर रहे थे कि जब वे अपनी बे-ताअल्लुक़ी और ख़ुशी क़ायम रखने की सारी कोशिश छोड़कर इत्मीनान से बैठ जाएँगे। चन्द एक ने गहरा इत्मीनान महसूस किया, चन्द एक बेचैन हो गए। मसऊद आकर एक ख़ाली कुर्सी पर बैठ गया।

"आप जानते ही हैं, हालात ख़राब हो रहे हैं। बँटवारा होनेवाला है। शायद फ़साद भी हो जाए।" अपने मामूली अन्दाज़ में बरमन जी से कहा।

वे हैरान खड़े सबका मुँह देखते रहे।

"दो और सिटिंग्ज़ में मुकम्मल हो जाती।" नजमी ने मरी हुई आवाज़ में कहा।

"बाला सिस्टर्ज़ का तो मूसरी में इन्तिज़ार हो रहा था।" दूसरे कोने से फ़रहत ने, जो अभी-अभी पहाड़ से लौटी थी, बात करने की कोशिश की।

लेकिन सब ख़ामोश थे। धमाके से फटनेवाली ख़ामोशी के दरमियान हर एक अपने आपको बेहद मज़्हकाख़ेज़[3] महसूस कर रहा था। जब कोई ख़ामोशी को तोड़ने की कोशिश में कोई ग़ैर-ज़रूरी-सी बात करता तो सब चुपचाप उसकी तरफ़ देखने लगते, जो कि आमतौर पर उनके दरमियान बहुत बुरा समझा जाता था।

"आप भी तो हिन्दू हैं ?" मसऊद ने कहा।

"मैं...आँ ?" बरमन जी बौखला गए। फिर आहिस्ता-आहिस्ता उनके चेहरे पर उदासी फैल गई। हाथ हवा में उठाकर वह आहिस्ता-आहिस्ता बोले, "मैं अगर तुम्हारे घराने में पैदा हुआ होता, तो यक़ीन करो कि इसी जोशो-ख़रोश, तअस्सुब[4] और ईमान[5] के साथ तुम्हारे मज़हब की पैरवी करता और इस ख़ातिर मरने-मारने पर तैयार हो जाता। तुम बताओ, अगर मेरे घर में पैदा हुए होते तो क्या मेरे माँ-बाप के मज़हब के लिए वह सब कुछ न करते जो अब अपने मज़हब के लिए कर रहे हो। हमारे मज़हब की बुनियाद क्या है ? इत्तिफ़ाक़[6] ?"

"हुँह...हुँह..." मसऊद सिर्फ़ तंज़ से हँसा।

वे फिर ख़ामोश हो गए। सिर्फ़ हवा दरख़्तों में चल रही थी और सब्ज़ बल्ब आहिस्ता-आहिस्ता हिल रहा था। तश्तरियों में आम की फाँकें पड़ी थीं। किसी की इतनी हिम्मत न थी कि उठकर जाने की इजाज़त ही लेता। कभी-कभी कोई एक कहीं से बे-सिर-पैर की-सी बात कर देता और बस...

फिर अचानक मसऊद अपने तेज़, मामूली लहजे में बोलने लगा : "दुख अहम नहीं है। ज़िन्दगी में हम जो भुगतते हैं, उसकी कोई अह्मियत नहीं है। अहम सिर्फ़ यह है कि हम अपने 'आइडियल्ज़' के लिए लड़ते हैं या नहीं और कितनी देर तक ! हम 'disillusionment' को कितनी देर तक टाल सकते हैं ?...तकलीफ़ें हममें कोई तब्दीली नहीं लातीं, वे गुज़र जाती हैं। वे न हमें बेहतर इनसान बनाती हैं, न बदतर। क्योंकि जब हम ख़ुश होते हैं तो पिछले दुखों को भूल जाते हैं। उस वक़्त

1. पात्र, 2. साहित्यकारों, 3. हास्यास्पद, 4. धार्मिक पक्षपात, 5. धर्म पर दृढ़ विश्वास, 6. एकता।

हम ख़ुश होते हैं। उस पल में सिर्फ़ एक जज़्बा हमारे पास होता है, ख़ुशी का, और हम पूरी कामयाबी, पूरी लापरवाही के साथ ज़िन्दा होते हैं। ख़यालात...'यह' है जो कि अहम है कि तुम क्या 'सोचते' हो ? सिर्फ़ यही तुमको और सोसाइटी को तब्दील करने की ताक़त रखता है। तकलीफ़ें तुमने इतनी बरदाश्त कीं, ठीक...फिर ? वह तो मैंने भी कीं जनाब, आपने कौन-सा तीर मारा ? यह तो कोई ऐसी मुश्तरका क़द्र[1] न हुई जिसकी बिना पर तअल्लुक़ात उसतवार[2] किए जा सकें। हमारा आपस का रिश्ता तो 'ख़याल' पर है, कि हम 'सोच' क्या रहे हैं ? किस चीज़ की तलाश में हैं ? क्या ढूँढ़ रहे हैं या...ओह शायद ख़यालात भी अहम नहीं हैं..."

"मेरे नज़दीक सोच की मिक़दार[3] के बजाय ग़म की मिक़दार पर किसी इनसान को वक़अत[4] का अन्दाज़ा किया जाना चाहिए।" उसके ख़ामोश हो जाने पर बरमन जी ने झिझकते हुए कहा।

"तुम...तुम क्या जानते हो ? ड्राइंग-मास्टर..." मसऊद ने उसी तेज़, मामूली लहजे में कहा, जिससे किसी रंजिश का इज़हार न होता था। ग़ुस्से और दुख के मारे नजमी की आँखों में आँसू आ गए।

"लेकिन दुख, ठहरो, उनके बारे में शायद मैं कुछ बता सकता हूँ।" मसऊद ने कहा, "दुख हमारे माज़ी[5] में है और मुस्तक़्बिल[6] में है। नहीं, बल्कि मौत है। हमारा माज़ी और मुस्तक़्बिल मुर्दा है और जब हम मौत को बहुत क़रीब से देखना चाहते हैं तो उसमें मुब्तला[7] हो जाते हैं। मौत के मुँह में चले जाना एक बात है और मौत में मुब्तला हो जाना बिलकुल दूसरी बात है और यह है जो तकलीफ़देह है। वह पल, जो गुज़र गया, ज़माना-ए-माज़ी है, जो आनेवाला है, मुस्तक़्बिल में शामिल है। ये दोनों हमारे वजूद के हिस्से हैं और मुर्दा हैं। जब हम उनको हाल[8] के गुज़रते हुए पल में खींचकर लाना चाहते हैं तो मौत को ज़िन्दगी पर मुसल्लत[9] करना चाहते हैं। मौत कभी सारी ज़िन्दगी पर मुसल्लत नहीं की जा सकती, लेकिन इन दोनों की शिरकत से एक नीम-मुर्दनी[10] कैफ़ियत पैदा होती है जो ज़िन्दगी पर हावी हो जाती है। यहाँ से इब्तिला-ए-मर्ग[11] का अमल शुरू होता है। हम सब माज़ी और मुस्तक़्बिल में रह रहे हैं। हाल में कोई रहना नहीं चाहता। हम एक अज़ीम मौत में मुब्तला हैं जो ज़ेहन और रूह की मौत है। मुकम्मल मौत तकलीफ़देह नहीं होती। हम तकलीफ़ इसलिए सहते हैं कि हर वक़्त अपने मुर्दा हिस्से को ज़िन्दा करने की कोशिश में लगे रहते हैं और वह जो कि हक़ीक़त में ज़िन्दा है उसकी परवाह नहीं करते, क्योंकि जो ज़िन्दा है वह सिर्फ़ हाल का गुज़रता हुआ पल है। हम ज़िन्दा हैं। यहाँ पर मौजूद हैं, सिर्फ़ इस वास्ते से कि हम बातें कर रहे हैं, खा रहे हैं, सो रहे हैं या काम कर रहे हैं, मुकम्मल तौर पर हाल के गुज़रते हुए पल में खोए हुए मज्ज़ूब[12] ! बाज़ के लिए अहम नहीं है और बहुत-सों को इसका पता ही नहीं है। हम इस क़दर ग़ैर-यक़ीनी तौर पर दुनिया में रहते हैं कि अपने लिए दुखों का एक अज़ीम सबब[13] पैदा कर लेते हैं। हममें से बहुत-सों के नज़दीक हम ज़िन्दा हैं इस वास्ते से कि हमारा माज़ी है और मुस्तक़्बिल है, महज़ इस वास्ते। हम आगे और पीछे देखते हैं पर सामने नहीं देखते। लेकिन जो ज़िन्दा है, जो हक़ीक़ी है, वह सिर्फ़ हमारे सामने है, और बस ! हमारा माज़ी और मुस्तक़्बिल एक बहुत बड़ा वसवसा[14] है जो मुर्दा, हमारा ग़ैर-हक़ीक़ी वजूद है और ग़ैर-वजूद से वजूद की तरफ़ आने में जो मेहनत दरकार होती है, वह हमारे लिए एक अज़ीम और ला-हासिल दुख की वजह बनती है। हम उकता चुके हैं, बेचैन हैं, ज़ेहनी और रूहानी अबतरी की हालत में हैं, सिर्फ़ इसलिए कि हम ज़िन्दा हैं। सारी बात यह है।

"ठीक है। मौत बहरहाल मौजूद है। मैं जानता हूँ, लेकिन अहम नहीं है। मुकम्मल मौत एक बेहद क़ुदरती और आसान अमल है और उसी तरह आती है जैसे नींद या मुहब्बत या भूक। सिर्फ़

---

1. साझा मूल्य, 2. दृढ़, 3. मात्रा, 4. महत्त्व, 5. अतीत, 6. भविष्य, 7. ग्रस्त, 8. वर्तमान, 9. आच्छादित, 10. अधमुआ होना, 11. मृत्यु के चंगुल में फँसने की क्रिया, 12. आत्मलीन, 13. कारण, 14. भ्रम, वहम।

एक मुन्क़सिम[1] मौत तकलीफ़देह है। मुन्क़सिम लम्हा। हाल का मुकम्मल लम्हा मुकम्मल ज़िन्दगी और मुकम्मल मौत पर मुहीत[2] है। यह ज़िन्दा है और तुम इसके साथ ज़िन्दा हो, यह मरता है और तुम इसके साथ मर जाते हो। अगला लम्हा पैदा होता है और तुम उसके साथ नए सिरे से पैदा हो जाते हो, नई ज़िन्दगी में, नई मौत के लिए। हर नए लम्हे की पैदाइश पर तुम ज़िन्दगी के पुर-उम्मीद और रौशन नौ-मौलूद[3] हो इसलिए कि तुम आगे और पीछे नहीं देखते सिर्फ़ सामने देखते हो। तुम्हें कुछ याद नहीं है...दुनिया ने तुम्हारे साथ कितनी बद-अह्दी[4] की, लोगों ने तुम्हें कितना सराहा, कितनी दूरअन्देशी, कितनी ख़ुदग़र्ज़ी से काम लिया...तुम्हारे पास कोई फ़ेहरिस्त नहीं है। तुम कुछ याद नहीं रखते, कुछ भुलाया नहीं करते, सिर्फ़ यहाँ मौजूद हो। ज़िन्दगी की सारी ख़ुशी, सारे दर्द को जानते हुए ज़िन्दा हो। यह लम्हा, तुम और मैं। दूसरा लम्हा, दूसरे 'तुम' और दूसरा 'मैं' और फिर मौत आती है, लेकिन अब इसकी कोई अह्मियत नहीं, अब यह सिर्फ़ एक और लम्हा है जिसका सामना करने के लिए तुम्हारे पास वही पुराना रवैया है जो हमेशा से तुम्हारे पास था। इन्तिज़ार, इन्तिज़ार के धड़के के सिवा इद्राक[5], इद्राक की अज़ीयत[6] के सिवा। तुमने अनगिनत बार इसका सामना किया है। तुम इसको पहले से ही जानते हो। तुम इसे गुज़र जाने देते हो, पीछे कोई निशान, कोई याददाश्त छोड़े बग़ैर। एक मुकम्मल तजर्बा...ग़ैर मुन्क़सिम लम्हा[7]...मुकम्मल मौत...मुकम्मल मुहब्बत...अगला लम्हा ? तुम्हारे लिए इसकी कोई अहमियत नहीं कि आता है या नहीं, कभी न थी। यह असल ज़िन्दगी है। सुना तुमने ? क्या तुम्हारे दुख का दूसरा नाम हमाक़त[8] है ? बताओ...

"तुम्हें पता है इनसानों के दरमियान कितनी बेज़ारी, कितनी कल्बीयत[9] है। कितना दर्द, अबतरी, ज़िन्दगी के ख़ाली और ला-हासिल[10] होने का एहसास। हम छोटे-छोटे लोग हैं लेकिन हमारे इतने बड़े-बड़े ग़ुरूर हैं, बड़ी-बड़ी ख़ुदपरस्तियाँ[11] और ख़ुश-फ़हमियाँ[12] हैं। तुमने कभी सोचा है, कि अगर हम एक पल को अपने घमंड को परे रख दें तो कितनी मुहब्बत कर सकते हैं। मैं अपनी छोटी-सी बे-मक़सद ज़िन्दगी उसी आराम और दूरअन्देशी के साथ गुज़ार दूँगा जिस तरह दुनिया में और करोड़ों इनसान रोज़ाना पुर-क़नाअत[13] और बे-फ़ायदा ज़िन्दगियाँ गुज़ार रहे हैं, उसी मेकानिकी, बे-मानी तौर पर जैसे कि मक्खी या मच्छर गुज़ारता है। इसका क्या मतलब है ? बताओ..." वह उठकर बरमन जी के सामने जा खड़ा हुआ, "बताओ, इस ढोंग का क्या मतलब है ? आख़िर क्या मतलब है ? बताओ..."

"मैं बताऊँ ? सुनो...हम अपनी-अपनी निजी कोठरियों में रहते हैं जिनके दरवाज़ों की दर्ज़ें और रौशनदानों और खिड़कियों में सूराख़ हमने एहतियात से बन्द कर दिए हैं और उनमें घिरकर अपनी अक़्ल, अपने ईमान, अपने तअस्सुब, अपनी ख़ुदपरस्ती और अपनी अह्मियत की हिफ़ाज़त करते हैं और ख़ुश हैं कि इन क़िलों को कोई तोड़ नहीं सकता लेकिन तुम जानते ही हो कि दीवारों की क्या वक़अत[14] है। हम भेड़ों के ग़ल्ले की तरह एक मुश्तरका हमाक़त[15] में बँधे हुए हैं, मुश्तरका बदनसीबी में। मैं तुमसे मुहब्बत करता हूँ। इसलिए कि मैं 'सोचता' हूँ कि मैं तुमसे मुहब्बत करता हूँ। मैं सारे लोगों से मुहब्बत नहीं करता इसलिए कि मैं 'सोचता' हूँ कि सारे लोगों से मुहब्बत नहीं कर सकता। नतीजा : मैं किसी से मुहब्बत नहीं करता। मैं अपने नज़रियात[16], अपनी आदतों से, किब्रे-नफ़्स[17] से, अपने ज़िद्दीपन से, अपनी सारी तर्बियत से, अपने आपसे मुहब्बत करता हूँ। तुम..." वह कुर्सी में बैठी हुई हैरतज़दह नजमी के सामने जा खड़ा हुआ, "तुम एक ख़ूबसूरत लड़की हो। तुम एक शानदार और दिलकश शै हो। हर दफ़ा जब मैं तुम्हारे ऐसी किसी लड़की को देखता

1. विभाजित, 2. फैला हुआ, 3. नव-जन्मे, 4. वचन भंजन, 5. बोध, 6. यातना, 7. अविभाजित क्षण, 8. मूर्खता, 9. कुत्तापन, 10. निष्फल, 11. आत्मगौरव, 12. अच्छे गुमान, 13. भाग्यतुष्टि, 14. महत्त्व, 15. संयुक्त मूर्खता, 16. दृष्टिकोण, 17. घमंड।

हूँ, मुझ पर एक भयानक लालच छा जाता है। हासिल करने का, क़ब्ज़े में करने का, इनवेस्ट (Invest) करने का, जैसे नफ़ाबख़्श कारोबार में रुपया लगाया जाता है। इत्मीनान की निहायत ऊपरी ख़ुशी हासिल करने का लालच और उसी पल, जानती हो, तुम मेरे लिए 'तुम' नहीं रहतीं, फिर तुम फ़लाँ बिंते-फ़लाँ[1] नहीं रहतीं। फिर तुम क्या बन जाती हो ? कुछ भी नहीं। फिर कुछ भी नहीं रहता, सिर्फ़ मैं रह जाता हूँ और मेरा पुराना लालच, मेरी ख़ुदपरस्ती, मेरा घमंड, मेरी ज़िद रह जाती है। फिर वही रह जाता है जो हमेशा से था : मैं और मेरे मुख़्तलिफ़ जज़्बे। अब तुम अहम नहीं हो, कुछ भी नहीं हो, ज़्यादा-से-ज़्यादा एक बदसूरत लड़की हो जिससे मैं नफ़रत करता हूँ। अब नफ़रत ऊपर आ जाती है और हैवानी जज़्बे। अब मुहब्बत कहीं नहीं है, सिर्फ़ मेरी बीती हुई और आनेवाली ज़िन्दगी का अक्स है जो मेरे सामने है, तुम नहीं हो, अचानक...लेकिन यूँ महसूस होता है कि एक धीमी और लम्बी तैयारी के बाद मैं मुहब्बत करने की तमाम अह्लियत खो देता हूँ। हक़ीक़त में मैं कहीं रहता ही नहीं हूँ, जो रह जाता है वह सिर्फ़ यह है : मेरा सारा पस-मंज़र[2] और मेरी ख़्वाहिशों और तमन्नाओं की फ़ेहरिस्त। हर एक लालच के गुज़र जाने पर मेरी ज़िद, मेरी ख़्वाहिशें ज़्यादा मज़बूत हो जाती हैं। अब वह वक़्त आता है जब किसी बात से कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। अब मैं किसी लड़की से, वह कोई-सी भी हो, शादी कर लूँगा और एक मुत्मइन और अहमक़ आदमी की तरह ज़िन्दगी बसर करने लगूँगा। हम दोनों में से कोई भी बाक़ी न रहेगा। सिर्फ़ अग़राज़ो-मक़ासिद[3] रह जाएँगे।

अब 'मैं' और 'तुम' अहम नहीं हैं, जो अहम है, वह यह है : रोज़गार मुहैया करना और नया फ़र्नीचर और फ़ालतू वक़्त में सोशल काम, दावतों पर जाना और बदले में दोस्तों को बुलाना, ग़रज़ यह कि शादी के नतीजों को सिर्फ़ दुनियावी फ़ायदों की शक्ल में हासिल करने की उम्मीद करना।

''जाड़े की लम्बी शामें एक-दूसरे के साथ पढ़ते हुए या मूसीक़ी सुनते हुए गुज़ारने और नए लिबास ख़रीदने, बावर्चीख़ाने की निगरानी करने और सालगिरहों पर एक-दूसरे को तुहफ़े देने की निहायत मामूली ख़ुशियों को अब हम एक मुजव्विज़ा[4] प्रोग्राम के तहत समेटने लगते हैं, जैसे रुपया-पैसा या दूसरी जायदाद इकट्ठी की जाती है। हमें यह भी मालूम नहीं कि यह जो हम बच्चों में इतनी दिलचस्पी ले रहे हैं, यह भी एक खोई हुई शख़्सियत के नुक़सान को पूरा करने की एक कोशिश है, मुहब्बत में हमारी नाकामी की वजह से है। हमारी 'disillusionment' है। हम एक सत्हीयत[5] को तमानियत[6] में, अपने अहमक़पन को क़नाअत[7] में और अपनी रूहानी नादारी[8] को तन-आसाँ[9] ज़िन्दगी की गूनागूँ मसर्रतों[10] में ग़र्क़ करने की बे-तरह कोशिश कर रहे हैं, बेतरह। सुना तुमने नजमा बेगम, फिर ऐसा होता है।'' उसने एक लम्बा साँस लिया और कन्धे उचकाकर कुर्सी पर आकर बैठ गया। फिर वह तेज़, ज़हरीले तंज़ के साथ हँसा, ''अब हमारी ज़िन्दगी मुनज़्ज़म[11] है। इसके बाद से हम एक निज़ाम[12] की पैरवी करने लगते हैं। उस निज़ाम की ख़ातिर ज़िन्दा रहते हैं। घर का निज़ाम...दिन भर के चार खाने और उनके औक़ात[13], बच्चों के लिए खाने की मेज़ का सलीक़ा, सोने और जागने के औक़ात...घर का निज़ाम और सोसाइटी का निज़ाम और मुल्क का निज़ाम और मज़हब का निज़ाम...यह हमारे लिए अज़हद ज़रूरी है। चुनाँचे जब नाज़िमे-आली[14] पुकारता है : 'आओ...इधर आओ। यह मुल्क है, यह सोसाइटी है, यह एक अज़ीम शै[15] है।' तो हम उससे एक अज़ीम रूहानी तक़्वियत[16] हासिल करते हैं और अपनी सत्हीयत के कुचल देनेवाले एहसास से बच निकलने का बेहतरीन रास्ता। फिर 'निज़ाम' अहम हो जाता है। सोसाइटी को और ताज़ीरात[17] को

1. अमुक सुपुत्री अमुक 2. पृष्ठभूमि, 3. उद्देश्य, 4. निश्चित, 5. तटस्थता, 6. सन्तोष, 7. भाग्यतुष्टि, 8. आत्मिक दरिद्रता, 9. आलसी, 10. रंग-बिरंगी ख़ुशियों, 11. व्यवस्थित, 12. व्यवस्था, 13. समयावली, समय का बहुवचन, 14. उच्च-व्यवस्थापक, 15. महान वस्तु, 16. आत्मिक शक्ति, 17. विधि-विधान।

अह्मियत हासिल होती है, तमको और मुझको नहीं। फिर सोसाइटी 'मुझ' को और 'तुम' को बनाती है, मैं या तुम सोसाइटी को नहीं बनाते। हम ख़ुद अपनी फ़राग़त के लिए अपनी शख़्सियत को हमेशा के लिए खो देते हैं। और पता है इसका क्या नतीजा बरामद होता है ? ख़ुदग़र्ज़ी ! मेरा मुँह क्या देखते हो ? अब तुम इतने कुन्द-ज़ेहन हो चुके हो कि इतनी-सी बात भी नहीं समझ सकते ? जब इनसान, मर्द और औरत, अपनी इन्फ़िरादियत को खो देते हैं तो फिर जमाअत ऊपर आ जाती है, और सोसाइटी...और हम सब जानते हैं कि सोसाइटी में इस वक़्त सबसे बड़ी ताक़त लोग नहीं हैं, अग़राज़ो-मक़ासिद हैं। इस निज़ाम के बनाने में सब चीज़ें मदद करती हैं। हमारे उसूल, हमारी 'disillusionment' हमारी सत्हीयत और अज़ली हमाक़त[1] का एहसास, सब। जानते हो इस वक़्त इनसानों की सोसाइटी में सबसे जानदार क़ुव्वत अमीरी या ग़रीबी या क़ौमियत या मज़हब या कम्यूनिज़्म नहीं है, ख़ुदग़र्ज़ी है, मुनज़्ज़म और मुनव्वर ख़ुदग़र्ज़ी। मुस्तक़्बिल में इनसान को हम सिर्फ़ कुछ क़ौमों या जमाअतों या नस्लों या सोशल वर्कर-ग्रुपों की सूरत में पेश कर देंगे जिनकी पहचान के लिए उन पर मुख़्तलिफ़ क़ौमियतों या मज़हबों के उनवान[2] लगे होंगे...अब वह वक़्त आया है कि हमारे लिए उस भयानक जंगल में अपनी हिफ़ाज़त की ख़ातिर जत्थे और ग़ोल बनाना नागुज़ीर[3] हो गया है। हम वापस जा रहे हैं उस तरफ़..." उसने हाथ से इशारा किया।

सबने अचानक पूरब की तरफ़ देखा जहाँ अँधेरा था और शहर की रौशनियाँ थीं। "एक ग़ोल दूसरे ग़ोल पर झपट रहा है या झपटनेवाला है। इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। सिर्फ़ हम वापस जा रहे हैं...उस तरफ़..." उसने दोबारा हलका-सा इशारा किया जिससे किसी सम्त[4] का तअय्युन[5] न किया जा सकता था। सब ख़ामोश बैठे रहे। सिर्फ़ बादामी रंग का कुत्ता पत्तों के ढेर पर से अंगड़ाई लेकर उठा और घास पर छोटे-छोटे क़दम रखता उनके क़रीब आकर जम्हाइयाँ लेने और मसख़रों की तरह बरसाती पतंगों का पीछा करने लगा। उनके चारों तरफ़ रात की पुर-असरार[6] ख़ामोश आवाज़ें फैल रही थीं। हवा दरख़्तों में उसी तरह मद्धिम और मुसलसल चले जा रही थी।

"आज जो कहीं भी नहीं है हमारा ज़मीर[7] या मज़हब या एहसासे-ज़िम्मेदारी नहीं, हमारी शख़्सियत है। हम जो खो चुके हैं, बरबाद कर चुके हैं, हमारी इन्फ़िरादियत है...आज फ़र्द[8] कहीं नहीं है, सिर्फ़ ग़ोल हैं। तुम जानते हो आज जो ख़ौफ़नाक एहसासे-तन्हाई हम सब पर छाया हुआ है, किसलिए है ? तुम जानते हो, ख़ूब जानते हो..."

"मैं कुछ नहीं जानता। तुम कोठड़ी में रहनेवालों और ग़ोल बनानेवालों को एक साथ नापसन्द करते हो। मैं समझता हूँ तुम सिर्फ़ ज़हर उगल रहे हो।" बरमन जी ने उकताकर कहा।

"दोनों एहसासे-तन्हाई के शिकार हैं, खो चुके हैं, खोए हुए हैं। जो खोए हुए नहीं हैं वे खिड़कियाँ और रोशनदान खोल देते हैं, ताकि रौशनी और हवा अन्दर आ सके और खिड़की में से झुककर राह चलतों को सलाम करते हैं और उनके सलाम का जवाब देते हैं और जब बुलाए जाते हैं तो दरवाज़े खोलकर बाहर निकल आते हैं। वे लोगों की बातें समझते हैं इसलिए बेख़ौफ़ हैं और आज़ादी से घूमने-फिरने के बाद वापस चले जाते हैं..." मसऊद ने कहा।

लेकिन बरमन जी के बात करने से काफ़ी जादू टूट चुका था। अब वे उठ रहे थे और जल्द-जल्द 'ख़ुदा हाफ़िज़' कहकर रुख़सत हो रहे थे। आख़िर में सिर्फ़ फ़े, ख़ालिद, नजमी और मसऊद रह गए। नजमी उठकर घास पर एहतियात से चलती हुई पत्तों के ढेर के पास जा खड़ी हुई और उस पर पाँव फेरने लगी। वह मसऊद की बे-रब्त[9] और बज़ाहिर बे-मानी तक़रीर से मरऊब[10] न हुई थी। इसके बरअक्स उसके ज़ेहन में मसऊद की घटिया तर्बियत और उसके तबक़े का एहसास तेज़ हो गया था। अब वह वहाँ खड़ी उसे यकसर भुला देने की कोशिश कर रही थी। ग़ैर-इरादी तौर पर

1. शाश्वत मूर्खता, 2. शीर्षक, 3. अनिवार्य, 4. दिशा, 5. निश्चय, 6. रहस्यपूर्ण, 7. अन्तरात्मा, 8. व्यक्ति, 9. असम्बद्ध,, 10. प्रभावित।

उसने सोचा कि वह उस शख़्स से मिलकर कभी बहुत ज़्यादा ख़ुश नहीं हुई। न जाने कैसे वह उनके हलक़े में शामिल हो गया था। उसने नागवारी के साथ कुछ महीने पहले की वह शाम याद की जब वह पहली बार सुर की बड़ी बहन इन्द्र के साथ रौशन महल आया था और हालाँकि उसके पस-मंज़र के मुतअल्लिक़ किसी को पता न था और हालाँकि यह मामूल के मुताबिक़ न था फिर भी उसकी संजीदगी और साफ़-सुथरे मज़ाक़[1] को देखकर उसे उस ख़ास-उल-ख़ास हलक़े में क़बूल कर लिया गया था। वह सर्दियों की बारिश-आलूद शाम थी और इन्द्र ने अपनी सुरीली आवाज़ में भजन सुनाए थे: 'मैं तो गिरधर आगे नाचूँगी' और 'ए री मैं तो प्रेम दीवानी' और नजमी ने प्यानो पर उसका साथ दिया था। इन्द्रबाला...जाने अब कहाँ है ? अपने शौहर के साथ दक्खिनी हिन्दोस्तान में किसी जगह...इतने अच्छे-अच्छे दोस्त चले जाते हैं। क्यों ?

उसने महसूस किया कि वह उसकी पुश्त पर खड़ा है और वह अचानक ख़ौफ़ज़द हो गई। तेज़ी से कुछ ख़याल उसके ज़ेहन में से गुज़रे। जाने किस क़िस्म का आदमी है ? अब क्या करेगा ? मुझे क़त्ल कर देगा ? ख़ुदाया, यह कमबख़्त लोग...उसे अपने आप पर बेहद ग़ुस्सा आया लेकिन वह खड़ी रही। सिर्फ़ उसका पाँव रुक गया और पत्तों के ढेर पर पड़ा आहिस्ता-आहिस्ता कँपकँपाने लगा।

ज़रा बदले हुए अन्दाज़ में मसऊद बोलने लगा, "नजमी, तुम मेरे लिए इन्तिहाई पुर-कशिश[2] हो। मगर जानती हो, यह कशिश सिर्फ़ इस वजह से ही नहीं कि तुम एक ख़ूबसूरत लड़की हो, इसलिए भी है कि तुम रौशन महल में पैदा हुई हो।" वह रुका, "मेरी हमेशा यह ख़्वाहिश रही कि हमारा एक ऐसा घर होता, पुराने ढंग का, लम्बे-लम्बे सुतूनों और हॉल कमरोंवाला, रौग़नी तस्वीरें[3] जिनमें नफ़ीस दाढ़ियोंवाले बुड्ढे जड़ाऊ लिबास पहने, तलवार लगाए वायसराय या गवर्नर के हमराह खड़े होते हैं, और पुराना फ़र्नीचर और बरसों पुराने पीपल, बरगद और सफ़ेदे के दरख़्त, देरीना जाहो-हिश्मत[4] के निशानात जो उस घर में पैदा होनेवाले हर बच्चे में शुरू दिन से आला और नफ़ीस क़िस्म का एहसासे-बरतरी[5] पैदा कर देते हैं। तीन पुश्तों से सीना-बा-सीना[6] चलता हुआ एहसासे-बरतरी। मेरे आबा-ओ-अज्दाद[7] ? हुँह...कहाँ से आए ? कौन ये ? कहाँ गए ? कुछ पता नहीं। आज मैं अपने लिए एक मकान बना सकता हूँ, मगर ऊँचे-ऊँचे, पुराने देवदार और बरामदों पर लदी हुई बेलें और रौग़नी तस्वीरें, यह सब तो तुम्हारे तब्क़े[8] के निशानात हैं, कहाँ से आएँगे ? ऊँ हूँ..." उसने नफ़ी में सिर हिलाया, "मैं इन बातों से बहलनेवाला नहीं जनाब। मैं तो ऐसे घर में 'पैदा' होना चाहता था, 'तीसरी नस्ल' होना चाहता था। मैं वह सब कुछ हासिल करना चाहता था जो तुमने विरसे में पाया है। तुम्हारी नफ़ासत, तुम्हारा दिमाग़, तुम्हारा अख़्लाक़, तुम्हारी तालीम और तर्बियत, एरिस्टोक्रेसी की तमाम नेमतें[9] सब...मैं तुमसे हसद[10] करता हूँ। मेरे दिल में तुम्हारे लिए धीमी, सुलगती हुई रक़ाबत[11] है और बस...आख़िर मैं अपने माज़ी से बचकर कहाँ जा सकता हूँ।"

ठंडे दिल से सोचा जाता तो मसऊद की बातों पर शायद किसी को ग़ुस्सा न आता, लेकिन नजमी के पास उसके लिए सिर्फ़ हक़ारत[12] थी, वह जज़्बा, जो इनसान के दिल में एक छोटे-से जानवर को अपने मुक़ाबले पर खड़ा होते देखकर पैदा होता है, जिसमें ग़ुस्सा, हक़ारत, ख़ौफ़, सब ही कुछ होता है...

वह मुड़ी और सीधा उसके चेहरे पर देखकर बोली, "मसऊद, तुम अब...अब जाओ... अभी..."

वह कुछ पल तक ख़ाली-ख़ाली नज़रों से नजमी को देखता रहा जो अब उसकी तरफ़ पुश्त करके खड़ी हो गई थी। फिर उसके होंठों पर हलकी, तक़रीबन बे-नाम उदास मुसकराहट पैदा हुई। उसने कन्धे उचकाए और अलविदा कहे बग़ैर बाहर निकल गया। उसका बादामी रंग का कुत्ता

1. सुरुचि, 2. आकर्षक, 3. तैलचित्र, 4. प्राचीन वैभव, 5. उच्च भावना, 6. जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी गुप्त रूप से मिलता आया हो, 7. पूर्वज, 8. वर्ग, 9. सुविधाएँ, 10. ईर्ष्या, 11. स्पर्द्धा, 12. तिरस्कार।

छोटे-छोटे, मुस्तैद और वफ़ादार क़दम रखता हुआ साथ-साथ भागने लगा।

नजमी को अपनी तरफ़ आते देखकर फ़े और ख़ालिद, जिन्होंने हैरत के साथ यह सब देखा था, घास पर से उठे और बेतुके, हश्शाश-बश्शाश[1] चेहरे उसकी तरफ़ मोड़ दिए। फिर जल्दी से अलविदा कहकर वे भी रुख़सत हुए।

जब वह अकेली मेज़ पर बैठी आहिस्ता-आहिस्ता पाँव हिला रही थी तो किसी ने जल्दी से आकर ख़बर दी कि मसऊद मियाँ का फ़ोन आया है।

"वे जा चुके हैं।" उसने मेकानिकी अन्दाज़ में कहा।

फिर उसने दहलकर पूरब की तरफ़ देखा, जहाँ अँधेरा था और शहर की रौशनियाँ थीं और रात की पुर-असरार आवाज़ें बुलन्द होना शुरू हो गई थीं।

44

नईम उठकर सीढ़ियों के ऊपर आ खड़ा हुआ। उसके माथे और आँखों पर रौशनी पड़ रही थी और निचला चेहरा साए में था। ख़ून के दबाव की वजह से उसका चेहरा सुर्ख़ हो रहा था और उस पर गहरे इन्हिमाक[2] की लकीरें थीं। नजमी उसकी तरफ़ पुश्त किए दोनों हाथ गोद में रखे बे-तरतीब कुर्सियों, मेज़ों, बेडमिंटन के रैकेटों, अख़बारों, शर्बत के गिलासों और आम की क़ाशों और छिलकों के दरमियान अकेली मेज़ पर बैठी थी। उसके बड़े-से सिर और तंग, नाज़ुक पुश्त में कोई हरकत न थी। हवा थम चुकी थी और रात में ग़ैर-मामूली बेचैनी और दूर का हलका-हलका शोर था। नईम ने सुतून पर से हाथ उठाया और सीढ़ियाँ उतरकर आहिस्ता-आहिस्ता लॉन की तरफ़ बढ़ा।

नौकरों के झुरमुट में रहने की आदी नजमी ने उसे अपने पीछे चलते हुए सुना और नज़रअन्दाज़ कर दिया। नईम बिखरे हुए सामान के दरमियान चलता हुआ उसके सामने जा खड़ा हुआ। उस वक़्त नजमी उसे देखकर चौंक पड़ी। वह ज़रा-सी पुश्त मोड़े, कुर्सी के बाज़ू का सहारा लिए उसी इन्हिमाक से घास पर देख रहा था। उसे देखकर हमेशा की तरह नजमी को दूर की ख़ुशी का एहसास हुआ। उसका यह रिश्ते का भाई, जिसे वह मुद्दत से जानती थी और चाहने के बावजूद जिसके बहुत ज़्यादा नज़दीक वह कभी न हो सकी थी, उसके लिए एक पुर-असंरार, पुरकशिश दूरी का हामिल था। उससे जब भी वह मिली, उसे महसूस हुआ कि अपने नर्मी और ख़ुश-ख़ुल्क़ी[3] के रवैये के बावजूद वह एक बिलकुल अलग, बेगाना हस्ती थी जिसके साथ बेतकल्लुफ़ी की नौबत कभी न आ सकती थी। इसके बावजूद वह वाहिद शख़्स था जिसके बारे में वह हमेशा अपने क़ुदरती तब्क़ाती तअस्सुरात[4] से आज़ाद होकर सोचती थी। इस बात का भी उसे पता था कि इस अधेड़ उम्र ख़ूबसूरत शख़्स से, जो उसका नज़दीकी रिश्तेदार था, मिलकर वह हमेशा ख़ुश होती थी और उसको ख़ुश करने की भी नाक़ाबिले-बयान[5] ख़्वाहिश महसूस करती थी।

नईम ने झुककर लिपटा हुआ कैनवस उठाया और उसे खोलकर देखने लगा।

"सुर का पोर्ट्रेट है," वह छलाँग लगाकर मेज़ से उतरी और बच्चों की तरह तेज़-तेज़ आँखें उसकी तरफ़ उठाकर बोली, "आप सुर को जानते हैं, नईम भाई ? सुरबाला।"

"सुरबाला ? हाँ।"

"वह आज नहीं आई।" नजमी ने उदास होकर कहा।

"वह आज नहीं आई ? अच्छा ?" नईम ने दुहराया। फिर वह बिला-वजह आहिस्ता से हँसा और कुर्सी पर बैठ गया। नजमी उसके सामने मेज़ पर चढ़कर बैठ गई और शिकायती लहजे में बोली, "इतनी बार कहा आपका पोर्ट्रेट बनाएँगे, सिटिंग ही नहीं देते।"

1. प्रसन्नचित्त, 2. एकाग्रता, 3. सुशीलता, 4. वर्गीय प्रभावों, 5. अकथनीय।

"पोर्ट्रेट ? हाँ देंगे। देंगे। आपके दोस्त सारे चले गए ?"

"सारे चले गए।" नजमी ने दुहराया, "मछली का शिकार ?"

"ख़ूब रहा ! ख़ूब।" वह हँसा, "हमेशा पूछती हो।"

"और आप हमेशा लेकर नहीं जाते। इतनी बार कहा, हमें भी कभी ले जाएँ।"

"आप अपनी छड़ी और डोरी तो मँगवाती नहीं।"

"अरे मछली पकड़ने कौन जा रहा है, नईम भाई ? आप तो याद ही नहीं रखते। आपका पोर्ट्रेट बनाएँगे दरिया के किनारे पर और...अरे इतना उम्दा रहेगा भई। वह जहाँ दूसरे किनारे पे छोटा-सा जंगल है नईं ? वहीं पे उस किनारे आप दरिया में डोरी फेंककर एक बड़े-से पत्थर पर चढ़कर अपने ख़याल में बैठे होंगे जैसे बैठा करते हैं और कन्धे पर एक कौआ बैठा होगा और...इतना कैरेक्टर है आपके चेहरे पर, पता है आपको ?"

नईम ख़ामोशी से हँसा।

"फिर वादा कीजिए अब की बार हमें और अज़रा आपा को ले के जाएँगे।"

"हाँ ! ज़रूर ले जाएँगे।"

उसे एक अजीब इन्हिमाक से अपनी तरफ़ देखता हुआ पाकर नजमी घबराकर चुप हो गई। वह उसकी अनोखी तबीअत से मरऊब भी थी और ख़ाइफ़[1] भी, लेकिन इस तरह से वह बहुत कम उसे देखा करता था। दूर की आवाज़ें उठ रही थीं और गिर रही थीं। कहीं पर शायद आग लगा दी गई थी, जिसकी नारंजी रौशनी आसमान की तरफ़ उठ रही थी। बरामदे का टेलीफ़ोन ज़ोर-ज़ोर से बजना शुरू हो गया।

"अज़रा नहीं। सिर्फ़ तुम।" नईम ने कहा।

"अज़रा आपा नहीं ?"

नईम ने कोई जवाब न दिया, सिर्फ़ उसे देखता रहा। टेलीफ़ोन थोड़ी-थोड़ी देर बाद लगातार बजे जा रहा था। सारे नौकर कोठी के पिछवाड़े ख़ौफ़ज़द भेड़ों की तरह जमा होकर शहर की तरफ़ देख रहे थे। सिर्फ़ एक मेहरी बरामदे में सहमी हुई टेलीफ़ोन को और नजमी को बार-बार देख रही थी। यह आला[2] क़तई तौर पर उसकी समझ से बाहर था। पल भर में नजमी पसीने में भीग गई।

"अनीस ठीक कहता है। वहाँ पर जाकर मुझे सुकून मिलता है और सुकून...मुझे तुमसे मिलकर भी मिलता है।" वह उसी इन्हिमाक से बोल रहा था, "तुम मुझसे कभी नहीं मिलतीं, बात नहीं करतीं...क्यों ?"

"ओह...अच्छा ? नहीं नईम भाई।" वह कोशिश करके हँसी, "लेकिन अज़रा आपा..."

नईम ने हाथ उठाकर चुप रहने का इशारा किया, "तुम्हें पता है मेरी कैसी कोफ़्त की ज़िन्दगी है ? इससे बचने के लिए मैं हर जगह मारा-मारा फिरता हूँ। मेरी बीवी..उसके साथ एक मुद्दत गुज़र गई, मुझे कुछ नहीं दे सकी। और तुम...इतनी ज़हीन हो, तुम्हारा दिमाग़...मैं उसके साथ हैवानों की तरह रहता हूँ। और तुम ?" उसने हाथ बढ़ाकर उसकी ठोड़ी और गाल और होंठों को छुआ, "तुम्हारा ज़ेहन...मैंने हमेशा तुम्हारे जैसी लड़की की तमन्ना..."

नजमी, जो हैरान बैठी उसे देख रही थी, मेज़ पर से ज़रा-सी उठी, फिर दोनों हाथों में मुँह छुपाकर रोने लगी।

नईम हैरतअंगेज़ तेज़ी के साथ उस बलाख़ेज़, तूफ़ानी जज़्बे में से निकल आया। आहिस्ता-आहिस्ता वह कुर्सी पर से उठ खड़ा हुआ। दुख और ख़ौफ़ के एक पल ने सारे वाक़िए की नौइयत उस पर ज़ाहिर कर दी। उसी पल में उसने फ़ैसला किया कि वह इस घर को हमेशा के लिए छोड़ देगा। तक़रीबन भागता हुआ, मेज़ों-कुर्सियों से टकराता वह अपने कमरों की तरफ़ बढ़ा। नजमी ने

1. भयभीत, 2. यन्त्र।

पानी के जग के गिरकर टूटने की आवाज़ सुनी और हाथ हटाकर झिलमिलाती आँखों से उस लँगड़ाकर चलती हुई शबीह को, जो ज़िन्दगी को नाक़ाबिले-तस्ख़ीर[1] अलामत[2] थी, ग़ायब होते हुए देखा।

रात आधी से ज़्यादा गुज़र चुकी थी। अज़रा हस्बे-मामूल नईम से उसके इतवार के शिकार के मुतअल्लिक़ पूछ-पूछकर और उसकी ख़ामोशी से तंग आकर सो चुकी थी, लेकिन उसका एक बाज़ू अभी तक नईम की छाती पर बेसुध पड़ा था। नईम बाज़ू सिर के नीचे रखे बे-ख़्वाब आँखों से अँधेरे में छत पर और इधर-उधर देख रहा था। गर्मी और उमस की वजह से उसका जिस्म, पसीने से भीगा हुआ था लेकिन उसके दिल में हर जज़्बा ठंडा पड़ चुका था और ज़ेहन ख़ाली था। सिर्फ़ एक हलकी-सी थकान रह गई थी जो उसकी रूह से जुड़ी हुई थी। उसने कई बार चौड़े, आरामदेह बिस्तर पर अपने आपको फैलाकर सोने की कोशिश की, लेकिन नाकाम रहा। खुली खिड़की में यूकिलिप्टस के पत्ते सियाह पत्थरों की तरह साकिन[3] थे और उनके पीछे मटियाला बेजान-सा चाँद अभी-अभी ऊपर आ रहा था। शहर की तरफ़ से आवाज़ें मुसलसल आ रही थीं, कभी दूर कभी नज़दीक। वह देर तक बेहिसो-हरकत[4] लेटा उनके ज़ीरोबम[5] को महसूस करता रहा, यहाँ तक कि उसका बाज़ू सिर के नीचे रखा-रखा सो गया। कमरे में सिर्फ़ पंखे के चलने और अज़रा के ख़र्राटों की हलकी-हलकी मानूस आवाज़ थी। रात की कमज़ोर रौशनी में उसने अपने सीने पर पड़े हुए अज़रा के हाथ को देखा जिसकी उँगलियाँ नींद में आप से आप हिल रही थीं। कैसी सुकून की नींद है तुम्हारी ? उसने दिल में कहा। और उसके अन्दर हसद का तेज़ एहसास पैदा हुआ, लेकिन उसके दिल में अब इतना ज़ोर नहीं रहा था कि उस ताक़तवर जज़्बे को सहार सकता। अँधेरे में बेहिसो-हरकत तकलीफ़ से होते हुए अब एक अजीब सर्द-मेहरी[6] उसके दिल में पैदा हुई। उसने सिर मोड़कर देखा। गोश्त-पोस्त का यह ढोंग, यह क्या है ? यह औरत, क्या समझती है, क्या सोचती है, कितनी बेहिस और लापरवाह है। इसे मुझसे क्या ग़रज़ है, क्या तअल्लुक़ है ? इतना फुसफुसा रिश्ता इतनी मुद्दत से क़ायम है। अचानक उसने उस औरत से, जो पच्चीस साल से उसकी बीवी थी, शदीद बेज़ारी और लातअल्लुक़ी महसूस की। उसके बाज़ू को झटके से हटाकर वह उठा और खिड़की में जा खड़ा हुआ। चाँद ऊपर आ गया था और रात में जान पड़ रही थी। आग की रौशनी अब सारे आसमान पर फैल चुकी थी और दूर की मूसीक़ी की तरह आवाज़ें कभी मद्धिम, कभी तेज़ आ रही थीं।

अज़रा की आँख खुली और अपने आपको अकेले पाकर उठ बैठी। फिर आँखें मलकर उसने चारों तरफ़ देखा और नईम के पास जा खड़ी हुई।

''नईम !'' उसने सहमकर कहा, ''शहर में शायद फ़साद हो गया। गेट पर चौकीदार...''

नईम ने उसकी तरफ़ देखा और देखता रहा। फिर यकसाँ, सपाट आवाज़ में बोला, ''निकल जाओ यहाँ से।''

अज़रा की आँखों के आगे से अँधेरे का एक रेला तेज़ी से गुज़र गया। एक पल के लिए उसकी पुरानी ख़ू बेदार[7] हुई, लेकिन अब उम्र का ज़ोर टूट चुका था। वह चकराकर स्टूल पर बैठ गई। नईम ने पलंग पर से ड्रेसिंग-गाउन उठाया और उसे पहनता हुआ बाहर निकल गया।

गेट पर चौकीदारों ने उसे बाहर निकलते हुए हैरत से देखा। सड़क लम्बी और सुनसान थी और बिजली के खम्बों पर रौशनियाँ सुस्ती और यकसानियत से जल रही थीं। जब कभी वह खम्बे के नीचे से गुज़रता तो दो-चार बरसाती पतंगे उसके बालों पर गिरते या किसी कोठी का कुत्ता उस पर भौंकता। इसके अलावा उसे अपने तन्हा सफ़र में कोई न मिला। वह तेज़-तेज़ क़दमों से चलता गया यहाँ तक कि सड़क दाहिनी तरफ़ मुड़कर शहर की हुदूद में दाख़िल हो गई।

---

1. अजेय, 2. प्रतीक, 3. स्थिर, 4. निश्चेष्ट, 5. उतार-चढ़ाव, 6. कठोरता, 7. स्वभाव जागृत।

वह एक बाज़ार में से गुज़र रहा था जहाँ अँधेरा था और तमाम दुकानें बन्द थीं। दुकानों के तख़्तों पर जगह-जगह चारपाइयाँ बिछी थीं जिन पर से सोते हुए लोग उठकर जाने कहाँ जा चुके थे। कई एक चारपाइयों पर आवारा कुत्ते चढ़कर बैठे ऊँघ रहे थे या भद्दी आवाज़ों में रो रहे थे। फिर एक छोटी-सी गली आई जिसे पार करने पर दूसरा बाज़ार शुरू हआ, जिसमें बिजली के खम्बों पर रौशनियाँ थीं और पतंगे थे। चारपाइयाँ उसी तरह ख़ाली पड़ी थीं और कुत्ते उसे देखकर ज़ोर-ज़ोर से भौंकने लगे थे। यह बाज़ार बहुत गन्दा था और खाने-पीने की चीज़ें बिखरी पड़ी थीं। बाज़ार के बीच में नईम का पाँव किसी फल के छिलके पर से फिसला और वह पीठ के बल ज़मीन पर आ रहा। उसने उठकर एक स्लीपर, जो उतर गया था, पहना और फिर चल पड़ा। उसके बाद एक और उसी क़िस्म का बाज़ार आया जिसमें आम और ख़रबूज़ों के छिलकों और कुत्तों से बचता-बचाता वह गुज़रता रहा। कुत्ते आवारा और काहिल थे और सिर्फ़ भौंक या रो रहे थे। कुत्ते का एक पिल्ला सामने से गुज़रता हुआ उसकी टाँगों में उलझ गया और वह गिरते-गिरते बचा। पिल्ले ने चीख़-चीख़कर आसमान सिर पर उठा लिया लेकिन उसकी माँ, जो एक ख़ाली चारपाई पर लेटी हुई थी, इत्मीनान से पड़ी रोती रही। इसी तरह उसने कई अँधेरी और नीम-अँधेरी बदबूदार गलियाँ पार कीं। कोई इनसान उसकी नज़र न आया, सिर्फ़ मिली-जुली आवाज़ों का शोर और आग की लहक क़रीब आती गई। आख़िरी गली में इतना शोर था कि उसने महसूस किया जैसे वह उसके दरमियान खड़ा है। गली सुनसान थी और वह अकेला वहाँ खड़ा था। दोनों तरफ़ ऊँचे-ऊँचे मकान अँधेरे में पथरीली बेहिसी[1] के साथ खड़े थे और उनके दरवाज़े और खिड़कियाँ मज़बूती से बन्द थे। चलते-चलते नईम का पाँव फिसलकर गली के दरमियान बहती हुई नाली में जा पड़ा और गन्दे पानी के छींटे उड़कर उसके पाजामे पर फैल गए। उसने झुककर स्लीपर नाली में से निकाला और उसे पहनते हुए एक पल को उसने उस जगह पर अपने आपको बेहद अजनबी और तनहा और मज़्हकाख़ेज़ महसूस किया। लेकिन जलती हुई लकड़ी की बू अब उसकी नाक में दाख़िल हो रही थी और धुआँ गली में फैल रहा था। गली का मोड़ मुड़ने पर अचानक वह उस सारी तड़फड़ाहट के दरमियान पहुँच गया।

गली सारी एक खुला-सा अहाता था जैसा कि पुराने मुहल्लों में कहीं-न-कहीं ज़रूर होता है। नईम के बिलकुल सामने तीन-चार ऊँचे-ऊँचे मकान धड़ाधड़ जल रहे थे। हवा की कमी की वजह से धुआँ वहीं पर भर गया था और चारों तरफ़ लोग, जो तमाशा देखने के लिए अपने-अपने मकानों के दरवाज़ों पर इकट्ठे हो गए थे, आँसू भरी आँखों को बार-बार पोंछ रहे थे और नाक साफ़ कर रहे थे। आग बुझाने की कोशिश कोई न कर रहा था...सिर्फ़ एक फ़ायर ब्रिगेड का इंजन, जो अन्दर न जा सकता था, बाहर सड़क पर खड़ा था और चन्द फ़ायरमैन उसके पतले-से पाइप के ज़रिए से, जो इतनी बड़ी आग के लिए निहायत नाकाफ़ी था, पानी फेंक रहे थे। जलते हुए मकानों के आस-पास के घरों में से सामान निकाला जा रहा था और डरे हुए जिस्मों और शदीद ख़तरे की वजह से ख़ाली चेहरोंवाले लोग चीख़-चीख़कर अन्दर-बाहर भाग रहे थे। उनके चेहरों पर पसीने की लकीरें चल रही थीं और वे आग में चमक रहे थे। दूसरी तरफ़ गली के फ़र्श पर कुछ कुनबे अपने मुख़्तसर सामान के ऊपर बैठे थे और मुकम्मल तौर पर ख़ाली-उज़्ज़ेहन[2] दिखाई दे रहे थे। ये शायद वे लोग थे जो जलते हुए मकानों में से जान बचाकर निकले थे और जिनकी औरतें और बच्चे रो रहे थे और मर्द परेशान खड़े थे। एक जवान मर्द जो चीख़-चीख़कर अपने कुनबे को चुप रहने को कह रहा था, आख़िर बरदाश्त न कर सका और कूद-कूदकर अपनी बीवी और बच्चों को पीटने लगा। वहीं खड़े-खड़े नईम ने उस सारे मंज़र के शदीद दुख और मज़्हके[3] को महसूस किया और चल पड़ा। उस सारी भीड़ में किसी ने भी उस इकलौते, जिस्म चुराकर निकलते हुए इनसान की उफ़ताद[4] को

1. ज़ड़ता, 2. शून्य मस्तिष्क, 3. परिहास, 4. मुसीबत।

न पहचाना कि इज्तिमाई[1] इनसानी उफ़ताद इस क़दर जाज़िबे-निगाह[2] होती है।

फ़ायर-इंजन के पास पहुँचकर वह ठिठककर रुक गया। बलवाइयों का एक गिरोह एक अँधेरी गली में से निकलकर फ़ौरन दूसरी अँधेरी गली में ग़ायब हो गया। उन्होंने लँगोट और मुँडासे बाँध रखे थे और पसीने में नहाए हुए सियाह जिस्म आग की रौशनी में चमक रहे थे। कुछ पुलिस के सिपाही उनका पीछा कर रहे थे। एक पल ! लेकिन उस एक पल में नईम ने उस गिरोह में एक बेहद मानूस और अज़ीज़ चेहरे को पहचान लिया। बलवाइयों के गिरोह में से होने के बावजूद वह चेहरा नईम के लिए सिर्फ़ एक डरकर भागते हुए बच्चे का था। उसके सर्द-मेहर[3] दिल में उसके लिए ऐसी गम्भीर मुहब्बत की लहर उठी जो बाप के दिल में खोए हुए बच्चे के लिए पैदा होती है और पहली दफ़ा उसने उस सारे मंज़र में अपने आपको जज़्बाती तौर पर शरीक महसूस किया।

"वह यहाँ है।" उसने अपने आपसे कहा।

वह सड़क पारकर रहा था जब एक सिपाही ने बाज़ू से पकड़कर उसे रोका।

"कौन हो तुम ?" फिर बाज़ू की ग़ैर-मामूली सख़्ती को महसूस करके उसने हाथ खींच लिया, "यह क्या है ?"

नईम ने जल्द-जल्द आस्तीन चढ़ाकर नंगा बाज़ू आगे बढ़ा दिया। सिपाही ने टार्च की रौशनी में हैरत से उसे अपने डंडे की मदद से ठोंक बजाकर देखा। फिर उसके लबों पर एक नफ़रत से भरी मुस्कराहट पैदा हुई।

"कौन हो तुम ?"

"मैं ?"

"तो क्या मैं ?" सिपाही ने कड़ककर कहा।

"नईम अहमद ख़ाँ।"

"कहाँ जा रहे हो ?"

"मैं ? कहीं नहीं !"

"मैं-मैं-मैं...हरामज़ादा...बैठ जाओ वहाँ पर।"

नईम सड़क के किनारे एक दुकान के तख़्ते पर बैठ गया। सिपाही इधर-उधर घूमकर अँधेरी गलियों में झाँकता रहा। फिर एक गली में से दो और सिपाही निकले। तीनों ने जल्द-जल्द आपस में बातें कीं और उसी गली में ग़ायब हो गए। थोड़ी देर तक इन्तिज़ार करने के बाद नईम उठकर चल पड़ा।

कई सुनसान बाज़ार और गलियाँ पार करने के बाद वह एक खुली सड़क पर निकल आया। यह सड़क क्वींज़ रोड की तरह सीधी और ख़ाली थी और दोनों तरफ़ रौशनियाँ उकताहट के साथ जल रही थीं। उस सड़क पर फिर पतंगे उसके बालों पर गिरने और इक्का-दुक्का रखवाला कुत्ते उस पर भौंकने शुरू हुए। थोड़ी दूर जाकर वह एक कोठी में दाख़िल हुआ। पोर्च में एक मद्धिम-सी बत्ती जल रही थी। आस-पास कोई कुत्ते या चौकीदार न था। तेज़ी से बरामदे में चढ़कर उसने घंटी के बटन पर उँगली रखी और एक मिनट तक उसे दबाए रखा। एक बूढ़ा मुलाज़िम कोठी के पीछे से निकला। कुछ देर तक वह हैरत से मुँह खोले नईम को देखता रहा, फिर उलटे पाँव भागता हुआ ग़ायब हो गया।

"रौशन महल के नईम मियाँ..." उसने फूले हुए साँस से एक मामा को ख़बर दी।

थोड़ी देर के बाद अन्दर बत्ती जली और अनीस ने दरवाज़ा खोला।

"नईम ?" उसने सिर से लेकर पाँव तक दो-तीन बार देखा, फिर बाज़ू से पकड़कर अन्दर खींच लिया।

---

1. सामूहिक, 2. दृष्टि-आकर्षक, 3. कठोर।

"कहाँ से आ रहे हो ?"

"घर से।"

बाज़ू से पकड़े-पकड़े रास्ते के कमरों की बत्तियाँ जलाता हुआ वह उसे अपनी स्टडी में ले गया।

"क्या बात है ?"

"कुछ नहीं।" नईम ने मामूली लहजे में कहा।

कुछ पल तक उसे ग़ौर से देखते रहने के बाद अनीस गाल फुलाकर झल्लाहट और तन्ज़ से हँसा, "तीन बजे हैं !"

जवाब का इन्तिज़ार किए बग़ैर उसने मामा को चिलमची में गर्म पानी लाने का हुक्म दिया। थोड़ी देर में वह पानी लेकर आ गई और उसके पाँव धोने लगी। उस वक़्त नईम ने देखा कि उसके पाँव में सिर्फ़ एक स्लीपर था। इतनी देर में अनीस ने एक साफ़ पाजामा और स्लीपर लाकर रख दिए। जब मामा चली गई तो नईम तौलिए से पाँव ख़ुश्क करने लगा।

"शहर में फ़साद हो रहा है।" अनीस ने कहा।

"हाँ।" नईम ने जवाब दिया। फिर अनीस को अपनी तरफ़ देखते हुए पाकर वह झेंपकर हँसा, "नींद नहीं आ रही थी। मैं यहाँ चला आया। शुक्रिया।"

"चाय पियोगे ?"

"नहीं, अनीस।" नईम ने कहा, "मुझे...बिलकुल नींद नहीं आ रही थी।"

"तो नींद की दवा खा ली होती।"

"ओह नहीं अनीस, तुम नहीं समझते !" उसने कुर्सी की पुश्त पर सिर रखकर आँखें बन्द कर लीं। कई पल तक वह उसी तरह पड़ा तेज़-तेज़ साँस लेता रहा, फिर साँस हलका होता-होता बिलकुल ग़ायब हो गया। अचानक अनीस को एक अजीब बेचैनी ने घेर लिया। नईम की आँखें अन्दर धँस गई थीं और उसके माथे पर चन्द पतंगे आराम से चल-फिर रहे थे। उसके बड़े-से बेरंग और थके हुए चेहरे को देखकर अनीस को महसूस हुआ कि वह एक मरे हुए आदमी का चेहरा था। उसने उसके पुराने अन्दरूनी दुख को साफ़तौर पर उसके बेहिस चेहरे पर देखा और उसे ख़याल हुआ कि वह सदियों का तनहा, मुसीबत का मारा इनसान आज उसके घर में आकर मर गया है। वह घबराकर जल्द-जल्द फ़साद के बारे में बातें करने लगा। नईम ने आँखें खोलीं और आगे झुककर बैठ गया।

"नहीं अनीस, मैं...तकलीफ़ में हूँ। मेरी बात सुनो। मैं उस लड़की के साथ सोया और फिर उसे छोड़कर चला आया। बहुत वक़्त गुज़र गया है, वह आज भी मेरे दिल पर है, आज भी।"

"कौन ? कब ?"

"एक लड़की थी। बहुत पहले।"

"कौन-सी ऐसी बात है ?" कुछ देर के बाद अनीस ने कहा, "उम्र में कई बार इनसान को मुहब्बत हो जाती है। क्या तुम समझते हो कि चन्द मज़हबी रुसूम[1]..."

"नहीं, यह बात नहीं। मुहब्बत में सब कुछ आ जाता है—रुसूम और रिवाज और सब। मैं इन बातों में यक़ीन नहीं रखता। लेकिन मुहब्बत कहाँ थी ? मैं मुहब्बत के बग़ैर उसके साथ सो गया। हैवानियत की ख़ातिर, अपनी बदनसीबी और मुसीबतों का बदला लेने की ख़ातिर। कमज़ोर और मासूम लड़की...मैंने उसे तबाह कर दिया, मुहब्बत के बग़ैर। और उसके बाद से वह मेरे दिल पर है। मैं किसी भी औरत से मुहब्बत नहीं कर सका, अपनी बीवी से भी नहीं। इतनी मुद्दत हुई मैं कभी दिल में अम्न[2] लेकर उसके साथ नहीं सो सका। यह सब उसी की वजह से है। वह हमेशा मेरे दिल पर सवार रही...और मेरे दिल पर वह भी सवार रहा..." नईम ने सुस्ती से आँखें उठाकर अनीस की तरफ़ देखा।

1. धार्मिक संस्कार, 2. शान्ति।

"वह शख़्स जिसे मैंने क़त्ल किया।"

"क़त्ल ?

"नहीं ! मैंने उसे कोई चोट नहीं लगाई। सिर्फ़ मैंने उसे क़त्ल कर दिया। मैदाने-जंग में वह एक बहादुर और ख़ुशक़िस्मत शख़्स था। उसने अपने बीवी-बच्चों की बातें कीं और मैंने अपनी बदक़िस्मती में ख़्वाहिश की कि वह मारा जाए। मैं बारूद ला रहा था कि मैंने उन्हें देखा...बन्दूक़ें सीधी किए उनकी सियाह लम्बी क़तार बढ़ती आ रही थी। ख़न्दक़ में से उसने पूछा, "नईम तुम ज़ख़्मी हो ?" मैंने कोई जवाब न दिया। वह दिलेर आदमी था। मुझे बचाने के लिए बाहर निकल आया और उन्होंने उसे छलनी कर दिया। मैं वहाँ से भाग आया।" वह देर तक रुका रहा, "लेकिन उसका ढलकी हुई मूँछोंवाला ज़र्द चेहरा चाँद की रौशनी में अभी तक वहीं पड़ा है। वह कभी मेरे सामने से नहीं हटा। कभी नहीं। उसके बाद एक मुद्दत गुज़र गई है। मैं किसी शख़्स से क़ुदरती तअल्लुक़ात क़ायम नहीं कर सका। कोई दोस्त नहीं बना सका। मैं हमेशा लोगों की मौजूदगी में बेचैनी महसूस करता रहा। कभी किसी पर भरोसा नहीं कर सका। बताओ अनीस, मैं कब तक ज़िन्दगी के जराइम[1] को साथ लिए-लिए फिरता रहूँगा। या मैं सिर्फ़ तुम्हारे सामने इनका एतिराफ़[2] करके छुटकारा पा सकता हूँ ? बताओ..."

अनीस ख़ामोश बैठा उसे देखता रहा। पहली दफ़ा वह उस शख़्स के लिए गहरी हमदर्दी और दुख महसूस कर रहा था। शायद पहली बार उस पर इस बात का पता चला कि यह शख़्स, जिसे वह इतने अरसे तक अहमक़ समझता रहा था, आख़िर इतना अहमक़ न था कि वह बहुत कुछ जानता था मगर सिर्फ़ सज़ा भुगत रहा था, कि उसमें इतना ज़मीर[3], इतनी ज़हानत[4] मौजूद थी कि एक तवील अरसे तक बे-ज़ुबानी और मज़लूमियत[5] के साथ एक मुसलसल मौत की अज़ीयत[6] बरदाश्त कर रहा है।

"मैं अपने ज़मीर के सितम उठाता रहा हूँ..." वह कह रहा था, "मैं इसे ख़त्म नहीं कर सका। मैं क्या कर सकता हूँ ? तुम क़ाबिले-रश्क[7] हो, तुमने उसे ख़त्म कर दिया है। मगर कैसे ? कैसे ? ख़ुदा के वास्ते, बताओ..."

"पछतावे...हमारे सबसे ला-हासिल जज़्बे[8] हैं।" अनीसुर्रहमान ने कहा लेकिन यह कहते हुए उसने अपने आपको बेहद कमीना और अहमक़ महसूस किया।

"और आज मैंने अली को भी देखा है," नईम बोला, "मेरा भाई जिसे मैंने घर से निकाल दिया था। वह यहीं पर है। वह मेरा ख़ून है पर मैं नहीं जानता कि कहाँ पर है ? और मैंने एक दफ़ा एक दोस्त से बातें की थीं जो मर चुका था। क्या देखते हो, यह सच है। मैंने साफ़तौर पर, जैसे तुम मेरे सामने बैठे हो, देखा कि वह शख़्स मर चुका है और वह मेरा दोस्त था और मुझसे बातें कर रहा था। उसके थोड़े अरसे बाद किसी ने मुझे बताया कि वह मैदाने-जंग में लड़ता हुआ मारा गया। लेकिन मौत तो एक ही होती है और मैंने उसे देखा है। मुझे ख़याल होता है कि उसकी मौत का ज़िम्मेदार मैं हूँ।"

"ख़याल होता है, ख़याल होता है..." अनीस ख़फ़ा होकर बोला, "तुम्हारी सबसे बड़ी मुसीबत यही है कि ऊट-पटाँग ख़याल दौड़ाते रहते हो। मत सोचो !"

"और आज शाम नजमी को मैंने देखा।" नईम इसी तरह देर तक बातें करता रहा। अनीस ने फिर उसे नहीं टोका, बोलने दिया। वह दुनिया में मुस्तक़िल छोटे-बड़े दुख सहता हुआ पुराना शरीफ़ इनसान था जिसके दिल पर से, सारे वुजूद पर से एक भारी बोझ आहिस्ता-आहिस्ता उठ रहा था, बोझ, जिसे वह बेज़बान, बोझ ढोनेवाले जानवर की तरह एक मुद्दत तक उठाए-उठाए फिरा था।

---

1. अपराधों, 2. स्वीकृति, 3. अन्तरात्मा, 4. प्रतिभा, 5. उत्पीड़न, 6. यातना, 7. स्पर्धा के योग्य, 8. निष्फल भावनाएँ।

आख़िरकार वह थककर चुप हो गया और कुर्सी की पुश्त पर सिर टेककर ऊँघने लगा। थोड़ी देर के बाद वह वहीं पड़ा-पड़ा सो गया। बाहर एक नया दिन निकल रहा था।

उस रोज़ कोई वजह बताए बग़ैर वह अज़रा को लेकर एक दूसरे मकान में चला गया। रौशन महल के मुलाज़िम कई रोज़ तक उसका सामान वहाँ पहुँचाते रहे।

पार्लियामेंट हाउस में अजीब गहमा-गहमी थी। हिन्दोस्तान की मुकम्मल आज़ादी के लिए आख़िरी बातचीत हो रही थी। लार्ड माउन्टबेटन अट्ठारह-अट्ठारह घंटे पार्लियामेंट में और गवर्नर जनरल हाउस में कॉन्फ्रेंस बुलाते रहते थे और मुल्क भर से सिविल नाफ़रमानी की तहरीक[1] की वहशतनाक ख़बरें आती रहती थीं। मुल्क की दोनों बड़ी पार्टियों, कांग्रेस और मुस्लिम लीग के लीडर दिल्ली में जमा थे और वायसराय माउन्टबेटन से मिलने में मसरूफ़ थे। हर तरफ़ अजीब अफ़रा-तफ़री का आलम था। मल्क के मुस्तक़्बिल के मुतअल्लिक़ हर कोई अपनी-सी पेशगोई[2] कर रहा था, लेकिन हर कोई अपने पनी जगह मुकम्मल बेयक़ीनी और बेइतिमादी[3] की हालत में था। रोज़ाना ज़िन्दगी का हर कारोबार ठप्प हो चुका था। मुल्क के बँटवारे की ख़बरें गर्म थीं और लोग एक जां-गुसिल[4] दरमियानी वक़्फ़े[5] से गुज़र रहे थे। चालीस करोड़ हिन्दोस्तानियों पर अब्तरी[6] का वह वक़्त था जो कि पहले कभी न आया था।

विज़ारते-दाख़िला[7] के पार्लियामेंटरी सेक्रेटरी के दफ़्तर में भी एक ख़ामोश हंगामा था जिसमें सब शरीक थे। असिस्टेंट सेक्रेटरी, ऑफ़िस असिस्टेंट, क्लर्क, चपरासी और तमाम छोटे-बड़े अह्लकार अनीस की सरबराही[8] में अपने काम में मसरूफ़ थे और साथ-ही-साथ कॉन्फ्रेंस रूम की तरफ़ और पार्लियामेंट की इमारत के बाहर मुज़ाहिरा[9] करनेवाली भीड़ की तरफ़ भी ध्यान था। सिर्फ़ नईम था जो बेकार फिर रहा था। दफ़्तर आते ही उसने काम में मसरूफ़ होने की कोशिश की थी लेकिन थोड़ी ही देर में उसे सख़्त नींद आने लगी और वह क़लम रखकर कुर्सी पर ही सो गया। चन्द मिनट के बाद जब वह जागा तो हैरतअंगेज़ तौर पर पुर-सुकून था और हर चीज़ अजनबी-अजनबी और ख़ुशगवार लग रही थी। वह बाहर की तरफ़ खुलनेवाली खिड़की के आगे जा खड़ा हुआ। बाहर एक निहायत चमकदार और गर्म सुबह थी और धूप चारों तरफ़ फैल चुकी थी। पार्लियामेंट की इमारत जहाँ ख़त्म होती थी, एक खुला-सा साफ़-सुथरा मैदान था जिसमें एक ख़ास तरतीब के साथ सायादार दरख़्त लगे थे। उससे परे चौड़ी सड़क थी जिस पर पुलिस का पहरा था। फिर एक लम्बी-चौड़ी रेलती-पेलती हुई भीड़ थी जो नारे लगा रही थी और पुलिस के पहरे को तोड़कर आगे बढ़ने की कोशिश कर रही थी। उनका हलका-हलका शोर तक़रीबन शहद की मक्खियों की भिनभिनाहट की तरह नईम तक पहुँच रहा था। वह आसानी से अपने आपको सँभाले खिड़की में खड़ा उस धूल के बादल को देखता रहा जो हज़ारों पाँव पटकते और कूदते हुए लोगों में से उठ-उठकर उनके सिरों पर मँडला रहा था। उस वक़्त वहाँ खड़े-खड़े नईम ने महसूस किया कि वह उनसे अलग-थलग, ऊपर कहीं, तनहा खड़ा है। उस शोर मचाती हुई भीड़ और मशीन की तरह काम करते हुए अह्लकारों से ऊपर, उस तनहा मुक़ाम पे जहाँ वह खड़ा है, फ़िज़ा ख़ामोश और ख़ूबसूरत है और रौशनी सारे में फैली हुई है और ज़िन्दगी साफ़ नीले आसमान की तरह पुर-अम्न और वसीअ[10] है। उसने आँखें बन्द करके गहरे-गहरे साँस लिए और अनीसुर्रहमान की मौजूदगी को, जो इस दौरान में आकर उसके क़रीब खड़ा हो गया था, क़तई महसूस न किया। जब उसने आँखें खोलीं तो अनीस बाहर देखता हुआ बड़बड़ा रहा था : "ग़ोल...ग़ोल...शोर मचाते हुए, उछलते-कूदते, धकेलते हुए, बेढंग और गन्दे।" एक तन्ज़िया मुस्कराहट उसके होंठों पर आई, "सुअरों के गल्ले की तरह।"

नईम बेख़याली से उसे देखता रहा। जब वह दोबारा जाकर अपने काम में मसरूफ़ हो गया

1. असहयोग आन्दोलन, 2. भविष्यवाणी, 3. अविश्वास, 4. प्राणघातक, 5. अन्तराल, 6. अस्त-व्यस्तता, 7. गृह मन्त्रालय, 8. नेतृत्व, 9. प्रदर्शन, 10. विशाल।

तो नईम बरामदों में टहलता हुआ कॉन्फ्रेंस रूम की तरफ़ निकल आया। उस वक़्त वे सब उसके सामने से गुज़रकर अन्दर दाख़िल हुए : नेहरू, राजगोपाल आचार्य, पटेल, कृपलानी, जिनाह, लियाक़त, बलदेव सिंह, एक-एक करके सब। फिर दरवाज़े बन्द कर दिए गए। वह टहलता हुआ वापस खिड़की में आ खड़ा हुआ। फिर वह आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगा।

दूर भीड़ में उसे दोबारा वह गुमशुदा, अज़ीज़ चेहरा नज़र आया।

"अली ! अली !!" गर्म धात की तरह पिघलकर उसने दुहराया और आप से आप उसका तन्दुरुस्त बाज़ू उस तरफ़ उठ गया। वह पसीने और धूल में अटा हुआ बाज़ू बुलन्द करके उछलता हुआ सियाह महबूब जिस्म भीड़ में खो चुका था। नईम का बाज़ू आप से आप नीचे गिर गया और हैरान-परेशान निगाहें हज़ारों इनसानी सिरों और बाज़ुओं के ऊपर भटकने लगीं। अब ?

अब उसके सामने अली न था, भीड़ भी न थी। उसके सामने उसकी गुमशुदा जवानी थी, उसकी सारी गुज़श्ता जद्दोजेहद[1] थी, उसकी ज़िन्दगी थी। वे तमाम इरादे, उमंगें, वलवले, सारी जद्दोजेहद महज़ इस दिन के लिए की गई थी। उसने सोचा, "कि आख़िरकार हम भुला दिए जाएँ, कि एक लम्बी और तकलीफ़देह ज़िन्दगी बसर करने के बाद बूढ़े और सिर्फ़ बूढ़े होने के लिए इस क़दर अकेले रह जाएँ ? यह क्या है ? मैं यहाँ क्या कर रहा हूँ ? सारी ज़िन्दगी, सारे दुख के मानी तलाश करता हुआ मैं कहाँ आ पहुँचा हूँ ? महज़ यहाँ।"...उस वक़्त उस जोश से चिल्लाती हुई ज़िद्दी और गुस्ताख़ और धूल में अटी भीड़ को देखकर वज़नी और कुन्द[2] एहसास का एक रेला आया और जैसे समन्दर की तह में बैठा हुआ पत्थर गहरे तूफ़ान में एकदम उठ आता है, नईम के दिल में भारी और कुन्द दर्द पैदा हुआ—बिछड़ जाने का, पीछे रह जाने का, भटक जाने का, बर्बाद हो जाने का। चन्द मिनट के लिए वह बिलकुल ख़ाली-उज़्ज़ेहन हो गया।

फिर उस ख़ला में से उसका मौजूदा दुख उभरा। पीछे मुड़कर देखे बग़ैर उसने सोचा और साफ़तौर पर देखा कि अनीस अपनी तमामतर हैवानी क़ुव्वत के साथ उठ रहा है, बैठ रहा है, मुड़ रहा है, काम में मसरूफ़ है और बातें कर रहा है, फ़ाइलों के ढेर में गुम है और उन्हें पढ़ रहा है और उठा-उठाकर प्रिंसिपल सेक्रेटरी के दफ़्तर के लिए जा रहा है और खिड़की से बाहर झाँक रहा है और सारी दुनिया से नफ़रत कर रहा है। दूसरे तमाम लोगों को और तमाम वाक़िआत[3] को अपने तन्ज़[4], अपनी दुनियादारी और अपनी होशियारी में ग़र्क़ कर रहा है। एक बेहद बा-ज़मीर और हँसमुख और दाना[5] मशीन है जो अपने ज़ोर पर चले जा रही है। एक हैवान है, जो महज़ आदतन[6] ज़िन्दा है, काम कर रहा है और यह शख़्स...उसने सोचा, यह शख़्स इतना कुछ जानता है, सब कुछ जानता है, इसके बावजूद...अचानक उस सियाह और सफ़ेद ख़ला[7] में उसे एक ख़ौफ़नाक, ठोस हक़ीक़त ज़ाहिर हुई कि यह शख़्स ख़ुदग़र्ज़ी, ज़ेहनी और बेईमानी और इनसानी कमज़ोरी की एक अज़ीम अलामत[8] है।

वह मुड़ा और दीवार के साथ पुश्त लगाकर खड़ा हो गया। अन्दर के सारे मंज़र को बज़ाहिर काहिली के साथ देखता हुआ वह धीरे-धीरे, लेकिन हैरतअंगेज़ तेज़ी और सफ़ाई के साथ, आख़िरकार अक़्ल के उस अज़ीम चंगुल में से निकल आया जिसमें एक लम्बे अरसे से गिरिफ़्तार था। उसने आहिस्ता से झुककर अपनी छड़ी और टोपी उठाई और चल दिया।

"कहाँ जा रहे हो ?" अनीसुर्रहमान उठ खड़ा हुआ।

"बाहर।"

"लेकिन कॉन्फ्रेंस जारी है...और मुश्तइल हुजूम[9]..."

"यह सुबह देख रहे हो," नईम ने खिड़की से बाहर देखते हुए कहा, "एक दफ़ा किसी ने, पता नहीं कौन था, मुझसे कहा था कि ख़ुदावन्द तआला की दुनिया पर हर सुबह नई दिलकशी

1. पिछले संघर्ष, 2. भोथरा, 3. घटनाओं, 4. व्यंग्य, 5. बुद्धिमान, 6. स्वभाव से, 7. शून्य, 8. महान प्रतीक, 9. उत्तेजित भीड़।

और आज़ादी लेकर आती है।" उसने सीधा अनीस के चेहरे पर देखा। "ख़ुदा हाफ़िज़ !"

पार्लियामेंट की इमारत की बाहरी सीढ़ियों पर खड़े होकर उसने आज़ादी और ख़ुशी का लम्बा साँस लिया।

फिर वह मुज़ाहिरीन[1] की भीड़ में घुस गया। उसे हर तरफ़ से धक्के पड़ रहे थे और काले, गन्दे बदनों से पसीने की तेज़ बू आ रही थी। वह मज़बूत क़दमों से चलता गया। काफ़ी देर के बाद वह भीड़ के दूसरे किनारे पर निकल आया।

"इन्क़िलाब ज़िन्दाबाद..." कई हज़ार लोग चिल्लाए। वह मुड़कर खड़ा हो गया। मुख़्तलिफ़ क़िस्म के नारों का शोर उसके कानों में आ रहा था : "इन्क़िलाब ज़िन्दाबाद...अखंड हिन्दोस्तान ज़िन्दाबाद...हुकूमते-बरतानिया मुर्दाबाद...पाकिस्तान ज़िन्दाबाद...सिविल-नाफ़रमानी...आज़ादी... आज़ादी..."

उसने अपनी टोपी उतारी। उसे छड़ी की नोक पर चढ़ाकर ऊँचा किया और पूरी क़ुव्वत से चीख़ा—"आज़ादी...ज़िन्दाबाद।"

उसकी आवाज़ एक छोटे-से दायरे में घुटकर रह गई। चन्द लोगों ने मुड़कर उसकी तरफ़ देखा लेकिन वे भी उसकी आज़ादी के मानी से बेख़बर रहे।

आप से आप मुस्कराता हुआ वह मुख़्तलिफ़ सड़कों पर चलता रहा। फिर एक जगह दूर से रौशन महल की इमारत नज़र पड़ने पर रुक गया।

"नजमी, आज मैंने रिहाई पा ली है, उस चीज़ से जिसने मुझे तुम्हारा घर छोड़ने पर मजबूर किया था। तुम्हें पता चलता तो ज़रूर ख़ुश होतीं। तुम मेरी बेटी हो।" उसने धीरे से कहा। फिर अपने घर की तरफ़ मुड़ गया।

चन्द रोज़ के बाद फ़सादात[2] ज़ोर पकड़ गए और लोग शहर छोड़ने लगे। रेलगाड़ियाँ कम पड़ गईं तो जान बचाकर भागनेवालों के क़ाफ़िलों के क़ाफ़िले पैदल चल पड़े। मुल्क के तमाम हिस्सों से फ़सादात और लोगों के भागने की ख़बरें मिल रही थीं, हालाँकि अभी तक ऐसी बातचीत का कोई आख़िरी फ़ैसला न हो सका था लेकिन मुल्क के बँटवारे के मुतअल्लिक़ एक आम यक़ीन फैल रहा था। वह जिसे अब तक मुल्क की आम आबादी ने महज़ ख़याल-आराई[3] समझ रखा था, हक़ीक़त बनती हुई नज़र आई तो लोग अचानक ख़ाली-उज़्ज़ेहन हो गए। फ़सादात की हैवानियत सिर पर सवार हुई तो बिलकुल बौखला गए और घर-बार छोड़-छाड़...मंज़िल का तअय्युन[4] किए बग़ैर भाग उठे।

रौशन महल के बड़े हॉल में कुनबे के सभी लोग जमा थे, सिवाय नईम के। अज़रा जो अभी-अभी आई थी, बज़ाहिर सुकून के साथ सोफ़े पर बैठी थी। उसके साथ सहमी हुई नजमी सीधी बैठी थी। आगे दो कुर्सियों पर परवेज़ की बीवी और लड़का आमने-सामने थे। दूसरे बड़े सोफ़े में रौशन आग़ा और उनकी बीवी धँसे हुए थे। सिर्फ़ परवेज़ हाथ पुश्त पर बाँधे, सिर झुकाए, कमरे में चक्कर लगा रहा था। कमरे की फ़िज़ा पर अजब घुटन और उदासी छाई हुई थी। बाहर बारिश हो रही थी।

परवेज़ दो घंटे से लगातार बोल-बोलकर ख़ामोश हो चुका था। सुबह से वह रौशन आग़ा को सबके साथ पाकिस्तान जाने पर मजबूर कर रहा था। उसने दिल्ली से लाहौर जानेवाले हवाई जहाज़ पर सबकी सीटें बुक करा ली थीं और सामान, रौशन आग़ा को ख़बर किए बग़ैर, बाँधा जा चुका था।

"यह मेरा घर है। इसकी बुनियाद मेरे बुज़ुर्गों ने रखी थी और यहीं हम सब पैदा हुए। कोई क्या कहेगा ?" वह सारा वक़्त सिर्फ़ यही कहते रहे और परवेज़ के और दूसरे घरवालों की तमाम

---

1. प्रदर्शनकारियों, 3. फ़साद का बहुवचन, दंगे, 3. कल्पना, 4. निश्चय।

दलीलें बेकार साबित हुईं।

अब सब बेकार था। कभी-कभी परवेज़ ना-उम्मीदी के आलम में चिल्ला उठता, "रौशनपुर... रौशनपुर, यहाँ बैठकर आप कहते हैं। आपका ख़याल है कि रौशनपुर के लोग अभी तक आपके वफ़ादार हैं ? आज आप रौशनपुर में दाख़िल नहीं हो सकते। उन्होंने मुंशी को और हमारे सब कारिन्दों को क़त्ल कर दिया है। आज हमें वहाँ कोई नहीं जानता।"

"पागलपन की बातें मत करो," वे जवाब देते।

आख़िर परवेज़ जेबों में हाथ डालकर, टाँगें फैलाकर उनके दरमियान आ खड़ा हुआ, "तो फिर हम सब जा रहे हैं।" उसने धीमे, क़तई लहजे में कहा।

रौशन आग़ा ने अपनी बीवी की तरफ़ देखा जो नज़रें चुराए ख़ामोशी से बैठी रही। फिर उन्होंने सवालिया नज़रों से अज़रा को देखा।

"नईम ने उम्र भर भला किसी की बात मानी है ?" परवेज़ ग़ुस्से से बोला, "अज़रा हमारे साथ चल रही है। वह जाए न जाए !"

रौशन आग़ा ने दोबारा अपनी बीवी को देखा। अचानक बेहद उकताकर उन्होंने कहा, "तो फिर शौक़ से जाइए !" और मुँह फेरकर बैठ गए। परवेज़ थोड़ी देर घबराहट में चक्कर लगाने के बाद टोपी और बरसाती उठाकर बग़ैर कुछ कहे दरवाज़ा खोलकर बाहर निकल गया।

तीसरे पहर के वक़्त वे सब एयरपोर्ट को रवाना हुए। रौशन आग़ा अपने कमरे के दरवाज़े पर सब रोते हुए घरवालों को अलविदा करने के लिए आए। जाते-जाते सबने उनसे वादा किया कि हालात बेहतर होने पर वापस आ जाएँगे और अगर ख़ुदा न करे, हालात ख़राब हो गए तो रौशन आग़ा यक़ीनन उनसे आ मिलेंगे।

शाम तक रौशन महल के तमाम नौकर ग़ायब हो गए। सिर्फ़ रौशन आग़ा का ख़ास मुलाज़िम 'हुसैन' वफ़ादारी से उनके बन्द दरवाज़े के साथ लगकर बैठा रहा। रात से पहले-पहले रौशन महल को आग लगा दी गई। बारिश रुक गई थी और बलवाइयों के तीन गिरोह जाने कहाँ से आ गए और निहायत ख़ामोशी से उस दो मंज़िला इमारत का पूरबी हिस्सा जलने लगा। नईम और अज़रा के जाने के बाद यह हिस्सा ख़ाली पड़ा था। रौशन आग़ा और हुसैन पिछले दरवाज़ों से जान बचाकर भागे। जाते-जाते उन्होंने बलवाइयों की झलक देखी। वे लम्बे-तड़ंगे ग़ैर-मुस्लिम किसान और छोटी ज़ातों के काले-काले लोग थे जो उनका सामान निकालकर लॉन में जमा कर रहे थे और उसे आग लगाकर भूतनों की तरह शोर मचा रहे थे।

कई एक कोठियाँ जल रही थीं। पुराने, बड़े-बड़े और जान-पहचाने घर, जिनमें उम्र भर आना-जाना रहा था और उनके बासी, पुराने वक़्तों के नजीबुत्तरफ़ैन[1] तअल्लुक़ेदार और सरकारी अफ़सर, जो ऐसे अच्छे दोस्त थे। सड़क पर जाने के बजाय रौशन आग़ा और हुसैन मकानों के पीछे-पीछे खेतों और ग़ैर-आबाद ज़मीनों में से भागते हुए गुज़र रहे थे। रात पड़ चुकी थी। गढ़ों में बारिश का पानी रुका हुआ था। वे दोनों अँधेरे में तेज़-तेज़ चलते हुए एकदम फिसलकर किसी गढ़े में गिर पड़ते। हुसैन अपने आक़ा को कंमर से पकड़कर बाहर निकालता और वह अपने ख़ास अन्दाज़ में कोसते हुए फिर भागने लगते। दोनों सिर से पाँव तक कीचड़ में लथपथ थे। एक जगह पर थककर रौशन आग़ा रुक गए और हाँफने लगे। दाईं तरफ़ एक छोटी-सी कोठी थी जिसमें रौशनियाँ जल रही थीं और पर्दे सुकून के साथ फड़फड़ा रहे थे।

"हुसैन !" रौशन आग़ा ने उदासी से पूछा, "तुम कभी ऐसी रातों में बाहर से गुज़रे हो, जबकि अन्दर लोग अपने पर्दों के पीछे इत्मीनान से बैठे हुए हो।"

"हाँ, सरकार।"

---

1. माता और पिता दोनों ओर से कुलीन।

"बेशक-बेशक। पर कैसा अजीब लगता है।"

वे फिर चल पड़े। हुसैन आगे निकलते हुए बोला, "मुझे आगे जाने दें हुज़ूर। गढ़ों का पता चलता रहेगा। आप बच जाएँगे।"

लेकिन अँधेरे और जल्दी की वजह से वे एक-दूसरे के दरमियान ज़्यादा फ़ासिला न दे सके और जब हुसैन अँधेरे में हाथ फैलाकर किसी पानी से भरे हुए गढ़े में गिरता तो इससे पहले कि उसके मुँह से आवाज़ निकलती, रौशन आग़ा उसी अन्दाज़ में अपने आपको सँभालने के लिए हवा में हाथ चलाते हुए धड़ाम से उसके ऊपर गिर पड़ते। उन्हें अजीब-सा एहसास हुआ।

आख़िर ठोकरें खाते हुए वे हवाई अड्डे को जानेवाली सड़क पर निकल आए। सड़क पक्की थी और ज़रा फ़ासिले पर एक छोटा-सा पुल था जिसके नीचे बरसाती नाला शोर मचाता हुआ बह रहा था। उससे परे एयरपोर्ट की इमारत की रौशनियाँ जल रही थीं। रौशन आग़ा निढाल होकर पुल पर बैठ गए। बारिश फिर शुरू हो गई थी। वह वहीं पर बैठे रहे और बारिश उनके जिस्मों से गढ़ों की कीचड़ धोती रही।

"हुसैन...हम इतने अच्छे दोस्त हो सकते थे।" अचानक रौशन आग़ा ने कहा।

"ऐं ? ही ही ही...मैं आपका ख़ादिम सरकार..."

"यह सब बेकार है," उन्होंने हाथ की हलकी-सी हरकत से कहा, "कोई कुछ भी नहीं है। आज जहाँ पर तुम हो वहीं पर मैं...तुमने देखा ? यह ज़िन्दगी की आख़िरी सतह है–आख़िरी और यक़ीनी..."

फिर उनकी नज़रें अँधेरे में चमकती हुई कलाई की घड़ी पर पड़ी। नौ बजे थे। जहाज़ छूटने में अभी दो घंटे हैं, उन्होंने सोचा, वे कुछ देर अभी और सुस्ता सकते हैं और ज़िन्दगी के इस मज़ाक़ पर ग़ौर कर सकते हैं और यह बारिश कितनी सुकूनबख़्श है।

45

जब वे दिल्ली से चले, तो पचास मर्दों, औरतों, बच्चों और चन्द बैलगाड़ियों का छोटा-सा साफ़-सुथरा क़ाफ़िला था। तीन रोज़ के सफ़र के बाद वह क़ाफ़िला डेढ़ हज़ार इनसानों और इतने ही जानवरों के एक लम्बे-चौड़े जुलूस की शक्ल इख़्तियार कर चुका था और अभी वे अम्बाले से दस मील दूर थे। उस जुलूस में किसी तजवीज़ या तरतीब का लिहाज़ न रखा गया था। अगर ढंग से चलाया जाता तो वह दो फ़रलाँग मुरब्बा[1] में आसानी से समा सकता था। हालत यह थी कि जो लोग दरमियान में चल रहे थे उन्हें दूर-दूर तक क़ाफ़िले के किसी सिरे का पता नहीं था। अगर हवाई जहाज़ पर चढ़कर देखा जाता तो एक बड़ा-सा कनखजूरा, हज़ारों छोटी-बड़ी टाँगोंवाला, ज़मीन पर चलता हुआ दिखाई देता।

वे पचास, जो शुरू में साथ चले थे, अभी तक इकट्ठे थे। वे क़ाफ़िले के बिलकुल बीच में चल रहे थे और यही एक तरतीब थी जो क़ायम रह सकी थी, यानी क़ाफ़िले का हज्म[2], उनको मर्कज़[3] क़रार देकर, चारों तरफ़ बढ़ना शुरू हुआ था और एक-सा बढ़ता चला गया था जैसे कनखजूरे का बच्चा तेज़ी के साथ जवान हो जाए या साहिली समन्दरों पर जब कोई कछुआ मरकर तैरने लगे तो जैसे झाग उसके चारों तरफ़ इकट्ठा होना शुरू हो जाए। हालाँकि उनकी दोस्ती कुछ ही दिन से थी फिर भी उनमें एक अजीब अनजानी क़िस्म की दोस्ती का एहसास पैदा हो चला था जैसे चन्द नावाक़िफ़ टूरिस्ट किसी शहर में जा निकलें और वहाँ बग़ावत शुरू हो जाए। फिर दूसरों के मुक़ाबले में उन्हें एहसासे-बरतरी[4] कुछ यूँ भी था कि एक तो वे गिनती में कम और अच्छे लिबास

1. वर्ग, 2. मोटाई, 3. केन्द्र, 4. उच्च भावना।

में थे, दूसरे उनकी आपस की जान-पहचान की मुद्दत दूसरों के मुक़ाबले कई घंटे ज़्यादा थी। इस लिहाज़ से यह जमाअत उस बेवतन क़ाफ़िले की गोया अरिस्टोक्रेसी थी। दिल्ली पुलिस के चन्द सिपाही जो उनके साथ हुए थे, ज़्यादातर उनके साथ ही गप्पें हाँका करते थे। यह बात भी उन्हें दूसरों से अलग करती थी, हालाँकि उनकी ज़्यादातर बातें इसी क़िस्म की होतीं जैसे, कि नए आनेवालों की फ़ौज गन्दी और बदबूदार थी और कि वे अपने साथ घोड़ों और बैलों के अलावा गधे, ख़च्चर, कुत्ते, बिल्लियाँ, और मुर्ग़ियाँ तक ले आए थे। इस बात से पचासों आदमियों के सिर शर्म से झुक जाते, जैसे कि इसकी ज़िम्मेदारी उन ही पर आती थी।

जिन्होंने कभी थके-माँदे, बेघर और डरे हुए लोगों के दरमियान सफ़र किया है, वे जानते हैं कि ऐसे क़ाफ़िलों में सबसे बड़ी बीमारी अफ़वाहों की होती है। एक से एक बे-बुनियाद अफ़वाह मिनटों में क़ाफ़िले के एक सिरे से दूसरे तक फैलती जा रही थी और नई से नई फैलती थी, यानी कि किसी अफ़वाह की उम्र चन्द घंटे से ज़्यादा की न होती थी। लोग इतने ख़ाली-उज़्ज़ेहन हो चुके थे कि महज़ चलते जाने और अफ़वाहें फैलाने के सिवा लगता था कि उनको कोई काम ही न था। यह नहीं कि वे जान-बूझकर अफ़वाहें फैलाते थे या यह कि उनके दरमियान कोई कुनबा अफ़वाहें फैलाने के माहिरों का मौजूद था, बल्कि यूँ होता कि बातचीत के दौरान किसी के मुँह से निकला हुआ कोई लफ़्ज़ किसी दूसरे के सिर पर सारे वक़्तों की थकान, भूक-प्यास और डर बनकर सवार हो जाता और क़ाफ़िले की तमामतर बे-तरतीबी के बावजूद बिजली की तरह एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक फैल जाता। ज़्यादा अफ़वाहें दो क़िस्म की थीं और दोनों इन्तिहाई मुतज़ाद[1] क़िस्म की थीं। या तो वे इन्तिहाई दहशतपसन्द[2] थीं, जैसे यह कि अगले पड़ाव पर क़ाफ़िले पर हमला होगा या इन्तिहाई पुर-उम्मीद कि अगले शहर में हुकूमत ने उनके लिए नए लिबास और ताज़ा खाना मुहैया करने का इन्तिज़ाम कर रखा था, वग़ैरह-वग़ैरह ! यही दो क़िस्म की अफ़वाहें बार-बार नए-नए रूप में लहरों की तरह आ रही थीं और किसी के पास इतनी फ़ुरसत न थी कि थोड़ी देर के लिए रुककर इस शदीद मज़्हकाख़ेज़ सूरते-हाल[3] को महसूस कर सकता। लोग अफ़वाहों में बातें करते। आम रोज़मर्रा की कोई बात न करता। ताज़ातरीन ख़बर यह थी कि अम्बाले के स्टेशन पर उनके लिए एक ख़ाली रेलगाड़ी तैयार खड़ी थी जिसके साथ एक बहुत बड़ा बावर्चीख़ाना लगा हुआ था और काफ़ी पुलिस उनकी हिफ़ाज़त के लिए मौजूद थी।

उन पचास में नईम भी था। उसने तीन रोज़ से किसी से बात न की थी। उसकी बढ़ी हुई दाढ़ीवाला चेहरा गन्दा और लिबास गन्दा हो चुका था। एक मौक़े पर रात के अँधेरे में जब क़ाफ़िले में बिला-वजह भगदड़ मची तो उसका एक जूता गुम हो गया था, दूसरा उसने ख़ुद उतारकर फेंक दिया। उसकी जेबें ख़ाली थीं और कोई सामान साथ न था। अपने आप में मगन चलता हुआ कभी-कभी वह ख़ुद-ब-ख़ुद मुस्कराने लगता, फिर गम्भीर हो जाता, फिर परेशान होकर इधर-उधर देखता और चलता जाता। उसने एक दफ़ा भी यह याद करने की कोशिश न की थी कि अज़रा से उसकी क्या बातें हुईं, किन हालात में वह उससे जुदा हुआ और क्योंकर घर के दरवाज़े खुले छोड़कर बाहर निकल आया और इस क़ाफ़िले में शरीक हुआ था। सब कुछ आप से आप होता चला आया था। कभी-कभार उसे सिर्फ़ इतना महसूस होता कि वह एक अनदेखी, अनजानी मंज़िल की तरफ़ बढ़ता चला जा रहा था जहाँ पहुँचने से पहले...या जहाँ पहुँचने पर, या पहुँचने के बाद, एक बहुत बड़ी क़ुव्वत, ख़ूबसूरत और जानदार और लाज़वाल[4] उसमें पैदा होगी, पता नहीं कैसी और क्योंकर, लेकिन उसके नतीजे के तौर पर वह उड़ने लगेगा या हवा में तहलील[5] हो जाएगा या ज़मीन के अन्दर चला जाएगा या जाने क्या ? पर कुछ-न-कुछ ज़रूर ऐसा होगा जो ज़बरदस्त होगा। उस अज़ीम क़ुव्वत की हलकी-हलकी लहरें वह अभी से अपने अन्दर फूटती हुई महसूस कर रहा था

1. एक दूसरे के विरुद्ध, 2. आतंक फैलानेवाली, 3. हास्यास्पद स्थिति, 4. अमर, 5. विलीन।

और उस मस्ती में उन सबके साथ चल रहा था, भाग रहा था, रुक रहा था और खा रहा था। अपने आस-पास से उसकी बेख़बरी और लापरवाही और उसकी कंगाली और अजीबोग़रीब शक्ल देखकर चन्द औरतें, जो ऐसे मौक़ों पर ख़ुसूसन तवहूहुमपरस्त[1] हो जाती हैं, मज्ज़ूब[2] समझकर उसकी देखभाल कर रही थीं। वे कुछ-न-कुछ खाने को उसे देती रहतीं और मुस्तक़्बिल के मुतअल्लिक़ बेसरो-पा[3] सवाल करती जातीं, जिनका जवाब दिए बग़ैर और शुक्रिया अदा किए बग़ैर वह उनसे ख़ुराक क़बूल करता और भागता जा रहा था। औरतें ख़ामोशी को मानी-ख़ेज़[4] समझकर और भी मरऊब हो गई थीं और हर वक़्त उस पर निगाह रखने लगी थीं। मर्दों में से ज़्यादातर ने उसे सिर्फ़ पागल समझकर नज़रअन्दाज़ कर दिया। अम्बाला पहुँचने से पहले-पहले उन्हें तूफ़ानी बारिश ने आ लिया।

बारिश की तेज़ बौछार सहते हुए वे लगातार पाँच घंटे तक अम्बाला स्टेशन के प्लेटफ़ॉर्म पर और बाहर सड़क पर खड़े रहे। उस दौरान में दो गाड़ियाँ दिल्ली की जानिब से आईं और रुके बग़ैर सीटियाँ बजाती हुई गुज़र गईं। उनकी नंगी ढलवान छतों पर भी उतने ही लोग बैठे थे जितने कि उनके अन्दर, और तेज़ हवा में उड़ने और गीली छत पर से फिसलने से अपने आपको बचाने के लिए अजीबोग़रीब तरीक़े से एक दूसरे से चिमटे हुए बैठे थे। नईम को याद आया कि जब वह बचपन में सफ़र किया करता था तो शैड में खड़ी या पानी लेती हुई किसी ख़ाली गाड़ी की छत पर नीली वर्दीवाले आदमी को ख़तरनाक अन्दाज़ में चलते तअज्जुब से देखा करता था और उसे सर्कस के करतब सीखा हुआ कोई आदमी समझा करता था। आज वह हज़ारों सीधे-सादे लोगों को करतब दिखाते हुए देख रहा था...''और ऐसे ख़राब मौसम में...'' उसने अफ़सोस के साथ सोचा।

आख़िर जब स्टेशन के अमले के लोग उन्हें बाहर निकालने की कोशिश में नाकाम होकर अन्दर जा चुके थे जो तूफ़ानी बारिश और ख़ाली, एक-सी लाइनों को देखते-देखते अचानक मायूस होकर वे प्लेटफ़ॉर्म छोड़ने लगे। बाहर निकलते हुए, जैसा कि मामूल हो चुका है, किसी अनजानी वजह से उनमें भगदड़ मच गई। उस भागदौड़ में अचानक नईम और अली आमने-सामने आ गए।

''तुमने कहा, 'निकल जाओ।' और मैं निकल गया। अपने बाप के घर में मेरे लिए जगह न थी। क्यों न थी ? सिर्फ़ इसलिए कि तुम मुझसे पन्द्रह बरस पहले पैदा हुए थे और लड़ाई में तुमने बहादुरी का तमग़ा हासिल किया था और जागीरदारों के घर ब्याह किया था और सरकार के ख़िलाफ़ जुलूस निकाले थे, सिर्फ़ इसलिए ? 'अब मैं कहाँ जाऊँ ?' मैंने सोचा, पर मैं क्या सोचता ? मुझे सख़्त भूक लगी थी। ओह यह बारिश कमबख़्त साली जब फ़सलें सूख रही होती हैं तो कहीं दिखाई नहीं देती और आज माँ की...हमें सेराब कर रही है...लो यह बोरी, इसकी टोपी बनाकर ओढ़ लो...मेरी ख़ैर है। लाओ मैं बना दूँ, तुम्हारा एक हाथ तो काम से गया। गीली है पर कुछ-न-कुछ बचाव तो करेगी। मैं सैकड़ों बार परदेस में भूका सोया हूँ लेकिन उस रात की भूक, और अपने घर पर परदेस का वह एहसास मुझे आज तक याद है। मुझे याद है कि उस दिन बड़ी माँ ने भुनी हुई फ़ाख़्ता और गोभी का शोरबा आगे रखा था और मुझे ज़ोर की भूक लगी थी और तुमने कहा था, निकल जाओ। तुम क्या जानते हो, तुम्हें इस तरह खाने के आगे से उठाकर कभी घर से बाहर नहीं निकाला गया। तुम्हें क्या पता है, तुम तो रौशन महल में जाकर जागीरदार बन गए, हमारे ख़ुदा बन गए। काश ! ये सारे सुअर कुछ देर के लिए रुक जाएँ तो हम गाड़ी के नीचे घुसकर बारिश से तो बच सकते हैं, मगर ये तो बस भाग रहे हैं जैसे माँ की बारात में शरीक होने जा रहे हैं। आयशा तो रास्ते में ही मर जाएगी यक़ीनन, देखो कैसे बन्दरिया की तरह चारे में से मुँह निकाले देख रही है। यह इसी तरह पिछले दस बरस से चुपचाप देख रही है। न बोलती है न चालती है, बस काम किए जाती है और घुलती जाती है। बड़ी मेहनत से गाड़ी पर सायबान खड़ा किया था,

---

1. अन्धविश्वासी, 2. ब्रह्मलीन, 3. निराधार, 4. अर्थपूर्ण।

कल रात की बारिश में उड़ गया। अब पानी चारे में से रिस-रिसकर उसके जिस्म पर इकट्ठा हो रहा है। यह कभी सफ़र ख़त्म होने तक नहीं बच सकती। लेकिन सफ़र का ख़ातिमा ? हुँह तुम्हें पता है कहाँ होगा ? इन सारे बरसों जो तुम बड़े इत्मीनान के साथ अपने ससुरालवालों के पास रहते रहे, फिर तुमने वायसराय की नौकरी कर ली और बड़े आदमी बन गए, तुम्हें कभी ख़याल आया कि दुनिया में कोई और भी है जिसमें तुम्हारे बाप का ख़ून है और वह कहाँ पर है, भूका है या नहीं और उसकी बीवी और बच्चे, यह छोटी-छोटी बातें जिनका भाइयों में ख़याल रखा जाता है। और क्या तुम मेरी ज़िन्दगी तो नहीं गुज़ार सकते थे ?...थ-थ-थ। यह बारिश और हवा का ज़ोर देखो, बिलकुल तूफ़ान है। तुम हैरान हो रहे हो ? मुझे सब पता चलता रहा। मैं परदेस में रहा पर एक-एक पल की मुझे ख़बर रही कि तुम कई बरस बीमार भी रहे और रौशन महल में एक से एक बड़ा डॉक्टर आकर तुम्हारा इलाज करता रहा। फिर तुम तन्दुरुस्त हो गए और हर रोज़ मोटर में बैठकर वायसराय के दफ़्तर काम पर जाने लगे। तुम कभी रौशनपुर न गए। लेकिन मैं भी बीमार रहा और मेरी बीवी भी और हमारा इलाज करने के लिए कौन था ? जलावतनी[1] ?

''लेकिन तुम तो सदा ऐश में रहे। जब बाप जेल चला गया तो तुम चचा के साथ कलकत्ता चले गए और अंग्रेज़ी स्कूलों में पढ़ते रहे और गर्मियों में पहाड़ पर जाते रहे। अगर मैं तुम्हारी जगह पर होता तो क्या जागीरदारों की लड़की के साथ शादी न कर सकता था ? हैरानगी से क्या देखते हो ? मुझे इन सब बातों का किसी-न-किसी तरह से पता चल ही गया। पर एक बात जो मेरी समझ में नहीं आती कि अब वह सब क्या हुआ ? वे महल, और बड़े-बड़े लोग जो तुम्हारे रिश्तेदार थे, अब कहाँ गए ? उनका क्या फ़ायदा हुआ, बताओ ? अब तुम फिर हमारे साथ अकेले ठोकरें खा रहे हो। सबने तुम्हें छोड़ दिया ? थ-थ-थ...वे तुम्हें छोड़ ही देते, कभी-न-कभी, मैं जानता था। ज़रा देखो क्या हालत बना रखी है, फ़क़ीरों से बदतर, पाँव में जूता भी नहीं। तुम्हारे पाँव में ज़रूर दर्द हो रहा होगा। मेरी टाँगों में पहले दो दिन सख़्त दर्द उठा था, फिर कल रात बारिश पड़ने से सूज गई और दर्द ख़त्म हो गया। अब यूँ लगता है जैसे लकड़ियों पर चल रहा हूँ। यह देखो, छोटे कीकर के तने के बराबर मोटी हो रही हैं। माँ की...टाँगें...पर शुक्र कि दर्द तो ख़त्म हुआ, मेरी जान ले रहा था। तुम आयशा के जूते पहन लो, अभी निकाल के देता हूँ। यह लो, घबराओ नहीं रबड़ के सीधे तलेवाले जूते हैं। हम ग़रीब लोग हैं, एड़ीवाले जूते नहीं पहन सकते। और तुम्हारी बीवी...उसने भी तुम्हें छोड़ दिया...''

नईम को इस बात की हैरत न थी कि अली को उनकी सारी बातों का पता कैसे चला। इसकी उसके नज़दीक कोई अहमियत न थी। वह तो यह देख रहा था कि उसका छोटा भाई, कल का गँवार किसान लौंडा, आज एकदम खड़ा हो गया था और बदली हुई आवाज़ में, बदले हुए लहजे में, बिलकुल बदली हुई बातें कर रहा था। अपनी हैरत में उसे यह ख़याल न रहा कि वह उससे बारह बरस के बाद मिल रहा था।

अली के लहजे का ज़हरीलापन आहिस्ता-आहिस्ता ख़त्म हो गया। आख़िर नईम महज़ उसका भाई था, जो इतना अरसा भटकने के बाद इस ख़राब हालत में लौटा था और उसकी देखभाल करना उसका फ़र्ज़ था। किसानों की-सी साफ़दिली के साथ उसने सब कुछ मुआफ़ कर दिया, भुला दिया और धीमे हमदर्द और दुखी लहजे में नईम को बताने लगा : ''मैं पंजाब चला गया। लाहौर में उन दिनों हालात अच्छे नहीं थे। फिर भी मैं दो साल तक वहाँ रहा और कोई आधी दर्जन वर्कशापों में काम किया। उन दो बरसों में छह महीने जेल में काटे, जहाँ मैं रहता था वहाँ चोरी हो गई और उन्होंने शक में पकड़कर मुझे क़ैद करवा दिया। छह महीने उन्होंने मुझ पर ज़ुल्म किया। पहली बार मेरी टाँगें जेल में सूजी थीं जब मैं दो दिन तक लगातार एक ही जगह पर खड़ा रहा था। यह दूसरी

1. देसनिकाला।

बार है। पर लाहौर की लस्सी मुझे नहीं भूलती। क्या जाड़े क्या गर्मी, वहाँ पर लस्सी पीते हैं और सारा दिन उसके बाद न आपको भूक लगती है न प्यास। लेकिन मेरे पाँव में चक्कर था। आयशा को लेने आया तो फिर लाहौर न गया। जालंधर में एक सीमेंट फ़ैक्टरी थी, वहाँ नौकरी की। फिर जंग छिड़ गई। अब मैं फ़ौज में जाने के लिए सिर मारने लगा। उन दिनों पहली बार आयशा बोली और कहने लगी : 'बावले हुए हो ? मत जाओ, लड़ाई पर मत जाओ।' "फिर वह रोने लगी। उसके बाद वह ज़्यादा ही चुपचाप हो गई। कभी रोई भी नहीं। देखो कैसे चारे में से मुँह निकाले बैठी है और तकलीफ़ सह रही है, जैसे गाय ने ताज़ा-ताज़ा बच्चा दिया हो। तुम्हारा ख़याल है उसने तुम्हें पहचाना नहीं ? शर्त लगाते हो ? उसने तुम्हें सोलह आने पहचान लिया है। पर वह कभी नहीं हँसती, नहीं शरमाती। या अल्लाह, मेरी टाँगें फट जाएँगी। अगर यह सुअर इतना शोर न मचाएँ तो तुम मेरी टाँगों पर बारिश की बूँदों की आवाज़ सुन सकते हो...ढोल की तरह बज रही हैं...लेकिन मैं जंग में हर क़ीमत पर जाना चाहता था। अगर तुम समझते हो कि तुम्हारी नक़्क़ाली में से ऐसा करना चाहता था तो ग़लत समझते हो। न ही मुझे अपनी टाँगों या बाज़ुओं से कोई बैर था या तमग़ों का लालच था। बस मैं बिलकुल उकता चुका था। उन दिनों मैं मामूली-सी बात पर क़त्ल कर सकता था। बस मेरे सिर में यह बात समा गई थी कि जंग ही एक काम है जो कि मर्द के लायक़ है। लेकिन हुआ क्या ? वे यहीं पर इधर-उधर परेड करवाते रहे और जंग का ज़माना निकलता गया। जब कलकत्ते में रहते हुए हमें तीन महीने गुज़र गए और बर्मा के महाज़ पर जाने का ज़िक्र सुनते-सुनते कान पक गए तो एक दिन मैंने हवालदार मेजर से कहा, 'जिस रोज़ तू पैदा हुआ उसी दिन तेरी माँ का दूध फट गया और तू बुज़दिल हो गया था।' रात भर मैं क्वार्टर-गार्ड में रहा। सुबह कर्नल के सामने पेशी हुई। मैं पागल हो रहा था, उसको भी सुनाईं, कोर्ट मार्शल हुआ और मैं क़ैद कर दिया गया। शुक्र है गोली से बच गया...जंग ख़त्म हुई तो उन्होंने मुझे छोड़ दिया। एक साल तक कलकत्ते में ही मज़दूरी करता रहा, फिर वहाँ से यह मुसीबत शुरू हुई। हड़तालें और जुलूस और दहशतपसन्दी[1]। तुम यक़ीन नहीं करोगे मगर यह सच है कि मैं उनमें शामिल नहीं होना चाहता था। पर जाने यह कैसे हुआ...कैसे हुआ कि मैं आहिस्ता-आहिस्ता उनका पक्का मोतबर[2] आदमी बन गया, एक क़िस्म का लीडर। आप से आप ही यह सब कुछ हो गया। मैं दिल्ली आ गया। अब बारिश थमती जा रही है। देखो उधर से बादल फट गए हैं। तुम्हें बोझ लग रहा है तो बोरी उतारकर गाड़ी में रख दो, अब इसकी ज़रूरत भी नहीं। और अगर चाहो तो जूतों के लिए आयशा का शुक्रिया अदा कर दो, ख़ुश हो जाएगी। अभी नहीं, बाद में। एक दफ़ा हड़तालियों के गिरोह के साथ चलते हुए मैंने सोचा कि इसी वजह से मैं अपने घर से, गाँव से निकाला गया और आज वही काम कर रहा हूँ। आख़िर क्या फ़र्क़ पड़ा, क्या फ़र्क़ पड़ता है, हैं, नईम ?"

अली की गाड़ी पर हाथ रखे एक लम्बे क़द का बुड्ढा, जिसका फटा हुआ लिबास और गन्दी दाढ़ी थी, चल रहा था। नईम ने कई बार उस पर नज़र डाली और हर बार उसे अजीब-सा एहसास हुआ। उस ख़राब हालत के बावजूद बुड्ढे की आँखों में गहरी ज़हानत[3], गहरी दर्दमन्दी[4] और गहरे दुख की झलक थी। अचानक वह लड़खड़ाया और गिर पड़ा।

नईम थकन के मारे बड़े-से दरख़्त की तरह झूमता हुआ उसके ऊपर जा खड़ा हुआ। अली ने उसकी आस्तीन खींची, "चलो-चलो ! पता नहीं कौन है।"

"इसे बिठा लो। यहाँ मर जाएगा।"

"वाह वाह ! अगर इसी तरह करने लगे तो...अब अगर यह चलने भी लगे तो इसे हाथ रखने की जगह न मिलेगी। देखो।"

नईम ने देखा, कुछ देर पहले जिस जगह पर बुड्ढे का हाथ था, उसे हासिल करने के लिए

1. आतंकवाद, 2. विश्वस्त, 3. प्रतिभा, 4. करुणा का भाव।

कई एक बुड्ढे और नौजवान एक दूसरे को धक्के दे रहे थे। गाड़ी के दोनों तरफ़ इसी तरह के लोगों की क़तारें थीं। भूके, अधमरे भेड़ियों की तरह लोग जो सिर झुकाए डंडों का सहारा लिए चल रहे थे।

नईम औंधे मुँह गिरे हुए बुड्ढे के ऊपर खड़ा झूलता रहा। बेबस अली ने उसकी मदद से बुड्ढे को उठाकर गाड़ी पर लादा और पीछे-पीछे चलने लगा।

46

उस रात क़ाफ़िले में पहली मौत हुई। वह एक कमज़ोर-सा नौजवान था जो निमोनिए से मरा था। उसकी बीमारी का किसी को पता न चला क्योंकि वह अकेला सफ़र कर रहा था। सुबह सवेरे गाड़ी का सहारा लेकर चलनेवालों ने गाड़ी में मरा हुआ पाया और कूदकर ऊपर चढ़ गए। चन्द एक तो बैठते ही ऊँघने लगे, दो बेहोश होकर गिर पड़े। लेकिन चूँकि गाड़ी लावारिस थी, उस पर सवार होनेवाले बढ़ते गए। जिन्हें अन्दर जगह न मिली, वे बाहर डंडों पर बैठने लगे और दोनों तरफ़ के बाँस के डंडे बोझ के नीचे टूट गए।...आख़िर बैल भी खींचते-खींचते थककर रुक गए। अब पीछे रह जाने का आम ख़ौफ़ उन लोगों के दिलों में पैदा हुआ और ख़ौफ़नाक जद्दोजेहद शुरू हुई, ताक़तवर और कमज़ोर की अज़ली[1], हैवानी रक़ाबत[2]। उस धक्कमपेल में गाड़ी के मालिक की लाश नीचे गिर पड़ी। आख़िर थोड़ी देर के बाद जब चन्द ज़ोरावरों ने गाड़ी पर क़ब्ज़ा कर लिया और बैल दोबारा चलने लगे तो वे अपने पीछे आनेवाले लोगों की तरफ़ मुतवज्जेह हुए जो बज़ाहिर उनसे मुख़ातिब[3] थे। उस क़ियामत के शोर में वे कुछ सुन तो न सके लेकिन लोगों के तश्वीशनाक[4] इशारों से उन्हें लाश की ग़ैर-मौजूदगी का एहसास हो गया। गाड़ी रुकी, दो आदमी उतरकर गए, मुर्दे को कन्धों पर उठाकर लाए और गाड़ी में लादकर रवाना हुए।

लेकिन मौत की ख़बर ज़रा-सी देर में सारे में फैल गई और एक जगह पहुँचकर सारे का सारा क़ाफ़िला एकदम रुक गया। बहुत-से लोगों ने आकर लाश को घेर लिया और उसे ठिकाने लगाने की तजवीज़ों पर ग़ौर करने लगे। अब वे लोग, जिन्होंने गाड़ी पर क़ब्ज़ा कर लिया था, चौकन्ने हुए और चालाकी के साथ उतरकर भीड़ में मिल गए। फिर उन्हीं में से दो ने ऊपर चढ़कर मरनेवाले का एक बड़ा-सा सन्दूक़ ख़ाली किया और लाश को कपड़े में लपेटकर उसमें रखा। फिर नमाज़े-जनाज़ा की तैयारियाँ होने लगीं।

नमाज़ के बाद इमाम ने बैलगाड़ी पर चढ़कर एक मुख़्तसर, लेकिन जोशीली तक़रीर के दौरान कहा, "हम यह साबित कर देंगे कि हम अपने मुर्दों की हुर्मत[5] के पासबान[6] हैं। आज हमारे इस गुमनाम भाई को, जिसका नाम भी कुछ ज़रूरतों की वजह से हमें ख़ुद ही रखना पड़ा, वह अज़ीमुश्शान[7] जनाज़ा मुयस्सर हुआ है जो दुनिया में बड़े-बड़े आदमियों को नहीं मिलता। दस हज़ार रूहें...दस हज़ार मुसलमान मर्द..."

तक़रीर के दौरान और तक़रीर के बाद तक लोग टोलियों में जनाज़े के पास से गुज़रते रहे। उनमें से हर एक हत्तल-वुसूअ[8] उस अजनबी इनसान का मुर्दा चेहरा देखने का ख़्वाहिशमन्द था जो सिर्फ़ मरकर अचानक उन सबके लिए दर्दमन्दी, ख़ुदातरसी[9] और मुस्तक़्बिल के ख़ौफ़ की अज़ीम अलामत बन गया था। चन्द उधेड़ उम्र किसान औरतें ऊँची आवाज़ में बैन करने लगीं। उन पर आज पहली बार मौत की आलमगीर[10] हैसियत का इन्किशाफ़ हुआ था और ग़ैर-शुऊरी तौर पर उन्होंने महसूस किया था कि उस एक इनसान की मौत उन सबकी मौत थी, कि मुस्तक़्बिल के

1. नित्य, 2. प्रतिस्पर्द्धा, 3. सम्बोधित, 4. चिन्ताजनक, 5. सम्मान, 6. संरक्षक, रखवाले, 7. महान्, 8. यथाशक्ति, 9. ख़ुदा का भय, 10. विश्वव्यापी।

अँधेरे की मुश्तरका मौत में वे सब शामिल थे।

आख़िर उसे क़ब्र में उतारकर कम-से-कम पाँच हज़ार लोगों ने अपने-अपने हिस्से की मिट्टी उस पर डाली और ऐसी क़ब्र बनाई कि उनमें से आज तक किसी ने इतनी बड़ी क़ब्र न देखी थी।

"ज़िन्दगी की एक अज़ीम form है यह जनाज़ा।" लम्बे बुड्ढे ने मिट्टी फेंकते हुए कहा। नईम ने ख़ामोशी से उसे देखा और अपने हिस्से की मिट्टी फेंककर आगे रवाना हो गया। मीलों तक उन्हें वह क़ब्र नज़र आती रही।

उसी रोज़ क़ाफ़िले पर पहली बार हमला हुआ। हमलावर कुल्हाड़ियों, बल्लमों, तलवारों और राइफ़लों से लैस थे। क़ाफ़िलेवाले बहुत-से मुर्दा और ज़ख़्मी छोड़कर आँधी की तरह भागे। अब वे मौत से वाक़िफ़ हो चुके थे।

"तुम क्या कह रहे थे ?" नईम ने पूछा।

"जनाज़े की बात कर रहा था कि यह ज़िन्दगी कैसी मुनज़्ज़म[1] है। हँसो मत, मैं फ़लसफ़ा नहीं बघार रहा। इस ज़िन्दगी से मुराद यह ख़ुसूसी ज़िन्दगी है, यह जिसमें क़वाइदो-ज़वाबित[2] हैं और हमसाए के साथ मुहब्बत करने के अहकाम और नमाज़ के औक़ात, रहने-सहने और मिलने-जुलने के तरीक़े, नेकी के बदले सवाब[3] और गुनाह के बदले अज़ाब[4] है। कितनी बड़ी तंज़ीम[5] है, तुमने कभी सोचा है ? मैं भी क्या पूछ रहा हूँ, हर कोई थोड़ा ही सोचता है। पर सुनो, मैंने सोचा है। वह देखो, अगली बैलगाड़ी पर एक शख़्स नमाज़ पढ़ रहा है। मैं जब भी ऐसे शख़्स को देखता हूँ तो मुझे ख़याल आता है कि अभी चन्द मिनट में यह अपने ज़मीर का सारा बोझ अल्लाह तआला के हवाले करके इत्मीनान से बैठ जाएगा। इसकी ज़िन्दगी की एक मख़सूस शक्ल, एक फ़ॉर्म है जिसके मुताबिक़ कि यह रहता है, और इसका Content है, जो कुछ कि यह करता है और उसके अच्छा और बुरा होने का इल्म रखता है। फिर उसकी इजतिमाई[6] शक्ल है। नमाज़े-जनाज़ा जिसकी अज़ीम form है और जिसके Content में तमाम इनसान शामिल हो जाते हैं। इस सारे सिलसिले में एक रख-रखाव है, साफ़-सुथरापन है, जैसे दोपहर के खाने से फ़ारिग़ होकर बावर्चीख़ाने को झाड़ा-पोंछा जाए, बर्तनों को माँझकर क़रीने से रखा जाए और फ़र्श को धो-धुलाकर खुला छोड़ दिया जाए। इसमें फ़राग़त[7] का एहसास है। मेरी भी कोई ज़िन्दगी रही है, परेशान-ख़याली, अबतरी[8], धमा-चौकड़ी, एकदम धमाचौकड़ी। form का सवाल ही पैदा नहीं होता। इस सबमें कुछ था भी तो मजबूरी, सिर्फ़ मजबूरी और लाचारी...और Content हुँह, क्या बात करते हो मियाँ ? कभी किसी चीज़ का तअय्युन[9] ही नहीं हो पाया। लेकिन अब मैं तुम्हें सबसे ख़ास बात बतानेवाला हूँ। सुनो, इसके बावजूद, इन सब बातों के बावजूद मैंने कभी ऐसे लोगों के लिए, ऐसी ज़िन्दगी के लिए रश्क और हसद महसूस नहीं किया। कभी एहसासे-कमतरी[10] मुझको नहीं हुआ। हमेशा मैंने इस निज़ाम के लिए अपने दिल में एक अजीब-सी हक़ारत महसूस की है कि हम अपने ज़मीर को ज़बरदस्ती धो-धोकर नए गुनाहों के लिए ताज़ा-दम हो बैठते हैं। तुमने देखा ही है, शिकस्त और बे-हुर्मती[11] हमें ऐन आँखों में आकर लगती है। तुमने तो देखा ही है।"

"तुम कौन हो ?"

"मैं दिल्ली यूनिवर्सिटी में तारीख़ पढ़ाता था।"

"उससे पहले ?"

"टाटा स्टील मिल में काम करता था।"

"उससे पहले ?"

---

1. व्यवस्थित, 2. अनुशासन, 3. पुण्य, 4. पापों का दंड, 5. संघटन, 6. सामूहिक, 7. मुक्ति, 8. अस्त-व्यस्तता, 9. निश्चय, 10. हीन भावना, 11. अपमान।

बुड्ढा गहरी नज़रों से नईम को देखकर हँसा, "आवारा था, खोज में था, गुमशुदा था। जो भी समझ लो।"

लेकिन नईम की आँखों के सामने साफ़तौर पर मुद्दतों पहले की एक धुएँ से भरी हुई कोठरी आ गई जिसमें एक जोशीला नौजवान बैठा ज़िला के सारे अंग्रेज़ अफ़सरान को बमों से उड़ा देने की तजवीज़ के बारे में बातें कर रहा था।

बुड्ढे ने नईम के चेहरे पर अचानक फैलती हुई पुरानी पहचान की मुस्कराहट को न देखा और फिर बोलने लगा : "उससे पहले आईडियल्ज़ थे और आवारगी थी। अगर मैं तफ़्सील से बयान करूँ तो तुम कहोगे कि वह आवारागर्दी की ज़िन्दगी थी मगर नहीं, वह सिर्फ़ आवारगी थी। यह मुझे बहुत बाद में पता चला...आईडियल...असल और सही आईडियल तो मुकम्मल नार्मल हालात में बनते हैं। ऐसे ज़ेहनों में जो पुर-शिकम[1] होते हैं, अज़ीम और बे-हवस[2] होते हैं, जिनके पास सिर्फ़ तख़य्युल[3] होता है और बलन्दी और मायूसी होती है। ऐसे इनसान जिन पर कोई दबाव नहीं होता, कोई नाकामी कोई ज़हर नहीं होता। बस ज़िन्दगी की रूह होती है जो जवान और ख़ूबसूरत और उदास होती है, जो उनको आस-पास की गिरती हुई, लाचार होती हुई दुनिया से सिर्फ़ मायूस कर देती है। आर्टिस्ट और शायर के पास अपने तजर्बे होते हैं। आईडियलिस्ट के पास बनी-नौए-इनसान[4] की सारी तारीख़, सारे तजर्बे और सारे दुख होते हैं, इसलिए वह उनसे बड़ा होता है। हम और तुम तो रोज़मर्रा का हिसाब रखने के लिए थे। हमारे पास क्या था ? ग़म और ग़ुस्सा और आईडियल्ज़ की बिगड़ी हुई शक्ल, गालियाँ और ग़ुस्सा, मुसीबतें और दबाव और नौजवानी और ख़िफ़्फ़त[5] और तंग-नज़री[6] और ज़िन्दगी का सारा ज़हर, सब कुछ था। सुनो, एक बात बीच में आ गई। आईडियल और सियासत में फ़र्क़ है। सियासत में हवस का मुक़ाम बहुत ऊँचा है। सियासतदाँ महज़ अपनी नाक के आगे से गुज़रनेवाले नफ़ा और नुक़सान से मुतअल्लिक़ होता है। उसका ज़ेहन भद्दा और तारीख़ से भी बे-बहरा[7] होता है। आईडियल जिस चीज़ की लतीफ़ और आला[8] शक्ल है, सियासत में वही चीज़ भद्दी और ख़ाम[9] बन-बनकर ज़ाहिर होती है...जिस तरह हर चीज़ आख़िर में भद्दी और ख़ाम बन जाती है। फिर भी सियासत की हर तरकीब चूँकि सोसाइटी के लिए नफ़ा की उम्मीद दिलाती है इसलिए उसका वुजूद लोगों में गर्मी और ज़िन्दगी पैदा करता है। हमारे पास न आईडियल थे न सियासत, सिर्फ़ बिगड़ी हुई ज़िन्दगियाँ थीं और ज़हरीले दिमाग़ जिसका नतीजा इस बिगड़ी हुई तारीख़ में ज़ाहिर हुआ है, यह सब..." उसने चारों तरफ़ हाथ फैलाया, "तुम तो देख ही रहे हो, यह तारीख़ की कौन-सी शक्ल है ? यह वह नस्ल है जो एक मुल्क की तारीख़ में अरसे के बाद पैदा होती रहती है, जिसका कोई घर नहीं होता, कोई ख़यालात, कोई नस्बुलऐन[10] नहीं होता, जो पैदाइश के दिन से उदास होती है और इधर से उधर सफ़र करती रहती है। हम हिन्दोस्तान की उस बदक़िस्मत नस्ल के बेटे हैं।"

थोड़ी देर के बाद जब उसका पहला जोश ख़त्म हो गया तो वह धीमे, उदास लहजे में अपने मुतअल्लिक़ बताने लगा : "मैंने यूनिवर्सिटी में तारीख़ पढ़ी। लेकिन मैं उस दुनिया में रहता था, जहाँ आप या तअल्लुक़ादार थे या कुछ भी न थे। जो लोग आला दिमाग़ थे, सरकार की मुलाज़िमत में चले जाते थे और हुकूमते-बरतानिया उन्हें इस तौर तर्बियत देती थी कि उनकी तमाम ज़हानत, तमाम अछूतापन ख़त्म हो जाता था। वे न तअल्लुक़ादार बन सकते थे न आर्टिस्ट, सिर्फ़ सरकारी अफ़सर बनकर रह जाते थे। न सरकार, न रिआया, सिर्फ़ मामूली कारिन्दे। यह अजीब मज़्हकाख़ेज़ तब्क़ा था। यह उनका ख़ातिमा था। आईडियल कहाँ से आते ? दूसरी तरफ़ हमारी दुनिया थी। उसमें मेहनत करते हुए मुज़ारे थे और छोटे-छोटे ख़ुदग़र्ज़, ख़ुशामदी और पेटू अहलकार थे। क़र्ज़ थे और

1. भर-पेट, सन्तुष्ट, 2. लोभरहित, 3. कल्पना, 4. मानवजाति, 5. लज्जा, 6. अनुदारता, 7. वंचित, 8. सूक्ष्म और उत्तम, 9. कच्ची, अपरिपक्व, 10. लक्ष्य, उद्देश्य।

सूद लेनेवाले महाजन थे और जानदारों की क़ुर्क़ियाँ थीं और उस सबके ऊपर उन ख़ुदाओं के साथ गूँगी, कुत्तों की-सी वफ़ादारी थी। यहाँ आईडियल बन ही न सकते थे। यहाँ सिर्फ़ गिरी हुई ज़िन्दगी थी और बेबस ग़ुस्सा था जैसे कुत्ते भौंकते हैं। तारीख़ की पढ़ाई से मुझे कुछ भी हासिल न होता। सिर्फ़ कनफ़्यूज़न पैदा हुआ, ख़ौफ़नाक कनफ़्यूज़न। अगर मैं सरकारी मुलाज़िमत करता तो आज तक अपनी तालीम का क़र्ज़ उतारता रहता, इसलिए मैं भाग गया, लेकिन वह नौजवानी का ज़माना था। समझते हो ? हम तुम हमउम्र हैं, एक-दूसरे को सब कुछ बता सकते हैं। तुम ज़रूर समझ जाओगे। वह ज़माना था जब इस सब कुछ के बावजूद आदमी अपने ख़यालात के साथ नौजवानी की पहली मुहब्बत करता है, जिसके ख़त्म होने का ग़म इनसान उम्र भर साथ-साथ लिए फिरता है, जिससे दिल ख़ाली हो जाते हैं और दिमाग़ नाकारा। उस वक़्त मामूली से मामूली और बेकार चीज़ों में मक़्सद नज़र आता है और इन्तिहाई बेख़याली से हम ज़िन्दगी के साथ तअल्लुक़ क़ायम करते हैं, लेकिन रफ़्ता-रफ़्ता हक़ीक़त सामने आ जाती है...?"

"फिर ?...तुम भी..."

"नहीं। मैं जानता हूँ तुम क्या कहना चाहते हो। मैं उसके बाद कारिन्दा नहीं बना, मगर मैंने वह किया जो मुझको करना चाहिए था, जो हर किसी को करना चाहिए था। मैं मेहनत करके रोज़ी कमाने लगा। यह तारीख़ का वह ज़माना है जिसमें मैं कुछ भी नहीं कर सकता, सबसे बड़ा काम जो मैं कर सकता हूँ वह ख़ामोशी और ईमानदारी के साथ रहने का है। यह सबसे क़ुदरती तरीक़ा है जो इनसान इख़्तियार कर सकता है, क्योंकि ईमानदारी और शराफ़त के साथ मुसलसल दुख सहता हुआ इनसान ही दुनिया की वाहिद हक़ीक़त है। मैंने काफ़ी आराम कर लिया है, मेरा ख़याल है अब मैं बारह घंटे तक चल सकता हूँ। तुम मेरी जगह पर बैठ जाओ। आओ, आओ ! मुझे शर्मिन्दा न करो। मैं कह रहा था, ओह...मैं बार-बार दुहरा रहा हूँ, लेकिन यही दुनिया की वाहिद हक़ीक़त है। सुन रहे हो ? तुम शायद सुन भी नहीं रहे...क्या फ़ायदा..."

उन्हें चलते हुए नौ रोज़ हो चुके थे। अब वे जालंधर के क़रीब पहुँच रहे थे और हालाँकि आधे से ज़्यादा नए लोग उसमें शामिल हो चुके थे लेकिन क़ाफ़िले के लोग हैरतअंगेज़ तौर पर घटते जा रहे थे। इसकी वजह यह थी कि ज्यूँ-ज्यूँ वे पंजाब में अन्दर आते गए, हमले बढ़ते गए। पिछले पाँच रोज़ से दिन में कई-कई बार हमले हो रहे थे और वे एक पल के लिए भी बेख़बर होकर न चल सकते थे। यह हमले मुसल्लह[1] और नीम-मुसल्लह[2] दस्तों की तरफ़ से हो रहे थे जो कि ज़्यादातर देहात में से आते। पहले-पहल तो क़ाफ़िलेवाले कुछ-न-कुछ उनका मुक़ाबला करते रहे। अब वे इस क़दर थक चुके थे कि हमलावरों के हथियारों के सामने ख़ामोशी से मर जाते या भागने लगते। हर हमले के बाद मुर्दों और ज़ख़्मियों को फलाँगते हुए, रौंदते हुए क़ाफ़िले से बिछड़ जाते और नौजवान औरतें इग़वा[3] कर ली जातीं। इस तरह से हालाँकि हर पड़ाव पर मुहाजिरीन[4] की ताज़ा जमाअत उनसे आ मिलती, मगर कम होनेवालों की तादाद हमेशा ज़्यादा होती और क़ाफ़िला घटता जाता। पिछले पचास मील से अचानक उन्हें अपने रास्ते में मुर्दा और नीम-मुर्दा इनसानी जिस्म मिलना शुरू हो गए थे जो सड़क पर और आस-पास के खेतों में बिखरे पड़े थे और पता देते थे कि उनसे आगे-आगे एक और क़ाफ़िला जा रहा था, एक भयानक, ज़ख़्मी जानवर की तरह जो ख़ून की लकीर छोड़ता हुआ आगे-आगे भाग रहा हो। हालाँकि वह उसी तेज़ी और लापरवाही के साथ उन अजनबी मुर्दा जिस्मों को फलाँगते हुए गुज़र रहे थे मगर इस ख़याल से कि उनसे आगे, उनसे पहले, कुछ और लोग, दूसरे नावाक़िफ़ लोग मौत का सामना कर रहे थे। उन्हें अजीब-से इत्मीनान का एहसास हुआ। मौत, जो मुश्तरका[5] थी और रास्ते में बिखरी हुई थी और जिसके ऊपर से हज़ारों इनसानी पाँव बज़ाहिर बेगानगी और बेनियाज़ी के साथ भागते हुए गुज़र रहे थे, आख़िरकार उसे धोका दिया

1. सशस्त्र, 2. अर्ध-सशस्त्र, 3. अपहरण, 4. शरणार्थियों, 5. साँझी।

जा सकता था, टाला जा सकता था, दूसरों के सिर थोपा जा सकता था।

इस ख़याल को यूँ भी तक़्वियत[1] मिलती कि कभी-कभी अगले क़ाफ़िले के हमलावर उन्हें बग़ैर कुछ कहे गुज़र जाने देते। वे मार-मारकर इस क़दर उकता चुके होते कि सिर्फ़ सड़क के किनारे बैठे नए क़ाफ़िले के ख़ामोश, ख़ौफ़ज़दा कूच से ही महज़ूज़[2] होते रहते। कभी-कभी वे मुर्दों और ज़ख़्मियों को एक जगह इकट्ठा करके आग लगा देते और नया क़ाफ़िला चुप साधे, भागता हुआ उनके क़रीब से गुज़र जाता। कभी-कभार उनकी ज़द से बाहर निकलकर, एकाध पुराना आदमी रुककर दूर से जलते हुए इनसानी जिस्मों का नज़्ज़ारा करता और उसके ज़ेहन में क़ाफ़िले की पहली लाश की याद ताज़ा हो जाती। ज़्यादातर लोग गए साथियों और नए हमलों की उम्मीद में अपना सफ़र जारी रखते।

नईम उस अफ़रा-तफ़री में कई बार अली से बिछड़ गया मगर अली हर दफ़ा उसे तलाश कर लेता। वह गाड़ी के ऊपर एड़ियाँ उठाकर खड़ा हो जाता और चारों तरफ़ नज़र दौड़ाता। फिर एक तरफ़ को नज़रें जमाकर गाड़ी से उतरता, हुजूम को चीरता हुआ सीधा जाता और सिर झुकाकर चलते हुए नईम को बाज़ू से पकड़कर बुरा-भला कहता हुआ वापस ले आता। "अपनी गाड़ी को मत छोड़ो, मत छोड़ो, मत छोड़ो। तीन हज़ार बार कहा है मगर तुम तो बिलकुल काम से गए। वे पकड़ लेंगे और मार देंगे और चले जाएँगे। बस फिर ?" वह कहता लेकिन नईम सारे कामों से जा चुका था। बूढ़ा प्रोफ़ेसर भी अब उससे बातें करने की नाकाम कोशिश कर-करके थक चुका था और आख़िर उसने अली से कहा था, "तुम्हारा भाई...इसके दिमाग़ पर असर है। ख़याल रखना पड़ेगा।" और अली, जो शुरू से बुड्ढे प्रोफ़ेसर की तरफ़ से लापरवाह था, यह सोचकर ख़ुश हुआ कि अब वह जब चाहे, उससे छुटकारा हासिल कर सकता था।

वह सब कुछ देखता-भालता, खाता और कभी-कभी ऊँघता हुआ चल रहा था। उसकी सूरत अपने दूसरे हमउम्रों से क़तई मुख़्तलिफ़ न थी। सबकी दाढ़ियाँ और चेहरे गन्दे, लिबास फटे हुए और पाँव सूजे हुए थे। सब नंगे पाँव थे कि सारे जूते तंग हो चुके थे। सबकी नज़रें गूँगी और आवारा थीं और उनसे लम्बे, बे-मंज़िल सफ़र की तकलीफ़ टपकती थी। सबके ख़याल में अह्म-तरीन काम चलते जाना और इकट्ठे रहना था, और वह उन सबमें घुला-मिला हुआ, खोया हुआ, सिर्फ़ एक और गुमनाम, बे-हैसियत मुसाफ़िर था। उसके सामने वक़्फ़े-वक़्फ़े पर हमले हो रहे थे, लोग मर रहे थे, जो मारे जाने से बच रहते वे थककर गिर रहे थे, सामान को आग लगाई जा रही थी और लोग ख़ुराक के लिए आपस में लड़ रहे थे। सड़क पर और सड़क के किनारे लाशों का लम्बा सिलसिला था। कोई पुलिया के पत्थर के सहारे बैठा और कोई दरख़्त के साथ खड़ा-खड़ा मर गया था। औरतों के नंगे मुर्दा जिस्म बेशर्मी से फैले हुए थे और जंगली जानवर और परिन्दे उन पर पिल रहे थे। जो ज़िन्दा थे वे मुस्तक़िल चल रहे थे और मियाँ-बीवी, बहन-भाई, और माँ और बच्चे के रिश्ते ख़त्म हो रहे थे और वह सब कुछ हो रहा था जो दुनिया की तारीख़ में ऐसे क़ाफ़िलों के साथ हमेशा होता आया है, लेकिन यह सब अह्म नहीं था, क्योंकि वह सब कुछ देखने के बावजूद ख़ामोश और लातअल्लुक़ था।

"तुम बोलते क्यों नहीं ?" आख़िर झुँझलाकर अली ने कहा, "थ-थ-थ यानी पाँच रोज़ हो गए...पूरे पाँच, और बात तक करने नहीं दी इस शख़्स ने...थ-थ-थ..."

"दिमाग़ पर असर..." प्रोफ़ेसर ने कहना चाहा।

"चुप रहो तुम, नीचे उतरो, चलो" अली ने उसकी पुश्त पर धप जमाकर गाड़ी से उतार दिया।

नईम ने तेज़ चमकती आँखों से उसकी तरफ़ देखा और चालाकी से मुस्कराया। फिर उसने आयशा पर नज़र डाली, जो गाड़ी में लेटी थी और चारे का ढेर, जिसमें अपने-आपको छुपाने के लिए उसने घर बना रखा था, ख़त्म हो चुका था। वह बहरहाल इतनी सूख चुकी थी कि किसी ने

1. शक्ति, बल, 2. आनन्दित।

उसे मारने या इग़वा करने की ज़रूरत महसूस न की थी। नईम आहिस्ता से हँसा। फिर वह तेज़-तेज़ चलकर बैलों के पास पहुँचा और उनकी पसलियों पर, जो बाहर निकली हुई थीं, हाथ फेरने लगा। थोड़ी देर बाद वह उनके गले में हाथ डालकर चलने लगा। प्रोफ़ेसर और अली गुमसुम, हैरानी के साथ उसे देखते रहे। फिर एक-दूसरे की तरफ़ देखकर मायूसी से सिर हिलाने लगे।

एक नशा था, एक बदमस्ती थी, जिसमें सब कुछ डूब चुका था, ग़र्क़ हो चुका था, जिसका मंबा[1] किसी को पता भी न था। एक बेख़ुदी, जो ज़िन्दगी की सफ़्फ़ाकी[2] के उस सारे मंज़र को बहाकर ले गई थी, पार कर गई थी, जिसने हर इनसानी और हैवानी जज़्बे को, तजर्बे को फ़तह करके पीछे छोड़ दिया था, वह कहाँ से आई थी, क्योंकर पैदा हुई थी और किधर लिए जा रही थी, इससे वह क़तई नाआश्ना था। सिर्फ़ एक ग़ुबार था, चमकदार और हल्का और बेशक्ल जैसे पतझड़ की शफ़्फ़ाफ़ रातों की कहकशाँ[3] या जाड़ों की सुबहों की धुँध जो छुई नहीं जाती, मगर कपड़ों में घुसकर सारे जिस्म को गीला कर देती है और ख़ूबसूरत और ख़ुनक होती जाती हैं। मर्द और औरतें, घोड़ा-गाड़ियाँ, बच्चे, रोज़मर्रा की मानूस शक्लें, मगर धुँध में से निकलती हुई वे अनोखी और ख़ुनक और ख़ूबसूरत होती हैं—ख़्वाब की तरह। बस ऐसा ग़ुबार था, जो शुरू दिन से उठ रहा था जो उसके साथ-साथ चल रहा था, जिसे उसने वाज़ेह तौर पर महसूस किया था। मौत और भूक और बेकसी और लालच के साथ-साथ, जिस्म की बढ़ती हुई थकन के साथ-साथ...अब सब कुछ ख़त्म हो चुका था।

दर्द करता हुआ जिस्म जो उसका ख़याल था कि ज़िन्दगी की सबसे बड़ी अज़ीयत[4] थी और मायूसी का नुक़्ता-ए-उरूज[5], जहाँ पहुँचकर अब न वे भागते थे, न परवाह करते थे। हमलावर उनमें से चन्द एक को हाँककर ले जाते थे और सड़क के किनारे खड़ा करके गोली मार देते थे। सब ख़त्म हो चुका था क्योंकि जिसे उसने महसूस किया था, आख़िर उन सबसे ज़्यादा ताक़तवर और रौशन और जानदार था और उसे मुकम्मल तौर पर लपेट में लिए हुए था। यहाँ आख़िरकार ख़ामोशी थी, और वज्द[6]...

क़ाफ़िलेवालों का कारोबार बहरहाल चल रहा था। शहर के बाहर वह पनाहगुज़ीं[7] कैम्प में पहुँचकर रुक गए। यहाँ उनको रात बसर करना था। कैम्प में कुछ कच्चे-पक्के बैरक और फटे हुए ख़ेमे लगे थे। बारिश का पानी जगह-जगह रुका हुआ था। पुराने और नए पनाहगुज़ीनों ने एक-दूसरे को शक की नज़रों से देखा। फिर वे बैठ गए और पत्थरों के चूल्हों पर रोटियाँ पकाने लगे। जिनके पास तवे नहीं थे, वे गोल-गोल पत्थरों पर आटा लपेटकर आग पर गर्म करने लगे। जिनके पास आटा न था, वे भारी रक़में देकर पड़ोसियों से आटा ख़रीदने लगे। जिनके पास पैसे न थे, वे रात का इन्तिज़ार करने लगे, जब अँधेरे में चोरी की जा सकती थी या घर की औरतों में से किसी जवान और ख़ुश-शक्ल को थोड़ी देर के लिए किसी दूसरे के हवाले करके, कि हैवानी जज़्बे[8] और उनके पालनेवाले हर हालत में ज़िन्दा रहते हैं, बदले में खाने-पीने की चीज़ें हासिल की जा सकती थी। कुछ लोग बहरहाल इतने थक चुके थे कि आते ही ग़श खाकर गिर पड़े और होश में आने पर गढ़ों में रुका हुआ पानी पीकर दोबारा गहरी नींद सो गए और मक्खियाँ उनके मुँह पर जमा होने लगीं और जंगली परिन्दे उन्हें मुर्दा समझकर चोंचें मारने लगे। फिर चन्द एक ऐसे भी थे जो सिर्फ़ बेवक़ूफ़ों की तरह मुँह खोले बैठे थे और ख़ला में देख रहे थे जैसे मौसम का जायज़ा[9] ले रहे हों। उन दिनों सारे दिन एक-से थे। या बारिश होती या सूरज निकल आता। धूप भूरे रंग की झुलस देनेवाली होती, आसमान धूल में अटा हुआ और बदरंग होता, जिस पर हर वक़्त मोटे-मोटे मुर्दाख़ोर[10] परिन्दों के ग़ोल उड़ा करते और फ़िज़ा में एक अजीब क़िस्म की मतली-आवर[11] बू फैली रहती।

---

1. स्रोत, 2. निर्दयता, 3. आकाशगंगा, 4. यातना, 5. चरम-बिन्दु, 6. आत्मविस्मृति, 7. शरणार्थी, 8. पाशविक वृत्ति, 9. निरीक्षण, 10. मुर्दा खानेवाले, 11. मचली लानेवाली।

वह रात उसी मदहोशी में गुज़री। टूटी हुई छतवाली बारीक दीवार से टेक लगाए वह बैठा था। थोड़ी-थोड़ी देर के बाद बारिश हो रही थी। पानी की ज़द में जो लोग आते उनमें खलबली मच जाती और उठ-उठकर उन लोगों पर गिरने लगते जो छत के नीचे सो रहे थे। गालियों और कोसनों का तूफ़ान उठता और आप-से-आप ख़त्म हो जाता। बारह फ़ुट मुरब्बा की कोठरी में सौ से ज़्यादा बदबूदार गन्दे इनसान बन्द थे। नईम आहिस्ता-आहिस्ता वापस आ रहा था। वह शाम से ही आँखें खोले दीवार के सहारे बैठा था। थोड़ी-थोड़ी देर बाद उस पर ग़ुनूदगी[1] तारी हो जाती और अजीबोग़रीब ख़्वाब दिखाई देते, लेकिन उसकी आँखें कभी पूरे तौर पर बन्द न होतीं, बस ग़ुनूदगी की हालत में आधी मिच जातीं, उन अधखुली आँखों में अगर कोई देखता तो यक़ीनन ख़ौफ़ज़दा हो जाता क्योंकि उसे वहाँ पर एक मुर्दा आदमी की गदली बे-हरकत आँखें दिखाई देतीं, वे जिनमें से सारी नज़र ग़ायब हो चुकी होती है और ख़्वाब...ऐसे छोटे अजीब ख़्वाब जो जागने पर एकदम ज़ेहन से निकल जाते लेकिन जिनके बाद एक अजीब क़िस्म की ताज़गी और तुवानाई सारे वुजूद में महसूस होती। जागने पर वह इधर-उधर देखता और किसी जगह पर बातें करते हुए लोगों के चन्द जुमले उसके कान में पड़ते और इनसानी बदबू से उसका दिमाग़ फटने लगता। उसने महसूस किया कि वह अपने हवास[2] दोबारा हासिल कर रहा था। जिस्मानी दर्द के बाद, जो उसे मुसलसल चलने से हुआ था, उसका ख़याल था कि कमरे की बू ज़िन्दगी की सबसे बड़ी अज़ीयत थी जो वह सह रहा था।

सुबह के वक़्त वह पूरी तरह आँखें खोले बैठा था। उसके क़रीब चन्द किसान आहिस्ता-आहिस्ता बातें कर रहे थे। वह सुनने लगा।

"फिर उनमें से हर एक ने अपनी-अपनी एक-एक नेकी बारी-बारी याद करके दुहराई, और जब एक अपनी बात ख़त्म कर चुका, तो दहाने का पत्थर एक तिहाई हट गया, और दूसरे की बात ख़त्म होने पर पत्थर दो-तिहाई हट गया, और जब तीसरे ने अपनी नेकी गिनाई, तो गुफा का मुँह साफ़ खुल गया और वे भागते हुए बाहर निकल आए।"

"तीन नहीं, चार थे।"

"नहीं, तीन थे।"

"मुझको क्या पता नहीं ?"

"अच्छा झगड़ा मत करो, कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। मतलब यह कि अपनी एक-एक नेकी याद करो सब..."

"पहले तुम करो।"

सब हँसने लगे।

"दाँत मत निकालो। सुनो। मैंने एक दफ़ा...एक दफ़ा मैंने...मेरी गाय को 'मोखर' हो गया था और मैं रात भर उसे टकोर करता रहा था।"

वे फिर हँसने लगे, "गाय की नेकी से क्या होता है, कोई और..." किसी ने कहा।

"क्यों नहीं होता। बेज़बान के साथ नेकी करने से...नहीं होता कुछ ?"

दूसरा बोला, "पारसाल के जाड़े की बात है मैं खलियान पर बैठा था कि एक सवार आया और दरवाज़े पर गिर पड़ा। उसने बताया कि पुलिस उसके पीछे लगी हुई है और उसके पेट में तीन गोलियाँ लगी हैं। मैंने उसको भूसे के ढेर में छुपा दिया और ख़ून के निशानों पर भी भूसा डाल दिया और घोड़े को भगा दिया। फिर पुलिस सारी रात मुझे मारती-पीटती रही पर मेरे मुँह से उसका बोल न निकला..."

"यह तो गाय से भी बदतर है। हो सकता है वह क़ातिल हो।" सब फिर हँसे।

---

1. ऊँघ, 2. संज्ञा, होश।

"मुझे क्या पता ! मैंने तो नेकी का काम किया।"

"ठीक है...ठीक है। अब तुम बताओ।"

तीसरे ने कोई मुख़्तसर-सी बात की। कमज़ोरी को वजह से जिसकी आवाज़ नईम तक न पहुँच सकी।

"बस...तीन काफ़ी हैं..."

"नहीं चार..."

"बस-बस...तीन..."

उनकी सादा निडर आवाज़ें थीं और वक़्त के अन्देशों को उन्होंने फ़तह कर लिया था। उसी तरह बैठे-बैठे नईम के ज़ेहन में एक नज़्म के मिसरे आने लगे। वे कुछ इस तरह थे : "नंगी शाख़ों पर परिन्दे ख़ुराक की उम्मीद में बैठे हैं और एक-दूसरे को दिलासा दे रहे हैं।

नीचे उनके ख़ुदाओं के कारवाँ अपनी हम्दो-सना[1] गाते हुए गुज़र रहे हैं,
पर पेड़ कहाँ हैं ?
मैं दुनिया के चौराहों में बैठकर भीक माँगता हूँ
और दुनिया में पैग़म्बर[2] आना बन्द हो चुके हैं
अब लोग सिर्फ़ कहानियाँ सुनाकर चले जाते हैं
पर लोग कहाँ हैं ?"

उसने दो-तीन बार नज़्म को धीरे-धीरे दुहराया। उसने शायरी बहुत कम पढ़ी थी, लेकिन आज यह नज़्म आप-से-आप तैयार हो गई थी क्योंकर ? क्योंकर ? हैरत के जज़्बात ने कुछ पलों तक उसे हक्का-बक्का कर दिया। फिर अचानक उसके अन्दर क़ुव्वत और तुवानाई[3] की एक लहर पैदा हुई जिसने उसको मेकानिकी तौर पर उठाकर सीधा खड़ा कर दिया। सोते और जागते हुए जिस्मों को फलाँगता हुआ वह बाहर निकल गया।

एक ताज़ा हल चले हुए खेत के किनारे-किनारे भागता हुआ वह अचानक रुक गया। सूरज निकल रहा था। पहली किरणों के साथ कबूतरों की एक डार खेत में आकर उतरी और ख़ुराक की तलाश में इधर-उधर बिखर गई। फिर चिड़ियों की एक डार आई और खेत के दूसरे किनारे पर उतरी। सुबह सवेरे की मन्द, ताज़ा हवा उसके चेहरे से टकराती गुज़र रही थी। सूरज आहिस्ता-आहिस्ता निकल रहा था। चन्द मिनटों में पूरबी आसमान ने कई रंग बदले। फिर ज़र्दी-माइल गुलाबी रंग की कमज़ोर धूप दरख़्तों की चोटियों पर पड़ी और उड़ते हुए परिन्दों पर, फिर उसका रंग सफ़ेद और सुनहरी होता गया और वह दरख़्तों की शाख़ों पर पड़ी और बैरकों की छतों और ख़ेमों की चोटियों पर, फिर तनों पर और जागते हुए इनसानों के चेहरों पर, फिर ज़मीन के चाक सीने पर और पेट भरते हुए कबूतरों पर, और देखते ही देखते ज़मीन और आसमान का वह गुम्बद और उसमें फैली हुई हर चीज़ उस अज़ीमुश्शान सुनहरी रौशनी से भर गई, यहाँ तक कि बालों को उड़ानेवाली धीमी हवा भी सुनहरी थी और उसमें ताज़ा सुनहरी मिट्टी और सुनहरे हरे पत्तों की ख़ुशबू थी। वह कई पल तक ख़ामोश खड़ा चारों तरफ़ फैलते हुए तिलिस्म को देखता और महसूस करता रहा। फिर वह आहिस्ता-आहिस्ता बढ़ा और खेत के दरमियान पड़े हुए पत्थर पर चढ़कर खड़ा हो गया और सूरज में नज़र जमाकर देखने लगा और देखता रहा और उसकी रूह में वह अजीबोग़रीब लहर बढ़ती रही और घटती रही, बढ़ती रही और घटती रही। फिर पहली दफ़ा उसने आँखें बन्द कीं।

यकायक वह गिरा और दोनों बाज़ू फैलाकर पत्थर से लिपट गया और उसे चुमने लगा, यहाँ तक कि वह जगह-जगह से गीला हो गया। फिर उसने झुककर दोनों हाथों में बहुत-सी मिट्टी उठाई

1. स्तुति, 2. ईश्दूत, 3. शक्ति।

और चेहरा उसमें दबा दिया और ख़ुशी से दीवानावार क़हक़हा लगाया और उसकी आँखों में आँसू आ गए।

जब वह वापस बैरक के दरवाज़े पर पहुँचा तो लोग उठ रहे थे। अन्दर दाख़िल होते हुए यकायक रात की ख़ौफ़नाक बू का राज़ उस पर खुला। एक कोने में लोगों ने ज़रा-सी जगह ख़ाली छोड़ रखी थी जहाँ पर रात भर माँएँ अपने बच्चों की और अपनी हाजत रफ़अ[1] करती रही थीं। पास ही गन्दगी में लुथड़ी हुई एक इनसानी लाश पड़ी सड़ रही थी।

"यह... ?" एक किसान ने लाश की तरफ़ इशारा करके कहा, "कोई कह रहा था, दो हफ़्ते से यहाँ पड़ी है।"

"यानी हम...रात भर..." ख़ौफ़ और घिन के मारे उसके साथी की आवाज़ बन्द हो गई।

लोग डरे हुए मवेशियों की तरह बैरक छोड़ने लगे।

47

जब क़ाफ़िला रवाना हुआ, तो वह बेइख़्तियार बोलने लगा : "तुमने कभी माउंट-एवरेस्ट की तरफ़ देखा है ? जबसे नस्ले-इनसानी का आग़ाज़[2] हुआ है, लोग इसे हैरत से देखते आए हैं। आज हज़ारों बरस के बाद भी वह उसी तरह शानदार और अज़ीम है, और तुम्हें कभी समन्दर के साहिल पर जाने का इत्तिफ़ाक़ हुआ है ? थ-थ-थ...तुम तो सिर्फ़ तारीख़ पढ़ाते रहे और उससे पहले...ख़ैर बहरहाल, समन्दर और आसमान और सूरज के निकलने का मंज़र और ताजमहल और शेक्सपियर, इन सबमें, सारी चीज़ों में एक हुस्न है जो अमर है और वह तख़्लीक़[3] का हुस्न है। ख़ुदा की तख़्लीक़ और इनसान की तख़्लीक़। हुस्न अपनी आलातरीन शक्ल में सिर्फ़ तख़्लीक़ में पाया जाता है। जब वह किसी अदना तख़्लीक़ में नुमूदार होता है तो सिर्फ़ असल की तस्वीर होता है और फ़ना[4] हो जाता है, अपनी सारी दिलकशी के साथ, अपनी सारी दिलकशी के बावजूद, जैसे इनसानी हस्ती हो जो आख़िरकार मिट जाती है, मगर आलातरीन सतह पर ख़ुदा इनसानी रूह की तख़्लीक़ करता है और आसमानों और समन्दरों और पहाड़ों की रूह की तरह वह लाफ़ानी[5] होती है और उसकी दिलकशी भी...और फिर यह हुस्न की तख़्लीक़ करती है, एक और हुस्न की। ख़ुदा की बनाई हुई तमाम चीज़ों में सिर्फ़ इनसानी रूह है जिसे तख़्लीक़ करने की क़ुव्वत विरसे में मिलती है और इस तरह तख़्लीक़ का हुस्न क़ायम रहता है। ख़ुदा से आदमी की तरफ़ और फिर ख़ुदा की तरफ़, ख़ुदा और इनसानी रूह तख़्लीक़ के अमल के ज़रीए एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं और यह एक ही चीज़ है...हुस्न यह उतनी ही ज़बरदस्त और बेपायाँ[6] क़ुव्वत है, जितने उसके दोनों ख़ालिक़[7] और बहुत बड़ी क़ुव्वत है, मुहब्बत और मज़हब और मौत से भी बड़ी, ज़िन्दगी से भी बड़ी। क्योंकि यह चीज़ें अदना[8] तख़्लीक़ हैं, सिर्फ़ वे क़ुव्वतें हैं जो आला तख़्लीक़ की तरफ़ उभारने में मददगार के तौर पर इस्तेमाल होती हैं।"

"जैसे ज़िन्दगी ! मैं तुमको बताता हूँ। ज़िन्दगी जो नाम है हर क़िस्म की तकलीफ़ और राहत में उम्र बसर करने का। किस तरफ़ को सफ़र करती है ? अक़्लमन्दी की तरफ़...क्या कनफ़्यूशस और अफ़लातून की अक़्लमन्दी कभी ज़ाए हो सकती है। वे लोग कभी दोबारा ज़िन्दा न होंगे मगर जो कुछ उन्होंने देखा और जाना और महसूस किया, वह आज हज़ारों साल के बाद भी एक ताक़तवर और जानदार क़ुव्वत है और जब तक ज़िन्दगी बाक़ी रहेगी, यह क़ुव्वत इनसानों के दरमियान ज़िन्दा और मुहर्रिक[9] रहेगी। क्योंकि यह ज़िन्दगी है जो हर एक को बसर करना है और यह एक ही तरफ़

1. शौच निवृत्ति, 2. प्रारम्भ, 3. सृजन, रचना, 4. नष्ट, विनाश, 5. अनश्वर, 6. असीम, 7. सृजनकर्ता, 8. बहुत छोटी, 9. प्रेरक, गतिशील।

को सफ़र करती है। अक़्लमन्दी हसीन है क्योंकि तख़्लीक़ है और तख़्लीक़ हसीन है क्योंकि अक़्लमन्दी है। तुम दोनों को जुदा नहीं कर सकते।

"और मुहब्बत ? क्या पुराने ज़माने के इनसानों की मुहब्बत की दास्तानों को तुम भुला सकते हो ? दुनिया में सबसे बड़ी मुहब्बत पैग़म्बरों ने की है, और मुहब्बत एक ऐसी क़ुव्वत थी जिसने उन्हें एक आला-तरीन तख़्लीक़ की तरफ़ उभारा। लेकिन अब पैग़म्बर आना बन्द हो चुके हैं। अब मुहब्बत सिर्फ़ फ़नकार करते हैं। वे लोग जिन्होंने मूसीक़ी[1] ईजाद[2] की, जिन्होंने शे'र लिखे, जिन्होंने संगतराशी की, वे जिन्होंने ज़िन्दा रहते हुए ज़िन्दगी को ख़ैरबाद[3] कहा। वह जो फ़राग़त[4] और जिस्मानी राहत की ज़िन्दगी होती है, जिसके लिए हर कोई काविश करता है, जिसे छोड़कर वे अलग हो गए और तन्हाई में चुपके-चुपके काम करते रहे, ख़त्म होते रहे, ग़ैर-फ़ानी[5] होते रहे। यह सब कुछ कैसे हुआ और क्यों हुआ ? सुनो यह वही मुहब्बत थी जो पैग़म्बरों ने ख़ुदा से पाई और जब हमारे पास पहुँची तो उसका रुतबा लगन का ठहरा और लगन की रौशनी में कुछ लोगों ने तख़्लीक़ की और हमें ज़िन्दा रहने का सलीक़ा अता किया। हम सब मुहब्बत नहीं कर सकते, ज़ाहिर है, लेकिन पैग़म्बरों के ख़ातिमे से हम पर बदक़िस्मती नहीं आई, क्योंकि मुहब्बत के चिराग़ से चन्द और चिराग़ जले और हर आनेवाले ज़माने में जलते रहे और इस तरह उसकी रौशनी और गर्मी की मदद से उन्होंने ज़िन्दा रहने का एक अज़ीमुश्शान क़रीना[6] ईजाद किया। उसकी लौ में उन्होंने ज़िन्दगी की गन्दी बेतरतीबी और बेढंगेपन में से एक लतीफ़ और शानदार तन्ज़ीम[7] बरामद की जो हमें विरसे में मिली और अब हमारी जायदाद है और उस पर हम फ़ख़्र करते हैं। तो देखा तुमने...इस सारी बात की तह में महज़ एक क़ुव्वत थी, जहाँ सारी क़ुव्वतें जाकर मिलती हैं। तख़्लीक़ की क़ुव्वत ! मुहब्बत तो महज़ रास्ता है। तुम बैठे रहो, मैं थका हुआ नहीं हूँ। रात भर आराम किया है।

"और मज़हब ? सच है कि तख़्लीक़ की निहायत आला शक्ल है और निहायत दिलकश। यह वाहिद मज़्हर (Phenomenon) है, जहाँ ख़ुदा, इनसान और रूह आपस में यूँ मिल गए हैं कि एक को दूसरे से जुदा नहीं किया जा सकता। यहाँ तख़्लीक़-दर-तख़्लीक़ इस तेज़ी के साथ अमल में आती है कि हम हैरान रह जाते हैं। यह वह हैरत नहीं जो सर्कस में किसी खिलाड़ी का कमाल देखकर होती है। यह वह बलाख़ेज़ ज़ाती तजर्बा है जो हमें किसी तबाहकुन ज़लज़ले से ज़िन्दा बचकर निकल आने से होता है या उससे भी कुछ बड़ा, जैसे यह...यह अब..यहाँ..." वह चारों तरफ़ देखकर बड़बड़ाया : "यह अब। यह अब। हाँ, मज़हब बुलन्दतरीन तख़य्युल[8] है। यह बेमिसाल मज़्हर (Phenomenon) है जहाँ ख़याल फ़ौरन ही अमल के साँचे में ढाल दिया जाता है और फिर वह, सिर्फ़ अपने ज़ोर पर, एक पूरी ज़िन्दगी और उसकी मंज़िल का तअय्युन[9] करता है, तमाम नौए-इनसानी की बुनियादों को हिला देता है, लाखों इनसानों को हिला देता है, लाखों इनसानों की रूह में हरकत और गर्मी पैदा करता है। आज भी इनसानों की सोसाइटी में मज़हब सबसे बड़ी वाहिद क़ुव्वत है...तो इसका असरार[10] क्या है ? इसका राज़ ? बताओ...हुँह-हुँह-हुँह..." वह चालाकी से मुस्कराया, "ईमान...यह ईमान की तख़्लीक़ करता है और सीना-दर-सीना, नस्ल-दर-नस्ल, अहद- दर-अहद[11] इसे मुंतक़िल[12] करता जाता है। हम एक मज़हब के हक़ में और दूसरे मज़हब के ख़िलाफ़ बेहतरीन दलाइल[13] दे सकते हैं, लेकिन हम ईमान से यक़ीन नहीं उठा सकते, जो कि सारे मज़हब की रूह है। यह मुश्तरका[14] जायदाद है। यह लाइल्म[15] और बेबहरा[16] लोगों को ज़िन्दा रहने का और मरने का मज़बूत इरादा देता है, एक आइडियल, एक ख़्वाब। वह शख़्स जो अपने दरवाज़े से बाहर किसी चीज़ के बारे में नहीं जानता और जिसकी मिल्कियत में एक आँगन और एक चूल्हे के अलावा कुछ नहीं, ईमान की हमराही में अचानक तमाम ज़िन्दगी...और...तमाम मौत...के मानी समझ जाता है।

1. संगीत, 2. आविष्कार, 3. गुड-बाई, 4. सन्तोष, 5. अनश्वर, 6. ढंग, 7. व्यवस्था, 8. उच्चतम कल्पना, 9. निश्चित, 10. रहस्य, 11. काल, 12. हस्तांतरित, 13. दलील का बहुवचन, तर्क, 14. संयुक्त, 15. अज्ञानी, 16. अभागा।

तुम्हें पता है मज़हब ही एक ऐसा इल्म है जिसने किसी हद तक ज़िन्दगी और मौत के असरार को समझा और बयान किया है ? मगर उसकी भी एक हद होती है। जहाँ दलाइल ख़त्म हो जाते हैं वहाँ से ईमान शुरू होता है। यह वह पोशीदा रौ[1] है, जो तमाम मज़हब की तह में रवाँ[2] है। ईमान, यह तजरीदी[3] और तक़रीबन ग़ैर-दिलचस्प लफ़्ज़, जिसमें इनसानियत और ख़ुदाइयत के वसीअ-तरीन मानी पोशीदा है, पुर-असरार और ग़ैर-मशरूत[4] तौर पर बेइल्म लोगों के दिलों में उतर जाता है और उन्हें इत्मीनान और वक़ार के साथ हर आफ़त का, जिसमें मौत भी शामिल है, सामना करने के क़ाबिल बना देता है। फिर हर चीज़ इस क़दर आसान और क़ुदरती दिखाई देती है। कोई आज तक नहीं समझ सका कि किस तरह कमतर ज़हानत[5] रखनेवाले लोग इस Phenomenon को क़बूल करके एक अज़ीम जुर्अत[6] की अहलियत इख़्तियार कर लेते हैं। लेकिन तुम बताओ, तख़्लीक़ के अमल को आज तक कौन समझ सका है...साइंसदाँ[7] ? हुँह ! जब इनसानी दिमाग़ 'कैसे ?' के बाद 'क्यों ?' पर ग़ौर करने लगता है तो सारा इल्म ख़त्म हो जाता है।

"तो देखा तुमने, किस तरह मुनज़्ज़म मज़हब, अपनी अज़मत[8] के बावजूद, ईमान के मुक़ाबले में दूसरा दर्जा इख़्तियार कर लेता है। ईमान जो मज़हब की तख़्लीक़ है, उसका सारा मक़सद, सारा हुस्न है। ज़हीन लोग, जो इस हक़ीक़त को नहीं समझ पाते, मज़हब से बददिल हो जाते हैं। एक वक़्त था कि मैं भी उनमें शामिल था, लेकिन रात, वहाँ उनके साथ...वे कुछ जाहिल गँवार किसान थे...उनके साथ बैठे-बैठे अचानक मुझे उनकी ताक़त, उनकी अक़्लमन्दी और उनके वक़ार का पता चला, जबकि मौत उनके सामने खड़ी थी, उनके दरमियान चल-फिर रही थी। ज़िन्दगी के उस अज़ीम जरी लम्हे[9] में उन्होंने उसे मुकम्मल तौर पर क़बूल कर लिया था, नज़रअन्दाज़ कर दिया था। यह तमाम बनी–नौए-इनसान की दानाई और उसका वक़ार था। यह इस क़दर सादा और आसान था।

"तो तुमने देखा। तुम ज़हीन आदमी हो। मैं जानता हूँ," वह मुस्कराया, "तख़्लीक़...सबसे ऊपर है, सबसे। मैंने देखा है। आज..." वह दोबारा शरमाकर हँसा, "आज मैंने एक नज़्म, तुम जानते हो मैं शायर नहीं हूँ। फिर भी आज...लेकिन अब मैं उसे भूल गया हूँ। ख़ैर छोड़ो इसे, यह अहम नहीं है। अहम यह है कि यह इस क़दर सादा और आसान होने के बावजूद इस क़दर मुश्किल भी हो सकता है। मैं एक शख़्स को जानता हूँ जो अपने तमाम इल्म और अक़्ल के होते हुए अफ़लातून या कोई पैग़म्बर हो सकता था, लेकिन उसके पास ख़ुदा नहीं था...चुनाँचे वह दुनिया में पैदा होनेवाली कमतरीन अजनास[10] में से था।"

बूढ़ा प्रोफ़ेसर हँसा, "चलो, अच्छा हुआ...शायरी ने तुम्हें ज़बान तो दे दी।"

"अव्वल तो मुर्दा बोले ही नाँ, और बोले तो कफ़न ही फाड़े।" अली ने भी हँसकर लाहौर का सीखा हुआ एक मज़ाक़ किया।

उन दोनों को नईम की उस पुर-असरार चुप के टूटने से बहुत ख़ुशी हुई थी। इससे पहले नईम की लम्बी तक़रीर के दौरान बूढ़ा प्रोफ़ेसर अली की तरफ़ झुककर उसके कान में कह चुका था, "अब तुम्हारे भाई की हालत पहले से बेहतर मालूम होती है। शुक्र है।"

चलते-चलते शाम हो गई मगर नईम लगातार बातें करता रहा। प्रोफ़ेसर थकावट की वजह से ऐसी ख़स्ता हालत को पहुँच चुका था कि नईम की बातों से उसे क़तई दिलचस्पी न रही थी। फिर भी जब उसके ख़याल में नईम ज़्यादा ऊट-पटाँग कहने लगता तो वह हमेशा गाड़ी से नीचे उतरने की कोशिश करता और नईम उसे बैठने के लिए कहता। नईम ने एक बार भी उसे हिलने न दिया। इस पर प्रोफ़ेसर निहायत शर्मिन्दा होता और चोर-निगाहों से अली को देखने लगता। उसके ख़याल में अली, जो कि गाड़ी का मालिक था, यह समझकर दिल ही दिल में ग़ुस्सा हो रहा था कि उसका

1. गुप्त धारा, 2. प्रवाहित, 3. अमूर्त, 4. बिना शर्त के, 5. अल्प बुद्धि, 6. महान साहस, 7. वैज्ञानिक, 8. महानता, 9. उत्साही क्षण, 10. न्यूनतम जातियों।

भाई भूक और थकान की वजह से इस ख़राब हालत को पहुँचा था और वाही-तबाही बक रहा था, जबकि प्रोफ़ेसर उसकी जगह पर ग़ासिबाना[1] क़ब्ज़ा किए बैठा था।

आख़िर जब अँधेरा बढ़ा तो प्रोफ़ेसर, अली और नईम की आँख बचाकर, नीचे कूद पड़ा और फिर नईम ने अली की मदद से उसको उठाकर गाड़ी में फेंक दिया। फिर जल्दी से अली ने थोड़ी-सी गीली रोटी नईम के हाथ में थमाई जिसे वह कुछ हिचकिचाहट के बाद खाने लगा। उससे फ़ारिग़ होकर वह पहली दफ़ा आयशा की तरफ़ मुतवज्जेह हुआ, "तुमने रोटी खा ली है ?"

उसने सिर हिलाया।

"बोलती क्यों नहीं ? तुम भी कुछ लो," उसने बुड्ढे मसख़रों की तरह हँसते हुए लड़की के पेट में गुदगुदी की। वह शरमाकर मुस्कराई और उसका चेहरा सुर्ख़ हो गया। अली को इतने दिनों में पहली बार मुस्कराती और सुर्ख़ होती हुई अपनी बीवी बड़ी प्यारी लगी। वह ख़ुश होकर हँसा, "मेरे भाई की तरफ़ ज़्यादा ध्यान मत दो।" उसने ऊँची आवाज़ में कहा, "सुना है जवानी में लड़कियों पर ज़ुल्म ढाया करता था।"

आयशा और भी सुर्ख़ हो गई।

"हमारे घर तुम क्यों नहीं आते थे ?" थोड़ी देर बाद उसने पूछा।

"तुम्हारे घर ?...दरअसल मुझे फ़ुरसत ही नहीं मिलती थी। घर में तुमने मुझे याद रखा था ?"

"हाँ।"

"सबने ?...यानी गाँव में ?

"हाँ। बहुत। घर में वे सब तुमको याद करते थे और बाहर खेतों में तुम्हारा ज़िक्र होता था। वे, जो तुम्हारे दोस्त थे, बड़े शौक़ से बात करते थे। दूसरे, कहानियों की तरह तुम्हारी बातें सुनते थे। अली गाँव नहीं जाता था पर मैं जाती थी। तुम्हारे पक्के मकान के बाग़ को उजाड़ देखकर जी बैठ जाता था। जब गाँववाले तुम्हें पूछते थे। उनके ख़याल में हम तुमसे मिलते-जुलते थे। तुम कभी गाँव क्यों नहीं आते थे ?"

"जी तो चाहता था।" वह अचानक सुस्त हो गया और रोटी के गिरे हुए रेज़े चुन-चुनकर मुँह में डालने और जबड़े चलाने लगा। फिर तेज़ी से उसकी आँखों की चमक लौट आई, "बहरहाल...यह अहम नहीं है। अहम यह है कि तुम किस तरह रहीं, और मैं देख रहा हूँ कि तुम अच्छी तरह से नहीं रहीं। तुम ऐसी ख़ूबसूरत लड़की थीं। थ-थ-थ...पता है तुम्हारे साथ शादी करने के लिए अली मीलों तक मेरी घोड़ी के साथ भागता रहा था और तुमने अपनी यह हालत बना रखी है। बहरहाल घर में तुमने मुझे याद रखा। शुक्रिया। मेरी तो लम्बी जलावतनी थी। हुँह, वह तो हम सबकी थी, यह क्या अहम है..."

देर तक इसी तरह लड़की के साथ बातें करते रहने के बाद वह वहीं पर लेटकर सो गया।

मुँह अँधेरे वह जाग गया और उठते ही बिला तम्हीद[2] बातें करने लगा, यूँ जैसे कभी सोया ही न था। कुछ देर तक वह आयशा से बातें करता हुआ उसे गुदगुदाता रहा। फिर कमउम्र लौंडों की तरह छलाँग लगाकर नीचे उतर आया और अली के साथ-साथ चलने लगा।

"यह अमृतसर के आस-पास का इलाक़ा है। मैं सन् उन्नीस में यहाँ आया था। सन् उन्नीस। हम सब थे। अज़रा भी साथ थी। अज़रा ? ओह...तुम वहाँ पहुँचकर क्या करोगे ?"

"अमृतसर ?"

"लाहौर।"

"पता नहीं।"

"मैंने सिर्फ़ स्टेशन देखा है। सुना है अच्छा शहर है। तुम तो थे।"

---

1. लुटेरों की तरह, 2. बिना भूमिका के।

"हाँ ! जलावतनी में सब जगहें एक-सी होती हैं। तुम भी तो साथ हो। कुछ बताओ।" अली ने कहा।

"हाँ, ज़ाहिर है। मुझे सोचने दो। मगर इसमें सोचने की क्या बात है। सुनो...अब मैं तुम्हें किसी कारख़ाने में नहीं जाने दूँगा। वहाँ मुर्दा ख़राब हो जाता है आदमी का...अब हम गाँव में चलकर रहेंगे !"

"किस गाँव में ?"

"तुम्हारे तो सवाल ही ख़त्म नहीं होते। कहाँ ? क्यों ? भाई, किसी भी गाँव में चले जाएँगे। यह अहम नहीं है। अहम यह है कि अब हम क्या करेंगे ? और वह यह है, अब हम खेतीबाड़ी करेंगे।" वह रुका, और अगर तुम सोच रहे हो कि अपना काम भूल जाओगे, तो फिर...कितना ही काम है। हल, कुदाल, फावड़ा, दराँती, टोका...फिर कुएँ का सामान और जानवरों की नॉलबन्दी, रस्से और ज़ंजीरें, नाँदें और मचानें, फिर गाड़ियाँ और उनका सामान और घर-बाहर की खिड़कियाँ, दरवाज़े और ताक़-ताक़चे, इतना बहुत-सा काम है जो तुम कर सकते हो। अपने घर में, अपने गाँव में, अपना और दूसरों का, न मिन्नत, न मुहताजी, बोलो..."

"हूँ...मगर ज़मीन..."

"अगर-मगर...अगर-मगर। तुम तो ज़िद्दी हो चुके हो बस। सब बेकार है। ज़मीन के क़िस्से का भी कुछ-न-कुछ करेंगे, मगर इसके बाद ? पहले तो यह कि सीधे गाँव जाएँगे।"

"दूसरे यह कि सीधे गाँव जाएँगे और तीसरे यह कि सीधे गाँव..." अली ने चिढ़कर कहा।

नईम बोलता रहा, "कि गाँव की ज़िन्दगी साफ़, सीधी और हक़ीक़ी होती है। उसके बाद घर बनाने का मसअला है। उसके बारे में तुमने कुछ सोचा है। ख़ैर, तुमसे तो यह उम्मीद बेकार है। सुनो ! इस सिलसिले में ज़्यादा फ़िक्र करने की ज़रूरत नहीं। कुछ दिन आराम और अच्छे खाने के बाद काम करने के क़ाबिल हो जाएँगे हम सब। ठहरो !" वह चलते-चलते प्रोफ़ेसर की तरफ़ झुका, "तुम्हारा कोई घर है ?"

"नहीं !"

"बस ठीक है। हम तीन आदमी हैं और काम करनेवाले हैं। अभी तो टाँगें सूजकर बेकार हो चुकी हैं, आहिस्ता-आहिस्ता ठीक हो जाएँगी। कुछ दिन तक तो हम गाड़ी पर छत डालकर ही काम चला सकते हैं बहरहाल, फिर मकान खड़ा करना शुरू करेंगे। तुम्हें मकान बनाने का तजर्बा नहीं इसलिए डर रहे हो। मुझे भी नहीं, मगर इसमें डरने की कोई बात नहीं। बस मेहनत करनी पड़ती है, और कुछ नहीं। ईंटों की ज़रूरत नहीं। पत्थर और गारे से लोहे की तरह मज़बूत दीवारें बनती हैं, और छत के लिए कीकर की लकड़ी अच्छी होती है, या नीम की जिसको दीमक नहीं लगती। यहाँ पंजाब में कीकर और नीम के जंगल के जंगल हैं। यह सारा एक ही इलाक़ा है। यह बँटवारे का क़िस्सा सब बेकार है, कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। आयशा चूल्हे बना लेती है ?"

"पता नहीं।"

"तुम्हें कुछ पता नहीं। पर आहिस्ता-आहिस्ता सब ठीक हो जाएगा। ज़रूर बना लेती होगी। हमें सिर्फ़ तीन कमरों की ज़रूरत है। पहले-पहल तो एक ही दालान से काम चल सकता है। एक तरफ़ भूसा आ जाएगा जो सर्दी का भी बचाव करेगा, दूसरी दीवार के साथ सब सो सकते हैं। हम बूढ़े आदमी हैं, तुम्हें परेशान नहीं करेंगे। तुम मज़े से सोना, और बाहर जानवर होंगे जिनके गिर्द दीवार भी बनानी होगी, मगर यह कोई ऐसा मुश्किल काम नहीं। चिकनी मिट्टी और भूसे से सारी दुनिया दीवारें बनाती है। किवाड़ और खिड़कियाँ और ताक़चे, यह तुम्हारा काम है। रौशनदान भी बना लेते हो ?"

"हाँ।"

"शुक्र है। प्रोफ़ेसर तो कुछ नहीं कर सकता, सिर्फ़ मिट्टी ढो सकता है। अगर इसे पढ़ने-पढ़ाने का शौक़ चढ़ा तो काम ख़त्म होने के बाद जाने देंगे, उससे पहले नहीं। अभी तय कर लेते हैं। और तुम इसे गाड़ी पर बैठने से मना नहीं कर सकते। तुम किसी को गाड़ी पर बैठने से मना नहीं कर सकते। सब बेकार है। इसका कोई मतलब नहीं। काम शुरू करने के लिए हमें बस यह चीज़ें चाहिए : दो बालटियाँ पानी के लिए, दो लकड़ी के तख़्ते, और एक कुल्हाड़ी, बस इतनी तेज़ कि कीकर को काट ले...ज़्यादा तेज़ हो तो धार टूट जाती है। बस।" उसने चुटकी बजाई, "बस। आन की आन में हम तुम्हें दीवार खड़ी कर देंगे। गाँव के लोग सीधे-सादे और ख़ुदा-तरस होते हैं। यह भी भला बतलाने की बात है। उम्र भर तो हम लोग गाँव में रहे। तुम देख लेना, हर रोज़ कोई-न-कोई, एक या दो या कभी-कभी चार गाँववाले हमारी मदद को आ मौजूद होंगे, आते रहेंगे। देहात में बड़ी ख़ुदा-तरसी और असलियत होती है। दिनों में मकान तैयार हो जाएगा। गाय नहलाने से लेकर फ़सल काटने तक वे बराबर हमारी मदद करेंगे और हम उनकी। उन्हें रहने का सलीक़ा आता है। यह सारी बात है...यह भादों की धूप नामुराद कैसी सख़्त होती है। वह परिन्देवाला क्या क़िस्सा है, अली ?"

अली एक पुरानी बात के हवाले के लिए पूछे जाने पर ख़ुश हुआ। "उसका नाम अरर...सरसोती होता है या क्या, या लाजोती...वह ग्यारह महीने धूप में बैठता है, मगर भादों की धूप सह नहीं सकता और साए में चला जाता है। मैंने कभी नहीं देखा। यह क़िस्सा था ना ?"

"मैंने भी कभी नहीं देखा !" प्रोफ़ेसर ने कहा।

"कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। भादों की धूप बहरहाल कड़ी होती है। कड़ी ? कड़ी क्या ?" उसने याद करने की कोशिश की मगर नाकाम रहा, "ओह...! बारिश से ऐसे मकानों को काफ़ी नुक़सान पहुँचता है। हमें मुस्तक़िल काम करना होगा। छप्पर, घास-फूँस, लिपाई, तुम जानते ही हो। ताले लगाने की ज़रूरत नहीं, हमारे पास फ़ालतू कुछ होगा ही नहीं, मगर जानवरों के लिए छप्पर चाहिए। बरसात में भीगने से दूध सूख जाता है और बुरी-बुरी बीमारियाँ लग जाती हैं और बरसात के मौक़े पर..."

वह लगातार बोलता रहा। छोटी-छोटी ग़ैर-ज़रूरी बातें, जो असल ज़िन्दगी में इतनी अहम होती हैं, उसने इतनी तफ़्सील और मेहनत से बयान कीं कि अली ने सुनना ही छोड़ दिया।

जब सूरज ढलने लगा, तो अचानक उसने महसूस किया कि प्रोफ़ेसर और अली ग़ायब हो चुके थे। वह इसका आदी था। उचककर गाड़ी पर बैठ गया और बेध्यानी से हमलावरों की उस टोली को देखने लगा जो टटोल-टटोलकर जवान औरतों और चन्द मर्दों को हँकाए लिए जा रही थी। नईम के चेहरे पर कोई तअस्सुर न था, सिर्फ़ आँखों की चमक थी जो अचानक माँद पड़ गई थी। फिर वह लापरवाही से उनके सिरों के ऊपर-ऊपर देखने लगा। भूरे रंग की धूल से भरी फ़िज़ा में घिनौनी, मतली-आवर बू और घुटी-घुटी चीख़ों की आवाज़ें थीं। कुछ देर बाद क़रीब ही चन्द फ़ायरों की आवाज़ें आईं और ख़ामोशी छा गई। बू बदस्तूर क़ायम रही।

"खेतीबाड़ी शुरू करने के लिए भी ज़्यादा चीज़ों की ज़रूरत नहीं पड़ेगी।" जब प्रोफ़ेसर और अली गाड़ी की ओट से निकल आए तो उसने कहना शुरू किया।

"नहीं पड़ेगी, नहीं पड़ेगी..." अली जलकर बोला, "उनके सामने टाँगे पसारकर बैठ जाते हो। याद रखो, कभी-न-कभी वे तुम्हें पकड़कर ले जाएँगे।"

"बीच में मत बोलो," नईम ने ग़ुस्से से कहा, "कोई पकड़कर नहीं ले जाएगा। बस एक हल और दो बैल...हल तो तुम बना ही लोगे। दूध के लिए जानवर बाद में आ जाएँगे और पहली बियाई के लिए बीज उधार ले लेंगे। पंजाब की ज़मीन बड़ी लायक़ है। जितनी मेहनत करो उतना फल देती है। पंजाब की ज़मीन का आख़ीर किसी ने नहीं देखा। हाड़ी और सावनी के अलावा मैं तुमको

बताऊँ," वह राज़दाराना तौर पर अली की तरफ़ झुका, "सब्ज़ियों में बड़ी कमाई है। यहाँ के अच्छी ज़ात के किसान सब्ज़ियाँ उगाने को अपनी बेइज़्ज़ती समझते हैं। कहते हैं, यह अराइयों का काम है जो कि जाटों से नीची ज़ात है। मगर यह सब बेकार है। सब्ज़ियों में कमाई ही कमाई है और नतीजा यह होता है कि अराईं सब्ज़ियाँ उगा-उगाकर जाटों की सारी ज़मीन ख़रीद लेते हैं और ऊँची ज़ातवाले किसान आपस में लड़ते-मरते और मुक़दमेबाज़ी करते रहते हैं। हम सब्ज़ियाँ बोएँगे। यह सब बेकार है, ऊँची ज़ात, नीची ज़ात, हुँह। आदमी की ज़ात का और सब्ज़ियों का आपस में कोई तअल्लुक़ नहीं..."

"सब्ज़ियाँ ? क्या सब्ज़ियाँ ?" अली ने पूछा।

"यही मटर, मोंगरे, करेले, कद्दू, तुरई वग़ैरह..."

"ओह...अच्छा।" अब उसने बाक़ायदा दिलचस्पी लेनी शुरू कर दी, "सब्ज़ियाँ।"

"हाँ सब्ज़ियाँ। अब रहे बैल, अररर बैलों के बारे में तुमने क्या सोचा है ?"

"बैल ?" अली बिलकुल ख़ाली-उज़्ज़ेहन था, मगर कोशिश करके उसने सोचा, "बैल भी कहीं-न-कहीं से..."

"मुझे पता था, तुमने कुछ नहीं सोचा। बैल हम पहली बियाई के लिए उधार भी ले लेंगे। बस बात करने का तौर आना चाहिए। जब उनको पता चल गया कि भलेमानस आदमी हैं और बैल लेकर कहीं भागेंगे नहीं तो वे ख़ुशी से हफ़्ते-दस दिन के लिए दे देंगे। मगर दूसरे के जानवर को बड़ी एहतियात से बरतना पड़ता है। तुम्हें तो पता ही है। घर में जब कोई बैल माँगकर ले जाता था तो हमारा बाप अहमद दीन के लौंडे को जासूसी करने के लिए भेजा करता था और वह शैतान पहर-पहर की आकर ख़बर देता था कि आज उन्होंने यह खाने को दिया है जानवर को और इतना दिया है और इतना काम लिया है। तुमसे कोई बात छुपी हुई थोड़ी है। तुम्हारे पास कुछ रक़म है ?"

"कुछ है...आयशा के पास।"

"ठीक है। हम एक जोड़ी ख़रीद सकते हैं। फ़सल के फ़सल पैसे चुकाते रहेंगे। जब उनको पता चल गया कि हम ईमानदार और मेहनती आदमी हैं तो वे एतिबार कर लेंगे। आख़िर हम ठग थोड़े ही हैं, सच्चे किसान हैं और काहिली से दूर भागते हैं। लेकिन सब्ज़ियों के अलावा अनाज भी बहुत ज़रूरी है। तुम अनाज की बियाई भूल तो नहीं गए ?"

"नहीं।"

"शुक्र है। गेहूँ की बियांई अगले महीने शुरू हो जाएगी। यह बहरहाल बारिशों पर मुन्हसिर[1] है। अगर बरसात देर तक चलती रहे तो बियाई पीछे पड़ जाती है। फ़सल के तैयार होने और उतरने में बियाई का बड़ा अहम मुक़ाम है। किस वक़्त में हो और कैसी हो ? गीली ज़मीन में, जब तक मिट्टी पैर से चिमटती रहे, कुछ भी नहीं बोना चाहिए। तुम्हें अपने बाप की बातें याद हैं ? ज़रूर होंगी। मुझे उसके दिए हुए सारे सबक़ आज तक याद हैं ? गीली ज़मीन में मेंडक भी मर जाते हैं, बीज तो बड़ी नाज़ुक चीज़ है, वह कहा करता था। और ज्वार, बाजरा भी बड़ा ज़रूरी है। किसान अगर तरक़्क़ी करना चाहता है तो वह बारह महीने गेहूँ नहीं खा सकता। और फिर जानवर हैं जिनकी गुज़र-औक़ात मकई पर होती है। मकई के बैरी गीदड़ बहुत होते हैं। बचाव के वास्ते क्या करोगे ?"

"कुत्ते रख लेंगे।"

"कुत्ते रख लेंगे।" नईम ने ग़ुस्से से हाथ नचाकर नक़ल उतारी, "और जो कुत्तों को खिलाना पड़ेगा वह किधर से आएगा। तुमने इतने बरस तक क्या काम सीखा है जो गीदड़ फाँसने का एक पिंजरा भी नहीं बना सकते...हैं ? कुत्ते रख लेंगे।" उसने दोबारा नक़ल उतारी, "तारों का एक पिंजरा बना लेना, बस। गीदड़ तो तुम्हें पता है, होते ही हैं। अपने यहाँ भी होते थे। सब जगह होते हैं।

1. निर्भर।

यह यहाँ-वहाँ और इधर-उधर का क़िस्सा सब बेकार है। गीदड़ हर जगह होते हैं। और सावनी की फ़सलों में गन्ना बहुत होता है। जाड़ों की रातों को गुड़ ज़रूर बनाना, सर्दी से महफ़ूज़ रखता है और ताक़त भी आती है। और कड़ाह चढ़ा हो तो आता-जाता हर कोई चखता है और फ़ैज़[1] बढ़ता है। गुड़ बनाने का तरीक़ा तुम्हें याद है ?''

''भिंडी के डंठल...''

''हाँ-हाँ, भिंडी के डंठल मैल को काटकर लट्ठे की तरह सफ़ेद गुड़ बनाते हैं। मगर गन्ने की हिफ़ाज़त करना बड़ा जान-जोखिम का काम है। माघ की रातों में खेत का एक चक्कर लगाओ तो हाथों में ख़ून जम जाता है। और जंगली सुअर जो खेत के खेत का सत्यानास कर देता है। मैंने एक बार ज़ख़्मी सुअर मारा था। आमने-सामने होकर। बड़ा शरीफ़ जानवर था कोई, पर भई क्या नादानी की उम्र थी...''

अँधेरा बढ़ता जा रहा था। क़ाफ़िला उसी तरह थकी-थकी मुस्तक़िल चाल से चल रहा था। नईम देर तक गाड़ी के डंडे पर झुककर बैठा तेज़ी से बातें करता रहा, जैसे वक़्त के मुक़ाबिल भाग रहा हो। रोज़मर्रा ज़िन्दगी की अनगिनत बातें, छोटे-छोटे प्रोग्राम, कितनी ही बातें उसने जल्दी-जल्दी अली को समझाईं। बरसात की हवा में गले-सड़े पत्तों और ताज़ा जले हुए बारूद की बू कहीं से उड़ती हुई आई।

फिर अचानक रुककर उसने लम्बा साँस लिया और प्रोफ़ेसर की तरफ़ मुड़कर धीमे लहजे में बोला, ''सुनो...मैं तुम्हें एक बात बताता हूँ, शायद फिर भूल जाऊँ। ज़िन्दगी...ज़िन्दगी की सत, ज़िन्दगी का निचोड़...क़ुरबानी का जज़्बा है और कुछ नहीं है। यह मैंने जाना है। और कुछ नहीं है।''

प्रोफ़ेसर थके हुए उदास अन्दाज़ में मुस्कराया।

''नहीं...तुम हँस नहीं सकते। मैं बड़ नहीं मार रहा। मैं जानता हूँ। दिल पर इतनी मुश्किलें, इतनी मुहताजी आती है, उसके बाद हमें इन बातों का पता चलता है।''

वह ख़ामोश हो गया। प्रोफ़ेसर ने देखा कि थोड़े-थोड़े वक़्फ़े पर वह मुँह में कुछ बड़बड़ा रहा था। उसने कान लगाकर सुनने की कोशिश की। उसे सिर्फ़ इतनी आवाज़ सुनाई दी : ''उसके बाद हमें इन बातों का पता चलता है।''

जब वह दोबारा बोला तो रात का अँधेरा चारों तरफ़ फैल चुका था। वह अचानक अली की तरफ़ मुड़कर ग़ुस्से से बोला, ''उसके बाद हमें इन बातों का पता चलता है। तुम्हें क्या पता है ?''

''क्या पता है, क्या पता है ?'' अली ने चिढ़कर कहा, ''जानने के लिए हई क्या ? ऊट-पटाँग बोले जाते हो। ख़ामोश रहो। थक जाओगे।''

''ठीक है। जानने के लिए बहुत कुछ नहीं है। दो-एक बातें हैं, वह भी मुश्किल से समझ में आती हैं। जो कुछ मैंने समझा है वह यह है कि अगर हम हर सतह पर, हर वक़्त में, हर चीज़ की क़ुरबानी दे सकते हैं तो ज़िन्दा हैं वरना नहीं हैं...और तुम किसी को गाड़ी पर बैठने से नहीं रोक सकते। इसका कोई मतलब नहीं !''

अली हैरत से उसे देखता रहा। थोड़ी देर के बाद वह फिर बोला, ''इसके अलावा...सुनो। एक बात बताता हूँ। अज़रा, मेरी बीवी, एक अज़ीम औरत है। उसके पास कोई अन्देशा, कोई उलझन, कोई ढोंग नहीं। वह जो कुछ चाहती है, बिला झिझक उसके लिए तबाह हो जाती है। वह इनसान की सारी शराफ़त, सारे दुख और सारी क़ुरबानी के साथ ख़ामोशी और रज़ामन्दी से ज़िन्दा है। ख़ुदा इनसान को अपनी शक्ल में बनाता है ना। वह अज़रा है। अब उसका ज़िक्र न करना।''

फिर वह प्रोफ़ेसर की तरफ़ मुड़ा, ''और ख़ुदा भी है।'' उसने कहा।

---

1. यश।

फिर उन्होंने उसे थोड़ी-सी गीली रोटी दी जिसे खाकर वह सो गया।

वह बहुत गहरी नींद सोकर उठा। उजाला फैल रहा था। क़ाफ़िला मुस्तक़िल चले जा रहा था। उठते ही उसने ख़ुशदिली से आयशा से बातें छेड़ दीं : "वहाँ पहुँचकर तुम चन्द रोज़ में तन्दुरुस्त हो जाओगी। ख़ालिस हवा और ख़ालिस ग़िज़ा सेहत के लिए इससे मुफ़ीद और कोई चीज़ नहीं। तुम्हें ज़्यादा काम करने की ज़रूरत नहीं, सारा काम हम करेंगे। तुम सिर्फ़ खाना पका दिया करना। गाँववाले कहेंगे, यह नया ख़ानदान कैसा अच्छा और शरीफ़ है। तीन जवान और मेहनती मर्द (प्रोफ़ेसर हँसा) और एक जवान और ख़ूबसूरत लड़की। तुम चूल्हे बना लेती हो ?"

"हाँ।"

फिर वह छलाँग लगाकर नीचे उतर आया। "तुम रात भर चलते रहे हो। अली जवान आदमी है, चल सकता है। तुम अब आराम करो।" उसने एक बाज़ू से धकेलकर प्रोफ़ेसर को गाड़ी पर बिठा दिया।

"तुम गीदड़ों की बात कर रहे थे। मुझे बाद में ख़याल आया कि अगर कोई मकई के खेत के चारों तरफ़ तुम सुम्बुल[1] की घास बो दो तो कभी वे पास भी न फटकेंगे। सुम्बुल जानते हो कैसी ख़ुशबूदार चीज़ है, पर गीदड़ उससे कोसों भागता है। अजीब बात है। लेकिन गीदड़ गीदड़ होता है और उसकी क़ुव्वते-शाम्मा[2] ठीक नहीं होती..."

उसने सिर उठाकर देखा। अली और प्रोफ़ेसर दोनों ग़ायब हो चुके थे। गाड़ी की ओट से अली की आवाज़ आई, "बातें बन्द करो। इधर आओ, इधर आओ, इधर, ओट में...वे इस तरफ़ आ रहे हैं...ओह...कमबख़्त।"

उसने झुँझलाकर बात जारी रखी, "ओह, लेकिन यह अहम नहीं है। गीदड़ों को भगाने के लिए सुम्बुल घास मुफ़ीद होती है और दूध देनेवाले जानवरों के लिए उसका चारा भी उम्दा बनता है। इसका ख़याल रखना...और कटाई से पहले एक और बात का ख़याल रखना..."

लेकिन अब वक़्त नहीं रहा था। वे सीधे उसकी तरफ़ आ रहे थे। उनके पहुँचने से पहले उसने बस एक काम किया। निहायत सफ़ाई से उसने लकड़ी का बाज़ू अलग किया और नज़र बचाकर उसे गाड़ी में पड़ी दुलाई के नीचे छुपा दिया, "इसका ख़याल रखना।" वह कहनेवाला था, लेकिन उन्होंने देसी बनी हुई बन्दूकों के दस्ते मार-मारकर उसे आगे लगा लिया।

"सुअर...कुत्ते..." गाड़ी के डंडों के साथ चिमटकर चलते हुए अली ने रोकर कहा। प्रोफ़ेसर ने उसे मज़बूती से पकड़ रखा था। आख़िरी दफ़ा उन्हें भीड़ में ग़ायब होती हुई नईम की पुश्त नज़र आई जिस पर क़मीज़ तार-तार होकर लटक रही थी। वह सिर झुकाए चल रहा था और उसने एक बार भी पीछे मुड़कर न देखा।

कुछ देर बाद कहीं क़रीब से चन्द फ़ायरों की आवाज़ आई लेकिन कुछ लोगों ने सुना, कुछ ने न सुना क्योंकि अब वे पूरी रफ़्तार से भाग रहे थे। हमलावरों का एक लश्कर उनका पीछा कर रहा था और अमृतसर का स्टेशन एक मील के फ़ासिले पर था, जहाँ से ख़बर आई थी कि गाड़ी लाहौर जाने के लिए तैयार खड़ी है। गाड़ियोंवाले अब बैलों को पीटना बन्द करके, बोझ हलका करने को, फ़ालतू सामान उठा-उठाकर नीचे फेंक रहे थे : मिट्टी की सुराहियाँ, पतीले, रौग़नी पाये, ट्रंक, सन्दूक़, दुलाई, लकड़ी का एक टुकड़ा, देगची, तवा, बर्तन।

"मैं उतर जाऊँ ?" प्रोफ़ेसर ने आहिस्ता से पूछा।

"तुम यहीं बैठो।" अली ने ग़ुस्से से कहा और एक हाथ से उसे पकड़कर दूसरे हाथ से सामान नीचे फेंकता रहा।

स्टेशन पर उसने आयशा को उठाकर चलने की कोशिश की लेकिन कमज़ोरी और भीड़ की

---

1. एक सुगन्धित घास, बालछड़, 2. सूँघने की शक्ति।

वजह से गिर गया। फिर उठा और बेध्यानी से अकेला चल पड़ा। दरवाज़े तक जाकर लौट आया और दोबारा अध-मुई आयशा को उठाना चाहा, फिर उसे ज़मीन पर घसीटने लगा। लेकिन घमासान के रण में एक दफ़ा फिर उसका हाथ छूट गया और वह धक्के खाता हुआ अन्दर की तरफ़ बढ़ने लगा।

जब गाड़ी आहिस्ता-आहिस्ता चलनी शुरू हुई तो वह लपककर उस पर सवार हुआ।

इख़्तितामिया

(समापन)

आलिमीन पब्लिकेशन्ज़ प्रेस, लाहौर

I am moved by the fancies that are curled
Around these images and cling;
The notion of some infinitely gentle
Infinitely suffering thing
Wipe your hand across your mouth, and Laugh;
The worlds revolve like ancient women
Tathering fuel in vacant lots.

—T.S. Eliot

48

अली लाहौर के स्टेशन पर पड़ा था। सारे प्लेटफ़ॉर्म बेघर लोगों से अटे पड़े थे जो अपने फटे पुराने बिस्तर बिछाए अन्दर और बाहर हर जगह लेटे थे, बैठे थे, सो रहे थे और आहिस्ता-आहिस्ता बातें कर रहे थे। जो हिम्मतवाले थे, पेट भरने के लिए मज़दूरी करते, भीख माँगते या चोरी करते। बाक़ी कभी-कभार उठकर रेलवे के नल से पानी पी लेते और सारा वक़्त पड़े रहते। सबके चेहरे बहरहाल भूके, गन्दे और बे-तअस्सुर[1] थे। एक मंज़िल जो नज़र में थी, उस पे वे पहुँच चुके थे। उससे आगे उन्हें कुछ पता न था। अब उस सारी भीड़ पर ख़ौफ़नाक आलकस और बेपरवाही छा चुकी थी।

दिन में एकाध गाड़ी उनके भाई-बन्दों की हिन्दोस्तान से आ जाती और तक़रीबन उतने ही लोग हिन्दोस्तान जाने के लिए यहाँ से गाड़ियों पर सवार होते, या उत्तर की तरफ़ से गाड़ियों में भरकर आते और वाहगे की सरहद की तरफ़ निकल जाते। ये सब आने और जानेवाले एक ही क़बीले के लोग थे। इस इनसानी आबादी पर वह वक़्त आया था जब चेहरों और अक़ीदों[2] का फ़र्क़ मिट जाता है।

अली सिर्फ़ उस वक़्त उठता जब हिन्दोस्तान से कोई गाड़ी आती। कमज़ोर टाँगों पर चलता हुआ वह गाड़ी की सारी लम्बाई तय करता। हर एक डिब्बे में गर्दन डालकर, आँखें फाड़-फाड़कर देखता और दूसरे सिरे पर पहुँचकर वहीं बैठ जाता। देखते ही देखते गाड़ी ख़ाली हो जाती और बदबूदार, बदहाल भीड़ चीख़ती, पुकारती हुई फट पड़ती और लावे की तरह हर तरफ़ फैल जाती। हर दफ़ा ऐसा होता कि गाड़ी के सामने से गुज़रता हुआ अली भीड़ के धक्के खाकर गिर पड़ता और कुछ ही पलों में अनगिनत क़दमों के नीचे रौंदा जाता। हर दफ़ा वह चीख़ता-चिल्लाता और गालियाँ देता हुआ उठ खड़ा होता और अपनी बेकार तलाश को जारी रखता। दो रोज़ से उसने कुछ न खाया था, लेकिन यह सोचने की उसमें क़ुव्वत न थी कि वह अब तक क्योंकर ज़िन्दा था और चल-फिर और लड़-भिड़ रहा था। जो आम इनसानों में हर वक़्त ज़िन्दगी की हज़ारों छोटी-बड़ी चीज़ों पर हैरान होने की सलाहियत[3] होती है, उसमें ख़त्म हो चुकी थी। वह यह भी नहीं जानता था कि वह किसकी तलाश में था और किसका इन्तिज़ार कर रहा था। यह भी शायद ज़िन्दगी के इरतिक़ा[4] की, उसके तसलसल[5] को क़ायम रखने की कोशिश महज़[6] थी।

दूसरे दिन वह लोहे के जंगले से टेक लगाए ऊँघता था कि गरजती हुई एक गाड़ी प्लेटफ़ॉर्म पर आकर रुकी। वह चौंककर उठा, मगर उस गाड़ी में से कोई न उतरा क्योंकि वह उत्तर की तरफ़ से भरी हुई आई थी और हिन्दोस्तान जा रही थी। वह फिर जंगले से लगकर बैठ गया। गाड़ी के दरवाज़े और खिड़कियाँ बन्द थे और चन्द एक खुली खिड़कियों में से बच्चों के-ऐसे ज़र्द और

1. भावहीन, 2. विश्वासों, 3. योग्यता, 4. विकास, 5. निरन्तरता, 6. मात्र।

ख़ौफ़ज़दा चेहरे झाँक रहे थे। गाड़ी मामूल से ज़्यादा अरसे तक रुकी रही। फिर उसका इंजन अलग होकर छक-छक करता हुआ ताज़ा होने के लिए चला गया। चारों तरफ़ कशीदगी[1] का आरिज़ी[2] सन्नाटा फैल गया और ग़ैर-मामूली तौर पर बढ़ता गया।

फिर बाहर एक शोर उठा और वावेला करते हुए लोगों की छोटी-सी भीड़ स्टेशन पर आई। सामने आते ही उन बज़ाहिर ग़ैर-मुसल्लह[3] लोगों में से एक ने जेब से पिस्तौल निकालकर हवा में दो फ़ायर किए। दूसरे ने उसके हाथ से पिस्तौल छीनकर खिड़की के शीशे से मुँह लगाकर बाहर देखते हुए एक कमज़ोर बच्चे का निशाना लिया। एक, दो, तीन, चार...फिर प्लेटफ़ॉर्म पर से तमाम मुर्दा और नीम-मुर्दा लोग हैरतअंगेज़[4] जोश और फुरती के साथ उठकर गाड़ी पर टूट पड़े। दरवाज़ों और खिड़कियों के टूटने की आवाज़ इक्का-दुक्का होते हुए फ़ायरों की ख़ुश्क, पटाख़ेदार आवाज़ों से रुल-मिल गई। उनमें शामिल मरनेवालों और भागनेवालों की चीख़ों की आवाज़ें और हमलावरों की हाहाकार थी। बहुत-से लोग कूदकर गाड़ी से निकल भागे और हर तरफ़ से घिर गए, कुछ अन्दर ही रहे। फ़िज़ा में ताज़ा इनसानी ख़ून की बू फैल गई। अली काहिली से इस सारे मंज़र को देखता रहा। फिर उकताकर उसने आँखें बन्द कर लीं और सिर जंगले पर टेक दिया। "इनके साथवाले फ़ौजी कहाँ गए ?" उसने सोचा।

फिर उसने आँखें खोलकर दाहिनी तरफ़ देखा। यह एक औरत की आवाज़ थी जो बहुत क़रीब से आई थी। वावेला करती हुई वह एक अधेड़ उम्र की मोटी-सी औरत थी जो उसे इस तरह अपनी तरफ़ देखते हुए पाकर अचानक रुक गई। उसके होंठ बराबर चल रहे थे, "ज़ालिम...क़ातिल...मेरे ख़ाविन्द को, मेरे बच्चे को मार दिया...मुझे भी मार दो...मुझे क्यों छोड़ दिया, क्यों छोड़ दिया...क्यों..."

औरत की आँखें अहमक़ों की तरह कोरी थीं और उसके चेहरे पर भी, ख़ौफ़ के अलावा, शदीद हमाक़त[5] बरस रही थी। किसी हमाक़त-ज़दा चेहरे को अपने से मुख़ातिब[6] देखकर बाज़ दफ़ा जो बिला-वजह ग़ुस्सा आ जाता है, उससे अली झुँझला गया। फिर अचानक एक क़तई बे-वजह और ग़ैर-ज़रूरी जज़्बे ने उसे अपनी गिरिफ़्त[7] में ले लिया। उस औरत को मार गिराने, उसका ख़ून बहाने की ताक़तवर और पागल ख़्वाहिश ने उसे पलक झपकने में उठाकर खड़ा कर दिया।

औरत बोलते-बोलते रुक गई। फिर वह एक क़दम पीछे हटी और वक़्त बरबाद किए बग़ैर दोनों हाथों से पकड़कर छाती पर से अपना मलमल का कुर्ता दामन तक फाड़ डाला। नीचे उसकी जिल्द साफ़ गन्दुमी रंग की थी और दो भारी-भारी फूले हुए थन मटकों की तरह पेट पर लटक रहे थे। उसने दोनों हाथों से मुश्किल के साथ उन्हें ऊपर उठाया और आगे बढ़ी, "मुझे मत मारो...ख़ुदा के लिए...यह देखो, यह..." उसने थन अली की ठोड़ी के नीचे ठूँस दिए, "रहम करो। मैं तुम्हारी माँ हूँ।"

अली ने नफ़रत से मुँह फेर लिया। दो घंटे के अन्दर-अन्दर फिर से अमन हो गया। सिर्फ़ रास्ता गुज़रनेवाले लोग बहुत बड़ी तादाद में जमा अन्दर और बाहर बिखरी हुई लाशों का नज़्ज़ारा कर रहे थे। इस वाक़िए के बाद अली की रही-सही भूक भी ग़ायब हो गई।

तीसरे दिन किसी ने आहिस्ता से उसके कन्धे पर हाथ रखा। यह बानो थी।

"मैंने तुम्हें अम्बाले के स्टेशन पर देखा था," वह उसके पास बैठ गई, "तुम्हारे साथ एक लँगड़ा-सा बुड्ढा था। हमारी गाड़ी वहाँ से गुज़री थी। यहाँ क्या कर रहे हो ?"

वह ख़ामोशी से उसे देखता रहा।

1. तनाव, 2. अस्थायी, 3. निहत्थे, 4. आश्चर्यजनक, 5. मूर्खता, 6. सम्बोधित, 7. पकड़।

''तुमको गाड़ी कहाँ से मिली ? और तुम्हारी बीवी...'' बानो ने चारों तरफ़ देखा।

अली ने भी उसकी निगाहों के साथ-साथ चारों तरफ़ नज़र दौड़ाई, फिर कमज़ोरी के मारे आँखें बन्द कर लीं।

''मैं हर रोज़ यहाँ आती हूँ, अपने लड़के की तलाश में...मैंने पहले तो तुम्हें नहीं देखा।''

''तुम्हारा बेटा...भी है ?'' अली ने आँखें खोलकर पहली दफ़ा बात की।

''हाँ...कमाल...मेरा बच्चा।''

सूरज डूब रहा था। लाशों की मौजूदगी की वजह से एक ख़ौफ़नाक मतली-आवर बू फैलना शुरू हो गई थी। वह ख़ामोशी से बैठी अली को देखती रही। उस वक़्त अचानक उसके दिल में अपाहिजों की तरह जंगले के साथ आँखें मूँदकर बैठे हुए उस शख़्स के लिए वह जज़्बा पैदा हुआ जो सिर्फ़ औरतों में होता है।

''चलो...मेरे साथ।'' उसने अली का कन्धा हिलाया।

वह उठ खड़ा हुआ।

''तुम्हारा सामान कहाँ है ?''

''नहीं है।''

वह ख़ामोशी से चलते हुए बाहर निकल आए। फिर बानो ने उसकी तरफ़ देखा।

''तुम चल नहीं सकते,'' उसने कहा, ''मेरे पास कुछ पैसे हैं।''

मुश्किल से अली को ताँगे की पिछली सीट पर सवार कराके वह उसके बराबर बैठ गई और बताने लगी, ''यहाँ मुझे कपड़े के कारख़ाने में काम मिल गया है। वहीं नूरदीन भी मिल गया। नूरदीन को तुम जानते हो ? फ़िटर, जो वहाँ हमारे साथ था। हम झोंपड़ियों में रहते हैं। उसने मेरी झोंपड़ी बनाने में मदद की। कमाल गाड़ी में मुझसे बिछड़ गया था, मगर वह ज़रूर बच निकला होगा। बारह साल का है पर बड़ा होशियार है, अपने बाप की तरह। उसका बाप। सुअर। तुम्हारी हालत बिलकुल बिगड़ चुकी है, ऐं ?''

ताँगा अब एक टूटी-फूटी सड़क पर हिचकोले खाता हुआ जा रहा था। झुटपुटे का वक़्त था और चारों तरफ़ फैला हुआ उपलों का धुआँ आँखों को लग रहा था। अली ने पथराई हुई आँखों से अपने साथ बैठी हुई औरत को देखा और अँधेरे में उसे पहचानने की कोशिश की।

''मैं सोया भी नहीं...'' फिर उसने सपाट लहजे में कहा और उसके कन्धे पर सिर रखकर थोड़ी देर में गहरी नींद सो गया। बानो उसे गिरने से बचाने के लिए दोनों बाज़ुओं में बच्चे की तरह समेटे बैठी रही।

जब उसकी आँख खुली तो उसने देखा कि ताज़ा फूँस की बनी हुई, नीची-सी छतवाली झोंपड़ी में खाट पर पड़ा था। झोंपड़ी साफ़-सुथरी और ताज़ा लिपी हुई थी और सुबह की नर्म धूप दरवाज़े के रास्ते अन्दर आ रही थी। उसने दिमाग़ पर ज़ोर देकर याद करने की कोशिश की, फिर कुहनियों के बल उठा और दोबारा ग़श खा गया।

दूसरी बार जब उसकी आँख खुली तो धूप ढल रही थी और बानो झोंपड़ी में कोई काम करती हुई चल-फिर रही थी। उसे होश में पाकर वह पास आकर बैठ गई।

''अब तुम ठीक हो जाओगे। मैंने अभी-अभी तुम्हें दूध पिलाया है।''

''दूध ?''

''शुक्र है, तुम्हारी जान बच गई। पहले तीन रोज़ तक कोई उम्मीद न थी।''

''क्या हुआ था ?'' बात करने के लिए उसे जो ताक़त सर्फ़ करनी पड़ रही थी, उससे उसे अपनी कमज़ोरी का अन्दाज़ा हुआ।

"बुख़ार।"

"कै रोज़ ?"

"आज छठा दिन है।"

"इतने दिन तुम ?"

"हाँ," बानो हँसी, "पहले तीन दिन काम पर नहीं गई। अब काम पर भी जाती हूँ। नूरदीन भी आता है। सिर्फ़ स्टेशन नहीं जा सकी। आज मैंने सफ़ाई की है, फ़र्श लीपा है।"

अली ने कुछ कहने की कोशिश की लेकिन उसकी ताक़त फिर ख़त्म हो गई।

धीरे-धीरे उसकी हालत सँभलना शुरू हुई। पहले कुछ दिन वह सिर्फ़ उठकर बैठ सकता था, फिर खाट को पकड़कर खड़ा होने लगा। फिर उसने दीवारों का सहारा लेकर चलना शुरू किया। बानो उसका खाना तैयार करके काम पर जाती, शाम को वापस आकर फिर खाना बनाती और झोंपड़ी की सफ़ाई करती और उसे फ़र्श पर चीज़ें बिखेरने पर बच्चों की तरह झिड़कती। फिर उसे लिटाकर ज़मीन पर बैठ जाती और ख़ाली-ख़ाली नज़रों से देखती रहती। कभी-कभी नूरदीन भी आ जाता तो वे बातें करने लगते। बानो हमेशा ज़मीन पर सोती।

जब वह पहली बार बग़ैर सहारे के चलकर कोठरी से बाहर निकला तो ख़ुशी से बाज़ू फैलाकर लम्बा साँस लिया। शाम पड़ रही थी। झोंपड़ी की दीवार से पुश्त लगाकर साथ-साथ बैठे वह और बानो देर तक बातें करते रहे। अब हर तरफ़ सन्नाटा बढ़ रहा था। आस-पास की झोंपड़ियों में कहीं-कहीं दीये जल रहे थे। उनसे परे एक कुत्ता लगातार भौंक रहा था। यह पतझड़ के मौसम की चमकदार और ठंडी रात थी। चाँद के गिर्द आसमान सब्ज़ रंग का था और हवा पल-पल हल्की होती जा रही थी।

"मुझे अपनी कहानी सुनाओ।" अली ने कहा।

बानो उठी और अन्दर से एक मोटा कपड़ा ले आई, जिसे उसने अली की टाँगों पर डाल दिया। फिर उसने आँखें सुकेड़कर आसमान की तरफ़ देखा। रात के सियाह और ख़ामोश परिन्दे चाँद के सामने से गुज़र रहे थे। यकसाँ, उदास आवाज़ में उसने अपनी कहानी बयान की : "मेरी सीधी-सादी कहानी है। तुम्हें क्या मिलेगा। नागपुर के पास एक गाँव में, जिसका नाम कल्याणपुर था, मैं पैदा हुई। इस नाम का पंजाब में एक शहर भी है। मेरा नाम शीला था। हम गाँव के अछूत थे। मज़हब ईसाई। अंग्रेज़ जो सबके हाकिम थे वे भी ईसाई थे। पता नहीं हम अछूत क्यों थे ? यह बात अभी तक मेरी समझ में नहीं आई। लेकिन हम उनके नज़दीक भी न जा सकते थे। अंग्रेज़ों के नहीं, गाँववालों के छोटे-बड़े सबके नज़दीक बस हम जा ही न सकते थे। अगर हम ग़लती से किसी के साथ छू जाते, तो हमें उसकी सज़ा मिलती। लेकिन सज़ा उसे भी मिलती, यह कि जब तक वह नहा-धो न लेता, घर न जा सकता और जिसको छू लेता, वह भ्रष्ट हो जाता। चुनाँचे हमारी नापाकी[1] छूत की बीमारी की तरह थी। मज़ा उस वक़्त आता जब हम सर्दियों की सुबहों को लालू के इन्तिज़ार में छुपकर बैठ जाते और दबे पाँव निकलकर उसे छू लेते और शोर मचाते हुए भाग जाते। वह गाँव का मुसलमान दुकानदार था और निरा अहमक़ था और लँगड़ा होने की वजह से भाग न सकता था। अब सारे गाँव को पता चल जाता कि लालू भ्रष्ट हो गया है। फिर क्या था जनाब, अब कोई हिन्दू गाहक उसकी दुकान के पास भी न फटकेगा। वह हमें गालियाँ देता हुआ नदी की तरफ़ चला जाता और काँपता हुआ वापस आता। हम दूर खड़े होकर देखते और ख़ुशी से तालियाँ बजाते। हमें पता था कि यह बात मुस्तक़िल मज़ाक़ बन चुकी थी, इसलिए हमें उसकी सज़ा न मिलेगी। कभी-कभी भ्रष्ट हो जाने पर लालू ख़ामोशी से हाथ बाँधकर गली के दरमियान खड़ा हो जाता, "ख़ुदा के लिए शोर न करो, कुत्तो। आज बड़ी सर्दी है, मैं मर जाऊँगा।" वह कहता, फिर दुकान खोलकर

1. अपवित्रता।

हमें थोड़ा-थोड़ा गुड़ देता। "अब अच्छे लोगों की तरह चुपचाप चले जाओ कुत्ते के बच्चो, शाबाश।" वह कहता। हम ख़ामोशी से चले आते। इस तरह से वह हमारी ऊपर की आमदनी का मुस्तक़िल ज़रीआ बन गया। हम गलियों की सफ़ाई का काम करते थे और गाँववालों की मुश्तरका जायदाद थे। घरों के अन्दर हम सब मवेशियों के अहाते तक जा सकते थे, गोबर उठाने के लिए। दूध देनेवाले जानवरों को छूने की इजाज़त न थी। हमारे बर्तन अलग थे जिनमें हमें अनाज और दूसरी चीज़ें दी जातीं। और हमारा घर गाँव के बाहर जोहड़ के किनारे था। आस-पास और कोई घर न था। खेतीबाड़ी करने की हमें इजाज़त न थी। ज्यूँही हम लोग होश सँभालते, गलियों की सफ़ाई के काम पर लगा दिए जाते। मैं होश सँभालने से कुछ पहले ही काम पर लग गई। यह बड़ा अजीब वाक़िआ है।

"मेरा एक भाई था जो माँ-बाप के साथ काम पर जाया करता था। मैं बहुत छोटी थी, मगर मेरा यह भाई बड़ा अजीब था। मुझे सिर्फ़ इतना याद है कि वह हर वक़्त किसी-न-किसी बात पर बाप के साथ लड़ता रहता था। शायद वह कामचोर था। हर रोज़ मेरा बाप घसीटकर उसे घर से निकालता और झाड़ू से मारता हुआ काम पर ले जाता, लेकिन वह बड़ा ज़हीन था। उसे सौ तक गिनती फ़र-फ़र याद थी जो मेरे माँ-बाप में से किसी को न आती थी, और खेतीबाड़ी हमारा काम न था पर उसे हर फ़सल के बीजने-काटने के तरीक़े और उनके मौसम याद थे, और सिर्फ़ सात दिन की बोई हुई फ़सल को दूर से देखकर बता सकता था कि कौन-सी फ़सल का खेत है और इस तरह की और बहुत-सी बातें थीं जिनमें वह गाँव के लड़कों में सबसे होशियार था। ख़ैर एक दिन क्या हुआ कि मेरे बाप ने उसे ख़ूब पीटा और वह रोता-रोता और गालियाँ देता हुआ सो गया। रात का जाने क्या वक़्त था जब उसने उठकर मुझे कमर पर लादा और बाहर निकल आया। मैं बहुत नींद में थी। जब मेरी आँख खुली, मैंने अपने आपको उसकी पुश्त पर पाया। वह जोहड़ के किनारे-किनारे चुपचाप चला जा रहा था। रात बड़ी सुनसान थी और जोहड़ के पानी में सितारों का अक्स पड़ रहा था। एक जगह पर रुककर उसने मुझे उतार दिया।

"अब मैं नहाऊँगा।" उसने कहा और कपड़े उतारकर पानी में कूद पड़ा। देर तक डुबकियाँ लगाने के बाद वह बाहर निकल आया और नंग-धड़ंग मेरे सामने खड़ा होकर बोला, "अब मैं पाक[1] हूँ ? बता।" मेरी बिलकुल ना-समझी की उम्र थी। जो मेरी समझ में आया, मैंने कह दिया, और मैंने कहा, "नहीं।" वह ग़ुस्से से भरी हुई नज़रों से मुझे घूरता हुआ दोबारा ख़ामोशी से पानी में उतर गया और ख़ूब मिट्टी मल-मलकर नहाया। फिर उसने बाहर निकलकर अपना सवाल दुहराया, "अब पाक हूँ ? बता।" मुझे पता था वह पाक नहीं है। मेरे दोबारा नहीं कहने पर उसने ज़ोर का चाँटा मेरे गाल पर रसीद किया, फिर दूसरा फिर तीसरा, फिर चौथा, यहाँ तक कि मेरे कान सनसनाने लगे और मुझे लगा जैसे अब मैं उम्र भर के लिए बहरी हो गई। मगर उस वक़्त ख़ौफ़ के मारे चीख़ भी मेरे हलक़ से न निकली। उसने ख़ामोशी से कपड़े पहने और मेरा हाथ पकड़कर घर की तरफ़ चल पड़ा। घर के नज़दीक पहुँचकर उसने बड़े आदमियों की तरह सीने पर हाथ बाँधे और मेरे सामने खड़ा हो गया, "अब मैं गंगा में जाकर नहाऊँगा और पढ़ूँगा, मगर एक-न-एक दिन ज़रूर वापस आऊँगा।" यह कहकर वह अँधेरे में ग़ायब हो गया। मैं बहुत छोटी थी लेकिन उस रात उसने जो कुछ कहा, एक-एक लफ़्ज़ मेरे ज़ेहन में मौजूद है। उस रात बड़ी सर्दी और सन्नाटा था।

"अब मैं उसकी जगह पर काम करने लगी। कई साल इसी तरह गुज़र गए और कोई ख़ास वाक़िआ न हुआ। सिर्फ़ मेरी माँ एक साल हैज़े में मर गई। अब मैं और मेरा बाप दोनों रहते थे और मैं सयानी हो चली थी। एक रोज़ गाँव के ज़मींदार ने मुझे अपने मेहमानख़ाने में बुलाया और बाक़ी सब लोगों को बाहर निकाल दिया। मैंने सोचा, हो न हो, कोई गाय भ्रष्ट हो गई है और अब

1. पवित्र।

यह मुझे जान से मारनेवाला है। लेकिन उसने मुझे अपने पास बिठा लिया और बोला, "अरी पगली, औरतों के साथ सोने से भी कोई भ्रष्ट होता है।" मैं उस वक़्त बारह बरस की थी। शाम को ख़ुश-ख़ुश वहाँ से लौट आई।

अब मैं उसके साथ रहने लगी। मुझे पता चला कि यह एक आम-फ़हम[1] बल्कि बड़े क़ायदे की बात थी। और वह शख़्स बुरा आदमी न था, मोटे जिस्म का तन्दुरुस्त बुड्‌ढा था और ख़ुश-मिज़ाज था। सबसे बड़ी बात यह कि मज़दूरी किए बग़ैर मुझे अच्छा खाने को और पहनने को मिल जाता था और मैं आराम में थी। सिर्फ़ कभी-कभी जब वह मेरे ऊपर सवार होकर पागलों की तरह कूदने लगता तो मुझे ख़तरा होता कि अब मैं कुचलकर मर जाऊँगी। लेकिन यह सिलसिला ज़्यादा देर तक न चल सका। उसने मुझे एक और शख़्स के सिपुर्द कर दिया। यह शख़्स भी ज़मींदार था और उम्र में ज़रा कम था, पर उसे बड़ा गन्दा पसीना आता था। भई क्या बदबूदार शख़्स था। उसके साथ लगने से मेरा बदन भी ख़राब हो जाता और मुझे कई-कई बार नहाना पड़ता। उसके बाद जिस आदमी के पास मैं रही, वह बुड्‌ढा और बिलकुल निकम्मा आदमी था और किसी काम के लायक़ न था। मैंने तीसरे ही दिन उसकी दाढ़ी नोच डाली, जिस पर उसने मुझे पकड़कर ख़ूब मारा। काफ़ी दिनों तक ऐसा ही चलता रहा।

"उसी बीच मेरा बाप बुढ़ापे से मर गया। उसके चन्द रोज़ बाद मदन कहीं से आ गया। यह मेरा भाई था। उसे देखकर मैं बहुत ख़ुश हुई। एक तो मैं अकेली थी, दूसरे गाँव के लोगों से बिलकुल उकता चुकी थी और फिर वह मेरा भाई था। जब उसने मुझे साथ चलने को कहा तो मैं ख़ुशी-ख़ुशी उसके हमराह जाने को तैयार हो गई। एक रोज़ शाम के वक़्त चुपके से हमने गाँव छोड़ दिया। उस वक़्त हम दोनों बातें करते हुए परे जा रहे थे और पीछे गाँव की दीवारें अँधेरे में ग़ायब होती जा रही थीं तो एक बार भी मेरे दिल में ख़याल न आया कि अब मैं कभी लौटकर यहाँ न आऊँगी। कैसी अजीब बात है। उस गाँव में मैं पैदा हुई थी और वहाँ मेरा घर था।

"रास्ते में मदन ने बताया कि वह छह बरस तक स्कूल में पढ़ता रहा था और इसके अलावा भी उसने कई किताबें पढ़ी थीं जो स्कूल में नहीं पढ़ाई जातीं और यह कि अब वह एक बेहद अहम काम में मसरूफ़ था और उसके साथ जो लोग काम करते थे, जानते थे कि वह अछूत है मगर कोई एतिराज़ न करते थे। मैं यह सुनकर बहुत ख़ुश हुई। दो रोज़ तक हम दक्खिन की तरफ़ सफ़र करते रहे। उसके बाद एक छोटे-से गाँव में पहुँचे। वहाँ मैंने उसके साथियों को देखा। वे अजीबोग़रीब क़िस्म के लोग थे—नौजवान और ख़तरनाक। काफ़ी दिनों के बाद मुझे पता चला कि यह दहशतपसन्दों[2] का गिरोह था जो ज़्यादातर रेलगाड़ियों को बारूद से उड़ाने और डाकख़ानों के तार काटने का काम करता है। यह मालूम करके मुझे बहुत अफ़सोस हुआ क्योंकि मदन मेरे लिए छोटे-मोटे देवता का दर्जा रखता था, पर अब क्या किया जा सकता था। यह जगह बहरहाल गाँव से ज़्यादा दिलचस्प थी।

"अब हमारी ज़िन्दगी ख़ानाबदोशों की तरह थी, चन्द रोज़ यहाँ, चन्द रोज़ वहाँ। हम मुस्तक़िल गाँव-गाँव घूमते थे और रात के अँधेरे में सफ़र करते थे। वे लोग दिन भर अपने हथियार साफ़ करते रहते, रात के लिए स्कीमें बनाते या सोते रहते। वे बड़े ख़तरनाक तरीक़े पर बात करते और कभी-कभी बहस के दौरान एक-दूसरे के साथ लड़ने-मरने पर तैयार हो जाते। अकसर वे रात-रात भर बाहर रहते और सुबह के वक़्त भूके और बदहाल होकर लौटते। पुलिस हर वक़्त हमारे पीछे लगी रहती और कभी-कभी हमें बहुत जल्दी में किसी जगह से भागना पड़ता। मुझको वे कोई बात न बताते, सिर्फ़ हुक्म देते। मैं दिल में उनसे जलने लगी थी और मेरा जी करता था कि किसी रोज़ मैं भी उनके साथ जाकर वह सब कुछ करके दिखाऊँ जो वे करते थे और मुझे पता था कि मैं वह

1. सुबोध, 2. आतंकवादियों।

सब कर सकती थी मगर मुझे कभी मौक़ा न मिला। अकसर ऐसा होता कि रात की मुहिम[1] के बाद जब वे लौटते तो एकाध आदमी उनमें से कम होता। मुझको वे कुछ न बताते, मगर मुझे पता चल जाता कि वह पकड़ा गया है या मारा जा चुका है। यह कारोबार ही ऐसा था, तुम जानते हो, ज़िन्दगी, मौत, ख़तरा। उन वक़्तों में यह चीज़ें मामूल[2] बन गई थीं। मुझे कभी पता न चल सका कि किन लोगों की ख़ातिर यह गिरोह काम कर रहा था, लेकिन हमेशा ऐसा होता कि चन्द रोज़ के बाद कम होनेवाले की जगह कोई और आकर ले लेता और कोई महसूस भी न करता। मुझे मदन का बड़ा ख़तरा रहता।

''उसी ज़माने में एक शख़्स हमारे साथ आकर रहा। वह बड़ा अजीब शख़्स था। बहुत कम वह उन लोगों के साथ बाहर काम पर जाता, सिर्फ़ बैठा हुआ बहस किया करता। मेरी उसकी दोस्ती हो गई। वह उन सबमें दिलकश और पुर-अमन[3] था। वह पहला ही शख़्स था जिसके साथ मुझे दिल से मुहब्बत हुई थी। हालाँकि चन्द रोज़ बाद वह हमें छोड़कर भाग गया, लेकिन मुझे अब तक याद है। पहला शख़्स जिसे हम दिल से प्यार करते हैं, हम कभी नहीं भूलते। बाद में आनेवाले सब लोगों में उसकी झलक दिखाई देती है...तुम बिलकुल उसकी तरह चलते हो।

''उसके जाने के चन्द महीने के बाद एक रोज़ जब मैं अकेली अँधेरे में बैठी थी और सब लोग बाहर जा चुके थे तो अचानक मुझे एक बड़ा ख़ौफ़नाक ख़याल आया कि अब मैं हमेशा के लिए बच्चा जनने के क़ाबिल नहीं रही। उस रात मैं बड़े ज़ोर से, बड़े दुख के साथ रोती रही और पहली बार गाँव के उन सब लोगों को कोसा जिनके साथ मैं रह चुकी थी। उस वक़्त मैं पन्द्रह बरस की थी। यूँ सोचो तो हँसी आती है।

''फिर वह हुआ, जिसका मुझे अन्देशा था। एक रोज़ मदन वापस न आया। वह कभी वापस न आया। मैं थोड़ा-सा रोई, फिर ठीक हो गई। क्या हो सकता था। इस हादसे के लिए मैं बड़े अरसे से तैयार थी। चन्द महीने इसी तरह गुज़र गए। मैंने ज़्यादा मज़बूती से अपने आपको गिरोह के साथ वाबस्ता कर दिया। फिर एक शख़्स ठाकुर हमारे साथ आकर रहा। उसने एक रोज़ मुझसे कहा, 'तुम हिन्दू हो जाओ। मैं तुम्हारे साथ शादी कर लूँ।' 'क्या फ़र्क़ पड़ता है।' मैंने कहा। फिर उन्होंने ख़ुद ही किसी तरीक़े से, जो अब मुझे याद नहीं रहा, मुझे हिन्दू किया और मेरी शादी कर दी। मुझे इससे दिलचस्पी न थी, मगर इस बात से मुझे बड़ी अजीब-सी ख़ुशी हुई कि उम्र में पहली बार बाक़ायदा मेरी शादी हो रही थी। कुछ अरसे बाद वह भी मारा गया।

''अब गिरोह टूटना शुरू हुआ। वे लोग अपनी जानों से खेल रहे थे। मेरी कौन परवाह करता था। कुछ मारे गए, कुछ पकड़ लिए गए, यहाँ तक कि एक रोज़ मैं अकेली रह गई। शीला ठाकुर मेरा नाम था।

''उसके बाद...कोई ख़ास बात न हुई। तुम्हें पता ही है। मैं वहाँ आ गई जहाँ तुमने मुझे देखा। मगर मैं तुमसे कई बरस पहले वहाँ पहुँची और कपड़े के कारख़ाने में काम शुरू किया। वहीं पर मैं लाल से मिली, जो कारख़ाने में 'टाइमकीपर' था। वह बड़ा मेहरबान और नर्मदिल आदमी था। मुझे कारख़ाने के काम की आदत न थी, इसलिए मैं अकसर देर से पहुँचती, लेकिन वह कभी मेरा 'टाइम' न काटता और मेरे साथ बड़ी मुहब्बत से पेश आता। क्योंकि मैं अकेली थी, वह कभी-कभार मेरी ख़ैरियत पूछने के लिए घर की तरफ़ भी आ निकलता। फिर हम इकट्ठे रहने लगे। वह बड़े अच्छे दिल का आदमी था। यह उसकी मेहरबानी थी कि एक रोज़ उसने कहा, ''तुम मुसलमान हो जाओ और मेरे साथ निकाह कर लो। इस तरह ठीक नहीं।'' मैंने कहा, ''मुझे कुछ पता नहीं। बस मैं तुम्हारे साथ रहना चाहती हूँ।'' उसने मुझे मुसलमान किया, मेरा नाम बानो रखा और हमारा निकाह हो गया। उसके बाद दो ख़ास वाक़िए हुए। एक तो यह कि मुझे उससे वाक़ई मुहब्बत हो

1. कठिन काम, 2. नित्य नियम, 3. शान्तिमय।

गई और मैंने उसकी ग़ैर-मौजूदगी में उसके मुतअल्लिक़ सोचना और उसका इन्तिज़ार करना शुरू कर किया। दूसरा वाक़िआ यह कि कमाल पैदा हुआ। उसकी पैदाइश से कई महीने पहले जब मुझे इस बात का पता चला तो मैं ख़ुशी के मारे बेहाल हो गई और मैंने लाल के और सारी दुनिया के अगले-पिछले तमाम गुनाह मुआफ़ कर दिए। उसकी पैदाइश के दो साल बाद लाल एक दूसरी औरत के साथ जाकर रहने लगा। अब भी वह कभी-कभी मेरे पास आता था और जब भी वह आता, मैं ख़ुशी से उसके साथ रहती थी क्योंकि मैंने उससे मिलकर बड़ी राहत पाई थी और मुझे उससे बड़ी मुहब्बत थी और फिर वह अभी तक उसी तरह मासूम और साफ़-दिल था, लेकिन सवाल मेहरबानी और नर्मदिली का नहीं, सवाल यह है कि मर्द 'एक' औरत के साथ रह सकता है या कि नहीं, और मेरा ख़याल है कि नहीं रह सकता। मैंने उसे मुआफ़ कर दिया था। आहिस्ता-आहिस्ता उसने मुझे बिलकुल छोड़ दिया। अब मैंने फिर काम शुरू कर दिया। हर रोज़ मेरी उसकी कारख़ाने के दरवाज़े पर मुलाक़ात होती और वह हँसकर मेरा हाल पूछता और मैं भी हँसकर जवाब देती। मैं अलग रहती थी और ख़ुद मेहनत करके खाती थी, मैं क्यों नाराज़ होती ?

"जब तुम आए, तो मैं अकेली रह रही थी। एक रोज़ तुम्हें पीछे से चलते हुए देखकर चौंक पड़ी। तुम्हारी चाल...हज़ारों आदमियों में मैं उसे पहचान लेती हूँ। पर छोड़ो यह बेकार क़िस्सा है। उसके बाद यूनियन और हड़तालें और पता नहीं क्या-क्या हुआ। तुम्हें तो पता ही है। कई बार मुझे निकाला गया, मगर मैं किसी-न-किसी तरह उसी शहर में रही और काम करती रही। फिर यह हिन्दू और मुसलमान का झगड़ा चल निकला। मुझे इस सारे क़िस्से से कोई दिलचस्पी न थी मगर चूँकि मेरा बच्चा था और वह मुसलमान था, उसे लेकर इधर आ जाना पड़ा। रास्ते में वह भी बिछड़ गया। मेरी ज़िन्दगी की सीधी-सादी कहानी है, इसमें कोई ख़ास बात नहीं। तुम अभी कमज़ोर हो, इतनी ठंडक में बाहर मत बैठो। चलो अब अन्दर..."

अन्दर झोंपड़ी के बीच में खड़े होकर अली ने एक भरपूर नज़र उस पर डाली। वह औरत जो उससे दस बरस बड़ी थी, उसका मेहरबान और निडर चेहरा था और रौशन आँखें थी और उसका जिस्म अभी ढला नहीं था। वह बला की औरत थी।

"तुम वहाँ जाओ।" अली ने चारपाई की तरफ़ इशारा करके कहा। बानो दुब्धा में पड़ गई लेकिन उसकी भारी निगाहों के सामने ख़ामोशी से जाकर चारपाई पर बैठ गई। अली सीने पर हाथ बाँधे ख़ाली-ख़ाली नज़रों से दीए की लौ को देखता रहा, फिर कोने में से एक रस्सी उठाकर झोंपड़ी के आर-पार बाँधने लगा। जब बाँध चुका तो एक मोटा कपड़ा उस पर फैला दिया जिसने कोठरी को दो हिस्सों में तक़सीम कर दिया।

"यह क्या करते हो ?" बानो की आवाज़ आई।

अली ख़ामोशी से ज़मीन पर अपने लिए चादर बिछाता रहा। फिर उसने कहा, "कल से मैं नूरदीन के साथ रहूँगा।"

उस रात उसे देर तक पर्दे के दूसरी तरफ़ औरत के आहिस्ता-आहिस्ता रोने की आवाज़ें आती रहीं।

49

वह लाहौर के एक इलाक़े की एक पुरानी दो-मंज़िला कोठी थी जिसका एक हिस्सा आग की भेंट हो चुका था। बिजली का सिलसिला उसी ज़माने से टूटा हुआ था और उसके बड़े-बड़े कमरों और लम्बे बरामदों में शाम से ही तेल के लैम्पों की मद्धिम, उदास रौशनी फैल जाती थी। अन्दर दीवारों पर से तमाम तस्वीरें उतार ली गई थीं। जब तस्वीरें अभी उतारी नहीं गई थीं तो वे चारों तरफ़

दीवारों पर लगी थीं और उनमें मुअज़्ज़ज़ चेहरोंवाले राय बहादुर अकेले और फ़ैमिली ग्रुपों में नुमायाँ जगह पर बैठे और अंग्रेज़ कमिश्नरों और डिप्टी कमिश्नरों के साथ ग़ैर-नुमायाँ जगहों पर खड़े थे। मज़े की बात यह थी कि जिन तस्वीरों में वे ग़ैर-नुमायाँ थे, उन्हें दीवारों पर नुमायाँ जगह दी गई थी। इस दिलचस्प तरतीब को देखकर उस तब्क़े की सारी समाजी ज़िन्दगी का अन्दाज़ा हो सकता था। फिर हिन्दुओं के अनगिनत देवताओं की तस्वीरों के रंगीन प्रिंट थे जिन्हें बड़े सलीक़े से फ्रेम किया गया था। यह सारी बड़ी पुर-सुकून और बेज़रर[1] तस्वीरें थीं जैसी पुरानी ख़ानदानी तस्वीरें होती हैं। यह पुराने मकीनों[2] की तस्वीरें थीं जिन्होंने घर बनाया था, मगर फिर नए मकीन आए और उन्हें पुराने मकीनों की तस्वीरें छोड़ जाने की अदा पसन्द न आई और उन्होंने सारी तस्वीरें उतारते हुए बड़े तमस्ख़र[3] के साथ सोचा कि भाई मकान बना लेने से आप कोई सदा के मकीन थोड़ा ही हो जाते हैं। अब आप तशरीफ़ ले जाइए।

फ़र्नीचर जो बचा-खुचा रह गया था, उसे चन्द कमरों में तरतीब के साथ लगाकर इस्तेमाल के क़ाबिल बना लिया गया था। फिर भी यह उम्दा और क़ीमती फ़र्नीचर था जिसकी बनावट में पुराने वक़्तों की रईसी नफ़ासत की झलक मिलती थी। निशस्त के कमरे में कोने की तिपाई पर टेलीफ़ोन पड़ा था जो अरसे से ख़ामोश था, मगर किसी-न-किसी उम्मीद में हर रोज़ झाड़ा-पोंछा जाता था। कमरों की सजावट की तरफ़ इसके अलावा और कोई ध्यान न दिया गया था।

जिसे इस सारे हंगामे में सबसे कम नुक़्सान पहुँचा था, कोठी का बाग़ था। यह शहतूत और जामुन के ऊँचे-ऊँचे पेड़ोंवाला बहुत बड़ा बाग़ था, जो पचास साल पुरानी सिंचाई की याद दिलाता था। बड़े पेड़ों के अलावा बीसियों छोटे-बड़े फलों और फूलों के पौदे थे जो चारों तरफ़ निहायत सलीक़े और तरतीब से उगाए गए थे और कोठी को आरामदेह, ठंडा और सायादार माहौल अता करते थे। सामने दो बड़े लॉन थे जिनकी घास बढ़िया क़िस्म की थी और नफ़ासत से काटी गई थी। अन्दर की तरफ़ लॉन के किनारे-किनारे गुलाब के पौदे थे। बाहर की तरफ़ खट्टे की ऊँची बाड़ थी जिसमें जगह-जगह चिड़ियों ने घोंसले बना रखे थे, जिसके पीछे से सड़क गुज़रती थी। सड़क पर से गुज़रनेवालों और लॉन पर बैठनेवालों को हर वक़्त खट्टे के पत्तों की हलकी खट्टी ख़ुशबू आती रहती। चन्द महीने की रखवाली और मेहनत के बाद, जिसमें नए कुनबे के हर आदमी ने बराबर का हिस्सा लिया था, बाग़ निखर आया और यही एक नज़्ज़ारा था, जो इस नई जगह पर इन लोगों के लिए सबसे ज़्यादा राहतबख़्श था।

पुराने ज़माने में बाग़बानों की एक फ़ौज थी जो हैड माली की निगरानी में बाग़ की देखभाल किया करती थी और मालिक लोग सिर्फ़ कुंजों में बैठकर पढ़ते थे या सोते थे या घास पर पार्टियाँ करते थे या महज़ टहलते थे। यहाँ एक बूढ़ा बेकार-सा माली हाथ लगा था और उससे ज़्यादा की उनमें ताक़त न थी। इस बात को उन्होंने ज़िन्दगी में पहली बार महसूस किया था इसलिए ख़ामोशी और रज़ामन्दी के साथ उनमें से हर एक ने उठकर बाग़ को सँवारने में अपनी-सी कोशिश की थी और जब घास उग आई और गुलाब के पौदों पर फूल आने लगे और बाग़ के रास्ते सीधे और साफ़ निकल आए और दरख़्तों के साए गहरे हो गए तो उन्हें अजीब-सी ख़ुशी महसूस हुई। "ख़ुशी की कितनी मुख़्तलिफ़ कैफ़ियतें हैं।" नजमी ने सोचा था।

उसी आम रज़ामन्दी और ख़ामोशी के साथ उन्होंने ज़िन्दगी की हर चीज़ को क़बूल कर लिया था। नजमी ने एक कान्वेंट में आर्ट पढ़ाना शुरू कर दिया था। पैसे की ज़रूरतों की वजह से कम और अपने आपको मसरूफ़ रखने की ख़ातिर ज़्यादा, हालाँकि इस बात का उसके बाप रौशन आग़ा को पता न था। परवेज़ सूबे की हुकूमत में आला अफ़सर था और एक पुरानी ओपल गाड़ी पर, जो उसने सरकार से पेशगी रुपए लेकर ख़रीदी थी, सेक्रेटरियट जाया करता था। (जो कुछ जमा-पूँजी

---

1. अहानिकारक, 2. वासियों, 3. उपहास, व्यंग्य।

वे लोग साथ लेकर चले थे, सरहद पार करते वक़्त कुछ अफ़सरों ने जो कि दोनों हुकूमतों में से किसी एक के थे, वहाँ रखवा ली थी। जहाज़ आख़िरकार न मिल सका था और उन्होंने गाड़ी पर सफ़र किया था) अरसे से वह राज मंज़िल में बिजली लगवाने की कोशिश कर रहा था।

राज मंज़िल कोठी का नाम था। उसका सारा झगड़ा था।

पतझड़ का मौसम अभी आया नहीं था लेकिन ज़मीन और आसमान के रंग मद्धिम पड़ने शुरू हो गए थे। दिनों में वह शदीद उदासी और ठहराव आ गया था जो पतझड़ के ख़ातिमे पर आता है और रात को चाँद निकलता था। रात की चाँदनी से लुत्फ़-अन्दोज़ होने के लिए आप सर्दी की वजह से ज़्यादा देर बाहर नहीं रुक सकते थे और बाग़ के रास्तों पर टहलते हुए जगह-जगह ख़ुश्क पत्तों के ढेर मिलते थे जिन्हें बाग़बान दिन भर इकट्ठा करता रहता था। शोख़ रँगों का और दिल की बेचैनी का ज़माना ख़त्म हुआ। अब यह गहरे ग़म और गहरी ख़ुशी का मौसम था। अभी कुछ रोज़ में जाड़े शुरू होंगे, जब यह तमाम जज़्बे भी ख़त्म हो जाएँगे और सिर्फ़ सर्दी और गर्मी का एहसास रह जाएगा।

बदलते हुए मौसम में कैसा जादू होता है जैसे जवान औरत मुहब्बत करती है।

परवेज़ देर से सामनेवाले बरामदे में टहल रहा था। दफ़्तर से वापस आकर उसने चाय पी थी और थोड़ी देर के लिए रौशन आग़ा के कमरे में गया था। अब अँधेरा बढ़ रहा था और हवा में ठंडक आ चली थी। वह चलते-चलते दरवाज़े के पास रुका और अन्दर से कोट उठाकर फिर बरामदे में निकल आया। अन्दर रौशन आग़ा बिस्तरे-मर्ग[1] पर थे। आज सातवाँ रोज़ था।

लम्बा चक्कर काटकर वह इमारत की पिछली तरफ़ जा निकला। उस बरामदे में चिराग़ नहीं जला था। "कई दिन से सफ़ाई भी नहीं की गई।" उसने कंकरों पर से गुज़रते हुए सोचा। उस तरफ़ घास और जंगली झाड़ियाँ बेतहाशा उग रही थीं। बाग़ के उस हिस्से की देखभाल करने की ज़रूरत न समझी गई थी। उस छोटे-से बे-तरतीब जंगल पर शाम से ही अँधेरा उतर आता था जो बरामदे तक फैल जाता था और किसी-किसी रात को गीदड़ इधर-उधर से जमा होकर शोर मचाया करते थे। बरामदे की टूटी-फूटी, सियाह काई जमी सीढ़ियाँ जो उस जंगल में उतरती थीं, नजमी की पसन्दीदा जगह थी।

परवेज़ को देखकर वह चौंक पड़ी, "भैया...कुछ हुआ ?" उसने पूछा। "पागलपन की बातें मत करो।" परवेज़ ने ग़ुस्से से कहा और आगे बढ़ गया। आगे कोठी का जला हुआ हिस्सा शुरू होता था। वह वहाँ से होता हुआ फिर सामनेवाले हिस्से में निकल आया।

कुछ देर के बाद उसने ऊपर की मंज़िल में रौशन आग़ा के कमरे का दरवाज़ा ज़रा-सा खोलकर देखा। अज़रा उसकी तरफ़ पुश्त किए खड़ी शाल ठीक कर रही थी। रौशन आग़ा ने कमज़ोर आवाज़ में कुछ पूछा, "आए थे। आप सो रहे थे बाबा।" अज़रा ने कहा। झुककर चादर ठीक की और बाहर निकल आई। "रौशन आग़ा तुम्हें पूछ रहे थे। मैं थोड़ी देर के लिए अपने कमरे को जा रही हूँ।" उसने परवेज़ से कहा और इत्मीनान से चलती हुई गैलरी में ग़ायब हो गई।

परवेज़ ने झिझकते हुए अन्दर क़दम रखा, रुका, फिर बाहर निकलकर आहिस्ता से दरवाज़ा बन्द कर दिया। नीचे आकर उसने नजमी के कमरे से उसका कोट उठाया और उसके पास सीढ़ियों पर जा बैठा।

"कोट पहन लो। सर्दी हो रही है।"

चाँद की रौशनी बरामदे के एक हिस्से पर पड़ रही थी। उनके सामने लम्बी घास अँधेरे में सरसरा रही थी। परवेज़ ने कोट का कालर खड़ा कर लिया।

"रौशन आग़ा को मालूम हो गया है तुम्हारे कान्वेन्ट जाने का। अज़रा बता रही थी।"

---

1. मृत्यु-शय्या।

नजमी ने सहमकर अपने भाई को देखा।

"नजमी।"

"हूँ !"

"रौशन आग़ा तकलीफ़ में हैं।"

"भैया..."

"अभी फिर उन्होंने मेरे बारे में पूछा है। मैं समझता हूँ, वह हर वक़्त इन्तिज़ार में हैं। आज सात रोज़ से वह जाने की हालत में हैं मगर पूरे होशो-हवास में हैं और इन्तिज़ार कर रहे हैं। आज आख़िरी आर्डीनेंस जारी हुआ है। मकानों के नाम क़तई नहीं बदले जा सकते। मैं उन्हें क्या बताऊँ ? क्या फ़ायदा होगा आख़िर...अजीब ज़िद है।"

"बस उनकी ख़्वाहिश है।"

"अजीब पागल ख़्वाहिश है।" परवेज़ ने चिढ़कर कहा। आज तक अपने बाप के मुतअल्लिक़ उसने इस लहजे में बात न की थी।

नजमी ने दोबारा अँधेरे में उसकी तरफ़ देखा।

"नजमी..."

"भैया..." (उसने महसूस किया कि वे दोनों एक बेहद भयानक और दिखावटी सतह पर एक दूसरे से बात कर रहे थे)

"आख़िर इसमें...फ़ायदा है। हम क्यों न उनसे कह दें।"

"क्या ?"

"कि नाम बदल दिया गया है।" वह अचानक ख़ामोश हो गया। ख़ामोशी के इस मुख़्तसर वक़्फ़े को दोनों ने जी कड़ा करके बरदाश्त किया।

"फिर ?...लेकिन ?"

"सवाल ही पैदा नहीं होता। इतना वक़्त कहाँ है ? वह इसी ख़बर के इन्तिज़ार में हैं। किसी ज़बरदस्त ख़्वाहिश के पूरा होने के इन्तिज़ार में इनसान कुछ अरसे तक मौत को भी टाल सकता है। इसकी मिसालें मौजूद हैं। (नजमी ने लरज़कर उसे देखा मगर उसने बात जारी रखी) और फिर...कब तक यूँ चलेगा। तुम्हें पता है..."

"अज़रा आपा मगर..."

"वह इस वक़्त वहाँ नहीं है। तुम चाहो तो जाकर..."

"नहीं, नहीं भैया, आप..." नजमी ने कमज़ोर आवाज़ में कहा। परवेज़ ने बड़ी नाख़ुशी से उसकी तरफ़ देखा और उठ खड़ा हुआ।

ऊपर की मंज़िल में वह दरवाज़ा खोलकर अन्दर दाख़िल हुआ। रौशन आग़ा आँखें खोले सीधे लेटे थे। उनका चेहरा बिस्तर की चादर की तरह सफ़ेद था। उन्होंने परवेज़ की तरफ़ देखा और रही-सही जान उनकी आँखों में सिमट आई।

परवेज़ ने पलंग की पट्टी पर बैठकर उनका मुर्दा हाथ अपने हाथ में ले लिया। "बाबा, अर्ज़दाश्त[1] मंज़ूर होकर आ गई है...यह अब...रौशन महल है।"

रौशन आग़ा के बेरूह चेहरे पर सुर्ख़ी की हलकी-सी लहर दौड़ गई। उन्होंने कुछ कहा मगर सिर्फ़ होंठ हिले, फिर उन्होंने आँखें बन्द कर लीं। परवेज़ का ख़याल ठीक निकला। वह जल्दी से हाथ छोड़कर खड़ा हो गया। एक पल के लिए उसने गहरी नज़रों से मरते हुए शख़्स को देखा जो कि उसका बाप था और जिसकी आख़िरी जद्दोजेहद ख़त्म हो चुकी थी।

अँधेरे में बैठे-बैठे नजमी ने परवेज़ के तेज़-तेज़ सीढ़ियाँ उतरकर अपने कमरे की तरफ़

1. प्रार्थना-पत्र।

जाने की आवाज़ सुनी और घुटनों में सिर देकर फूट-फूटकर रोने लगी।

जब अज़रा लौटी तो रौशन आग़ा मर चुके थे। हुसैन ने जो हर वक़्त उनकी पट्टी से लगकर बैठा रहता था, उसे सारी बात बताई। उसने दीवानों की तरह मुर्दा जिस्म को झँझोड़ा और चन्द बेसूद आवाज़ें देने के बाद आँधी की तरह परवेज़ की तलाश में निकली।

परवेज़ उसे कहीं भी न मिला। सिर्फ़ नजमी मिली जो पिछवाड़े की सीढ़ियों पर घुटनों में सिर दिए बैठी थी। वापस जाने से पहले अज़रा ने सिर्फ़ इतना कहा, "तुम...जो इतने आला दिमाग़ हो, इतनी कमीनगी के अह्ल हो।"

अब वे सब निशस्त के कमरे में जमा थे, सिवाय अज़रा के जो लाश के क़रीब बैठी क़ुर्आन मजीद पढ़ रही थी, और हुसैन जो अपने मालिक की मौत पर ऊँचे सुरों में रो रहा था।

नजमी स्कूल के बच्चों को लेकर शहर के एक बड़े क्लब में गई थी, जहाँ बेघर मुहाजिरीन की मदद के सिलसिले में उन्हें एक ड्रामा करना था। स्कूल की स्टेज उस ड्रामे के लिए बहुत छोटी थी। असल प्रोग्राम के बाद Charity Ball मुनअक़िद[1] किया जानेवाला था। जब वह वहाँ से लौटी तो पहले इमरान और फिर दूसरे लोगों ने ड्रामे के सिलसिले में चन्द रस्मी सवाल किए जिनका उसने अजीब उखड़े-उखड़े लहजे में जवाब दिया। यह देखकर वे ख़ामोश हो गए और परवेज़ और उसकी बीवी का इन्तिज़ार करने लगे जो उसी क्लब में मदऊ[2] थे।

अगले रोज़ सुबह सवेरे नजमी लिबास तब्दील करके सीधी नाश्ते की मेज़ पर आई और बग़ैर बात किए खाने लगी। उसका चेहरा बहुत ज़र्द था। सब पर ग़ैर-मामूली ख़ामोशी छाई रही। फिर आहिस्ता-आहिस्ता बातें शुरू हुईं। इमरान अज़रा को नए हमसायों के मुतअल्लिक़ बताने लगा। सामने उनकी माँ बैठी थी, साथ नजमी जो अपने आपको मुश्किल से सँभाले हुए थी। परवेज़ ड्रेसिंग-गाउन लपेटता हुआ अभी आन कर बैठा था और अज़रा को चाय बनाने के लिए कह रहा था। नजमी ने तोस का एक टुकड़ा उठाकर मुँह में रखा और साथ ही उसकी चीख़ निकल गई। लुक़्मा प्लेट में आ गिरा।

"मम्मी...उसने मेरी बेइज़्ज़ती की है।" वह तक़रीबन रोकर बोली।

"किसने, किसने, क्या हुआ ?" सब उठ खड़े हुए।

वह कुर्सी पीछे धकेलकर माज़िरत[3] किए बग़ैर अपने कमरे की तरफ़ भाग गई।

तीन रोज़ तक उसका खाना कमरे में जाता रहा। उसकी माँ उसे देखने को सिर्फ़ एक बार गई। इसके अलावा घर का हर आदमी कई-कई बार उसकी ख़ैरियत पूछने के लिए गया। उसने सबको यक़ीन दिलाना चाहा कि कोई क़ियामत नहीं आ गई, बस ज़रा तबीअत ऊब गई है, ख़ुद-ब-ख़ुद ठीक हो जाएगी। आख़िर तंग आकर उसने सबको आने से मना कर दिया। घर भर में बहरहाल तश्वीश[4] फैली हुई थी क्योंकि उसके कमरे का लैम्प भी बहुत शाम पड़ने पर जला करता था।

हुआ क्या था ? उसने लेटे-लेटे सोचा। यही कि इतने अरसे बाद वह मिला और बड़े अख़्लाक़ से खड़ा बातें करता रहा, बड़े मामूली, रोज़मर्रा के अन्दाज़ में, हाथ में गिलास थामे, उसी तरह दिलकश और पुर-असरार। फिर उसने बड़े अदब से रुख़्सत ली और चला गया।

लेकिन उसने जो कहा ! और उसका वह कमीनेपन का रवैया !

वह उठकर खिड़की में जाकर खड़ी हुई। कमरे में तक़रीबन घुप अँधेरा था। सर्दी बढ़ती जा रही थी। उसने बिस्तर पर से शाल उठाकर कन्धों पर डाली और हाथ पर ठोड़ी टिकाकर बाहर बाग़ के अँधेरे में देखने लगी।

"हलो नजमी बेगम।" वह अचानक कहीं से निकलकर उसकी तरफ़ आ रहा था।

1. आयोजित, 2. आमन्त्रित, 3. क्षमायाचना, 4. चिन्ता।

"मसऊद ? अरे हलो...तुम शहर में हो और हमें ख़बर ही नहीं !"

"जी हाँ। कहिए, कैसी गुज़र रही है ?"

"मज़े में हैं। मगर कम-से-कम तुम ही मिल लेते !"

"वह दरअसल...इधर कुछ अरसे से काफ़ी मसरूफ़ियत रही;" वह हँसा। "अर र र..."

"भई हद हो गई।"

"कहिए, आबो-हवा रास आई नई जगह की ?"

"हाँ भई, गुज़र रही है।"

"आपके स्कूल का प्रोग्राम बड़ा दिलचस्प रहा !"

उसे धक्का-सा लगा, लेकिन ख़ुश होकर बोली, "अच्छा ? शुक्रिया। तुम तो बड़े बा-ख़बर आदमी हो ना।"

वह दोबारा हँसा, "परवेज़ साहिब ने बताया था !"

वह ख़ामोश रही।

"उनसे एकाध बार यहीं मुलाक़ात हुई। बिजली के महकमे के हाथों ख़ासे परेशान थे।"

"अभी हम अँधेरे में हैं।" नजमी ने ख़ुशदिली से कहा।

"और...वह आपके हाँ एक तक़रीब हुआ करती थी, नजमी बेगम, सुना था। परवेज़ कब बन रहे हैं रौशन आग़ा ? हमें मदऊ करना मत भूलिएगा ?"

"अरे नहीं भई।" आँसू उसके गले में आकर अटक गए। वह ख़ामोश खड़ा गिलास में ज़र्द रंग का शर्बत पीता रहा। फिर उसने बड़े अदब से झुककर रुख़सत ली।

"आपसे तो अब मुलाक़ात होती रहेगी। अभी-अभी एक पुराने दोस्त की झलक दिखाई दी है उस भीड़ में, इससे पहले कि वह फिर ग़ायब हो जाए...हालाँकि आप भी बड़ी पुरानी दोस्त हैं। ख़ुदा हाफ़िज़।"

"आप-आप-आप...लानत हो।" नजमी ने दिल में कहा।

रक़्स[1] शुरू होने पर वह अपने कोने में बड़े मुत्मइन, बड़े ख़ुश-फ़हम[2] अन्दाज़ में खड़ी रही जैसे कि उसे किसी बात का, किसी वाक़िए का इन्तिज़ार न था। सामने मसऊद एक नौजवान औरत के साथ नाच रहा था और हँस रहा था और बातें कर रहा था।

"अच्छा नाच लेती है।" नजमी ने बेध्यानी से सोचा।

फिर वे नाचते हुए उसके क़रीब से गुज़रे। अचानक मसऊद ने एक पल के लिए बड़ी गहराई, बड़ी तन्ज़ से उसकी तरफ़ देखा, जैसे यह सारी तैयारी उसने उस एक पल के लिए की थी।

"BRAVO..." उसने सरगोशी में कहा और गुज़र गया। नजमी ने दहलकर इधर-उधर देखा...हो सकता है कि उसकी वह छिछलती हुई निगाह उसके लिए मख़सूस न हो और जो कुछ उसने कहा, सिर्फ़ अपनी रक़्स की साथी से कहा हो। उसने सोचना चाहा। लेकिन वह किसी का इन्तिज़ार किए बग़ैर तीर की तरह बाहर निकल आई।

तीन दिन। और यह मुख़्तसर-सा मंज़र उसके ज़ेहन पर नक़्श होकर रह गया था। ख़ुदाया ! उसने खिड़की बन्द कर दी।

अब घटाटोप अँधेरा था और वह कुर्सी पर बैठी थी। "सत्ताईस बरस.." उसने सोचा। "चन्द महीने में अट्ठाईस बरस हो जाएँगे। कैसी अजीब बात है। यह सारा वक़्त, सारा अज़ीमुश्शान वक़्त बेकार में गुज़र गया। मेरी सारी तालीम, तर्बियत, ज़िन्दगी की आला अक़दार[3] जिनमें यक़ीन करना मुझको सिखाया गया। आला दिमाग़, आला ज़िन्दगी, इन सारी बातों के बावजूद आज मैं उस जगह पर आ गई हूँ, जहाँ इन सबसे अलग होकर अपने मुतअल्लिक़ सोच रही हूँ। शायद मैं बूढ़ी हो गई

1. नृत्य, 2. अच्छा गुमान, 3. उच्च मूल्य।

हूँ। आज से अट्ठाईस बरस के बाद मैं कैसी लगूँगी ? मुझे क्या ग़रज़, किसी को क्या ग़रज़। पतझड़ का मौसम भी गुज़र गया, हम क्या कर सकते हैं। अब यहाँ पर घटाटोप अँधेरा है और बहुत-सी ज़िन्दगी मेरे क़रीब से तेज़ी के साथ गुज़र गई है। सारे गीत, पुराने हो गए, सारी चीज़ें इतनी पुरानी, इतनी बूढ़ी हैं, मेरे समेत, लेकिन अगर मैं समझूँ कि वक़्त से अलग-थलग, एक मुकम्मल और आज़ाद इकाई की तरह से बैठी रही तो...यह सरासर ग़लत है। ज़िन्दगी मेरे अन्दर से गुज़री है; मेरे सिर में से, मेरे सीने में से, मेरे पेट में से, मेरी टाँगों में से, और वक़्त के निशान मेरे ऊपर मौजूद हैं। आसारे-क़दीमा[1]...मेरे चेहरे पर, छाती पर, पेट पर, टाँगों पर। मैंने देखा है। अब मैं क्या करनेवाली हूँ ? क्या ?

उसने एक-एक करके सारे कपड़े उतारकर फ़र्श पर गिरा दिए और अँधेरे में कुर्सी का सहारा लिए खड़ी रही। बाहर अँधेरी गैलरी में से कोई गुज़रा। अन्दर उसने सिर्फ़ पाँव की चाप सुनी। किसी की मौजूदगी को महसूस न किया। वहाँ सिर्फ़ वह मौजूद थी, अपने सारे एहसास, सारे इद्राक[2], सारी उम्र के साथ। उसने अँधेरे में हाथ फैलाया और आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगी, यहाँ तक कि उसे सुझाई देने लगा। उसकी टाँगें, कमर, छाती, बाज़ू, एक मुब्हम[3] और बेतुका, बे-हैअत[4] हयूला[5], बेरंग, बेबू, बेकार। "यह कुर्सी भी ज़्यादा ख़ूबसूरत है !" उसने बेतुकेपन से सोचा। अब वह आहिस्ता-आहिस्ता अपने सारे जिस्म पर हाथ फेर रही थी। पहले कई बार उसने अपनी टाँगों पर और अपने पेट पर हाथ फेरा था लेकिन आज तक कभी अपने जिस्म को इस हालत में न पाया था। उसे कराहत होने लगी और घबराकर उसने दोनों बाज़ू लटका दिए। अब वह आहिस्ता-आहिस्ता फ़र्श पर चलने लगी। कमरा मानूस था और वह सारे रास्तों, सारी चीज़ों से वाक़िफ़ थी। ठोकर खाए बग़ैर वह सारे कमरे में घूमती और अपने आपको चलते हुए देखती रही। ढीले-ढाले फैले हुए कूल्हे, बेढंगेपन से हरकत करते हुए कूल्हे, और टाँगें जो ख़ुश्क, सियाह और झुर्रीदार खालवाले हज़ारों साल पुराने दरख़्तों की मानिन्द अँधेरे में से उग रही थीं, और लटकती हुई छातियाँ, बकरे के फेफड़े की तरह कच्चे-कच्चे ख़ून के रंग की, पिलपिली और फूली हुई और हलकी, और पेट, नारियल के बालों का-सा, खुरदरा और बदबूदार, फिर कूल्हे, बेढंगेपन और बेशर्मी से हरकत करते हुए कूल्हे, रुको, रुक जाओ...बे-आवाज़ शोर के साथ कोई चीख़ा। अचानक वह जहाँ की तहाँ सर्द पड़ गई। पागल बसीरत[6] के एक पल में उसने सारी बात को महसूस कर लिया था कि सारा वुजूद, सारा वक़्त ऐसा बद-हैअत, ऐसा करीहुलमंज़र[7] था। वह कमरे के बीच में टाँगें फैलाए आसानी से अपने आपको सँभाले खड़ी रही। बड़ी देर के बाद आहिस्ता-आहिस्ता एक ख़याल उसके ज़ेहन में जागा। "यह हमारी सारी मीरास[8] है। इस बारे में हम कुछ नहीं कर सकते...सिर्फ़ फ़ख़्र कर सकते हैं।"

गैलरी में क़दमों की चांप क़रीब आई और किसी ने दरवाज़ा खोला, "बिटिया...बिटिया खाना..."

"जाओ। बाहर जाओ।" पागलों की तरह चीख़ी। ख़ादिमा बदहवास होकर उलटे पाँव भाग गई।

कुछ देर तक सुन्न रहने के बाद उसने कपड़े पहने और लैम्प जलाकर आहिस्ता से सिंगार-मेज़ के स्टूल पर बैठ गई। वह कँपकँपा रही थी। उसने देखा कि उसके बाल जो काफ़ी अरसे से गिर रहे थे, बहुत हलके हो चुके थे और आँखों के नीचे थैलियाँ बन गई थीं और गालों की हड्डियाँ उभर आई थीं और जिल्द का रंग मटियाला हो गया था। अफ़सोस या बड़े नुक़सान के किसी जज़्बे के बग़ैर वह वहाँ बैठी शीशे में देखती रही। "तुम्हारा रवैया कुछ ग़लत नहीं था," उसने दिल में कहा, "तुम्हें इल्ज़ाम नहीं दिया जा सकता। तुम पर बहरहाल ख़ुदा की लानत हो मसऊद।"

जब वह वहाँ से उठी तो हैरतअंगेज़ तौर पर पुर-सुकून थी। वह सीधी परवेज़ के कमरे में गई

---

1. पुराने अवशेष, 2. बोध, 3. अस्पष्ट, 4. कुरूप, 5. ढाँचा, 6. अन्तर्दृष्टि, 7. घृणित रूप, 8. बपौती।

जिसने उसे पास बिठाकर हाल पूछा और उसके बालों पर हाथ फेरा।

"भैया ! आप क्लब नहीं गए ?"

"कल जाऊँगा।"

"भैया।"

"कहिए बिटिया..."

"हम भी आपके साथ जाएँगे."

"अच्छा बिटिया..."

वह क्लब के हॉल-कमरे में बैठी एक अंग्रेज़ औरत से बातें करती रही। उस औरत का ख़ाविन्द सिविल का बड़ा उहदेदार था और वे लोग मुस्तक़िल तौर पर पाकिस्तान में बसने का इरादा कर रहे थे। उसने नजमी को मशविरा दिया कि यहाँ पर वक़्त बर्बाद करने के बजाय उसको इंगलिस्तान जाकर पढ़ना और यूरोप का दौरा करना चाहिए कि दुनिया का सारा आर्ट यूरोप में था। नजमी बड़ी पुर-सुकून, मुत्मइन आवाज़ में उससे बातें करती रही। इन्तिज़ार करती रही। जब परवेज़ उठकर उसकी तरफ़ आया, "बिटिया, नौ बज रहे हैं। चलिएगा नहीं ?"

"अभी हमारा जी जाने को नहीं करता है भैया।"

"अच्छा तो मैं सलीमुर्रहमान के साथ जाता हूँ। आप जल्द आ जाइएगा। मिसेज़ मैकफ़र्सन, मैं अपनी बहन को आपके पास छोड़े जाता हूँ। शब-बख़ैर।"

"शब-बख़ैर।" मिसेज़ मैकफ़र्सन ने कहा। परवेज़ ने मोटर की चाबी उसके हवाले की और एहतियात से ड्राइव करने की पुरानी हिदायत देकर चला गया।

कुछ देर के बाद मसऊद अन्दर दाख़िल हुआ। उसके हमराह एक और नौजवान फ़ौजी अफ़सर था। उनके क़रीब से गुज़रते हुए उसने झुककर सलाम किया और दूसरे कोने में जाकर बैठ गया। हॉल में से लोग उठ-उठकर बग़ल के कमरों में जाना शुरू हो गए थे जहाँ बिलियर्ड और शतरंज हो रही थी और लाइब्रेरी थी। नजमी ने उठते हुए मामूल से ऊँची आवाज़ में अपनी साथी से माज़िरत[1] की और बाहर निकल आई। बरामदे में चाँदनी थी और सुतूनों के साए थे और हवा में ख़ुशगवार ठंडक थी। वहाँ खड़े-खड़े उसने मोटर की तलाश में नज़रें दौड़ाईं। सामने क्लब के बड़े लॉन पर ख़ामोश, ख़्वाबआलूद चाँदनी फैली हुई थी। अन्दर से हलके-हलके क़हक़हों और बातों की आवाज़ें आ रही थीं। वह अकेली-अकेली बरामदों में घूमती फिरी। उसे इतना अजीब लगा।

फिर वह पच्छिमी बरामदे की तरफ़ लपकी। अन्दर वह हॉल के फ़र्श को पार करके पच्छिमी दरवाज़े की तरफ़ आ रहा था। हॉल में वीडियोग्राम पर कोई रिकार्ड बजाने लगा।

बरामदे की सीढ़ियों पर नजमी को खड़ा पाकर वह ठिठक गया। वह बड़े मामूली, ला-तअल्लुक़ अन्दाज़ में खड़ी थी और बड़ी ख़ूबसूरत लग रही थी।

"हलो नजमी..."

"हलो।" उसने सादगी से कहा, "राजी-ख़ुसी ?"

"राजी-ख़ुसी..." वह हँसा, "पुरानी बातें इन जगहों पर अजीब लगती हैं। आइए टहलें।"

"मैं घर जा रही हूँ।"

"लोग इतना तम्बाकू पीते हैं। ताज़ा हवा की मुहब्बत में तड़पकर बाहर निकला हूँ। अन्दर..."

"लोगों के पास ढेरों गाड़ियाँ हैं। मेरी बेचारी ओपल...जाने कहाँ दुबकी खड़ी है," उसने बड़े एतिमाद से कहा, "आइए तलाश करें।"

तलाश करने के बजाय वे लॉन के किनारे-किनारे टहलते रहे। मसऊद सिगरेट जलाने के लिए

---

1. क्षमायाचना।

रुका, फिर उसने सिर उठाकर नीचे से ऊपर तक उसे देखा, वह जो धीमी चाल से आगे-आगे जा रही थी। उसने सब्ज़ रंग की साड़ी पहन रखी थी जिसमें सितारे टँके थे। और उसकी चाल में, सारे जिस्म की हरकत में इतना ग्रेस, इतना लहराव और इतनी उठान थी। और उसका जिस्म...कमबख़्त ! बराबर पहुँचकर उसने सोचा कि यह भरपूर जवान औरत बड़ी हसीन, बड़ी दिलफ़रेब थी।

"नजमी, एक दफ़ा मैंने कहा था कि रौशन महल में सिर्फ़ तुम्हारी ख़ातिर आता हूँ...याद है ?"

नजमी ने नीम-संजीदगी, नीम-तमस्ख़ुर से उसे देखा।

उसका यह पुराना, दिलकश अन्दाज़ और आँखें, सियाह...पुर-असरार...ज़हीन और ऊपर उठा हुआ ख़ूबसूरत मग़रूर सिर, और खड़ी नाक, क्सासिकल...और उसकी आवाज़, इतनी नर्म, इतनी पुर-सुकून। क्लासिकल तहज़ीब, दिमाग़। उसमें से कोई इश्वा-अदाई[1], कोई इश्वा-नुमाई[2] नहीं। मसऊद ने सोचा, ख़ुदाया, यह कैसी बला की पुर-कशिश[3] औरत है।

"हूँ...तो याद है तुम्हें ?" उसने कहा।

नजमी के क़दम तेज़ हो गए और अरसे का रुका हुआ ग़ुस्सा उसके दिमाग़ को चढ़ा। वह बिलकुल भूल गई कि यह सारी तैयारी उसने सिर्फ़ इस वक़्त के लिए की थी।

"रुको नजमी, सुनो, मुझे तुमसे बात करनी है बहुत ज़रूरी। भई हद है..."

वह और तेज़ हो गई। मसऊद ने दोबारा उसे रोकने की कोशिश की। "ठहरो...एक पल, मुझे अफ़सोस है, मगर सुनो...मैं तुम्हारे घर आ सकता हूँ ?...तुम बड़ी ख़ूबसूरत लड़की..."

"भई वाह...कमाल है।" उसने ग़ुस्से से कहा और गाड़ी में बैठकर दरवाज़ा बन्द कर लिया।

वह दरवाज़े पर झुका रहा, "तुम जो कहो लेकिन मैं ज़रूर आऊँगा। तुम्हें मेरी बात सुननी पड़ेगी। मैं तुमसे शादी करना चाहता हूँ। मैं..."

वह इंजन स्टार्ट करते हुए सख़्त झल्ला गई। सारी गुज़श्ता ख़िफ़्फ़त[4], शर्मिन्दगी, शिकस्त और कमीनगी अचानक ग़ुस्से की तेज़ लहर बनकर उठी और उस पर छा गई।

"शब बख़ैर...शब बख़ैर..." उसने तेज़ी से कहा।

मसऊद ज़िद्दियों की तरह टाँगें फैलाए, सीने पर हाथ बाँधे खड़ा दूर तक मोटर की रौशनियों को देखता रहा।

अगली बहार के मौसम में उनकी शादी हो गई।

इस बात को चन्द महीने गुज़र चुके थे। मसऊद की तैनाती एक ग़ैर-आबाद-सी छावनी में हो गई थी जहाँ वे पत्थरों के बने हुए एक मकान में रहते थे। समन्दर वहाँ से क़रीब था, और उनकी सबसे बड़ी तफ़रीह साहिले-समन्दर पर जाकर टहलने में थी। बज़ाहिर वे बड़ी मुहब्बत और बड़े इत्मीनान की ज़िन्दगी बसर कर रहे थे।

लेकिन कभी-कभी शामों को जब उन्हें घर पर रहना पड़ता तो दिल की बेचैनी लौट आती और वे एक दूसरे से अलग होकर, अपनी-अपनी जगह पर, मुख़्तलिफ़ तौर पर सोचने लगते और वे बड़ा अजीब महसूस करते...कि ऐसा क्योंकर था कि वे इस तरह से सोचने पर मजबूर थे।

ऐसी ही एक शाम को जब उसका ख़ाविन्द ठंडे आतशदान के क़रीब बैठा एक किताब में खोया हुआ था, नजमी ने ऊन के गोले और अधबुना स्वेटर आहिस्ता से एक तरफ़ रखा और उठकर बरामदे में आ बैठी। शाम बड़ी शफ़्फ़ाफ़ और ख़ुशगवार थी और फ़िज़ा में हरे पत्तों की महक थी।

"समन्दर पर इस वक़्त चाँद निकल रहा होगा," उसने सोचा, "और यहाँ बरामदे में बड़ा सुकून है। सुकून ? ओह...तुमने उस सामनेवाले दरख़्त को नहीं देखा जो कभी हरा नहीं होता ? तो फिर ! और अन्दर तुम्हारा ख़ाविन्द मौजूद है जो तुमसे मुहब्बत करता है, लेकिन पता नहीं क्या सोचता है ! क्या तुम कभी उसकी सोच को जान सकती हो ? बावजूद सारी बातों के, कभी उसके ख़्वाबों

1. हाव-भाव से मोह लेना, 2. हाव-भाव दिखाना, 3. आकर्षक, 4. संकोच।

में शरीक हो सकती हो ? हम किसमें शरीक हैं ? महज़ अपने आप में। अपने ख़्वाब हम आप ही देखते हैं, और तनहा हैं। और अगर सोचा जाए तो उस दूसरे शख़्स ने तुम्हारे ऊपर कितना ज़ुल्म किया है ! एक मुआहिदे के मुताबिक़ तुमने (तुम दोनों ने) अपनी ख़िफ़्फ़त मिटाना चाही है, मगर ख़िफ़्फ़त बाक़ी है, और कुँआरपने की सुहानी याद जो इस बुरी तरह खटकती है जैसे दिल टूट जाता है। याददाश्त[1] ? लानत है।'' उसकी सोच जारी रही।

''कितनी ही शामें हैं जो ज़िन्दगी में हमें तनहा और सोगवार[2] छोड़कर गुज़र जाती हैं। ज़िन्दगी इस क़दर ग़ैर-हक़ीक़ी है, और फिर इस क़दर तकलीफ़देह तौर पर हक़ीक़ी भी...क्योंकि हम फँस चुके हैं। सिर्फ़ अगर हम तलाश को छोड़ दें; छोटे-बड़े सहारे जो हमारे दिल की शिकस्त हैं, सिर्फ़ अगर हम भूल जाएँ...

''हम शायद ज़्यादातर अरसा ख़ुश ही रहते हैं, लेकिन हमारी याददाश्त है जो कुछ भी जानने नहीं देती। हम चीज़ों की, बातों की समझ भी रखते हैं, मगर शान्ति, गहरा अमीक़ अम्न[3] समझ से परे है। यह सिर्फ़ हमारे पास ''है'' या ''नहीं है''। ''है'' या ''नहीं है'' सिर्फ़ यह !

''ख़ामोश रहो और भूल जाओ कि इसमें भी नजात है !'' (पर कहने से क्या होता है भाई, ज़रा भूल के तो दिखाइए।)

''कल मैंने इतना ग़ुल मचाया, नौकर पर बरसी, इतने क़हक़हे लगाए, ब्रिज के खेल में इतना झगड़ा किया, घंटों बातें कीं और बिला-वजह चाय पीती गई। कुछ के ख़िलाफ़ ग़म और ग़ुस्से का इज़हार किया, दूसरों की तारीफ़ की, कुछ को दूर से देखकर पसन्द किया और नज़दीक जाने की हसरत पालती रही। कुछ के सामने अपनी बहुत सारी ख़्वाहिशों का इज़हार किया। फिर शाम के वक़्त अकेली बैठी थी कि आप से आप सोच आई। उस सारे वक़्त में जो कुछ मैंने किया, उसका क्या जवाज़[4] पेश कर सकती हूँ ? अज़ीम नुक़सान का एहसास पैदा हुआ जो थोड़ी देर में ख़त्म हो गया।

''ज़िन्दगी की ऊँच-नीच, चमक-दमक, अच्छे और बुरे को मैंने उँगलियों में से निकाल दिया है जैसे उस टुंड-मुंड दरख़्त की शाख़ों में से हवा गुज़र रही है। मेरी उँगलियों में सूराख़ हैं...हम भुला दिए जाएँगे, जैसे वे सब भुला दिए गए जिनमें कुछ के पास टूटे-फूटे कत्बे रह गए हैं। बाक़ी के पास यह भी नहीं। क्या फ़र्क़ पड़ा ? क्या फ़र्क़ पड़ता है ? सिर्फ़ अगर मेरे दिमाग़ में भी सूराख़ होते तो मैं याददाश्त को बाहर निकाल देती। चलो निकलो...बाहर जाओ, अभी फ़ौरन...

''दुनिया में जो इन्क़िलाब आए, जो लड़ाइयाँ लड़ी गईं उनमें वे सब बख़ैरो-आफ़ियत[5] ख़त्म हुए। कुछ नौकरों ने उठकर मालिकों पर क़ब्ज़ा कर लिया। कुछ मालिकों ने उठकर नौकरों पर क़ब्ज़ा जारी रखा। तारीख़ इस तरह बनती है। इनसान अहम नहीं हैं, वाक़िआत[6] हैं।

''क्या वे ख़ूबसूरत और ज़हीन और बहादुर लोग न थे ? क्या उन्होंने हमारी तरह अज़ीम मंसूबे न बनाए थे ? उनमें से कुछ ने बेपनाह दुख न उठाए थे ? क्या उन्होंने यह सारी तैयारियाँ इसलिए की थीं कि उनकी मौतों की वजूहात[7] की फ़ेहरिस्त[8] बनाकर तारीख़ मुरत्तब[9] की जाए ? क्या फ़र्क़ पड़ता है। मौत अभी तक मौजूद है जो सबसे ज़्यादा अहम है, तारीख़ से भी ज़्यादा।

''सामनेवाला दरख़्त ख़ामोश खड़ा है और अपने लकड़हारे का इन्तिज़ार करता है। हम अपने लकड़हारे का भी इन्तिज़ार नहीं करते, क्योंकि हमारे पास हमारी याददाश्त है जो हमें मसरूफ़ रखती है। जब हम मरेंगे तो शायद बेहद हैरानो-परेशान होंगे।

''रात, मैंने तेरे वुजूद को, तेरे वुजूद के असरार[10] को महसूस किया है जैसे उन सबने भी किया जो यहाँ रहे होंगे। तेरा क्या ख़याल है कि मैं तुझे याद रखूँगी ? सरासर ग़लत। मैं तुझे भूल जाने

---

1. स्मरण शक्ति, 2. शोकग्रस्त, 3. गहरी शान्ति, 4. औचित्य, 5. कुशलतापूर्वक, 6. घटनाएँ, 7. कारण, 8. सूची, 9. इतिहास संपादित, 10. रहस्य,।

की बेहद कोशिश करूँगी।

"लेकिन तू मुझे याद आती रहेगी, और सब चीज़ों की तरह। यह तेरी और सब चीज़ों की इकट्ठी साज़िश[1] है...कमीनी...।"

पीछे खिड़की में ख़ाविन्द का सिर निकला, "अन्दर आ जाओ नजमी...रात पड़ गई है।" वह ख़ामोश बैठी रही।

"तुम जो इतने मोतबर[2] बने बैठे हो, क्या तुम समझते हो कि कर्नल या जनरल बनकर मरोगे ? ठीक है। हो सकता है। लेकिन यह भी ठीक है कि बहरहाल मरोगे। तो फिर क्या नतीजा निकला ? कौन फ़ायदे में रहा, तुम या मौत ? मैदाने-जंग में या मिलिट्री हस्पताल में या किसी भी हस्पताल में। आख़िरी फ़ैसले में घाटे में तुम ही रहोगे, मेरे अज़ीज़ तुम। जिसने ज़िन्दगी में इतनी मेहनत की और उसका फल पाया। उस वक़्त तुम बड़े मसख़रे लगोगे। तुमने मेरे बाप को मरते हुए देखा था ? और हुसैन को जो कुत्ते की तरह रो रहा था।"

"कितने ही दुख हैं जिन्हें हम नज़रअन्दाज़ कर देते हैं इसलिए कि वह दूसरों के होते हैं। लेकिन दूसरों की ज़िन्दगियाँ हमारी ज़िन्दगियों में शामिल हैं, उनके दुख हमारे दुखों में...नईम का क्या बना ? नईम का क्या बना ?" उसने ऊँची आवाज़ में दुहराया।

"शायद फ़सादात में मारा गया। कुछ ठीक पता भी नहीं।" क़रीब से मसऊद ने जवाब दिया। वह जाने कब का आकर उसके पास बैठा हुआ था। नजमी ने उकताहट से उसे देखा।

"तुम क्या जानते हो ? तुम तो ख़ुद फँसे हुए हो और भुगत रहे हो, और इस अज़ीम भरम को क़ायम रखने में मसरूफ़ हो। हम दोनों एक मुआहिदे[3] में शरीक हैं, और हमारे मुश्तरका दोस्त हैं जिनसे हम रोज़ाना इतनी नर्मी, इतने अख़्लाक़, इतनी मक्कारी, चापलूसी के साथ मिलते-जुलते हैं। हम सब एक बड़े मुआहिदे में शरीक हैं। हम क्या जानते हैं। सिर्फ़ यह भरम ?"

फिर एक अजीब वाक़िआ हुआ। मसऊद उसका हाथ पकड़कर उठ खड़ा हुआ, "चलो..."

"कहाँ ?"

जवाब दिए बग़ैर वह उसे लिए-लिए जीप की तरफ़ आया और वह समन्दर की तरफ़ रवाना हुए।

चाँद ऊपर आ चुका था और साहिल की रेत पर चाँदनी फैली हुई थी। फ़िज़ा में लहरों की हलकी-हलकी गरज थी। वह रेत पर टाँगें फैलाकर खड़ा हो गया, "स्पेन में मैंने रक़्स...नजमी।"

वह चौंक पड़ी।

"मेरी बात सुनो। स्पेन में मैंने एक अजीब-सा रक़्स देखा था...मेरा जी करता है, नाचूँ।"

"नाचो।"

उसने नाचना शुरू किया। यह वाक़ई अजीब-सा रक़्स था। रेत पर उसका साया बड़ी तेज़ी और अफ़रा-तफ़री की हालत में घूम-फिर रहा था। कुछ देर बाद रुककर उसने नजमी का हाथ पकड़ा। "तुम भी नाचो।"

"नहीं मसऊद मैं...तुम जानते हो, नहीं नाच सकती !"

उसने बड़ी बदमज़गी से अपनी बीवी पर नज़र डाली। पहले पहल बाप बनने की जो आम लोगों को ख़ुशी होती है, उससे वह क़तई ना-आश्ना[4] था। उसने फिर नाचना शुरू किया।

वह सहमकर एक तरफ़ को हट गई। यह वहशियों का रक़्स था। उसमें कोई आहंग[5], कोई क़ाइदा...कोई नज़्म[6], कोई ज़ब्त[7] न था। बस टाँगें, बाज़ू, कूल्हे, कन्धे, सिर, सब एक-दूसरे से अलग, निहायत बेक़ाइदगी और बे-तरतीबी के साथ ख़ौफ़नाक, पागल कर देनेवाली हरकात[8] में चारों तरफ़ उड़ रहे थे, गिर रहे थे और चक्कर काट रहे थे। यह भूतों का नाच या चुड़ैलों का जो मेजर मसऊद

---

1. षड्यन्त्र, 2. विश्वसनीय, 3. अनुबन्ध, 4. अनजान, 5. ताल, 6. नियम, 7. क्रम, 8. नृत्य में अंगचेष्टा।

उस वक़्त बड़े इन्हिमाक[1] और बड़ी मेहनत से नाच रहा था। कुछ देर में उसके माथे पर पसीने के क़तरे चमकने लगे। आख़िरकार वह थककर रुक गया।

"अजीब दीवानगी है।" नजमी ने आहिस्ता से कहा।

जब उसका साँस बराबर हुआ तो वह रेत पर लेट गया और बोला, "नजमी, मेरे पास आओ। तुमने देखा इसमें किसी सम्त का तअय्युन[2] नहीं हो पाता, बल्कि सम्त का एहसास ही सिरे से ग़ायब हो जाता है। लेकिन इसमें जो बेसाख़्तगी[3], जो बे-राहरवी है, उससे बड़ा सुकून मिलता है। चलो चलें।"

जब वे ख़्वाबगाह की बत्ती बुझाकर साथ-साथ लेटे तो खिड़की में से चाँद की रौशनी अन्दर आ रही थी और बिस्तर की चादर बहुत सफ़ेद दिखाई दे रही थी। यकसाँ आवाज़ में मसऊद ने कहना शुरू किया : "मैं सालहा-साल से अपनी शख़्सियत को यकजा करने की कोशिश में लगा हुआ हूँ, क्योंकि मैं अपनी ज़ात में बँट चुका हूँ। एक तरफ़ मेरी ख़्वाहिशें हैं, दूसरी तरफ़ मेरी ज़िन्दगी है, इनके दरमियान। तुम इसे नहीं समझ सकतीं क्योंकि तुम तीसरी नस्ल हो। लेकिन तुम्हारे पुरखों में से किसी-न-किसी ने यह सब कुछ भुगता होगा। याद रखो।"

नजमी ने शायद उसकी बात न सुनी, इसलिए कि तभी वह बोल उठी, "ख़ुशी हासिल करने के लिए हम अपनी ख़िफ़्फ़त उठाते हैं, फिर ख़िफ़्फ़त मिटाने की ख़ातिर इतना दुख सहते हैं, इसके बाद मौत आती है। मैं तुम्हारे साथ सोऊँगी पर अपने ख़्वाब देखूँगी, इसलिए कि मैं भूल नहीं सकती...ज़िन्दा रहने के लिए इतनी कमीनगी पर उतरना पड़ता है।"

"मसऊद, सो गए हो ? सुनो, एक बात मेरी समझ में आई है, बहरहाल रूह में बड़ी ताक़त है।" इतना कहकर नजमी ने उसके कन्धे पर सिर रखा और थोड़ी देर में गहरी नींद सो गई।

मसऊद ने बड़े रहम और मुहब्बत से उसे देखा। तुम बड़े सुकून की नींद सो रही हो। उसने सोचा। लेकिन तुम भी इसी नस्ल से तअल्लुक़ रखती हो...और यह नस्ल अपनी ज़ात में बँट चुकी है। तुमने रूह में पनाह ढूँढी है, मगर मैंने तो बड़े बुनियादी इनसानी जज़्बों से ज़िन्दगी का सबक़ सीखा है। मुहब्बत, नफ़रत, ख़ौफ़, लालच...मैं रूह में यक़ीन नहीं रखता..."

बड़ी देर तक वह नजमी को जगा देने के डर से बेहिसो-हरकत[4] पड़ा जागता रहा। फिर उसे भी नींद आ गई।

50

"मैंने दिल की बेचैनी पर फ़तह[5] पाई है। मेरे असरार को कौन जानता है।" अज़रा ने सलाइयों पर से नज़र उठाकर सोचा और इत्मीनान के गहरे एहसास के साथ मुस्कराई। वह इमरान के लिए पुलोवर बुन रही थी।

धूप लॉन पर फैल गई थी। सब्ज़े के किनारे-किनारे गुलाब के फूल मुरझाते जा रहे थे। चन्द रोज़ पहले नजमी की शादी हुई थी, और वह वहाँ से जा चुकी थी। अब फ़िज़ा में चीलों के बोलने की आवाज़ थी। बहार का मौसम भी ख़त्म हुआ। मेरे असरार को कौन जानता है ? उसने दोबरा सोचा।

लेकिन यह सोच उन बहुत थोड़े ख़यालों में से एक थी, जो कभी-कभार आप से आप उसके दिमाग़ में आते चले जाते थे। अक्सर वह सोच से घबराती थी कि यह उसके लिए बड़ा मुश्किल काम था। हमेशा की तरह उसका ज़ेहन एक काहिल आगाही[6] की हालत में काम करता रहता था, लेकिन ज़ेहन की इस छठी हिस[7] के बावजूद उसके जीने के एहसास में कभी कोई कमी न हुई थी।

1. तल्लीनता, 2. दिशा का निश्चय, 3. स्वाभाविकता, 4. निश्चेष्ट, 5. विजय, 6. पूर्व ज्ञान, 7. छठी इन्द्रिय।

वह सब कुछ जानती और महसूस करती थी और ज़िन्दा रहने के क़दीम अमल को अपने मुकम्मल तौर पर अपने आप में जज़्ब कर लिया था और इससे उसके वुजूद में वह ताक़त पैदा हुई थी जिसके सहारे वह और दुनिया के करोड़ों छोटे-छोटे इनसान रोज़ाना ज़िन्दा रह रहे थे। वह दिन-रात के सारे काम बड़े सुकून, बड़ी आगाही और नर्म-रवी के साथ करती थी। उसकी ज़िन्दगी में शिकायतों और पछतावों का वुजूद न था कि यह भी उसके लिए बड़ा मुश्किल काम था।

परवेज़ घर का इकलौता फ़र्द था जो यह सारा सिलसिला चला रहा था और बड़ी दरियादिली के साथ अपनी माँ और बहन का बोझ उठाए हुए था। वह बड़ी मेहनत के साथ काम करता और सरकारी हलक़ों में एक कामयाब और ईमानदार अफ़सर समझा जाता था। इसके अलावा उसके फ़राइज़[1] में रोज़ाना अपनी माँ और बहन के पास अलग-अलग बैठकर, थोड़ी देर के लिए ही सही, उनकी ख़ैरियत पूछना और हर दूसरे-तीसरे दिन अपनी बीवी के साथ उलझना और उसे इस बात का क़ायल करने की कोशिश करना कि दोनों दूसरी औरतों का दुनिया में और कोई सहारा न था और कि अब सारी उम्र उनके साथ नर्मी का बर्ताव करना और उनका बोझ उठाना उन दोनों मियाँ-बीवी का अख़्लाक़ी फ़र्ज़ हो चुका था, शामिल था। उसकी बीवी का अज़रा की तरफ़ जो पुरानी बरतरी[2] का रवैया क़ायम था, उसमें अब उसके लिए हक़ारत[3] भी शामिल हो चुकी थी कि पहले हिज्रत[4] और मौरूसी जायदाद के छूट जाने और उसके बाद उसके ख़ाविन्द के खो जाने और रौशन आग़ा की मौत से उस घर में अब उसकी हैसियत सिफ़र[5] के बराबर रह गई थी और ज़िन्दगी की कोई चीज़ उसके हक़ में न रही थी। अज़रा के लिए परवेज़ की बीवी का यह रवैया मामूल में शामिल हो चुका था और उसकी परवाह किए बग़ैर वह अपने आपको दिन भर के छोटे-बड़े कामों में मसरूफ़ रखती थी। सुबह सवेरे सारे कमरों की सफ़ाई अपनी निगरानी में कराना और नजमी के जाने के बाद से बाग़ की देखभाल करना उसके कामों में शामिल था। इसके बाद वह लॉन में अपनी मख़सूस जगह पर बैठकर बड़े इन्हिमाक से इमरान के लिए पुलोवर या परवेज़ के लिए मोज़े बुनती रहती, और कभी-कभार अपनी भावज के कहने पर बावर्चीख़ाने में जाकर ख़ानसामाँ की मदद करती। चन्द एक बार ऐसा भी हुआ कि सरकारी तक़रीबों के मौक़े पर परवेज़ अपनी बीवी की बीमारी की वजह से, और उसके इजाज़त देने पर, अपनी बहन को हमराह ले गया और उसने बड़ी ख़ुश-उसूलबी[6] और वक़ार के साथ अपने भाई के ख़ानदानी और सरकारी रुतबे के मुताबिक़ अपने फ़र्ज़ को अंजाम दिया था। घर की मजलिसों में अलबत्ता उसकी हैसियत कमतर थी। दर्जे में उसके बाद सिर्फ़ मुलाज़िमीन आते थे। इसके बावजूद आख़िरी वक़्त पर किसी-न-किसी तरह तैयार होकर वह मंज़र पर आ जाती और अपनी भावज से अलग-अलग, अपनी पुरानी ग्रेस के साथ मेहमानों में घूमती-फिरती और उनकी ख़ैरियत दरयाफ़्त करती।

दिन में कम-से-कम वह अपनी माँ को देखने के लिए भी चली जाती जो अब बिस्तरे-मर्ग[7] पर थी। वह बड़े सुकून और स्वभाव के साथ उससे बातें करती और उसकी ज़रूरियात का ख़याल रखती। उसकी मौत का अज़रा को कभी ख़याल न आया था। जैसे कि इससे पहले और उसके बाद कभी भी उसे किसी की मौत का ख़तरा न हुआ था। मुस्तक़्बिल के अन्देशों का उसकी ज़िन्दगी में कहीं भी दख़ल न था। वह वुजूद की एक बड़ी हक़ीक़ी, बड़ी आम-फ़हम[8] और बड़ी दिलकश सतह पर ज़िन्दा थी। उसकी शख़्सियत यकजा और पायदार थी। इस लिहाज़ से वह अपनी मख़सूस मुआशरत[9] और पसमंज़र[10] के बावजूद दुनिया के अनगिनत छोटे-छोटे लोगों की, जैसे कि उसके माली या बैरे या ख़ानसामाँ थे, नुमाइन्दा[11] थी। वे लोग जो ज़िन्दगी के तमामतर अदम-तआवुन[12] के बावजूद, कुछ न जानते हुए भी, दुनिया के अज़ीम कारोबार को चलाने के चक्कर में बड़ी तुवानाई

1. कर्तव्यों, 2. श्रेष्ठता, 3. तिरस्कार, 4. प्रवास, 5. शून्य, 6. आचार व्यवहार, 7. मृत्यु-शय्या, 8. सुबोध, 9. विशेष सामाजिकता, 10. पृष्ठभूमि, 11. प्रतिनिधि, 12. असहयोग।

के साथ हमा-तन[1] मसरूफ़ रहते हैं।

कभी-कभी नईम का ख़याल आता तो उसके दिल में बेइख़्तियार दर्द पैदा होता, मगर और बातों की तरह यह भी अब मामूल[2] बन चुका था। इतना ज़रूर था कि उस वक़्त एक के बाद दूसरी कुछ सोचें उसके ज़ेहन में उभरतीं और थोड़ी देर के लिए बड़ी यकसूई[3] के साथ अपने आपको उनके हवाले कर देती। ज़ेहनी ऐयाशी के इन मौक़ों पर वह अपनी क़ुदरती सतह से कुछ ऊपर उठ जाती और आख़ीर में हमेशा कुछ उस तरह से सोचती, जैसे आज सुबह उसने सोचा था, "मैंने दिल की बेचैनी पर फ़तह पाई है। मेरे असरार को..." और सिर उठाकर देखा था कि धूप लॉन पर फैल गई है और सब्ज़े के किनारे-किनारे उगे हुए गुलाब के पौदों पर फूल मुरझाते जा रहे हैं कि यह बहार के आख़िरी दिन थे।

तक़रीबन उसी ज़माने में एक रोज़ अली ने नूरदीन से, जिसके साथ अब वह रहता था, बानो का ज़िक्र इन अल्फ़ाज़ में किया, "बानो बड़ी अच्छी औरत है।"

"दुरुस्त है। मेरा भी यही ख़याल है।" नूरदीन ने कहा।

इस पर अली ने ज़रा झिझकते हुए बानो के साथ शादी करने की ख़्वाहिश का इज़हार किया। नूरदीन पहले ठिठका, फिर हँसते हुए बोला, "अच्छा-अच्छा, मुझे इसका ख़याल भी न था।" वह देर तक मुँह ही मुँह में हँसता रहा। फिर थोड़ी देर को संजीदा होकर बोला, "लेकिन यह बिलकुल ठीक है अली, वह बड़े काम की औरत है, बड़ी मेहनती और ईमानदार। और फिर औरत के बग़ैर मर्द का कोई ठिकाना भी नहीं होता।" उसके बाद फिर वह हँसता और उसे छेड़ता और अली बनावटी ग़ुस्सा ज़ाहिर करता रहा, हालाँकि दोनों अधेड़ उम्र के आदमी थे।

चन्द बातों के बाद यह तय हुआ कि नूरदीन इस बारे में बानो से पूछेगा। उसी रोज़ काम से वापस आने पर नूरदीन ने कहा।

"चलो।"

"कहाँ ? बात हुई ?"

"हाँ।"

सूरज डूब रहा था जब वे दोनों मुँह-हाथ धो-धुलाकर बानो की झोंपड़ी में दाख़िल हुए। झोंपड़ी का फ़र्श बड़ी सफ़ाई से लिपा हुआ था और सब चीज़ें अपनी-अपनी जगह पर एहतियात से रखी गई थीं। छत में से घास-फूँस, जो लटकता रहता था, शहतीरियों में जो लकड़ी के टेढ़े-मेढ़े डंडे थे, उड़स दिया गया था। बानो ने धुले हुए सफ़ेद कपड़े पहन रखे थे और उसके चेहरे पर हलकी-हलकी सुर्ख़ी थी। आज वड़ी देर तक वह अपने हाथों को, जो बड़े-बड़े और खुरदरे थे और काम करने की वजह से जगह-जगह से तड़खे हुए थे, रगड़-रगड़कर धोती रही थी लेकिन उनकी बदरंगी दूर न कर सकी थी। चुनाँचे उस वक़्त वह उन्हें ओढ़नी में छुपाए हुए थी। जब दोनों मर्द अन्दर आए तो वह बड़ी तमीज़ से उनके सामने ज़मीन पर बैठ गई।

काफ़ी देर तक तीनों ख़ामोश बैठे रहे। जब कभी किसी दो की नज़रें इत्तिफ़ाक़ से आपस में टकरा जातीं तो वे खिसियाने से होकर इधर-उधर देखने लगते। तीनों अपनी-अपनी जगह पर अपने आपको निहायत बुद्धू ख़याल कर रहे थे। किसी को भी बात शुरू करने का ढंग न आता था, यहाँ तक कि झोंपड़ी में अँधेरा उतर आया और बानो चिराग़ जलाने के लिए उठी।

उस वक़्त उसके उठकर जाने, और कुछ अँधेरा बढ़ने की वजह से अली की हिम्मत बढ़ी और वह खँखारकर एकदम बोल उठा, "मैंने नूर से कहा था। उसने तुमसे बात की होगी। ज़ाहिर है, मैं..." वह रुका, "तुम्हें प्यार से रखूँगा। मैं घर बनाना चाहता हूँ। तुम भी तो। हाँ, तुम

1. पूरी तल्लीनता के साथ, 2. नित्य नियम, 3. एकाग्रता।

भी...'' उसका चेहरा सुर्ख़ हो गया।

वह ज़मीन पर देखती हुई ख़ामोशी से आकर बैठ गई।

''ठीक है।'' अली ने कहा और ख़ामोश हो गया। फिर नूरदीन ने आहिस्ता-आहिस्ता बात शुरू की और सादा अल्फ़ाज़ में उसे बताया कि अली मेहनती और ईमानदार आदमी है और कि मर्द के बग़ैर औरत का कोई ठिकाना भी नहीं होता वग़ैरह-वग़ैरह...

''कमाल...मेरा बच्चा ?'' अचानक उसने सवाल किया।

''ओह...'' अली झुँझलाया, ''अभी तक तुमने उसका ख़याल नहीं छोड़ा। इतना अरसा हो गया...''

''मगर वह ज़रूर आएगा। वह...'' बानो एकदम भड़क उठी।

''ठीक है, ठीक है।'' अली घबराकर बोला, ''वह भी हमारे साथ रहेगा। हम उसे पालेंगे। पहले-पहल तो...तुम्हें पता ही है मैं उसको जानता भी नहीं, और फिर वह दूसरे मर्द का...(बानो ने बिफरकर उसे देखा) मगर ठीक है। धीरे-धीरे मैं उसके साथ घुल-मिल जाऊँगा, जैसे साथ रहने से हम सबके साथ घुल-मिल जाते हैं। फिर वह हमारे घर का आदमी बन जाएगा, जैसे हमारे अपने बच्चे होंगे। मैं उसके साथ अच्छा बर्ताव करूँगा। मगर हम यहाँ नहीं रहेंगे।''

''कहाँ जाएँगे ?''

''हम गाँव चले जाएँगे।''

इस मौक़े पर उन्हें बातों में मशग़ूल पाकर नूरदीन आहिस्ता से खिसक लिया। उसे जाते हुए किसी ने न देखा।

''गाँव के लोग सादा-दिल और ईमानदार होते हैं और वे हमारी मदद करेंगे। यह मेरे भाई ने कहा था और यह सच है। हम भी गाँव के रहनेवाले हैं। हम वहाँ खेतीबाड़ी शुरू करेंगे और आहिस्ता-आहिस्ता घर भी बना लेंगे। गाँव में घर बनाना मुश्किल नहीं होता, तुम फ़िक्र न करो। खुली जगह की आबो-हवा भी मुफ़ीद होती है। मेरा भाई...'' वह कराहकर चुप हो गया।

''मुझे अपने भाई के मुतअल्लिक़ कुछ बताओ।''

''अभी वक़्त नहीं...फिर कभी सही।''

दोनों ख़ामोश होकर झोंपड़ी में लैम्प की बत्ती के भड़ककर जलने की आवाज़ सुनते रहे। ''तेल ख़त्म हो रहा है।'' अली ने सोचा। देर तक वह बत्ती के भड़कने का तमाशा देखते रहे। फिर बानो ने उठकर तेल डाला।

''तुम बातूनी तो नहीं हो ?'' अचानक अली ने पूछा।

''मैं...बस...'' बानो नज़रें झुकाकर सादगी से बोली, ''तुम तो जानते ही हो।''

थोड़ी देर के बाद चिराग़ की बत्ती फिर भड़कने लगी और उनके सियाही-माइल, बड़े-बड़े, मेहनती और ईमानदार चेहरे एक साथ उसकी तरफ़ उठ गए। बानो ने उठकर दोबारा तेल डाला और धीमे लहजे में उसे कमाल के बारे में बताने लगी।

●●●

दाऊद खेल

मई 1956–जून 1961

अब्दुल्लाह हुसैन

उदास नस्लें

भारत के विभाजन और विस्थापन का गहरा चित्रण सबसे ज़्यादा उर्दू, उसमें भी ख़ासकर पाकिस्तान के कथा-साहित्य में हुआ है। इसका सबसे बड़ा कारण शायद यह है कि मुख्य भूमि को छोड़कर वहाँ गए लेखक अब भी किसी न किसी स्तर पर विस्थापन के दर्द को महसूस करते हैं।

पाकिस्तान के सुविख्यात लेखक अब्दुल्लाह हुसैन के इस उपन्यास की विशेषता यह है कि इसका कथानक विभाजन और विस्थापन तक सीमित नहीं है, बल्कि अन्य कई प्रकार की अस्मिताओं की टकराहट इसमें देखी जा सकती है। भारतीय उपमहाद्वीप के परम्परागत समाज के आधुनिक समाज में तब्दील होने की ज़द्दोज़हद इसके केन्द्र में है।

उपन्यास का कथानक प्रथम विश्वयुद्ध के कुछ पूर्व से विभाजन और उसके पश्चात् की घटनाओं और उपद्रवों के समय तक फैला हुआ है। विशाल कैनवस वाला यह उपन्यास तीन युगों का दस्तावेज़ है। पहला अंग्रेज़ी साम्राज्य का युग, दूसरा स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए संघर्ष का काल और तीसरा विभाजन के पश्चात् का ज़माना। इसमें हिन्दुस्तान में बसने वाली कई पीढ़ियों के साथ बदलते हुए ज़मानों का चित्रण है और समाज, सभ्यता तथा राजनीति की पृष्ठभूमि में बदलती हुई सोच का भी।

'उदास नस्लें' का नायक कोई व्यक्ति न होकर, समकालीन जीवन के विभिन्न कालखंड और उनसे गुज़रते हुए संघर्ष तथा व्यथा के भँवर में घिरी तीन पीढ़ियाँ हैं। इतिहास का ताना-बाना उन्हीं के अनुभवों के इर्द-गिर्द बुना गया है। इसमें शहरी तथा ग्रामीण पृष्ठभूमि वाले दो परिवारों की कथा है।

नईम और अज़रा दो भिन्न समाजों और मानसिक और भावात्मक सरोकार के दो विपरीत पक्षों के प्रतिनिधि हैं। उनके बीच प्रक्रिया और प्रतिक्रिया का सिलसिला जारी रहता है। वे दोनों अपनी जड़ों से तो नहीं कट सकते क्योंकि वे उनके संस्कारों का हिस्सा बन चुकी हैं, फिर भी एक प्रकार के कायाकल्प की प्रक्रिया से वे ज़रूर गुज़रते हैं। नईम अपने स्वभाव और मूल वृत्तियों से धरती का बेटा है, परन्तु अज़रा के माध्यम से उसका परिचय उस जीवन से होता है जो किसी हद तक परम्परागत मान्यताओं के अनुरूप नहीं है। नईम और अज़रा की आपसी निष्ठा और आत्मीयता में प्रेम का तत्त्व उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना दो अस्मिताओं में एकत्व पैदा करने और उनके अंदर विस्तार तलाश करने की भावना। परन्तु, अंत में उसकी पराजय हृदयविदारक है।

अब्दुल्लाह हुसैन इन दिनों लाहौर (पाकिस्तान) में रहते हैं। उनका यह बहुचर्चित उपन्यास पहली बार पाकिस्तान में 1963 में छपा था। 1964 में इसे आदम जी पुरस्कार प्राप्त हुआ।

राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली पटना इलाहाबाद

ISBN : 978-81-267-2126-9

₹ 295

9 788126 721269